१७८९ की क्रान्ति के पूर्व योरप

१ १७८९ की क्रान्ति के पूर्व योरप

योरप के विकास के कारण—व्यवसायिक क्रान्ति, फ्रांस की राजक्रान्ति। तीसवर्षीय युद्ध का प्रभाव—योरप का निरंकुश शासन। फ्रांस तथा उसके राजा। रूस—पीटर महान् और कैथरीन। इंग्लैंड—रक्तहीन क्रान्ति और वैधानिक शासन की स्थापना। प्रशा—फ्रेडरिक महान्। आस्ट्रिया तथा हैप्सवर्ग वंश। अन्य देश। योरप की सामाजिक अवस्था। कुछ प्रगतिशील निरंकुश शासक।

इस समय योरप के देश बहुत उन्नत तथा सभ्य माने जाते हैं। विश्व के अन्य देशों को भी इन्होंने प्रभावित किया है। योरप के देशों की सभ्यता की अनेक विशेषतायें आज विश्व भर के देशों में फैल गई हैं। परन्तु १७वीं तथा १८वीं शताब्दी में यूरोप के देश भी आजकल की भांति उन्नत नहीं थे। वे भी अनेक बातों में पिछड़े हुये थे। इस परिवर्तन के दो मुख्य कारण थे—

(१) **व्यावसायिक क्रान्ति** (Industrial Revolution)—व्यावसायिक क्रान्ति का सर्व प्रथम सूत्रपात १७वीं शताब्दी में इंग्लैंड में हुआ। १८वीं शताब्दी में उसका विकास हुआ। १९वीं तथा २०वीं शताब्दियों में उसका प्रसार विश्व के अन्य देशों मे हुआ।

(२) **फ्रांस की राज क्रान्ति** (French Revolution)—यह क्रान्ति १७८९ में फ्रांस के निरंकुश सम्राटों के विरुद्ध हुई। इसने विश्व भर के निरंकुश राजाओं की नींव को हिला दिया।

इस क्रान्ति के परिणामस्वरूप योरप का कायाकल्प हो गया। वहां की पुरातन व्यवस्था का अन्त हो गया और वहां एक नवीन जीवन तथा जागृति का संचार हुआ।

राजनीतिक अवस्था—तीसवर्षीय युद्ध (१६१८-४८) के परिणामस्वरूप रोमन सम्राटों की शक्ति का अन्त हो गया था। योरप का पुरातन संगठन नष्ट हो गया था। इसके पश्चात् प्रत्येक देश में निरंकुश शासकों का प्रादुर्भाव हुआ। इससे १६४८ तथा १७८९ के मध्य का काल इतिहास में निरंकुश शासकों का काल कहलाता है। ये राजा अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि कहकर अपने अधिकार को दैवी रूप देते थे। ये कहा करते थे—"भगवान् ने हमको शासन करने के लिये अपने प्रतिनिधि के रूप में यहां भेजा है। अतः जिस प्रकार जनता प्रकृति के उत्पातों को सहन करती है उसी प्रकार उसको राजा के उत्पातों को भी सहन करना चाहिए। राजा अपने कार्यों के

हैं।' अपनी विदेशी नीति में भी ये एकदम निरंकुश थे। अपने राज्य के विस्तार के लिये ये पड़ोसी राज्यों पर आक्रमण किया करते थे। अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये पूर्व सन्धियों को क्षण भर में तोड़ देते थे।

फ्रांस--फ्रांस की गणना योरप के प्रमुख राष्ट्रों में होती थी। धर्म-सुधार-आन्दोलन के कारण वहां पर्याप्त समय तक गृह-युद्ध चलता रहा। उससे नगर वीरान हो गये। खेती नष्ट हो गई। देश में लूट मार तथा अव्यवस्था छा गई। व्यापार तथा उद्योग धंधे नष्ट हो गये। राजकोष खाली हो गया। सामन्तों ने अपने अधिकार बहुत बढ़ा लिए। ऐसी परिस्थिति में १५९८ में हेनरी चतुर्थ फ्रांस का राजा हुआ। उसने अपने योग्य मन्त्री सली की सहायता से उपर्युक्त सब कठिनाइयों को दूर किया। उसने जल-सेना का संगठन किया। शहतूत की कृषि तथा रेशम के कीड़े पालने के व्यवसाय को प्रोत्साहन दिया। विदेशों में अपने उपनिवेश स्थापित किये। सन् १६१० में किसी पागल व्यक्ति ने उसकी हत्या कर दी।

तत्पश्चात् हेनरी चतुर्थ का १० वर्ष का पुत्र लुई तेरहवां गद्दी पर बैठा। उस की माता उसकी संरक्षिका बनी। इसने सली को पदच्युत कर दिया। इससे पुनः फ्रांस में अव्यवस्था फैल गई। फलतः लुई तेरहवें ने सत्ता अपने हाथ में ले ली। यद्यपि वह विशेष योग्य नहीं था, परन्तु उसका मन्त्री रिशलू बहुत योग्य तथा शक्तिशाली व्यक्ति था। उसने राजद्रोहियों का कठोरता से दमन कर दिया। उसने राजमाता को भी निर्वासित कर दिया। १६४२ में रिशलू की मृत्यु हो गई।

लुई १३ वाँ के पश्चात् लुई १४ वाँ (१६४३–१७१५) फ्रांस के सिंहासन पर बैठा। उसके योग्य मन्त्री मेजारिन ने योग्यतापूर्वक फ्रांस की उन्नति की। इस समय फ्रांस की अभूतपूर्व उन्नति हुई। फ्रांस की सीमा उसकी प्राकृतिक सीमाओं (राइन, आल्प्स तथा पिरेनीज पर्वत) को पार कर गई। परन्तु निरन्तर युद्धों से फ्राँस की आर्थिक अवस्था खराब हो गई। उस समय फ्रांस की सभ्यता तथा संस्कृति का भी बहुत विकास हुआ। लोगों में बौद्धिक जागृति हुई। भारत, कनाडा, वेस्टइंडीज तथा अफ्रीका में फ्रांसीसी उपनिवेशों की स्थापना हो गई।

तत्पश्चात् लुई १५वाँ सिंहासन पर बैठा। सिंहासन पर बैठने के समय उसकी अवस्था केवल ५ वर्ष की थी। अतः उसका चाचा आर्लियां का ड्यूक उसका संरक्षक बना। इस समय फ्रांस की अवनति होनी प्रारम्भ हो गई। लुई १५वाँ स्वयं अयोग्य था और उसके मन्त्री भी अयोग्य थे। उसने आस्ट्रिया के उत्तराधिकार के युद्ध (१७४०—४८) तथा सप्तवर्षीय युद्ध (१७५६—६३) में भाग लिया था। इससे फ्रांस की आर्थिक अवस्था बहुत खराब हो गई। इसका लाभ उठाते हुए इंग्लैण्ड ने उसके अधिकांश उपनिवेशों पर अधिकार कर लिया। १७७४ में लुई १५ वें की मृत्यु हो गई।

गद्दी पर बैठने के समय उसकी अवस्था २० वर्ष थी। उसने इंग्लैण्ड के विरुद्ध अमेरिका के अंग्रेजी उपनिवेशों को सहायता दी। इसमें अमेरिका के अंग्रेजी उपनिवेशों को सफलता मिली। इस प्रकार उसने अपने देश की पूर्व पराजय का बदला लिया। इससे फ्रांस का गौरव बहुत बढ़ गया; परन्तु उसकी आर्थिक अवस्था बहुत खराब हो गई। लुई १६ वाँ जनता को संतुष्ट नहीं कर सका। अत: वहां १७८९ में क्रान्ति हो गई। इससे निरंकुश सम्राटों के सिंहासन हिलने लगे।

रूस—१७ वीं शताब्दी तक रूस एक अत्यन्त पिछड़ा हुआ देश था। परन्तु पीटर महान् तथा कैथरीन द्वितीय ने रूस को सभ्य बनाने के लिये बहुत प्रयत्न किया। केथरीन द्वितीय (१७६२—९६) एक बहुत महत्वाकांक्षी स्त्री थी। इसने अपने साम्राज्य का विस्तार काले सागर से बाल्टिक सागर तक कर लिया। इसने क्रीमिया प्रायद्वीप पर भी अधिकार कर लिया। इसने १७७२ में प्रशा तथा आस्ट्रिया से मिलकर पोलैण्ड का विभाजन कर लिया।

इंग्लैंड—प्रारम्भ में इंग्लैंड में भी निरंकुश राजाओं का शासन था। १४८५ से १६०३ ई० तक वहाँ ट्यूडर वंश के राजाओं ने शासन किया। इसके पश्चात् स्टुअर्ट वंश के निरंकुश राजाओं ने वहां शासन किया। परन्तु जनता जाग्रत होने पर निरंकुश राजाओं का विरोध करने लगी। सम्राट् चार्ल्स प्रथम का पार्लियामेंट से तीव्र संघर्ष हो गया। अन्त में १६४९ में उसे फाँसी पर लटका दिया गया और देश में गणतन्त्र की स्थापना कर दी गई। कालान्तर में क्रामवेल नामक एक सेनापति ने सारी शक्ति अपने हाथ में ले ली। परन्तु १६६० में जनता ने चार्ल्स प्रथम के लड़के चार्ल्स द्वितीय को बुलाकर सिंहासन दे दिया। स्टुअर्ट वंश के राजा कैथौलिक थे। अत: ये इंग्लैण्ड में भी कैथोलिक धर्म का प्रचार करना चाहते थे। फलत: जनता उनका विरोध करने लगी। विरोध यहां तक बढ़ा कि १६८८ में जेम्स द्वितीय सिंहासन त्याग कर भाग गया। नेताओं ने उसकी पुत्री मेरी तथा उसके पति विलियम को हालैंड से बुलाकर संयुक्त रूप से सिंहासन पर बैठाया। इंग्लैंड के इतिहास में यह परिवर्तन रक्तहीन क्रान्ति के नाम से प्रख्यात है। तत्पश्चात् इंग्लैंड में राजा के अधिकार बहुत सीमित हो गए और वहां वैधानिक शासन की स्थापना हो गई।

कालान्तर में इंग्लैण्ड की शक्ति का बहुत विकास हो गया। उसने अपने कई उपनिवेश स्थापित कर लिए। उसने समय-समय पर बनने वाले योरपीय गुटों में बराबर भाग लिया। धीरे-धीरे अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इंग्लैंड की पर्याप्त प्रतिष्ठा हो गई।

प्रशा—यहां पर पर्याप्त समय तक होहेनजोलर्न (Hohen Zollern) नामक वंश ने राज्य किया। इस वंश का सबसे प्रसिद्ध तथा योग्य शासक फ्रेडरिक महान् (१७४०--८६) था। उसने अपनी सेना का भली प्रकार संगठन किया और अपनी

१७७२ के प्रथम विभाजन में भाग लिया तथा उसके उत्तरी भाग को अपने अधीन कर लिया। उसने अपने राज्य में कुछ सुधार भी किए। इससे उसकी कीर्ति में और भी अधिक वृद्धि हुई। परन्तु वह शासन संचालन में जनता की राय लेना आवश्यक नहीं समझता था।

आस्ट्रिया—आस्ट्रिया में हैप्सवर्ग वंश का राज्य था। यह एक विशाल राज्य था। इसमें अनेक जातियों के मनुष्य रहते थे। इसके मुख्य भाग में जर्मन रहते थे। बोहेमिया तथा मोराविया में जेक जाति के लोग रहते थे। हंगरी तथा लोम्बार्डी पर भी आस्ट्रिया के सम्राट् शासन करते थे। परन्तु ये प्रदेश उनके देश के बाहर के थे। प्रारम्भ में योरप की राजनीति में आस्ट्रिया की बहुत प्रतिष्ठा थी। परन्तु वेस्टफालिया की सन्धि के पश्चात् उसकी प्रतिष्ठा जाती रही। फ्रांस से आस्ट्रिया की प्रायः शत्रुता रहती थी। फ्रांसीसी क्रान्ति के समय आस्ट्रिया में सम्राट् जासेफ द्वितीय (१७६५-९०) राज्य कर रहा था। इसने आस्ट्रिया की विभिन्न जातियों का संगठन कर एक शक्तिशाली केन्द्रीय शासन की स्थापना का प्रयत्न किया; परन्तु उसको सफलता न मिली। इसका प्रधान कारण यह था कि प्रत्येक जाति के मनुष्य अपने हितों तथा स्वार्थों को प्रधानता देते थे। जासेफ के पश्चात् उसके भाई लियोपोल्ड द्वितीय (१७९०-९२) ने शासन किया।

इटली—इटली में भी अनेक छोटे-छोटे राज्य थे। इनमें से कुछ स्वतन्त्र थे तथा कुछ विदेशियों के अधीन थे। इटली के प्रमुख राज्यों के नाम इस प्रकार हैं—पर्मा, मोडेना, टस्कनी, पीडमाण्ट, सार्डीनिया, लोम्बार्डी, सेवाय तथा पोप-राज्य (Papal States)।

स्पेन—१६वीं शताब्दी में स्पेन अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर था; परन्तु १७वीं शताब्दी में उसकी प्रतिष्ठा समाप्त हो गई। १७०० ई० में वहां बूर्बों वंश का शासन स्थापित हुआ। इससे फ्रांस के साथ उसके सम्बन्ध स्थापित हो गए।

पोलैण्ड—पोलैण्ड की सीमा पर रूस, आस्ट्रिया एवं प्रशा नामक तीन शक्तिशाली राज्य थे। वे उसकी निर्बलता का लाभ उठाकर उसके प्रदेशों पर अधिकार करते रहते थे। उन्होंने सन् १७७२, १७९३ तथा १७९५ में तीन बार इस निर्बल राज्य का विभाजन कर इसका अस्तित्व योरप के मानचित्र से मिटा दिया। फलतः १२५ वर्ष तक योरप में स्वतन्त्र रूप से पोलैण्ड नाम का कोई राज्य न रहा।

हालैण्ड—हालैण्ड में आरेन्ज वंश का शासक था। यहां विलियम पंचम राज्य करता था। यह एक स्वेच्छाचारी शासक था। राज्य की सारी शक्ति इसी के हाथ में केन्द्रित थी।

स्वीट्जरलैण्ड—यह एक छोटा सा पार्वतीय राज्य था। इसमें जर्मनी, इटली तथा फ्रांस आदि के निवासी रहते थे। यहां गणतन्त्रात्मक शासन था। यहां जिलों

लैण्ड का स्थान नगण्य था।

डेन्मार्क, नार्वे तथा स्वीडन—डेन्मार्क तथा नार्वे में इस समय क्रिश्चियन सातवाँ शासन कर रहा था। स्वीडन में इस समय गस्टवस तृतीय (Gustavas III) का शासन था। यह एक शक्तिशाली तथा स्वेच्छाचारी शासक था।

योरप की सामाजिक अवस्था

सामाजिक दशा—इस समय योरप का समाज मुख्यतया तीन भागों में विभाजित था—(१) कुलीन वर्ग, (२) पादरी वर्ग तथा (३) जन साधारण। कुलीन तथा बड़े-बड़े पादरी विलासिता का जीवन व्यतीत करते थे। जबकि तीसरे वर्ग के मनुष्यों को भर पेट भोजन भी नहीं मिलता था।

१. कुलीन वर्ग—इस वर्ग के अन्तर्गत बड़े-बड़े सामन्त थे। राज-परिवार के पश्चात् इन्हीं की गणना होती थी। सेना तथा प्रशासन के उच्च पदों पर इन्होंने अधिकार कर रक्खा था। राज्य का अधिकांश धन भी इन्हीं के हाथ में था। ये बड़ी विलासिता से रहते थे तथा धन को पानी की तरह बहाया करते थे। भूमि के अधिकांश भाग पर इन्होंने अधिकार कर रक्खा था। ये स्वयं कोई कार्य नहीं करते थे। ये कृषकों से बेगार लेकर खेती कराते थे। फिर भी ये करों से मुक्त थे। ये कृषकों से विभिन्न प्रकार के कर लेते थे। इनके जानवर कृषकों के खेतों को नष्ट कर देते थे। परन्तु कृषकों को उन्हें अपने खेत से बाहर निकालने का अधिकार न था। विलासिता का जीवन व्यतीत करने के कारण बहुत से कुलीनों की आर्थिक अवस्था बहुत हीन हो गई थी। फिर भी इनको अनेक विशेषाधिकार प्राप्त थे।

२. पादरी वर्ग—पादरी वर्ग को भी दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—(i) बड़े पादरी—इसके अन्तर्गत विशप, आर्क विशप, एबट तथा कार्डीनल आदि के नाम प्रमुख हैं। ये लोग बहुत सम्पन्न थे तथा आराम का जीवन व्यतीत करते थे। इन लोगों के हाथ में चर्च के समस्त पद थे। मठों से इनको लाखों रुपये की आय होती थी। ये राजा की भाँति न्याय भी करते थे। ये किसानों से लगान का दशांश भी वसूल करते थे। रोमन कैथोलिक, प्रोटेस्टेन्टों तथा यहूदियों से भी ये कर वसूल करते थे। इन लोगों का नैतिक स्तर बहुत गिरा हुआ था। इनमें से अधिकांश ईश्वर तक के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते थे। (ii) छोटे पादरी—इसकी दशा बड़ी हीन थी। यद्यपि ये अधिक सदाचारी और उपयोगी थे, परन्तु अपनी निर्धनता के कारण ये महत्वहीन थे।

३. साधारण वर्ग—इसमें समाज की कुल संख्या के ८५ प्रतिशत मनुष्य थे। इस वर्ग के अन्तर्गत किसान, दास, मजदूर, छोटे दूकानदार तथा शिल्पी आदि थे। ये समस्त दिन घोर परिश्रम करते थे, फिर भी इनको भर पेट भोजन नहीं मिलता था। शरीर ढकने के लिये इनके पास वस्त्रों का भी अभाव था। इनको उच्च वर्ग के लोगों की बेगार भी करनी होती थी। इनके ऊपर अनेक कर लगे हुए थे।

सरकार के अतिरिक्त ये सामन्तों तथा पादरियों को भी कर देते थे। ऐसा कहा जाता है कि इनको अपनी आय का ८० प्रतिशत भाग कर के रूप में देना पड़ता था। अर्द्धदास कृषकों (Serfs) की अवस्था बहुत खराब थी। ये अपने मालिकों के खेतों के अतिरिक्त अन्य कहीं कार्य नहीं कर सकते थे। ऐसा बताया जाता है कि प्रशा में कृषकों को सप्ताह में ६ दिन तक सामन्तों के खेतों पर काम करना पड़ता था। अपने खेतों में ये लोग रात को कार्य करते थे।

४. **मध्यम वर्ग**—उपर्युक्त वर्गों के अतिरिक्त समाज में मध्यम वर्ग का भी उदय हो गया था। इसके अन्तर्गत वकील, प्रोफेसर, मिल मालिक, बड़े दुकानदार, डाक्टर, लेखक तथा कवि आदि थे। इस वर्ग की गणना कुलीनों तथा साधारण वर्ग के मध्य में होती थी। इन लोगों के पास धन तथा शिक्षा दोनों ही थे। आवश्यकता पड़ने पर ये कुलीनों को ऋण भी देते थे। फिर भी इनको कुलीनों जैसा सम्मान तथा विशेषाधिकार प्राप्त न थे। अतः ये बहुत असन्तुष्ट थे। क्रान्ति के समय इन्हीं लोगों ने क्रान्ति का नेतृत्व किया था।

कुछ प्रगतिशील निरंकुश शासक
(Enlightened Despots)

पीटर महान् (१६८९-१७२५)—यह रूस का प्रगतिशील सम्राट् था। इसके सिंहासन पर बैठने से पूर्व रूस एक एशियाई देश था। एशिया के अन्य देशों की भांति वह भी पिछड़ा हुआ था। परन्तु पीटर महान् ने पुरातनवाद के सब चिन्हों को मिटाने का प्रयत्न किया। उसने एक मात्र निरंकुशता को ही पुरातन परम्पराओं में से अपनाया। उसने स्वयं इंगलैंड, जर्मनी तथा हालैंड आदि देशों की यात्राएं कीं। उसने रूस को भी इन्हीं देशों की भांति उन्नत करने का प्रयत्न किया। पुरानी परम्पराओं पर उसने प्रतिबन्ध लगवा दिया। उसने दाढ़ी पर कर लगवा दिया। बहुत से दरबारियों की दाढ़ियों को उसने स्वयं कैंची से काट दिया। उसने पुरातन विचारधारा को मानने वाले अपने पुत्र की भी हत्या करवा दी। कुछ विद्वानों ने उसको अर्द्धसभ्य सम्राट् कहा है।

कैथरीन द्वितीय (१७६२–९६)—यह रूस की एक योग्य सम्राज्ञी थी। इसने पीटर महान् के सुधारों को आगे बढ़ाया। इसने पश्चिमी देशों की भाँति शासन किया। यह फ्रांस के उदार विचारों से बहुत प्रभावित थी। उसने शिक्षा का प्रचार किया तथा देश में अनेक सुधार किये।

फ्रेडरिक महान् (१७४०–८६)—सन् १७४० में प्रशा के राजा फ्रेडरिक विलियम द्वितीय की मृत्यु हो गई। यह अपने पुत्र फ्रेडरिक को मूर्ख तथा कायर समझता था, परन्तु यह अपने पिता से भी योग्य सिद्ध हुआ और इतिहास में फ्रेडरिक महान् के नाम से प्रख्यात हुआ। यह बहुत योग्य तथा कुशल सेनापति था। इसके शासनकाल में प्रशा ने बहुत उन्नति की और वह योरप का प्रमुख राज्य बन गया। उसके सुधारों का संक्षेप में अग्रांकित प्रकार से वर्णन किया जा सकता है :

शासन का आदर्श—वह राजा की निरंकुशता में विश्वास रखता था। परन्तु इसके साथ-साथ वह राजा को जनता का सबसे बड़ा सेवक मानता था। उसने राज्य के उच्च पदों पर योग्य मनुष्यों को नियुक्त किया। वह कहा करता था कि राजा को सदैव प्रजा के हित में कार्य करना चाहिए।

साहित्य—उसने साहित्य तथा विज्ञान को बहुत प्रोत्साहन दिया। वह लेखकों तथा कवियों का बड़ा सम्मान करता था। एक बार महान् दार्शनिक वाल्टेयर भी उसका अतिथि रहा था। फ्रेडरिक को फ्रांसीसी साहित्य के अध्ययन का बहुत शौक था। उसने प्रेस को भी स्वतन्त्रता दे दी तथा अनेक स्कूलों का निर्माण कराया।

न्याय—उसने योग्य न्यायाधीशों की नियुक्ति की। जो न्यायाधीश निर्धनों के साथ अनुचित व्यवहार करता था, उसको वह पदच्युत कर देता था। फौजदारी कानूनों की कठोरता को उसने बहुत कम कर दिया।

सेना—उसने सेना के संगठन और सुव्यवस्था की ओर ध्यान दिया। सेना में योग्य सैनिकों की नई भरती की गई। उसकी सेना में कुल मिलाकर दो लाख सैनिक थे। यह सेना उस समय विश्व भर में श्रेष्ठ मानी जाती थी। उसने आस्ट्रिया से साइलेशिया का प्रदेश छीन लिया तथा रूस और आस्ट्रिया के साथ मिलकर पौलैंड के विभाजन में भाग लिया।

कृषि—उसने देश के आर्थिक विकास की ओर भी ध्यान दिया। उसने वैज्ञानिक ढंग से कृषि करने के लिए जनता को प्रोत्साहित किया। सिंचाई के लिए नहरों का निर्माण कराया। फलों की कृषि को भी प्रोत्साहन दिया। बेकार पड़ी हुई जमीन को कृषि के योग्य बनाया। उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन दिया। पशुओं की नस्ल सुधारने का भी प्रयास किया।

जासेफ द्वितीय (१७६५—९०)—१७८० तक इसकी माता मैरिया थेरेसा शासन का संचालन करती रही। यद्यपि वह बहुत योग्य नहीं थी, फिर भी उसने शासन में अनेक सुधार किए। उसने अपने राज्य में धार्मिक अत्याचार बन्द करवा दिया। उसने सेना तथा न्याय विभाग में भी सुधार किए। उसकी मृत्यु के पश्चात् १७८० में शासन की सम्पूर्ण शक्ति जासेफ द्वितीय ने अपने हाथ में ली। उसने फ्रेडरिक महान् का आदर्श सम्मुख रखकर शासन में अनेक सुधार किए। उसके प्रमुख सुधार निम्न प्रकार हैं—

(१) उसने सामन्तों तथा पादरियों में विशेषाधिकारों का अन्त कर सबको समानता प्रदान की।

(२) चर्च को राज्य के आधीन कर दिया।

(३) कृषकों को अपनी भूमि बेचने का अधिकार प्रदान किया गया। अब उनसे बेगार नहीं ली जा सकती थी। भूमि-कर सब पर समान रूप से [illegible] गया।

(४) प्रेस को स्वतन्त्र कर दिया गया। समाज के प्रत्येक वर्ग के लि[illegible]

(५) शिक्षा को प्रोत्साहन दिया।

परन्तु इन सुधारों से जनता संतुष्ट नहीं हुई। मरते समय सम्राट् ने स्वयं स्वीकार किया था कि मैंने जनता की उन्नति के लिए कठोर परिश्रम किया, परन्तु जनता को इससे संतोष नहीं हुआ।

चार्ल्स द्वितीय—यह नेपिल्स तथा स्पेन का सम्राट था। यह बहुत उदार था। इसके मन्त्री भी इसी की भाँति उदार थे। अतः इसने अपने मन्त्रियों के साथ मिलकर शासन में अनेक सुधार किए। इसने केन्द्रीय सत्ता को दृढ़ किया। सेना का संगठन किया। सार्वजनिक ऋणों को कम किया। अनेक सड़कों, नहरों तथा पुलों का निर्माण कराया। उद्योग-धंधों को प्रोत्साहन दिया तथा कृषि को वैज्ञानिक ढंग से कराने के लिए कृषकों को प्रोत्साहन दिया।

इसी प्रकार जर्मनी, पुर्तगाल तथा स्वीडेन आदि के निरंकुश शासकों ने भी शासन में अनेक सुधार किए, परन्तु इस समय फ्रांस में ऐसा सुधारक कोई राजा नहीं हुआ।

प्रश्न

१. सन् १७८९ के पूर्व योरप की राजनीतिक तथा सामाजिक अवस्था का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

२. फ्रांसीसी क्रांति के पूर्व योरप के कुछ निरंकुश सुधारक राजाओं के कार्यों का वर्णन कीजिये।

३. निम्नलिखित पर संक्षिप्त नोट लिखिए—
(अ) पीटर महान् (ब) कैथरीन द्वितीय (स) फ्रेडरिक महान्।

२ १७८९ की क्रान्ति के पूर्व फ्रांस की अवस्था

लुई १४ वां और १५ वां । लुई १६ वां और उसके मन्त्री । प्रसिद्ध पुरुषों की सभा । स्टेट्स जनरल । राजा की निरंकुशता । सेना की त्रुटियां । कानून की विविधता और त्रुटियाँ । असन्तोष-जनक आर्थिक अवस्था । कृषकों की दुरवस्था । व्यापारिक और औद्योगिक अवनति । राजपरिवार की विलासिता और अपव्यय । सामाजिक अवस्था । कुलीन वर्ग । पादरी वर्ग । मध्यम वर्ग । सामान्य वर्ग । बौद्धिक क्रान्ति के नेता ।

सन् १७८९ की क्रान्ति के पूर्व फ्रांस में बूर्बों वंश का शासन था । यह निरंकुश राजवंश था । उसके समय में फ्रांस में कलाकौशल तथा व्यापार की बहुत उन्नति हुई । इस समय विदेशों में अनेक उपनिवेश बसाए गए । लुई १४ वें की मृत्यु तक तो शासन ठीक प्रकार चलता रहा, परन्तु कालान्तर में शासन में अनेक दोष दिखाई देने लगे, जिनके परिणामस्वरूप १७८९ की क्रान्ति हो गई और फ्राँस की पुरातन राजनीतिक व्यवस्था (Ancient Regime) का अन्त हो गया ।

लुई चौदहवां (१६४३--१७१५)—लुई चौदहवें के समय फ्रांस का विस्तार उसकी प्राकृतिक सीमाओं को पार कर गया । परन्तु उसके निरन्तर युद्धों से राज्य की आर्थिक अवस्था बहुत खराब हो गई । उसकी मृत्यु के पश्चात् शासन के दोष स्पष्टतया दृष्टिगोचर होने लगे । लुई चौदहवें ने मरते समय अपने पंचवर्षीय पुत्र लुई पन्द्रहवें से कहा था—'मुझे युद्धों से बहुत प्रेम था । अतः मैंने युद्धों पर बहुत धन व्यय किया । इससे राज्य की आर्थिक अवस्था खराब हो गई, परन्तु तुम ऐसा मत करना ।' परन्तु लुई पन्द्रहवां बालक होने के कारण इस उपदेश को समझ न सका और कालान्तर में वह अयोग्य मन्त्रियों की सम्मति के अनुसार कार्य करता रहा । अतः उसने कभी भी अपने पिता के अन्तिम उपदेश का पालन नहीं किया ।

लुई पन्द्रहवां (१७१५--७४)—लुई १४वें की मृत्यु के पश्चात् लुई १५वां पांच वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठा । बड़ा होने पर वह विलासी तथा निकम्मा हो गया । उसका अधिकांश समय नर्तकियों,रखैलों तथा जुआघर में व्यतीत होता था । वह अपने राजमहल में रखैलों द्वारा घिरा रहता था । अपनी प्रमुख रखैलों पर वह अपार धन व्यय किया करता था । ये रखैल राजनीति में भी हस्तक्षेप किया-करती थीं । कालान्तर में जनता ने राजा के इन कार्यों का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया ।

परन्तु राजा ने इस ओर कभी ध्यान न दिया। वह बड़ी लापरवाही से कह दिया करता था—'आप मरे जग प्रलय' (After me the Deluge)। वास्तव में उसके ये वाक्य सत्य निकले। उसके समय तो किसी प्रकार कार्य चलता रहा, परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी लुई सोलहवें के समय वास्तव में प्रलय ही हो गया।

लुई सोलहवां—सन् १७७४ में लुई पन्द्रहवें की मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् उसका पौत्र लुई सोलहवां गद्दी पर बैठा। जनता को यह आशा थी कि नया सम्राट् शासन में अनेक सुधार करेगा। परन्तु उसमें इतनी योग्यता नहीं थी कि वह ऐसी संकटमय स्थिति में फ्रांस को संभाल लेता। उसमें दूरदर्शिता का गुण न था। शासन के कार्यों में भाग लेने की अपेक्षा वह नाट्य-गृह में बैठना अथवा शिकार खेलना अधिक पसन्द करता था। उसकी रानी मेरी अन्तायनेत उससे भी कहीं अधिक अदूरदर्शी थी। वह आस्ट्रिया की रानी मेरिया थेरेसा की पुत्री थी। वह अति सुन्दरी थी। विद्वानों ने उसे योग्य माता की अयोग्य पुत्री कहा है। उसको फ्राँस की बिगड़ती हुई राजनीतिक अवस्था का बिलकुल ध्यान नहीं था। वह बराबर विलासिता में धन व्यय कर रही थी। अपने पति के ऊपर उसने बहुत ही बुरा प्रभाव डाला।

आर्थिक दशा सुधारने का प्रयास—जिस समय लुई सोलहवां गद्दी पर बैठा उस समय फ्रांस पर राष्ट्रीय ऋण बहुत बढ़ गया था। राज्य को प्रति वर्ष दो करोड़ रुपये का घाटा हो रहा था। दूसरी ओर जनता करों के भार से दबी हुई थी। एक दिन सभा में राजा ने व्यक्तियों से पूछा कि क्या कारण है कि जनता करों के भार से दब रही है और राजकोष खाली पड़ा है। इसका उत्तर एक व्यक्ति ने बड़े हीं मनोरंजक ढंग से दिया। उसने बर्फ का एक बहुत बड़ा टुकड़ा लिया और उसे क्रमशः विभिन्न व्यक्तियों के हाथों से गुजारते हुये राजा तक पहुँचाया। राजा तक पहुँचते-पहुँचते बर्फ का बड़ा टुकड़ा बहुत छोटा हो गया था। तत्पश्चात् उसने राजा को बतलाया कि जनता पर कर तो भारी-भारी लगे हैं, परन्तु राजकोष तक पहुँचते-पहुँचते पदाधिकारी मध्य में उस धन का बहुत कुछ भाग खा लेते हैं। राजकोष तक पहुँचते-पहुँचते वह बहुत थोड़ा रह जाता है।

देश की आर्थिक अवस्था को बिगड़ते हुए देखकर राजा को वास्तव में बड़ी चिन्ता हुई। उसमें सुधार करने के लिये उसने प्रयत्न करना चाहा और क्रमशः निम्नलिखित मन्त्रियों को नियुक्त किया—

(१) **तूर्जो** (Turgot) (१७७४-७६)—गद्दी पर बैठने के पश्चात् लुई सोलहवें ने तूर्जो नामक एक योग्य व्यक्ति को अपना अर्थ-मन्त्री बनाया। उसने देश की आर्थिक अवस्था सुधारने के लिये एक विस्तृत योजना बनाई। वह राज्य के खर्चे में मितव्ययिता का पक्षपाती था। वह पेंशनों तथा वज़ाफों का अन्त करना चाहता था। वह जनसाधारण के करों को कम करके कुलीनों तथा पादरियों पर

टैक्स लगाना चाहता था। व्यापार तथा उद्योग-धन्धों के सम्बन्ध में जो रुकावटें थीं, उन्हें वह दूर करना चाहता था। उसने कृषकों से ली जाने वाली बेगार को बन्द कर दिया। उसने ऐसे संघों (Guilds) को समाप्त कर दिया, जो व्यापार के मार्ग में रुकावट थे। उसका यह कार्यक्रम बहुत उत्तम था। इससे फ्रांस की गिरी हुई दशा सुधर सकती थी। परन्तु उसके क्रान्तिकारी विचारों की प्रतिक्रियावादियों ने कटु आलोचना की। सम्राट् के दरबारी, उच्च पदाधिकारी, पादरी तथा सामन्त उसके विरोधी हो गये। सम्राज्ञी अन्तायनेत ने भी उसका विरोध किया, क्योंकि उसकी योजना से उसके खर्चे में भी कमी हो गई थी। इसी बीच फसल नष्ट हो जाने के कारण कुछ नगरों में दंगे हो गए। फलतः तूर्जो का बहुत विरोध बढ़ गया। अन्त में लुई सोलहवें ने उसको पदच्युत कर दिया।

(२) **नेकर** (Necker) (१७७६--८१)—तूर्जो के पश्चात् लुई सोलहवें ने नेकर को अपना अर्थ-सचिव बनाया। इसने हिसाब को ठीक प्रकार से रखने पर बहुत जोर दिया। फलतः आर्थिक दशा में कुछ सुधार हो गया। परन्तु इसी बीच फ्रांस ने अमेरिका के स्वतन्त्रता-संग्राम में भाग लिया। इससे देश की अवस्था बहुत खराब हो गई। प्रतिवर्ष बजट में घाटा बढ़ने लगा। इसकी पूर्ति के लिये उसने विदेशों से ४० करोड़ फ्रांक का ऋण लिया। परन्तु इससे भी सरकार का कार्य न चला। इसके अतिरिक्त ब्याज देते-देते सरकार का दिवाला निकल गया। फलतः नेकर ने भी तूर्जो की नीति को अपनाने का निर्णय किया। उसने कुलीनों पर टैक्स लगाने तथा राज्य का व्यय कम करने पर जोर दिया। इससे उसका विरोध बहुत बढ़ गया। सम्राज्ञी अन्तायनेत ने भी कंजूस कह कर उसकी निन्दा की। रानी अपने व्यय में कोई कमी करना नहीं चाहती थी। फलतः राजा ने रानी के प्रभाव में आकर १७८१ में नेकर को भी पदच्युत कर दिया।

(३) **कैलोन** (Calonne) (१७८१--८६)—नेकर के पश्चात् कैलोन अर्थ-मन्त्री बनाया गया। वह राज-परिवार को अप्रसन्न नहीं करना चाहता था। अतः उसने राज्य के घाटे की पूर्ति के लिये ऋण लिये। ये ऋण भारी ब्याज पर ही मिलने सम्भव थे। सन् १७८६ में फाँस पर ६० करोड़ डालर का ऋण हो गया। इस समय २½ करोड़ डालर का प्रति वर्ष घाटा हो रहा था। इसके बाद किसी भी ब्याज की दर पर ऋण मिलना असम्भव हो गया। अतः उसने आर्थिक समस्या को सुलझाने के लिए प्रसिद्ध पुरुषों की एक सभा बुलाने का राजा से आग्रह किया। राजा ने विवश होकर उसकी बात को मान लिया।

प्रसिद्ध पुरुषों की सभा (Assembly of Notables)—उस सभा में सामन्त, पादरी तथा मजिस्ट्रेट आदि थे। इनकी नियुक्ति राजा ने की थी। अतः इस संस्था में जनसाधारण का प्रतिनिधित्व न था। इस सभा के सदस्यों की संख्या १४५ थी। इस सभा में कैलोन ने यह प्रस्ताव रक्खा कि अब देश की आर्थिक दशा सुधारने के

लिये यह आवश्यक हो गया है कि समाज के सभी वर्गों पर समान रूप से कर लगाया जाय। परन्तु कुलीन वर्ग ने इस प्रस्ताव का घोर विरोध किया। उन्होंने राजा पर दबाव डालकर कैलोन को पदच्युत करा दिया।

(४) **ब्रीन** (Brienne)—कैलोन के पश्चात् ब्रीन अर्थ-सचिव बनाया गया। परन्तु यह भी आर्थिक समस्या को हल करने में असमर्थ रहा। उसके नये करों का पेरिस की पार्लमाँ (न्यायालय) ने विरोध किया। पार्लमां ने कहा कि कर वही लगा सकते हैं जो कर देते हैं। अतः स्टेट्स-जनरल को बुलाया जाय और उससे करों का अनुमोदन कराया जाय। जनता ने इस प्रस्ताव का भारी स्वागत किया; परन्तु राजा ने पार्लमाँ को अवैध घोषित कर उसके सदस्यों को बन्दी बनाने का आदेश दिया। जनता ने पार्लमाँ का साथ दिया। फलतः सैनिकों ने भी न्यायाधीशों को गिरफ्तार करने से इंकार कर दिया। स्थान-स्थान पर जनता ने यह प्रस्ताव पास किया कि शीघ्र ही स्टेट्स-जनरल का अधिवेशन बुलाया जाय। सर्वत्र क्रान्ति के चिह्न प्रकट होने लगे। इससे राजा तथा उसके मन्त्री घबरा गए। अतः राजा ने विवश होकर प्रथम मई १७८९ को वर्साय में स्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाया।"[1] इस समय तक तूर्जो की मृत्यु हो चुकी थी। अतः राजा ने नेकर को पुनः बुला लिया और उसे मुख्य मन्त्री बना दिया।

स्टेट्स जनरल (The Estates General)—जनता के आग्रह पर लुई सोलहवें ने स्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाया। यह कोई नवीन संस्था नहीं थी। इसकी स्थापना फिलिप द फेयर (Philip the Fair) ने १३०२ ई० में की थी। १६१४ तक नियमित रूप से इसके अधिवेशन होते रहे। परन्तु पौने दो सौ वर्षों से उसका कोई अधिवेशन नहीं हुआ था। इस सभा का कार्य राजा को परामर्श देना होता था। इस सभा के तीन भवन होते थे और प्रत्येक भवन का एक वोट समझा जाता था। प्रथम भवन में कुलीन वर्ग के लोग, द्वितीय में उच्च पादरी तथा तीसरे भवन में जन-साधारण के प्रतिनिधि होते थे। इससे कुलीन तथा पादरी परस्पर मिल जाते थे और वे जनसाधारण के प्रस्ताव को अस्वीकृत करा देते थे। नेकर के आग्रह पर राजा ने तीसरे वर्ग की संख्या दुगुनी कर दी। इससे यह कुलीन तथा पादरियों की संख्या के बराबर हो गई।

प्रारम्भ में स्टेट्स जनरल का कार्य कानून बनाना नहीं था। वह एकमात्र राजा द्वारा बनाए हुए कानूनों का अनुमोदन करती थी। उसका अधिवेशन बुलाना अथवा न बुलाना राजा की इच्छा पर निर्भर करता था। आय-व्यय पर उसका कोई नियन्त्रण न था। १६१४ के पश्चात् राजाओं ने उसका कभी अधिवेशन नहीं बुलाया। अतः इस प्रकार वह एक मृत संस्था हो गई थी। इस संस्था के कार्यों तथा कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में इसके संस्थापक राजा फिलिप द फेयर ने कहा था—'स्टेट्स जनरल

1. 'The French Revolution, like its States General, began as a financial counsel of despair.' —Elton.

के सदस्यों का कर्त्तव्य प्रस्तावों को सुनना, उनका अनुमोदन करना तथा राजा की इच्छानुसार कार्य करना है।[1] इस समय स्टेट्स जनरल अपने इस अधिकार से आगे बढ़ गई। उसने भाग्य का स्वयं निर्णय करने का फैसला किया। उसके ये कार्य आगामी क्रान्ति के सूचक थे। इस प्रकार लुई सोलहवें का स्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाना क्रान्ति को निमन्त्रण देना हो गया।

राजा की निरंकुशता—फ्रांस के बूर्वावंशीय राजा निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी थे। शासन की सम्पूर्ण शक्ति उनके हाथ में थी। जनता को शासन-सम्बन्धी मामलों में कोई अधिकार न था। उनकी इच्छा ही कानून थी। लुई १४ वां कहा करता था कि मैं ही राज्य हूँ।[2] राजा अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि कहता था। उसका विचार था कि ईश्वर ने राजा को पृथ्वी पर शासन करने के लिये अपने प्रतिनिधि के रूप में भेजा है। अतः जनता को उसके अच्छे तथा बुरे कार्यों को सहन करना चाहिए। राजा एकमात्र ईश्वर के प्रति ही उत्तरदायी है। राजा तथा उसके कृपापात्र मुद्रित पत्रों (Letters de Catchet) द्वारा किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार तथा दण्डित करा सकते थे। इन मुद्रित पत्रों पर राजमुहर लगी होती थी। उसमें दण्ड दिये जाने की आज्ञा अंकित होती थी। एकमात्र व्यक्ति का नाम तथा दण्ड का परिमाण का खाना खाली होता था। अतः इसकी सहायता से राजा तथा उसके कृपापात्र किसी भी व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार दण्ड दिला सकते थे। इसकी सुनवाई कही पर भी नहीं होती थी। कुलीन लोग इन पत्रों के द्वारा अपने शत्रुओं को बन्दी करा देते थे। लेखकों तथा सम्पादकों को भी इनके द्वारा बन्दी बना लिया जाता था। वाल्टेयर तथा मिराब्यू को भी इन मुद्रित पत्रों द्वारा दण्ड दिया जा चुका था।

राजा की निरंकुशता पर कोई प्रतिबन्ध न था। गत १७५ वर्षों से राजाओं ने स्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाना भी बन्द करा दिया था। राजा पर साधारण नियन्त्रण एकमात्र पार्लमाँ का था। यह १३ न्यायाधीशों की एक सभा थी। इन न्यायाधीशों ने कुलीनता को खरीदा था तथा अब ये वंशानुगत हो गए थे। इनका प्रधान कार्य न्याय करना था। नये कानूनों को रजिस्टर में अंकित करने का कार्य भी इन्हीं का था। परन्तु फिर भी राजा के अधिकार असीमित थे। भाषण तथा प्रेस पर कठोर नियन्त्रण था। जनता को किसी प्रकार के मौलिक अधिकार (Habeaus Corpus) न थे। दण्ड-विधान बहुत कठोर था। साधारण अपराधों के लिए बहुत कठोर दण्ड दिये जाते थे। छोटे-छोटे कार्यों के कार्यान्वित करने के लिये राजा की परिषद् से आज्ञा ली जाती थी। कार्य की अधिकता तथा मंत्रियों की लापरवाही के कारण ये आज्ञायें बहुत देर से प्राप्त हो पाती थीं। इस प्रकार फ्रांस में राजसत्ता पूर्णतया स्वेच्छचारी थी।

---

1. 'The duty of its members is to hear, receive, approve and perform what should be commanded of them by the king.'

2. L' etat C' est Moi.

सेना—फ्रांस की सेना भी अव्यवस्थित थी। सेना में बहुत से अपराधी तथा समाज के निम्नतम वर्ग के व्यक्ति भरती कर लिये जाते थे। इसको युद्ध-कला का कोई ज्ञान नहीं होता था। सैनिकों का वेतन बहुत कम था। उनको खाने के लिये भी अच्छा भोजन नहीं दिया जाता था। सैनिक उन्नति करके सैनिक पदाधिकारी नहीं बन पाते थे, क्योंकि राजा अपने कृपापात्रों को सेना के उच्च पदों पर नियुक्त कर देते थे। ये व्यक्ति प्राय: अयोग्य तथा विलासी होते थे। सैनिक इनका सम्मान नहीं करते थे। इस प्रकार फ्रांस की सेना भी अपने सम्राटों से असन्तुष्ट थी।

कानून—देश में कोई एक कानून नहीं था। समस्त देश में लगभग ४०० प्रकार के कानून प्रचलित थे। इससे न्याय ठीक नहीं हो पाता था। देश में कई प्रकार के न्यायालय थे - उदाहरण के लिये, राजा का न्यायालय, सामन्तों के न्यायालय, सैनिक न्यायालय, चर्च के न्यायालय तथा आर्थिक न्यायालय। ऐसी अवस्था में यह निर्णय करना बहुत कठिन होता था कि कौनसा मुकदमा किस न्यायालय में भेजा जाय। Nobility of the robe नामक न्यायाधीश न्यायाधीश का पद खरीद कर बने थे। ये जनता पर मनमाना जुर्माना करते थे। फ्रांस में इनकी संख्या बहुत अधिक थी। कुलीन बहुत से दण्डों से मुक्त थे। यदि उनको कभी दण्ड दिया जाता था तो कारागार में उनको विशेष सुविधाएं प्रदान की जाती थीं। वहां वे अपने नौकर भी साथ ले जाते थे। जनसाधारण को कठोर दण्ड दिए जाते थे। मुद्रित पत्रों द्वारा राजा तथा उसके कृपापात्र, जिस व्यक्ति को चाहें दण्ड दिला सकते थे।

आर्थिक अवस्था—फ्रांस की आर्थिक अवस्था उत्तरोत्तर खराब हो रही थी। आय व्यय का लेखा ठीक प्रकार नहीं रक्खा जाता था और न कोई बजट ही बनाया जाता था। राजा मन चाहे ढंग से व्यय करता था। फ्रांस की आर्थिक अव्यवस्था ही बहुत कुछ सीमा तक बढते हुए असंतोष का कारण थी। देश के सबसे अधिक सम्पन्न वर्ग में कुलीन तथा पादरी थे। परन्तु फिर भी ये लोग करों से मुक्त थे। देश के सम्पूर्ण धन पर इन्होंने अधिकार कर रक्खा था और इसको ये विलासिता में व्यय करते थे। मध्यम श्रेणी के लोगों की आर्थिक अवस्था भी अच्छी थी, परन्तु सबसे खराब अवस्था कृषकों की थी। उन पर सबसे अधिक कर थे। उनको अपनी आय का ८० प्रतिशत भाग करों के रूप में देना पड़ता था। इनको सामन्तों के खेतों में बेगार भी करनी पड़ती थी।

कर प्रणाली—फ्रांस की कर-प्रणाली सर्वथा अन्यायकारी तथा अव्यावहारिक थी। इसके अनुसार सामन्तों तथा पादरियों पर सम्पन्न होते हुये भी कोई कर न था। परन्तु समाज के विपन्न वर्ग—कृषकों—पर बहुत अधिक कर थे। फ्रांस में कृषकों को प्राय: निम्नलिखित कर देने पड़ते थे—

(१) अर्द्धदास कृषक प्रत्येक सप्ताह में तीन दिन तक अपने मालिकों के खेतों पर बेगार करते थे। इसके अतिरिक्त वे उनको अनाज तथा मुर्गी आदि भी देते थे।

(२) स्वतन्त्र किसानों को इन सेवाओं के बदले में धन देना होता था जो Quit Money कहलाता था। कृषक की मृत्यु पर उसके उत्तराधिकारी को यह कर दुगुना देना होता था। यदि कृषक अपनी जमीन बेचता था तो उसको उसके मूल्य का $\frac{1}{6}$ भाग जमींदार को देना होता था।

(३) चर्च को कृषक अपनी आय का दशांश (Tithe) देते थे।

(४) भूमिकर (Taille) कृषकों से उनकी आर्थिक अवस्था के अनुसार लिया जाता था। अनिश्चित टैक्स होने के कारण ठेकेदार बहुत अधिक टैक्स वसूल करते थे।

(५) इसके अतिरिक्त किसानों पर आय-कर (Income Tax) भी था। यह उनकी आय का $\frac{1}{2}$ भाग होता था।

(६) किसानों से पोल टैक्स (Poll Tax) नामक एक साधारण कर भी लिया जाता था।

(७) कृषकों को नमक पर भी टैक्स देना होता था। यह Gabelle Tax कहलाता था। नमक का एकाधिकार एक कम्पनी का था। प्रत्येक व्यक्ति को वर्ष भर में ७ पौंड नमक खरीदना पड़ता था। पशुओं के खिलाने के लिये उन्हें अलग नमक खरीदना पड़ता था। कम्पनी बहुत ऊंचे दाम पर नमक बेचती थी। जो लोग नियमित मात्रा में नमक नहीं खरीदते थे उनको दण्ड दिया जाता था। नमक के गैरकानूनी व्यापार में प्रति वर्ष तीस हजार व्यक्तियों को दण्ड दिया जाता था तथा ५०० को मृत्यु-दण्ड दिया जाता था।

(८) सड़कों की मरम्मत के लिये भी कृषकों को अपनी सेवाएं अर्पित करनी होती थी। इस परिश्रम को Corvee कहते थे।

(९) युद्ध आदि अवसरों पर भी किसानों को राजा को टैक्स देने होते थे।

कर वसूल करने के लिए सरकारी कर्मचारियों की व्यवस्था न थी। इसके लिये ठेकेदार नियुक्त किये जाते थे। ये सरकार को तो एक निश्चित रकम देते थे तथा स्वयं मनचाहा धन वसूल करते थे। इस अव्यवस्था पर नियन्त्रण रखने के लिये सरकार ने कोई कदम नहीं उठाया। इस प्रकार कृषकों को ८० प्रतिशत धन करों के रूप में सरकार, सामन्त तथा चर्च को देना होता था। शेष २० प्रतिशत धन में ही वे अपने परिवार का पालन-पोषण करते थे। इससे उनकी आर्थिक अवस्था बहुत खराब थी। अन्न के अभाव में वे गाजर, मूली तथा शलजम आदि खाकर अपना पेट भरा करते थे।

व्यापार तथा उद्योग धन्धों की अवनति—इस समय फ्रांस का व्यापार भी अवनत दशा में था। देश में स्थान-स्थान पर चुँगी लगती थी। देश में कई प्रकार की माप तथा तोल की प्रणालियाँ प्रचलित थीं। कारीगरों को श्रेणियों (Guilds) के अन्तर्गत बहुत कम वेतन मिलता था। परन्तु स्वामियों के कठोर

प्रतिबन्धों के कारण वे उन्हें छोड़ भी नहीं सकते थे। इससे उत्पादन अधिक नहीं हो पाता था और राष्ट्रीय आय बहुत कम थी।

राजा की विलासिता—बूर्बां वंश के राजा बड़े विलासी थे। लुई १४वें ने पेरिस से १२ मील की दूरी पर वर्साय में ३० करोड़ रुपये व्यय करके एक भव्य भवन बनवाया था और इस भवन के समीप एक नगर की स्थापना की थी। इसमें १८ हजार व्यक्ति रहते थे। इनमें दो हजार दरबारी तथा सामन्त थे। शेष १६ हजार उसके नौकर-चाकर थे। यहां ये लोग विलासिता में धन को पानी की तरह बहाते थे। राजमहल के नौकरों को वेतन देने में ७५ हजार रुपया वार्षिक व्यय होता था। भोजनालय का वार्षिक व्यय ४५ हजार रुपया था। प्रधान रानी की सेवा में ही एक मात्र ५०० दासियां रहती थीं।

लुई चौदहवें ने कई युद्धों में भाग लेकर फ्रांस की आर्थिक दशा को बिगाड़ दिया था। उसका उत्तराधिकारी लुई पन्द्रहवां ऋण लेकर कार्य चलाता रहा। लुई १६वें ने अमेरिका के स्वतन्त्रता-संग्राम में भाग लिया और अपने पुराने शत्रु इंग्लैंड को नीचा दिखाया, परन्तु इसका परिणाम अच्छा नहीं रहा। सरकार की आर्थिक अवस्था बहुत खराब हो गई। धीरे-धीरे फ्रांस की सरकार पर साठ करोड़ डालर का ऋण हो गया और अन्त में किसी भी ब्याज की दर पर ऋण मिलना असम्भव हो गया। दूसरे शब्दों में सरकार दिवालिया हो गई। ऐसी विषम स्थिति में भी रानी अन्तायनेत अपनी विलासिता में कमी करने को तैयार न थी तथा कुलीन और पादरी अपने ऊपर कर लगवाने के पक्ष में न थे। इस प्रकार १७८९ में पूर्व फ्रांस की आर्थिक अवस्था बहुत खराब थी। अधिकांश विद्वानों का यह मत है कि क्रांति के विस्फोट का प्रमुख कारण देश की आर्थिक अवस्था खराब हो जाना ही था। अन्त में यही फ्रांसीसी क्रान्ति का महत्वपूर्ण कारण बना।

सामाजिक अवस्था—१८वीं शताब्दी में फ्रांस की सामाजिक अवस्था बहुत खराब थी। फ्रांस का समाज उस समय निम्नलिखित वर्गों में विभाजित था—

(१) **कुलीन वर्ग**—राजा तथा उसके परिवार के पश्चात् कुलीनों का स्थान था। इन्होंने राज्य की अधिकांश भूमि तथा पदों पर अधिकार कर रक्खा था। देश की समस्त सम्पत्ति इनके हाथ में थी। उसको ये विलासिता में व्यतीत किया करते थे। ये बड़े-बड़े नगरों में बड़े-बड़े भवनों में रहा करते थे। ये किसानों से मनचाहा बेगार लेते थे। इनके जानवर किसानों के खेतों में चरा करते थे। सम्राट् की ओर से भी इनको अनेक प्रकार के पुरस्कार मिलते रहते थे। ये करों से मुक्त थे। इनके अधिकारी किसानों से मन चाहा कर वसूल करते थे। बहुत से कुलीन आराम से राजा के दरबार में रहा करते थे तथा समय-समय पर होने वाले षड्यन्त्रों में भाग लिया करते थे। बहुत से व्यक्तियों ने राजा की कृपा से कुलीनता

खरीद ली थी। अधिकाँश न्यायाधीश इसी प्रकार के कुलीन थे। समाज में कुछ ऐसे भी कुलीन थे जिनकी आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी। ये ग्रामों में निर्धनों की भांति रहते थे। बहुत से कुलीनों की आर्थिक अवस्था बहुत खराब हो गई थी, क्योंकि वे शराब पीने, जुआ खेलने तथा आमोद-प्रमोद के बहुत शौकीन थे। सम्पत्ति के विभाजन के फलस्वरूप भी इनकी आर्थिक अवस्था खराब हो रही थी। कुलीन की मृत्यु पर उसकी सम्पत्ति का $\frac{2}{3}$ भाग उसके बड़ें लड़के को दिया जाता था। शेष $\frac{1}{3}$ भाग उसके अन्य छोटे लड़कों में बांट दिया जाता था।

(२) **पादरी वर्ग**—कुलीनों के पश्चात् समाज में पादरियों का स्थान था। ये भी दो वर्गों में विभाजित थे—(i) बड़े पादरी तथा (ii) छोटे पादरी।

(i) **बड़े पादरी**—ये बड़ी विलासिता से रहते थे। इनमें आर्क बिशप, बिशप, एबट तथा कार्डीनल आदि की गणना होती थी। चर्च के समस्त पदों पर इन्होंने अधिकार कर रक्खा था। इनकी वार्षिक आय ३० करोड़ रुपये थी। इनकी अलग सरकार तथा न्यायालय थे। ये अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि बतलाकर राजा को भी धमकाया करते थे। कुलीन वर्ग के लोगों तथा पादरियों ने फ्रांस की $\frac{1}{3}$ भूमि पर अधिकार कर रक्खा था। ये भी करों से मुक्त थे। इनमें से अधिकांश बड़े पादरी कुछ भी कार्य नहीं करते थे, फिर भी उनकी आय बहुत अधिक थी। कार्डिनल द रोओं (Cardinal de Rohan) नामक एक ऐसा ही पादरी था, जो कुछ भी कार्य नहीं करता था और फिर भी उसकी आय २५ लाख डालर वार्षिक थी। इनमें से अधिकाँश बड़े पादरी बड़े विलासी थे। वे ईश्वर के अस्तित्व तक में विश्वास नहीं रखते थे। एक बार लुई सोलहवें ने पेरिस के आर्क बिशप की नियुक्ति करते समय कहा था—'कम से कम पेरिस में तो हमको एक ऐसा आर्क बिशप रखना है, जो ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास रखता हो।'[1]

(ii) **छोटे पादरी**—फ्रांस में इनकी संख्या एक लाख से भी अधिक थी। इनकी आर्थिक अवस्था बहुत खराब थी। इनको केवल २६ पौण्ड वार्षिक वजीफा मिलता था। ये बहुत साधारण जीवन व्यतीत करते थे। चर्च के समस्त धार्मिक कार्यों की पूर्ति यही करते थे। ये ग्राम-वासियों के बच्चों को पढ़ाते थे तथा बीमारों को दवा देते थे। समाज में इनकी बहुत प्रतिष्ठा थी। बड़े पादरियों की विलासिता तथा समृद्धता इनको कांटे की भांति चुभती थी। अतः क्रांति के समय इन्होंने जनसाधारण का साथ दिया।

(३) **मध्यम वर्ग** (Bourgeoisie)—इस बीच फ्रांस में मध्यम वर्ग का उदय हुआ। इनका स्थान समाज में कुलीनों तथा पादरियों से कुछ निम्न था। बैंकों, उद्योग-धन्धों तथा कल-कारखानों पर इनका अधिकार था। डाक्टर, वकील, प्रोफेसर तथा

1. "Let us at least have an Arch bishop of Paris who believes in God.'

लेखक आदि भी इसी श्रेणी के अन्तर्गत थे। इस प्रकार मस्तिष्क तथा धन दोनों ही इनके पास था। कभी-कभी ये लोग सामन्तों को ऋण भी दिया करते थे। फिर भी इनको समाज में कुलीनों जैसी प्रतिष्ठा प्राप्त न थी। अतः ये लोग असन्तुष्ट थे। क्रांति के संचालन में इन लोगों ने सबसे अधिक भाग लिया था।

(४) **साधारण लोग** (Third Estate)—इस वर्ग के अन्तर्गत किसान, मजदूर, दास तथा छोटे दूकानदार आते थे। समाज में इनकी संख्या सबसे अधिक थी। ये कुल जनसंख्या के ८० से ९० प्रतिशत तक थे। ये लोग प्रातः काल से रात्रि तक कार्य किया करते थे। फिर भी इनको तथा इनके पशुओं को भर पेट भोजन नहीं मिलता था। इनके पास तन ढकने के लिए वस्त्रों का भी अभाव था। टूटी-फूटी झोपड़ियां ही इनके निवास-स्थान थे। फिर भी इन लोगों पर बहुत अधिक कर थे। इस विषय में फ्रांस में एक जनश्रुति प्रचलित थी कि "कुलीन लोग युद्ध किया करते थे, पादरी प्रार्थना करते थे तथा जनसाधारण टैक्स दिया करता था।"[1] इन लोगों की आय का ८० प्रतिशत से लेकर ८५ प्रतिशत करों के रूप में समाप्त हो जाता था।

इनको कुलीनों के खेतों पर बेगार भी करनी होती थी। इनको अपना आटा जमींदार की चक्की पर पिसवाना होता था तथा अपनी रोटियां जमींदार के तन्दूर पर ही बनवानी होती थीं। इन्हें अपनी शराब भी जमींदार के कारखाने में ही निकलवानी पड़ती थी। इन कार्यों के लिये इन्हें कई मील दूर जमींदार के पास जाना होता था और उन कार्यों के बदले इनको पर्याप्त शुल्क देना होता था। जमींदारों के पशु कृषकों की खड़ी फसल को नष्ट करते रहते थे; परन्तु किसान उनको अपने खेत से बाहर नहीं निकाल सकते थे। समय-समय पर इनको जमीदार को नजराने भी देने होते थे।

इस प्रकार फ्रांस के समाज में जनता को समानता के अधिकार प्राप्त न थे। लोगों को व्यक्तिगत तथा धार्मिक स्वतन्त्रता भी प्राप्त न थी। राजा के कृपापात्र जनता को मन माने ढंग से गिरफ्तार कर सजा दिला सकते थे। लोगों को भाषण देने तथा सभाएं करने का भी अधिकार न था। प्रेस पर कठोर नियन्त्रण था।

बौद्धिक क्रान्ति—इसी समय फ्रांस में अनेक दार्शनिक, लेखक और विद्वान, उत्पन्न हुए, जिन्होंने सामाजिक तथा राजनीतिक कुरीतियों की कटु आलोचना की। इनमें माण्टेस्क्यू, वाल्टेयर, रूसो, दिदरो, क्विस्ने आदि प्रमुख हैं। इनके द्वारा की गई बौद्धिक क्रान्ति का उल्लेख आगामी अध्याय में किया जायेगा।

---

1. "The nobles fight, the clergy pray and the people pay."

प्रश्न (बी. ए.)

१. प्राचीन शासन (Ancient Regime) की मुख्य विशेषताएं क्या थीं ? क्या आप समझते हैं कि १७८९ की क्रान्ति अनिवार्य थी ?

२. १७८९ की फ्रांसीसी क्रान्ति के पूर्व वहां की जनता को 'क्या-क्या कष्ट थे ?

३. १७८९ की क्रान्ति के पूर्व फ्रांस की राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति का वर्णन कीजिये ।

४. क्या यह कथन सत्य है कि फ्रांस की आर्थिक स्थिति क्रान्ति कराने के लिए सबसे अधिक उत्तरदायी थी ? अपना विचार प्रकट करिए ।

५. निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिए—
(अ) लुई सोलहवाँ, (ब) तूर्जो, (स) प्रसिद्ध पुरुषों की सभा, (द) स्टेट्स जनरल ।

Questions (M. A.)

1. Describe the economic condition of France under the Ancient Regime. Do you consider it to be the most important cause of the French Revolution ?

2. Sketch the condition of society in France on the eve of the Revolution. Do the facts warrant the conclusion that the Revolution was inevitable ?

3. 'There are no gradations of wealth in France, you pass at once from profusion to penury'. Comment.

बौद्धिक क्रान्ति
(Intellectual Revolution)

बौद्धिक क्रान्ति का तात्पर्य । तत्कालीन मत । प्रमुख दार्शनिक, माण्टेस्क्यू और वाल्टेयर तथा उनके विचार । रूसो, उसका व्यक्तित्व तथा उसके क्रान्तिकारी विचार । फांसीसी क्रान्ति पर उसका प्रभाव । अन्य विचारक तथा उनकी देन ।

किसी विद्वान ने सत्य ही कहा है कि फ्रांस में राजक्रान्ति के पूर्व एक बौद्धिक क्रान्ति हुई थी ।[1] १८वीं शताब्दी आलोचना की शताब्दी कहलाती है । इसमें अनेक लेखक तथा दार्शनिक हुये जिन्होंने सोई हुई जनता को जगाया । इनके लेखों से मध्यम वर्ग की जनता सबसे अधिक प्रभावित हुई । फ्रांस के अधिकांश मनुष्य जिन्होंने क्रान्ति में भाग लिया था, इसी वर्ग के थे । कुछ विद्वानों का मत है कि यदि फ्राँस में बौद्धिक क्रान्ति न होती तो १७८९ की राजनीतिक क्रान्ति भी न होती और यदि होती भी तो बहुत साधारण रूप में तथा शीघ्र ही उसका दमन कर दिया जाता । दार्शनिकों ने पर्याप्त समय तक जनता में स्वतन्त्रता, समानता तथा भ्रातृभाव की भावना उत्पन्न की । इस जागरण के परिणामस्वरूप देश में अनेक नेताओं का उदय हुआ, जिन्होंने १७८९ की फ्राँसीसी क्रान्ति का नेतृत्व किया । दार्शनिकों ने पुरातन संस्थाओं की कटु आलोचना की । उन्होंने जनता को तर्क के आधार पर कार्य करने की प्रेरणा दी ।

इस जागृति से क्रान्ति अनिवार्य हो गई । लुई सोलहवें का शासन अपने पूर्वजों से खराब नहीं था । उसने शासन में कुछ सुधार भी किये थे । इससे उसका शासन बहुत सी बातों में अपने पूर्वजों से उत्तम था । परन्तु फिर भी क्रान्ति उसके पूर्वजों के समय में न होकर उसके समय में हुई । इसका प्रमुख कारण यही था कि फ्राँस की जनता जाग्रत न होने के कारण भूतकाल में प्रत्येक असुविधा तथा अत्याचार को सहन करती रही । परन्तु लुई सोलहवें के आते-आते दार्शनिकों के प्रचार-कार्य से जनता उन असुविधाओं तथा अत्याचारों के विरुद्ध संगठित हो गई थी ।

इस समय फ्रांस में अनेक मतों का प्रचार हुआ । इनमें अग्रलिखित विशेष उल्लेखनीय हैं—

1. The French Revolution was preceded by an Intellectual Revolution.

रूढ़िवादी (Ideological dogmatism)—अनेक व्यक्ति कतिपय सिद्धान्तों के आधार पर ही नवीन व्यवस्था लाना चाहते थे । ये कट्टरपन्थी, रूढ़िवादी सिद्धान्त-वादी थे । ये अपने सिद्धान्तों में किसी प्रकार का हेर-फेर न करना चाहते थे । इनके कारण फ्राँसीसी क्रान्ति सिद्धान्तवादी तथा रूढ़िवादी हो गई । इससे इसके बहुत से सिद्धान्त समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान के विरुद्ध थे ।

प्राचीनयुगवादी (Classcim)—ये लोग फ्रांस की रचना एथेन्स, स्पार्टा और रोम के पुरातन आदर्शों के आधार पर करना चाहते थे ।

सार्वभौमिकतावादी (Cosmopolitanism)—इस मत के अनुयायी फ्रांसीसी परम्पराओं के स्थान पर विदेशी परम्पराओं के अपनाने के भी पक्ष में थे ।

मानवतावादी (Humanitarianism)—मानवतावाद के समर्थक मनुष्य के सहज गुणों में बहुत अधिक साम्य देखते थे । ये लोग राजतन्त्र के स्थान पर गणतन्त्र की स्थापना करना चाहते थे ।

चर्च-विरोधी (Anti-Christianism)—ये लोग चर्च के विरोधी थे । वाल्टेयर ने चर्च को कुविख्यात वस्तु (Infamous thing) कहा था । मोन्टेस्क्यू भी चर्च के प्रति उदासीन था । हालवैश घोर नास्तिक था ।

दार्शनिकतावाद (Philosophism)—इस समय फ्रांस में अनेक दार्शनिकों ने जन्म लिया । इन्होंने फ्रांसीसी समाज की असुविधाओं और संकटों का बड़ी कुशलता से चित्रण किया । जनता में पहले से ही असन्तोष मौजूद था । इसलिये उसने इनके विचारों का स्वागत किया ।[1] टामसन आदि विद्वानों का मत है कि ये दार्शनिक क्रान्ति के विचारों के जन्मदाता नहीं थे । प्रायः सभी दार्शनिक कुलीन वर्ग के थे । राजतन्त्र के विरुद्ध क्रान्ति करने का उन्होंने कभी विचार प्रकट नहीं किया । यदि वे जीवित रहते तो उन्हें यह देखकर आश्चर्य होता कि क्रान्ति के लिये उन्हीं के सिद्धान्तों का आश्रय लिया जा रहा है । प्रारम्भ में इन दार्शनिकों के विचारों का विशेष प्रभाव नहीं था । परन्तु क्रान्तिकाल में इनके सिद्धान्तों का बड़ा प्रचार हुआ । उस समय तक अधिकांश दार्शनिकों की मृत्यु हो चुकी थी ।

प्रमुख दार्शनिक

मान्टेस्क्यू (१६८९–१७५५)—इसका जन्म एक कुलीन परिवार में हुआ था । प्रारम्भ में यह एक वकील था । इसने योरप के विभिन्न देशों का भ्रमण किया था । यह क्रान्तिकारी नहीं था; परन्तु कालान्तर में इसके विचारों ने क्रान्ति में बहुत योग दिया । यह कैथोलिक धर्म को मानने वाला था । यह राजा का विरोधी नहीं था; परन्तु उसके दैवी अधिकार का विरोधी था । इसने फ्रांस की प्राचीन संस्थाओं, विशेषकर चर्च की कटु आलोचना की । यह लाॅक से बहुत प्रभा-वित था । इसने इंग्लैंड में रह कर वहां के संविधान का गम्भीर अध्ययन किया

1. 'The seed sown by these remarkable writers fell upon fruitful soil.' —Mallet.

था और उससे यह बहुत प्रभावित हुआ था, क्योंकि उसमें इसने राजतन्त्र, कुलीन-तन्त्र तथा प्रजातन्त्र तीनों शासन-तन्त्रों के अच्छे अंशों का सम्मिश्रण देखा था। इसने २० वर्ष के कठोर परिश्रम के पश्चात् 'The Spirit of the Laws' नामक एक पुस्तक की रचना की। इसमें इसने वैधानिक समस्याओं का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। यह पुस्तक बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुई और १८ महीने में ही इसके २२ संस्करण समाप्त हो गए। इसने शक्ति के पार्थक्य के सिद्धान्त (Theory of Separation of Powers) तथा अवरोध और संतुलन (Checks and Balances) के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। यह वैधानिक शासन का समर्थक था। इसका मत था कि राज्य की तीनों शक्तियां, व्यवस्थापिका (Legislative), कार्यकारिणी (Executive) तथा न्यायपालिका (Judiciary) पृथक्-पृथक् होनी चाहिए। प्रत्येक विभाग को अपने कार्य-क्षेत्र तक ही सीमित रहना चाहिए। यदि एक ही व्यक्ति अथवा व्यक्ति-समूह को ये तीनों शक्तियां दे दी जायेंगी तो कभी भी न्याय नहीं हो सकता। इस प्रकार मान्टेस्क्यू के विचार बड़े विकसित थे। सन् १७९१ के संविधान बनाते समय इनका ध्यान रक्खा गया था।

वाल्टेयर (१६९४–१७७८)—वाल्टेयर का जन्म फ्रांस के मध्यम वर्ग में हुआ था। उसको अपने व्यंगात्मक लेखों के कारण कई बार कारागार में जाना पड़ा था। उसको मध्यम वर्ग तथा निम्न वर्ग की कठिनाइयों का पूरा पूरा ज्ञान था। सम्भवतः वह समस्त लेखकों में सबसे अधिक प्रभावशाली था। वह बहुमुखी प्रतिभा का व्यक्ति था। वह कवि, लेखक, इतिहासकार, निबन्धकार, व्यंगकार, नाटककार तथा दार्शनिक सभी कुछ था। रोज के शब्दों में वह 'फ्रांसीसी विचारों का पूर्णतः दर्पण' था।[1] कैथोलिक चर्च का वह कट्टर आलोचक था। चर्च को वह कुख्यात वस्तु (Infamous Thing) कहता था। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह नास्तिक था; परन्तु वह चर्च के धार्मिक आडम्बरों का विरोधी था। उसका सिद्धान्त था कि 'ईश्वर में विश्वास करो तथा अच्छे आदमी बनो।[2] वह कहा करता था कि 'गिर्जाघरों में तो मूर्खों को ही शाँति मिलती है।' इस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में उसके विचार क्रान्तिकारी थे। इनसे धार्मिक अंधविश्वासों की जड़ें हिल गईं। पादरियों ने भी दृढ़तापूर्वक उसका विरोध किया, परन्तु परिवर्तित परिस्थितियों में वे उसका कुछ नहीं बिगाड़ सके। वाल्टेयर का मत था कि मनुष्य-जीवन कुछ स्थिर, सार्वभौमिक तथा शाश्वत सिद्धान्तों के अनुसार चलता है।[3] वह नए युग की स्थापना करने के लिए प्राचीन समय के नाम को ही पृथ्वी से मिटाना चाहता था।

वाल्टेयर ने अनेक देशों का भ्रमण किया था। इंग्लैण्ड में यह तीन वर्ष तक रहा था। फ्रेडरिक महान् तथा जारीना कैथरीन का भी यह अतिथि रहा था।

---

1. 'Completest mirror of the French Thought.'
2. 'Worship God and be a good man.'
3. 'All beings without exception are governed by invariable laws.'

इसके अतिरिक्त इसने स्विट्जरलैण्ड आदि देशों को यात्रा भी की थी। इसकी गणना यूरोप के सम्मानित व्यक्तियों में होती थी। यह अंग्रेजी न्याय-विधान का बड़ा प्रशंसक था, क्योंकि वहाँ न्याय के समय किसी के साथ पक्षपात नहीं किया जाता था। अंग्रेजी विधान के आगे फ्राँसीसी विधान की यह कटु आलोचना करता था। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का यह कट्टर समर्थक था। एक बार इसने एक व्यक्ति से कहा था—'यद्यपि आपकी बात से मैं सहमत नहीं हूँ, परन्तु आपके ऐसा कहने के अधिकार की रक्षा के लिए मैं अपने प्राण भी दे सकता हूँ।'[1] फ्रांस का मध्यम वर्ग वाल्टेयर के लेखों से बहुत प्रभावित हुआ था। समस्त योरप उसको आदर की दृष्टि से देखता था।

रूसो (१७१२—७८)—यह भी फ्रांस का रहने वाला था; परन्तु इसका जन्म १७१२ में जिनेवा में हुआ था। वहां इसका पिता घड़ीसाज का कार्य करता था। इसके पिता का चरित्र अच्छा नहीं था। रूसो पर भी उसके चरित्र का कुप्रभाव पड़ा था। इसने नियमित रूप से किसी विद्यालय में शिक्षा नहीं पाई थी। यह जीवन भर धक्के खाता तथा कष्ट उठाता फिरा था। इसने जिनेवा, लन्दन, पेरिस, वियना तथा ट्यूरिन आदि अनेक नगरों की यात्रा की थी। इसका व्यक्तिगत जीवन बड़ा भ्रष्ट था। यह पक्का जुआरी था। यह चरित्रहीन, बेईमान तथा जीवन की यात्रा में असफल व्यक्ति था। अपने जीवन के अन्तिम चरण में यह अर्द्ध विक्षिप्त-सा हो गया था। इसने अपनी आजीविका के उपार्जन के लिए अध्यापक, सेक्रेटरी तथा फीते एवं गोटे आदि बनाने के कार्य किए थे। परन्तु इसको किसी भी कार्य में सफलता नहीं मिली। यह अपने बच्चों तक का निर्वाह न कर सका। अतः इसके बच्चों का पालन-पोषण अनाथालय में हुआ था। डी० एलम्बर्ट नामक व्यक्ति इसका घोर विरोधी था। उसने लिखा है 'यह एक भयंकर जानवर के समान है। अतः इसको पिंजड़े में बन्द करके रखना चाहिए। अपने जीवन के अन्त, में अपनी बुराइयों को स्वीकार करते हुए उसने 'Confession' नामक पुस्तक लिखी थी। इस पुस्तक का अवलोकन करने के पश्चात् जानसन (Johnson) नामक विद्वान् ने लिखा था—'वह इतना बुरा आदमी था कि उसे पास के ही पेड़ पर फांसी लगा देनी चाहिए थी। फांसीघर तक भी जाने की आवश्यकता नहीं थी। उसमें वह सब बुराइयाँ थीं, जो एक भले आदमी में नहीं होनी चाहिएं।' इतना होते हुए भी फ्रांसीसी क्रान्ति पर सबसे अधिक प्रभाव रूसो का पड़ा। रूसो के महत्व को स्वीकार करते हुए एक बार नेपोलियन महान् ने कहा था—'यदि रूसो का जन्म न हुआ होता तो फ्रांसीसी क्रान्ति भी नहीं हुई होती। लुई सोलहवें तथा रानी अन्तायनेत पर भी इसका प्रभाव पड़ा था।

---

1. 'I disagree with what you say, but I shall passionately defend to the end your right to say it.'

समस्त दार्शनिकों में रूसो का स्थान महत्वपूर्ण है। फ्रांसीसी राजक्रान्ति पर इसका सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है। सेन्ट जस्ट तथा राब्सपियर अपने को रूसो (Rousseau) का अनुयायी बतलाते हैं। रूसो भावना-प्रधान था। इससे जनसाधारण पर उसका बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। मान्टेस्क्यू (Montesqueau) तथा वाल्टेयर (Voltaire) ने तो जनता के मस्तिष्क पर प्रभाव डाला, परन्तु रूसो ने उसके हृदय पर। इससे उसके विचारों का बहुत प्रचार हुआ, यद्यपि उसके विचारों में समाजशास्त्र, मनोविज्ञान तथा इतिहास के दृष्टिकोण से अनेक दोष थे।[1] इसी से उसके अनुयायी सेन्ट जस्ट तथा राब्सपियर ने रक्तपातपूर्ण तथा आतंकपूर्ण कार्य किए।

रूसो प्रकृति का पुजारी था। नीले आकाश तथा लहराते खेतों को देखकर उसका हृदय झूम उठता था। प्राकृतिक दृश्यों को देखकर वह बहुत प्रसन्न होता था। रूसो असमानता का विरोधी था। वह कहता था कि पृथ्वी किसी एक मनुष्य की नहीं है। भगवान् ने उसको सबके लिए बनाया है। 'Discourse on the Origin of Inequality' नामक पुस्तक में उसने आधुनिक सभ्यता की असमानता, बेईमानी, धोखा तथा शोषण का विश्लेषण किया है। उसके मतानुसार आधुनिक सभ्य मनुष्य की अपेक्षा प्राकृतिक मनुष्य अच्छा था। अतः उसका नारा था प्रकृति की शरण लो।[2]

रूसो की सबसे प्रख्यात पुस्तक सामाजिक समझौता (Social Contract) है। इसकी रचना उसने १७६१ में की थी। यह लॉक के दर्शन पर आधारित है। इस पुस्तक का प्रारम्भ निम्नलिखित शब्दों से हुआ है—'मनुष्य स्वतन्त्र उत्पन्न हुआ था; परन्तु वह सर्वत्र जंजीरों से बंधा हुआ है।'[3] उसके इन विचारों ने फ्रांस में हलचल मचा दी। उसका यह ग्रन्थ क्रान्ति की बाइबिल (Bible of the Revolution) कहलाता है। इस ग्रन्थ में उसने बतलाया है कि प्रारम्भ में मनुष्य प्रकृति (Nature) में रहता था। इस अवस्था में मनुष्य का सामाजिक जीवन बहुत सुखी था। लोग एक दूसरे से प्रेम करते थे। उस समय न कोई किसी का राजा था और न कोई किसी की प्रजा था। सब स्वतन्त्र थे। परन्तु धीरे-धीरे जनसंख्या बढ़ने से यह अवस्था बिगड़ गई और लोगों ने समझौता करके राज्य की स्थापना की। इस प्रकार रूसो ने जनता को महत्व प्रदान किया। समझौते के अनुसार यदि राजा गलत आचरण करे तो जनता को अधिकार है कि वह समझौते को तोड़कर उक्त राजा को पदच्युत कर दे और अपनी इच्छानुसार किसी दूसरे व्यक्ति से समझौता करके उसको अपना राजा बना ले। इस प्रकार रूसो ने निरंकुश राजतन्त्र पर भीषण प्रहार किया। इस प्रकार रूसो ने राजा के दैवी अधिकार का खण्डन कर सामाजिक समझौते के सिद्धान्त की स्थापना की। रूसो का मत था कि यदि मनुष्य पुनः प्रकृति की शरण में चला जाय

1. 'Rousseau was not a scientific sociologist.' —Roberston.
2. 'Go back to nature.'
3. 'Man is born free and he is everywhere in chains.'

तो वहां वह सुख से रहेगा। वहां वह राजा की निरंकुशता, कानूनों के बन्धनों तथा भयंकर संग्रामों से छूट जायगा।

रूसो आर्थिक विषमता का भी विरोधी था। वह कहता था—'कोई मनुष्य इतना धनी नहीं होना चाहिये कि वह दूसरे को खरीद ले और कोई मनुष्य इतना निर्धन भी नहीं होना चाहिये कि वह अपने को बेच दे।'[1] रूसो ने अपने शिक्षा-सम्बन्धी क्रान्तिकारी विचार अपने उपन्यास Emile में व्यक्त किए हैं। उसने कृत्रिम शिक्षा का विरोध किया। उसके अनुसार बच्चों को उनकी रुचि के अनुसार शिक्षा दी जाय। उनको ऐसी शिक्षा दी जाय जो बड़े होकर उनके काम आये, न कि ऐसी कि बड़े होने पर वे उसको भूल जायें। उसने लैटिन तथा ग्रीक आदि प्राचीन भाषाओं के अध्ययन का विरोध किया।

इस प्रकार रूसो के विचारों का प्रसार दूर दूर तक हो गया। काण्ट, डैविड, ह्यूम तथा पेन जैसे प्रख्यात विद्वान् भी उससे प्रभावित हो गए। लुई सोलहवें की रानी अन्तायनेत भी उससे प्रभावित हुई। उसने प्राकृतिक वातावरण में अपने लिए एक छोटा सा बंगला बनवाया था तथा ग्वालिन का अभिनय किया था। उसकी दासियां तालाबों में मछलियां पकड़ने जाने लगी थीं। इस प्रकार प्रत्येक वर्ग के मनुष्य रूसो से प्रभावित हुए।

दिदरो (१७१३–८४)—इसने समस्त पुरातन संस्थाओं का विरोध किया। यह कहा करता था कि निरंकुश राजाओं और पादरियों ने संसार में सबसे अधिक कटुता उत्पन्न की है। इसने अनेक विद्वानों का सहयोग प्राप्त कर विश्वकोष (Encyclopedia) का सम्पादन कराया। इसका उद्देश्य जनता के सम्मुख सम्पूर्ण ज्ञान प्रस्तुत करना था। यह कहा करता था कि सत्य ज्ञान से सभी दोषों का निराकरण तथा सुख की वृद्धि हो सकती है। सन् १७५१ से १७७२ तक विश्वकोष के १७ अंक प्रकाशित हुए। इनमें इसने अपने समय के प्रख्यात विद्वानों द्वारा महत्वपूर्ण विषयों पर लेख लिखवाये। कुछ विषयों पर स्वयं दिदरो ने लेख लिखे थे। उसके सहयोगियों में वाल्टेयर तथा क्वेस्ने के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्होंने इतिहास तथा अर्थशास्त्र पर लेख लिखे। दिदरो ने विशेष रूप से राजा की निरंकुशता, चर्च, सामन्त-प्रथा, दूषित कर-प्रणाली, दास-प्रथा तथा अन्धविश्वास आदि पर विस्तारपूर्वक लिखा। दिदरो के निर्भीक विचारों से सरकार डर गई और उसने उसे कैद में डाल दिया, परन्तु जनता ने उसके विश्वकोष को बहुत पसन्द किया। अतः उसका प्रकाशन बराबर होता रहा। दिदरो के इन कोषों ने समाज में तर्कवाद का खूब प्रसार किया। इस प्रकार दिदरो ने भी क्रान्तिकारी विचारों को प्रोत्साहन दिया।

---

1. 'No citizen should be rich enough to be able to buy another, and none poor enough to be forced to sell himself.'

क्वेसने (Quesney) (१६९४--१७७४)—यह फ्रांस के तत्कालीन अर्थ-शास्त्रियों (Physiocrats) का नेता था। दिदरो के अर्थशास्त्र सम्बन्धी कोष का इसने सम्पादन किया था। लुई १६वें का अर्थसचिव तूर्जो भी इसके सिद्धान्तों का समर्थक था। क्वेसने मध्य वर्ग से सम्बन्धित था। यह फ्रांसीसी दरबार में राजवैद्य के पद पर कार्य करता था। यह राजतन्त्र का विरोधी नहीं था, अपितु राजतन्त्र को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करना चाहता था। इसने कृषि तथा व्यापार को संगठित करने पर जोर दिया। इसके मतानुसार कृषि तथा खानों पर तो कर लगना चाहिए, परन्तु व्यापार पर कर नहीं होना चाहिए। व्यापार तथा उद्योग-धन्धों के सम्बन्ध में वह 'सबको इच्छानुसार कार्य करने दो' (Laissez Faire) की नीति का समर्थक था। उसका नारा था—'Free trade and free industry.'

कांदी लेक (Condillact)—इसने सर्व प्रथम भौतिक दर्शनशास्त्र का प्रतिपादन किया। यह मनुष्यों की भौतिक समृद्धि बढ़ाने के पक्ष में था। उसने कहा था कि "एक फ्रांस जैसा देश जहां २/३ मनुष्य करों से निर्धन किए जा रहे हैं, कभी प्रसन्न नहीं हो सकता। निर्धनता कभी आनन्द का कारण नहीं हो सकती।"[1] वह कहता था कि मनुष्यों के सब कार्यों का आधार स्वार्थ है। वह मनुष्य के सम्पूर्ण ज्ञान का एकमात्र स्रोत अनुभव को मानता था।[2]

हॉलवैश (Hollbach)—यह बहुत अधिक भौतिकवादी था। इसने नास्तिकता का प्रचार किया। यह कहता था कि देवताओं की उत्पत्ति का कारण मूर्खता है।[3] संसार में सुख तथा शान्ति स्थापित करने के लिए यह धर्म तथा राजनीति के पुरातन-वाद का बहिष्कार करना चाहता था। इसका मत था कि मनुष्यों की समस्त कठिनाइयों का कारण धर्म तथा राजनीति है। इन्हीं ने समस्त संसार को दुःख की घाटी में परिवर्तित कर दिया है।[4] मनुष्य इस लिए बुरे हैं कि उनके शासक बुरे हैं।[5]

हेल्वैशियस—इस दार्शनिक के मतानुसार संसार में धर्म तथा सदाचार नामक वस्तुएं नहीं हैं। प्रत्येक मनुष्य नितांत स्वार्थी तथा सुख-लोलुप है।

उपर्युक्त लेखकों में मॉंस्टेस्क्यू, वाल्टेयर तथा रूसो अपने समय के अग्रदूत थे। दिदरो, क्वेसने तथा हालवैश आदि की भी अच्छी प्रतिष्ठा थी। इनके अतिरिक्त

---

1. "A nation like France in which two-third of the people are impoverished by heavy taxes cannot be happy. Poverty is never cheerfull."
2. "Men were, therefore, perfect animals and animals were imperfect men."
3. "Ignorance of natural causes created the gods."
4. "Religious and political errors have changed the universe into a valley of tears."
5. "Men are corrupt because they are almost everywhere b adly governed."

उस समय कुछ अन्य लेखक भी कार्य कर रहे थे । इनमें रेनाल (Raynal) तथा माबली (Mabely) के नाम उल्लेखनीय हैं । एक विद्वान् ने बौद्धिक जागरण के विषय में लिखा है—'दार्शनिकों की सेनाएं समस्त देश में फैल गईं । यहां तक कि प्रत्येक नगर में विचारकों की टुकड़ियां देखी जा सकती थीं । इनका उद्देश्य जनता में जागृति उत्पन्न करना था ।[1] इस बौद्धिक क्रांति में भाग लेने वाले प्रायः सभी दार्शनिक राजतन्त्रवादी थे ।[2] इस प्रकार इन दार्शनिकों ने अपने निर्भीक विचारों द्वारा जनता को जागृत कर दिया । अब फ्रांस पूरी तरह क्रांति के लिये तैयार हो गया । इस समय तनिक सी बात के कारण क्रान्ति हो सकती थी ।

परन्तु उपर्युक्त विचारकों के अनुयायियों ने बहुधा उनके सिद्धान्तों का अन्धानुकरण करने की चेष्टा की । इस प्रकार वे अपने समय की विशेष परिस्थितियों और आवश्यकताओं से दूर होकर वे कोरे सिद्धान्तवादी बन गये । फलतः फ्रांसीसी क्रांति के इन नेताओं ने अनेकानेक अव्यावहारिक कार्य किये । अनेक बार सिद्धान्तों के नाम पर रक्तपात और उपद्रव भी हुये ।

प्रश्न (बी० ए०)

१. 'फ्रांस की राजक्रान्ति के पूर्व एक बौद्धिक क्रान्ति हुई थी ।' इस कथन को स्पष्ट कीजिये ।
२. १८ वीं शताब्दी के दार्शनिकों के मुख्य सामाजिक तथा राजनीतिक विचारों का संक्षेप में वर्णन कीजिये । क्या आप हेजेन के इस मत से सहमत हैं कि ये लोग भी क्रान्ति के कारणों में से एक थे ?
३. फ्रांस की क्रांति में दार्शनिकों के स्थान का वर्णन कीजिये तथा क्रांति की क्रियाओं पर रूसो के व्यावहारिक प्रभाव का महत्व बताइये ।
४. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—(अ) मान्टेस्क्यू, (ख) वाल्टेयर तथा (स) रूसो ।

Questions (M. A.)

1. Discuss carefully how the leading ideas of the French philosophers affected the course of the French Revolution.
2. Discuss the important phases of the intellectual movement which preceded the Revolution. Estimate their effect on the policy of the leaders.

---

1. "The army of philosophers is dispersed throughout the land, where each city has its garrison of thinkers, its centre of enlightenment." —Augustin Cochin.

2. "A democracy ruling through a King, rather than a king ruling over a democracy." —Elton.

४ १७८९ की फ्रांसीसी क्रांति

फ्राँसीसी क्रान्ति के कारण। सामाजिक कारण—अधिकार-युक्त और अधिकार-हीन वर्ग। छोटे और बड़े पादरी। मध्यम वर्ग। प्रशासनीय कारण—निरंकुश शासन, दोषपूर्ण प्रादेशिक विभाजन, सामन्तों की निर्बलता, सैनिक असन्तोष, कानून के दोष, मौलिक अधिकारों का प्रभाव, मुद्रित पत्रों का दुरुपयोग, भ्रष्ट न्यायाधीश, राजा और रानी के चरित्र। आर्थिक कारण—राजाओं की विलासिता और उनके युद्ध, अव्यवस्थित कर-प्रणाली, लुई सोलहवें के प्रयत्न। बौद्धिक कारण—माण्टेस्क्यू वाल्टेयर, रूसो आदि विचारक। अमरीका के स्वतन्त्रता-संग्राम का प्रभाव। इंगलैंड का प्रभाव। फ्राँस में ही क्रान्ति क्यों? फ्रांसीसी क्रान्ति की विशेषतायें।

१७८९ की फ्राँसीसी क्रान्ति

क्रान्ति का अर्थ केवल रक्तपात नहीं है। क्रान्ति का अर्थ है अत्यन्त शीघ्रता से आमूल परिवर्तन। किसी विद्वान् ने यह कहा है कि क्रान्ति उस समय होती है, जब कि उसके पीछे कोई सामाजिक मांग होती है। लार्ड मेकाले के अनुसार क्रान्ति और विप्लव का मुख्य कारण देश की जनता का आगे बढ़ जाना तथा देश के संविधान का वहीं डटे रहना है। विक्टर ह्यूगो के अनुसार 'क्रान्ति ऐसी बिजली है, जो एकाएक छूट पड़ती है, कोंध जाती है, ऐसी चिंगारी है जोकि एकाएक प्रज्ज्वलित हो पड़ती है।' १७८९ की फ्रांसीसी क्रान्ति में ये सभी बातें दृष्टिगोचर होती हैं। यह क्रान्ति कोई आकस्मिक घटना न थी। इसकी पृष्ठभूमि शताब्दियों से तैयार हो रही थी।

मूलतः इस क्रान्ति के निम्नलिखित कारण बतलाये जा सकते हैं—

सामाजिक कारण—तत्कालीन फ्रांस का समाज दो भागों में विभाजित किया जा सकता था—(१) अधिकार-युक्त वर्ग तथा (२) अधिकार-हीन वर्ग। प्रथम वर्ग में सामन्त और पादरी थे। समाज में इनकी संख्या एक प्रतिशत थी। फिर भी इन्होंने देश की सम्पूर्ण आय के ४० प्रतिशत भाग पर अधिकार कर रक्खा था। स्थल-सेना, जल-सेना, वैदेशिक विभाग तथा राज्य के अन्य उच्च पदों पर इन्होंने अधिकार कर रक्खा था। चर्च के समस्त पदों पर बड़े-बड़े पादरियों का अधिकार था। ये भी सामन्तों की भाँति विलासिता का जीवन

व्यतीत करते थे। उदाहरण के लिये, स्ट्रासवर्ग के आर्क बिशप की वार्षिक आय तीन लाख डालर थी। वह एक विशाल महल में रहता था तथा वहां शान के साथ अपना दरबार लगाता था। इसके पास एक सौ अस्सी घोड़े थे। इतने अधिक सम्पन्न होने पर भी ये लोग करों से मुक्त थे। इनको अनेक विशेषाधिकार प्राप्त थे, जिनसे ये लोग किसानों का खूब शोषण करते थे।

दूसरे वर्ग के अन्तर्गत किसान, मजदूर तथा मध्यम वर्ग के मनुष्य थे। इन लोगों को अपनी आय का ८० से लेकर ८५ प्रतिशत भाग राजा, सामन्त तथा चर्च को करों के रूप में देना होता था। इनको बेगार के रूप में सामन्तों के खेतों पर कार्य भी करना होता था। किसान अपने खेतों के चारों ओर बाढ़ भी नहीं लगा सकते थे। इससे सामन्त के पशु स्वच्छन्दतापूर्वक उनके खेतों को नष्ट करते रहते थे। किसान उन पशुओं को अपने खेतों से बाहर नहीं निकाल सकते थे। किसानों को अपना आटा सामन्त की चक्की पर ही पिसवाना पड़ता था। उनको अपनी शराब जमींदार के ही कारखाने में निकलवानी पड़ती थी। इन कार्यों के लिये उन्हें भारी फीस देनी होती थी तथा कई मील दूर जाना होता था। ऐसा कहा जाता है कि इस समय फ्राँस की जनता का ९/१० भाग भूख से मर रहा था और १/१० भाग बदहजमी से।[1]

इस असमानता से किसानों में बहुत अधिक असन्तोष था। यदि जनता के सभी वर्गों पर इसी प्रकार अनेक कर होते तो सम्भवतः इतना अधिक असन्तोष न होता। इस प्रकार यह क्रान्ति असमानता के भी विरुद्ध थी।[2] एक बार नैपोलियन ने कहा था कि यह क्राँति विशेषाधिकार-प्राप्त वर्ग के विरोध में थी।[3]

किसानों की भांति छोटे पादरियों की अवस्था भी अच्छी न थी। वे भी ग्रामों में किसानों के साथ रहकर निर्धनता का जीवन व्यतीत करते थे। उदाहरणार्थ एक प्रिलेट (उच्च पादरी) की वार्षिक आय ४ लाख लिव्र थी जब कि सामान्य पादरी की आय केवल ७०० लिव्र थी। परन्तु इनका चरित्र बड़े पादरियों से कहीं अच्छा था। ये ग्रामों में बच्चों को शिक्षा देते थे तथा बीमारों को औषधि देते थे। इससे जनता में इनका बड़ा सम्मान था। ये लोग भी क्रांन्ति के पक्षपाती थे।[4] स्टेट्स

---

1. 'In France nine-tenth of the population died of hunger and one-tenth of indigestion.'

2. 'The Revolution 1789 was much less a rebellion against despotism than a rebellion against inequality.' —Madelin.

3. 'The Franch Revolution was a general massmovement of the nation against the privileged classes.'

4. '............the humbler priests were extremely ready in 1789 to throw in their lot with a movement for which their origin, their course of reading and their grievances had all prepared the way.'

—Madelin.

जनरल के अधिवेशन में तीसरे वर्ग (Third Estate) की विजय का प्रमुख कारण इन पादरियों का सहयोग ही था। बड़े पादरियों की अपेक्षा बौद्धिक तथा नैतिक दृष्टि से इनका चरित्र बहुत ऊँचा था। विश्वकोष के ४० लेखकों में २४ नाम इन्हीं के हैं।

इस समय फ्रांस में मध्यम वर्ग का भी उदय हो गया था। ये लोग धन तथा बुद्धि दोनों ही से सम्पन्न थे। परन्तु इनका जन्म सामन्त-परिवार में नहीं हुआ था। अतः इनको सामन्तों जैसे विशेषाधिकार प्राप्त न थे। फलतः ये लोग सामन्त-वर्ग को घृणा की दृष्टि से देखते थे। इस प्रकार फ्रांस का समाज कुलीनों से बहुत असंतुष्ट था और वह उनके विरुद्ध क्रान्ति करने को तैयार था।

प्रशासनीय कारण—बूर्बां वंश के राजा निरंकुश थे। १६१४ के पश्चात् उन्होंने स्टेट्स जनरल का अधिवेशन नहीं बुलाया था। वे अपनी इच्छा से पदाधिकारी नियुक्त करते थे तथा पदच्युत कर देते थे। राज्य की कोई निश्चित नीति न होने के कारण चारों ओर असंतोष फैला हुआ था। लुई चौदहवाँ कहा करता था कि मैं ही राज्य हूँ। उसके उत्तराधिकारी लुई पन्द्रहवाँ तथा लुई सोलहवाँ अयोग्य शासक सिद्ध हुए। विद्वानों ने उस समय के दरबार को राष्ट्र की समाधि (Tomb of the nation) कहा है। प्रशासन उत्तरोत्तर खराब होता जा रहा था। राजाओं ने दौरा करना बन्द कर दिया था। उन्हें प्रजा की अवस्था का कुछ ज्ञान नहीं था। इस सम्बन्ध में एक घटना उल्लेखनीय है। क्रान्ति के समय जब लोगों ने राजा से प्रार्थना की कि हमारे पास रोटी नहीं है, हम भूखे हैं तो महारानी अन्तायनेत ने उत्तर दिया था कि तुम केक (Cake) क्यों नहीं खाते ?

प्रादेशिक विभाजन—फ्रांस का प्रादेशिक विभाजन बहुत गलत था। जिलों को शिक्षा, न्याय आदि अनेक आधारों पर विभाजित किया गया था। यही हाल प्रान्तों का था। विभिन्न सीमायें रहने के कारण प्रत्येक प्रदेश में बड़ी अव्यवस्था रहती थी।

सामन्त और सेना—बूर्बां वंश के राजा निरंकुश थे। उनकी शक्ति सामन्तों और सेना पर आधारित थी। परन्तु मध्यम वर्ग का उदय हो जाने के कारण सामन्तों की स्थिति निर्बल हो गई थी। तीन-चौथाई सामन्तों ने अपनी जायदादों से दूर राजदरबार में जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया था। यह जीवन बड़ा अपव्ययात्मक था। अपने खर्चे के लिये वे जनता का शोषण करते थे। विलासी जीवन के साथ-साथ वे तत्कालीन दर्शनिक विचार-धारा से भी प्रभावित थे। इन कारणों से उनकी युद्ध की क्षमता कुण्ठित हो गई थी। अपने भू-खण्डों से दूर होने के कारण उनके साथ उनकी प्रजा की कोई सहानुभूति न रही थी। उनके पास अपनी कोई सेना भी न थी। इस प्रकार यह सामन्त वर्ग नितान्त निर्बल हो गया था। वह पूर्णरूप से राजा पर आश्रित था।[1]

1. Philosophy had caused the weapons to drop from hands already over-refined'
—Madelin.

बूर्बों शासकों की शक्ति का मुख्य आधार सेना भी उनसे असंतुष्ट थी, क्योंकि सैनिकों को उच्च पद नहीं दिये जाते थे। केवल अभिजात वर्ग के व्यक्तियों को उच्च सैनिक पदों पर नियुक्त कर दिया जाता था। इनमें से अधिक व्यक्ति अयोग्य होते थे। इस व्यवस्था से बहुत से योग्य व्यक्तियों ने त्याग-पत्र दे दिये तथा राज्य की नीति की आलोचना की। इसके अतिरिक्त सेना में विद्यमान मध्यम वर्ग तथा निम्न वर्ग के सैनिक तथा पदाधिकारी भी राजा की नीति से असहमत थे। दूसरे इस समय सेना का संगठन भी शिथिल हो गया था। सेना में बहुत से अयोग्य तथा भ्रष्ट व्यक्तियों को भरती कर लिया गया था। इस प्रकार इस समय सेना में अयोग्य व्यक्ति बहुत बढ़ गये थे और जो योग्य व्यक्ति सेना में मौजूद भी थे उनकी सहानुभूति राजा के साथ नहीं थी। इसलिये किसी भी संकट के समय राजा सेना पर भरोसा नहीं कर सकता था। जिस समय स्टेट्स जनरल का अधिवेशन हो रहा था उस समय नेकर ने कहा था कि 'हम अपनी सेना पर विश्वास नहीं कर सकते।'[1] कालान्तर में यह बात सत्य सिद्ध हुई। सेना ने विद्रोहियों पर गोलियां चलाने से इंकार कर दिया। इस प्रकार महान् संकट के समय राजा को सेना की पूरी-पूरी सहायता नहीं मिली।

न्याय तथा कानून—इस समय फ्रांस में अनेक कानून चल रहे थे। इनमें जर्मन, रोमन, फ्राँसीसी तथा स्थानीय कानून उल्लेखनीय हैं। ऐसा बताया जाता है कि इस समय फ्रांस में ४०० कानून (Codes) चल रहे थे। कानून लैटिन भाषा में लिपिबद्ध थे। इससे जनसाधारण उनको समझने में असमर्थ था। न्यायालय भी कई प्रकार के थे—जैसे, राजा के न्यायालय, सामन्तों के न्यायालय, चर्च के न्यायालय तथा सैनिक न्यायालय आदि। इससे यह ठीक प्रकार पता नहीं चल पाता था कि अमुक मुकदमा किस न्यायालय में भेजा जाय। दण्ड-विधान बहुत कठोर था। साधारण अपराधों में भी कठोर दण्ड दिए जाते थे।

जनता को किसी भी प्रकार के मौलिक अधिकार (Habeas Corpus) प्राप्त न थे। मुद्रित पत्रों के आधार पर किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जा सकता था। इन्हीं मुद्रित पत्रों (Letters de cachet) के आधार पर मिराब्यू तथा वाल्टेयर को भी गिरफ्तार कर दण्ड दिया गया था। देश में एक अन्य प्रकार के न्यायाधीश भी थे, जिन्हें Nobility of the Robe कहा जाता था। इनके पदों का क्रय-विक्रय होता था। इनकी नियुक्ति जन्म भर के लिए होती थी। अतः ये रिश्वत तथा भारी-भारी जुर्मानों से अपनी जेब खूब भरते थे। इनकी संख्या बहुत अधिक थी। क्रान्ति के समय समस्त फ्रांस में इनकी संख्या ५० हजार थी।

राजा का चरित्र—फ्रांसीसी क्रान्ति के समय फ्रांस की गद्दी पर लुई सोलहवां (Louis xvi) राजा था। गद्दी पर बैठने के समय उसकी अवस्था २० वर्ष की थी।

---

1. 'We are not sure of the troops.'

वह अपनी प्रजा की दशा सुधारने की इच्छा रखता था, परन्तु दृढ़ इच्छा-शक्ति के अभाव में वह असफल रहा। शासन-सम्बन्धी कार्यों की देख-भाल करने की अपेक्षा वह शिकार खेलने तथा आमोद-प्रमोद में भाग लेने में रुचि लेता था। उसके अपने कोई स्वतन्त्र विचार न थे। वह अपनी रानी अन्तायनेत से बहुत प्रभावित था।[1] इससे संकटकाल में वह कोई निर्णय नहीं कर पाता था। अपने इन्हीं अस्थित विचारों के कारण उसको अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। वास्तव में वह एक निर्दोष व्यक्ति था। उसकी अपनी कोई स्वतन्त्र इच्छा न थी।[2] वह व्यक्तिगत जीवन के लिये उपयुक्त था, सार्वजनिक जीवन के लिये नहीं।[3] मारिस ने उसके विषय में लिखा था कि 'वह एक सहृदय मनुष्य था जो शान्ति के समय एक अच्छा मन्त्री हो सकता था'[4] परन्तु दुर्भाग्यवश उसके पूर्वज उसके लिये क्रान्ति का काफी सामान तैयार कर गये थे।[5]

वह अपने पूर्वजों की अपेक्षा कहीं अधिक उदार था। उसने अपने निजी भूमि-खण्डों पर दास-प्रथा का अन्त कर दिया था, प्रेस को अभूतपूर्व स्वतन्त्रता दे रक्खी थी तथा दण्ड-विधान में शारीरिक यातनाओं को बन्द कर दिया था। उसने जनता को धार्मिक स्वतन्त्रता भी दे रक्खी थी। अनेक प्रदेशों में स्थानीय शासन का विकास कराया था। सारांशतः लुई १६ वां सुधारों का पक्षपाती था।[6] ऐक्टन महोदय उसके शासनकाल को 'पश्चातापपूर्ण राजतन्त्र' कहते हैं।[7] यह कहा जाता है कि १७८९ में पुरातन व्यवस्था सबसे अधिक उदार थी।[8] उसकी सुधारवादी नीति ने सुधारों की माँग को और अधिक प्रज्वलित कर दिया। जनता अपने अधिकारों और उनकी प्राप्ति की सम्भावना से अवगत हो गई और उसकी इसी भावना से अन्त में क्रान्ति हो गई।

---

1. 'He is known to have no will of his own.'
   — A Duputy in June, 1789.
2. The king has only one man about him, his wife.
   – Mirabeau.
3. 'He was born for private life.' —Madelin.
   'He was not born a king.' —Madelin
4. 'He is a good kind hearted man who would make an excellent pacific minister in quite times.'
5. 'His ancestors had bequeathed him a revolution'
   —Mignet.
6. 'Louis xvi had been above all a reformer and that was his undoing.' —Elton.
7. 'The era of repentant monarchy' – Acton.
8. The ancien regime in 1789 was at its most enlightened which was precisely why it fell.' —Elton.

रानी का चरित्र—लुई सोलहवें की रानी का नाम मेरी अन्तायनेत (Marie Antoinette) था । वह आस्ट्रिया की मेरिया थेरेसा (Maria Theresa) की पुत्री तथा वहाँ के सम्राट जासेस द्वितीय की बहिन थी । कम आयु होने के कारण उसमें शासन-सम्बन्धी योग्यता का अभाव था । इसलिए आर्थिक संकट के समय में भी उसने अपने खर्च में कोई कमी नहीं की । फ्रांस की जनता घृणा की दृष्टि से उसे आस्ट्रियन स्त्री (The Austrian) कह कर पुकारा करती थी । कुछ इतिहासकारों ने उसको योग्य माता की अयोग्य पुत्री कहा है । राजा पर उसका बहुत प्रभाव था । दुर्भाग्यवश यह रानी बहुत हठधर्मी थी । वह न शत्रुता को भूलती थी और न मित्रता को छोड़ती थी ।[1] इसका अनुचित प्रभाव उसके स्वयं के लिए, राजा के लिए तथा फ्राँस तीनों के लिये ही विनाशकारी सिद्ध हुआ ।

आर्थिक कारण—इस समय राजकोष रिक्त था । प्रत्येक वर्ष २½ करोड़ डालर का घाटा हो रहा था, जिसकी पूर्ति भारी ब्याज पर ऋण लेकर की जा रही थी । आर्थिक संकट का कारण राजा की विलासिता तथा युद्ध थे । लुई चौदहवां अपना राज्य-विस्तार करने के लिए निरन्तर यूरोपीय राज्यों से लड़ता रहा । कहते हैं कि जिस समय वह अपने जीवन की अन्तिम घड़ियां गिन रहा था, उस समय उसने अपने उत्तराधिकारी लुई १५ वें को यह सलाह दी थी कि युद्धों में उसने जो अपव्यय किया उसका अनुसरण उसका उत्तराधिकारी न करें । परन्तु लुई पन्द्रहवें ने उसकी इस सलाह की ओर ध्यान नहीं दिया । उसने दो प्रमुख युद्धों—(१) आस्ट्रिया के उत्तराधिकार का युद्ध तथा (२) सप्तवर्षीय युद्ध में भाग लेकर फ्रांस की आर्थिक अवस्था को बहुत खराब कर दिया । इसके साथ-साथ उसने बराबर अपना निरंकुश शासन बनाए रक्खा । उसके समय में पेरिस के राजदरबार में जो भ्रष्टाचार और विलासिता फैली उससे देश की आर्थिक अवस्था और भी अधिक खराब हो गई । लुई सोलहवें ने भी देश की आर्थिक दशा सुधारने के लिए युद्धों का परित्याग नहीं किया । उसने अंग्रेजों के विरुद्ध अमेरिका के स्वतन्त्रता-संग्राम में भाग लिया । फलतः अमरीकी उपनिवेश अंग्रेजों के हाथ से निकल गये और फ्रांस ने इंग्लैंड से अपनी शत्रुता का बदला ले लिया । परन्तु इससे उसकी आर्थिक अवस्था बहुत खराब हो गई । दरबारी जीवन की विलासिता के कारण आर्थिक स्थिति उत्तरोत्तर खराब होती चली गई । जैसे-जैसे आर्थिक अवस्था खराब होती गई, वैसे ही वैसे राष्ट्रीय ऋण भी बढ़ता गया । अन्त में यह स्थिति उत्पन्न हो गई कि देश की आय राष्ट्रीय ऋण के ऊपर होने वाले ब्याज से भी कम हो गई । परन्तु सम्राज्ञी तथा दरबारियों ने अपने व्यय में कोई कमी नहीं की । अपव्ययता के कारण सम्राज्ञी अन्तायनेत को Madame Deficit कहा जाने लगा । बहुत अधिक अपव्ययता के कारण दरबार को 'राष्ट्र की समाधि' (Tomb of the Nation) कहा जाने लगा था ।

---

1. "A fine trait this, in a woman, dangerous trait in a queen.
—Madelin.

देश की कर-प्रणाली बड़ी अव्यवास्थित थी । कुलीनों तथा पादरियों पर सम्पन्न होने पर भी कोई कर न था । समाज के सबसे विपन्न वर्ग–कृषकों पर उनकी आय का ८० प्रतिशत कर था । सभी वर्गों पर समान रूप से कर न होने के कारण बड़ा असन्तोष था । कर वसूल करने का ढंग भी त्रुटिपूर्ण था । कर वसूल करने वाले पदाधिकारी नहीं थे । यह कार्य ठेकेदार करते थे । ये किसानों से मनमाना कर वसूल करते थे और राजकोष में एक निश्चित धन ही जमा करते थे ।

लुई सोलहवें ने देश की आर्थिक दशा सुधारने के लिए प्रयत्न किया, परन्तु उसको सफलता न मिली । १७७४ में उसने तूर्जो को अपना अर्थ-मन्त्री नियुक्त किया । इसने राजदरबार तथा सरकार के प्रत्येक विभाग में कम खर्च करने की सिफारिश की । इसका सिद्धान्त था 'No bankruptcy, no increase of taxation, no more borrowing.' परन्तु दरबारी तथा सम्राज्ञी ने उसकी मितव्ययिता की, योजना का विरोध किया । फलतः उनके प्रभाव में आकर १७७६ में राजा ने उसको पदच्युत कर दिया ।

तत्पश्चात् नेकर अर्थमन्त्री नियुक्त किया गया । आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिये यह बहुत प्रख्यात था । एक बैंक के मैनेजर के रूप में यह बहुत ख्याति प्राप्त कर चुका था । इसने फ्राँस की आर्थिक दशा सुधारने के लिए कठोर परिश्रम किया । इससे पूर्व फ्रांस का आय-व्यय गुप्त रक्खा जाता था, परन्तु इसने आय-व्यय की वार्षिक रिपोर्ट बनाकर प्रकाशित करने की योजना बनाई । इस रिपोर्ट में सामन्तों तथा दरबारियों को दिये जाने वाली भेंटों का भी उल्लेख होना आवश्यक था । इसमें सम्राज्ञी ने इसका विरोध किया और उसके प्रभाव के अन्तर्गत राजा ने १७८१ ई० में नेकर को भी पदच्युत कर दिया ।

सन् १७८८ में उसको पुनः बुलाया गया, परन्तु उस समय फ्रांस की आर्थिक अवस्था बहुत शोचनीय हो गई थी । नेकर शान्ति काल में एक योग्य अर्थमन्त्री हो सकता था, परन्तु अशान्ति-काल में वह निष्फल सिद्ध हुआ ।

तत्पश्चात् सन् १७८१ में कैलोन अर्थमन्त्री बनाया गया । प्रारम्भ में उसने रानी तथा दरबारियों को खुश करने के लिये उधार लेने की नीति को अपनाया । परन्तु सन् १७८६ के आते-आते किसी भी ब्याज की दर पर उधार मिलना असम्भव हो गया । अन्त में कैलोन ने भी सभी वर्गों पर समान रूप से कर लगाने की योजना बनाई । इसका कुलीन तथा पादरी वर्ग ने विरोध किया । अन्त में राजा ने कैलोन को भी पदच्युत कर दिया ।

अन्त में राजा ने १७८७ में प्रसिद्ध पुरुषों की सभा (Assembly of Notables) का अधिवेशन बुलाया । परन्तु यह सभा भी समस्या का समाधान न कर सकी । इसके बाद राजा ने नये कर लगाने की योजना बनाई । परन्तु पेरिस की पार्लेमां ने इस प्रस्ताव का विरोध किया । उसने स्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाने की मांग की । राजा ने पेरिस की पार्लेमाँ को भंग कर दिया और उसके

सदस्यों को गिरफ्तार करने की आज्ञा दी, परन्तु सैनिकों ने उनको गिरफ्तार करने से इंकार कर दिया। फलतः विवश होकर १७८९ में राजा ने स्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाने की घोषणा की। राजा तथा कुलीन वर्ग के व्यक्ति यह समझते थे कि स्टेट्स जनरल में कुलीनों तथा पादरियों का बहुमत है। अतः वे दोनों मिलकर सदैव के लिये क्रान्ति का अन्त कर देंगे। परन्तु उनका यह अनुमान गलत सिद्ध हुआ। स्टेट्स जनरल के अधिवेशन में जनसाधारण के प्रतिनिधियों ने यह माँग की कि मतदान By Order न होकर By Hand हो। इस प्रकार स्टेट्स जनरल को निमन्त्रण देना क्रान्ति को आह्वान करना सिद्ध हुआ।

बौद्धिक कारण—१८वीं शताब्दी यूरोप के इतिहास में आलोचना की शताब्दी कहलाती है। इस समय फ्रांस में अनेक विचारधाराओं का प्रादुर्भाव हुआ। इन्होंने अपने लेखों तथा पुस्तकों से फ्रांस की पुरातन संस्थाओं की आलोचना की। इससे लोगों में जागृति आनी प्रारम्भ हो गई।[1] इसी से किसी विद्वान् ने यह ठीक कहा था कि फ्रांस में राजनीतिक क्रान्ति से पूर्व बौद्धिक क्रान्ति हुई थी। नीचे संक्षेप में प्रमुख विचारकों के कार्यों का वर्णन किया जायेगा—

मान्टेस्क्यू—यह इंग्लैंड के संविधान से बहुत प्रभावित था। इसकी सुप्रसिद्ध रचना 'The spirit of Laws' है। इसमें इसने इस बात पर विशेष बल दिया कि सरकार के तीनों अंग व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका को पृथक्-पृथक् रूप से स्वतन्त्र होकर कार्य करना चाहिये। यदि ये तीनों शक्तियां एक ही व्यक्ति के हाथ में दे दी जायेंगी तो कभी भी न्याय नहीं हो सकता। मान्टेस्क्यू के विचारों से जनता बहुत प्रभावित हुई। १७९१ में संविधान पर उसके विचारों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा।

वाल्टेयर—यह अपने समय का बहुत बड़ा विद्वान था। यह लेखक दार्शनिक, व्यंग्यकार, गल्पकार तथा सम्पादक आदि सभी कुछ था। यह इंग्लैंड की न्याय-व्यवस्था से बहुत प्रभावित था। यह धार्मिक पाखण्डों तथा पादरीवाद का घोर विरोधी था। चर्च को यह कुविख्यात वस्तु (Infamous thing) कहता था। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को यह बहुत अधिक महत्व देता था। इसने जनसाधारण में बौद्धिक जागृति उत्पन्न करने के लिये बहुत कार्य किया। इसके लेख फ्रांस की जनता में बहुत अधिक प्रचलित हो गये। इसके परिणामस्वरूप वहाँ की जनता शीघ्र ही शासन और चर्च आदि के दोषों की कटु आलोचना करने लगी।

रूसो—रूसो का व्यक्तिगत जीवन बहुत भ्रष्ट था, परन्तु फ्रांसीसी क्रान्ति पर उसका सबसे अधिक प्रभाव पड़ा। उसके महत्व को स्वीकार करते हुये नेपोलियन ने

---

1. 'The French Revolution sprang from a combination of intellectual ferment and material grievances and it was the intellectual ferment that made the material grievances more fiercely resented.'
—Chateaubriand.

कहा था कि 'यदि रूसो न हुआ होता तो फ्रांसीसी राजक्रान्ति भी न हुई होती।' रूसो की सुप्रसिद्ध रचना Social Contract है। इसमें उसने निरंकुश शासन की कटु आलोचना की है। उसका मत था कि समझौते को तोड़कर राजा को पदच्युत करने का जनता को अधिकार है। वह आधुनिक सभ्यता का विरोधी था। उसके मतानुसार यह सभ्यता कृत्रिम तथा विनाशक है। इसने मानव को बुरा बना दिया है। आदि मानव बहुत अच्छा था। रूसो ने उसे सभ्य बर्बर मानव (Noble Savage) कहा है। उसने जनता से अपील की कि हमें यदि सुखी रहना है तो प्रकृति की शरण लेनी होगी। रूसो के उन सिद्धान्तों में फ्रांसीसी जनता के मस्तिष्क में क्रान्ति उत्पन्न करदी।

अन्य विचारक—क्रान्ति के इन तीन अग्रदूतों के अतिरिक्त फ्रांस में कुछ अन्य विचारक भी हुये, जिन्होंने अपने प्रचार से फ्रांस की बौद्धिक क्रान्ति में योग दिया। इनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं—

दिदरो—यह अपने समय का सुप्रसिद्ध विद्वान् था। यह अपनी लेखनकला तथा वाक् शक्ति के लिये बहुत प्रसिद्ध था। यह मनुष्य के ज्ञान बढ़ाने पर बहुत जोर देता था। इसने विश्व-कोष का सम्पादन कराया। इसने राजा की निरंकुशता, सामन्तों के विशेषाधिकार तथा चर्च की भ्रष्टता की कटु आलोचना की। इस प्रकार दिदरो के विचारों ने क्रान्ति में बड़ी सहायता दी।

क्वेस्ने—यह फ्रांस का सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री था। यह मुक्त व्यापार (Free Trade) की नीति का समर्थक था। इसका मत था कि कर खेती पर ही लगने चाहिए, क्योंकि खेती सम्पूर्ण सम्पत्ति का मूल स्रोत है। उसने शिक्षा के प्रचार पर बहुत जोर दिया। उसका मत था कि देश में सुधार जब तक सफल नहीं हो सकते जब तक कि वहां पर उचित शिक्षा का प्रचार न हो।

हालबैश—यह मनुष्यों की कठिनाइयों का प्रमुख कारण धर्म और राजनीति को मानता था। अतः यह धर्म तथा राजनीति के बहिष्कार के पक्ष में था।

हेल्वेशियस—इस विद्वान् का मत था कि विश्व में धर्म और सदाचार नामक वस्तुएं नहीं हैं। प्रत्येक मनुष्य नितांत स्वार्थी और सुख-लोलुप है।

इस प्रकार इन समस्त विद्वानों के लेखों तथा पुस्तकों ने फ्रांसीसी जनता को क्रान्ति के लिए पहले से ही तैयार कर दिया था। इन लेखकों के प्रचार ने क्रान्ति को अवश्यम्भावी बना दिया था। वास्तव में राजक्रान्ति बौद्धिक क्रांति का सक्रिय (Active) रूप था। क्रांति के नेताओं के ऊपर इन दार्शनिकों का बहुत प्रभाव था। राब्सपियर रूसो का परम भक्त था। जैकोबिन दल के नेता भी रूसो से प्रभावित थे। जिरोंदिस्ट दल में बहुत से नेता इन दार्शनिकों की भांति ही व्यावहारिकता के स्थान पर पुस्तकीय ज्ञान तथा शास्त्रीय विवेचन को बहुत अधिक महत्व देते थे।

अमेरिका के स्वाधीनता संग्राम का प्रभाव—सन् १७७५ में उत्तरी अमेरिका के अंग्रेजी उपनिवेशों ने इंग्लैंड के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। यह संघर्ष आठ वर्ष

(१७७५—८३) तक चलता रहा। इसमें फ्रांस ने इंगलैंड के विरुद्ध अमेरिका को सहायता दी। इसके परिणामस्वरूप अमेरिका के अंग्रेजी उपनिवेश स्वतन्त्र हो गए। इस प्रकार फ्रांस ने इंग्लैंड से अपनी पुरानी शत्रुता का बदला लिया। परन्तु उसका यह कार्य उसके लिये ही भयंकर सिद्ध हुआ। इसके दो महत्वपूर्ण प्रभाव हुए। प्रथम तो फ्रांस की बिगड़ती हुई आर्थिक स्थिति और अधिक बिगड़ गई और वह अन्त में किसी प्रकार नहीं सुधरी। फलतः वहां क्रांति हो गई। दूसरे अमेरिका के स्वतन्त्रता-संग्राम में भाग लेने वाले फ्रांसीसी सैनिकों के हृदय में भी स्वतन्त्रता की भावना जागृत हुई और वे भी निरंकुश शासन का अन्त कर प्रजातन्त्र स्थापित करने के लिए स्वप्न देखने लगे।

इंग्लैंड का प्रभाव—सन् १६८८ की रक्तविहीन क्रांति के पश्चात् इंग्लैंड में वैधानिक शासन की स्थापना हो गई थी और दार्शनिक मॉन्टेस्क्यू इंग्लैंड के वैधानिक शासन से बहुत प्रभावित था। लॉक (Locke) के शक्ति-पार्थक्य के सिद्धान्त को भी उसने स्वीकार किया। रूसो भी लॉक से प्रभावित था। फ्रांस में अर्थशास्त्री इंग्लैंड के सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री स्मिथ से बहुत प्रभावित थे। दूसरे इस समय आयरलैंड में बड़ा असंतोष चल रहा था। आयरलैंड-वासियों ने इंग्लैंड के विरुद्ध आन्दोलन करके सन् १७७९ तथा १७८२ के मध्य पर्याप्त सुविधाएं प्राप्त कर ली थीं। इससे फ्रांसीसी भी बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने भी निरंकुश शासन के विरुद्ध संघर्ष करने का निश्चय किया।

सर्वप्रथम फ्रांस में ही क्रान्ति क्यों हुई ?—योरप के अधिकाँश देशों की अवस्था फ्रांस जैसी ही थी। अतः अब प्रश्न उठता है कि फिर भी सर्वप्रथम फ्रांस में ही क्रांति क्यों हुई ? फ्रांस का कृषक-समाज बहुत कष्ट में था। उसकी आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी। उस पर अनेक टैक्स थे। पर यह कारण फ्रांसीसी क्रांति का प्रमुख कारण नहीं माना जा सकता, क्योंकि योरप के अन्य देशों में जनता की अवस्था इससे भी खराब थी। उस समय प्रशा, पोलैण्ड तथा रूस आदि के अर्द्धदास कृषक (Serf) बहुत कष्ट में थे। प्रशा में तो उनको सप्ताह में ६ दिन तक सामन्तों के खेतों में कार्य करना होता था। अपने खेतों पर वे रात को कार्य करते थे। फ्रांस में अधिकांश कृषक स्वतन्त्र थे। अन्य देशों के कृषकों की अपेक्षा उनकी आर्थिक अवस्था बहुत अच्छी थी। इस प्रकार किसानों तथा मजदूरों का दयनीय जीवन क्रांति का कारण नहीं हो सकता।

इस क्रान्ति के लिये निम्नलिखित कारण उत्तरदायी बताये जा सकते हैं—

१. **अमेरिका का स्वतन्त्रता संग्राम**—फ्रांस के सम्राट् लुई १६ वें ने अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम में योग दिया था। अतः जो फ्रांसीसी सैनिक वहां से लौटकर आए वे अपने साथ स्वतन्त्रता की भावना लाए थे।

२. **आर्थिक दिवाला**—लुई सोलहवें के शासन-काल तक राज्य का आर्थिक दिवाला निकल गया था। लुई १६ वें ने राज्य की आर्थिक दशा सुधारने के लिये कई

योग्य अर्थ-मन्त्रियों को नियुक्त किया; परन्तु उनको सफलता न मिली, क्योंकि कुलीन तथा पादरी अपने ऊपर कर लगवाने के लिए तैयार न थे और रानी मेरी अन्तायनेत अपने खर्चे में कमी करने को तैयार न थी। अन्त में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई कि किसी भी ब्याज की दर पर ऋण मिलना बन्द हो गया। फलतः विवश होकर राजा को स्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाना पड़ा। स्टेट्स जनरल के अधिवेशन को बुलाना ही क्रांति को निमन्त्रण देना था।

३. **सेना**—फ्रांस के बूर्बां शासक निरंकुश थे। निरंकुश राजाओं की शक्ति का एकमात्र आधार सेना होती है। परन्तु फ्रांस के शासकों से उसकी सेना भी असंतुष्ट थी, क्योंकि सम्राट सैनिकों को क्रमशः उन्नति करने के पश्चात् उच्च पदाधिकारी नियुक्त नहीं करते थे, अपितु अभिजात वर्ग के मनुष्यों को उच्च सैनिक पदों पर नियुक्त कर देते थे। फलतः सेना में बड़ा असंतोष था। अतः क्रान्ति के समय सेना ने राजा को विशेष सहयोग नहीं दिया। उसने क्रांतिकारियों पर गोली चलाने से इंकार कर दिया। यदि सेना राजा के साथ पूर्ण शक्ति से सहयोग करती तो क्रान्ति को प्रारम्भ में ही कुचल दिया जाता।

४. **दार्शनिकों का कार्य**—१८ वीं शताब्दी में फ्रांस में अनेक सुधारक उत्पन्न हुए। इन्होंने राजा की निरंकुशता, चर्च की भ्रष्टता तथा सामन्तों के विशेषाधिकारों की कटु आलोचना की। समस्त यूरोप में इन दार्शनिकों तथा लेखकों का सम्मान था। मान्टेस्क्यू, वाल्टेयर तथा रूसो क्रान्ति के अग्रदूत माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त दिदरो, क्वेस्ने तथा हालवैश आदि ने भी जनता को जागृत किया। इस प्रकार इन दार्शनिकों ने अपने तर्कशील विचारों से जनता को क्रान्ति के लिए तैयार कर दिया।

५. **मध्यम वर्ग का उदय**—फ्रांस में क्रांति होने का सबसे प्रधान कारण मध्यम वर्ग का उदय था। इन लोगों के पास शिक्षा तथा धन दोनों ही थे; परन्तु फिर भी कुलीनों जैसा सम्मान इनको प्राप्त न था। अतः ये बहुत असंतुष्ट थे। फ्रांस में मध्यम वर्ग का संगठन जितना उत्तम था, इतना यूरोप के अन्य किसी देश में नहीं था। अधिकांश दार्शनिक इसी वर्ग से सम्बन्धित थे। इन दार्शनिकों का सबसे अधिक प्रभाव मध्यम वर्ग पर ही था। क्रान्ति का नेतृत्व भी इसी वर्ग ने किया था।

६. **भावुक जनता**—फ्रांस की जनता बहुत भावुक है। वह नए विचारों को बहुत शीघ्र अपना लेती है। इससे वहां पर तनिक सी बात पर क्रान्ति सम्भव है। 'फ्रांस में क्रांति के लिये केवल अच्छे मौसम की आवश्यकता है।'

इस प्रकार इन सब कारणों से सर्व प्रथम फ्रांस में ही क्रान्ति हुई।

फ्रांसीसी राजक्रांति की विशेषतायें—गूच के शब्दों में फ्रांस की क्रान्ति यूरोप के इतिहास में सर्व प्रमुख घटना है।[1] इसने समस्त देश को प्रभावित किया। १९ वीं

---

1. 'The French Revolution is the most important event in the History of Europe.'

शताब्दी में तो ऐसा कहा जाने लगा था कि यदि फ्रांस को जुकाम होता है तो समस्त योरप छींकता है।[1] संक्षेप में फ्रांसीसी राजक्रान्ति की निम्नलिखित विशेषताएं बतलाई जा सकती हैं—

१. फ्रांसीसी राज्य क्रांति की कोई निश्चित तिथि नहीं बतलाई जा सकती। कुछ विद्वान् ५ मई १७८९ को क्रान्ति के आरम्भ की तिथि मानते हैं, क्योंकि इसी दिन स्टेट्स जनरल का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ था। कुछ विद्वान् क्रान्ति के आरम्भ की तिथि १४ जुलाई १७८९ को मानते हैं, क्योंकि इस दिन बैस्तील के दुर्ग का पतन हुआ था। वास्तव में क्रान्ति के प्रारम्भ की कोई भी तिथि निश्चित नहीं की जा सकती। क्योंकि क्रान्ति की पृष्ठ भूमि पर्याप्त समय से तैयार हो रही थी।

२. साधारणतया यह कहा जाता है कि १८ वीं शताब्दी के दार्शनिकों ने क्रान्ति को जन्म दिया था। परन्तु वास्तव में यह मत ठीक नहीं है। क्रांति के विचार जनता में पहले से ही विद्यमान थे। दार्शनिकों ने तो एक मात्र सरल तथा प्रभावकारी ढंग से इन विचारों का प्रचारमात्र किया था। अत: दार्शनिकों को क्रान्ति के सिद्धान्तों का जन्मदाता नहीं, अपितु प्रचारक ही समझना चाहिए।[2]

३. यह क्रान्ति लुई सोलहवें के विरोध में नहीं थी, क्योंकि फ्रांस में फैली हुई तत्कालीन अव्यवस्था का कारण वह नहीं था। इसका कारण तो लुई चौदहवें तथा लुई पन्द्रहवें का शासन था, जिन्होंने युद्धों तथा दरबारी आमोद-प्रमोद में पानी की भांति धन बहाया था। इसके साथ-साथ ये राजा पूर्णतया निरंकुश थे। परन्तु इनके विपरीत लुई सोलहवां एक उदार शासक था। वह सच्चे अर्थों में अपनी प्रजा की भलाई चाहता था। उसने शासन में अनेक सुधार किये थे। उसने जनता को स्थानीय शासन में भाग लेने के लिये अधिकार प्रदान किये थे। नागरिकों को मौलिक अधिकार भी दिए थे। उसने प्रेस को भी बहुत कुछ स्वाधीनता प्रदान की थी। उसने अपने निजी भूखण्डों पर दास-प्रथा का भी अन्त कर दिया था। फिर भी उसके समय में असंतोष बराबर बढ़ाता गया। अन्त में उसके पूर्वज जो सामग्री तैयार कर गये थे वही उसके समय में क्रान्ति का कारण बनी।

४. इस क्रान्ति का नेतृत्व मध्यम वर्ग ने किया। इस वर्ग में वकील, डाक्टर, प्रोफेसर, बैंकर तथा व्यापारी थे। इनमें राजनीतिक जागृति उत्पन्न हो चुकी थी। इस वर्ग के पास धन तथा मस्तिष्क सभी कुछ था; परन्तु कुलीन वर्ग में उत्पन्न न होने के कारण इसको विशेषाधिकार प्राप्त न थे। अत: यह वर्ग बहुत असंतुष्ट था। यद्यपि फ्रांस के निम्न वर्ग की स्थिति बहुत खराब थी, परन्तु अशिक्षित होने के कारण यह अपने कष्टों के प्रकाशन करने में असमर्थ था। अत: विचारशील होने के कारण मध्यम वर्ग ने केवल अपनी ही नहीं अपितु निम्न वर्ग की कठिनाइयों के विरुद्ध भी आन्दोलन

---

1. 'When France catches cold all Europe sneezes'

2. 'The writers of the eighteenth century heralded the Revolution, but they did not originate it.'

किया। यद्यपि फ्रांसीसी क्रान्ति में निम्न वर्ग का भारी हाथ था, परन्तु वास्तव में इस क्रांति के विधायक मध्यम वर्ग के ही मनुष्य थे। वास्तव में १७८६ से १७६२ का समय फ्रांस के इतिहास में मध्यमवर्ग के कुलीनतन्त्र का है।[1]

क्रान्ति के समय बहुत से काहिया तैयार किये गए थे। ये काहिया विशेषतया मध्यम वर्ग के व्यक्तियों द्वारा लिखे गए थे। इन व्यक्तियों ने अनेक आदर्श काहिया लिखकर गांवों में जनता के मध्य में घुमाये थे। जनसाधारण ने इनके आधार पर ही अपने (Cahiers) तैयार किए थे। मध्यम वर्ग के व्यक्तियों ने अनेक सभाओं का आयोजन कर जनसाधारण में राजनीतिक चेतना उत्पन्न करने का प्रयास किया था। इस प्रकार मध्यम वर्ग के व्यक्ति ही क्रान्ति के विधायक थे।

इस समय केन्द्रीय शासन में विशेषतया राजा के प्रतिनिधि के रूप में मध्यम वर्ग के व्यक्तियों की नियुक्ति की गई थी। ये लोग शिक्षित होने के कारण शासन-सम्बन्धी बातों से भी परिचित थे और ग्रामीण लोगों की असुविधाओं का भी इनको ज्ञान था। इस प्रकार क्रान्ति का आयोजन करने में मध्यम वर्ग का विशेष हाथ रहा।

अधिकांश मध्यम वर्ग के व्यक्ति ग्राम छोड़कर शहरों में चले गए थे, क्योंकि ग्रामों में रहने वाले प्रत्येक मनुष्य को Taille नाम का एक विशेष कर देना होता था। शहरों में यह कर नहीं लगता था। अतः मध्यम वर्ग के मनुष्य शहरों में जाकर बस गए और वहां वे सामन्तों के विशेषाधिकारों का विरोध करने लगे।

१७८६ के लगभग प्रायः अधिकाँश बड़े-बड़े सामन्त राजा के दरबार में आ गये थे। अतः वे ग्राम छोड़कर नगरों में बस गये थे। इससे सामन्तों का सम्बन्ध ग्रामों से टूट गया था। इससे मध्यम वर्ग के व्यक्तियों को ग्रामों में अपना प्रचार करने का अच्छा अवसर मिला। इसका लाभ उठाते हुए उन्होंने ग्रामों में सामन्त-विरोधी भावना उत्पन्न कर दी।

सामन्त अपने भू-खण्ड में राजा का प्रतिनिधि होता था। उसके अनेक कर्तव्य तथा अधिकार होते थे, परन्तु इस समय तक सामन्त के सब कर्तव्य समाप्त हो गये थे, एकमात्र उसके विशेषाधिकार ही शेष थे। अतः जनता इन सामन्तों से बहुत असन्तुष्ट थी।

फ्रांसीसी शासन में स्थानीय संस्थाओं (Parliaments) का बहुत महत्व था। लुई सोलहवें ने इनको और भी विशेषाधिकार प्रदान किये थे। इस समय इनमें मध्यम वर्ग के भी अधिकांश प्रतिनिधि पहुँच गये थे। ये संस्थाएं १७८६ से पूर्व ही तत्कालीन अव्यवस्था से असंतुष्ट थी। १७५६ में पेरिस की पार्लमां ने शासन के प्रति असंतोष

1. 'In the years 1789 to 1792 the middle class became privileged oligarchy in place of the hitherto privileged, the feudal aristocracy.'
—Elton.

प्रकट करते हुए एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया था। इस प्रकार फ्रांसीसी क्रान्ति की विचार धाराएं १७८९ के बहुत पूर्व से ही चल रही थीं।

बहुत से सामन्तों ने भी क्रान्ति में भाग लिया था। ये सामन्त बहुत समझदार थे। ये समझ गये थे कि सामन्त-प्रथा बहुत दूषित हो चुकी है। अतः यदि इसमें सुधार नहीं किया गया तो इसका अन्त होना अवश्यम्भावी है।

बहुत से पादरियों ने भी इस क्रान्ति में भाग लिया था। उनके लिखे बहुत से Cahiers मिलते हैं। क्रान्ति में भाग लेने वाले छोटे पादरी थे। इनकी आर्थिक अवस्था बहुत खराब थी। ये किसानों तथा मजदूरों की भांति निर्धनता का जीवन व्यतीत करते थे। ये लोग बड़े पादरियों के विलासी तथा वैभवपूर्ण जीवन को देखकर बहुत दुःखी रहते थे। अतः क्रान्ति के समय इन्होंने भी उसमें भाग लिया।

प्रश्न (बी० ए०)

१. सन् १७८९ की क्रान्ति के प्रमुख कारणों की विवेचना कीजिये।

२. फ्रांस की राजक्रान्ति के स्थायी प्रभावों का वर्णन करिये।

३. फ्रांसीसी क्रान्ति की विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन करिये।

Questions (M. A.)

1. Describe the causes of the French Revolution of 1789. Could it be avoided ?
2. What part did the bourgeoisie play in the French Revolution ? Do you think the French Revolution confirms to the Marxian interpretation of history ?
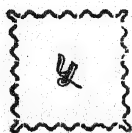
क्रान्ति का प्रारम्भ

स्टेट्स जनरल का अधिवेशन। काहिया। टेनिस कोर्ट की शपथ। पेरिस का विद्रोह। बैस्टील का पतन—उसका महत्व। पेरिस में स्थानीय शासन। नेशनल असेम्बली के कार्य। सामन्तवादी युग का अन्त। वर्साय के राजप्रासाद का घेरा। राजा का पेरिस लाया जाना। भागने का असफल प्रयत्न। असफलता के परिणाम।

हम पीछे उल्लेख कर चुके हैं कि फ्रांस की आर्थिक दशा निरन्तर खराब होती जा रही थी। अन्त में सरकार का दिवाला निकल गया और उसको किसी भी सूद की दर पर ऋण मिलना बन्द हो गया। फलतः विवश होकर सन् १७८९ में लुई सोलहवें को स्टेट्स जनरल का अधिवेशन बुलाना पड़ा। स्टेट्स जनरल के तीन विभाग थे—(१) कुलीन वर्ग, (२) पादरी वर्ग तथा (३) जन-साधारण वर्ग। इन तीनों वर्गों के प्रतिनिधियों की संख्या प्रायः समान थी। इससे अधिवेशन में कुलीन तथा पादरी मिलकर जनसाधारण के प्रतिनिधियों के हितों की अवहेलना कर देते थे। इससे जनसाधारण में बड़ा असन्तोष था। फलतः नेकर ने राजा से मिलकर जनसाधारण के प्रतिनिधियों की संख्या दुगुनी कर दी। इस प्रकार वे दोनों वर्गों की सम्मिलित संख्या के बराबर हो गये। परन्तु इस बात का कोई निर्णय नहीं किया गया कि तीनों वर्गों के प्रतिनिधि अलग-अलग भवनों में बैठ कर विचार करेंगे अथवा सम्मिलित रूप से एक भवन में बैठेंगे। दूसरे शब्दों में निर्णय प्रत्येक वर्ग की एक वोट मानकर होंगे अथवा तीनों वर्गों के सम्मिलित अधिवेशन में बहुमत के आधार पर होंगे।

सदस्यों का चुनाव—१७८९ की बसन्त ऋतु में स्टेट्स जनरल के सदस्यों का निर्वाचन हुआ। तृतीय श्रेणी के उन व्यक्तियों को भी मत देने का अधिकार दिया गया, जिनकी अवस्था २५ वर्ष से अधिक थी और वे कोई प्रत्यक्ष कर देते थे। पेरिस में अनेक प्रतिबन्धों द्वारा निर्धनों को निर्वाचन से वंचित कर दिया गया। इस प्रकार तीनों वर्गों के प्रतिनिधियों का निर्वाचन हुआ। इन निर्वाचित सभाओं ने स्टेट्स जनरल के सदस्यों का निर्वाचन किया। प्रत्येक सभा ने सुधारों तथा शिकायतों का एक मसविदा भी तैयार किया। यह मसविदा इतिहास में काहिया (Cahiers) के नाम से प्रख्यात है।

इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि राजा ने निर्वाचन को अपने पक्ष में करने के लिये किसी पर कोई प्रभाव डाला हो। यदि कहीं पर कोई दबाव दिया गया तो वह सुधारवादियों के ही पक्ष में था।

स्टेट्स जनरल के निर्वाचन में मिराब्यू का निर्वाचन महत्वपूर्ण है। मिराब्यू ने नेकर से यह प्रार्थना की थी कि वह उसको कुलीन वर्ग का प्रतिनिधि स्वीकार करले; परन्तु उसने उसकी यह बात स्वीकार नहीं की। फलतः वह थर्ड स्टेट्स की ओर से निर्वाचन के लिये खड़ा हुआ। वह एक्स (Aix) तथा मार्साई (Marse:ss) नामक दो नगरों से चुन लिया गया।[1]

काहिया (Cahiers)[2]—मतदाताओं ने अपनी शिकायतों तथा कठिनाइयों के सम्बन्ध में अपने प्रतिनिधियों को स्मृति-पत्र (Cahiers) दिये थे। इनकी संख्या ५० हजार से भी अधिक थी। स्थानीय Cahiers को Particular Cahiers कहते थे और जनरल असेम्बली ने समस्त Cahier के आधार पर एक Cahier बनाया था, जो General Cahiers कहलाता था। प्रत्येक केन्द्र के काहिया तैयार कराने के लिये एक समिति बनाई गई थी। इस समिति का कार्य अपने क्षेत्र की कठिनाइयों तथा आवश्यकताओं को लेखबद्ध करना था। अधिकांश काहिया विशेषज्ञों द्वारा लिखे गये थे। जो केन्द्र अपने काहिया लिखने में असमर्थ थे वे किसी अन्य काहिया के आधार पर अपना काहिया तैयार कर लेते थे। इस समय बहुत से आदर्श काहिया (Model Cahiers) तैयार किये गये थे। कुछ विद्वानों ने इनको फ्रांस की विभिन्न मतों तथा आवश्यकताओं का प्रतीक कहा है। कुछ विद्वान् इनको व्यर्थ की आवाज (Noisy Clamour) कहते थे।

इन काहियों के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें महत्वपूर्ण हैं—

(१) इनमें जनता की विभिन्न कठिनाइयों का उल्लेख है। यथा किसी में नमक कर घटाने की बात है तो किसी में तालाबों की मरम्मत तथा सफाई की बात है।

(२) किसी भी काहिया में राजा के विरोध में कोई भी बात नहीं कही गई है। प्रत्येक काहिया में राज-भक्ति का प्रदर्शन किया गया है।

(३) जनता ने सीमित राजतन्त्र तथा एक विधान-सभा की माँग की थी।

(४) जनता पादरियों के भी विरुद्ध न थी बशर्ते कि वे सुधार के लिये तैयार हों।

---

1. 'मिराब्यू ने अपने निर्वाचन के सम्बन्ध में एक ऐतिहासिक वाक्य कहा था'—'A mad dog ! That may be ! but elect me and despotism and privilege will die of my bite.'

2. 'These cahiers were the petitions and remonstrances drawn up by the electors of France as inctructions to their deputies at the coming States General.'

(५) इनमें कहीं पर भी समाजवादी व्यवस्था स्थापित करने के लिए मांग नहीं की गई है।

(६) बहुसंख्यक काहिया फ्रांस की निर्धनता पर प्रकाश डालते हैं और निर्धनता को दूर करने की मांग करते हैं।[1]

(७) जनता ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, भाषण तथा प्रकाशन की मांग की थी।

(८) मुद्रित पत्रों (Letters de Cachet) का भी विरोध किया था। Nobility of the Robe के पदों के क्रय तथा विक्रय का भी विरोध किया गया था।

(९) पादरियों के विशेषाधिकारों के अन्त करने के लिये भी प्रार्थना की गई है। कुछ काहियों में चर्च तथा सामन्तों के धन को सार्वजनिक कार्यों में व्यय करने की मांग है।

(१०) ये काहिया बहुत सरल तथा सुबोध भाषा में लिखे गये हैं। इनमें जटिल राजनीतिक प्रश्नों की अपेक्षा स्थानीय प्रश्नों पर ही विचार किया गया है।

इन काहियों के अतिरिक्त फ्रांस में इस समय बहुसंख्यक पैम्फ्लेट (Bruch-ures) निकाले गये थे। इन पैम्फ्लेट्स में कुछ में उनके लेखकों के नाम मिलते हैं तथा कुछ में नहीं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण तथा उल्लेखनीय पैम्फ्लेट सिये का है, जिसमें वह Third Estates के सम्बन्ध में प्रश्न करता है तथा स्वयं ही उसका उत्तर देता है—'तृतीय श्रेणी क्या है ?' 'वह सब कुछ है।' 'राजनीतिक क्षेत्र में अब तक उसकी कैसी स्थिति है ?' 'कुछ भी नहीं' 'वह क्या चाहती है ?' 'कुछ महत्व प्राप्त करना चाहती हैं।'[2]

स्टेट्स जनरल का अधिवेशन—४ मई को तीनों वर्गों के प्रतिनिधि सेन्ट लूसी (St. Luise) के गिर्जाघर में प्रार्थना के लिये इकट्ठे हुये। राजा ने तीनों के सम्मिलित अधिवेशन में भाषण देना स्वीकार कर लिया। परन्तु उसके भाषण से जनसाधारण को सन्तोष नहीं हुआ, क्योंकि उसमें उसने जनसाधारण की दशा सुधारने के लिये कोई बात नहीं कही थी। ऐसा कहा जाता है कि इस समय लुई सोलहवां न अधिक तानाशाही के लिये तैयार था और न अधिक सुधारों के लिये

1. 'There is only one thing they ask—that the Estates General should find a way to ease their lot, and to relieve the poverty of these poor people.'

2. 'What is the Third Estate ? It is everything. What has the Third Estate counted for hitherto ? Nothing. What does the Third Estate demand ? To count for some thing.'

स्टेट्स जनरल की प्रथम बैठक ५ मई १७८९ को वार्साई के विशाल भवन में हुई। इसमें प्रतिनिधियों की संख्या इस प्रकार थी—

तृतीय श्रेणी	६२१
कुलीन	२८५
पादरी	३०८
	१२१४

स्टेट्स जनरल का यह अधिवेशन १७५ वर्ष पश्चात् हो रहा था। अतः किसी को भी इस की कार्य-प्रणाली का कोई पता न था। राजा तथा नेकर ने भी प्रतिनिधियों के पथ-प्रदर्शन के लिये कोई प्रोग्राम नहीं बनाया था। बारेंतां (Barentin) नामक पदाधिकारी ने केवल यही बतलाया था कि सदस्य यह प्रश्न स्वयं निर्णय करेंगे कि उनको अपना अधिवेशन सम्मिलित रूप से करना है, अथवा पृथक्-पृथक् कमरों में बैठकर करना है। राजा ने उस समय दूरदर्शिता की नीति से काम नहीं लिया। यदि राजा स्टेट्स जनरल का नेतृत्व ग्रहण कर लेता तो सम्भवतः क्रान्ति नहीं होती, क्योंकि अभी तक भी नेता राजा को पदच्युत करने के पक्ष में न थे।

तृतीय श्रेणी (Third Estate) **की स्थिति**—तृतीय श्रेणी में अधिकांश व्यक्ति शिक्षित थे। इनमें से अधिकांश मध्यम वर्ग के थे। इनमें से ⅔ वकील तथा न्यायाधीश थे। बहुत से पादरी भी स्वेच्छा से इस वर्ग के प्रतिनिधि हो गये थे। इस वर्ग के कुछ विख्यात नेताओं के नाम इस प्रकार हैं—मिराब्यू (Mirabeau), सिए (Sieyes), राब्सपियर (Robespierre), जाजेफ मूनिए (Joseph Mounier), बारनाव (Barnava), विक्टर मालो (Victor Malouet), बाई, (Bailly) तथा कामू (Camus) आदि। उस समय इस वर्ग के प्रतिनिधियों की संख्या पहले से दुगुनी कर दी गई थी। अतः इनका उत्साह बहुत बढ़ गया था।

संघर्ष का प्रारम्भ—वोट के प्रकार के सम्बन्ध में ६ मई को सर्वप्रथम संघर्ष का प्रारम्भ हुआ। पहले प्रत्येक वर्ग की एक वोट होती थी। यदि अब भी इस प्रणाली का आश्रय लिया गया तो जन साधारण के प्रतिनिधियों की संख्या दुगुनी करने से भी कोई लाभ न था। कुलीन तथा पादरी वर्ग यह चाहते थे कि वोट भवन के अनुसार (Vote by order) हो। जनसाधरण ने प्रतिनिधि इस पर अड़े हुए थे कि वोट का आधार प्रत्येक प्रतिनिधि (Vote by head) के अनुसार हो। जनसाधारण के प्रतिनिधियों की मांग को स्वीकार कर लेने का अर्थ था—सामन्तों तथा पादरियों के विशेषाधिकारों का अन्त। परन्तु वे इसके लिए तैयार न थे। राजा ने सामन्त तथा पादरियों को अधिवेशन करने के लिए वार्साई में पृथक्-पृथक् भवन दिए। परन्तु तृतीय श्रेणी को स्टेट्स जनरल का पुराना हॉल प्रदान किया गया। एकमत न होने के कारण कोई भी कार्य सुचारू रूप से चलना कठिन था। १२ जून १७८९ को सिए ने सामन्त तथा पादरी वर्ग के पास अन्तिम संदेश भेजा कि वे जनसाधारण के

Quations (M. A.)

1. 'The constitution of the consulate by affecting a democratic guise crushed democracy itself.' Discuss.
2. What was Nepoleon's legacy to France ? It is right to regard him as the creator of contemporary and modern France ?
3. Explain how the centralized administration of Napoleon Bonaparte was an inheritance from the Revolution and the Ancient Regime.
4. Justify the statement that the Civil Code is the greatest monument of Nepoleon's statemanship.
5. Discuss the permanent influence of Nepoleon on Italy and Germany.

---

१२ सम्राट् नेपोलियन की शक्ति का चरमोत्कर्ष (१८०४–१८०७)

नेपोलियन का राज्याभिषेक । वैभव । संविधान । अमियां की सन्धि भंग । युद्ध की घोषणा । इंग्लैंड के विरुद्ध योजना । तृतीय संघ । आस्ट्रिया से युद्ध । ट्राफलगर का युद्ध । आस्टर्लिज का युद्ध । प्रेसबर्ग की सन्धि । पवित्र रोमन साम्राज्य का अन्त । राइन संघ का निर्माण । इटली में कार्य । प्रशा से युद्ध । रूस से युद्ध । टिल्सिट की सन्धि । प्रशा से सन्धि । नेपोलियन चरमोन्नति पर । महाद्वीपीय योजना । सफल बनाने के प्रयत्न । योजना के लागू करने के कारण । योजना के परिणाम । योजना का विनाश । योजना की असफलता के कारण ।

नेपोलियन का राज्याभिषेक—सन् १८०२ में नेपोलियन को १० वर्ष की अवधि के स्थान पर जन्म भर के लिए कॉन्सल बना दिया गया और उसको अपना उत्तराधिकारी चुनने का भी अधिकार दे दिया गया, परन्तु वह इससे सन्तुष्ट नहीं था । वह तो अपने को फ्रांस के सम्राट् के रूप में देखना चाहता था । अन्त में उसके संकेत पर सन् १८०४ में सीनेट ने उसको सम्राट् घोषित कर दिया । जनता ने भी उसके उस अधिकार का अनुमोदन किया । २ दिसम्बर, सन् १८०४ को नाटर डाम (Notre Dame) के गिर्जाघर में बड़ी धूमधाम के साथ नेपोलियन का राज्याभिषेक किया गया । नेपोलियन को राजमुकुट पहनाने के लिये पोप पायस सप्तम (Pope Pius VII) रोम से आया था । नेपोलियन ने पोप के हाथ से राज-मुकुट लेकर स्वयं ही अपने सिर पर धारण कर लिया । इस प्रकार गणतन्त्र का अन्त कर नेपोलियन फ्रांस का सम्राट् बन गया ।

सम्राट् बनने पर नेपोलियन की शक्ति में कोई वृद्धि नहीं हुई । वास्तव में सम्राट् के सभी अधिकारों का वह प्रथम कॉन्सल के रूप में उपयोग कर रहा था । इससे एक मात्र उसके गौरव में वृद्धि हुई । फ्रांस की जनता पूरी तरह उसके साथ थी, क्योंकि उसका विश्वास था कि एक मात्र नेपोलियन ही फ्रांस में सुव्यवस्था तथा शान्ति स्थापित कर सकता है । इस समय तक बूर्बां वंश के समर्थकों तथा जैकोबिन दल की शक्ति का भी अन्त हो गया था । नेपोलियन ने अपने सम्राट् पद को स्थायित्व देने के लिये धर्म का भी सहारा लिया । पोप से उसने धार्मिक समझौता कर लिया था । राज्याभिषेक के समय में भी उसने पोप को बुलाया था । परन्तु

ताज उसने उसके हाथ से लेकर अपने हाथ से पहना । इस प्रकार कैथोलिकों को प्रसन्न करते हुए भी अप्रत्यक्ष रूप से पोप की अधीनता स्वीकार नहीं की ।

इस प्रकार फ्रांस की उस जनता ने जिसने कि अपने निरंकुश सम्राट् लुई सौलहवें को फाँसी देकर समस्त योरप में गणतन्त्र स्थापित करने का प्रयास किया था, पुनः नेपोलियन का निरंकुश शासन स्वीकार कर लिया । अब प्रश्न उठता है कि इस परिवर्तन का क्या कारण था ? इस परिवर्तन का कारण यह था कि जनता क्रान्ति के पश्चात् की अव्यवस्था से थक गई थी । इस दौरान में समस्त व्यापार तथा उद्योग-धन्धे नष्ट हो गये थे । देश में अराजकता फैली हुई थी । विदेशी शत्रुओं के फ्रांस पर आक्रमण हो रहे थे । अब जनता इस अव्यवस्था के स्थान पर सुव्यवस्था चाहती थी । उसे यह पूरा विश्वास था कि एक मात्र नेपोलियन ही इस आन्तरिक तथा बाह्य संकट में जनता की रक्षा कर सकता है । दूसरे शब्दों में जनता इस समय दृढ़ शासन चाहती थी । दूसरे वास्तविकता यह थी कि जनता सम्राट् की विरोधी नहीं थी । वह तो एक मात्र विरोधी थी सामन्तों तथा पादरियों के विशेषाधिकारों की । नेपोलियन इस बात को पहिचानता था । उसने एक बार कहा था कि जनता स्वतन्त्रता की अपेक्षा समानता चाहती है । अतः उसने फ्रांसीसी समाज में समानता स्थापित करने के लिए पूरा प्रयास किया । उसने सब को धार्मिक स्वतन्त्रता दे दी । योग्यता के आधार पर सरकारी नौकरियों के द्वार सब के लिये खोल दिये । इससे नेपोलियन फ्रांसीसी जनता में बहुत लोकप्रिय हो गया ।

पुरातन राजसत्ता के वैभव की पुनरावृत्ति—अपने सम्राट्-पद को गौरव प्रदान करने के लिये लुई चौदहवें की भांति उसने अपने दरबार का संगठन किया । दरबार के वैभव में खूब धन व्यय किया जाने लगा । उसने कुलीन श्रेणी की एक समिति (Grand Dignitories) का निर्माण किया । इस समिति में सर्वोच्च पदाधिकारियों को स्थान दिया था । इस समिति में सबसे प्रमुख स्थान Grand Elector का होता था । यह पद नेपोलियन ने अपने भाई जासेफ बोनापार्ट (Joseph Bonaparte) को दिया था । यह सीनेट तथा लेजिस्लेटिव का अधिवेशन बुलाता था । दूसरा पद Arch Chancellor का था । यह न्याय समिति (Judicial body) में अध्यक्षता करता था । यह पद भूतपूर्व कॉन्सल कम्बेसरी को दिया गया था । तीसरा पद Arch Treasurer का था । इसका काम देश के आय-व्यय पर दृष्टि रखना था । यह पद लीब्रून (Le Brun) को दिया गया था । चौथा पद Arch-Chancellor of State का था । इसका कार्य विदेशी राजदूतों का स्वागत करना तथा सन्धियों को स्वीकार करना था । यह पद राजकुमार यूजेन (Eugene) को मिला था । पांचवा पद Grand Admiral का था । यह नौ-सेना का अध्यक्ष होता था । यह पद मूरा (Murat) को दिया गया था । अन्तिम महत्वपूर्ण पद Constable of the Empire का था । यह पद नेपोलियन ने लुई बोनापार्ट को दिया था ।

अंग-रक्षकों का अलग से संगठन किया गया था। नेपोलियन ने देश के चुने हुए प्रसिद्ध १८ सेनापतियों को मार्शल (Marshal) की उपाधि प्रदान की। इस पद का बहुत अधिक महत्व था। इससे प्रत्येक सैनिक इस पद को प्राप्त करने के लिये पर्याप्त चेष्टा करता था।

उसकी महारानी जोजेफाइन ने भी मेरी अन्तायनेत की भांति विलासिता से जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ किया। उसकी सेवा के लिये अनेक परिचारिकायें रक्खी गईं। महारानी की परिचारिकाओं में प्रथम स्थान मैडम-द-रैम्यू-सेत का था। नेपोलियन ने अपने भाइयों तथा सम्बन्धियों को भी उच्च पद प्रदान किये।

संविधान—नेपोलियन ने फ्रांस का सम्राट् बनने पर भी उसी संविधान की रूप-रेखा बनाए रक्खी जो कि कॉन्सल काल में था—

Senate—यह शासन का महत्वपूर्ण अंग था। इसमें समस्त Grand Dignitories, नेपोलियन के परिवार के सदस्य तथा उसके विश्वसनीय सहयोगी रहते थे। उसकी सदस्यता आजीवन होती थी। नेपोलियन के सम्राट् बनने पर इसका एक मात्र कार्य नेपोलियन की प्रशंसा करना तथा उसको बधाई देना था।

Legislative body—यह नेपोलियन द्वारा बनाये हुये कानूनों पर विचार करती थी, परन्तु इसके निर्णय प्रकाशित नहीं होते थे।

Tribunate—इसका कार्य भी अन्य समितियों द्वारा बनाये हुये कानूनों का अनुमोदन करना था।

Council of State—यह सबसे महत्वपूर्ण संस्था थी। नीति-निर्धारण करने तथा न्याय करने में यह सर्वोच्च थी।

अमियां की सन्धि का भंग होना—१४ महीने के अल्पकाल के पश्चात् ही अमियाँ की सन्धि भंग हो गई। इसके निम्नलिखित कारण थे—

(१) नेपोलियन एक जन्म-जात सैनिक था। युद्ध से ही उसका उत्कर्ष हुआ था। अतः उसने युद्ध को कभी नहीं भुलाया। अपनी स्थिति दृढ़ करके वह पुनः युद्ध की तैयारी करने लगा।

(२) नेपोलियन ने योरप में छः गणतन्त्रों की स्थापना की थी। ये सब फ्रांस के प्रभाव के अन्तर्गत थे। इंग्लैंड इससे अप्रसन्न था। वह यह कभी भी सहन नहीं कर सकता था कि हालैण्ड तथा बेलजियम पर फ्रांस का अधिकार हो।

(३) नेपोलियन अपनी उपनिवेश-स्थापना के लिए बराबर प्रयत्न कर रहा था। वह मिस्र को पुनः जीतना चाहता था। वह टीपू सुल्तान से पत्र-व्यवहार कर रहा था। इससे अंग्रेज बहुत नाराज थे।

(४) अंग्रेजों ने यह वायदा किया था कि वे माल्टा को खाली कर देंगे, परन्तु भावी युद्धों के महत्व को देखते हुए उन्होंने, इसको खाली नहीं किया। अतः उसने अंग्रेजों पर सन्धि भंग करने का दोषारोपण किया।

(५) अंग्रेजी पत्रों में नेपोलियन की कटु आलोचना हो रही थी। इंग्लैंड में स्थित फ्रांसीसी राजदूत ने इस आलोचना को बन्द करने के लिये कहा। परन्तु अंग्रेजों ने उत्तर दिया कि देश में प्रेस की स्वतन्त्रता होने के कारण सरकार कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकती। इसके बाद एक अंग्रेज आलोचक पर मान-हानि का अभियोग चलाया गया। परन्तु अंग्रेजी अदालत ने उस पर साधारण जुर्माना करके उसको मुक्त कर दिया। जनता ने यह जुर्माना चन्दा करके अदा कर दिया। इससे फ्रांस वाले बहुत नाराज हुये।

(६) इंग्लैण्ड ने भारत में स्थित फ्रांसीसी बस्तियों को वापस नहीं किया था।

(७) इंग्लैण्ड में बूर्बा वंश के तथा कुलीन वर्ग के अनेक प्रवासी रहते थे। परन्तु अंग्रेजों ने इनको अपने देश से नहीं निकाला था।

(८) नेपोलियन का समस्त योरप पर प्रभाव था। अतः उसने सब देशों से यह माँग की कि वे इंग्लैण्ड के व्यापार का बहिष्कार कर दें।

(९) अंग्रेज मुक्त व्यापार (Free Trade) के समर्थक थे; परन्तु नेपोलियन संरक्षण (Protection) का समर्थक था।

(१०) नेपोलियन ने केप आफ गुडहोप पर आक्रमण करने के लिए एक सेना भेजी। इसके द्वारा वह भारत जाने वाले मार्ग पर अधिकार करना चाहता था।

(११) नेपोलियन भूमध्य सागर से अंग्रेजों को निकालना चाहता था। अतः उसने एल्बा के ऊपर अधिकार कर लिया।

(१२) बाल्टिक सागर पर अपना अधिकार स्थापित करने के लिये उसने बटेवियन गणतन्त्र के ऊपर अधिकार कर लिया।

(१३) जर्मनी में हैनोवर का राज्य था; परन्तु नेपोलियन ने इस पर भी आक्रमण किया।

(१४) अंग्रेजी जहाजों ने फ्रांसीसी जहाजों को पकड़ना प्रारम्भ कर दिया। इसके बदले में नेपोलियन ने फ्रांस में घूमने के लिए आने वाले समस्त अंग्रेजों को गिरफ्तार कर लिया।

उपर्युक्त मतभेदों के कारण अंग्रेजों तथा नेपोलियन के सम्बन्ध बहुत खराब हो गए। अंग्रेजों ने नेपोलियन के सम्मुख निम्नलिखित मांगें रक्खीं—

[१] नेपोलियन हालैण्ड तथा स्वीट्जरलैण्ड को खाली कर दे।

[२] माल्टा पर १० वर्ष के लिये अंग्रेजों का ही अधिकार रहे।

[३] ट्यूस के तट के निकट के लेम्पेड्यूसा के द्वीप पर इंग्लैण्ड को अधिकार कर लेने दिया जाय।

युद्ध-घोषणा—परन्तु नेपोलियन ने इन मांगों को अस्वीकार कर दिया। फलतः १८ मई १८०३ को इंग्लैंड ने फ्रांस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस समय फ्राँस की शक्ति अंग्रेजों की अपेक्षा अधिक थी। आस्ट्रिया पिछले युद्धों से निर्बल हो गया था। प्रशा वेसिल की सन्धि के बाद से ही तटस्थ था। इंग्लैंड के बार-बार लालच देने पर भी वह निष्पक्ष था। स्पेन फ्राँस का पुराना मित्र था। हालैंड में फ्रांस की सेनायें पड़ी हुई थीं। रूस का जार सम्राट् अलेक्जेण्डर प्रथम भी नेपोलियन का मित्र था। परन्तु राजमाता तथा रूस के पूंजीपति अपने व्यापारिक हितों के कारण अंग्रेजों से युद्ध नहीं करना चाहते थे। इस प्रकार फ्रांस को एकमात्र इंग्लैंड से ही युद्ध करना था। नेपोलियन ने सीनेट में घोषित किया था कि यह युद्ध एकमात्र फ्रांस तथा इंग्लैंड के मध्य ही सीमित नहीं रहेगा, अपितु समस्त योरप में फैल जायगा। उसने कहा था यदि हम इंग्लैण्ड को जीत लें तो समस्त संसार पर हमारा अधिकार हो सकता है। 'यदि इंगलिश चेनल पर केवल छः घण्टे के लिये मेरा अधिकार हो जाय तो मैं समस्त संसार का स्वामी बन सकता हूँ।' इंगलिश चैनल के सम्बन्ध में नेपोलियन ने कहा था—'इंगलिश चैनल एक खाई के समान है, जिसको पार करने के लिये थोड़े से साहस की आवश्यकता है।'[1]

इंग्लैण्ड के विरुद्ध योजना—सफलतापूर्वक इंग्लैंड पर आक्रमण करने के लिये तीन चीजों की आवश्यकता थी—(१) सेना (२) सेना ले जाने के लिये जहाज तथा (३) जहाजों की रक्षा के लिये जहाजी बेड़ा। उसने इन तीनों साधनों को प्राप्त करने के लिये बहुत प्रयत्न किया। उसने सैनिक सेवा अनिवार्य कर दी। सन् १८०३ तथा सन् १८०५ के मध्य उसके सैनिकों की संख्या २ लाख १० हजार हो गई। इस सेना को सैनिक शिक्षा देकर बहुत योग्य बना दिया गया। उसने इस समस्त सेना को बूलों (Boulogne) में एकत्र किया। उसने यातायात के जहाज बनाने के लिये आदेश जारी किया। प्रारम्भ में उसका लक्ष्य ५०० जहाज बनाने का था। इसके बाद उसने क्रमशः १००० तथा २००० जहाज बनाने की योजना बनाई। परन्तु पर्याप्त प्रयत्न करने के पश्चात् भी वह १५०० से अधिक जहाज एकत्र न कर सका। शक्तिशाली जहाजी बेड़ा बनाने का कार्य सबसे कठिन था। नेपोलियन कभी भी इंग्लैंड के जहाजी बेड़े का सामना नहीं कर सकता था। अतः उसने यह योजना बनाई कि बिना जहाजी बेड़े के ही किसी दिन अंधेरे में अपनी विशाल सेना (Grand Army) को समुद्र से पार उतार दिया जाय। परन्तु यह बहुत खतरे का कार्य था। अतः उसने इस योजना का परित्याग कर दिया। अन्त में उसने हालैण्ड तथा स्पेन के जहाजी बेड़े की सहायता लेने का निश्चय किया। इसके अतिरिक्त नेपोलियन की जल-सेना दो स्थानों पर थी—ब्रेस्ट तथा टूलों। परन्तु ब्रेस्ट के बन्दरगाह पर अंग्रेजी जल-सेनापति कार्नवालिस तथा टूलों के बन्दरगाह पर जल-सेनापति नेलसन का कड़ा

---

1. English Channel is a narrow ditch. It requires a pinch of courage to cross it.'

पहरा था। अतः नेपोलियन के सम्मुख यह सबसे बड़ा प्रश्न था कि किस प्रकार ब्रेस्ट तथा टूलों के जहाजी बेड़े को एक स्थान पर एकत्र किया जाय।

फ्रांस के विरुद्ध तृतीय संघ (The Third Coalition) **का निर्माण**—छोटा पिट दुबारा ब्रिटेन का प्रधान मन्त्री बना। उसने अपने शत्रु नेपोलियन से टक्कर लेने के लिये उसके विरुद्ध योरोपीय राजाओं के तृतीय संघ का निर्माण किया। इस संघ में इंग्लैण्ड, आस्ट्रिया, रूस तथा स्वीडन सम्मिलित हुए। इस समय परिस्थिति पिट के अनुकूल थी। यद्यपि रूस का जार सम्राट् एलेक्जेण्डर प्रथम नेपोलियन का प्रशंसक था, परन्तु राजमाता, रूस के पूंजीपति और सामन्त नेपोलियन के विरोधी थे। उनके प्रभाव के अन्तर्गत एलेक्जेण्डर भी इंग्लैण्ड की ओर झुक गया। आंगिया के ड्यूक की हत्या से भी एलेक्जेण्डर उससे नाराज हो गया था। एलेक्जेण्डर प्रथम योरप की राजनीति में प्रसिद्धि प्राप्त करना चाहता था, परन्तु उसके पास सेना पर व्यय करने के लिये धन नहीं था। इसलिये पिट ने कई बार उसको आर्थिक सहायता दी। इससे वह भी इंग्लैंड के साथ गुट में सम्मिलित हो गया। आस्ट्रिया का गुट में सम्मिलित होना स्वाभाविक था, क्योंकि कैम्पोफोर्मिओ तथा लूनविल की सन्धियों की शर्तें उसके लिये बहुत कठोर थीं। आस्ट्रिया का सम्राट् फ्रांसिस द्वितीय यह नहीं चाहता था कि नेपोलियन जैसा साधारण व्यक्ति सम्राट् का पद धारण करे। ड्यूक की हत्या से भी आस्ट्रिया का सम्राट् नेपोलियन से नाराज था। लोम्बार्डी में नेपोलियन ने अपनी सेनायें इकट्ठी करनी प्रारम्भ कर दी थीं। इससे आस्ट्रिया के राज्य के लिये खतरा बढ़ गया था। प्रारम्भ में नेपोलियन ने यह वायदा किया था कि वह इटली के राज्य को पृथक रक्खेगा; परन्तु इस वचन के पश्चात् भी उसने इटली को फ्रांस में मिला लिया और १८०५ में उसने अपने को इटली का सम्राट् घोषित कर दिया तथा अपने पुत्र यूजेन को वहां अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। नेपोलियन के इन कार्यों से क्षुब्ध होकर जून १८०५ में आस्ट्रिया का सम्राट् फ्रांसिस द्वितीय भी संघ में सम्मिलित हो गया। पिट प्रशा के राजा को भी इसमें सम्मिलित करना चाहता था; परन्तु नेपोलियन ने उसको तटस्थ रहने पर हैनोवर देने का वचन दे दिया। इस प्रकार अपने दुर्बल स्वभाव के कारण प्रशा का सम्राट् फ्रेडरिक विलियम तृतीय इस तृतीय संघ में सम्मिलित न हुआ। बबेरिया (Bavaria) तथा वूर्टम्बर्ग (Wurttemberg) आस्ट्रिया से शत्रुता रखते थे। अतः वे नेपोलियन से मिल गये। पिट ने स्वीडन तथा नेपिल्स को भी अपने गुट में सम्मिलित कर लिया। इस प्रकार फ्रांस के विरुद्ध एक शक्तिशाली गुट का निर्माण हो गया।

आस्ट्रिया से युद्ध—नेपोलियन यह भली प्रकार जानता था कि आस्ट्रिया हमारा प्रबल शत्रु है, क्योंकि इसने फ्रांस के विरुद्ध बनने वाले प्रत्येक संघ में भाग लिया था। इसलिए आस्ट्रिया के विरुद्ध वह पहले से ही तैयारी कर चुका था। वोलोन से उसने अपने मन्त्री तालीराँ को लिखा था—'यदि वह अपनी विशाल सेना (Grand Army) को इंग्लैण्ड पर आक्रमण करने में प्रयुक्त न कर सका तो वह

उसका उपयोग आस्ट्रिया पर आक्रमण करने में करेगा। आस्ट्रिया वाले भी युद्ध की सम्भावना को समझ चुके थे। अत: नेपोलियन ने तुरन्त अपनी विशाल सेना को आस्ट्रिया पर आक्रमण करने को भेजा। आस्ट्रिया के युद्ध-संचालन में दो प्रमुख गलतियां थीं—

(१) उसका अनुमान था कि नेपोलियन का प्रमुख आक्रमण इटली की दिशा से होगा। फलत: उसने अपनी अधिकांश सेना इटली भेज दी। उसने दक्षिणी जर्मनी की रक्षा के लिए केवल ५० हजार सैनिक रक्खे। फलत: दक्षिणी जर्मनी अरक्षित हो गया। अत: नेपोलियन ने इसका पूरा लाभ उठाया।

(२) आस्ट्रिया ने रूस की सेना की प्रतीक्षा किए बिना ही युद्ध प्रारम्भ कर दिया।

फ्रांसीसी सेनायें प्रशा की तटस्थता का ख्याल किए बिना ही उसके प्रदेश से होकर डेन्यूब नदी की ओर बढ़ीं। २० अक्टूबर १८०५ को ऊल्म (Ulm) के पास फ्रांसीसी सेनाओं ने आस्ट्रिया के सेनापति मैक (Mack) को अपनी ५० हजार सेना के साथ आत्मसमर्पण करने को विवश किया। यह नेपोलियन की भारी सफलता थी। इसके लिये उसके विरोधियों ने भी उसकी प्रशंसा की है। इस सम्बन्ध में विश्व-विख्यात सेनापति मोल्टके (Moltke) भी उसकी समता नहीं कर सकता था। नेपोलियन ने स्वयं कहा था—'मैंने जैसे कहा था, उसी प्रकार मेरी योजना पर अमल किया गया।'

ट्राफलगर (Trafalgar) **का युद्ध**--फ्रांसीसी-जल-सेनानायक विलन्यूव (Villeneuve) टूलों के फ्रांसीसी जहाजी बेड़े को लेकर स्पेन की ओर चल दिया। मार्ग में स्पेन का जहाजी बेड़ा भी उससे मिल गया। परन्तु कार्नवालिस तथा नेल्सन की कठोर निगरानी के कारण ब्रेस्ट का जहाजी बेड़ा इनके साथ न मिल सका। विवश होकर विलन्यूव ने केडिज (Cadiz) में शरण ली। विलन्यूव के पास इस समय ३३ जहाज थे और नेल्सन के पास २७ जहाज थे। इसके बाद २१ अक्टूबर १८०५ को जब दोनों देशों की सेनाओं ने बाहर आने का प्रयत्न किया तो ट्राफलगर के अन्तरीप के समय उनकी मुठभेड़ हो गई। इस युद्ध में फ्रांस तथा स्पेन का जहाजी बेड़ा पूरी तरह नष्ट हो गया और ब्रिटेन की जल-शक्ति सर्वोपरि हो गई। १८१५ तक कोई भी देश उससे समुद्र में लड़ने का साहस न कर सका। इस युद्ध में ७ हजार फ्रेंच तथा स्पेन-निवासी मारे गए और इसके विपरीत तीन हजार अंग्रेज भी मारे गये। परन्तु इस युद्ध में इंग्लैण्ड का सुप्रसिद्ध जल सेनानायक नेल्सन मारा गया। इससे इंग्लैण्ड में इस युद्ध का अधिक हर्ष नहीं मनाया गया। ट्राफलगर की यह पराजय फ्रांस के लिए इतनी भयंकर थी कि इसके पश्चात् नेपोलियन ने सदैव के लिए समुद्र के मार्ग से इंग्लैण्ड के ऊपर आक्रमण करने की योजना त्याग दी।

आस्टर्लिज (Austerlitz) **का युद्ध**--ट्राफलगर की भीषण पराजय के पश्चात् भी नेपोलियन स्थल का अजेय वीर रहा। ट्राफलगर की पराजय का कोई शोक न

मनाते हुए नेपोलियन आस्ट्रिया में बराबर आगे बढ़ता गया और उसने आस्ट्रिया की राजधानी विएना पर अधिकार कर लिया। आस्टर्लिज के पास नेपोलियन ने आट्रिया तथा रूस की सम्मिलित सेनाओं का मुकाबला किया। युद्ध-स्थल में तीनों देशों के सम्राट् उपस्थित थे। अतः यह युद्ध इतिहास में तीन सम्राटों का युद्ध कहलाता है। यह युद्ध २ दिसम्बर १८०५ को हुआ। यह दिन नेपोलियन के राज्याभिषेक की वर्ष-गांठ का था। नेपोलियन ने इस दिन को अपने लिए बहुत भाग्यशाली कहा है, क्योंकि इस दिन उसने आस्ट्रिया तथा रूस की संयुक्त सेना को बुरी तरह पराजित किया। राजधानी पर अधिकार कर लेने पर भी नेपोलियन की स्थिति अच्छी न थी। नेपोलियन का वियना की ओर प्रस्थान सुनकर इटली से आर्क ड्यूक चार्ल्स चल दिया। उधर बोहेमिया में रूसी सेनाएं इकट्ठी हो रही थीं। यदि इस समय प्रशा अपनी पूरी शक्ति के साथ मध्य डेन्यूब की घाटी पर आक्रमण कर देता तो सम्भवतः नेपोलियन पराजित हो जाता, परन्तु आस्ट्रिया तथा रूस को अपनी शक्ति पर विश्वास था और उन्होंने प्रशा का सहयोग प्राप्त करने की चेष्टा नहीं की। दूसरे रूस नेपोलियन को पराजित करने का श्रेय प्राप्त करना चाहता था। आस्टर्लिज के स्थान पर दोनों विरोधी सेनाएं इकट्ठी हो गईं। नेपोलियन की सेना की संख्या ७० हजार थी और आस्ट्रिया तथा रूस की सेनाओं की संख्या ८० हजार थी। युद्ध प्रारम्भ होने पर नेपोलियन ने अपनी अतिरिक्त सेना का भी उपयोग किया। अन्त में आस्ट्रिया तथा रूस की संयुक्त सेनाएं पराजित हो गईं। इस युद्ध में आस्ट्रिया तथा रूस के १५ हजार सैनिक मारे गये तथा २० हजार कैद कर लिए गए। बहुत सी तोपें तथा युद्ध-सामग्री नेपोलियन के हाथ लगी। फलतः विवश होकर आस्ट्रिया के सम्राट् को सन्धि की प्रार्थना करनी पड़ी। इस पराजय का समाचार सुनकर इंग्लैण्ड के प्रधान मन्त्री छोटे पिट को इतना अधिक दुःख हुआ कि छः सप्ताह पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार नेपोलियन के विरुद्ध बने तृतीय संघ की भी रीढ़ टूट गई।

प्रेसबुर्ग (Pressburg) की सन्धि—आस्टर्लिग की पराजय के पश्चात् रूस का सम्राट् भाग गया और आस्ट्रिया के सम्राट् ने सन्धि की प्रार्थना की। फलतः २६ दिसम्बर १८०५ को नेपोलियन ने आस्ट्रिया के साथ सन्धि करली। यह आस्ट्रिया की तीसरी पराजय थी। अतः नेपोलियन ने पूरी तरह आस्ट्रिया को कुचलने का प्रयत्न किया। इस सन्धि की शर्तें निम्न प्रकार थीं—

(१) आस्ट्रिया ने वेनिस तथा डालमेशिया के प्रदेश फ्रांस को दे दिए।

(२) टाइरोल तथा स्वेबिया (Swabia) के प्रदेश फ्रांस के मित्र बबेरिया को दे दिए गए।

(३) बबेरिया तथा बर्टमबर्ग के सामन्तों (Electors) को राजा की उपाधि प्रदान की गई।

(४) बबेरिया, बर्टमबर्ग तथा बैडेन (Baden) को आस-पास के अनेक प्रदेश दे दिए गए।

इस सन्धि से आस्ट्रिया की प्रतिष्ठा को बहुत ठेस लगी। उसे लगभग तीस लाख जनसंख्या वाले प्रान्तों को छोड़ना पड़ा। राइन, इटली तथा स्वीट्ज़रलैण्ड से भी उसका सम्बन्ध टूट गया।

पवित्र रोमन साम्राज्य का अन्त—६ अगस्त १८०६ को नेपोलियन ने पवित्र रोमन सम्राट् के पद का अन्त कर दिया। अतः विवश होकर सम्राट् फ्रांसिस को अपने को आस्ट्रिया का ही सम्राट् घोषित करना पड़ा। वास्तव में 'पवित्र रोमन साम्राज्य' अब न पवित्र ही था, न रोमन ही था और न साम्राज्य ही था। फिर भी उसका गौरव बहुत अधिक था। गत ४०० वर्षों से हैप्सवर्ग के सम्राटों को होली रोमन सम्राट् का पद प्राप्त था। पवित्र रोमन साम्राज्य का अन्त करने से आस्ट्रिया केसम्राट् के पद तथा शक्ति का बहुत ह्रास हो गया।

राइन संघ का निर्माण—१२ जुलाई, १८०६ को नेपोलियन ने जर्मनी के साथ एक अन्य सन्धि की। इसके अनुसार जर्मनी के साम्राज्य को तीन भागों में बांट दिया गया (१) उत्तर में प्रशा का राज्य रहा। (२) दक्षिण तथा पूर्व में आस्ट्रिया का राज्य रहा। पश्चिम में जर्मनी के १६ राज्यों को मिलाकर राइन संघ (Confederation of Rhine) की स्थापना की गई। इस संघ के १६ राज्यों में से प्रत्येक को स्वतन्त्र मान लिया गया। केन्द्रीय शासन के संचालन के लिये एक डायट (Diet) का निर्माण किया गया। नेपोलियन ने अपने को इस संघ का संरक्षक घोषित किया। यह तय किया गया कि युद्ध-काल में प्रत्येक राज्य एक निश्चित संख्या में सैनिक नेपोलियन की सहायता के लिये देगा। नेपोलियन के इन कार्यों से अनजान में ही जर्मनी के एकीकरण का बहुत कुछ कार्य हो गया। उसने आस्ट्रिया तथा प्रशा की शक्ति को कम करने के लिये जर्मनी की छोटी-छोटी रियासतों को महत्व दिया था। उसका सिद्धान्त था 'पर्वतों को नीचा दिखाने के लिये घाटियों को ऊंचा करना।[1]

इटली में नेपोलियन के कार्य—प्रेसबर्ग की सन्धि के पश्चात् इटली में भी नेपोलियन का प्रभाव स्थापित हो गया। उसका यह प्रभाव इटली में बराबर ८ वर्ष तक बना रहा। उसने अपने सम्बन्धियों तथा सेनापतियों को इटली में बड़े-बड़े पदों पर आसीन किया। इटली ने नेपोलियन के युद्धों में भी सहायता की। नेपोलियन ने वेनिस आस्ट्रिया से छीन कर इटली में मिला दिया। टाइरोल आस्ट्रिया से छीन कर नेपोलियन ने अपने मित्र बवेरिया को दे दिया। उसके सेनापति मेसेना ने नेपिल्स बूर्बां वंश के सम्राट् फर्डीनेण्ड से छीन लिया। नेपोलियन ने उसको अपने भाई जोसेफ को दे दिया। नेपोलियन ने रोम के पोप की कोई परवाह न करते हुये अपने को रोम का बादशाह घोषित कर दिया। नेपोलियन के इन कार्यों से अप्रत्यक्ष रूप से इटली के एकीकरण में सहायता पहुँची। इस प्रकार आस्टर्लिज के युद्ध तथा प्रेसबर्ग की सन्धि के पश्चात् योरप के राज्यों में बहुत परिवर्तन हुये। इसीलिये

1. 'He wanted to erase the mountains and exalt the valleys.'

इंग्लैंड के प्रधान मन्त्री पिट ने कहा था—'योरप के नक्शे को लपेट कर रख दो। आगामी १० वर्ष तक हमें इसकी आवश्यकता नहीं होगी।'[1]

प्रशा से युद्ध—बैसिल की सन्धि के पश्चात् से प्रशा तटस्थता की नीति का पालन कर रहा था, परन्तु हैनोवर पर आक्रमण करते समय नेपोलियन ने तटस्थ प्रशा के राज्य में से अपनी सेनाओं को निकलने का आदेश दिया। सम्राज्ञी, प्रधान मन्त्री तथा प्रधान सेनापति को नेपोलियन का यह कार्य बहुत बुरा लगा। इन्होंने सम्राट् से नेपोलियन के विरुद्ध युद्ध करने की मांग की। अतः प्रशा के सम्राट् फ्रेडरिक विलियम तृतीय ने नेपोलियन से यह मांग की कि वह नेपिल्स, जर्मनी, स्विट्जरलैंड और पीडमाण्ट को खाली कर दे तथा हैनोवर प्रशा को वापस कर दे। परन्तु नेपोलियन ने इन बातों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। पिट की मृत्यु के पश्चात् फॉक्स इंग्लैंड का प्रधान मन्त्री बना। सन्धि-वार्ता के समय नेपोलियन ने हैनोवर का राज्य इंग्लैंड को देने का वायदा किया। इससे प्रशा का सम्राट् फ्रेडरिक विलियम तृतीय बहुत नाराज हुआ। उसने रूस से सन्धि कर फ्रांस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। प्रशा ने रूस की सेना के आगमन के पूर्व ही फ्रांस से युद्ध प्रारम्भ कर दिया। फलतः एक ही दिन में (१४ अक्टूबर १८०६) फ्रांस ने जेना (Jena) तथा आवेरस्टाट (Averstadt) के युद्धों में प्रशा की सेना को बुरी तरह पराजित किया। जेना में नेपोलियन ने स्वयं फ्रांस के सेनापति होहेनलोह (Hohenlohe) को पराजित किया। आवेरस्टाट में नेपोलियन के सुप्रसिद्ध सेनापति दावू (Davout) ने प्रशा के बूढ़े सेनापति ब्रुँजविक (Brunswick) को परास्त किया। इस युद्ध में ब्रुंजविक मारा गया। प्रशा के सेनापति ब्लूचर ने युद्ध जारी रक्खा, परन्तु अन्त में वह भी मारा गया। २५ अक्टूबर १८०६ को फ्रांसीसी सेनाओं ने बर्लिन में प्रवेश किया।

रूस से युद्ध—प्रशा की शक्ति को समाप्त कर नेपोलियन ने यह सोचा कि अब उसके शत्रुओं में केवल रूस तथा इंग्लैंड ही शेष हैं। अतः अब साथ ही साथ रूस की शक्ति का भी विनाश कर दिया जाय। वह प्रशा से सन्धि किये बिना रूस से लोहा लेने के लिये चल दिया। पहले उसने पोलैंड पर आक्रमण किया। पोलैण्ड-निवासियों ने उसकी सेनाओं का स्वागत किया। उन्हें यह आशा थी कि नेपोलियन पोलैण्ड को जार के शासन से मुक्त कर देगा। १५ दिसम्बर १८०६ में नेपोलियन ने पोलैण्ड की राजधानी वार्सा में प्रवेश किया। हजारों पोल उसकी सेना में भरती हो गये। सर्दी समाप्त होने पर आइलो (Eyleau) के मैदान में नेपोलियन तथा रूस की सेनाओं का युद्ध हुआ। इस भयंकर युद्ध में दोनों पक्षों के अलग-अलग लगभग ३५ हजार सैनिक मारे गये। इसके पश्चात् रूस वाले पीछे हट गए। इस प्रकार ८ फरवरी १८०७ का यह युद्ध अनिर्णायक रहा। इसके पश्चात् १४ जून

---

1. 'Roll up the map of Europe, it will not be wanted these ten years.'

१८०७ को उसने फ्रीडलैण्ड के मैदान में रूस के सम्राट् को पराजित कर दिया। वास्तव में इस युद्ध में रूस के सेनापति ने युद्ध-संचालन में गलती की। उसने एल (Alle) नदी पार कर शत्रु पर आक्रमण किया। इसका यह फल हुआ कि आवश्यकता पड़ने पर सेना को पीछे नहीं हटाया जा सकता था। फ्रीडलैण्ड (Friedland) के इस युद्ध में रूसियों को भारी हानि उठानी पड़ी। उनके २५००० सैनिक युद्ध में मारे गये। अन्त में रूस के सम्राट को सन्धि के लिये प्रार्थना करनी पड़ी। अन्त में टिलसिट (Tilsit) नामक स्थान पर दोनों सम्राटों ने भेंट की। नेपोलियन ने जार को यह प्रलोभन दिया कि दोनों सम्राट् सम्पूर्ण योरप को परस्पर बाँट लेंगे। नेपोलियन को लैटिन साम्राज्य दे दिया जायगा तथा जार को ग्रीक-साम्राज्य दे दिया जायेगा। जार नेपोलियन के इस प्रलोभन में आ गया। जार को यह भी शिकायत थी कि अंग्रेजों ने उसकी पूरी तरह से सहायता नहीं की है। अतः उसने प्रसन्नतापूर्वक टिलसिट की सन्धि को स्वीकार कर लिया।

नेपोलियन को रूस के इस अभियान में बहुत कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं। यातायात के साधनों का अभाव था। रसद की भी कमी थी। अतः सैनिक आलू के गोदामों को लूटने लगे। सैनिक भूख में छप्परों के फूंस को खाने लगे। कुछ सैनिकों ने कष्ट से छुटकारा पाने के लिये आत्म-हत्या कर ली। इस अवसर पर नेपोलियन ने स्वयं कहा था—'मैं फ्रांस वालों को भली प्रकार समझता हूँ। उनको दूर देशों में युद्ध के लिये ले जाना कठिन है, क्योंकि फ्रांस बहुत सुन्दर है।'[1] इन कठिनाइयों से नेपोलियन को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये थी, परन्तु इनसे उसने कुछ भी नहीं सीखा।

टिलसिट की सन्धि (Treaty of Tilsit)—८ जुलाई, सन् १८०७ को नेपोलियन तथा रूस के सम्राट् एलेक्जेण्डर प्रथम के मध्य सन्धि हो गई। इस सन्धि को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है:—

(१) प्रमुख सन्धि।

(२) गुप्त सन्धि।

(३) प्रशा के साथ सन्धि।

(१) **प्रमुख सन्धि**—(१) इस सन्धि के अनुसार नेपोलियन तथा एलेक्जेण्डर ने योरप को आपस में बांट लिया। नेपोलियन को पश्चिमी योरप तथा एलेक्जेण्डर प्रथम को पूर्वी योरप में इच्छानुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता मिल गई।

(२) नेपोलियन ने जिन नये राज्यों का निर्माण किया था, जार ने उसको स्वीकार कर लिया।

---

1. 'I know my Frenchmen. It is difficult to march on distant expeditions. France is too beautiful.'

(३) रूस से युद्ध का कोई हर्जाना नहीं लिया गया। उससे एक इंच भूमि भी नहीं छीनी गई, बल्कि उसे फिनलैण्ड तथा तुर्की की ओर साम्राज्य-विस्तार करने का प्रोत्साहन दे दिया गया।

(२) **गुप्त सन्धि**—इस गुप्त सन्धि के अनुसार दोनों सम्राटों ने यह तय किया कि इंग्लैण्ड अपने सामुद्रिक अधिकारों को त्याग दे तथा फ्रांस से सन्धि करने के लिये रूस की मध्यस्थता स्वीकार कर ले। यदि इंग्लैण्ड एक महीने के अन्दर-अन्दर इस मध्यस्थता को स्वीकार करने से इन्कार कर दे तो रूस फ्रांस के साथ मिलकर इंग्लैण्ड के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दे तथा डेन्मार्क, स्वीडन और पुर्तगाल को भी इंग्लैण्ड के विरुद्ध युद्ध करने के लिये प्रोत्साहित करे। वह इन देशों द्वारा इंग्लैण्ड के व्यापार का बहिष्कार करा दे। परन्तु कैंनिंग को किसी प्रकार इस गुप्त सन्धि का पता चल गया।[1] अतः उसने डेन्मार्क से कहा कि वह अपने बेड़ेको इंग्लैण्ड के अधीन कर दे; परन्तु उसने इसको स्वीकार नहीं किया। अतः उसने शक्ति के बल से डेनिश बेड़े पर अधिकार कर लिया।

इसी प्रकार रूस और टर्की के मध्य के झगड़े को तय करने के लिये फ्रांस मध्यस्थता का कार्य करेगा। यदि टर्की फ्रांस की मध्यस्थता को अस्वीकार कर दे तो रूस और फ्रांस दोनों मिलकर टर्की को आपस में बांट लेंगे। इस विभाजन के अनुसार आयोनियन द्वीप और कटोरो प्रदेश फ्रांस को मिलेंगे। रूस कुस्तुनतुनिया पर भी अधिकार करना चाहता था। परन्तु नेपोलियन ने इस मांग को अस्वीकार करते हुये कहा—'आप समस्त संसार के स्वामी बनना चाहते हैं।'[2]

(३) **प्रशा के साथ सन्धि**—नेपोलियन प्रशा के सम्पूर्ण राज्य को समाप्त करना चाहता था; परन्तु रूस के जार एलेक्जेण्डर प्रथम ने अपने पुराने मित्र की रक्षा की। जार के आग्रह से नेपोलियन ने प्रशा के राज्य की समाप्ति तो न की; परन्तु उसके बहुत से प्रदेशों को उससे छीन लिया। इससे उसका राज्य पहले से आधा रह गया—

(१) प्रशा के पास पोलैण्ड का जो भाग था वह छीन लिया गया। उसने ग्राण्ड डची ऑफ वार्सा (Grand Duchy of Warsaw) का निर्माण किया। यह राज्य नेपोलियन के मित्र सैक्सनी के ड्यूक को दे दिया गया।

(२) प्रशा से राइन नदी के किनारे के सब प्रदेश छीनकर वेस्टफालिया (Westphalia) नामक एक नये राज्य का निर्माण किया गया। यह राज्य नेपोलियन के भाई जेरोम (Jerome) को दे दिया गया।

---

1. कुछ इतिहासकारों का मत है कि नेपोलियन के मन्त्री तालीरां ने विश्वासघात करके गुप्त रूप से इस गुप्त सन्धि की सूचना इंग्लैण्ड को भेज दी थी। तालीरां को यह विश्वास हो गया था कि अन्त में पराजय नेपोलियन की ही होगी। अतः उसने पहले से ही इंग्लैण्ड से मित्रता कर लेनी चाही।

2. 'Constantinople ! Never ! That would be the mastery of the world.'

(३) उसकी सेना घटाकर केवल २२ हजार निश्चित कर दी।

(४) प्रशा पर युद्ध का भारी हर्जाना लादा गया। जब तक वह हर्जाना अदा नहीं करेगा तब तक वहां फ्रांस की एक सेना रहेगी तथा प्रशा को ही उसका समस्त व्यय देना होगा।

(५) प्रशा ने यह वायदा किया कि वह अपने बन्दरगाहों को अंग्रेजी व्यापार के लिये बन्द कर देगा।

(६) नेपोलियन ने जिन नये राज्यों का निर्माण किया था, उनको भी प्रशा ने स्वीकार कर लिया।

नेपोलियन अपनी शक्ति की पराकाष्ठा पर—इस समय नेपोलियन अपनी शक्ति की पराकाष्ठा पर था। यदि वह इसी वर्ष (१८०७) मर जाता तो उसके समान कुशल सेनानायक का उदाहरण न केवल योरप वरन् समस्त विश्व के इतिहास में न मिलता।[1] टिलसिट की सन्धि के पश्चात् योरप के राजाओं के तृतीय संघ का विनाश हो गया था। इस समय केवल इंग्लैण्ड तथा स्वीडन ही पराजित किये बिना रहे थे। इस समय नेपोलियन विश्व के सम्राटों में सबसे अधिक शक्तिशाली था। इस समय कार्सिका के एक निर्धन वकील खानदान के प्रत्येक स्त्री-पुरुष राजा-रानी के पद तक पहुंच गये थे। उसने अपनी इच्छानुसार योरप के नक्शे में अनेक परिवर्तन कर दिये थे। वह एक विशाल साम्राज्य का मालिक था। उसका यह साम्राज्य पो नदी से उत्तरी सागर तक और पेरेनीज पर्वत तक तथा पोप के राज्य से राइन नदी तक फैला हुआ था। उसकी माता इस विशाल साम्राज्य की राजमाता (Empress Mother) थी। उसका भाई जोसेफ नेपल्स का राजा था। कुछ समय पश्चात् जोसेफ को स्पेन का राजा बना दिया गया। उसने अपने दूसरे भाई लुई को हालैण्ड का राजा बनाया। प्रारम्भ में हालैण्ड में गणतन्त्र था, परन्तु भाई लुई के हित के कारण उसने इसको राजतन्त्र कर दिया। उसने अपने तीसरे भाई जेरोम को वेस्ट-फालिया का राजा बनाया। उसका सौतेला पुत्र यूजेन उत्तरी इटली में उसका वाइसराय था। उसकी एक बहिन एलिस (Elise) एक छोटी सी रियासत लुक्का (Lucca) की राजकुमारी थी। उसने अपनी दूसरी बहन कैरोलिन का विवाह अपने प्रसिद्ध सेनापति म्यूरा (Murat) के साथ कर दिया तथा उसको ड्यूक ऑफ बर्ग (Duke of Berg) बना दिया। कालान्तर में जब जोसेफ को नेपल्स से हटाकर स्पेन भेज दिया गया तो म्यूरा को नेपल्स का राजा बना दिया गया। प्रशा तथा आस्ट्रिया की शक्ति का उसने पूर्ण विनाश कर दिया था। डेन्मार्क का राजा उसका प्रशंसक था। रूस का जार सम्राट् एलेक्जेण्डर प्रथम उसको अपना मित्र तथा भाई मानता था। स्विट्जरलैण्ड में भी उसका प्रभाव था। पोप भी उसको अपना मित्र

---

1. 'Had he died in that year his career would have seemed the most miraculous in the military annals of Europe and perhaps of the world.' —Grant and Temperley.

मानता था। सौभाग्यवश उसके कट्टर शत्रु इंग्लैण्ड के प्रधान मन्त्री पिट की मृत्यु हो गई थी। इस प्रकार इंग्लैण्ड के अतिरिक्त समस्त योरप में उसका बोलबाला था।

महाद्वीपीय योजना (The Continental System)—ट्राफल्गर की पराजय के पश्चात् नेपोलियन ने यह समझ लिया था कि युद्ध में अंग्रेजों को पराजित नहीं किया जा सकता। जिस इंगलिश चैनल को वह एक Ditch समझता था। अब वह उसके लिये न पार करने योग्य बन गई थी। उसने इसे स्वीकार करते हुये कहा था कि 'हमारे लिये पेरिस से दिल्ली तक सेनायें भेजना सरल है; परन्तु बोलोन से फोक्स्टोन तक सेनायें भेजना असम्भव है।[1] अतः इंग्लैण्ड ने जल-मार्ग से इंग्लैण्ड को पराजित करने का विचार त्याग दिया। अब उसने स्थल से समुद्र को जीतने का प्रयत्न किया।[2] ऐसा कहा जाता है—'नेपोलियन योरप को फ्रांस द्वारा जीतना चाहता था तथा इंग्लैण्ड को योरप द्वारा जीतना चाहता था।[3] टिलसिट की सन्धि के पश्चात् योरप में ऐसा कोई राज्य न रहा था, जो नेपोलियन का विरोध कर सके। अतः उसने इन सबकी शक्ति को इंग्लैण्ड के विरुद्ध लगानी चाही। उसे मान्टगैलार्द ने सुझाव दिया था—इंग्लैण्ड दुकानदारों का देश है। अतः उसको पराजित करने के लिये उसके साथ आर्थिक युद्ध किया जाय।[4] उसके व्यापार को नष्ट करना उसके हृदय पर चोट करना है।[5] नेपोलियन की समझ में यह बात आ गई और उसने मान्ट गैलार्द की योजना को स्वीकार कर इंग्लैण्ड से आर्थिक युद्ध करने का दृढ़ निश्चय किया। नेपोलियन यह जानता था कि इंग्लैण्ड के पास मिल और खानें हैं। उसके पास खेत तथा अनाज नहीं है। वह अपने देश का बना पक्का माल विदेशों को भेजता था और उसके बदले में मिलों में कच्चा माल और खाने के लिये अन्न आदि प्राप्त करता था। अतः नेपोलियन ने एक विशाल आयोजन द्वारा इंग्लैण्ड के आयात-निर्यात को बन्द करने का निश्चय किया। उसका यह कार्य महाद्वीपीय व्यवस्था (Continental System) अथवा महाद्वीपीय अवरोध (Continental Blockade) कहलाता है। फिशर महोदय के शब्दों में महाद्वीपीय योजना ग्रेट ब्रिटेन के विरोध में एक संघ था।[6]

---

1. 'It is easier to send troops from Peris to Delhi than from Boulogne to Folkestone.'

2. 'To conquer the sea by the land.

3. 'Napoleon wanted to conquer Europe through France and England through Europe.

4. 'It is through her commerce that England must be attacked.'

5. 'To destroy her commerce is to hit her to heart.'

6. 'The Continental System was a coalition against Great Britain.'

महाद्वीपीय योजना की पृष्ठभूमि—यह योजना नेपोलियन की कोई मौलिक सूझ नहीं थी। उसके पूर्व भी इस विचार-धारा के अंश मिलते हैं।

(१) फ्रांसीसी राज्य-क्रान्ति के पूर्व फ्राँस में Marcantilist Theory का प्रतिपादन हुआ था। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी भी देश की समृद्धि इस बात पर निर्भर है कि विदेशी व्यापार पर निर्भर न रहा जाय।

(२) रूसो ने अपनी राजनीतिक व्यवस्था में यह प्रतिपादित किया है—आदर्श राज्य वही है जो पूर्ण रूप से आत्म-निर्भर तथा स्वावलम्बी हो।

(३) बूर्बा वंश के शासन-काल के अन्तिम चरण में फ्रांस में Physiocrats का जन्म हुआ था। उसने फ्रांस की आर्थिक अवस्था पर विचार करते हुये कहा कि किसी भी देश की समृद्धि भूमि पर निर्भर है, व्यापार पर नहीं। इस प्रकार विदेशी व्यापार को हतोत्साहित किया गया।

(४) नेशनल असेम्बली तथा नेशनल कन्वेन्शन ने भी ब्रिटिश व्यापार का विरोध किया था।[1] नेशनल कन्वेन्शन ने अंग्रेजी माल को जब्त करने के लिये अनेक कानून पास किए थे।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि नेपोलियन ने महाद्वीपीय योजना की रूप-रेखा पूर्वकालीन मतों तथा कानूनों के आधार पर विकसित की थी।

नेपोलियन के अंग्रेजी व्यापार-बहिष्कार के कुछ प्रारम्भिक कार्य—नेपोलियन के अंग्रेजी व्यापार-बहिष्कार का कार्य बर्लिन आदेश (Berlin Decree) से होता है। परन्तु इससे पूर्व भी अंग्रेजी व्यापार के बहिष्कार के लिये उसने कुछ कार्य किये थे—

(१) २१ नवम्बर १८०६ में नेपोलियन ने नेपिल्स से फ्लोरेन्स की संधि (Treaty of Florence) की थी। इस संधि में उसने नेपिल्स के राजा से यह प्रतिज्ञा कराई थी कि वह अंग्रेजी माल को अपने देश में नहीं आने देगा।

(२) नेपोलियन प्रशा को हैनोवर का राज्य इस शर्त पर देने को तैयार हो गया कि वह अंग्रेजी माल का बहिष्कार करे। प्रशा इसके लिये तैयार हो गया। इस पर प्रशा तथा इंग्लैंड के सम्बन्धों में बड़ी तनातनी उत्पन्न हो गई।

महाद्वीपीय युद्ध का प्रारम्भ—इस योजना को लागू करने के लिये नेपोलियन ने कतिपय आदेश जारी किये। प्रथम आदेश बर्लिन से घोषित किया गया।

(१) **बर्लिन आदेश** (Berlin Decree)—२१ नवम्बर १८०६ में नेपोलियन ने बर्लिन आदेश की घोषणा की। इस घोषणा द्वारा महाद्वीपीय योजना लागू की गई।

---

1. 'We should shut those markets to the English by opening them to all the world.' —Kersaint.

इस घोषणा द्वारा इंग्लैंड का आर्थिक घेरा डाल दिया गया । इस आदेश के द्वारा यह घोषित किया गया कि योरप का कोई भी देश इंग्लैंड के साथ व्यापार न करे । उन देशों में ब्रिटेन के जितने व्यक्ति हों उन सब को गिरफ्तार कर उनकी सम्पत्ति का अपहरण कर लिया जाय । इंग्लैंड को कोई भी पत्र अथवा पार्सल न भेजा जाय । नेपोलियन ने इस आदेश को स्पेन, हालैण्ड तथा नेपिल्स में भी भेज दिया ।

(२) **वार्सा आदेश** (Warsaw Decree)—२५ जनवरी, १८०७ को नेपोलियन ने वार्सा आदेश जारी किया । इसके अनुसार प्रशा तथा हैनोवर के समुद्र-तटों पर भी अंग्रेजी व्यापार के विरुद्ध प्रतिबन्ध लगा दिया गया । नेपोलियन ने उसके आदेशों को दृढ़तापूर्वक न मानने वाले देशों को युद्ध की धमकी दी । टिलसिट की सन्धि के पश्चात् रूस, प्रशा तथा डेन्मार्क ने भी अंग्रेजी माल का बहिष्कार कर दिया । इससे अंग्रेजों को बहुत हानि हुई ।

उसी समय नेपोलियन को सूचना मिली कि हेलिगोलैण्ड (Heligoland) अंग्रेजी माल का केन्द्र है । यहीं से यह माल गुप्त रूप से उत्तरी सागर से होकर योरप भेजा जाता है । अत: नेपोलियन ने उत्तरी समुद्र-तट पर अंग्रेजी माल का पूर्ण रूप से बहिष्कार करने के लिये दिसम्बर १८१० में उत्तरी-पश्चिमी वेस्टफालिया तथा उत्तरी-पश्चिमी प्रशा पर अधिकार कर लिया । कुछ समय पश्चात् उसने ओल्डेनबर्ग (Oldenburg) पर भी अधिकार कर लिया ।

इस समय रूस, प्रशा तथा जर्मनी आदि के बन्दरगाहों पर अंग्रेजी माल से लदे तटस्थ देशों के अनेक जहाज खड़े थे । इनमें से कुछ के पास लाइसेन्स थे तथा कुछ के पास नहीं । अक्टूबर १८१० में नेपोलियन के आदेश पर इन देशों ने इनके माल को जब्त कर लिया । नेपोलियन के इन कार्यों से अंग्रेजों को बहुत हानि हुई ।

महाद्वीपीय योजना को सफल बनाने के लिये नेपोलियन का प्रयास—इस योजना को सफल बनाने के लिये यह आवश्यक था कि वह योरप के राज्यों को ब्रिटेन से व्यापार न करने दे । इसके लिये उसने निम्नलिखित प्रयास किए—

रूस—टिलसिट की संधि के अनुसार रूस के सम्राट् एलेक्जेण्डर प्रथम ने नेपोलियन की इस योजना को स्वीकार कर लिया था । इसी लिये उसने जार को फिनलैण्ड तथा तुर्की का कुछ भाग देने का लालच दिया था । उन्होंने यह भी तय किया था कि पुर्तगाल, डेन्मार्क तथा स्वीडन पर भी इस योजना को स्वीकार कराने को दबाव डाला जाय ।

आस्ट्रिया—२८ फरवरी १८०८ को उसने आस्ट्रिया को विवश किया कि वह महाद्वीपीय योजना को स्वीकार कर ले ।

पोप का राज्य—उसने पोप से भी इस योजना को मानने के लिये कहा, परन्तु पोप ने अपने को तटस्थ राज्य घोषित कर दिया । इससे अप्रैल १८०८ में

नेपोलियन ने उसके राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। नेपोलियन की यह बहुत बड़ी गलती थी। पोप के राज्य पर आक्रमण करने से समस्त कैथोलिक संसार उसका शत्रु हो गया।

स्पेन—स्पेन के भी अधिकांश भाग पर उसने अधिकार कर लिया। पर स्पेन का युद्ध जनयुद्ध में परिणत हो गया और नेपोलियन के पतन का कारण बना।

(३) **मिलान आदेश** (Milan Decree)—१७ दिसम्बर, १८०७ को नेपोलियन ने मिलान आदेश जारी किया। इसके अनुसार घोषित किया गया कि जो जहाज अंग्रेजों को अपनी तलाशी देगा अथवा अंग्रेजी बन्दरगाह में उपस्थित होगा उसका माल जब्त कर लिया जायगा।

(४) **फाण्टेब्ल्यू आदेश** (Fontainebleau Decree)—१८ अक्टूबर १८१० को नेपोलियन ने फाण्टेब्ल्यू आदेश जारी किया। यह आदेश सबसे कठोर था। इसके अनुसार यह घोषित किया गया कि जो अंग्रेजी माल जब्त किया जायगा वह खुले आम जलाया जायगा। एक न्यायालय की स्थापना की गई जो अवैध ढंग से व्यापार करने वाले व्यक्तियों को दण्ड देगा। अवैध व्यापार के सम्बन्ध में सूचना देने वाले व्यक्तियों को पुरस्कार दिया जायगा।

इंग्लैंड का प्रत्युत्तर—नेपोलियन के आदेशों का उत्तर इंग्लैंड ने कौंसिल में आर्डर (Order in Council) पास करके दिया। जनवरी तथा नवम्बर १८०७ में उसने घोषित किया कि यदि किसी भी जहाज में फ्रांस अथवा उसके उपनिवेशों का बना हुआ माल पाया गया तो वह जब्त कर लिया जायगा। इस आदेश में यह भी कहा गया कि इसकी घोषणा होने के पूर्व जो जहाज बन्दरगाहों से चल दिये हों और बीच मार्ग में हों वे या तो वापस चले जायें अथवा किसी अंग्रेजी बन्दरगाह में उपस्थित हों। अपने विदेशी व्यापार को कायम रखने के लिये अंग्रेजों ने तटस्थ राज्यों को यह लालच दिया कि वे उनके माल पर कम चुँगी लगायेंगे। एक नये आदेश द्वारा यह घोषित किया गया कि कोई भी तटस्थ राज्य शत्रु-राज्य के किसी जहाज को न खरीदे। एक दूसरे आदेश द्वारा यह घोषित किया कि इंग्लैंड तथा शत्रु राज्यों के बन्दरगाहों के मध्य अंग्रेजों की ओर से व्यापार करने वाले तटस्थ देशों के जहाजों को हर प्रकार की सुविधा दी जायगी। इंग्लैंड ने यह भी घोषित किया कि प्रशा तथा पुर्तगाल आदि देशों ने विवश होकर इस योजना को स्वीकार किया है। अतः उनके पकड़े हुये जहाजों को छोड़ दिया जायगा।

अवैध व्यापार को रोकने के लिये नेपोलियन के कुछ अन्य प्रयास—नेपोलियन की उपर्युक्त घोषणाओं से अंग्रेजी व्यापार को बहुत धक्का लगा। परन्तु फिर भी अवैध रूप से अंग्रेजों से व्यापार चलता रहा। तटस्थ देशों के जहाज छिपकर उत्तरी सागर तथा बाल्टिक सागर के देशों में माल पहुँचा रहे थे और यहां से वह स्थल के मार्ग से योरप के विभिन्न देशों में पहुँच जाता था। कुछ लोग जाली लाइसेन्सों के

आधार पर भी व्यापार कर रहे थे। अतः नेपोलियन ने अंग्रेजी वस्तुओं पर भारी चुंगी लगा दी। प्रशा ने भी इसका अनुकरण किया। फलतः अंग्रेजों का व्यापार बहुत कम हो गया।

पुर्तगाल—१८०४ में नेपोलियन ने पुर्तगाल की तटस्थता स्वीकार कर ली थी। परन्तु इस समय उसने पुर्तगाल से अपनी तटस्थता छोड़ने पर महाद्वीपीय योजना में सहयोग देने को कहा। उसने इसको स्वीकार नहीं किया। अतः फ्रांस ने पुर्तगाल पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेजी बेड़े के संरक्षण में वहाँ का राजा अपने परिवारसहित ब्राजील चला गया और पुर्तगाल पर फ्रांस का अधिकार हो गया।

डेन्मार्क—टिलसिट की सन्धि की सूचना मिलने पर इंग्लैण्ड के विदेश मन्त्री कैनिंग ने एक अंग्रेजी बेड़ा कोपेनहेगेन भेज दिया। उसे यह भय था कि डेन्मार्क का बेड़ा फ्रांस के हाथ में आ जायेगा। अतः उसने डेन्मार्क से मांग की कि वह अपना जहाजी बेड़ा ब्रिटेन को सौंप दे। परन्तु उसने इस मांग को स्वीकार न किया। फलतः सितम्बर १८०७ में बलपूर्वक कैनिंग ने उसका जहाजी बेड़ा छीन लिया।

हालैण्ड—हालैण्ड में नेपोलियन का भाई लुई बोनापार्ट राज्य कर रहा था। उसकी प्रजा महाद्वीपीय योजना से बहुत परेशान थी। अतः उसने इसका पूरी तरह पालन नहीं किया। इससे नेपोलियन बहुत नाराज हुआ। उसने यह भी शिकायत की कि हालैण्ड से प्रति माह १०० जहाज शत्रु देशों में व्यापार के लिए जाते हैं। धीरे-धीरे दोनों भाइयों में बहुत मतभेद बढ़ गया और ९ जुलाई १८१० को नेपोलियन ने हालैण्ड को फ्रांस में मिला लिया।

प्रशा—प्रशा को भी इस योजना में सहयोग देने के लिये एक सन्धि नैपोलियन से करनी पड़ी।

स्वीडन—सन् १८०८ में नेपोलियन ने स्वीडन को पराजित कर उसे भी महाद्वीपीय योजना स्वीकार करने के लिये बाध्य किया। इस विजय के फलस्वरूप नार्वे का समुद्र-तट भी नेपोलियन ने ब्रिटिश जहाजों के लिए बन्द कर दिया।

इस प्रकार योरप के अधिकांश देशों ने नेपोलियन की इस योजना को स्वीकार कर लिया। इस योजना को कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व विभिन्न व्यक्तियों को निम्न प्रकार दिया गया—

(१) फ्रांस, इटली तथा राइन प्रदेश का नियन्त्रण स्वयं नेपोलियन ने अपने हाथ में लिया।

(२) नेपल्स अपने भाई जोसेफ के नियन्त्रण में दे दिया।

(३) वेस्टफालिया को अपने भाई जेरोम को दिया।

(४) टस्कनी का भार उसने अपने भाई एलिस को दिया।

(५) पदच्युत होने के पहले हालैण्ड उसके भाई लुई बोनापार्ट के नेतृत्व में था।

महाद्वीपीय योजना लागू करने के कारण—टाम्सन (Thompson) के अनुसार निम्नलिखित कारणों से नेपोलियन ने महाद्वीपीय योजना को लागू किया था।

(१) यदि इंग्लैण्ड के बने माल का निर्यात न होगा तो वह दिवालिया हो जायगा। इस हालत में वह न स्वयं युद्ध कर सकेगा और न अपने मित्रों को सहायता दे सकेगा।

(२) इंग्लैण्ड पर बहुत अधिक राष्ट्रीय ऋण था। इसके लिये उसको बहुत ब्याज देना पड़ता था। अतः उसे धन की आवश्यकता थी। पेपर करेन्सी को सुरक्षित रखने के लिये भी उसको धन की आवश्यकता थी। नेपोलियन का यह विचार था कि व्यापार के नष्ट हो जाने पर उसे धन नहीं मिलेगा। इससे उसकी आर्थिक अवस्था बहुत अधिक खराब हो जायगी।

(३) माल का निर्यात न होने पर कल-कारखाने नष्ट हो जायेंगे। बहुत से पूँजीपति तथा व्यापारी दिवालिया हो जायेंगे। देश में बेकारी फैल जायगी। राजनीतिक अवस्था बहुत खराब हो जायगी। फलतः परेशान होकर स्वयं इंग्लैण्ड सन्धि के लिये प्रार्थना करेगा।

महाद्वीपीय योजना के परिणाम—इस योजना के कई महत्वपूर्ण परिणाम हुए—

(१) वास्तव में पूरी तरह यह योजना कभी भी लागू न हो सकी। लाइसेंसों के आधार पर एक देश दूसरे से माल मंगाता रहा। स्वयं नेपोलियन ने अंग्रेजों से कई बार चीनी, काफी, जूते तथा ओवर कोट आदि मंगाये थे। इस सम्बन्ध में जो लाइसेंस तथा परमिट आदि दिये जाते थे, उससे देश में बड़ा भ्रष्टाचार फैल गया।

(२) फ्रांस तथा उसके साथी देशों को नित्यप्रति की अनेक वस्तुओं के लिये कठिनाई होने लगी। उनकी जनता को अनेक कष्ट उठाने पड़े। इससे वे सब देश नेपोलियन के विरोधी हो गये। नेपोलियन का नक्षत्र अस्त होने लगा। इस विरोध से नेपोलियन स्वयं परिचित था; परन्तु हठी होने के कारण उसने अपने हठ को नहीं छोड़ा। चीनी, काफी तथा नील आदि के आयात को बन्द करने से इन वस्तुओं का देश के बाजारों में दिखाई देना बन्द हो गया। अतः नेपोलियन ने अपने कृषि-विशेषज्ञों और वैज्ञानिकों की सहायता से इन वस्तुओं का अधिक उत्पादन अपने ही देश में प्रारम्भ कराया।

(३) इस योजना से अंग्रेजों को भी बड़े कष्ट उठाने पड़े। देश में अनाज बहुत महंगा हो गया। मशीनों का बना सामान गोदामों में इकट्ठा होने लगा। इससे व्यापारी घबरा गये। उन्होंने सरकार से निवेदन किया कि वह फ्रांस से समझौता कर ले। परन्तु इसी बीच स्पेन ने नेपोलियन के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ कर दिया। इससे अंग्रेजों ने उससे सन्धि करके उसके उपनिवेशों में अपना व्यापार प्रारम्भ कर दिया। इसके पश्चात् मध्य अमेरिका तथा दक्षिणी अमेरिका ने भी अपने बन्दरगाह इंग्लैण्ड के व्यापार के लिये खोल दिये। इससे एक दम अमेरिका के बाजारों में बहुत माल

पहुँच गया। फलतः माल का मूल्य बहुत गिर गया। कागजी नोटों का मूल्य गिर गया। इंग्लैण्ड के सम्मुख आर्थिक संकट आ गया। अंग्रेजी बन्दरगाहों में जब्त किया हुआ बहुत सा माल इकट्ठा हो गया था। इससे अंग्रेजी माल का मूल्य भी ४० से ५० प्रतिशत तक कम हो गया। अपनी आर्थिक अवस्था को ठीक करने के लिये जनता पर अधिक कर लगाये गये तथा अधिक मात्रा में ऋण लिया गया।

(४) इस नीति के पालन के कारण नेपोलियन को अनेक देशों से युद्ध कर शत्रुता मोल लेनी पड़ी। इसी के कारण रूस से उसकी मित्रता भंग हो गई। पोप से शत्रुता हो गई। स्पेन तथा पुर्तगाल पर आक्रमण करना पड़ा। अन्त में ये सब बातें उसके पतन में सहायक हुई।

(५) इसी योजना के कारण इंग्लैण्ड को कोपेनहेगेन के बन्दरगाह पर बम-वर्षा करके डेनिश बेड़े को नष्ट करना पड़ा। इसी के कारण १८१२ में उसे संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से युद्ध करना पड़ा।

महाद्वीपीय योजना का विनाश—अंग्रेजी माल के बहिष्कार से रूस की जनता को बहुत कष्ट हुआ। फलतः दिसम्बर १८१० में जार ने ब्रिटेन से आयात प्रारम्भ कर दिया। जार ने स्वीडन से भी सन्धि कर ली। १८१२ इंग्लैण्ड ने इन दोनों देशों से व्यापारिक समझौता कर लिया। प्रशा ने भी इन देशों का साथ दिया। फलतः रूस, प्रशा तथा स्वीडन ने नेपोलियन की महाद्वीपीय योजना का स्पष्ट विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। पुर्तगाल तथा स्पेन ने भी नेपोलियन के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ कर दिया। स्वयं उसका भाई लुई बोनापार्ट इस योजना का विरोधी था। फलतः यह योजना टूट गई।

महाद्वीपीय योजना की असफलता के कारण—प्रारम्भ में तो यह योजना कुछ सफल हुई; परन्तु धीरे-धीरे वह असम्भव प्रतीत होने लगी। इसकी असफलता के निम्नलिखित कारण थे—

(१) यह एक असम्भव योजना थी। प्रत्येक देश से यह आशा करना व्यर्थ था कि वह असंख्यक कष्ट उठाते हुये इस योजना का पालन करता रहेगा।

(२) जहाजी बेड़े के अभाव में हजारों मील लम्बे समुद्र-तट की रक्षा करना फ्रांस के लिये असम्भव था।

(३) इंग्लैण्ड में अन्न का बहुत अभाव था; परन्तु नेपोलियन बराबर उसको भारी मूल्य पर अन्न भेजता रहा। उसका यह ख्याल था कि इंग्लैण्ड के पास धन बहुत कम है। अधिक मूल्य पर अन्न खरीदने से उसका धन और कम हो जायगा तथा वहां आर्थिक संकट उत्पन्न हो जायगा। यदि इंग्लैण्ड में अन्न न पहुंचता तो राष्ट्र भूखा मरने लगता और विवश होकर सम्भवतः सन्धि के लिये तैयार हो जाता।

(४) फ्रांस के पास इतना अधिक शक्तिशाली जहाजी बेड़ा नहीं था कि वह खुले समुद्रों में जहाजों को पकड़ सके।

(५) योरप के राज्य तथा स्वयं फ्रांस भी कपड़ों, जूतों, चीनी, चाय तथा कहवा आदि के लिये इंग्लैण्ड पर निर्भर था। परन्तु जब ये वस्तुयें इंग्लैण्ड से आनी बन्द हो गईं तो इन देशों की जनता को अपार कष्ट होने लगे। फलतः वहां की जनता ने इस योजना का विरोध करना आरम्भ कर दिया। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि आईलो के युद्ध के समय नेपोलियन ने स्वयं हालैण्ड के द्वारा इंग्लैण्ड से ५० हजार ओवर कोट मंगवाये थे।

(६) सारे योरप में इंग्लैण्ड से आने वाले माल के लिये चोर बाजारी होने लगी और नेपोलियन इस चोर बाजारी को न रोक सका।

(७) नेपोलियन के राज्यों ने इस योजना को विवशतावश स्वीकार किया था; परन्तु वास्तव में वे उसको असम्भव समझते थे तथा अवसर मिलते ही उन्होंने इस योजना का परित्याग कर दिया।

(८) इस योजना को स्वीकार कराने के लिये नेपोलियन ने अनेक देशों से युद्ध किये। इन देशों में हालैण्ड, स्पेन तथा रूस आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी योजना के अस्वीकार करने पर नेपोलियन का पोप से झगड़ा हो गया था। फलतः ये सब देश नेपोलियन के कट्टर शत्रु हो गये।

(९) पुर्तगाल तथा स्पेन ने इस योजना को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने इंग्लैण्ड को अपना सहयोग प्रदान किया। अंग्रेजी जहाज पुर्तगाल के बन्दरगाह पर सामान छोड़ जाते थे। वहां से वह सामान स्थल-मार्ग से डेन्यूब नदी की घाटी से होता हुआ मध्य योरप तक पहुँचा दिया जाता था।

नेपोलियन की इस योजना से सारा योरप आतंकित हो गया। योरप के देश भीतर ही भीतर षड्यन्त्र करने लगे। नेपोलियन के विरोध में चारों ओर एक बवण्डर उठ खड़ा हुआ। इस योजना द्वारा योरप के लोग ही नेपोलियन के विरोध में खड़े नहीं हुये, अपितु उसने फ्रांस के उस मध्यम वर्ग का सहयोग भी खो दिया, जिसके कारण कि उसने शक्ति प्राप्त की थी।[1] इंग्लैण्ड निर्यात पर निर्भर था। नेपोलियन ने उसके निर्यात को नष्ट करने का प्रयत्न किया, परन्तु वह इसमें असफल रहा। महाद्वीपीय योजना के अन्तर्गत जब विदेशी बन्दरगाह उसके जहाजों के लिये बन्द कर दिये गये तो उसने अपने लिए नए बाजारों का निर्माण कर लिया।[2]

---

1. 'Napoleon had not only roused the people of Europe against the Empire by his Continental System, he had also lost the confidence of the French middle class, which had put him into power.' —Markham.

2. 'If then, England lived on her export trade, Napoleon's attempt to destroy it was remarkably unsuccessful. It might be said that this was because, during the years in which the continental ports were increasingly shut against her ship, she was able to develop new markets overseas.' —Thompson.

उसने अपनी शक्तिशाली जल-सेना के बल पर फ्रांस, स्पेन तथा हालैण्ड आदि देशों के उपनिवेश जीतकर उनसे व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित कर लिये। सारांश में उसकी यह योजना असफल रही तथा अन्त में उसके पतन का प्रमुख कारण बनी।

प्रश्न (बी. ए.)

१. 'टिलसिट में नेपोलियन अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर था' इस कथन की व्याख्या कीजिये और उन कारणों का उल्लेख कीजिये जिन्होंने उसको अपने स्थान से च्युत कराने का षड्यन्त्र किया।

२. नेपोलियन की महाद्वीपीय प्रणाली (व्यापार-बहिष्कार-नीति) का वर्णन कीजिये। यह क्यों असफल रही ?

३. महाद्वीपीय प्रणाली (व्यापारिक युद्ध) से आप क्या समझते हैं ? नेपोलियन के पतन के लिए यह कहां तक उत्तरदायी थी ?

Questions (M. A.)

1. Describe the Continental System of Napoleon and explain the causes of its failure.
2. Discuss the importance of England's naval power.
3. What were the causes of the rapture between England and France in 1803 ? Is it true that England forced Napoleon to conquer Europe ?
4. Sketch the circumstances that led to the war of the Third Coalition. Examine critically the causes that led to Nepoleon's victory over it.
5. Narrate the circumstances which led to the Treaty of Tilsit. Do you agree with the view that it marks the zenith of Napoleon's power ?

---

१३ नेपोलियन का पतन

पुर्तगाल और स्पेन। स्पेन से युद्ध। प्रायद्वीपीय युद्ध। युद्ध का परिणाम। इस युद्ध में नेपोलियन की पराजय के कारण। आस्ट्रिया से युद्ध। शानब्रुन की सन्धि। पोप से संघर्ष। स्वेडेन तथा टर्की। रूस से संघर्ष। पराजय। प्रशा का जागरण। चतुर्थ संघ। लीपजिग का युद्ध और उसके परिणाम। नेपोलियन का पतन और निर्वासन। पुनः आगमन और वाटरलू। पुनर्निर्वासन। नेपोलियन के पतन के कारण।

पुर्तगाल तथा स्पेन—पुर्तगाल ने नेपोलियन के व्यापार-बहिष्कार की नीति को नहीं माना। उसके बन्दरगाहों में अंग्रेजी जहाज बराबर आते-जाते रहते थे। पुर्तगाल की स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण थी। वहाँ अंग्रेजी जहाज बड़ी आसानी से आ-जा सकते थे। वहां से वह माल स्थल तथा डेन्यूब नदी द्वारा योरप के विभिन्न भागों में पहुँचा दिया जाता था। नेपोलियन ने १६ जुलाई १८०७ को पुर्तगाल के राजा तथा राजकुमार पर तालेरां द्वारा यह धमकी दिलाई कि वह प्रथम सितम्बर तक अंग्रेजी व्यापार का बहिष्कार कर दे, अंग्रेजी माल को जब्त कर ले तथा अपने बन्दरगाहों में ठहरे हुये अंग्रेजों को गिरफ्तार करले। इससे पुर्तगाल की स्थिति बड़ी शोचनीय हो गई। वह एक निर्बल देश था। उसकी रानी पागल थी तथा रानी के स्थान पर उसका पुत्र प्रिंस रीजेन्ट (Prince Regent) शासन करता था। यह राजकुमार नेपोलियन का सामना नहीं कर सकता था। अन्य किसी देश से सहायता मिलना भी असम्भव था। प्रशा तथा आस्ट्रिया पराजित किये जा चुके थे। रूस का जार नेपोलियन का मित्र था। उसका पड़ोसी राज्य स्पेन भी नेपोलियन से वार्ता चला रहा था। स्थल के युद्ध में इंग्लैंड भी विशेष सहायता नहीं दे सकता था। अतः उसने नेपोलियन को संतुष्ट करने का प्रयत्न किया। उसने वायदा किया कि वह महाद्वीपीय योजना को स्वीकार कर अंग्रेजी माल का बहिष्कार कर देगा; परन्तु अंग्रेजी माल को जब्त करना तथा अंग्रेजों को गिरफ्तार करना नैतिकता की दृष्टि से गलत है। अतः वह ऐसा नहीं करेगा। पुर्तगाल के शासक ने नेपोलियन के विचारों को परिवर्तित करने के लिये उसके परामर्शदाताओं को रिश्वत भी दी; परन्तु इसका कोई फल न निकला। नेपोलियन पुर्तगाल पर अधिकार करने का निश्चय कर चुका था। अक्टूबर १८०७ में उसने स्पेन से फाण्टेंब्ल्यू (Fontainbleau) की गुप्त सन्धि कर ली थी। इसकी प्रमुख शर्तें निम्न प्रकार थीं—

(१) स्पेन के राजा को पुर्तगाल का एक भाग मिलेगा।

(२) स्पेन का मन्त्री गोदोय (Godoy) नेपोलियन की बहुत सहायता कर रहा था। अतः उसको भी पुर्तगाल का एक भाग मिलेगा।

(३) स्पेन का राजा उस समय फ्रांस की सहायता करेगा जबकि वह पुर्तगाल पर आक्रमण करेगा। यदि इंग्लैंड पुर्तगाल की सहायता करेगा तो स्पेन और भी अधिक फ्रांस की सेना को अपने यहां रखने के लिये तैयार हो जायेगा।

स्पेन से यह सन्धि करने के पश्चात् नेपोलियन ने अपने सेनापति जूनो (Junot) को यह आदेश दिया कि वह तुरन्त पुर्तगाल पर आक्रमण कर उसकी राजधानी लिस्बन (Lisbon) पर अधिकार कर ले तथा पुर्तगाल के जहाजी बेड़े को गिरफ्तार कर ले और उसे अंग्रेजों के हाथ में न जाने दे। रूसी जहाजी बेड़े से भी सहायता ली गई; परन्तु शत्रु के लिस्बन पर अधिकार करने से पूर्व ही पुर्तगाल का राजा अपने परिवार-सहित पुर्तगाली बेड़े को साथ लेकर अंग्रेजी बेड़े की सहायता से अपने उपनिवेश ब्राजील चला गया। पुर्तगाल पर नेपोलियन का अधिकार हो गया।

स्पेन से युद्ध—सन् १७९५ में ही स्पेन ने नेपोलियन की अधीनता स्वीकार कर ली थी; परन्तु अब वह इस पर पूर्णतया अधिकार करना चाहता था। ट्राफल्गर के युद्ध में अपने जहाजी बेड़े से पूरी तरह स्पेन ने नेपोलियन का साथ दिया था और इस युद्ध में स्पेन का जहाजी बेड़ा भी पूरी तरह नष्ट कर दिया गया था। अब पुर्तगाल के पश्चात् स्पेन का नम्बर आया। वास्तव में फाण्टेंब्ल्यू की सन्धि स्पेन के लिये विनाशकारी सिद्ध हुई। पुर्तगाल में फ्रांसीसी सेनाओं के आ जाने से उसकी सुरक्षा के लिये भारी खतरा उत्पन्न हो गया। नेपोलियन पुर्तगाल में जूनो की सहायता करने के बहाने वहां बराबर सैनिक टुकड़ियां भेजता रहा। फाण्टेंब्ल्यू की सन्धि के अनुसार स्पेन ने पुर्तगाल पर आक्रमण करने के लिये फ्रांस की सेनाओं को मार्ग दिया था। सन्धि में यह तय हुआ था कि यदि अंग्रेजी सेना पुर्तगाल में प्रवेश करेगी तो फ्रांस के सैनिक और अधिक संख्या में स्पेन में प्रवेश करेंगे। परन्तु अंग्रेजी सेनाओं ने पुर्तगाल में प्रवेश नहीं किया। फिर भी नेपोलियन धीरे-धीरे अपनी सैनिक टुकड़ियों का स्पेन में प्रवेश कराता रहा। मार्च १८०८ तक फ्रांसीसी सैनिकों की संख्या स्पेन में एक लाख हो गई और उसने स्पेन के चार महत्वपूर्ण दुर्गों पर अधिकार कर लिया। स्पेन के राजा चार्ल्स चतुर्थ को अपने मित्र के इस विश्वासघात पर बड़ा क्रोध आया। इसके विरोध में वह कुछ भी नहीं कर सकता था, क्योंकि वह एक निर्बल देश था। दूसरे उसका मन्त्री गोदोय (Godoy) शत्रु से मिला हुआ था। गोदोय के इन कार्यों से नाराज होकर जनता ने विद्रोह कर दिया और उसके महल को घेर लिया। विद्रोह के भयंकर रूप को देखकर चार्ल्स ने अपने पुत्र फर्डीनेण्ड के पक्ष में सिंहासन त्याग दिया। १९ मार्च १८०८ को फर्डीनेण्ड स्पेन का नया राजा घोषित किया गया। चार्ल्स ने पद-त्याग करने के पश्चात् घोषित किया कि उसने भय के कारण राज्य का परित्याग कर दिया है। फलतः नेपोलियन ने उसके उत्तराधिकारी फर्डीनेण्ड को स्पेन का राजा मानने से इंकार कर दिया। वास्तव में बहुत पहले ही

नेपोलियन स्पेन के बूर्बां वंश को नष्ट करने का निश्चय कर चुका था। इससे पहले वह फ्रांस, नेपिल्स तथा परमा के बूर्बां वंश के शासकों को पदच्युत कर चुका था। फर्डीनेण्ड ने नेपोलियन के पास अनेक पत्र लिखकर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि वह उसके प्रति स्वामि-भक्त रहेगा। उसने यह भी वायदा किया कि फ्रांस के साथ स्थायी मित्रता स्थापित करने के लिये वह बोनापार्ट वंश की किसी भी राजकुमारी से विवाह-सम्बन्ध स्थापित करने को तैयार है! फलत: नेपोलियन ने वार्ता करने के लिये उसको बेयोन (Bayonne) नगर में बुला लिया। उसका पिता चार्ल्स भी उसके साथ गया। वहां उसने धोखे से काम लिया। चार्ल्स तथा फर्डीनेण्ड को डरा धमका कर उससे सिंहासन का परित्याग लिखा लिया। चार्ल्स को पेंशन देकर रोम में निर्वासित कर दिया गया तथा फर्डीनेण्ड को तालेरां के महल में बन्दी करवा दिया। इस प्रकार स्पेन के मामले में नेपोलियन ने खुले आम कानून तथा न्याय की अवहेलना की। पुर्तगाल तथा स्पेन के प्रायद्वीप में उसका यह विश्वासघातपूर्ण कार्य Rape of Peninsula कहलाता है। जुलाई १८०८ में नेपोलियन ने अपने भाई जोसेफ बोनापार्ट को स्पेन का राजा बनाया। जोसेफ के स्थान पर नेपिल्स में उसने अपने बहनोई म्यूरा को राजा बना दिया।

प्रायद्वीपीय युद्ध का प्रारम्भ—वास्तव में नेपोलियन का यह कार्य बहुत गलत था। इसके पश्चात् स्पेन का एक-एक बच्चा नेपोलियन का विरोधी हो गया। स्थान-स्थान पर क्रान्तिकारी समितियों की स्थापना होने लगी। स्वयंसेवकों का संगठन किया गया। चारों ओर स्पेन वालों के नारे लगने लगे। इस प्रकार सारा स्पेन नेपोलियन के विरोध में खड़ा हो गया। इसके अतिरिक्त फ्रांस वालों को अनेक कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं। स्पेन वालों ने गुरिला युद्ध-प्रणाली से फ्रांस वालों को बहुत परेशान किया। फ्रांसीसी भली प्रकार से स्पेन की भौगोलिक परिस्थिति से परिचित न थे। स्पेन वाले अवसर पाकर फ्रांसीसी सेना पर आक्रमण कर पहाड़ों में छिप जाते थे। सड़कें खराब थीं। नदी तथा पहाड़ सेनाओं के अभियान में रुकावट उत्पन्न करते थे। फ्रांसीसियों को अंग्रेजों के विरोध का भी सामना करना पड़ा। इस देश में नेपोलियन को राष्ट्रीय जोश से भरे हुये नागरिकों से युद्ध करना पड़ा।

प्रारम्भ में फ्रांस वालों को कुछ सफलता मिली; परन्तु वे शीघ्र ही जनता में बहुत बदनाम हो गये। उनके विरोध में सर्वत्र विद्रोह होने लगे। नेपोलियन ने अपने सेनापति म्यूरा को आदेश दिया कि वह पुर्तगाल के राजवंश के सभी व्यक्तियों को गिरफ्तार कर ले। इस पर स्पेन की राजधानी मैड्रिड (Madrid) में विद्रोह हो गया। परन्तु फ्रांस की सेनाओं ने कठोरता से इस विद्रोह को दबा दिया। परन्तु कठोर दमन से स्पेन वाले डरने वाले नहीं थे। २४ मई १८०८ से १० जून १८०८ तक स्पेन के प्रत्येक जिले में फ्रांसीसियों के विरोध में विद्रोह हुये। स्थान-स्थान पर फ्रांसीसी पदाधिकारी मारे जाने लगे। नेपोलियन इस विद्रोह को पादरियों तथा कुछ असंतुष्ट लुटेरों का षड़यन्त्र समझता था। उसे यह पता नहीं था कि यह राष्ट्रीयता

से ओत-प्रोत नागरिकों का स्वतन्त्रता-संग्राम है। इसी बीच म्यूरा बीमार हो गया और फ्रांस वापस आ गया। नेपोलियन ने स्पेन में जो सेनायें भेजीं थीं वह कुशल नहीं थीं। अतः जनता ने उनको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। प्रायद्वीप की यह लड़ाई १८०८ से १८१३ तक चलती रही।

बायलन (Baylen) **का युद्ध**—प्रारम्भिक युद्धों में बायलन का युद्ध महत्वपूर्ण है। यह युद्ध १६ जुलाई १८०८ को हुआ। इसमें फ्रांसीसी सेनायें हार गईं। फ्रांसीसी सेनापति दूपां (Dupont) ने आत्म-समर्पण कर दिया। स्थल पर नेपोलियन की यह पहली महत्वपूर्ण पराजय थी। इससे स्पेन वालों का उत्साह बहुत अधिक बढ़ गया। स्पेन वालों ने अंग्रेजों से सहायता की प्रार्थना की।

१ अगस्त १८०८ को जोसेफ मैड्रिड छोड़कर भाग गया। इसी दिन अंग्रेजों ने ४ सुयोग्य सेनापतियों के नेतृत्व में ९००० सैनिकों को पुर्तगाल में प्रवेश करा दिया। सुप्रसिद्ध इंग्लिश सेनापति सर आर्थर वेलेजली ने विमरो (Vimeiro) नामक स्थान पर फ्रांसीसी सेनापति जूनो को पराजित कर दिया। अन्त में विवश होकर जूनो को वेलेजली से सिन्ट्रा (Cintra) की सन्धि करनी पड़ी और ३० अगस्त को फ्रांसीसियों ने पुर्तगाल को खाली कर दिया। पुर्तगाल पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। परन्तु इंग्लैंड में इन सेनापतियों की कटु आलोचना हुई, क्योंकि उन्होंने फ्रांसीसी सेनानायकों को गिरफ्तार नहीं किया था। इन पर मुकदमे चलाये गये; परन्तु बाद में इनको निर्दोष घोषित कर दिया गया। अंग्रेजों ने स्पेन वालों की भरसक सहायता की।

इन घटनाओं की सूचना पाकर नेपोलियन को बहुत क्रोध आया। उसने स्वयं एक विशाल सेना के साथ स्पेन की ओर प्रस्थान किया। उसने स्पेन की सेनाओं को ब्रू नदी के पास कई बार परास्त किया। स्पेन के निवासी इस विशाल सेना का सामना करने में असमर्थ रहे। अतः वे पहाड़ों में छिप गये। नेपोलियन ने पुनः सम्पूर्ण प्रायद्वीप की विजय की। ४ दिसम्बर १८०८ को उसने मैड्रिड पर अधिकार कर लिया और जोसेफ को पुनः स्पेन की गद्दी पर बैठा दिया। नेपोलियन पूर्णतया स्पेन का दमन कर अंग्रेजी सेनाओं का अधिकार समाप्त करना चाहता था। परन्तु इसी समय उसे सूचना मिली कि आस्ट्रिया में उसके विरुद्ध तैयारियाँ हो रही हैं। अतः वह अपने सेनापति ने (Ney) तथा सूल्ट (Soult) को वहाँ छोड़कर वापस आ गया। नेपोलियन के अभियान को देखकर अंग्रेजी सेनापति मोर पीछे हट गया और कोरून्ना (Corunna) में जाकर ठहर गया। वहाँ उसने सूल्ट को पराजित कर दिया। परन्तु मोर एक गोले से बुरी तरह घायल होकर युद्ध-भूमि में मर गया। मोर के इस प्रत्यावर्तन के कारण नेपोलियन दक्षिण की ओर न बढ़ सका और दक्षिणी स्पेन के निवासियों को तैयारी का पूर्ण अवकाश मिल गया। यद्यपि फ्रांसीसी सैनिकों ने मैड्रिड पर अधिकार कर लिया; परन्तु इसका कोई बुरा प्रभाव न पड़ा। नगरों तथा देहातों में बराबर युद्ध चलता रहा। स्पेन को जीतना सरल था, परन्तु अधिकार रखना कठिन था।

१८०९ में वेलेजली पुनः पुर्तगाल की सेनाओं का सेनापति बनाया गया। उसने सूल्ट को पराजित किया तथा गेलेशिया में शरण लेने को विवश किया। दूसरा फ्रांसीसी सेनापति ने भी वहीं था। परन्तु दोनों की स्थिति चिन्ताजनक थी, क्योंकि गेलेशिया में जनता के विद्रोह हो रहे थे। २७, २८ जुलाई १८०९ को वेलेजली[1] ने टेलावारा के युद्ध में फ्रांसीसी सेनापति विक्टर (Victor) को पराजित किया। इसी समय उसे सूचना मिली कि फ्रांसीसी सेनापति सूल्ट उस पर आक्रमण करना चाहता है। अतः वह पीछे हट गया। स्पेन की टुकड़ियों ने भी जेरोना (Gerona) के युद्ध में २०००० फ्रांसीसियों को मौत के घाट उतार दिया और मैड्रिड की ओर प्रस्थान किया; परन्तु जोसेफ की सेनाओं ने उनको पराजित कर दिया।

इस समय तक नेपोलियन ने आस्ट्रिया को पराजित कर दिया था। अतः उसने पुनः १८१० में एक विशाल सेना के साथ अपने सुयोग्य सेनापति मेसेना (Massena) को भेजा। जब तक इस सेना ने पुर्तगाल की ओर बढ़ना प्रारम्भ किया तब तक वेलेजली ने वहाँ टेगस नदी से समुद्र तक तीसरी रक्षा-पंक्ति (Lines of Torres Vedras) स्थापित कर ली थी। उसने बुसाको (Busaco) के युद्ध में मेसेना को पराजित कर दिया। पर्याप्त परिश्रम करने पर भी मेसेना रक्षा-पंक्ति को नहीं तोड़ सका। परन्तु उसने इसके बाहर के प्रदेश को उजाड़ दिया। फ्रांसीसी सेना को यहां खाने पीने की कोई सामग्री नहीं मिल रही थी। चिकित्सा की कोई सुविधा नहीं थी। वेलेजली ने लिस्बन की रक्षा का बहुत अच्छा प्रबन्ध कर लिया था। उसने ग्रामों तथा नगरों की जनता को आदेश दिया था कि वे खुले युद्ध में शत्रु का सामना न करके छिपकर उन पर छापा मारकर उनको परेशान किया करें। इस संघर्ष में तीस हजार सैनिक मारे गये। सेना भूख, प्यास तथा बीमारी से परेशान हो गई। अतः मेसेना ने उसको वापस चलने का आदेश दे दिया। फलतः मार्च १८११ में यह सेना पुर्तगाल से लौटकर स्पेन आ गई। वेलेजली ने लौटती हुई फ्रांसीसी सेनाओं पर आक्रमण किया तथा उनको पराजित किया। मेसेना की इन असफलताओं से नेपोलियन को बहुत दुःख हुआ। अतः उसने मेसेना के स्थान पर मार्मा (Marmont) नामक एक अन्य सुयोग्य सेनापति की नियुक्ति की।

सेलेमेनका का युद्ध—१८१२ का वर्ष अंग्रेजों के लिये बड़ा उपयोगी रहा। इस वर्ष नेपोलियन को रूस से युद्ध करना पड़ा। अतः उसने अपनी बहुत सी सेना को स्पेन से हटा लिया। दूसरे छापामारों ने फ्रांस की सेना की अवस्था बहुत खराब कर दी थी। वे बराबर विद्रोहों का दमन करते रहते थे। इससे वे तीन लाख सेना में से केवल ७० हजार को ही मोर्चे पर लगा पाते थे। फलतः इसका लाभ उठाते हुये वेलिंगटन (वेलेजली) ने सेलेमेनका (Salamanca) नामक स्थान पर फ्रांसीसी सेनापति मार्मा को बुरी तरह पराजित किया। जोसेफ अपने साथियों समेत राजधानी

1. टेलावारा की विजय के पश्चात् वेलेजली को वेलिंगटन के ड्यूक की उपाधि प्रदान की गई थी।

छोड़कर भाग गया और वेलिंगटन ने राजधानी में प्रवेश किया। परन्तु कुछ ही समय पश्चात् फ्रांसीसी सेनाओं ने पुनः मैड्रिड पर अधिकार कर लिया। कुछ समय पश्चात् नेपोलियन को रूस में भारी पराजय उठानी पड़ी। अतः उसने अपनी स्थिति दृढ़ करने के लिये बहुत सी सेनाओं तथा सूल्ट आदि योग्य सेनापतियों को वापस बुला लिया। जोसेफ की सहायता के लिये जोर्डन नामक सेनापति भेजा गया। इसका लाभ उठाते हुये वेलिंगटन ने पुनः मैड्रिड पर आक्रमण किया। जोसेफ राजधानी छोड़ कर भाग गया। २१ जून १८१३ को वेलिंगटन ने जोसेफ तथा उसके सेनापति जोर्डन (Jourdan) को विटोरिया (Vittoria) नामक स्थान पर पराजित किया। फलतः जोसेफ तथा जोर्डन स्पेन छोड़कर फ्रांस भाग गये। इसके पश्चात् वेलिंगटन ने फ्रांस पर आक्रमण किया और सूल्ट को भी पराजित किया। १२ अप्रैल १८१४ को टूलोज (Toulouse) पर अधिकार कर लिया। परन्तु इस समय तक नेपोलियन ने लीपजिग के युद्ध में पराजित होकर आत्म-समर्पण कर दिया था। अतः दीर्घ काल से चले आने वाला प्रायद्वीपीय युद्ध (Peninsular War) समाप्त हो गया।

युद्ध का परिणाम—इस युद्ध का परिणाम नेपोलियन के लिये बहुत विनाशकारी सिद्ध हुआ। इस युद्ध में उसके असंख्य सैनिक तथा कई योग्य सेनापति मारे गये थे। उसकी बहुत सी सेना इस युद्ध में लगी हुई थी। अतः मध्य योरप में वह अपनी पूरी शक्ति न लगा सका था। यदि उसकी समस्त सेना तथा सुयोग्य सेनापति उसके साथ होते तो सम्भवतः उसका पतन न होता। स्पेन में नेपोलियन की पराजयों का समाचार सुनकर उत्तरी योरप के लोग भी उसकी अधीनता से स्वतन्त्र होने के लिए स्वप्न देखने लगे थे। स्पेन की सफलताओं को देखकर प्रशा में भी जागृति आ गई। प्रारम्भ में नेपोलियन ने इस युद्ध को फकीरों तथा लुटेरों का युद्ध कहा था; परन्तु अन्त में उसने स्वयं अनुभव किया था कि स्पेन के फोड़े ने उसका सर्वनाश कर दिया। नेपोलियन के पतन के लिए स्पेन सबसे पहला कदम था।[1]

स्पेन के युद्ध में नेपोलियन की पराजय के कारण—(१) स्पेन की प्राकृतिक अवस्था ऐसी थी कि वहाँ बड़ी-बड़ी सेनायें भी कुछ नहीं कर सकती थीं। वह एक पहाड़ी प्रदेश था। इससे सेनाओं को रसद नहीं मिलती थी। छोटी-छोटी नदियाँ सेनाओं के अभियान में बाधक थीं। शत्रु सेना पर छापा मारकर पहाड़ों में छिप जाते थे।

(२) अब तक नेपोलियन ने निरंकुश राजाओं को पराजित किया, परन्तु यहां उसको ऐसे नागरिकों से लड़ना पड़ा जो राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत थे। स्पेन का एक-एक बच्चा नेपोलियन का कट्टर शत्रु था। उनका नारा था—

---

1. 'Napoleon's Spanish enterprise was his first step towards ruin...... He realised well enough the danger of village and mountain warfare, but he never understood that a war might be a crusade.'
—Thompson.

'स्पेन स्पेन वालों का है।' उन्होंने अपनी जान हथेली पर रखकर एक-एक इंच भूमि के लिये युद्ध किया। ग्राम-ग्राम, नगर-नगर तथा गलियों तक में नागरिकों ने युद्ध किया। उदाहरण के लिए सेरागोसा (Saragossa) नगर में नागरिकों ने प्रत्येक गली तथा घर तक में युद्ध किया। इस युद्ध में २०००० स्पेनी सैनिकों तथा ३०००० स्पेनी नागरिकों के बध के पश्चात् ही फ्रांसीसी इस नगर पर अधिकार कर सके। इस प्रकार फ्रांस वालों को स्थान-स्थान पर भीषण प्रतिरोध का सामना करना पड़ा।

(३) स्पेन वालों ने छापा मार युद्ध प्रणाली (Guerilla warfare) का आश्रय लिया। फलतः फ्रांसीसी सेना के अधिकांश भाग को विद्रोह-दमन में ही लगा रहना पड़ता था। इसी से तीन लाख सेना में से ७० हजार से अधिक सेना कभी भी मोर्चों पर नहीं लगाई जा सकी। छापा मारने वाले यातायात के साधनों को नष्ट कर देते थे। उनके पत्र आदि को मार्ग में पकड़ कर उनकी सैनिक योजनाओं का पता लगा लेते थे। ये छापा मार कर पहाड़ों में छिप जाते थे, परन्तु फ्रांस वालों को यहाँ की भौगोलिक स्थिति का पूरा-पूरा ज्ञान नहीं था।

(४) नेपोलियन ने पूरी शक्ति के साथ इसमें भाग नहीं लिया। वह मध्य योरप की समस्याओं में उलझा रहा। सन् १८०६ में वह स्पेन को विजय किये बिना ही लौट गया। १८१० में उसने मेसेना को पूरी सहायता नहीं दी। १८१२ में सूल्ट को वापस बुला लिया। अन्त में १८१३ में सब कुछ समाप्त हो जाने पर व्यर्थ में सैनिकों का रक्त बहवाया। यदि वह एक बार ही पूर्ण शक्ति के साथ स्पेन का सामना करता तो सम्भवतः उसकी विजय होती।

(५) इंग्लैंड नेपोलियन का कट्टर शत्रु था और उसने इस युद्ध में पूरी तरह स्पेन वालों का साथ दिया था। सुप्रसिद्ध ब्रिटिश सेनापति वेलिंगटन ने पूरी तरह शत्रु का मान-मर्दन कर दिया।

(६) पादरियों ने भी नेपोलियन का विरोध किया, उन्होंने जनता में प्रोत्साहन उत्पन्न किया।

(७) जोसेफ ने अयोग्यता का परिचय दिया। वह अपने सेनापतियों के ईर्ष्या-द्वेष को भी समाप्त न कर सका।

आस्ट्रिया से युद्ध—प्रेसबर्ग की सन्धि आस्ट्रिया के लिए बहुत अपमान-जनक थी। स्पेन के स्वतन्त्रता-संग्राम से उनको भी प्रोत्साहन मिला। आस्ट्रिया के चांसलर स्टुडिअन (Studion) ने जनता में राष्ट्रीय भावनाओं का प्रचार किया। जनता में पर्याप्त मात्रा में राष्ट्रीय साहित्य बंटवाया गया। उसने आर्क ड्यूक चार्ल्स (Arch Duke Charles) को प्रधान सेनापति नियुक्त किया। इसने भली प्रकार सेना का संगठन किया। इस प्रकार नेपोलियन से स्वतन्त्रता का युद्ध करने के लिए खूब तैयारियाँ की गईं। बेलन (Baylon) में फ्रांसीसी सेनाओं की पराजय का समाचार सुनकर आस्ट्रिया को अपने संगठन कार्य में और अधिक प्रोत्साहन मिला।

इंग्लैंड ने भी नेपोलियन के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ करने के लिये आस्ट्रिया को प्रोत्साहन दिया। उसने आस्ट्रिया को आर्थिक सहायता देने का वायदा किया और यह भी वचन दिया कि नेपोलियन तथा आस्ट्रिया का युद्ध प्रारम्भ होने पर इंग्लैंड नेपोलियन के विरुद्ध नीदरलैंड पर आक्रमण कर देगा।

फलतः १५ अप्रैल १८०९ को आस्ट्रिया ने फ्रांस के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। आस्ट्रिया ने तीन ओर से आक्रमण किया। आर्क ड्यूक ने बवेरिया पर आक्रमण किया। आर्क ड्यूक जॉन ने टाइरोल की ओर तथा आर्क ड्यूक फर्डिनेण्ड ने वार्सा की ओर प्रस्थान किया। यह समाचार सुनकर नेपोलियन मोर की सेनाओं का पीछा छोड़कर स्पेन से फ्रांस वापस आ गया। उसने चार्ल्स को पीछे हटा कर विएना पर अधिकार कर लिया, परन्तु २१–२२ मई को आस्पर्न (Aspern) के समीप चार्ल्स ने फ्रांसीसी सेना को बुरी तरह पराजित किया। इस युद्ध में २७,००० फ्रांसीसी सैनिक मारे गये। ऐसा कहा जाता है कि इस युद्ध के समय सेनापति की सहायता के लिये उसका भाई जॉन आ जाता तो संभवतः सदैव के लिये नेपोलियन की शक्ति का अन्त हो जाता। परन्तु ५–६ जुलाई को नेपोलियन ने वाग्राम (Wagram) के युद्ध में आस्ट्रिया को बुरी तरह पराजित कर दिया। इस युद्ध में आस्ट्रिया के तीस हजार सैनिक मारे गये। इस पराजय के फलस्वरूप आस्ट्रिया को नेपोलियन से १० अक्टूबर १८०९ को विएना* की सन्धि करनी पड़ी। इस सन्धि की प्रमुख शर्तें निम्न प्रकार थीं:—

(१) आस्ट्रिया ने नेपोलियन को इलेरियन प्रान्त (Illyrian Provinces) दे दिये।

(२) बवेरिया के राजा ने नेपोलियन की सहायता की थी। अतः नेपोलियन ने टाइरोल तथा उत्तरी आस्ट्रिया का कुछ भाग बवेरिया के राजा को दे दिया।

(३) आस्ट्रिया को गलेशिया का पूर्वी भाग रूस को तथा पश्चिमी भाग ग्रैंड डची ऑफ वार्सा को देना पड़ा।

(४) आस्ट्रिया को अपनी सेना घटाकर केवल डेढ़ लाख करनी पड़ी।

(५) आस्ट्रिया को ३४ लाख पौंड युद्ध का हर्जाना देना पड़ा।

(६) आस्ट्रिया के सम्राट् फ्रांसिस को यह वायदा करना पड़ा कि वह अपनी पुत्री मेरिया लूसा का विवाह नेपोलियन के साथ कर देगा।

इस सन्धि के अनुसार आस्ट्रिया को ४५ लाख की जनसंख्या वाला प्रदेश छोड़ना पड़ा। १८०९ में ही मेटरनिख को चाँसलर बनाया गया।

नेपोलियन का मेरिया लूसा से विवाह—नेपोलियन ने जाजेफीन का परित्याग कर आस्ट्रिया की राजकुमारी मेरिया लूसा (Maria Louisa) से १ अप्रैल

* विएना की यह सन्धि इतिहास में शान ब्रून (Schonbrunn) की सन्धि के नाम से भी प्रख्यात है।

१८१० को विवाह कर लिया। मेरिया लूसा आस्ट्रिया के सम्राट् फ्रांसिस द्वितीय की पुत्री थी और मेरी अन्तायनेत की भतीजी थी। एक वर्ष पश्चात् मेरिया लूसा के एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसको 'रोम के सम्राट्' की उपाधि प्रदान की गई। नेपोलियन द्वारा इस विवाह के करने के निम्नलिखित कारण थे—

(१) जाजेफीन के कोई पुत्र न था। अतः उसे अपने विशाल साम्राज्य के लिये एक उत्तराधिकारी की अत्यन्त आवश्यकता थी।

(२) नेपोलियन का जन्म एक साधारण परिवार में हुआ था। अतः वह किसी प्रतिष्ठित वंश से अपना विवाह-सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था। नेपोलियन के लिये यह बड़े गौरव की बात थी कि उसका विवाह आस्ट्रिया के प्राचीन प्रतिष्ठित वंश हैप्सवर्ग के घराने में हो।

(३) आस्ट्रिया के प्रधान मन्त्री मेटरनिख को यह विश्वास था कि नेपोलियन अजेय है। अतः देश के हित के लिए उससे मैत्री कर ली जाय तो बहुत अच्छी बात है और विवाह-सम्बन्ध से दृढ़ मैत्री स्थापित की जा सकती है; परन्तु उसका यह विचार गलत सिद्ध हुआ। आस्ट्रिया तथा फ्रांस के साथ कभी भी मित्रता स्थापित न हो सकी।

पोप से संघर्ष—प्रथम कॉन्सल के रूप में नेपोलियन ने पोप से समझौता (Concordat) कर लिया था। इस समझौते के पश्चात् दोनों परस्पर मित्र हो गये थे; परन्तु कुछ दिन बाद दोनों में फिर मतभेद उत्पन्न हो गया। इसके निम्नलिखित कारण थे—

(१) पोप ने महाद्वीपीय योजना को मानने से इन्कार कर दिया।

(२) धार्मिक समझौते के अनुसार पादरियों तथा बिशपों पर राज्य का नियन्त्रण स्थापित हो गया था; परन्तु पोप इस नियन्त्रण को समाप्त करना चाहता था।

(३) नेपोलियन ने पोप के जिन प्रदेशों पर अधिकार कर लिया था पोप उनको वापस लेना चाहता था।

(४) नेपोलियन ने अपने सिविल कोड (Civil Code) तथा तलाक प्रथा (Divorce System) को इटली में लागू किया था। पोप इसका विरोधी था।

(५) विएना में नेपोलियन अपने कुछ समर्थकों को बिशप नियुक्त करना चाहता था। परन्तु पोप इससे सहमत नहीं था।

(६) पोप ने जोसेफ का उस समय विरोध किया था, जबकि नेपोलियन ने उसको नेपिल्स का सम्राट् नियुक्त किया था।

(७) नेपोलियन के भाई जेरोम ने प्रारम्भ में एक अमेरिकन महिला से शादी की थी। नेपोलियन चाहता था कि अब वह इस महिला का परित्याग कर किसी राजवंश की महिला से शादी कर ले; परन्तु पोप ने अमेरिकन स्त्री के परित्याग की आज्ञा न दी।

इस प्रकार नेपोलियन तथा पोप का संघर्ष बढ़ता चला गया। अन्त में १७ मई १८०९ को नेपोलियन ने पोप का राज्य छीनकर अपने साम्राज्य में मिला लिया। पोप ने उसको धर्म से बहिष्कृत कर दिया। इस पर नेपोलियन ने पोप को बन्दी बना लिया। पोप के सहयोगी बिशपों तथा पादरियों को दण्ड दिया गया। नेपोलियन ने धार्मिक कार्यों के संचालन के लिये एक समिति का निर्माण किया। परन्तु इसने नेपोलियन की इच्छा से कार्य नहीं किया। अतः यह भंग कर दी गई। जून १८१२ में नेपोलियन पोप को फाण्टेब्ल्यू ले आया। वहाँ उसने पोप के साथ एक नया समझौता किया। इसके अनुसार बिशपों की नियुक्ति के अनुमोदन का अधिकार पोप के स्थान पर पेरिस की समिति को दे दिया गया। पोप को वार्षिक पेंशन मिलने लगी। नेपोलियन ने पोप को आवीनयों (Avignon) में बन्दी बनाकर रक्खा। यहाँ वह नेपोलियन के पतन के समय तक बन्दी रहा। नेपोलियन के पतन के पश्चात् उसका राज्य वापस मिल गया। पोप से झगड़ा करने से समस्त कैथोलिक संसार नेपोलियन का विरोधी हो गया।

स्वेडेन (Sweden)—स्वेडेन का राजा गुस्तवस चतुर्थ (Gustavus IV) टिलसिट की सन्धि के पश्चात् भी मित्र राष्ट्रों के साथ रहा। टिलसिट की सन्धि के अनुसार यह तय हुआ था कि जार स्वेडेन से फिनलैंड छीन ले। फलतः १८०८ में रूस ने फिनलैंड पर आक्रमण कर दिया। स्वेडेन के राजा ने इसका विरोध किया परन्तु उसको सफलता न मिली। कुछ दिन पश्चात् रूस ने स्वेडेन से स्वेडिश पोमेरेनिआ (Swedish Pomerania) भी छीन लिया। कुछ समय पश्चात् गुस्तवस चतुर्थ पागल हो गया और स्वेडेन में उत्तराधिकार का झगड़ा उत्पन्न हो गया। अन्त में नेपोलियन ने अपने सेनापति बर्नाडोटे (Bernadotte) को स्वेडेन का राजा बना दिया।

टर्की—प्रथम कॉन्सल बनने पर नेपोलियन ने टर्की के सुल्तान सलीम तृतीय को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया। नेपोलियन ने अपने एक योग्य सेनापति जनरल सेबास्टिअन (General Sebastian) को अपना प्रतिनिधि बनाकर टर्की भेजा। इसके प्रभाव के अन्तर्गत ही टर्की नेपोलियन के विरुद्ध बनने वाले तृतीय संघ में सम्मिलित नहीं हुआ। नेपोलियन के बहुत से पदाधिकारी टर्की के राज्य में कार्य कर रहे थे। इस बीच इंग्लैंड ने डार्डेनलीज में होकर टर्की पर आक्रमण करना चाहा; परन्तु उसको सफलता न मिली। इस बीच टर्की में उत्तराधिकार युद्ध-प्रारम्भ हो गया। इसमें महमूद द्वितीय सफल हुआ। टिलसिट की सन्धि में नेपोलियन ने रूस के जार को टर्की पर आक्रमण करने का प्रोत्साहन दिया था। फलतः रूस ने टर्की पर आक्रमण कर दिया और सरलतापूर्वक बलाशिया, मोल्डाविया तथा बसरेविया पर अधिकार कर लिया।

बुखारेस्ट की सन्धि—अन्त में २८ मई १८१२ को दोनों पक्षों ने बुखारेस्ट की सन्धि कर ली। इसके अनुसार अग्रलिखित निर्णय किये गये—

(१) टर्की ने वलेशिया तथा मोल्डाविया का अधिकांश भाग रूस को दे दिया।

(२) सर्विया का पृथक् राज्य बना दिया गया।

(३) रूस ने यह वायदा किया कि वह भविष्य में टर्की में हस्तक्षेप न करेगा।

रूस से संघर्ष—टिलसिट की सन्धि के अनुसार रूस तथा नेपोलियन परस्पर मित्र हो गये थे; परन्तु कुछ दिन बाद उनमें फिर मतभेद उत्पन्न हो गया। इसके निम्नलिखित कारण थे—

(१) टिलसिट की सन्धि के अनुसार नेपोलियन तथा रूस ने योरप को परस्पर बाँट लिया था। पूर्वी योरप में जार को स्वेच्छा से कार्य करने का अधिकार दे दिया था; परन्तु नेपोलियन बाल्कान प्रायद्वीप तथा टर्की के सम्बन्ध में उदासीन नहीं रह सकता था। इससे जार को यह संदेह हो गया कि नेपोलियन समस्त योरप पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहता है। इससे जार नेपोलियन से नाराज हो गया।

(२) टिलसिट की सन्धि के अनुसार नेपोलियन ने ग्रैंड डची ऑफ वार्सा का निर्माण किया था। जार इस प्रदेश को पोलैंड में मिलाकर अपने अधीन करना चाहता था। इससे वह नेपोलियन से असंतुष्ट था।

(३) नेपोलियन जार से अप्रसन्न हो गया, क्योंकि उसे विश्वास था कि उसने १८०९ में होने वाले आस्ट्रिया तथा फ्रांस के युद्ध में उसकी पूरी सहायता नहीं की है। इसके विपरीत जार भी नेपोलियन से नाराज हो गया, क्योंकि नेपोलियन ने इस युद्ध में आस्ट्रिया से ग्लेसिया का प्रदेश छीनकर ग्रैंड डची ऑफ वार्सा में मिला दिया था।

(४) नेपोलियन ने अपने व्यापार-बहिष्कार की नीति को लागू करने के लिये ओल्डन बर्ग (Oldenberg) पर अधिकार कर लिया। यहां का राजा जार का बहनोई था। इससे जार उससे नाराज हो गया।

(५) नेपोलियन ने जार की बहन के साथ विवाह करने का प्रस्ताव रक्खा था, परन्तु जार उसके लिये तैयार नहीं हुआ।

(६) नेपोलियन ने अपने मित्र स्पेन को धोखा दिया था। इससे उसकी प्रतिष्ठा को बहुत ठेस पहुँची। इससे जार भी उसको सन्देहपूर्ण दृष्टि से देखने लगा था।

(७) जारीना, रूसी सेनापति तथा सामन्त नेपोलियन के विरोधी थे। वे नेपोलियन के विरुद्ध जार को प्रोत्साहित करते रहते थे। इसी प्रकार फ्रांस के सेनापति भी जार के विरोधी थे। वे नेपोलियन को जार के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिये प्रोत्साहित करते रहते थे।

(८) जार को यह संदेह था कि नेपोलियन पोलों को जार के विरुद्ध प्रोत्साहित कर रहा है। अतः जार ने उससे यह आश्वासन मांगा कि वह स्वतन्त्र पोल राज्य का निर्माण न करेगा, परन्तु वह इसके लिये तैयार न हुआ।

(६) नेपोलियन को जार से सदैव यह शिकायत रही कि वह महाद्वीपीय योजना का पूरी तरह पालन नहीं कर रहा है। इसके विपरीत जार को नेपोलियन के विरुद्ध यह शिकायत थी कि वह लाइसेन्स देकर व्यापारियों द्वारा इंग्लैण्ड से माल मंगा रहा है। वास्तव में व्यापार-बहिष्कार का पूरी तरह पालन करना जार के लिये कठिन था, क्योंकि रूस में गेहूँ अधिक मात्रा में पैदा होता था। अत: वह गेहूँ को इंग्लैंड भेजकर उसके बदले में अपनी आवश्यकता की वस्तुयें मंगवाता था। व्यापार-बहिष्कार की नीति का कुछ दिन पालन करने से ही उसके गोदामों में अन्न सड़ने लगा था तथा नित्य प्रति की वस्तुओं के अभाव में जनता को घोर कष्ट होने लगा था। अत: जार ने १३ दिसम्बर १८१३ की एक घोषणा द्वारा तटस्थ राज्यों के जहाजों को अपने देश के बन्दरगाहों में आने की अनुमति दे दी। मदिरा, रेशम तथा अन्य विलास की सामग्री पर कर बढ़ा दिया। ये वस्तुयें मुख्यतया फ्रांस से आती थीं। अत: नेपोलियन जार से बहुत अप्रसन्न हो गया।

आक्रमण की तैयारियां—जार ने अंग्रेजी अफसरों द्वारा अपनी सेना का संगठन कराना प्रारम्भ किया। इन पदाधिकारियों में विलसन (Wilson) का नाम उल्लेखनीय है। अप्रैल १८१२ में रूस तथा स्वेडेन ने आपस में अबू की गुप्त सन्धि कर ली। इस सन्धि के अनुसार स्वेडेन ने फिनलैण्ड पर रूस का अधिकार स्वीकार कर लिया बशर्ते कि वह नार्वे पर स्वेडेन का अधिकार स्वीकार कर ले। कालान्तर में इस गुप्त सन्धि को इंग्लैण्ड ने भी स्वीकार कर लिया। प्रशा में इस समय राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहा था। रूस के प्रति इसकी सहानुभूति भी थी। परन्तु नेपोलियन के भय के कारण यह रूस को सहायता का आश्वासन न दे सका। अन्त में उसने नेपोलियन के दबाव पर २४ फर्वरी १८१२ को उसके साथ एक सन्धि कर ली। इस सन्धि के अनुसार यह तय हुआ कि रूस के ऊपर आक्रमण करने वाली फ्रांसीसी सेनाएं जितने दिन में प्रशा रहेंगीं उतने दिन उनके खर्च का भार प्रशा पर रहेगा। इसके अतिरिक्त रूस पर आक्रमण करने के लिये प्रशा नेपोलियन को ३० हजार सैनिक देगा। इसके अतिरिक्त उसने आस्ट्रिया, राइन संघ, इटली, स्पेन तथा पौलैण्ड आदि देशों से भी सेनाएं मंगवाई। फ्रांस के अन्दर भी सेनाओं का संगठन किया गया। इस प्रकार अप्रैल १८१२ तक नेपोलियन ने ६ लाख सेनाएं विस्चुला (Vistula) नदी के तट पर इकट्ठी कर लीं। इनमें तीन लाख सेनाऐं फ्रांस की तथा तीन लाख सेनाएं अन्य देशों की थीं। एक हजार तोपें भी इकट्ठी की गईं। इतनी विशाल सेना (Grand Army) को मार्च करते हुये इससे पूर्व यूरोप में कभी नहीं देखा गया था। आक्रमण करने से पूर्व नेपोलियन ने ड्रेस्डन नगर में एक समारोह किया। इसमें आस्ट्रिया तथा प्रशा के सम्राटों ने भी भाग लिया। उसने कहा था कि मास्को पर अधिकार करने पर भारत के मार्ग की दूरी केवल आधी रह जायगी।[1] इस प्रकार मई १८१२ तक नेपोलियन ने अपनी सम्पूर्ण तैयारियां कर लीं।

1. 'Mascow is the half way house to India' —Napoleon.

रूस पर आक्रमण—२४ जून को नेपोलियन ने इस विशाल सेना तथा एक हजार तोपों के साथ नीमेन (Niemen) नदी पार कर रूस पर आक्रमण किया। रूस की सेना नेपोलियन की सेना के सम्मुख नगण्य थी। रूस ने केवल पौने दो लाख सेना एकत्र की थी। यह सेना नेपोलियन की सेना की अपेक्षा प्रशिक्षित भी कम थी, परन्तु रूस की भौगोलिक परिस्थितियों ने उसका साथ दिया। नेपोलियन की सेना नीमन नदी पार कर विलना (Vilna) पहुँची। इसके पश्चात् यह स्मोलैंस्क (Smolensk) पहुँची। नेपोलियन को आशा थी कि उसको स्वेडेन से भी सहायता मिलेगी, परन्तु वहां उसे कोई सहायता न मिली। फ्राँस की सेनाएं रीगा (Riga) से आगे न बढ़ सकीं। नेपोलियन की सेना को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। १८१० में जिस युद्ध-नीति से स्पेनियों ने मेसेना का मुकाबला किया था, उसी युद्ध-नीति का पालन रूसी कर रहे थे। नेपोलियन की बढ़ती हुई सेना को देखकर उन्होंने गाँवों तथा नगरों को खाली कर दिया। खेतों को उजाड़ दिया। इसके साथ-साथ छापामार किसान तथा सैनिक नेपोलियन की सेना को परेशान कर रहे थे। उसके पीछे के यातायात के साधनों को नष्ट किया जा रहा था। फलतः नेपोलियन को स्थान-स्थान पर अपने सैनिक नियुक्त करने पड़ रहे थे। इससे उसकी आगे बढ़ने वाली सेना की संख्या कम होती जा रही थी। नेपोलियन खुले युद्ध में रूसियों का सामना करने के लिए बराबर देश में घुसता चला गया। अन्त में ७ सितम्बर को बोरोडिनो (Borodino) नामक स्थान पर नेपोलियन तथा जार की सेनाओं के मध्य भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में दोनों पक्ष के लगभग एक लाख सैनिक मारे गए। परन्तु विजय इस युद्ध में नेपोलियन की ही हुई। १४ सितम्बर को बड़ी शान के साथ नेपोलियन ने मास्को पर अधिकार कर लिया। परन्तु इसी दिन संध्या समय नगर में भयंकर आग लग गई। इससे नगर का अधिकांश भाग जल गया। यह निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकता कि रूसियों ने जान बूझ कर यह आग लगाई थी अथवा अचानक लग गई थी। नेपोलियन मास्को में ठहरा हुआ जार के सन्धि-पत्र की प्रतीक्षा करने लगा। प्रतीक्षा करते-करते ५ सप्ताह व्यतीत हो गये, परन्तु जार ने सन्धि के लिये प्रार्थना नहीं की। फ्रांसीसी सेना रसद के अभाव में बहुत परेशान थी। ऊपर से जाड़े की ऋतु आ रही थी। फलतः २२ अक्तूबर को नेपोलियन ने सेना को वापस लौटने का आदेश दे दिया।

सेना का वापस लौटना—निराश होकर नेपोलियन ने अपनी सेना को वापस कूच करने का आदेश दे दिया। मार्ग में इस सेना को अपार कष्ट उठाने पड़े। रूसियों ने छापे मार कर फ्रांसीसी सेना को बहुत परेशान किया। रसद के अभाव में सेना भूखों मरने लगी। बहुत से सैनिक अपने घोड़ों को मार कर खाने लगे। सिपाहियों की वर्दियां फटकर चिथड़े बन गईं। कपड़ों के अभाव में भी सैनिक ठण्ड से मरने लगे। रात्रि में सेना के पड़ाव में अनेक सैनिक सदैव के लिये बर्फ की चादर ओढ़ कर सो जाते थे। महामारी से भी अनेक सैनिक मर गए। अन्त में अपार कष्ट उठाती हुई इस सेना ने १३ दिसम्बर १८१२ को नीमन नदी का पुल पार कर वार्सा

की डची में प्रवेश किया। उस समय उस विशाल सेना में केवल २० हजार सैनिक ही शेष थे।

इस महान् विनाश से भी नेपोलियन निराश नहीं हुआ। वह अपने विश्वास-पात्र सैनिकों के साथ जर्मनी होता हुआ फ्रांस जा पहुंचा। वहां जाकर उसने पुनः सेना का संगठन प्रारम्भ किया और यह घोषित किया कि बसंत तक मैं पुनः नीमन नदी के तट पर दिखाई दूंगा, परन्तु अपने इस वचन को वह पूरा न कर सका।

प्रशा का जागरण (Revival of Prussia)—नेपोलियन ने जेना के युद्ध में प्रशा को पराजित किया था। उस पराजय के पश्चात् टिलसिट की सन्धि के अन्तर्गत उससे सन्धि की गई। यह सन्धि प्रशा के लिए बहुत अपमानजनक थी। उस पर युद्ध का भारी हर्जाना लादा गया, उसकी सेना सीमित कर दी गई तथा उसके यहां एक विदेशी सेना रख दी गई। प्रशा की जनता ने इस सन्धि को अपना राष्ट्रीय अपमान समझा। फलतः प्रशा की जनता में नेपोलियन के विरुद्ध बड़ा असंतोष जाग्रत हुआ। वे फ्रांसीसी क्रान्ति के सिद्धान्तों से बहुत प्रभावित थे। नेपोलियन ने होली रोमन एम्पायर को समाप्त कर आस्ट्रिया को निर्बल बना दिया और प्रशा को शक्तिशाली बना दिया था। फलतः प्रशा के नागरिक नेपोलियन के विरुद्ध खड़े हो गये।

प्रशा-निवासियों ने सोचा कि जर्मन राष्ट्र का नेतृत्व करने से पहले हमें अपना आन्तरिक संगठन कर लेना चाहिये। अतः उन्होंने अपने देश के प्रत्येक क्षेत्र में सुधार किये—

सामाजिक सुधार[1]—प्रशा में सामाजिक सुधारों का श्रेय स्टीन (Stein), हार्डेनबर्ग (Hardenberg) तथा सम्राज्ञी लूसा को है। इन्होंने अर्द्धदास कृषक-प्रथा (Serfdom) को समाप्त कर दिया। कुलीनों के विशेषाधिकारों का अन्त कर दिया। लोगों को इच्छानुसार व्यवसाय करने की स्वतन्त्रता दे दी। सरकारी पद योग्यता के आधार पर सबके लिये खोल दिये गये। किसान भूमि के मालिक बना दिये गये। वे सरकार को एक निश्चित मात्रा में लगान देने लगे। कृषकों को भूमि बेचने का अधिकार मिल गया। बेगार की प्रथा समाप्त कर दी गई।

व्यावसायिक सुधार—प्रत्येक मनुष्य को अपनी रूचि के अनुसार व्यवसाय करने की स्वतन्त्रता प्रदान कर दी गई। कारीगरों को व्यावसायिक संघों (Guilds) के अन्तर्गत रह कर कार्य करना पड़ता था। इसमें उनका शोषण होता था। फलतः इन व्यावसायिक संघों को समाप्त कर दिया गया। इससे पहले व्यवसायी सेना में भरती नहीं हो सकते थे। अब उनको भी सेना में भरती होने का अधिकार दे दिया गया। संरक्षण के स्थान पर मुक्त व्यापार को प्रोत्साहन दिया गया।

---

1. 'It was in the country most maltreated by Napoleon that the French reforms were most successfully imitated.'

—Stevens.

बौद्धिक जागृति—१८ वीं शताब्दी में प्रशा में अनेक दार्शनिक उत्पन्न हुये। इन्होंने जनता में जागृति उत्पन्न करने में बड़ा सहयोग दिया। हर्डर तथा गेटे आदि विद्वानों ने व्यक्तिवाद का प्रचार किया। परन्तु १६ वीं शताब्दी में दार्शनिकों ने व्यक्तिवाद के स्थान पर राष्ट्रवाद को अपनाया। इन विद्वानों में फिशे (Fichte), आर्न्ट (Arndt), गेंज (Gentz) तथा श्लीअर मेचर (Schleier macher) के नाम उल्लेखनीय हैं। इन विद्वानों ने यह प्रतिपादित किया कि देश के हित के लिए व्यक्ति का बलिदान किया जा सकता है। इन विचारों का देश के नवयुवकों में बहुत प्रचार हुआ। देश में स्थान स्थान पर नवयुवकों की गुप्त संस्थाएं स्थापित हो गईं। ये गुप्त रूप से देश को नेपोलियन के विरुद्ध तैयार कर रहीं थीं। १८०८ में 'योग्य मनुष्यों के समाज' (League of Virtue) की स्थापना की गई। इस संस्था ने भी जागृति में सहयोग दिया।

शिक्षा-सम्बन्धी सुधार—शिक्षा के सुधार के लिये हमबोल्ट (Humboldt) ने बहुत प्रयास किया। उसने देश के मध्य में बर्लिन में एक विश्वविद्यालय की स्थापना कराई। इसमें जर्मनी के समस्त तत्कालीन विद्वानों को स्थान दिया गया। पाठ्यक्रम को पूरी तरह राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत कर दिया गया। समस्त कालिजों को इस विश्वविद्यालय से सम्बन्धित कर दिया। बर्लिन विश्वविद्यालय के योग्य प्रोफेसरों के नाम इस प्रकार हैं— फिशे (Fichte), सेविग्ने (Savigney), वोल्फ (Wolf), श्लीअर मेचर (Schleier macher) तथा नीब्योर (Niebuhr) आदि। इन्होंने राष्ट्रीय जागृति में बहुत योग दिया।

सेना का संगठन—सेना के संगठन करने का श्रेय तीन व्यक्तियों को है—

(१) **शार्न होर्स्ट** (Scharn horst)[1]—यह युद्ध-मन्त्री था। नेपोलियन ने प्रशा को निर्बल रखने के लिये यह शर्त रक्खी थी कि प्रशा की सेना में ४२ हजार से अधिक सैनिक नहीं हो सकते। परन्तु इसने सैनिकों की कार्यावधि कम करदी और क्रमशः देश के अधिकांश व्यक्तियों को सैनिक शिक्षा देकर समस्त राष्ट्र को सैनिक बना दिया। इसके साथ-साथ उसने स्वयं-सेवकों की सेना का भी संगठन किया।

(२) **नीसेनन** (Gneisenan)[2]—यह आदर्शवादी था। यह कट्टर सिद्धान्त-वादी तथा अनुशासन-प्रिय था। इसने प्रशा में वही कार्य किया जो फ्रांस में कार्नो ने किया था।

(३) **क्लॉजविज** (Clausewitz)[3]—यह अपने समय का महान् सैनिकवादी था। इसने प्रशा में उन विचारों का प्रचार किया, जिनके फलस्वरूप प्रशा को १८१४, १८६६ तथा १८७० के युद्धों में सफलता मिली।

---

1. 'Organiser of the new army.'
2. 'Idealist Jacobin.'
3. 'The father of those ideas in tactics and strategy which carried Prussia to victory in 1814, 1866 and 1870.'

१८१० का यूरोप
स्वीडेन
डेनमार्क
ब्रिटेन
रूस
राइन
संघ
फ्रांसीसी
साम्राज्य
स्विट्ज़रलैंड
आस्ट्रिया
स्पेन
तुर्की साम्राज्य
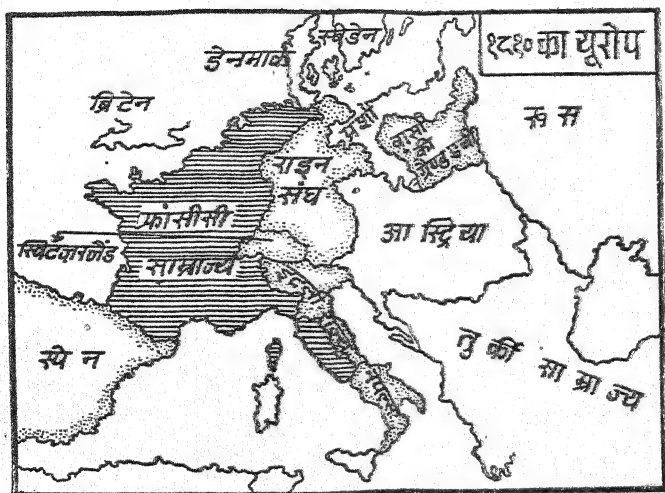
सिद्ध हुआ। अब तक तो प्रशा तथा रूस ही नेपोलियन के शत्रु थे। परन्तु इस बीच कूटनीतिक मन्त्रणा के फलस्वरूप आस्ट्रिया तथा इंग्लैंड भी उसके विरोधी हो गए और उसके विरुद्ध चतुर्थ संघ के निर्माण की योजना बनने लगी।

मेटर्निख का समझौता कराने का प्रयास—अन्त में आस्ट्रिया के प्रधान मन्त्री मेटर्निख ने दोनों पक्षों में समझौता कराने के लिये नेपोलियन के सम्मुख निम्न लिखित प्रस्ताव रक्खा। इसकी प्रमुख शर्तें निम्न प्रकार थीं—

(१) नेपोलियन ने प्रशा के जिन प्रदेशों पर अधिकार कर लिया था, उनको प्रशा को लौटा दे।

(२) राइन के संघ को भंग कर दे।

(३) वार्सा के राज्य को रूस, प्रशा तथा आस्ट्रिया में बांट दे।

(४) इलेरिया के प्रान्त आस्ट्रिया को लौटा दे।

इन अपमानजनक शर्तों को सुनकर नेपोलियन को बहुत क्रोध आया। उसने इन शर्तों को मानने से इन्कार कर दिया और क्रोध में कहा कि मुझे एक बार पुन: विएना की यात्रा करनी होगी। समझौते की वार्ता भंग होने पर नेपोलियन ड्रेस्डन चला गया और मेटर्निख नेपोलियन के विरुद्ध चतुर्थ गुट के निर्माण में लग गया।

नेपोलियन के विरुद्ध चतुर्थ संघ का निर्माण—प्रशा तथा रूस तो पहले से ही नेपोलियन के विरुद्ध थे। इसी समय स्वेडेन के राजा बर्नाडोटे ने भी फ्राँस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। वह अपने बारह हजार सैनिकों के साथ युद्ध के लिये जर्मनी में आ गया। इंग्लैंड भी इस संघ में सम्मिलित हो गया और उसने आर्थिक सहायता देने का वचन दिया। समझौते के प्रयत्न के असफल होने पर आस्ट्रिया भी इस संघ में सम्मिलित हो गया। इस प्रकार इस संघ में प्रशा, रूस, स्वेडेन, इंग्लैंड तथा आस्ट्रिया के देश सम्मिलित हुये। प्रशा के अतिरिक्त अन्य छोटे-छोटे राज्यों की सहानुभूति भी इस संघ को प्राप्त थी। इस प्रकार अगस्त १८१३ तक नेपोलियन के विरुद्ध यूरोप के राजाओं का चतुर्थ संघ (Fourth Coalition) तैयार हो गया। इन सब राज्यों की सेना मिलाकर ५ लाख से भी अधिक थी। युद्ध का नेतृत्व मेटर्निख के हाथ में आ गया।

ड्रेस्डन (Dresden) का युद्ध—नेपोलियन ने ड्रेस्डन में लगभग ४½ लाख सेना इकट्ठी कर ली। उसके विरोधियों के पास भी लगभग इतनी ही सेना थी। अगस्त १८१३ में ड्रेस्डन का भयंकर युद्ध हुआ, परन्तु इसमें विजय नेपोलियन की ही हुई। परन्तु वह शत्रु सेनाओं का पीछा न कर सका।

टोप्लिज की सन्धि (Treaty of Toplitz)—१९ सितम्बर १८१३ को मित्र राष्ट्रों ने टोप्लिज की सन्धि कर ली। इसके अनुसार निम्नलिखित निर्णय हुये—

(१) नेपोलियन के पतन के पश्चात् राइन संघ भंग कर दिया जायेगा तथा जर्मनी का प्रत्येक राज्य स्वतन्त्र कर दिया जायगा।

(२) प्रशा तथा आस्ट्रिया की सीमाएं उनकी १८०५ की सीमाओं के समान कर दी जायेंगी।

रीड की सन्धि (Treaty of Ried)—बवेरिया के राज्य ने अब तक नेपोलियन का साथ दिया था। अतः नेपोलियन का पतन अवश्यम्भावी देखकर उसको भय हुआ कि इसके बाद मित्र राष्ट्र उससे बदला लेंगे। अतः ८ अक्तूबर १८१३ को उसने आस्ट्रिया के साथ रीड की सन्धि कर ली। इसकी शर्तें इस प्रकार थीं—

(१) वह नेपोलियन के विरुद्ध मित्र राष्ट्रों को ३६ हजार सैनिक देगा।

(२) नेपोलियन के पतन के पश्चात् मित्र राष्ट्र बवेरिया के राज्य को स्वतन्त्र मान लेंगे।

लीप्जिग (Leipzig) **का युद्ध**—बवेरिया के मिल जाने से मित्र राष्ट्रों की शक्ति में बहुत वृद्धि हो गई। उन्होंने पूर्ण शक्ति के साथ नेपोलियन का सामना करने का निश्चय किया। तीन दिन (१६ अक्टूबर से १८ अक्टूबर १८१३) तक नेपोलियन तथा मित्र राष्ट्रों की संयुक्त सेनाओं के मध्य लीप्जिग का भयंकर युद्ध हुआ। यह युद्ध इतिहास में सब राष्ट्रों का युद्ध (Battle of the Nations) कहलाता है, क्योंकि इस युद्ध में टर्की के अतिरिक्त यूरोप के समस्त देशों के सैनिकों ने भाग लिया था। इस युद्ध में प्रशा की सेनाओं का नेतृत्व मार्शल ब्लूचर (Marshal Blucher) तथा आस्ट्रिया की सेनाओं का नेतृत्व स्वार्जनबर्ग (Schwarzenberg) ने किया। नेपोलियन इस युद्ध में पूरी तरह पराजित हुआ। उसकी अजेयता हवा हो गई। इस युद्ध में १ लाख ३० हजार सैनिक मारे गए। इनमें ५० हजार फ्रांसीसी सैनिक थे। नेपोलियन अपनी शेष सेना के साथ राइन की ओर चला गया।

लीप्जिग के युद्ध के परिणाम—(१) इस पराजय के पश्चात् नेपोलियन की प्रतिष्ठा को बहुत धक्का लगा। इसके पश्चात् उसकी स्थिति बराबर बिगड़ती चली गई। जर्मनी के देशभक्तों तथा गुप्त संस्थाओं ने उसके विरुद्ध विद्रोह करने प्रारम्भ कर दिये।

(२) राइन का संघ नष्ट हो गया। प्रायः सब राजाओं ने मित्र राष्ट्रों से सन्धि कर ली।

(३) हालैण्ड के निवासियों ने नेपोलियन के विरुद्ध प्रिंस ऑफ औरेन्ज (Prince of Orange) को अपना राजा बनाया।

(४) जेरोम वेस्टफालिया से भगा दिया गया।

(५) आस्ट्रिया ने टाइरोल तथा इलीरिया के प्रान्तों पर अधिकार कर लिया। वेनेशिया तथा स्वीट्जरलैण्ड पर भी उसने अधिकार कर लिया।

(६) डेन्मार्क भी मित्र राष्ट्रों से मिल गया। वह स्वेडिश पोमीरेनिया के बदले नार्वे के देश को स्वेडेन के आधीन करने को तैयार हो गया।

(७) नेपोलियन के बहनोई म्यूरा ने आस्ट्रिया से सन्धि कर ली, जिससे कि नेपिल्स पर उसका अधिकार बना रहे।

(८) इटली में चारों ओर विद्रोह होने लगे। सिसली के सेनापति विलियम बेन्टिग ने जेनेवा पर आक्रमण किया। उसने इटली के अन्य क्षेत्रों में भी नेपोलियन के प्रति विरोध उत्पन्न करने का प्रयास किया। आस्ट्रिया की सेनाओं ने भी इटली पर आक्रमण किया और नेपोलियन के सौतेले पुत्र यूजेन को पराजित कर दिया।

(९) फ्रांस तक में जनता नेपोलियन की विरोधी हो गई। उसने नेपोलियन की अनिवार्य सैनिक भरती का विरोध किया। बहुत से नवयुवकों ने भरती से बचने के लिये अपने दांत तोड़ लिए तथा अंगूठे काट लिए।

(१०) स्पेन में अंग्रेजी सेनापति वेलिंग्टन का ड्यूक फ्रांसीसी सेना का पीछा करता हुआ पिरेनीज पर्वत की ओर बढ़ रहा था।

फ्रैंकफोर्ट के प्रस्ताव (Proposal of Frankfort)—इस समय मित्र राष्ट्रों ने फ्रैंकफोर्ट में अपना अधिवेशन किया तथा योरोप में शान्ति स्थापित करने के लिए एक प्रस्ताव नेपोलियन के पास भेजा गया। इसमें कहा गया था कि नेपोलियन फ्रांस की प्राकृतिक सीमाओं को स्वीकार कर ले अर्थात् वह पूर्व में राइन तथा दक्षिण में आल्प्स पर्वत को फ्राँस भी सीमायें स्वीकार कर ले। परन्तु नेपोलियन ने बेल्जियम तथा हा लैंड के प्रदेशों पर अपने अधिकार की मांग की। मित्र-राष्ट्रों ने नेपोलियन की इस मांग को अस्वीकार कर दिया। फलतः शान्ति स्थापना का समझौता भंग हो गया।

पुनः युद्ध—मित्र-राष्ट्रों की सेनायें एक महीने तक राइन नदी के किनारे पड़ी रहीं, परन्तु उन्होंने फ्रांस पर आक्रमण नहीं किया। उनको यह भय था कि समस्त फ्रांस कभी पुनः हमारे विरोध में न खड़ा हो जाय। अन्त में मित्र-राष्ट्रों ने फ्रांस पर आक्रमण कर दिया। नेपोलियन बड़ी वीरता से लड़ा। मित्र-राष्ट्रों ने राइन, बेल्जियम तथा स्वीट्जरलैंड से तीन ओर से फ्रांस पर आक्रमण किया था; परन्तु नेपोलियन ने अपूर्व वीरता से इन तीनों सेनाओं की गति को रोक दिया। मित्र-राष्ट्रों का प्रमुख सेनापति ब्लूचर कई स्थानों पर पराजित हुआ। नेपोलियन ने आस्ट्रिया तथा रूस की सेनाओं को भी पराजित किया। इससे मित्र-राष्ट्र घबरा गये। वे फ्रांस को खाली करने के लिये सोचने लगे, परन्तु एलेग्जेण्डर तथा कैसेलरे ने युद्ध बराबर जारी रखने का आदेश दिया।

सैतीलाँ (Chattilon) **की सभा**—मित्र-राष्ट्रों को अब भी फ्रांस से भय था। उन्हें यह भय था कि विदेशी आक्रमण के सामने कहीं सम्पूर्ण फ्रांस १७९३ की भांति युद्ध की घोषणा न कर दे। अतः उन्होंने ३ फरवरी को सैतीलाँ में एक सभा बुलाई। उन्होंने नेपोलियन के सम्मुख प्रस्ताव रक्खा कि यदि वह १७८९ की फ्रांस की सीमाओं को स्वीकार कर ले तो योरोप में शान्ति स्थापित हो सकती है। परन्तु

नेपोलियन ने पुनः बेल्जियम की मांग की। इंग्लैंड ने इसका विरोध किया। फलतः यह समझौता भी भंग हो गया और पुनः युद्ध प्रारम्भ हो गया।

नेपोलियन को अब भी अपनी विजय का विश्वास था। उसने अपनी गम्भीर स्थिति को समझने में गलती की। वास्तव में अब उसका नक्षत्र डूबने लगा था। तत्कालीन स्थिति को देखते हुए उसकी विजय की कोई संभावना नहीं थी।

१. नेपोलियन यह समझता था कि १७९३ की भांति फ्रांस की जनता शत्रु का सामना करेगी। अब परिस्थिति बदल गई थी। १७९३ में समस्त फ्रांस की सुरक्षा का प्रश्न था। अब केवल नेपोलियन की महत्वाकांक्षा का प्रश्न था।

२. लगातार युद्धों से जनता थक गई थी। अतः उसने नेपोलियन की अनिवार्य सैनिक भरती का विरोध किया। जनता अब शान्ति चाहती थी।

३. सैनिकों की कमी हो गई थी। नेपोलियन के १८१२—१३ के युद्धों में ७½ लाख फ्रांसीसी सैनिक काम आये थे। सैनिकों की कमी के कारण नेपोलियन को अल्प-वयस्क तथा अयोग्य व्यक्तियों को भी सेना में भरती करना पड़ा। जिन व्यक्तियों को प्रत्येक समय सेना में भरती करने से इंकार कर दिया था, उनको १८१४ में सरलतापूर्वक भरती कर लिया गया।

४. नेपोलियन की सलाहकार समिति भी नेपोलियन से असंतुष्ट हो गई थी। उसने यह मांग की कि जनता को भी राज्य-कार्यों में भाग लेने का अधिकार दिया जाय; परन्तु नेपोलियन ने नाराज होकर उक्त समिति को भंग कर दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि फ्रांस में भी नेपोलियन का विरोध बढ़ रहा था।

शौमां की सन्धि (Treaty of Chaumont)—नेपोलियन ने मित्र-राष्ट्रों में फूट डालने का प्रयत्न किया। अतः १ मार्च १८१४ को इंग्लैंड, रूस, प्रशा तथा आस्ट्रिया ने शौमां नामक स्थान पर एक सन्धि की। उसके अनुसार निम्नलिखित निर्णय किए गए—

१. यदि नेपोलियन ने फ्रांस की पुरानी सीमाओं को स्वीकार न किया तो उसके विरुद्ध कार्यवाही करने में ये सब राज्य आपस में एक दूसरे को सहयोग देंगे। वे २० वर्ष तक एक दूसरे का साथ नहीं छोड़ेंगे। कोई भी अकेला नेपोलियन से सन्धि नहीं करेगा। जब तक नेपोलियन पूरी तरह परास्त न हो जाय तब तक उसके विरुद्ध युद्ध जारी रक्खा जायेगा।

२. नेपोलियन के विरुद्ध युद्ध करने में प्रत्येक देश ने डेढ़ लाख सैनिक देने का वचन दिया तथा इंग्लैंड ने ५० लाख पौण्ड की आर्थिक सहायता देने का वचन दिया।

(३) नेपोलियन के पतन के पश्चात् जर्मनी में संघ-राज्य की स्थापना होगी।

(४) इटली के स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना होगी तथा स्पेन को स्वतन्त्र राज्य मान लिया जायगा।

(५) स्वीट्जरलैंड को एक स्वतन्त्र तथा तटस्थ राज्य मान लिया जायगा।

(६) हालैंड तथा बेल्जियम को एक राज्य में मिला दिया जायगा तथा प्रिंस ऑफ ऑरेन्ज को दे दिया जायगा।

फ्रांस पर आक्रमण—इस सन्धि के पश्चात् मित्र राष्ट्र एक सूत्र में बंध गए। उन्होंने पूरी शक्ति के साथ नेपोलियन का विरोध करने का निश्चय किया। फलतः मार्च के आरम्भ में ही नेपोलियन पर आक्रमण कर दिया गया। ७ मार्च को क्रेओन (Creonne) तथा ९ मार्च को लाओ (Laon) के युद्ध हुए, परन्तु ये युद्ध निर्णायक न थे। २० मार्च को नेपोलियन ने रूसी सेना पर आक्रमण किया; परन्तु इसका कोई फल नहीं हुआ। मार्च १८१४ को मित्र राष्ट्रों ने दो लाख सेना के साथ पेरिस पर आक्रमण किया। मार्शल मार्मा ने २८००० सैनिकों के साथ शत्रुओं का १० घण्टे तक सामना किया। अन्त में पेरिस का पतन हो गया। नेपोलियन युद्ध बन्द करना नहीं चाहता था; परन्तु उसके सैनिकों ने युद्ध करने से इंकार कर दिया। ३१ मार्च १८१४ को मित्र राष्ट्रों ने पेरिस में प्रवेश किया।

नेपोलियन का पतन तथा प्रथम निर्वासन—फलतः निराश होकर नेपोलियन फाण्टेंब्ल्यु चला गया। २ अप्रैल को नेपोलियन को सिंहासन से हटा दिया गया और तालीरां की अध्यक्षता में फ्रांस में एक अस्थायी सरकार (Provisional Government) की स्थापना कर दी गई। नेपोलियन ने मित्र राष्ट्रों से फाण्टेंब्ल्यु की सन्धि कर ली। वह अपने पुत्र के पक्ष में फ्रांस का सिंहासन त्यागना चाहता था; परन्तु मित्र राष्ट्रों ने यह प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया। अन्त में ११ अप्रैल की फाण्टेब्ल्यु की सन्धि के अनुसार उसने बिना शर्त के सिंहासन त्याग दिया। मित्र राष्ट्रों ने नेपोलियन को २० लाख फ्रैंक की पेंशन तथा उसके परिवार को २५ लाख फ्रैंक की पेंशन देकर एक छोटे से द्वीप एल्बा (Elba) का राजा बनाकर उसको वहां निर्वासित कर दिया। अप्रैल के अन्तिम सप्ताह में उसको एल्बा भेज दिया गया। उसकी सम्राट् की उपाधि को भी नहीं छीना गया। उसकी पत्नी मेरिया लूसा को परमा की डची देदी गई।

बूर्बों वंश की पुनः स्थापना—नेपोलियन को निर्वासित करने के पश्चात् फ्रांस के भाग्य का निर्णय करने के लिये पेरिस में मित्र राष्ट्रों की सभा हुई। पर्याप्त वादविवाद के पश्चात् तालीरां के न्यायोचित राजता के सिद्धान्त के आधार पर फ्रांस में पुनः बूर्बों वंश की स्थापना कर दी गई और पेरिस की प्रथम सन्धि के अनुसार लुई सोलहवें के भाई अठारहवें को फ्रांस का सिंहासन दे दिया गया। लुई सोलहवें का दसवर्षीय पुत्र १७९५ में कारागार में ही मर गया था। अतः उसने अपने भतीजे लुई १७वें के सिंहासन को स्वीकार कर लिया तथा लुई १८वें की उपाधि धारण की। वह १८१४ को अपने शासन का १९वाँ वर्ष कहता था। उसके मतानुसार फ्रांस की राजक्रान्ति एक विद्रोह था तथा नेपोलियन एक अपहरणकर्ता था। फिर भी समय की मांग को ध्यान में रखते हुए उसने जनता को एक उदार संविधान दिया।

पेरिस की प्रथम सन्धि के अनुसार निम्नलिखित निर्णय किये गये ।

(१) बूर्बां वंश को पुनः फ्रांस का सिंहासन दे दिया गया तथा लुई सोलहवें के भाई लुई अठारहवें को फ्रांस के सिंहासन पर बैठा दिया गया ।

(२) फ्रांस की सीमाएं १६६२ के अनुसार निर्धारित कर दी गई ।

(३) मारीशस, ट्रबेगो तथा सेंतलूसिया के अतिरिक्त उसके सब उपनिवेश वापस कर दिये गये ।

(४) फ्रांस से युद्ध का कोई हर्जाना नहीं लिखा गया ।

विएना कांग्रेस—यूरोप के भाग्य का निर्णय करने के लिये आस्ट्रिया की राजधानी विएना में मित्र राष्ट्रों ने एक सम्मेलन बुलाया । इसमें टर्की के अतिरिक्त यूरोप के प्रायः सब राष्ट्रों ने भाग लिया । सम्मेलन की अध्यक्षता का भार आस्ट्रिया के चाँसलर मेटर्निख को दिया गया । प्रथम नवम्बर १६१४ को इसका अधिवेशन प्रारम्भ हुआ । इसने अभी कोई विशेष निर्णय नहीं किया था, इसी बीच मार्च में नेपोलियन पुनः एल्बा से फ्रांस भाग आया ।

नेपोलियन का एल्बा से वापस आना—१ मार्च १८१५ में नेपोलियन एल्बा छोड़कर पुनः फ्रांस आ गया । वह अंग्रेजी बेड़े की निगाह बचाकर कानेज (Cannes) नामक स्थान पर समुद्र के तट पर उतरा । उसके यहाँ आते ही उसके अनेक स्वामि-भक्त सैनिक तथा अफसर उसके साथ हो गये । जिन पदाधिकारियों ने उसको धोखा दिया था वे क्षमा मांगने लगे । मार्ग में जो भी मिला वह उसके साथ हो लिया । उसके रोकने के लिए जो सेना भेजी गई उसके सम्मुख उसने अपना सीना दिखाकर कहा था—'अपने सम्राट् को गोली मारदो । क्या तुम मुझे नहीं पहिचानते ? मैं तुम्हारा सेनानायक तथा प्रिय सम्राट् था ।' फलतः वह सेना भी उसके साथ हो गई । पेरिस आते-आते उसके सैनिकों की संख्या छः हजार हो गई । ३० मार्च को उसने पेरिस में प्रवेश किया । मार्शल ने ने जिसको 'वीरों में वीर' कहा गया है, नेपोलियन को बन्दी बनाने की घोषणा की थी, परन्तु वह नेपोलियन से मिल गया । जी जान से अपने सिंहासन की रक्षा करने की घोषणा करने वाला लुई अठारहवाँ सिंहासन छोड़कर भाग गया । इस प्रकार बिना रक्त की एक बूँद बहाये नेपोलियन ने पुनः फ्रांस के सिंहासन पर अधिकार कर लिया ।

नेपोलियन की इस सफलता के निम्नलिखित कारण बताए जा सकते हैं:—

(१) मित्र राष्ट्र लूट के माल में बंटवारे के लिये विएना में एक दूसरे से लड़ झगड़ रहे थे । एल्बा में इसकी सूचना उसको बराबर मिल रही थी ।

(२) लुई अठारहवें को फ्रांस के अधिकाँश व्यक्ति हृदय से नहीं चाहते थे । वह गठिया रोग का बीमार था । यद्यपि उसने जनता को एक उदार संविधान दिया था, परन्तु वह फ्रांस में २५ वर्ष पुरानी व्यवस्था को स्थापित करना चाहता था और जनता इसके लिए तैयार न थी ।

(३) इस समय क्रान्ति के समय देश छोड़कर भागे हुये बहुत से सामन्त तथा पादरी आ गए थे। इनका नेता लुई अठारहवें का भाई काउण्ट आर्त्वा था। शासन में उसका बहुत प्रभाव था। वह फ्रांस में पुरातन व्यवस्था स्थापित करना चाहता था, परन्तु जनता क्रांति के सिद्धान्तों का परित्याग करना नहीं चाहती थी।

(४) लुई अठारहवें के लिये सैनिक गौरव का कोई महत्व नहीं था। उसने नेपोलियन के समय के बहुत से सैनिकों तथा सेनानायकों को पदच्युत कर दिया था। इससे वे उससे नाराज थे।

(५) कृषकों को यह भय हो गया था कि क्रांतिकाल में सामन्तों तथा पादरियों से जो भूमि छीनकर कृषकों में बांट दी गई थी, उसको लुई अठारहवां पुनः उनको वापस कर देगा। अतः कृषकों ने नेपोलियन का समर्थन किया।

(६) नेपोलियन को उसकी पेन्शन भी नहीं दी गई थी। उसके पत्र भी उसके सम्बन्धियों के पास ठीक प्रकार से नहीं पहुंचाये जाते थे। इससे उसे बहुत असन्तोष था।

(७) नेपोलियन का व्यक्तित्व बहुत आकर्षक था। उसके नाम में जादू था। अतः शीघ्र ही जनता उससे प्रभावित हो गई तथा उसने उसका स्वागत किया।

नेपोलियन का १०० दिन का शासन—एल्बा टापू से वापिस आने के पश्चात् नेपोलियन ने १०० दिन तक पुनः शासन किया। समय की आवश्यकता को देखते हुये उसने घोषित किया—मैं कुलीनों तथा सामन्तों से फ्रांस के नागरिकों की रक्षा करने के लिए वापस आया हूँ। मैं कृषकों की चर्च तथा सामन्तों से छीनी हुई भूमि की रक्षा करूंगा। मैं पुनः फ्रांस में सामन्त-प्रथा को स्थापित न होने दूँगा। जनता को क्रान्ति से जो लाभ प्राप्त हुये थे, अब वे संकट में हैं। अतः मैं क्रान्ति के सिद्धान्तों की रक्षा करने का प्रयत्न करूंगा। साथ-साथ उसने यह भी घोषणा की कि 'अब मैं युद्ध का परित्याग कर शान्तिपूर्वक संवैधानिक ढंग से शासन करूंगा। साम्राज्य-विस्तार की भावना का मैंने परित्याग कर दिया है।' उसने एक संविधान का भी निर्माण कराया तथा जनता से उसे स्वीकृत करा लिया। परन्तु मित्र राष्ट्र उसके इन आश्वासनों से सहमत नहीं थे।

वाटरलू का युद्ध (Battle of Waterloo)—नेपोलियन के पुनः आगमन का समाचार सुनकर मित्र राष्ट्र अपने मतभेद भूल गए और उन्होंने नेपोलियन को पूरी तरह पराजित करने के लिये प्रतिज्ञा की। उन्होंने घोषित किया कि नेपोलियन योरप की शान्ति को भंग करने का अपराधी है। इस बीच नेपोलियन ने दो लाख सैनिक इकट्ठे कर लिए थे। उसे पूर्ण विश्वास था कि अपने युद्ध कौशल द्वारा वह बड़ी आसानी से मित्र राष्ट्रों की सेना को पराजित कर देगा। मित्र राष्ट्रों ने नेपोलियन का सामना करने के लिए दो सेनाओं का संगठन किया। एक सेना का अध्यक्ष वेलिंग्टन का ड्यूक तथा दूसरी का ब्लूचर था। प्रत्येक सेना में एक-एक

लाख से अधिक सैनिक थे। नेपोलियन ने सोचा कि इन सेनाओं को एक दूसरे से मिलने से पूर्व ही पराजित कर दिया जाय। उसने १६ जून को ब्लूचर को लिनी (Ligny) के पास पराजित कर दिया। दूसरी ओर मार्शल ने वेलिंग्टन की सेना को एक स्थान से आगे बढ़ने नहीं दिया। वेलिंग्टन ने अपने सेनायें वाटरलू में एकत्र कर लीं। यहीं बेलजियम में वाटरलू के स्थान पर १८ जून १८१५ का निर्णायक युद्ध हुआ। दोनों सेनाओं में सात घण्टे तक भयंकर युद्ध हुआ। ४ बजे के लगभग ब्लूचर भी वेलिंग्टन की सहायता के लिये आ गया। इससे नेपोलियन की स्थिति गम्भीर हो गई। इस सेना ने नेपोलियन की सेना के दक्षिणी पार्श्व पर आक्रमण किया। नेपोलियन ने अपनी रक्षित सेना का प्रयोग किया। परन्तु शत्रु की अपेक्षा कम सेना रह जाने के कारण नेपोलियन के सैनिक भागने लगे। इस प्रकार दो सेनाओं के मध्य फंस जाने के कारण नेपोलियन को पराजय उठानी पड़ी और वाटरलू के युद्ध ने नेपोलियन के भाग्य का अन्तिम निर्णय कर दिया।

नेपोलियन का पतन तथा द्वितीय निर्वासन—वाटरलू का युद्ध विश्व के निर्णायक युद्धों में प्रमुख है। यह नेपोलियन के जीवन का साठवाँ तथा अन्तिम युद्ध था। इसने सदैव के लिये नेपोलियन के भाग्य का निर्णय कर दिया। नेपोलियन वाटरलू में पराजित होकर पेरिस आ गया और उसने २२ जून १८१५ को द्वितीय बार अपने पुत्र के पक्ष में सिंहासन का परित्याग कर दिया। अमेरिका भागने के विचार से वह पश्चिमी तट के रोशफोर (Rochefort) बन्दरगाह की ओर भाग गया, परन्तु अंग्रेजी जहाजी बेड़ा बड़ी सतर्कतापूर्वक प्रत्येक बन्दरगाह पर पहरा दे रहा था। भागने में असमर्थ होकर उसने १५ जुलाई १८१५ को एक अंग्रेजी बेलेरॉफॉन के अधिकारी मैटलैण्ड के सम्मुख आत्म-समर्पण कर दिया। मित्र राष्ट्रों की सम्मति से वह इंग्लैंड ले जाया गया और वहां से उसे कैदी बनाकर एटलान्टिक महासागर के एक निर्जन टापू सेन्ट हेलेना (St. Helena) में निर्वासित कर दिया गया। वह बन्दी के रूप में ६ वर्ष तक रहा। अन्त में पेट के कैन्सर से ५ मई १८२१ को उसकी मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय उसकी अवस्था केवल ५१ वर्ष ९ महीने की थी। सेन्ट हेलेना में उसको एक साधारण पत्थर के नीचे दफना दिया गया था। इसके २० वर्ष पश्चात् नेपोलियन तृतीय उसके अवशेषों को बड़े समारोह के साथ पेरिस लाया तथा वहां उनको एक विशाल समाधि में दफनाया गया। सेन्ट हेलेना में नेपोलियन ने अपना समय संस्मरण लिखने में व्यतीत किया। उसने अपने को क्रान्ति का पुत्र तथा दीन दुखियों का सच्चा सेवक सिद्ध किया है। उसने अपने को शांति का पुजारी बतलाया है। युद्ध के लिये तो उसको अंग्रेजों की कूटनीति तथा निरंकुश राजाओं की स्वेच्छाचारिता ने विवश किया था। अपने बन्दी जीवन के सम्बन्ध में अफसोस करते हुये उसने लिखा था—'युद्धों में मेरे आस पास अनेक सैनिक मरते रहते थे, परन्तु ये दिन देखने के लिये वहां मेरा बाल भी बांका नहीं हुआ।'

पेरिस की द्वितीय सन्धि—पेरिस की प्रथम सन्धि के अनुसार फ्रांस का दमन नहीं किया गया था, क्योंकि मित्र राष्ट्रों का यह विश्वास था कि युद्ध का उत्तर-

दायित्व फ्रांस पर नहीं अपितु नेपोलियन पर था। अतः नेपोलियन के अपराध के लिये फ्रांस को दण्ड नहीं दिया गया, परन्तु पेरिस की द्वितीय सन्धि के अनुसार फ्रांस का दमन करने का प्रयास किया गया, क्योंकि नेपोलियन के एल्बा से वापस आने पर फ्रांसीसी जनता ने नेपोलियन का स्वागत किया था। यह सन्धि २० नवम्बर १८१५ को हुई। इसके अनुसार निम्न निर्णय किये गये —

(१) पर्याप्त विचार-विमर्श के पश्चात् लुई अठारहवें को पुनः फ्रांस का सिंहासन दे दिया गया।

(२) फ्रांस पर ७० करोड़ फ्रैंक युद्ध का हर्जाना लादा गया। जब तक फ्रांस पूरा हर्जाना अदा न कर देगा तब तक फ्रांस में वेलिंटन के ड्यूक के नेतृत्व में १ लाख विदेशी सेनाएं रहेंगी और उनका खर्च भी फ्रांस के जिम्मे रहेगा।

(३) सन् १७८९ के अनुसार फ्राँस की सीमाएं निश्चित कर दी गईं।

(३) नेपोलियन विदेशों से जो कला-कृतियाँ लाया था, उनको वापस कर दिया गया।

नेपोलियन के पतन के कारण—नेपोलियन का विशाल साम्राज्य शक्ति पर आधारित था। अन्दर से वह खोखला था, वह हवा के एक साधारण झोंके से ही गिर सकता था। नेपोलियन भी इस स्थिति को भली प्रकार समझता था। एक बार उसने कहा था—'वंशानुगत राजा बीस बार पराजित होने पर भी अपना सिंहासन पुन प्राप्त कर सकते है, परन्तु मेरे लिये यह सम्भव नहीं है, क्योंकि मेरा उत्कर्ष शक्ति के आधार पर हुआ है।'[1] इससे आगे उसने यह भी कहा था कि जिस दिन मेरा बाहुबल समाप्त हो जायगा उस दिन मेरा प्रभाव भी समाप्त हो जायगा और लोग मुझसे डरना छोड़ देंगे। वास्तव में उसकी यह बात सत्य सिद्ध हुई और शक्ति पर आधारित उसके राज्य को छिन्न-भिन्न होने में देर नहीं लगी। संक्षेप में उसके पतन के निम्नलिखित कारण बताये जा सकते हैं—

(१) **क्रान्ति की भावना का अन्त**-नेपोलियन को यह विश्वास था कि जब मित्र राष्ट्र फ्राँस पर आक्रमण करेंगे तो फ्राँसवासी १७९३ की भाँति उन को मार कर भगा देंगे। मित्र राष्ट्रों को भी यह भय था कि यदि फ्राँस पर आक्रमण किया गया तो कभी १७९३ की भाँति सम्पूर्ण फ्रांस उनके विरोध में खड़ा न हो जाय। इसलिये वे फ्राँस पर आक्रमण करने से बराबर डर रहे थे। परन्तु उन्होंने साहस करके फ्राँस पर आक्रमण कर दिया। इस समय क्रान्ति की भावना समाप्त हो जाने के कारण उन्हें परिस्थिति बदली मिली। सन् १७९३ में सम्पूर्ण फ्राँस की सुरक्षा का प्रश्न था, परन्तु अब एकमात्र नेपोलियन की महत्वाकांक्षा का प्रश्न था। जनता निरन्तर युद्धों से परेशान हो गई थी। वह शान्ति चाहती थी। उसने नेपोलियन की

---

1. 'Your sovereigns, who are born on the throne, may get beaten twenty times and yet return to their capitals. I cannot, for I rose to power through the camp.'

अनिवार्य सैनिक भरती का विरोध किया। बहुत से नवयुवकों ने भरती से बचने के लिये दाँत तोड़ लिये तथा हाथ के अंगूठे काट लिये। इस प्रकार अब फ्रांसीसी जनता में क्रान्ति की भावना का विनाश हो गया था और वह शान्ति चाहती थी।

(२) **अंग्रेजों के जहाजी बेड़े की श्रेष्ठता**—नेपोलियन स्थल का विजेता था। उसका जहाजी बेड़ा शक्तिशाली नहीं था। ट्राफल्गर के युद्ध में नेल्सन ने फ्राँस तथा स्पेन के संयुक्त जहाजी बेड़े का विनाश का अंग्रेजी जहाजी बेड़े की शक्ति को सर्वोपरि बना दिया। शक्तिशाली जहाजी बेड़े के कारण ही इंग्लैण्ड ने नेपोलियन से अपने देश की रक्षा की। इसी के आधार पर उसने नेपोलियन की महाद्वीपीय योजना का डट कर सामना किया। अपने शक्तिशाली जहाजी बेड़े के आधार पर ही अंग्रेजों ने नेपोलियन के विरुद्ध स्पेन तथा पुर्तगाल के युद्धों में भाग लिया। इस प्रकार अंग्रेजों ने अपने शक्तिशाली जहाजी बेड़े से नेपोलियन का दृढ़ता-पूर्वक सामना किया और अन्त में उसको बहुत निर्बल कर दिया। इस प्रकार नेपोलियन के पतन में अंग्रेजी जहाजी बेड़े का बहुत महत्व है।

(३) **नेपोलियन की हठधर्मी**—नेपोलियन में हठधर्मी की मात्रा बहुत अधिक थी। पराजित होने पर भी मित्र राष्ट्र उसको फ्राँस की प्राकृतिक सीमाओं में रखने के लिये तैयार थे, परन्तु उसने मित्र राष्ट्रों के इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। उसने एक बार मेटर्निख से कहा था कि मैं मर जाऊंगा, परन्तु एक इंच भूमि भी नहीं दूंगा।[1] इसी प्रकार स्पेन पर एक बार आक्रमण कर वह पीछे हटने के लिये तैयार नहीं हुआ। प्रथम आक्रमण में उसको रूस की कठिनाइयों का पता चल गया था, परन्तु फिर भी उसने पुनः रूस पर आक्रमण कर दिया। वह एक विशाल साम्राज्य की स्थापना करना चाहता था। वह समस्त यूरोप को एक सम्राट् के अधीन देखना चाहता था। नेपोलियन स्वयं भी यह समझता था कि उस उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती, परन्तु फिर भी उसने अपने इस विचार का परित्याग नहीं किया। वह अपने तालीराँ तथा फीशे जैसे योग्य सलाहकारों की बात भी नहीं मानता था। अपने मस्तिष्क को ही यह सबसे अधिक महत्ता देता था। जिस समय तालीरां ने उसको स्पेन पर आक्रमण न करने की सलाह दी थी तो उसने उसकी उपमा सिल्क में लिपटे हुये गोबर से दी थी और अन्त में उसने स्वयं स्वीकार किया था कि स्पेन के फोड़े ने मेरा विनाश कर दिया। इस प्रकार नेपोलियन स्वयं राइन के राज्य संघ को A bad calculation कहता था तथा महाद्वीपीय योजना को Chimera (असम्भव चीज) कहता था, परन्तु फिर भी उसने इनका परित्याग नहीं किया। मेटर्निख ने शान्ति स्थापना के लिये २६ जून १८१३ को ड्रेस्डेन में नेपोलियन को समझाने की असफल चेष्टा की थी। परन्तु उसके दम्भ को देखकर उसने घोषित किया था कि

---

1. 'I shall know how to die but never yield an inch of territory.'

आपका पतन अवश्यम्भावी है ।[1] इस प्रकार नेपोलियन में दुराग्रह की मात्रा बहुत अधिक थी ।

(४) **उग्र सैनिकवादी**—नेपोलियन का विकास युद्ध में ही हुआ था। उसने कभी भी युद्धों को विस्मृत नहीं किया। वह उग्र सैनिकवादी था। उसका कहना था कि विशाल सेनाओं के साथ ईश्वर चलता है ।[2] परन्तु उसने यह नहीं सोचा कि एकमात्र सेनाओं के बल पर अधिक दिन तक राज्य नहीं टिक सकते ।

(५) **सेना की आन्तरिक दुर्बलता**—नेपोलियन की सेना में अनेक आन्तरिक दुर्बलतायें थीं। अभी हाल में कुछ ऐसे पत्र मिले हैं, जिनसे विदित होता है कि सेना की आन्तरिक स्थिति अच्छी न थी। उसके पास भोजन तथा कपड़े का अभाव रहता था। सैनिकों को कई-कई महीनों तक वेतन नहीं मिलता था। नेपोलियन ने बलात् भरती पर जोर दिया था। उससे उसकी सेना में जर्मनी, हालैण्ड, पोलैण्ड, इटली, डेन्मार्क तथा स्पेन आदि अनेक देशों के सैनिक थे। इससे सेना में आन्तरिक निर्बलता आ गई थी। विभिन्न देशों के सैनिकों के लिये विजय तथा पराजय का कोई महत्व न था। उनमें राष्ट्रीयता की भावना का अभाव था। नेपोलियन ने अनेक देशों में उनके ही खर्चे पर अपनी सेनायें रक्खीं थीं। इससे विदेशों में उसकी सेनायें अप्रिय हो गईं। फ्रांस की जो सेनायें कभी अपने पड़ौसी देशों की निरंकुशता से छुटकारा दिलाने के लिये कटिबद्ध रहती थीं अब वे उनका शोषण करने लगीं। इससे दूसरे देशों में राष्ट्रीयता का उदय हुआ था। फ्रांसीसियों ने भी नेपोलियन की अनिवार्य सैनिक भरती का विरोध किया था।

(६) **विश्वासपात्र की भावना**—नेपोलियन में विश्वासघात की भावना भी थी ।[3] इसका उदाहरण पुर्तगाल तथा स्पेन हैं। उसके इस कार्य से उसके मित्र सशंकित हो गये। उसका मित्र रूस का जार सम्राट् उससे खिचने लगा।

(७) **उसके सम्बन्धियों की अयोग्यता**—नेपोलियन ने अपने सम्बन्धियों को राज्य में उच्च पद भी दिये थे। परन्तु वे अयोग्य सिद्ध हुये। उन्होंने नेपोलियन के साथ विश्वासघात भी किया। स्वयं नेपोलियन ने कहा था—'मैंने अपने सम्बन्धियों के प्रति जितना अच्छा व्यवहार किया उतनी ही उन्होंने मुझको हानि पहुँचाई ।[4]

(८) **थकावट**—नेपोलियन दिन पर दिन मोटा होता जा रहा था। उसके कार्य करने की क्षमता कम होती जा रही थी। उसका स्वास्थ्य भी पहले जैसा अच्छा

---

1. 'Sire you are lost. I felt it when I came, and now that I go I am certain.'

2. 'God marches with the biggest battalion.' —Napoleon.

3. ''I know when to exchange the lion's skin for that of the fox. —Napoleon.

4. My relatives have done more harm than. I have done them good·' —Napoleon.

न रह गया था। इस प्रकार कुछ विद्वानों ने उसके पतन का एक मात्र कारण थकावट माना है।'[1]

(९) **महत्वाकांक्षा**—नेपोलियन बहुत बड़ा महत्वाकांक्षी था। अपने बल पर वह अनेक देश जीतता चला गया। वह समस्त यूरोप में एक अधिपति देखना चाहता था। इसी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिये उसने बिना सोचे समझे अनेक गलत कार्य किये जिनका परिणाम उसके लिए भयंकर हुआ। हम यह मानते हैं कि वह एक असाधारण मनुष्य था, परन्तु था तो एक मनुष्य ही। उसने यह कभी नहीं सोचा कि मनुष्य कभी भी भगवान् नहीं बन सकता।[2]

(१०) **राष्ट्रीयता की लहर**—नेपोलियन के साम्राज्य में राष्ट्रीयता की लहर भी आ गई थी। उसने प्रशा को बुरी तरह पददलित कर लिया था, परन्तु वहाँ पर इसका प्रतिशोध लेने के लिए बड़ी तीव्र गति से जागृति आ रही थी। इसी प्रकार स्पेन का एक-एक बच्चा नेपोलियन के विरोध में खड़ा हो गया था। जर्मनी तथा इटली में भी राष्ट्रीयता की भावनायें जोर पकड़ रहीं थीं। अब तक नेपोलियन ने निरंकुश सम्राटों को पराजित किया था, परन्तु अब उसको राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत जनसमूह का सामना करना पड़ा। स्वेच्छाचारी राजाओं को पराजित करना सरल था, परन्तु राष्ट्रीयता से पूर्ण जन-समूह को पराजित करना असम्भव था।

(११) **जनता में श्रद्धा का अभाव**—नेपोलियन के विशाल साम्राज्य में अनेक जातियों के मनुष्य रहते थे। वे उसके प्रति श्रद्धा तथा भक्ति नहीं रखते थे। उनमें राष्ट्रीयता की भावना उदय हो रही थी। वे अवसर पाकर विदेशी शासन से मुक्त होना चाहते थे। स्वयं फ्रांस की जनता को नेपोलियन की विजयों के प्रति पहले जैसी सहानुभूति न रह गई थी। नेपोलियन निरंकुशता का प्रतीक था। अतः उसने जनता को शासन-कार्यों में भाग लेने के लिये अवसर प्रदान नहीं किये थे। जनता में इससे बड़ा असंतोष था। धीरे-धीरे जनता अधिकारों की मांग करने लगी थी, परन्तु नेपोलियन इसके लिये तैयार न था। अतः दोनों में संघर्ष अनिवार्य था।

(१२) **पोप से संघर्ष**—नेपोलियन ने पोप पर दबाव दिया कि वह उसकी व्यापार-बहिष्कार की नीति का पालन करे। परन्तु पोप ने इसका पालन करना स्वीकार नहीं किया। इस पर नेपोलियन ने पोप के राज्य पर अधिकार कर लिया तथा पोप को बन्दी बना लिया। पोप ने उसको धर्म से बहिष्कृत कर दिया। पोप समस्त कैथोलिक संसार का गुरु था। अतः समस्त कैथोलिक उसके विरोधी हो गए। विद्वानों ने नेपोलियन के इस कार्य को उसकी भयंकर भूल बतलाया है।

(१३) **स्पेन से संघर्ष**—स्पेन का राजा नेपोलियन का मित्र था। परन्तु उसने उसके साथ विश्वासघात कर उसको अपना शत्रु बना लिया। उसने स्पेन की गृह-

---

1. 'The causes of his decline may be summed up in a single word, exhaustion.' —Dr. Sloane.

2. 'He forgot that a man cannot be a god.' —Foch.

कलह से लाभ उठा कर स्पेन पर अधिकार कर लिया। स्पेन के नागरिकों ने इसको अपना व्यक्तिगत अपमान समझा। अतः समस्त देश में नेपोलियन के विरुद्ध प्रचार होने लगा। शीघ्र ही समस्त देश में राष्ट्रीयता की लहर दौड़ गई। अन्त में स्पेन का एक-एक बच्चा नेपोलियन का शत्रु हो गया। स्पेन की देखा-देखी प्रशा, रूस, जर्मनी तथा इटली आदि देशों में भी राष्ट्रीयता भावना छा गई। अन्त में नेपोलियन ने यह स्वीकार किया था कि स्पेन के फोड़े ने उसका सर्वनाश कर दिया।'[1]

(१४) **रूस के संघर्ष**—रूस का जार भी नेपोलियन का मित्र था। परन्तु वह बड़ा महत्वाकांक्षी था। उसने सोचा कि यदि मैं रूस पर अधिकार कर लूँ तो समस्त संसार का विजेता हो सकता हूँ। वह मास्को को भारत के मार्ग के मध्य में बतलाता था।[2] उसने यह भी सोचा कि पहले रूस से मोर्चा ले लिया जाय और सबसे अन्त में एकमात्र इंग्लैंड से ही मोर्चा लेना शेष रह जायेगा। यद्यपि उसको रूस में आने वाली प्राकृतिक कठिनाइयों का पूर्वाभास था; परन्तु फिर भी उसने अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिये रूस पर आक्रमण कर दिया। यह उसकी भयंकर भूल थी। रूस में उसकी विशाल सेना के ५ लाख ८० हजार सैनिक मारे गये। एक मात्र २० हजार सैनिक वहां से बचकर आये। नेपोलियन की शक्ति का यह महा विनाश था। अन्त में रूस का अभियान उसके पतन का सबसे बड़ा कारण बना।

(१५) **व्यापार-बहिष्कार की नीति**—अंग्रेजों को पराजित करने के लिये उसने अपने अधीन देशों को यह आदेश दिया कि वे अंग्रेजी व्यापार का बहिष्कार कर दें। इससे महाद्वीप के व्यापार को बहुत धक्का लगा। जनता को नित्य प्रति की वस्तुयें भी मिलनी कठिन होने लगीं। अतः शासकों को इस नीति का पालन करना कठिन प्रतीत होने लगा। परन्तु नेपोलियन बराबर यह जोर डालता रहा कि व्यापार-बहिष्कार की नीति का पूर्णतया पालन किया जाये। इसी से पोप, पुर्तगाल तथा रूस आदि देशों से उसका झगड़ा हुआ और ये बातें उसके पतन में सहायक हुईं।

(१६) **शत्रुओं को नीचा समझना**--नेपोलियन अपने अहंभाव के कारण अपने शत्रुओं को बहुत नीचा समझता था। अपने मस्तिष्क को वह सबसे अधिक महत्व देता था। उसने एक बार अपने सेनापति सोल्ट (Soult) से कहा था—'वेलिंटन एक अयोग्य जनरल है और उसकी सेना एक अयोग्य सेना है।[3] स्पेन के निवासियों के बारे में उसने कहा था—'स्पेन के सामन्त तथा सेनायें जितनी कायर हैं उतनी

---

1. 'Spanish ulcer has ruined me.' —Nepoleon.

2. 'Moscow is the half way house to India.' —Napoleon.

3. 'I tell you that Wellington is a bad general and that his army is a bad army.' —Napoleon.

कायरता मैंने कहीं नहीं देखी ।'[1] परन्तु ये दोनों ही उसके विनाश में प्रमुख स्थान रखते हैं। इस प्रकार उसका अहम्भाव भी उसके पतन का कारण बना।

(१७) **स्थायी योजना का अभाव**—नेपोलियन ने यूरोप के पुनर्निर्माण की जितनी भी योजनायें बनाई थीं वे सभी अस्थायी थीं। वास्तव में कोई भी विचार उसके मस्तिष्क में अधिक समय तक न रहता था। वह बालकों के घिरौंदों की भांति अपनी योजनाओं को निरन्तर बनाता-बिगाड़ता रहता था।[2] उसके इस अस्थायित्व ने उसके साम्राज्य के भीतर से निर्बल कर दिया था।

इस विविध कारणों ने मिलकर नेपोलियन का पतन किया। उसके पतन में मास्को, लीप्जिग, फांटेंब्ल्यू और वाटरलू के युद्ध प्रमुख घटनायें कही जा सकती हैं।[3]

प्रश्न बी० ए०

१. सन् १८०८ से १८१४ तक नेपोलियन की शक्ति बराबर कम होती जा रही थी। (हेजन) नेपोलियन के इतनी जल्दी पतन के कारणों पर प्रकाश डालिए।

२. 'स्पेन के फोड़े' तथा 'रूसी अभियान' ने नेपोलियन का सर्वनाश कर दिया।' इस कथन का स्पष्टीकरण कीजिये।

३. नेपोलियन प्रथम के पतन के कारणों पर प्रकाश डालिये।

४. जेना (ऐना) के युद्ध के पश्चात् प्रशा की जागृति का वर्णन कीजिये।

---

1. 'I have seen nothing so cowardly as these spanish nobles and troops. —Napoleon.

2. 'Napoleon had no permanent plan for the settlement of Europe. There was never so restless a diplomatist. He would change the boundaries of States and open up new horizons from mouth to mouth, like a child who amuses himself with bricks now making a castle, now a temple, now a fresh farm-house and now a wall —Fisher.

3. 'The downfall of Napoleon is a trilogy of which Moscow, Leipzig, Fontainbleau are the successive pieces and Waterloo the epilogue.' —Fisher.

Questions M. A.

1. How do you account for the Prussian Resurgence in 1807 ?
2. Examine the relations between Napoleon and Prussia after the battle of Jena. How did Prussia rehabilitate herself for a grand duel with him ?
3. Explain carefully why Nepoleon failed to conquer Spain.
4. What circumstances made Napoleon's fall rapid after the Battle of Leipzig ?
5. What was the part played by Austria in bringing about the downfall of Napoleon ? Contrast her position in 1807 with that in 1813.
6. Assess the contribution of (a) Britain, (b) Prussia and (c) Russia towards the downfall of Napoleon.
7. 'The downfall of Napoleon is a trilogy of which Moscow, Leipzig and Fontainbleau are the successive pieces and Waterloo the epiloque.' (Fisher) Comment.

नेपोलियन का मूल्यांकन

युद्धों के उद्देश्य, क्रान्ति के सिद्धान्तों का प्रचार, वंशोन्नति, महत्वाकांक्षा, इतिहास का प्रभाव, सुरक्षा की भावना, शासन-व्यवस्था। नेपोलियन के साम्राज्य की विशेषतायें। नेपोलियन का मूल्यांकन।

नेपोलियन के युद्धों के उद्देश्य—नेपोलियन ने अपने जीवन में अनेक युद्ध किए। उसका अन्तिम युद्ध वाटरलू का था। यह नेपोलियन के जीवन का साठवाँ युद्ध बतलाया जाता है। नेपोलियन ने किन उद्देश्यों से प्रेरित होकर युद्ध किये इस पर विद्वानों में मतभेद है। नीचे संक्षेप में नेपोलियन के युद्धों के विभिन्न उद्देश्यों का वर्णन किया जायगा—

(१) **क्रान्ति के सिद्धान्तों का प्रसार**—कुछ विद्वानों का मत है कि नेपोलियन ने क्रान्ति के सिद्धान्तों के प्रसार के लिये युद्ध किए थे। उसने जिन देशों को जीता वहां नवीन विचारों के आधार पर शासन-व्यवस्था स्थापित की। उसने प्रत्येक देश में उच्च वर्ग के स्थान पर निम्न वर्ग के व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न किया। उसने प्रत्येक देश में फ्रांसीसी क्रान्ति के अनुरूप पुरानी व्यवस्था को दूर कर अनेक प्रकार के सामाजिक सुधार किए। इटली इसका प्रमुख उदाहरण है।

(२) **अपने वंश की उन्नति के लिये**—कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि उसने अपने वंश की उन्नति के लिए युद्ध किए। उसने अपने परिवार के प्रायः सभी व्यक्तियों को कहीं न कहीं उच्च स्थान दिये थे।

(३) **महत्वाकांक्षा**—नेपोलियन जन्मजात महत्वाकांक्षी तथा साम्राज्यवादी था। अतः कुछ विद्वानों के मतानुसार उसने अपने इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये युद्ध किये थे। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसने विभिन्न राज्यों को जीतकर अपने अधीन कर लिया था।

(४) **इतिहास से प्रभावित**—कुछ विद्वानों के अनुसार नेपोलियन के युद्ध इतिहास में पूर्व वीरों—सिकन्दर, सीजर तथा शार्लमेन आदि से प्रभावित होकर किये गये थे। उसने बचपन में ही इन वीरों की विजय के सम्बन्ध में पढ़ा था। अतः नेपोलियन इन वीरों की भांति इन प्रदेशों की विजय करना चाहता था। उसने सिकन्दर तथा सीजर से प्रभावित होकर मिस्र, सीरिया तथा भारत की विजय की योजना बनाई। शार्लमेन से प्रभावित होकर उसने पश्चिमी यूरोप के विभिन्न राज्यों

को एक कर उन्हें साम्राज्य का रूप देने की योजना बनाई तथा चर्च का सहयोग प्राप्त करने की चेष्टा की।

(५) **सुरक्षात्मक**—कुछ विद्वानों का मत है कि नेपोलियन के युद्ध सुरक्षात्मक थे। इंग्लैंड ने संसार के अधिकांश समुद्रों पर अधिकार कर रक्खा था। उसने इस एकाधिपत्य का अन्त करने का निश्चय किया। इससे अंग्रेजों ने उसके विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ कर दिये। फलतः आत्म-रक्षा के लिये नेपोलियन ने भी युद्धों का आश्रय लिया।

शासन-व्यवस्था—नेपोलियन ने अपने जीते हुए समस्त प्रदेशों में एक सी शासन-व्यवस्था स्थापित करने की चेष्टा की। उसने प्रत्येक देश में फ्रांस की शासन-प्रणाली के आधार पर शासन-व्यवस्था स्थापित की। प्रत्येक देश को एकतन्त्रवादी विधान दिया। यह विधान कौंसिल ऑफ स्टेट (Council of State) द्वारा संचालित होता था। इसके सदस्य नेपोलियन द्वारा मनोनीत किये जाते थे। यद्यपि नेपोलियन ने विभिन्न देशों को एकतन्त्रवादी संविधान दिया परन्तु फिर भी उसने स्थानीय विशेषताओं को ध्यान में रक्खा। एक बार उसने कहा था—'प्रत्येक जाति की ऐतिहासिक विशेषताएं तथा परम्पराएं होती हैं। अतः उसका संविधान भी इन विशेषताओं तथा परम्पराओं पर आधारित होना चाहिए।' इसी आधार पर उसने पोलैण्ड के संविधान में वहां के सामन्तों के विशेषाधिकारों की रक्षा की तथा स्वीट्जरलैण्ड के संविधान में केन्द्रीयकरण के साथ-साथ कैन्टनों के अधिकारों को भी संरक्षण प्रदान किया। नेपोलियन एकतन्त्रवादी होते हुए भी अपनी प्रजा के साथ पिता की भांति व्यवहार करता था।

नेपोलियन का साम्राज्य-विस्तार—सन् १८११ में नेपोलियन का साम्राज्य-विस्तार अपनी पराकाष्ठा पर था। इस समय प्रायः समस्त योरप में उसका प्रभाव था। इस समय फ्रांस के साम्राज्य के अन्तर्गत उत्तर-पूर्व में बेल्जियम, हालैंड तथा डेन्मार्क थे तथा दक्षिण-पूर्व में पीडमाण्ट, जिनेवा, टस्कनी तथा पोप के राज्य थे। पूर्व में राइन संघ, स्वीट्जरलैंड तथा नेपिल्स के राज्य थे। एड्रियाटिक सागर के पूर्वी तट पर स्थित इलेरियन प्रान्त पर भी फ्रांस का अधिकार था। प्रशा तथा आस्ट्रिया का मान-मर्दन कर दिया गया था। रूस का जार नेपोलियन का मित्र था। स्पेन में उसका भाई जोसेफ शासन कर रहा था। इस प्रकार नेपोलियन के अधीन एक विशाल साम्राज्य था। फ्रांस की सीमाओं का इतना विस्तार लुई चौदहवें के समय में भी नहीं हुआ था। परन्तु वास्तव में यह सारी व्यवस्था खोखली थी। अवसर पाने पर यह बहुत शीघ्र नष्ट हो सकती थी और अन्त में बहुत शीघ्र ही नेपोलियन के विशाल साम्राज्य का अन्त हो गया।

नेपोलियन के साम्राज्य की विशेषतायें—संक्षेप में नेपोलियन के साम्राज्य की विभिन्न विशेषतायें थीं—

(१) यह साम्राज्य नेपोलियन ने अपने व्यक्तित्व के आधार पर स्थापित किया था। यह फ्रांस की विजय का परिणाम न था। यह नेपोलियन की विजय का

परिणाम था। इसी सम्बन्ध में एक बार तालीरां ने कहा था—'राइन, आल्पस तथा पेरेनीज फ्राँसीसी राष्ट्र की विजय हैं। शेष नेपोलियन की विजय है।'[1]

(२) नेपोलियन ने सैनिक परिवारों की स्थापना के द्वारा अपने साम्राज्य को दृढ़ किया था। उसने अपने सेनापतियों को बड़े-बड़े पद, उपाधियों तथा वेतन दिये थे।

(३) उसने अपने सेनापतियों को आज्ञा दे रक्खी थी कि वे विजय प्राप्त करने के पश्चात् वहां सम्पत्ति का संग्रह करें। उसने अपने सेनापति मार्मा को फटकारा था, क्योंकि उसने मेसेना आदि सेनापतियों की भांति सम्पत्ति का संग्रह नहीं किया था।

(४) नेपोलियन अपने साम्राज्य को संघ-राज्य कहा करता था। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं था। नेपोलियन के साम्राज्य में वे विशेषतायें नहीं थीं जो कि संघ-शासन हुआ करती हैं। इसमें शक्तियों का विभाजन न था। प्रत्येक राज्य का संविधान नेपोलियन द्वारा दिया गया था। नेपोलियन एकदम निरंकुश था।

(५) नेपोलियन का साम्राज्य स्थायी रूप से संगठित नहीं था। इसमें नेपोलियन अपनी इच्छा से परिवर्तन किया करता था। कोई भी राज्य अपने भाग्य के संबन्ध में निश्चिन्त न था। उदाहरण के लिये उसने हालैंड को पहले गणतन्त्र का तथा बाद को राजतन्त्र का रूप दिया तथा अन्त में उसने उसको अपने साम्राज्य में मिला लिया।

(६) नेपोलियन के साम्राज्य का कोई निश्चित विस्तार न था। वह बराबर घटता-बढ़ता रहता था। नये राज्यों का निर्माण तथा पुराने राज्यों का विलोप होता रहता था, वास्तव उसका विशाल साम्राज्य (Grand Empire) इंग्लैंड का विरोध करने के लिये भिन्न-भिन्न राज्यों का एक समूह मात्र था। उसमें किसी भी प्रकार की वास्तविक एकता न थी।

(७) नेपोलियन पेरिस को सबसे अधिक महत्व देता था। वह उसको संसार का केन्द्र-बिन्दु कहता था। एक बार उस ने कहा था—'लंदन विश्व का एक कोना है तथा पेरिस उसका मध्य है।'[2] उसने अपने साम्राज्य में योग्य प्रशासक तथा सेनापति नियुक्त किये थे।

(८) नेपोलियन ने आर्थिक सुव्यवस्था की ओर सबसे अधिक ध्यान दिया था। नेपोलियन के सत्तारूढ़ होने के समय फ्रांस में ३६००० कम्यून में आर्थिक अव्यवस्था फैली हुई थी। अधिकांश कम्यून दिवालिया हो गये थे। परन्तु नेपोलियन ने शीघ्र

---

1. "The Rhine, the Alps, the Pyrenees, these are the conquests of the French nation. The rest is the conquest of Napoleon".
— Talleyrand.

2. "London is the corner of the world, Paris is the centre.'

ही उनमें आर्थिक सुव्यवस्था स्थापित की। उसने प्रत्येक प्रिफेक्ट को आदेश दिया कि वह वर्ष में दो बार प्रत्येक कम्यून में जाकर उसका निरीक्षण करे तथा सब प्रिफेक्ट को यह आदेश था कि वह वर्ष में चार बार जाकर प्रत्येक कम्यून का निरीक्षण करें। लापरवाह मेयर को तुरन्त हटा दिया जाता था। जो मेयर कम खर्च करता था उसको राजधानी में बुलाकर सम्मानित किया जाता था तथा उसके नगर में उसका कीर्ति-ध्वज स्थापित किया जाता था।

(९) नेपोलियन ने अपने साम्राज्य में उदारता, राष्ट्रीयता तथा स्वतन्त्रता आदि उच्च सिद्धान्तों को स्थान नहीं दिया। उसने समाचार-पत्रों पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया। इससे समाचार-पत्रों की संख्या बहुत कम हो गई। उसकी इच्छा थी कि समस्त देश में केवल एक ही समाचार-पत्र प्रकाशित हो और वह भी सरकार के अधीन हो; परन्तु उसने अपनी इस इच्छा को क्रियान्वित नहीं किया। जर्मनी, इटली और पोलैण्ड आदि में वह जहाँ भी गया, वहाँ वह जनता का हित करने के लिए नहीं गया था, यद्यपि उसके कार्यों से इन देशों में एकता तथा राष्ट्रीयता की भावना का प्रादुर्भाव हुआ।

(१०) निरंकुशता तथा केन्द्रीयकरण में नेपोलियन का साम्राज्य रोमन साम्राज्य से मिलता जुलता था। रोमन सम्राट् ऑगस्टस (Augustus) की भाँति नेपोलियन ने जनता द्वारा अपने प्रति पूजा और सम्मान कराने के उपाय निकाले थे। रोमन सम्राट् अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु थे। उसी प्रकार नेपोलियन सब धर्मों के प्रति सहिष्णुता रखता था।

(११) नेपोलियन ने सम्पूर्ण शिक्षा पर अपना एकाधिपत्य स्थापित कर लिया था। इससे उसने जनता के विचारों पर पूरी तरह नियन्त्रण स्थापित कर लिया था। इस समय फ्रांस में स्पार्टा के समान शिक्षा दी जाती थी।

(१२) फिशर महोदय का मत है कि नेपोलियन की विजयों के पीछे जनता की सहमति नहीं थी।[1] जनता दीर्घकालीन युद्धों से थक गई थी। वह शान्ति चाहती थी। उदाहरण के लिए मारेंगो की विजय के समय जनता ने बहुत हर्ष मनाया था; परन्तु इसके ६ वर्ष पश्चात् उसने जेना की विजय की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। नेपोलियन भी जनता की इस विचारधारा से भली प्रकार परिचित था। अतः उसने जनता का सहयोग प्राप्त करने के लिये प्रयत्न किया। उसने अपने विजय-कार्यों के लिए जनता पर कर नहीं लगाए। पराजित देशों पर उसने अपनी सेना के खर्च का भार डाला। उसने विजित देशों में सम्पत्ति-संग्रह करने के लिये अपने सेनापतियों को आदेश दिये थे। उसने फ्रांसीसी व्यापारियों को अपने विजित देशों में अनेक सुविधायें प्रदान की थीं।

---

1. The Grand Empire rested on a basis of personal achievement rather than of national assent. —Fisher.

(१३) नेपोलियन अपने मस्तिष्क को बहुत अधिक महत्ता देता था। वह तालीरां तथा फीशे जैसे योग्य मन्त्रियों की सलाह की भी परवाह नहीं करता था। वह शासन का सम्पूर्ण कार्य स्वयं करना चाहता था; परन्तु राज्य का बहुत अधिक विस्तार हो जाने के कारण एक व्यक्ति द्वारा समस्त कार्य का सम्पन्न होना असम्भव था।

(१४) नेपोलियन के विशाल साम्राज्य में कोई सुदृढ़ एकता अथवा संगठन नहीं था। वह अन्दर से खोखला था। वह सेना के बल पर टिका हुआ था। सेना की शक्ति के ह्रास होने पर उसका नष्ट होना निश्चित था। अनेक पत्रों से विदित होता है कि नेपोलियन की सेना की स्थिति अच्छी न थी। सेना को कई-कई महीनों तक वेतन नहीं मिलता था। भोजन तथा वस्त्रों का भी प्रायः अभाव रहता था। सेना में अनेक देशों के सैनिक थे। इससे सेना में राष्ट्रीयता का अभाव था।

(१५) नेपोलियन ने अपने साम्राज्य में जनता को समानता प्रदान की थी। उसके यहां कोई भी निम्न श्रेणी का व्यक्ति अपनी योग्यता द्वारा उच्च से उच्च पद प्राप्त कर सकता था। नेपोलियन ने एक बार कहा था कि "मेरा प्रत्येक सैनिक फील्ड मार्शल का अधिकार-पत्र अपनी जेब लिये फिरता है।"

नेपोलियन का मूल्यांकन—नेपोलियन का सही-सही मूल्यांकन करना बहुत कठिन है। यद्यपि आज उसके पतन को लगभग १५० वर्ष होने वाले हैं, फिर भी उसके प्रशंसकों की कमी नहीं है। दूसरी ओर अब भी ऐसे अनेक व्यक्ति हैं, जो उसको यूरोप की शान्ति को भंग करने वाला महान् अपराधी बतलाते हैं। वास्तव में उसका चरित्र आज भी मानव के लिये एक पहेली बना हुआ है। फिर भी उसमें अनेक गुण थे, जिनका संक्षेप में निम्न प्रकार वर्णन किया जा सकता है—

अध्ययन का प्रेमी—नेपोलियन को अध्ययन का बहुत शौक था। अपने विद्यार्थी-जीवन में जब अन्य विद्यार्थी अपना समय नष्ट किया करते थे, वह अपने कमरे के किवाड़ बन्द कर अध्ययन किया करता था। उसने सभी फ्रांसीसी दार्शनिकों के ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया था। उसने मिस्र, भारत, चीन तथा कार्थेज के इतिहास का विशेष अध्ययन किया था। उसने स्पार्टा, एथेन्स तथा इंग्लैण्ड आदि देशों के संविधानों का भी अध्ययन किया था। उसने सैनिक शिक्षा-सम्बन्धी पुस्तकों का भी अध्ययन किया था। वह फ्रांस का सही-सही इतिहास भी लिखना चाहता था। विभिन्न पुस्तकों के अध्ययन के साथ-साथ वह उनके नोट्स भी लिया करता था।

महान् परिश्रमी—नेपोलियन बहुत अधिक परिश्रमी था। वह एक मिनट भी बेकार बैठना पसन्द नहीं करता था। वह २४ घन्टे में १८ घन्टे तक कार्य करता था। वह अपने कर्मचारियों से भी इसी प्रकार कठोर परिश्रम कराया करता था। अपनी कौंसिल में बैठकर वह ८-१० घन्टे तक कार्य करता था। एक बार उसने अपनी माता को लिखा था—'मैं बहुत कम सोता हूँ। काम के अतिरिक्त मेरा और कोई साथी नहीं है।' वह हरएक मिनट का भली प्रकार उपयोग करता था। वह खाना

खाने में केवल १०-१२ मिनट व्यतीत किया करता था। उसने अपने जीवन में २३ हजार पत्र लिखे थे तथा ५० हजार पत्र उसने दूसरों से लिखाये थे। उसे बहुत कम आराम की आवश्यकता थी। कभी-कभी तो वह युद्ध-भूमि में घोड़े की पीठ पर ही सो लिया करता था। उसने फ्रांस का सिंहासन वंशानुगत आधार पर प्राप्त नहीं किया था। अपितु यह उसके कठोर परिश्रम का फल था।

महान् विजेता—नेपोलियन हेनीबाल, सिकन्दर, सीजर तथा शार्लमेन की भाँति ही एक महान् विजेता था। वास्तव में वह एक जन्मजात सैनिक था। युद्ध से उसे बहुत प्रेम था। युद्धों में ही उसका उत्कर्ष हुआ था। एक भयंकर युद्ध से पश्चात् उसने कहा था—'यह मेरे जीवन का सबसे सुन्दर युद्ध था।' उस जैसा योग्य सेनापति आज तक नहीं हुआ। सभी विद्वानों ने उसके सैन्य-संचालन की प्रशंसा की है। वह शत्रु-सेना की दुर्बलता को बहुत शीघ्र समझ लेता था। वह कायर व्यक्तियों में भी वीरता भर देता था। वह बहुत बड़ा आशावादी था। एक युद्ध में पराजित होने पर उसने अपने सेनापति मेसेना से कहा था कि 'निराश होने की कोई बात नहीं। युद्ध के परिणाम सदैव बदलते रहते हैं। आज हमने जो खो दिया है, कल वह प्राप्त किया जा सकता है।' शत्रु पक्ष की सेना अधिक होने पर भी वह निराश नहीं होता था। वह बड़ी कुशलता से बड़ी से बड़ी सेना के छक्के छुड़ा देता था। वह बड़ी फुर्ती से आक्रमण कर अपने शत्रु को पराजित कर देता था।

शासक—शासन-सम्बन्धी कार्यों के करने में वह बहुत परिश्रमी था। उसके शासन का आधार एकतन्त्रवाद था; परन्तु फिर भी वह स्थानीय परिस्थितियों का ध्यान रखता था। वह कहा करता था कि राजा को अपनी प्रजा के साथ पिता की भाँति व्यवहार करना चाहिये। इसी से कुछ विद्वानों ने नेपोलियन की निरंकुशता को 'Paternal despotism' कहा है। वह शासन-कार्यों में २४ घन्टे में १८ घन्टे तक कार्य करता था। इतना परिश्रमी सम्राट् इतिहास में मिलना कठिन है। वह पुरातन बूर्बो-वंशीय सम्राटों की भांति बड़ी शान से रहा करता था।

कुशल राजनीतिज्ञ—नेपोलियन एक कुशल राजनीतिज्ञ था। वह जनता की इच्छा को भली प्रकार समझता था। यद्यपि उसकी दृष्टि में धर्म का कोई महत्व नहीं था, फिर भी जनता की प्रसन्नता के लिये उसने पोप से समझौता कर लिया। वह कहा करता था कि फ्रांसीसी जनता समानता चाहती है, स्वतन्त्रता नहीं। इसी से उसने जनता की स्वतन्त्रता का अपहरण किया। भाषण तथा प्रशासन पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। ऐसा बतलाया जाता है कि ट्राफलगर के युद्ध में नेपोलियन की पराजय की सूचना जनता को उसके पतन के पश्चात् ही मिली थी। सेन्सर की कठोरता के कारण समाचार-पत्रों का प्रकाशित होना असम्भव हो गया था। १८०० में पेरिस में ७० पत्रिकाएं प्रकाशित होती थीं; परन्तु १८१० में उनकी संख्या केवल ४ रह गई थी। सेन्सर के द्वारा प्रूफ स्वीकृत होने पर ही पत्रिका छप सकती थी। नेपोलियन की इच्छा थी कि सब पत्रिकाएं बन्द करदी जायें, केवल एक ही सरकारी

पत्रिका प्रकाशित हुआ करे; परन्तु उसने अपनी इस योजना को क्रियान्वित नहीं किया। उसने समानता पर बहुत अधिक जोर दिया। उसने योग्यता के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति को उच्च पद प्राप्त करने का अधिकार प्रदान किया। उसके यहाँ अपनी योग्यता के बल पर कोई भी सैनिक फील्ड मार्शल का पद प्राप्त कर सकता था। क्रान्ति-काल में चर्च तथा सामन्तों की जो भूमि कृषकों को दे दी थी, वह उसने उन्हीं के पास रहने दी। समानता के सिद्धान्त को ही अत्यधिक महत्व देने के कारण वह अपने को क्रान्ति का पुत्र (Child of Revolution) कहता था। वह कहा करता था कि क्रान्ति ने जिन सिद्धान्तों को जन्म दिया है, उन्हीं को मैंने स्थायित्व प्रदान किया है, परन्तु जहाँ तक स्वतन्त्रता का प्रश्न है, उसको उसने एकदम समाप्त कर दिया था।

राष्ट्रीयता को प्रोत्साहन—नेपोलियन का उद्देश्य राष्ट्रीयता को प्रोत्साहित करना नहीं था; परन्तु उसके कुछ कार्यों से अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीयता को प्रोत्साहन मिला। उसने जर्मनी तथा इटली के अनेक छोटे-छोटे राज्यों को मिलाकर एक संघ का निर्माण किया था। वहाँ उसने अपना कोड लागू किया था। इससे इन देशों में राष्ट्रीयता की भावना का प्रादुर्भाव हुआ, यद्यपि नेपोलियन का उद्देश्य राष्ट्रीयता को प्रोत्साहन देना नहीं था। वह तो केवल राजनीतिक दृष्टि से इन देशों को शक्तिशाली बनाना चाहता था। उसके इन कार्यों से इटली तथा जर्मनी के एकीकरण का मार्ग तैयार हो गया। अन्त में नेपोलियन ने स्वयं स्वीकार किया था कि इटली एक राष्ट्र है और वह एक राष्ट्र बनकर रहेगा। पोलैण्ड में वार्सा की ग्राण्ड डची के निर्माण से राष्ट्रीयता का प्रादुर्भाव हुआ। उसकी सेनायें योरप में जहाँ भी गईं वहाँ पुरातन संस्थाओं का अन्त कर अपना कोड लागू किया। इससे उसके इन कार्यों ने योरप में जागृति की अभिवृद्धि की। इस सम्बन्ध में स्पेन तथा प्रशा की जागृति भी उल्लेखनीय है। समस्त योरप इससे प्रभावित हुआ।

अन्य गुण—नेपोलियन की प्रतिभा अद्वितीय थी। उसकी स्मृति बहुत तेज थी। वह कठिन समस्याओं को भी बहुत जल्दी हल कर लेता था। आगे तक की बातों का वह अनुमान लगा लेता था। उसके दिमाग में कभी हलचल नहीं होती थी। वह जब चाहता था, सो जाता था। वह बहुत बड़ा आशावादी था। रूस में अपनी विशाल सेना के नष्ट होने पर भी वह निराश नहीं हुआ तथा पुनः सेना के संगठन में लग गया। वह किसी भी बात को असम्भव नहीं मानता था, वह कहा करता था कि 'असम्भव' शब्द मूर्खों के शब्दकोष में होता है। वह अपने समय का इतिहास-निर्माता था। उसने योरप के नक्शे में इच्छानुसार परिवर्तन किये। उसने विदेशों से असंख्य धन लाकर फ्रांस को समृद्ध करने की चेष्टा की। पेरिस को सजाने के लिये वह विदेशों से असंख्य कला-कृतियाँ लाया था। उसने एक सुप्रसिद्ध सिविल कोड का निर्माण कर उसको अपने देश तथा विजित देशों में लागू किया। उसके सिविल कोड के अनेक कानून अब भी योरप के देशों में चल रहे हैं। उसने स्वयं कहा था कि मेरे अनेक युद्ध नहीं अपितु मेरा सिविल कोड मुझको अमरता प्रदान करेगा।

उपसंहार—नेपोलियन एक बहुत बड़ा महत्वाकांक्षी था, वह समस्त योरप को अपने अधीन करना चाहता था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसने ४० लाख मनुष्यों की हड्डियों को योरप के विभिन्न भागों में बिखरा दिया तथा अपार धन पानी की तरह बहाया था। आज भी फ्रांस में नेपोलियन लोकप्रिय है। उसके विषय में अनेक नाटक, कविता, उपन्यास तथा इतिहास लिखे गये हैं। जितना साहित्य अकेले नेपोलियन के विषय में लिखा गया है, उतना अन्य किसी महापुरुष के विषय में नहीं लिखा गया है। उसने फ्रांस को अराजकता से बचाया था। उसने शत्रुओं से फ्रांस की रक्षा की। उसने फ्रांस को वे सीमायें प्रदान कीं जो फ्रांस ने लुई चौदहवें के समय में भी प्राप्त न की थीं। वह समस्त योरप को अपने अधीन करना चाहता था; परन्तु उसने कभी भी यह नहीं सोचा कि यह कार्य असम्भव है। उसने कभी भी इंग्लैंड से समझौता करने का प्रयत्न नहीं किया। वह बराबर इंग्लैंड को पराजित करने की सोचता रहा। यह उसके जीवन की सबसे बड़ी गलती थी। १८०७ में वह अपनी शक्ति की पराकाष्ठा पर था। यदि उस समय उसकी मृत्यु हो जाती तो उसकी गणना विश्व के सबसे बड़े सम्राट् के रूप में होती। निष्पक्षरूप से यही कहा जा सकता है कि नेपोलियन की गणना भी इतिहास में सिकन्दर, सीजर तथा शार्लमेन के समरूप की जानी चाहिये। इतना होते हुये भी उसका पतन बहुत शीघ्र हो गया। वास्तव में उसकी उपमा एक ऐसे सितारे से की जा सकती है, जो सहसा आकाश में उदित हुआ और संसार को प्रकाश देता हुआ अस्त हो गया। फिर भी योरप के लिये उसने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये। उसकी सेनाओं ने सर्वत्र अन्याय तथा अत्याचार का अन्त कर समानता की स्थापना की। जनता को सिविल कोड के रूप में एक सुनिश्चित न्याय-प्रणाली प्रदान की। वास्तव में इतिहास में नेपोलियन का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है।

प्रश्न

१ नेपोलियन के साम्राज्य का विस्तार बतलाते हुये उसके साम्राज्य की कुछ प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

२ नेपोलियन का मूल्यांकन करते हुए इतिहास में उसका स्थान निर्धारित कीजिये।

———

१५

विएना कांग्रेस

विएना कांग्रेस, उसके प्रमुख प्रतिनिधि, मेटर्निख, एलेग्जेण्डर, हार्डेनबर्ग, कैसेलरे और तालीरां, पृष्ठभूमि, पूर्व सन्धियाँ, महत्वपूर्ण निर्णय, निर्णयों के तीन प्रमुख आधार, आलोचना—दोष और गुण ।

नेपोलियन यूरोप की शान्ति भंग करने वाला अपराधी था। उसको खतरे का प्रतीक समझा जाता था। मित्र-राष्ट्रों ने उसको १८१५ में वाटरलू के युद्ध में पराजित कर सेन्ट हेलेना के निर्जन टापू में भेज दिया। तत्पश्चात् योरप में नई व्यवस्था स्थापित करने के लिये आस्ट्रिया की राजधानी विएना में योरप की महान् शक्तियों का एक सम्मेलन हुआ। विएना को सम्मेलन का स्थान चुनने का कारण यह था कि यह महाद्वीप के मध्य में था। इसके साथ साथ यह नेपोलियन के युद्धों का भी केन्द्र रहा था। पुनः नेपोलियन की पराजय का अधिकांश श्रेय आस्ट्रिया के प्रधानमंत्री मेटर्निख को दिया गया था। योरप के छोटे बड़े राजा अपने सचिवों, उपसचिवों, परामर्श-दाताओं एवं विशेषज्ञों के साथ विएना आये। अभ्यागतों के स्वागत का प्रबन्ध मेटर्निख ने किया। प्रीतिभोजों एवं विभिन्न प्रकार के समारोहों की भी व्यवस्था की गई। यह एक अभूतपूर्व सम्मेलन था। योरप ने ऐसा सम्मेलन इससे पूर्व कभी नहीं देखा था। आस्ट्रिया के सम्राट् फ्रांसिस प्रथम ने इस सम्मेलन के प्रबन्ध में ८ लाख पौण्ड व्यय किये थे। यद्यपि आस्ट्रिया की आर्थिक अवस्था इस समय ठीक नहीं थी, परन्तु फिर भी इस अवसर पर उसने इतना अधिक धन व्यय करना उचित समझा।

सम्मेलन के प्रमुख प्रतिनिधि

(१) आस्ट्रिया—आस्ट्रिया के प्रतिनिधि के रूप में वहां का सम्राट् फ्रांसिस प्रथम तथा उसका मन्त्री मेटर्निख था। कांग्रेस के निर्णयों को निर्धारित करने में मेटर्निख ने सबसे अधिक भाग लिया था। यह घोर प्रतिक्रियावादी था। यह आन्दोलनों एवं जनता की स्वतन्त्रता का घोर विरोधी था।

विएना कांग्रेस का उद्देश्य योरप में शान्ति की स्थापना एवं व्यवस्था स्थापित करना था। वह यह भली प्रकार जानता था कि इस समय योरप को स्वतन्त्रता नहीं अपितु शान्ति-स्थापना की आवश्यकता थी।

आस्ट्रिया के राज्य में विभिन्न भाषाओं एवं जातियों के निवासी रहते थे। अतः ऐसी स्थिति में राष्ट्रीयता एवं जातीयता के सिद्धान्तों को मान्यता देना आस्ट्रिया के लिये बहुत खतरनाक था।

मेटर्निख ने स्वयं अनुभव किया था कि मैं इस दुनिया में या तो बहुत पहले आया हूँ या बहुत बाद में। थकी हुई पीढ़ी के लिये वह एक आवश्यक मनुष्य था, क्योंकि वह अनवरत युद्धों के बाद जनता को शान्ति देना चाहता था। यदि १८१५ में ही उसकी मृत्यु हो जाती तो वह विश्व के महान् व्यक्तियों में गिना जाता। यह उसका दुर्भाग्य था कि वह इसके बाद भी जीवित रहा। वह यह अनुभव न कर सका कि मैं वृद्ध हो रहा हूं, मेरे विचार पुरातन हैं, परन्तु जनता जवान हो रही है, जनता में नये विचार उत्पन्न हो रहे हैं।

वह पुरातन विचारों के आधार पर योरोप में नई व्यवस्था स्थापित करना चाहता था। इसलिये वह असफल हो गया।

(२) **रूस**—रूस का सम्राट् एलेग्जेण्डर प्रथम प्रतिनिधि के रूप में विएना सम्मेलन में आया। वह अपने को विजेता (नेपोलियन) का विजेता (Victor of of the Victor) कहता था। वास्तव में यह सर्वमान्य बात है कि नेपोलियन को पराजित करने में उसका महत्वपूर्ण हाथ था। रूसी अभियान में नेपोलियन की शक्ति टूट गई थी। नेपोलियन के विरुद्ध बनने वाले योरपीय राजाओं के गुटों में उसने महत्वपूर्ण भाग लिया था।

मेटर्निख ने उसे परस्पर-विरोधी विचारों वाला कहा है। कभी उसमें आदर्शवादिता के दर्शन होते हैं, तो कभी मक्कारी के। कभी वह रहस्यवादी दिखाई देता है, तो कभी भौतिकवादी। कभी वह बड़ा उदार दिखाई देता है तो कभी घोर साम्राज्यवादी।

नेपोलियन ने उसकी कटु आलोचना करते हुये कहा था 'He is Talma of the North' अर्थात् वह तालमा की भांति एक ऐक्टर था। ऐक्टर उसको इसलिये कहा गया है, क्योंकि अपने निर्णय वह नित्य प्रति बदलता रहता था।

मेटर्निख ने एक दूसरे स्थान पर उसके लिये कहा है—'वह है तो एक पागल आदमी; परन्तु उसे प्रसन्न रखना चाहिये।'[1]

(३) **प्रशा**—विएना-सम्मेलन में प्रशा का प्रतिनिधि हार्डेनबर्ग आया था। वह सैनिकवादी एवं उग्र राष्ट्रीयतावादी था। वह प्रशा को अधिक शक्तिशाली बनाना चाहता था। ब्रिटेन भी प्रशा को शक्तिशाली देखना चाहता था, परन्तु इतना नहीं कि वह समस्त योरप के लिये खतरे का कारण बन जाये।

हार्डेनबर्ग बहरा था। अतः उसकी सहायता के लिये हम्बोल्ट (Humbolt) नामक एक विशेषज्ञ भेजा गया था। स्टीन नामक एक गैरसरकारी (Unofficial) विशेषज्ञ भी उसकी सहायता के लिये भेजा गया था।

(४) **इंग्लैंड**—इंग्लैण्ड का प्रतिनिधि कैसेलरे था। कांग्रेस के निर्णयों में इसका भी प्रमुख भाग रहा था। नेपोलियन के विरुद्ध बनने वाले गुटों में इंगलैंड

1. 'A mad man to be humoured.'

ने बहुत सहायता दी थी। ब्रिटेन की प्रबल नौ-सेना के सम्मुख नेपोलियन को कोई सफलता न मिली। नेपोलियन कहा करता था कि यदि एक घण्टे के लिये इंग्लिश चैनल सूख जाये तो ब्रिटेन पर भली प्रकार अधिकार किया जा सकता है।

(५) **फ्रांस**—फ्रांस का प्रतिनिधि तालीरां था। वह फ्रांस की राजक्रान्ति, विधान सभा, कान्स्यूलेट, डायरेक्टरी एवं नेपोलियन का मन्त्री रहा था। लेकिन जब नेपोलियन ने स्पेन एवं पुर्तगाल पर आक्रमण किया तो दोनों में मतभेद हो गया। तालीरां इन प्रदेशों पर आक्रमण करने के विरोध में था। परन्तु नेपोलियन ने अहंभाव में अपने को अजेय समझते हुये स्पेन एवं पुर्तगाल पर आक्रमण कर प्रायद्वीपीय युद्ध आरम्भ कर दिया। अन्त में नेपोलियन ने अपनी गलती का अनुभव किया और उसे यह कहना पड़ा कि स्पेन के फोड़े ने मेरा सर्वनाश कर दिया।

परन्तु जिस समय तालीरां ने नेपोलियन का विरोध किया था, उस समय नेपोलियन ने उसकी कटु शब्दों में आलोचना करते हुये कहा था—"You are a piece of dung in a silk stocking." फलतः तालीरां नेपोलियन का घोर विरोधी हो गया। वह मित्र राष्ट्रों के साथ जा मिला। विएना कांग्रेस में मित्र राष्ट्रों ने यह प्रस्ताव रक्खा था कि फ्राँस का राज्य नेपोलियन को देना चाहिये, परन्तु तालीरां ने इस प्रस्ताव का घोर विरोध किया। फलतः यह प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया गया। युद्धकाल में ही तालीरां ने फ्रांस में अस्थायी सरकार का निर्माण किया तथा स्वयं उस का अध्यक्ष बन गया।

विएना कांग्रेस कभी नहीं हुई—इसका अर्थ यह है कि कांग्रेस में जो निर्णय हुये थे, वे उस कांग्रेस के पूर्व ही गुप्त अथवा खुले रूप से तय कर लिये गये थे। विएना कांग्रेस ने तो केवल रजिस्ट्रेशन का कार्य किया। इसमें कूटनीतिज्ञों का दोष नहीं था। यह तो उन्हें विवशतावश करना पड़ा था, क्योंकि पूर्व सन्धियों एवं गुप्त सन्धियों के कारण उनके हाथ बंधे हुये थे।

विएना कांग्रेस की पृष्ठ-भूमि

(१) सन् १८०४ में रूस के सम्राट् एलेग्जेण्डर ने इंगलैण्ड के प्रधान मन्त्री पिट के पास कुछ प्रस्ताव भेजे। इन प्रस्तावों में कहा गया था कि यदि हम दोनों मिलकर कार्य करें तो यूरोप में शान्ति स्थापित की जा सकती है। ये प्रस्ताव निम्न प्रकार से थे—

(i) यूरोप का सामन्तवाद समाप्त कर दिया जाय। उसके स्थान पर उदार शासन की स्थापना होनी चाहिये।

(ii) यूरोप के प्रमुख देश यह आश्वासन दें कि वे अपने झगड़ों का निर्णय विचार-विमर्श से करेंगे, युद्ध से नहीं। यह युद्ध के बहिष्कार का (Renunciation of War) सिद्धान्त था।

(iii) ब्रिटेन का प्राय: विश्व के सभी प्रमुख समुद्र-तटों पर अधिकार है। इस में उसे संशोधन करना चाहिये। उसको चाहिये कि वह अन्य देशों को भी कुछ सामुद्रिक अधिकार प्रदान करे। इससे पारस्परिक कटुता में बहुत कमी हो जायगी।

(iv) यदि कोई देश तटस्थ रहना चाहता है तो ये दोनों देश उसकी तटस्थता का आदर करेंगे।

(v) योरप की नवीन व्यवस्था को बनाये रखने का प्रमुख भार दोनों देशों पर होगा।

(vi) सार्डीनिया को पीडमाण्ट का राज्य दे दिया जाय।

(vii) इटली से फ्रांसीसी साम्राज्य का अन्त कर दिया जाय।

(viii) स्विट्जरलैण्ड को स्वतन्त्र कर दिया जाय।

(ix) हालैण्ड को भी स्वतन्त्र कर दिया गाय।

(x) जर्मनी में राइनलैण्ड को स्वतन्त्र कर दिया जाय।

निम्नलिखित संशोधनों के साथ पिट ने इन प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया—

(१) उसने कहा कि नई व्यवस्था का भार ब्रिटेन एवं रूस पर ही नहीं है। इसके लिये आस्ट्रिया एवं प्रशा को भी निमन्त्रण देना चाहिये। यह कार्य उनको कुछ लालच देने से बन सकता है। आस्ट्रिया को इटली में कोई प्रदेश दे देना चाहिये। प्रशा को पश्चिम की ओर बढ़ने का अधिकार दे देना चाहिये अर्थात् उसे राइन की ओर बढ़ने दिया जाय।

(२) हालैण्ड को स्वतन्त्र करने के साथ साथ उसका विस्तार भी किया जाय।

वास्तव में इंग्लैण्ड यह चाहता था कि फ्रांस के पतन के बाद रूस अधिक शक्तिशाली न हो जाय। रूस की शक्ति को रोकने के लिये आस्ट्रिया एवं प्रशा को शक्तिशाली बनाये रखना आवश्यक था।

ब्रिटेन ने आश्वासन दिया कि यदि उसके उपर्युक्त संशोधन मान लिये गये तो हम अन्य देशों को सामुद्रिक अधिकार देने के प्रस्ताव पर विचार करेंगे।

(२) १८१२ **की अबू की सन्धि**—इस गुप्त सन्धि के अनुसार स्वेडेन एवं नार्वे को एक साथ मिलाने का निर्णय किया गया।

(३) १८१३ **की केलिग की गुप्त सन्धि**—टिलसिट की सन्धि से प्रशा को बहुत हानि हुई थी। अतः इस सन्धि में तय हुआ कि प्रशा को शक्तिशाली बनाया जाय।

(४) **सन् १८१३ की रीखेनबैक की सन्धि**—इस सन्धि के अनुसार यह तय हुआ कि आस्ट्रिया, प्रशा तथा रूस के बीच पोलैण्ड को विभाजित कर दिया जाय।

(५) १८१३ **की टोप्लिज (Toplitz) की सन्धि**—नेपोलियन के कारण आस्ट्रिया को भी हानि हुई थी। अतः उसके पतन के बाद आस्ट्रिया को भी १८०५ की सीमायें दे दी जायें तथा जर्मनी के राज्य स्वतन्त्र कर दिए जायें।

(६) **सन् १८१३ की रीड की सन्धि**—बबेरिया के राजा को सर्वसत्ताधारी मान लिया जाय तथा मूरा (Murat) को नेपिल्स का राज्य दे दिया जाय।

(७) **सन् १८१३ का फ्रैंक फोर्ट का प्रस्ताव**—लीप्जिग के युद्ध में नेपोलियन पराजित हुआ। मित्र राष्ट्र युद्ध से थक चुके थे। अतः उन्होंने नेपोलियन के पास निम्नलिखित प्रस्ताव भेजे:—

(i) फ्रांस को प्राकृतिक सीमायें दे दी जायें। इसका तात्पर्य यह था कि फ्रांस दक्षिण-पश्चिम में पेरेनीज पर्वत तक रहे अर्थात् स्पेन एवं पुर्तगाल को स्वतन्त्र कर दे। वह दक्षिण में आल्प्स पर्वत तक अपनी सीमायें माने अर्थात् इटली को स्वतन्त्र कर दे। पूर्व में वह राइन नदी को अपनी सीमा माने तथा जर्मन संघ को तोड़ दे। उत्तर में बेल्जियम उसको दे दिया जाय, परन्तु हालैण्ड उसको छोड़ना पड़ेगा।

(ii) अंग्रेजों के सामुद्रिक अधिकारों के सम्बन्ध में नेपोलियन कोई विवाद न करेगा।

नेपोलियन का यह दुर्भाग्य था कि उसने इन प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया।

(८) **सन् १८१४ के वेसिल एवं लैंगर के प्रस्ताव**—इन दोनों स्थानों पर मिलकर मित्र राष्ट्रों ने एक प्रस्ताव पास किया। यह मीटिंग प्रारम्भ में वेसिल में हुई थी, परन्तु किसी कारण वश एलेग्जेण्डर प्रथम नाराज होकर लैंगर चला गया। अतः मित्र राष्ट्र भी लैंगर चले गये। वहां सब ने मिलकर ये प्रस्ताव पास किए—

(१) इंग्लैंड नेपोलियन प्रथम को फ्रांस का सम्राट् स्वीकार नहीं करेगा। अतः उसके स्थान पर बूर्बां वंश को राजा बनाया जायगा। रूस के अतिरिक्त अन्य सब मित्र राष्ट्रों ने भी यह स्वीकार कर लिया था कि लुई १८वें को राजा बनाया जाय।

(२) इंग्लैंड के विरोध करने के कारण मित्र राष्ट्रों को यह स्वीकार करना पड़ा कि फ्रांस को प्राचीन सीमायें दी जायें। इसका यह अर्थ यह था कि उत्तर में उसे बेल्जियम का प्रदेश नहीं मिलेगा।

(३) हालैंड को स्वतन्त्र करने के साथ-साथ उसका विस्तार भी कर दिया जाय।

(४) अंग्रेजों के सामुद्रिक अधिकारों पर कोई विवाद न होगा।

(९) **सन् १८१४ का शैतिलां का प्रस्ताव** मित्र राष्ट्रों ने नेपोलियन के सम्मुख यह प्रस्ताव रक्खा कि तुम्हारा पतन अवश्यम्भावी है। अतः तुम अब भी संधि कर लो और प्राचीन सीमायें स्वीकार कर लो। नेपोलियन ने इस प्रस्ताव को भी अस्वीकार कर दिया। उसने मित्र राष्ट्रों में फूट डालने का प्रयत्न किया। उसने अपने श्वसुर तथा आस्ट्रिया के सम्राट् फ्रांसिस प्रथम को एक पत्र लिखा। पत्र में उसने आस्ट्रिया के समाट् को My dear father-in-law सम्बोधित करते हुये

सहायता की याचना की थी। परन्तु फ्रांसिस प्रथम ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया।

(१०) **शोमां की संधि**—१८१४ में मित्र राष्ट्रों ने शोमां की सन्धि की। इसके अनुसार रूस, ब्रिटेन, प्रशा एवं आस्ट्रिया ने निम्नलिखित निर्णय किए :—

(१) उक्त राज्यों में से कोई भी राज्य पृथक् रूप से नेपोलियन से सन्धि न करेगा।

(२) यह सन्धि २० वर्ष तक रहेगी।

शेष निम्नलिखित धारायें गुप्त रक्खी गईः—

(३) जर्मनी में संघ-राज्य कायम किया जाय।

(४) स्वीट्जरलेंड को स्वतन्त्र कर दिया जाय।

(५) स्पेन को स्वतन्त्र कर वहां बूर्बां वंश का राज्य स्थापित कर दिया जाय।

(६) इटली के राज्यों का पुनः संगठन किया जाय।

(७) हालेंड को स्वतन्त्र एवं विस्तृत कर दिया जाय तथा वहां आरेन्ज वंश का राज्य कायम कर दिया जाय।

(११) **पेरिस की संधि** (१८१४)—इसके अनुसार फ्रांस की सीमायें जनवरी १७९२ के अनुसार होनी चाहियें। लेकिन उसे एबिग्नान तथा माण्टबेलियार्ड और दे दिये जायें।

(२) फ्रांस से युद्ध-क्षति न ली जाय।

(३) नेपोलियन जिन देशों से कला-कृतियां उठा ले गया था, वे वापस न दी जायें।

(४) जिन प्रदेशों पर फ्रांसीसी साम्राज्य है वे स्वतन्त्र कर दिये जायें।

(५) फ्रांस गुलामों का व्यापार बन्द कर दे।

(६) टुबैगो, सेन्ट, लूसिया मारीशस, माल्टा, सीलोन और केप कालोनी, इंग्लैण्ड अपने पास रक्खे।

(७) स्वेडेन में ग्वाडेलू का प्रदेश फ्रांस को वापस दे दिया जाय।

(८) पुर्तगाल फ्रेंच गायना को फ्रांस को वापस कर दे।

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित गुप्त धाराएं भी थीं—

(९) जेनोआ पीडमाण्ट राज्य को दे दिया जाय।

(१०) हालैण्ड एवं बेल्जियम को मिला दिया जाय।

(११) वेनेशिया एवं लोम्बार्डी के प्रदेश आस्ट्रिया को दे दिये जायें।

हम आगे देखेंगे कि बिएना कांग्रेस के अनेक निर्णय इन्हीं पूर्व संधियों और प्रस्तावों के आधार पर हुये थे।

विएना कांग्रेस के कुछ महत्वपूर्ण निर्णय

पौलैण्ड की समस्या—पौलैण्ड का यह दुर्भाग्य था कि उसकी सीमा पर रूस, प्रशा एवं आस्ट्रिया के तीन शक्तिशाली राज्य थे। १७९५ में इन तीनों राज्यों ने पौलैण्ड को आपस में बांट कर उसका अस्तित्व समाप्त कर दिया।

कालान्तर में नेपोलियन ने आस्ट्रिया एवं प्रशा से उसके भाग लेकर पौलैण्ड का पुनर्निर्माण किया और उसका नाम Grand Duchy of Warsaw रक्खा। परन्तु रूस से पौलैण्ड का भाग अब भी नहीं लिया गया था। १८१२ में नेपोलियन ने रूस पर आक्रमण कर दिया। नेपोलियन ने यह प्रचार किया कि हम रूस से पौलैण्ड का भाग छीन कर पौलैण्ड को एक पृथक् राज्य बनाना चाहते हैं। रूसी युद्ध को वह द्वितीय पोल युद्ध (Second Polish War) कहता था, परन्तु दुर्भाग्यवश जनवरी एवं फर्वरी के सेनापतियों ने नेपोलियन को पराजित कर दिया। रूस ने Grand Duchy of Warsaw पर भी अधिकार कर लिया।

रूस का सम्राट् एलेग्जेण्डर पौलैण्ड में एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना करना चाहता था। उसके इस उदार कार्य के विशेष कारण थे—

(१) बचपन में एलेग्जेण्डर की वार्ता जार्टोरिस्की नामक एक पोल से हुई थी। यह एलेग्जेण्डर का मित्र बन गया। राजा होने पर एलेग्जेण्डर ने इसको अपना वैदेशिक मन्त्री बनाया था। जार ने बचपन में उसको यह आश्वासन दिया था कि हम तुम्हारे देश का पुनर्निर्माण कर देंगे।

(२) एलेग्जेण्डर का गुरु लाहार्प था। वह स्वीट्जरलैण्ड का निवासी था तथा जनतन्त्र का समर्थक था। इससे एलेग्जेण्डर के विचार भी कुछ जनतन्त्रवादी हो गये थे।

कुछ विद्वानों का यह भी कथन है कि वह अपने उदार विचारों की आड़ में अपने साम्राज्य की स्थिति दृढ़ कर रहा था।

सम्मेलन में आस्ट्रिया तथा प्रशा पौलैण्ड का अपना-अपना भाग मांग रहे थे, परन्तु एलेग्जेण्डर वहाँ एक नए राज्य की स्थापना करना चाहता था। रूस की जनता, सेना के अधिकारी तथा सामन्त एलेग्जेण्डर के इस विचार से सहमत नहीं थे। वे उसकी योजना का विरोध कर रहे थे क्योंकि उसका यह कार्य देश के लिये हानिकारक था। रूस में एकतन्त्रात्मक राज्य था। यदि रूस की सीमा पर पौलैण्ड में उदार सरकार स्थापित हो जाती तो रूस के लिए बड़े खतरे की बात हो सकती थी।

आस्ट्रिया एवं रूस में भी झगड़ा हो गया—

(१) पूर्वी समस्या पर दोनों देशों के हित परस्पर-विरोधी थे।

(२) आस्ट्रिया को रूस की बढ़ती हुई शक्ति से भी भय था। मेटर्निख ने एक बार कहा था—'हमने यूरोप को नेपोलियन के चंगुल से छुड़ाया है। अतः अब हमको इसे रूस के चंगुल में नहीं फंसने देना चाहिये।'

ब्रिटेन की जनता एलेग्जेण्डर के विचार से सहमत थी, परन्तु उनका प्रतिनिधि कैसेलरे मेटर्निख के प्रभाव में आकर इस योजना का विरोध कर रहा था।

केलिश की सन्धि के समय रूस एवं प्रशा एक ओर थे। प्रशा चाहता था कि रूस को सम्पूर्ण पौलैण्ड मिल जाय तथा प्रशा को सैक्सनी मिल जाय। इस प्रस्ताव को चाहने वाली ये दोनों शक्तियाँ परस्पर मिल गईं; परन्तु इनका विरोध करने वाली तीन शक्तियाँ फ्रांस, इंग्लैण्ड और आस्ट्रिया परस्पर नहीं मिलीं।

तालीरां ने सर्व प्रथम यह अनुभव किया कि यदि विरोध करने वाली तीनों शक्तियाँ एक जगह मिल जायें तो समर्थन करने वाली दोनों शक्तियों का साहस भंग हो जायेगा।

तालीरां ने छोटे-छोटे राज्यों को अपनी ओर मिलाकर उनकी ओर से एक प्रपत्र मित्र राष्ट्रों को दिया। उसने कहा कि सैक्सनी देने से न्यायोचित राजता (Legitimacy) के सिद्धान्त की हत्या होती है। अतः रूस एवं प्रशा का साथ न दिया जाय। उसने ब्रिटेन एवं आस्ट्रिया को बतलाया कि रूस एवं प्रशा साम्राज्यवादी हैं। ये उग्र भाषा का प्रयोग करते हैं। अतः इनका इसी प्रकार विरोध करना चाहिए।

एलेग्जेन्डर ने तालीरां को विश्वासघाती एवं गद्दार कहा।[1] तालीरां ने इसका उत्तर दिया कि गद्दार होने में केवल तिथियों का अन्तर है।[2] उनका संकेत था कि कुछ दिन पूर्व आप भी गद्दार थे, जबकि सम्पूर्ण योरप नेपोलियन के विरुद्ध था और आपने उससे सन्धि कर ली थी।

तालीरां ने इंग्लैण्ड एवं आस्ट्रिया को समझाकर उनसे सन्धि कर ली। जनवरी १८१५ को इन तीनों देशों ने निम्नलिखित सन्धि करली—

(१) यदि इन देशों में से किसी पर आक्रमण हो तो उसके अन्य दो मित्र भी उस आक्रमण का विरोध करेंगे।

(२) यदि युद्ध हो गया तो आस्ट्रिया एवं फ्रांस में प्रत्येक १ लाख ५० हजार सेना देगा। इंग्लैण्ड भी इसी अनुपात के सैनिक अथवा आर्थिक सहायता देगा।

(३) यदि किसी भी समय हैनोवर अथवा बेल्जियम पर आक्रमण हुआ तो इंग्लैण्ड इसे अपने विरुद्ध आक्रमण समझेगा तथा उसके दो मित्र भी उसका साथ देंगे।

अब एलेग्जेण्डर समझ गया कि युद्ध निश्चित है। अतः वह चुप हो गया। इस पर तालीरां ने प्रसन्न होकर कहा था—'Coalition is dissolved, France is no longer isolated in Europe.'

जिस मित्र संघ को नेपोलियन न तोड़ सका उसे तालीरां ने अपनी कूटनीति से तोड़ दिया।

---

1. 'You are a traitor of the common cause.'
2. 'That your Imperial Majesty is a question of dates.'

इस घटना पर कैसेलरे ने अपनी सरकार को लिखा—'The alarm of war is over.'

इस सन्धि की आलोचना करते हुए निकोल्सन महोदय कहते हैं—'The secret treaty of 3rd Jan. 1815 was a gigantic bluff.'

इस कथन के पक्ष में यह कहा जा सकता है कि इंग्लैण्ड, फ्रांस और आस्ट्रिया में से कोई भी देश सेना भेजने की स्थिति में नहीं था।

यह उनका सौभाग्य था कि युद्ध हुआ नहीं। अब प्रश्न यह उठता है कि युद्ध हुआ क्यों नहीं? इसका कारण यह था कि रूस एवं प्रशा की युद्ध की धमकी 'Greater gigantic bluff' था। वास्तव में ये दोनों देश भी युद्ध के लिए तैयार न थे। इनकी धमकी भी झूठी थी।

इस परिस्थिति में ११ फरवरी १८१५ को पोलैण्ड के प्रश्न पर समझौता हो गया। इस समझौते का श्रेय तालीरां को है। इस समझौते के अनुसार निम्नलिखित निर्णय हुए—

(१) प्रशा को पोसेन दे दिया गया।

(२) आस्ट्रिया को गैलेसिया मिला।

(३) क्रेको का नगर स्वतन्त्र मान लिया गया।

(४) पोलैण्ड का शेष भाग रूस को दे दिया गया।

(५) प्रशा को हर्जाने के रूप में सैक्सनी का २/५ भाग दे दिया गया।

(६) न्यायोचित राजता के सिद्धान्त के आधार पर सैक्सनी का ३/५ भाग सैक्सनी के राजा आगस्टस को दे दिया गया।

(७) एल्ब नदी के किनारे के दुर्ग प्रशा को दे दिए गए।

(८) वेस्टफालिया तथा राइन प्रदेश प्रशा को दे दिये गये।

अल्सेस एवं लोरेन के प्रदेश—पुरानी सन्धियों के अनुसार ये प्रदेश जर्मनी के थे; परन्तु इस समय फ्रांस ने इन पर अधिकार कर लिया था। प्रशा के प्रतिनिधि हार्डेनबर्ग ने इन प्रदेशों की मांग की और कहा कि इसी से योरप में स्थायी शान्ति स्थापित हो सकती थी।[3] परन्तु हार्डेनबर्ग की यह मांग नहीं मानी गई और यह प्रदेश प्रशा को नहीं मिला और फ्रांस के ही पास रहा। मित्र राष्ट्र ये प्रदेश प्रशा को देकर उसे बहुत शक्तिशाली नहीं बनाना चाहते थे। प्रशा में नेपोलियन के समय से राष्ट्रीय भावनाएं जागृत हो रही थीं। इंग्लैण्ड एवं आस्ट्रिया इससे बहुत भयभीत थे।

आस्ट्रिया—वेल्जियम पर आस्ट्रिया का अधिकार था। उसी के समीप हालैण्ड का राज्य था। यह समझा गया कि उत्तर में फ्रांसीसी आक्रमण को रोकने के

3. 'If we let it slip, streams of blood will flow to attain this object, and the cry of the unhappy victims will eall us to give an accouut of our conduct.'

1815 का यूरोप
(वियना कांग्रेस)
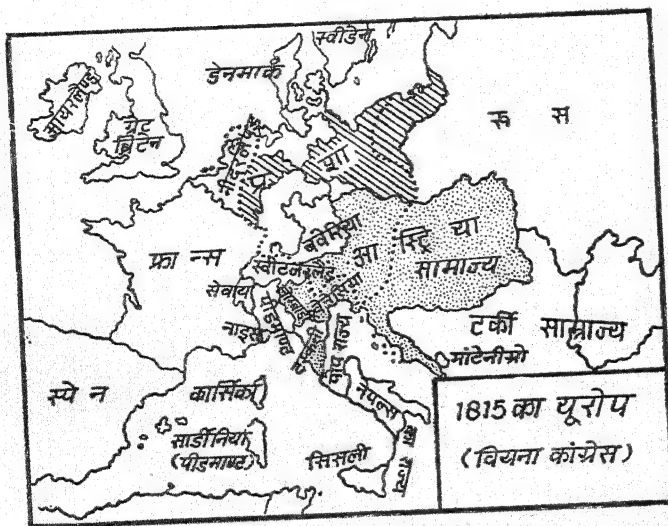
लिये हालैण्ड को शक्तिशाली बनाना आवश्यक है। अतः आस्ट्रिया ने अपने बेल्जियम के प्रदेश को हालैण्ड को दे दिया। हर्जाने के रूप में उसे निम्नलिखित प्रदेश मिले—

१. गैलेशिया।
२. टाइरोल।
३. इलीरियन प्रदेश।
४. साउथबर्ग।
५. लोम्बार्डी।
६. वेनेशिया।

जर्मनी का प्रश्न—जर्मनी के नवीन निर्माण के विषय में निम्नलिखित योजनायें प्रस्तुत की गई थीं—

(१) जर्मनी के राज्यों को मिलाकर एक संघ बनाया जाय। इसका नेता प्रशा हो।

(२) जर्मनी के राज्यों को मिलाकर एक संघ बनाया जाय, परन्तु इसका नेता आस्ट्रिया हो।

(३) एक ऐसा संघ बनाया जाय जिसमें केन्द्र की शक्ति कम हो और इकाई राज्यों की शक्ति अधिक हो। यह शिथिल संघ के निर्माण की योजना थी।

(४) एक शक्तिशाली संघ बनाया जाय, जिसमें केन्द्र के हाथ में सम्पूर्ण सत्ता हो और इकाई राज्य निर्बल हों।

(५) जर्मनी में दो संघ बनायें जायें—

(१) उत्तरी संघ तथा। (२) दक्षिणी संघ। उत्तरी संघ का अध्यक्ष प्रशा हो तथा दक्षिणी संघ का अध्यक्ष आस्ट्रिया हो।

(६) जर्मनी का प्रत्येक राज्य स्वतन्त्र हो। जिन नगरों पर झगड़ा है उन्हें, स्वतन्त्र नगर (Free City) घोषित कर दिया जाय।

जर्मनी के एकीकरण में बाधा—(१) आस्ट्रिया का प्रधान मन्त्री मेटर्निख जर्मनी के एकीकरण का घोर विरोधी था। वह अपने समय का प्रमुख प्रतिक्रियावादी था। वह पुरातन राजाओं को उनके स्थान से हटाना नहीं चाहता था।

(२) जर्मन राज्य प्रशा के विरोधी थे। आस्ट्रिया एवं प्रशा में भी परस्पर विरोध था। अतः दोनों मिलकर भी जर्मनी का एकीकरण नहीं कर सकते थे।

(३) जर्मन संघ में विदेशियों के भी हित थे, यथा हैनोवर में इंगलैंड का राज्य था तथा लग्जेम्बर्ग में बेल्जियम का राज्य था। इन कारणों से वहां एकात्मक शासन न हो सका।

८ जून, १८१५ को मेटर्निख ने फेडरल एक्ट (Federal Act) प्रस्तुत किया। ९ जून को विएना कांग्रेस में इसको स्वीकार कर लिया गया। इस प्रकार

जर्मनी में एक शिथिल संघ की स्थापना की गई। इसका प्रमुख उद्देश्य था—Maintenance of the internal and external security of Germany.'

प्रत्येक राज्य ने यह वचन दिया था 'To defend the whole of Germany as well as each individual State of the Confederation against any attack and mutually to guaranttee all the possession of each member.'

इस ऐक्ट के अनुसार—

(१) फ्रैंकफोर्ट में एक फेडरल डायट (संसद्) की स्थापना की गई। इसका कार्य केन्द्रीय शासन का संचालन करना था। आस्ट्रिया इसका अध्यक्ष माना गया।

(२) सेना पर भी फेडरल डायट का अधिकार होगा।

(३) कूटनीतिक कार्य यही संघीय डायट करेगी।

(४) इकाई राज्यों के पारस्परिक झगड़ों का भी निर्णय यही करेगी।

(५) देश की आर्थिक व्यवस्था करना इसी का कार्य था।

(६) संघ की कार्य-कारिणी का भी यही निर्माण करेगी।

(७) इस डायट में प्रत्येक राज्य का प्रतिनिधित्व होगा परन्तु ये प्रतिनिधि अपने राज्यों के राजाओं द्वारा मनोनीत होकर आयेंगे, जनता द्वारा निर्वाचित होकर नहीं। प्रत्येक राज्य के द्वारा भेजे गये प्रतिनिधियों की संख्या वहां की जनसंख्या के अनुपात में कम-ज्यादा होती थी।

(८) प्रत्येक राज्य की जनता को एक नया संविधान दिया जायगा।

(९) प्रत्येक झगड़ा सर्वसम्मति से तय होगा।

इटली—विएना सम्मेलन में इटली को भी अनेक राज्यों में विभाजित कर दिया गया। इस समय इटली योरप के मानचित्र में एक भौगोलिक संज्ञामात्र (Geographical expression) रह गई थी। इटली में निम्नलिखित राज्य बनाये गये—

नेपिल्स—प्रारम्भ में इसको नेपोलियन के सेनापति मूरा को देना स्वीकार किया गया था, परन्तु बाद को यह और सिसली बूर्बा वंश को दे दिये गये।

रोम—रोम में पोप का राज्य स्थापित कर दिया गया।

लोम्बार्डो तथा वेनेशिया—ये दोनों प्रदेश आस्ट्रिया को दे दिये गए।

पर्मा—यह नेपोलियन की पत्नी मेरी लूसा को दे दिया गया।

मोडेना—मोडेना का राज्य हैब्सबर्ग के राजा फ्रांसिस चतुर्थ को दे दिया गया।

टस्कनी—यह राज्य हैब्सबर्ग के एक दूसरे राजा ग्रैण्ड ड्यूक फर्डिनैण्ड तृतीय को दिया गया।

सार्डीनिया और पीडमाण्ट—इन दोनों राज्यों को परस्पर मिला दिया गया। इस राज्य का विस्तार करने के लिये जेनोआ को भी इसमें मिला दिया गया। इस सम्पूर्ण राज्य में सेवाय वंश पुनः प्रतिष्ठित किया गया। इस वंश का राजा विक्टर इमानुएल प्रथम गद्दी पर बैठाया गया।

प्रशन—इसे सैक्सनी का ⅔ भाग पश्चिमी पोमेरेनिया तथा राइन प्रदेश मिला।

स्विट्जरलैण्ड—यहाँ पर १९ कैण्टन थीं। विएना सम्मेलन में प्रत्येक कैण्टन से एक प्रतिनिधि आया था। विचार-विमर्श के पश्चात् ३ कैण्टन और बढ़ा दिये गये। अन्त में स्विट्जरलैण्ड में २२ कैण्टनों का एक संघ बनाया गया।

स्वेडेन—इससे फिनलैण्ड छीन कर रूस को दे दिया गया तथा पश्चिमी मेरेनिया का प्रदेश छीनकर प्रशा को दे दिया गया।

डेन्मार्क—इससे नार्वे का प्रदेश छीनकर स्वेडेन को दे दिया गया।

नार्वे एवं स्वीडन—इन दोनों राज्यों को एक में मिला दिया गया।

बेल्जियम—इसे हालैण्ड के राज्य में मिला दिया गया।

ब्रिटेन—इसे हैलिगोलैण्ड, माल्टा, लंका, केप गुड होप, मारीशस, ट्रबैगो एवं आयोनियन द्वीप दिये गये।

अन्य कार्य—विएना कांग्रेस के प्रतिनिधियों ने एक कूटनीतिज्ञ विधान का निर्माण किया। इससे पूर्व अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों की कार्यवाही एवं उनके प्रतिनिधियों के बैठने के क्रम, उसके अधिकारों, उपाधियों, सम्बोधनों एवं पोशाक आदि के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद था। परन्तु इस सम्मेलन में कुछ अन्तर्राष्ट्रीय परम्पराओं का निर्माण कर कूटनीति का विकास किया।

उस समय योरप में दास-प्रथा का बहुत प्रचलन था। पशुओं की भाँति दासों का क्रय-विक्रय होता था। घोर परिश्रम करने पर भी उन्हें भर-पेट भोजन नहीं मिलता था। विएना कांग्रेस ने दास प्रथा समाप्त करने की भी सिफारिश की।

निर्णयों के ३ प्रमुख आधार

विएना कांग्रेस के उपर्युक्त निर्णय ३ प्रमुख आधारों पर हुये थे—

(१) न्यायोचित राजता का सिद्धान्त (Principle of Legitimacy)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन फ्रांस के प्रतिनिधि तालीरां ने किया था। इसके अनुसार समस्त देशों के वे पुराने राजवंश जो फ्रांसीसी क्रान्ति अथवा नेपोलियन के युद्धों के परिणामस्वरूप पदच्युत कर दिये गये थे, वापस बुला लिये गये। इस सिद्धांत की आड़ लेकर तालीराँ ने फ्रांस में बूर्बांवंश को वापस बुलाया था। इस सिद्धान्त के अनुसार निम्नलिखित कार्य किये गये—

(१) फ्रांस में पुनः बूर्बां वंश की प्रतिष्ठा कर दी गई। बूर्बां वंश के सम्राट् लुई १६ वें के भाई लुई १८ वें को फ्रांस का सम्राट् बनाया गया।

(२) स्पेन, नेपिल्स एवं सिसली के राज्य भी बूर्बा वंश को दे दिये गये।

(३) सैक्सनी का अधिकांश राज्य वहां के पुराने राजा आगस्टस को दे दिया गया।

(४) सार्डीमिया-पीडमाण्ट में पुरातन सेवाय वंश प्रतिष्ठित किया गया।

(५) हालैण्ड में आरेन्ज वंश पुनः बुलाया गया।

(६) पर्मा, मोडेना तथा टस्कनी में हैप्सबर्ग वंश की स्थापना कर दी गई।

(७) जर्मनी के छोटे-छोटे राजाओं को पुनः उनके राज्य दे दिये गये।

(८) रोम में पोप का राज्य स्थापित कर दिया गया।

(२) शक्ति-संतुलन का सिद्धान्त (Principle of the Balance of Power)

इसका अर्थ यह था कि योरप में कोई भी देश इतना शक्तिशाली न होने पाए कि वह दूसरे देशों के लिये खतरा हो जाय। फ्रांस ने योरप के शक्ति-संतुलन को भंग किया था। अतः उसकी शक्ति को सीमित करना आवश्यक था। फ्रांस को चारों ओर से शक्तिशाली राष्ट्रों से घेर दिया गया जिससे वह भविष्य में आक्रामक न हो सके।

(१) पूर्व में प्रशा के साथ राइन प्रदेश मिला दिया गया। पोमेरैनिया का प्रदेश भी उसको दे दिया गया।

(२) उत्तर में हालैण्ड के साथ बेल्जियम मिला दिया गया।

(३) दक्षिण में सार्डीनिया-पीडमाण्ट के साथ जेनोआ का राज्य मिला दिया गया।

इसके साथ-साथ फ्रांस पर ७० करोड़ फ्रेंक का हर्जाना लाद दिया गया। फ्रांस के उत्तर-पूर्व में कुछ दुर्गों के ऊपर भी मित्र राष्ट्रों ने अपना अधिकार कर लिया। जब तक फ्रांस सम्पूर्ण हर्जाना अदा न कर देगा तब तक वहां मित्र राष्ट्रों की सेनाएं रहेंगी। वेलिंग्टन इस सेना का अध्यक्ष बनाया गया।

इसी प्रकार वियना अधिवेशन ने रूस, आस्ट्रिया, प्रशा, इंग्लैण्ड आदि देशों को प्रदेश देते हुये इस बात का ध्यान रक्खा कि कोई भी देश इतना अधिक शक्तिशाली न हो कि वह दूसरों के लिये खतरा बन जाय।

(३) पुरस्कार एवं दण्ड (Principle of Rewards and Punishments)

इस सिद्धान्त के अनुसार जिन राष्ट्रों ने नेपोलियन का साथ दिया था उनको दण्ड देना था तथा जिन्होंने मित्र-राष्ट्रों का साथ दिया था उनको पुरस्कार देना था। इसी के अनुसार—

(१) डेन्मार्क से नार्वे छीनकर स्वीडन को दे दिया गया। डेन्मार्क ने नेपोलियन का और स्वीडेन ने मित्रराष्ट्रों का साथ दिया था।

(२) पोलैण्ड का कुछ भाग, फिनलैण्ड तथा बेसेराबिया के प्रदेश रूस को प्रदान कर दिए गए। रूस मित्रराष्ट्रों के साथ था।

(३) इलीरियन द्वीप, वेनिस एवं लोम्बार्डी आस्ट्रिया को दे दिए गये। नेपोलियन के विरुद्ध कार्यवाही में आस्ट्रिया ने भी महत्वपूर्ण भाग लिया था।

(४) पश्चिमी पोमेरेनिया स्वीडेन से प्रशा को दिला दिया गया। इससे उसे बाल्टिक सागर तक पहुँचने की सुविधा प्राप्त हो गई। सैक्सनी राज्य का ४०% भाग तथा राइन प्रदेश भी प्रशा को दे दिये गये। पोलैण्ड के विभाजन के परिणाम-स्वरूप पोसेन एवं डैंजिग के प्रदेश भी उसे प्राप्त हुये। इस प्रकार मित्रराष्ट्र होने के नाते प्रशा पुरस्कृत किया गया।

(५) इस सिद्धान्त के आधार पर ब्रिटेन को अनेक सामुद्रिक प्रदेश दिये गये।

विएना कांग्रेस की आलोचना

विएना कांग्रेस ने यूरोप को स्थायी शान्ति प्रदान नहीं की। १८१५ से १८७० तक यूरोप में जो आन्दोलन एवं संघर्ष चलते रहे उनका प्रमुख उद्देश्य विएना-कांग्रेस के निर्णयों को रद्द करना था। इसने क्रान्ति के सिद्धान्तों को भुला दिया था।[1] इसने इतनी समस्याएं हल नहीं कीं जितनी कि उत्पन्न कर दीं।[2] यह विजेताओं की मीटिंग थी। इसका उद्देश्य पराजितों की सम्पत्ति का बटवारा करना था।[3]

विएना-सम्मेलन यूरोप के देशों का एक क्लब था। वहां लोग अपनी कूटनीतिज्ञता के बल पर राज्यों को दावों पर लगा रहे थे।[4]

दोष—विएना कांग्रेस के अनेक कार्य नितान्त आपत्तिजनक और दोषपूर्ण थे—

(१) जेनोआ का गणराज्य था। लार्ड विलियम बेंण्टिक ने इसे स्वतन्त्र करने का वचन दिया था। परन्तु अन्त में यह सार्डीनिआ-पीडमाण्ट के एक राज्य में मिला दिया गया। मित्रराष्ट्रों ने यह कार्य दक्षिण में फ्रांस के विरुद्ध एक शक्तिशाली राज्य के निर्माण करने के लिए किया था। इसके पीछे कोई सिद्धान्त न था।[5]

---

1. It ignored the challenge of the French Revolution.

2. 'The Congress of Vienna created more problems than it solved.'

3. 'It was the meeting of the victors to divide the spoils of the vanquished.'

4. 'All Europe now at playround a large green table, kingdoms are the stake and the dice may win a hundred, thousand or a million heads.'

5. 'In this one transaction is brought together all the perfidy, baseness and rapacious violence that could disgrace a country'—Whitbread in British Parliament
'foul and disgraceful'. —Lord Buckingham on Genoa Settlement.

(२) न्यायोचित राजता के सिद्धान्त के आधार पर सम्पूर्ण सैक्सनी आगस्टस को मिलना चाहिये था। परन्तु मित्रराष्ट्रों ने उसका २/५ भाग प्रशा को दे दिया। सैक्सनी का यह विभाजन भी नियम-विरुद्ध था।[1]

(३) मुरा को नेपल्स देने का वचन दिया गया था। परन्तु अन्त में मुरा की उपेक्षा करके नेपल्स में बूर्बां वंश को बुलाया गया।

जेनोआ, सैक्सनी और मूरा के सम्बन्ध में किये गये निर्णयों के लिये लार्ड ग्रे ने ब्रिटिश पार्लियामेंट में अपने देश के प्रतिनिधि कैसेलरे की बड़ी आलोचना की थी।[2]

✓ (४) विएना कांग्रेस ने बेल्जियम एवं हालैंड को एक साथ मिला दिया। इन दोनों देशों की सभ्यता एवं संस्कृति में भारी अन्तर था। हालैंड के निवासी प्रोटेस्टेन्ट धर्म के मानने वाले थे और बेल्जियम के निवासी कैथोलिक धर्म के, हालैण्ड की जाति डच थी और बेल्जियम की जाति बेल्जियन थी। हालैण्ड एक उन्नतिशील एवं व्यापारिक देश था, जबकि बेल्जियम एक कृषि-प्रधान देश था। हालैण्ड में प्रजातन्त्र तथा बेलजियम में राजतन्त्र था। अतः इन दोनों देशों को एक राज्य में मिलाना सर्वथा अनुचित था।

(५) लोम्बार्डी एवं वेनेशिया में इटली का राज्य होना चाहिये था। परन्तु ये प्रदेश आस्ट्रिया को दे दिये गये।

(६) स्वीडेन एवं नार्वे एक दूसरे से भिन्न थे, फिर भी उनको एक राज्य में मिला दिया गया।

(७) फिनलैण्ड को रूस के अधीन कर दिया गया।

(८) पोलैण्ड को रूस के सुपुर्द कर दिया गया। इस प्रकार राष्ट्रीय भावनाओं की अवहेलना की गई। पौलैण्ड और रूस की परम्पराओं में भारी अन्तर था। अतः दोनों का यह सम्मेलन नितान्त अस्वाभाविक था।

(९) वेनिस के पुराने गणतन्त्र को आस्ट्रिया को दे दिया गया। यह गणतन्त्रवाद की उपेक्षा थी।

(१०) मोडेना तथा टस्कनी में हैप्स बर्ग वंश का राज्य स्थापित कर दिया गया; परन्तु यह वंश बहुत अत्याचारी और प्रतिक्रियावादी वंश था।

(११) नेपोलियन ने जर्मनी में एक संघ बनाया था। इस एकता को और आगे बढ़ाया जा सकता था। परन्तु विएना-सम्मेलन में पुनः जर्मनी को अनेक राज्यों

---

1. 'as unprincipled a partition as the world ever saw.'
—Whitbread.

2. 'exceeded everything of treachery and fraud which I have yet witnessed in that new diplomatic school of which "the noble Lord, Lord Castlereagh, might be considered as the founder.'
—Lord Grey.

में बांट दिया गया। जर्मन संघ का अध्यक्ष गैर-जर्मन राज्य आस्ट्रिया बनाया गया। पुनः डायट में राज्यों के प्रतिक्रियावादी शासकों के प्रतिनिधि भेजे गये, जनता के प्रतिनिधि नहीं। जनसंख्या के आधार पर आस्ट्रिया और प्रशा के प्रतिनिधि सबसे अधिक थे। वे छोटे राज्यों की उपेक्षा कर सकते थे।

(१२) नेपोलियन ने इटली के अनेक राज्यों का एकीकरण करके वहां एक गणतन्त्र की स्थापना की थी। परन्तु विएना सम्मेलन में पुनः इटली को अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित कर दिया गया। इसके पश्चात् इटली एक मात्र भौगोलिक संज्ञा (Geographical expression) रह गया था। वहाँ के अधिकांश राजा प्रतिक्रियावादी थे। वहां सबसे अधिक प्रभाव आस्ट्रिया का हो गया जो एक विदेशी राज्य था।

(१३) आस्ट्रिया में अनेक जातियाँ रहती थीं। इससे आस्ट्रिया में बराबर आन्दोलन होने का भय बना रहता था। इसने लोम्बार्डी एवं वेनेशिया पर भी अधिकार कर लिया था। आस्ट्रिया एवं इन प्रदेशों की जाति में भिन्नता थी। इससे विद्रोह का भय और भी बढ़ गया।

(१४) राइन प्रदेश मिलने से प्रशा शक्तिशाली हो गया। अब वह आस्ट्रिया का विरोध कर सकता था। इस प्रकार आस्ट्रिया का पराभव १८१५ में ही आरम्भ हो गया था।

(१५) विएना कांग्रेस के सम्मुख ये प्रमुख उद्देश्य थे—

१. फ्रांस में क्रान्ति न होने पावे।

२. भविष्य में फ्रांस में बोनापार्ट के किसी वंशज का राज्य स्थापित न होने पावे।

लेकिन विएना कांग्रेस को अपने इन कार्यों में सफलता न मिली। १८३० एवं १८४८ में पुनः फ्रांस में क्रान्ति हो गई तथा कालान्तर में नेपोलियन महान् के भतीजे नेपोलियन तृतीय ने फ्रांस के सिंहासन पर अधिकार कर लिया।

फ्रांस की इन क्रान्तियों के परिणामस्वरूप न्यायोचित राजता का सिद्धान्त असफल होने लगा। इस सम्बन्ध में फिशर महोदय लिखते हैं—

'The plant of Legitimacy failed to flourish upon soil still covered by the lava of revolution.'

(१६) फ्रांस एवं प्रशा के मध्य अल्सेस एवं लोरेन के प्रश्न पर झगड़ा हुआ; परन्तु ये प्रदेश फ्रांस को दे दिये गये। यदि ये प्रदेश प्रशा को १८१५ में ही दे दिये जाते तो १८७० के सेंदा का युद्ध न होता।

(१७) प्रशा को वेस्टफालिया का प्रदेश देकर फ्रांस एवं प्रशा की सीमायें मिला दी गईं। यदि वेस्टफालिया तटस्थ बना दिया जाता तो दोनों में युद्ध की सम्भावना कुछ कम हो जाती।

(१८) विएना कांग्रेस ने स्वतन्त्रता तथा आत्म-निर्णय के सिद्धान्त की अवहेलना की।

टर्की के अनेक राज्य स्वतन्त्रता चाहते थे; परन्तु उनकी बातों पर ध्यान नहीं दिया गया। उदाहरणार्थ, यूनान को टर्की के अधीन ही रक्खा गया।

(१६) वलाशिया एवं मोल्डाविया की जनता एक धर्म एवं एक परम्परा को मानने वाली थी, फिर भी दोनों प्रदेशों को पृथक्-पृथक् रक्खा गया। परन्तु कालान्तर में ये प्रदेश विएना काँग्रेस के निर्णय की अवहेलना कर रूमानिया नाम से एक साथ मिल गये।

(२०) विएना काँग्रेस के प्रतिनिधि युद्ध समाप्त करना चाहते थे; परन्तु इसके लिये उन्होंने कोई विशेष प्रबन्ध नहीं किया। इसके लिये पवित्र संघ एवं चतुर्मुख संघ की स्थापना की गई। परन्तु ये दोनों संस्थाएं असफल हो गईं। उनको एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन स्थापित करना चाहिये था। इस सम्मेलन में निःशस्त्रीकरण शब्द का नाम भी नहीं लिया गया था।

१८३० तक विएना कांग्रेस की व्यवस्थाएं चलती रहीं तथा शान्ति बनी रही। परन्तु १८३० में फ्रांस में पुनः क्रान्ति हो गई। अन्य देशों के प्रतिनिधियों ने इस क्रान्ति को दबा दिया और इस क्रान्ति का अधिक प्रभाव न पड़ सका। परन्तु १८४८ में फांस में पुनः एक भयंकर क्रान्ति हो गई। इस क्रान्ति ने प्रबल प्रतिक्रियावादी मेटरनिख की नींव हिला दी।

१८१५ में विएना कांग्रेस की व्यवस्था योरप पर लाद दी गई; परन्तु बहुत शीघ्र योरप के राष्ट्रों में राजनीतिक चेतना का प्रादुर्भाव हुआ। इसके परिणामस्वरूप विएना कांग्रेस की व्यवस्था धीरे-धीरे भंग होने लगी।

गुण—विएना कांग्रेस के दोषों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया जा चुका है। अब उसके कुछ गुणों की ओर भी एक दृष्टि डाल लेनी चाहिये।

(१) यदि यह सम्मेलन न हुआ होता तो पवित्र संघ एवं चतुर्मुख संघ की स्थापना न हुई होती।

(२) इस कांग्रेस ने एक यह भी नियम बनाया कि यदि दो राज्य परस्पर मिला दिये जायं तो दूसरे राज्य के प्रतिनिधि भी उस राज्य के पार्लियामेंट में आ जायेंगे तथा उसकी स्थानीय संस्थाओं एवं हितों का ध्यान रक्खा जायगा। जेनोआ एवं पीडमाण्ट के सम्बन्ध में इस नियम का पालन हुआ।

(३) दास-व्यापार की निन्दा की गई। यद्यपि यह व्यापार बन्द न हुआ फिर भी इसका विरोध अवश्य हुआ।

इस प्रकार मानव-सभ्यता एवं मानव-अधिकारों की स्थापना के लिये भी विएना कांग्रेस महत्वपूर्ण है।

(४) योरप के राष्ट्रों ने पारस्परिक झगड़ों एवं समस्याओं को हल करने के लिये विचार-विमर्श के एक नये मार्ग का अन्वेषण किया। युद्ध-निषेध की ओर यह एक कदम था।

(५) विएना कांग्रेस ने कुछ अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का भी प्रतिपादन किया। इससे कूटनीति का विकास हुआ।

(६) इस सम्मेलन में प्रशा को काफी शक्तिशाली बना दिया गया था। यह जर्मनी के एकीकरण की भूमिका है।

(७) सार्डीनिया-पीडमाण्ट के साथ जेनोआ को मिलाकर इटली के भी एकीकरण की भूमिका तैयार की गई।

(८) इस सम्मेलन के परिणामस्वरूप योरप में ४० वर्षों तक शान्ति बनी रही। १८५४-५६ के क्रीमिया युद्ध से पूर्व योरप में कोई भयंकर युद्ध न हुआ।

विएना कांग्रेस के कार्य-कर्ताओं की आलोचना करते हुये हमें यह भी ध्यान रखना चाहिये कि पूर्व सन्धियों के अनुसार उनके हाथ बंधे हुये थे। मित्र राष्ट्रों की सहायता करने वाले पुरस्कार चाहते थे। दूसरे, सम्मेलन के कार्य-कर्ता कोई भविष्य-दृष्टा न थे। किसी भी संस्था के दोषों का पता व्यवहार के पश्चात् चलता है।

इस प्रकार विएना कांग्रेस के निर्णयों का योरप के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है।[1] यह नीति और सदाचारों के सिद्धान्तों पर विचार करने के लिये न हुई थी। इसका प्रमुख लक्ष्य विश्व-शान्ति के लिये व्यावहारिक व्यवस्था करना था और इस उद्देश्य में यह काफी सफल हुई। केटल्वी महोदय लिखते हैं कि विएना कांग्रेस के कुछ निर्णय ५० वर्ष तक तथा कुछ १०० वर्ष तक चलते रहे।

---

1. 'The Congress of Vienna was not assembled for the disscussion of moral principles but for great practical purposes, to establish effactual provisions for the general security.'

—Castlereagh.

प्रश्न (बी० ए०)

१ विएना कांग्रेस के क्या सिद्धान्त थे ? उनका कहां तक पालन किया गया ?

२ सन् १८१४-१५ की विएना कांग्रेस की धाराओं पर विचार कीजिये और उसके मुख्य दोषों का वर्णन करिये ।

३ सन् १८१५ की विएना कांग्रेस के मुख्य निर्णयों की समीक्षा कीजिये । योरप के राज्यों पर उसका क्या प्रभाव पड़ा ?

Questions (M. A.)

1 'The Congress of Vienna made mistakes both of omission and commission.' Discuss its arrangements so as to bring out clearly the truth of the above statement.

2 What were the principles of the Congress of Vienna ? How did it apply them ? Illustrate the truth of the statement that the congress was guilty of sins both of omission and commission.

3 'To make the Congress of Vienna the scapegoat of the troubles which marred the general peace and prosperity ofthe next thirty years is to overlook several considerations.' (Ward)

What principles governed the deliberations of the Vienna Congress ? Write a critical note on the arrangements made by the Congress.

4 'The Vienna Settlement was an honest attempt to prevent future war and the best that could have been devised in 1815.' Discuss.

योरप का इतिहास

खण्ड २

१

योरप की संयुक्त व्यवस्था
(The Concert of Europe)

दो व्यवस्थायें। पवित्र सन्धि की पृष्ठभूमि। उद्देश्य। विभिन्न राज्यों की प्रतिक्रिया। चतुर्मुख मित्र-मण्डल। पृष्ठभूमि। उद्देश्य। कांग्रेस-युग। एलाशपल की कांग्रेस। उसके कार्य। पंचमुख मित्र-मण्डल का निर्माण। ट्रोपाउ की कांग्रेस तथा उसके कार्य। ट्रोपाउ प्रोटोकल। एलेग्जैण्डर प्रथम का विचार-परिवर्तन। लैबाख की कांग्रेस तथा उसके कार्य। वेरोना की कांग्रेस तथा उसके कार्य। संघ-व्यवस्था का विघटन। असफलता के कारण।

फ्रांस की राज क्रान्ति एवं नेपोलियन के युद्धों ने २५ वर्ष तक लगातार योरप की शान्ति को भंग रक्खा। प्रत्येक देश युद्ध से थक गया, क्योंकि युद्धों के परिणाम-स्वरूप भयंकर हानि हुई। चारों तरफ बेकारी एवं भुखमरी छा गई। व्यापार एवं कृषि नष्ट हो गई। युद्ध के प्रभाव के सम्बन्ध में टामस पेन महोदय अपनी पुस्तक 'मनुष्य के अधिकार' (Rights of Man) में लिखते हैं—"प्रत्येक देश में वृद्ध लोग तो श्रम-गृह (Work House) में जाते हैं तथा नवयुवक फांसी के तख्तों पर लटकाए जाते हैं।" २० वर्ष तक नेपोलियन एवं योरप के देशों के संघ के मध्य भयंकर युद्ध होता रहा। सारा योरप रक्त-रंजित हो गया। अन्त में संयुक्त शक्तियों (Coalition) ने नेपोलियन को परास्त कर सेन्ट हेलेना के निर्जन टापू में बन्दी बनाकर भेज दिया। योरप में पुनः शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित करने के लिए विएना में मित्र राष्ट्रों का एक विशाल सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन ने यूरोप में स्थायी शान्ति स्थापित करने के लिये जो व्यवस्था की उसको सफल बनाने का उत्तरदायित्व संयुक्त रूप से मित्र राष्ट्रों का था। इसके लिये उन्होंने दो प्रकार की व्यवस्थाएं कीं—

१. पवित्र संघ (Holy Alliance)

२. चतुर्मुख मित्र मण्डल (The Quadruple Alliance)

पवित्र संघ (Holy Alliance)

पृष्ठभूमि—१. दीर्घ कालीन युद्धों के पश्चात् योरप के समस्त राष्ट्र युद्ध से थक गए थे। वे समझ गए थे कि युद्ध में जन और धन की हानि विजेताओं एवं पराजितों दोनों को उठानी पड़ती है। अतः वे चाहते थे कि आपस के झगड़े युद्ध द्वारा तय न करके विचार-विमर्श द्वारा तय किये जायें।

२. दूसरे योरप के राष्ट्र धार्मिक एवं नैतिक उत्थान चाहते थे। १६८९ से लेकर १७८९ तक का युग फ्रांस एवं योरप के इतिहास में बौद्धिक क्रांति का युग था। इसके परिणाम स्वरूप तर्कवाद (Rationalism) तथा संदेहवाद (Skapticism) का जन्म हुआ। बौद्धिक क्रान्ति ने अंध-विश्वास को समाप्त कर तर्क की प्रतिष्ठा की। धर्म के विरोध में अनेक बातें कही जाने लगीं। वाल्टेयर ने चर्च को कुविख्यात वस्तु (Imfamous thing) कहा। उस समय चर्च पर ऐसा आघात करना बहुत बड़ी बात थी। रूसो ने कहा था कि पुरातन सँस्थाओं (चर्च एवं धर्म) को नष्ट कर दिया जाय। हालवैश नामक एक घोर नास्तिक एवं भौतिकवादी दार्शनिक ने कहा—('विश्व की प्रत्येक बुराई राजनीतिक एवं धार्मिक गलतियों के कारण है। इसीलिये सुन्दर संसार आज आंसुओं की घाटी बन गया है।')

१७८९ से १८१५ तक योरप के धार्मिक क्षेत्र में भी अराजकता चलती रही। १८१५ में तर्कवाद एवं संदेहवाद का विरोध हुआ।

रूस के जार सम्राट एलेग्जेण्डर प्रथम ने इस प्रतिक्रिया के आधार पर पवित्र संघ (Holy Alliance) की योजना प्रस्तुत की। यह पारस्परिक झगड़ों को दूर करने की धार्मिक योजना थी। मैरियट ने इसे 'Mystical Piety' कहा है। योरप के कूटनीतिज्ञ इसे अव्यावहारिक समझते थे। फिर भी ब्रिटेन, पोप एवं टर्की के अतिरिक्त सब देशों ने इसको स्वीकार कर लिया। टर्की को इसमें सम्मिलित नहीं किया गया, क्योंकि वह विधर्मी था। मेटर्निख ने इस पर हस्ताक्षर का एक मात्र उद्देश्य जार को प्रसन्न करना (To please the Czar) बतलाया था। वॉन माल्टके (Von Moltke) ने कहा था—"मित्र राष्ट्र जो युद्ध करते हैं, उसमें रूस बहुत शक्तिशाली हो जाता है। इसका कारण यह है कि वह युद्ध में बहुत बाद में आता है। इसलिये सन्धि के समय सम्मेलन में उपस्थित होकर अधिक से अधिक सुविधाएं प्राप्त करने की मांग करता है। यदि मित्र-राष्ट्र इसे नहीं मानते तो युद्ध की धमकी देता है, क्योंकि वह जानता है कि इस समय अन्य राष्ट्र युद्ध के लिये तैयार नहीं हैं।"[1] पवित्र संघ का जन्मदाता एलेग्जेण्डर बड़ा रहस्यवादी था। उसकी कल्पनाएं बहुत जल्दी बदला करती थीं। प्रारम्भ में बहुत उदार था परन्तु बाद में वह प्रतिक्रियावादी हो गया। इसी से इसके इस संघ को समझने में लोगों में बहुत भ्रम हुआ। कुछ लोग इसको निरंकुश राजाओं का अपनी प्रजा के विरुद्ध बना हुआ एक संघ समझते थे। वे इसे प्रतिक्रिया का प्रतीक समझते थे। कुछ लोगों ने उसे योरप की स्वतन्त्रता के विरुद्ध एक गुप्त प्रयास समझा।

वास्तव में एलेग्जेण्डर की यह योजना कोई नई नहीं थी। १६०० के लगभग इस प्रकार की एक योजना फ्रांस में भी बनाई गई थी। उस योजना के जन्मदाता फ्राँस का सम्राट हैनरी चतुर्थ तथा उसका मन्त्री सली थे। इस योजना को उन्होंने

1. "The drawback of Russia as an ally is that she arise on the field very late, and then is too strong."

महाआयोजन (Grand Design) के नाम से पुकारा था। कुछ विद्वानों का विचार है कि उन्होंने यह योजना इंग्लैण्ड की महारानी एलिजाबेथ के प्रभाव के अन्तर्गत बनाई थी। इसके अनुसार योरप में अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का संगठन होगा तथा इसमें प्रमुख देशों के ६६ प्रतिनिधि आयेंगे।

सली ने सारांश में इसका उद्देश्य घोषित किया था—योरप को प्रचलित विनाशकारी विपत्तियों से सदैव बचाना तथा उसमें निरन्तर शान्ति रखना जिससे कि सम्राट् परस्पर भाइयों का सा बर्ताव कर सकें।[1]

अभाग्य वश १६१० में हेनरी चतुर्थ की मृत्यु हो गई और यह योजना कार्यान्वित न हो सकी।

सन् १७१३ में इसी प्रकार की एक योजना संत पियरे नामक एक पादरी ने बनाई। उसने इसको शान्ति की स्थायी योजना (Project de paix perpetuelle) नाम दिया। इसके अनुसार एक संघ का निर्माण किया जायगा तथा झगड़ों का निर्णय पारस्परिक विचार-विमर्श के द्वारा होगा। परन्तु यह योजना भी कार्यान्वित न हो सकी।

१८०२ में एलेग्जेण्डर प्रथम ने छोटे पिट के पास एक प्रस्ताव भेजा कि जब तक हम जनता को अधिकार न देंगे तब तक युद्ध समाप्त न होंगे। प्रसिद्ध विद्वान् कांट ने भी यही कहा था कि विश्व-शान्ति का एकमात्र आधार वास्तविक प्रतिनिधि-सरकार है।

इस पृष्ठभूमि के आधार पर २६ सितम्बर १८१५ को एलेग्जेण्डर ने घोषित किया—'भविष्य में सब राजा अपने को एक दूसरे का भाई समझें। वे सत्य एवं भ्रातृत्व के बन्धन में बंध जायें। प्रजा को वे अपना बच्चा समझें तथा उन पर वे ऐसे ही शासन करें जैसे पिता अपने कुटुम्ब पर करता है।' इसका अर्थ था राजाओं को अपना शासन पवित्र धर्म, न्याय, उदारता एवं शान्ति के सिद्धान्तों के आधार पर करना। यह घोषणा प्रत्येक राजा के नाम थी अर्थात् हम जितने भी योरपीय राजा हैं, सब एक दूसरे के भाई हैं तथा परमात्मा के परिवार (Father's Families) हैं। जनता को चाहिए कि ईश्वर ने हमें जो कर्तव्य सिखायें हैं, उनका बराबर पालन करती रहे।

यह कोई सन्धि नहीं थी। सन्धि की धारायें मान्य होती हैं। परन्तु इसमें कोई ऐसी बात नहीं थी। इसलिये हेजन महोदय ने इसको '......a confession of faith and purpose' कहा है।

---

1. 'To deliver them for ever from the fear of bloody catastrophes so common in Europe, to secure for them an unalterable repose so that all the princes might henceforth live together as brothers.'

कैसलरे ने इसका घोर विरोध किया। इंग्लैंड सदैव से यह मानता रहा है कि सब समस्यायें पुरानी सन्धियों के अनुसार हल होनी चाहियें। परन्तु जार एलेग्जेण्डर की इस अस्पष्ट एवं धुँधली योजना को मान लेने से उसकी पुरानी सन्धियों पर भारी आघात होता। कैसलरे ने गुप्त रूप से अपने प्रधान मन्त्री लिवरपूल को लिखा—'The Emperor's mind is not completely sound' खुले रूप में उसने इसके सम्बन्ध में लिखा था—इस सन्धि के सिद्धान्त बहुत अच्छे एवं उदार हैं, इससे एक उद्देश्य की पूर्ति भी हो जाती है अर्थात् इससे राजनीतिक क्षेत्र में आध्यात्मिकता का बोलबाला हो गया है. परन्तु यह हम सबके लिये बड़े अपमान की बात होगी। अतः ब्रिटेन इसको अस्वीकार करता है। इंग्लैंड द्वारा इसको स्वीकार न करना, इसकी असफलता का प्रथम कारण था।

पोप ने इसको इसलिए स्वीकार नहीं किया कि इसके नियम एक सम्राट् ने बनाये थे। पोप का विचार था कि धार्मिक मामलों में कानून बनाने का एक मात्र अधिकार पोप को है।

टर्की एक विधर्मी राज्य था। अतः उसको बुलाया ही नहीं गया।

आस्ट्रिया ने इसको एक मात्र जार को प्रसन्न करने के लिये स्वीकार कर लिया था।

पवित्र संघ का महत्व—यह कोई सन्धि नहीं थी। यह तो जार सम्राट् द्वारा की गई एक पवित्र घोषणा थी। इंग्लैंड का सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ कैसलरे इसे व्यर्थ की बकवास और रहस्यवाद समझता था।[1] मेटर्निख इसे ढोल का पोल कहता था।[2] एक दूसरे स्थान पर मेटर्निख ने इसको आध्यात्मिक प्रदर्शन कहा था।[3] तालीरां इसे मजाक की वस्तु कहता था।[4] गेंज महोदय इसे एक सजी हुई स्टेज कहता था।[5] एक दूसरे स्थान पर गेंज महोदय कहते हैं—'यह केवल परोपकार की आकांक्षा है, जिसको केवल धार्मिक पोशाक पहना दी गई है। यह कोई ऐसी संस्था नहीं है जो लोगों के अधिकारों का दमन करे अथवा निरंकुशता अथवा अन्य किसी प्रकार के अत्याचार को प्रोत्साहन दे। यह जार सम्राट् एलेग्जेण्डर की दयालुता एवं धार्मिकता का प्रवाह है।[6]

---

1. 'A piece of sublime mysticism and nonsense.'
2. 'High sounding nothing.'
3. 'A moral demonstration.'
4. 'A ludicrous contract.'
5. 'Stage decoration.'
6. 'The Holy Alliance was merely a plilanthropic aspiration clothed in a religious garb. It was not an institution to keep down the rights of the people, to promote absolutism or any other tyranny. It was only the overflow of the pietistic feeling of the Emperor Alexander.

इसके विपरीत गेटे जैसे दार्शनिकों ने उसकी बहुत प्रशंसा की है। वह लिखता है कि इससे अच्छी एवं उपयोगी कोई योजना मनुष्य मात्र के लिये नहीं बनी ।[1]

चतुर्मुख मित्र मंडल
(Quadruple Alliance)

मित्र राष्ट्रों के सम्मुख दो डर थे—

१. फ्रांस सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली न हो जायें ।

२. फ्रांस के क्रान्तिकारी विचार योरप में न फैलने पावें ।

प्रथम भय को निम्नलिखित व्यवस्थाओं द्वारा हल किया गया—

(१) फ्रांस को चारों ओर से शक्तिशाली राष्ट्रों से घेर दिया गया ।

(२) फ्रांस में न्यायोचित्त राजता के सिद्धान्त के आधार पर पुनः बूर्बां वंश की प्रतिष्ठा कर दी गई ।

(३) फ्रांस में मित्रराष्ट्रों की एक सेना (Occupation Army) रख दी गई । इसका अध्यक्ष वेलिंगटन था ।

(४) फ्रांस पर भारी हर्जाना लाद दिया गया ।

फ्रांस के क्रान्तिकारी विचारों से रक्षा के लिये उन्होंने शान्तिकाल में भी चतुर्मुख संघ बनाये रक्खा। इस प्रकार के संघ का विचार पुराना है। १७६१ में आस्ट्रिया के प्रधान मंत्री कोनेज ने मित्र राष्ट्रों के सम्मुख कहा था—'योरप राष्ट्रों का परिवार है। इसलिये राष्ट्रों का कर्तव्य है कि सब मिलकर शान्ति की रक्षा करें तथा एक दूसरे के राज्य का अपहरण न करें और सन्धियों को मानें ।'[2] निम्न शब्दों में इसकी व्याख्या की जा सकती है—

(१) योरप में शान्ति स्थापित करना ।

(२) देशों में आन्तरिक शान्ति की स्थापना ।

(३) राजाओं के पास जो प्रदेश हैं, वे उनसे न छीने जायें ।

(४) परस्पर जो सन्धियां की जायें वे न तोड़ी जायें ।

इसी प्रकार के उद्देश्यों को सम्मुख रखकर १८१४ में शोमाँ की सन्धि हुई थी ।

नेपोलियन के एल्बा के टापू से भाग आने तथा १०० दिन तक पुनः फ्रांस का सम्राट् बन जाने से मित्र राष्ट्रों को फ्रांस के विरुद्ध एक संगठन बनाए रखने के लिये और अधिक प्रोत्साहन दिया ।

---

1. 'Nothing greater or more useful for mankind has been invented.'

2. 'To make common cause in order to preserve the public peace, the tranquility of states, the invislability of possessions and the faith of treaties.'

इसी उद्देश्य को सम्मुख रखकर २० नवम्बर १८१५ को इंग्लेंड, रूस, आस्ट्रिया तथा प्रशा ने मिलकर चतुर्मुख संघ की स्थापना की। इसके प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार थे—

१. नेपोलियन एवं उसके वंशजों को फ्रांस के सिंहासन पर नहीं बैठने दिया जायेगा।

२. यदि फ्राँसीसी क्रान्ति के विचारों का फिर से प्रचार हुआ तो सामूहिक रूप से ये राष्ट्र उसके विरुद्ध कदम उठायेंगे।

३. योरप में क्रान्ति बनाये रखने के लिये वह विएना कांग्रेस द्वारा निर्धारित व्यवस्था को बनाये रक्खे।

यह एक निश्चित सन्धि (Definite Treaty) थी। पवित्र संघ एक सामान्य सन्धि (General Treaty) थी। यह एक मात्र फ्रांस के विरुद्ध थी, परन्तु पवित्र संघ सब राष्ट्रों से सम्बन्धित थी। ब्रिटेन ने भी इसको स्वीकार कर लिया, क्योंकि ब्रिटेन सदैव स्पष्ट सन्धि (Definite Treaty) करता है।

चतुर्मुख संघ की सन्धि की छठी धारा प्रमुख है। इसके अनुसार निम्नलिखित व्यवस्था की गई[1]—

(१) समय-समय पर आपस में मीटिंग करते रहेंगे।

(२) जिससे भिन्न-भिन्न देशों में शान्ति बनी रहे।

(३) योरप में शान्ति बनी रहे।

इसी आधार पर योरप की संयुक्त-व्यवस्था (Concert of Europe) की स्थापना हुई। यह १८१५ से १८२२ तक चलती रही। यह काल सम्मेलनों का काल (Age of Congresses or Age of Conferences) कहलाता है। इस समय होने वाली प्रमुख कांग्रेस निम्न प्रकार से थीं—

(१) एलाशप की कांग्रेस (१८१८)।

(२) ट्रोपाय की कांग्रेस (१८२०)।

(३) लैबाख की कांग्रेस (१८२१)।

(४) वेरोना की काँग्रेस (१८२२)।

१. एलाशपल की कांग्रेस—१८१८ में एलाशपल की कांग्रेस हुई। इस काँग्रेस के सम्बन्ध में मेटर्निख ने लिखा था कि इससे सुन्दर कांग्रेस मैंने नहीं देखी। इसकी सफलता से वह बहुत प्रसन्न था। मित्र राष्ट्र योरप के समस्त राज्यों

---

1. 'To renew at fixed intervals..........meetings.......for the peace and prosperity of the nations and for the maintenance of the peace of Europe.'

पर नियन्त्रण स्थापित करना चाहते थे। उनके इस प्रयत्न की यह पराकाष्ठा थी। इस कांग्रेस के सम्मुख निम्नलिखित समस्यायें थीं—

(१) डेन्मार्क, स्वीडन एवं नार्वे के देशों के मध्य झगड़ा था। नार्वे पहले डेन्मार्क के अधीन था। परन्तु विएना सम्मेलन ने इसको स्वीडन के साथ मिला दिया। अतः इस सम्मेलन ने डेन्मार्क और स्वीडन का झगड़ा निबटाया।

(२) जर्मनी के संघ में हेस नामक एक राज्य था। उसके राजा की एलेक्टर (Elector) की उपाधि थी। उसने यह माँग की कि हमें राजा (King) की उपाधि दी जाय। परन्तु उसकी यह माँग अस्वीकृत कर दी गई।

(३) मोनको के सुलतान को यह आदेश मिला कि वह अपने देश के अल्प-संख्यकों के साथ उदारता का बर्ताव करे।

(४) आस्ट्रिया तथा प्रशा के यहूदियों की दशा पर भी विचार किया गया।

(५) वेडन के उत्तराधिकार के झगड़े का भी समाधान किया गया।

उपर्युक्त समस्त झगड़े बिना किसी कठिनाई के हल हो गये।

फ्रांस ने मांग की कि हमने क्षति-पूर्ति कर दी है। अतः हमारे देश से मित्र राष्ट्रों की सेना (Army of Occupation) हटा ली जाय। मित्र राष्ट्रों ने इसको स्वीकार कर लिया। इसके साथ-साथ फ्रांस को अपनी अन्तरंग समिति में भी शामिल कर लिया। अतः अब चतुर्मुख संघ के स्थान पर पंचमुख संघ (Quintuple Alliance) की स्थापना हुई।

मेटर्निख बहुत प्रसन्न हुआ कि अब यह एक नैतिक पंचायत बन गई है। इतना होते हुए भी मित्र राष्ट्र फ्राँस का विश्वास नहीं करते थे। उन्हें यह डर था कि फ्रांस में फिर कहीं नेपोलियन जैसी शक्ति का उदय न हो जाय। अतः उन्होंने १५ नवम्बर १८१८ को एक गुप्त सन्धि की। इसके मतानुसार यदि फ्राँस में निकट भविष्य में कोई विद्रोह या क्रान्ति हो तो हम सब मिलकर शक्ति पूर्वक उसके दमन (Most effective measures) करने का प्रयत्न करेंगे। यह गुप्त सन्धि फ्रांस के विरुद्ध ४ मित्र राष्ट्रों ने की थी।

आस्ट्रिया, प्रशा एवं रूस चाहते थे कि विद्रोह के दमन नीति का फ्रांस में ही नहीं अपितु योरप के किसी भी देश में जहां क्रांति हो, प्रयोग किया जाय। इस प्रकार ये देश सामान्य हस्तक्षेप (General Intervention) के सिद्धान्त के समर्थक थे। इस प्रकार ये एक पुलिस राज्य (Police State) कायम करना चाहते थे। परन्तु ब्रिटेन ने इस व्यवस्था का विरोध किया।

(१)एलेक्जेण्डर प्रथम ने पूर्व स्थिति (Status Quo) को बनाये रखने पर जोर दिया, परन्तु इंग्लैंड ने इसका भी विरोध किया। कैसेलरे ने कहा था कि सन्धि का उद्देश्य समस्त देशों पर इन चार राज्यों का शासन स्थापित करना न था। दूसरे

देशों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप का सिद्धान्त भी खतरनाक नहीं था। अतः यह सिद्धान्त एकमात्र फ्रांस के ही विरोध में रहा।[1]

(२) दक्षिणी अमेरिका के अनेक प्रदेशों पर स्पेन का अधिकार था। इन्होंने स्पेन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। स्पेन ने इनका दमन करना चाहा। उसने फ्रांस से सहायता मांगी, क्योंकि दोनों देशों में बूर्बां वंश राज्य कर रहा था। एलेक्जेण्डर भी सहायता देने के लिये तैयार था। इंग्लैंड ने इसका विरोध किया। वह फ्रांस एवं रूस के प्रभाव को बढ़ने न देना चाहता था। दूसरे स्पेनी उपनिवेशों के साथ ब्रिटेन का व्यापार चल रहा था। यदि इन पर स्पेन का अधिकार हो जाता तो इंग्लैंड के व्यापार को क्षति पहुँचती। ब्रिटेन ने कहा—'हम विद्रोहियों के समर्थक नहीं हैं। यह स्पेन का घरेलू मामला है। अतः स्पेन अकेला विद्रोहियों का दमन कर सकता है।' परन्तु ब्रिटेन यह भली प्रकार जानता था कि स्पेन अकेला विद्रोहियों का दमन न कर सकेगा। अमेरिका के राष्ट्रपति मुनरो ने भी ब्रिटेन का समर्थन किया।

(३) दास-व्यापार के सम्बन्ध में विएना कांग्रेस ने कहा था कि नैतिक दृष्टि से यह बुरा है। अतः प्रत्येक देश को यह धीरे-धीरे बंद कर देना चाहिये। परन्तु फिर भी यह व्यापार चलता रहा। इंग्लैंड ने कहा कि जहाजों की तलाशी ली जाया करे कि उनमें दास तो नहीं हैं तथा तलाशी लेने का कार्य इंग्लैंड को दिया जाय। परन्तु अन्य मित्र राष्ट्रों ने इसका विरोध किया, क्योंकि वे भली प्रकार जानते थे कि यदि यह अधिकार उसको दे दिया गया तो 'समुद्रों का राजा इंग्लैंड' ही उसका पूरा लाभ उठायेगा तथा समुद्रों पर उसका एकाधिपत्य हो जायगा।

(४) भूमध्य सागर में अनेक टापू थे। इनमें समुद्री डाकू रहते थे। मित्र राष्ट्रों ने यह माँग की कि इन डाकुओं का दमन कर दिया जाय। इनका दमन करने के लिये समुद्र में एक अन्तर्राष्ट्रीय सेना रख दी जाय। ब्रिटेन ने इसका विरोध किया। कारण यह था कि इन डाकुओं से ब्रिटेन के जहाजों को कोई हानि न होती थी। समुद्री डाकू ब्रिटेन की शक्ति को भली प्रकार समझते थे। अतः जिस जहाज पर यूनियन जैक लगा होता था उसको ये कोई हानि न पहुंचाते थे। ये लुटेरे हानि केवल उन देशों के जहाजों को पहुंचाते थे जिनकी सामुद्रिक शक्ति बहुत कम थी।

पारस्परिक झगड़ों के कारण उपर्युक्त समस्याओं का समाधान न हुआ। मित्र राष्ट्रों के इन पारस्परिक झगड़ों से यह सिद्ध हो गया कि योरप की यह संयुक्त व्यवस्था अधिक दिन न चल सकेगी। लिप्सन महोदय के शब्दों में एे-ला-शेपल की कांग्रेस में एक दरार प्रकट हुई। यह दरार आगामी अधिवेशनों में चौड़ी होती गई और अन्त में फट गई।

---

1. 'The Alliance never intended as an union for the government of the world or for the superintendence of the internal affairs of the other states'.

२. ट्रोपाउ की कांग्रेस—यह कांग्रेस स्पेन, पुर्तगाल एवं नेपिल्स की समस्या को हल करने के लिये हुई। कारण यह था कि स्पेन, पुर्तगाल एवं नेपिल्स की जनता ने विद्रोह कर दिया।

(**ट्रोपाउ प्रोटोकल**—दूसरे देशों में यदि विद्रोह हो तो मित्रराष्ट्रों को दूसरे देशों में हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त हो गया। ५० हजार सेना भेजकर आस्ट्रिया ने नेपिल्स का विद्रोह दबा दिया गया। पीडमाण्ट का विद्रोह भी दबा दिया गया।)

जो मतभेद पहली कांग्रेस में हुआ था वह इसमें और अधिक बढ़ गया।

स्पेन—सन् १८१२ में स्पेन में जनतन्त्रात्मक संविधान लागू किया गया। इसके अनुसार राजा के सब अधिकार छीन लिये गये थे। १८१५ में न्यायोचित राजता के सिद्धान्त के आधार पर फर्डिनेण्ड सप्तम को राजा बनाया गया। मैरियट के अनुसार यह हठधर्मी, अन्ध-विश्वासी एवं निर्दयी था। उसने गद्दी पर बैठते ही १८१२ का संविधान नष्ट कर दिया। इससे बहुत असन्तोष बढ़ा और १८२० में जनता ने राजा के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। राजा ने डर कर १८१२ का संविधान लागू कर दिया। परन्तु उसने गुप्त रूप से फ्राँस की बूर्बां राज्य वंश की शाखा से सहायता की याचना की। फ्रांस एवं रूस दोनों ही स्पेन की सहायता करने के लिये तैयार थे। परन्तु कैसेलरे एवं मेटर्निख ने मिलकर इसका विरोध किया। इन्हें डर था कि कहीं बूर्बां वंश समस्त योरप पर न छा जाय। फलतः इस सम्मेलन में इस समस्या पर कोई निर्णय न हो सका।

पुर्तगाल—पुर्तगाल के अधीन ब्राजील भी था। मित्र राष्ट्रों ने इन दोनों देशों को मिला दिया; दोनों देशों की जनता ने इसका विरोध किया तथा १८२० में दोनों देशों की जनता ने विद्रोह कर दिया। १८२२ में ब्राजील की जनता ने पुनः पुर्तगाल के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। उन्होंने जान छठे के स्थान पर उसके पुत्र पेड्रो (Pedro) को राजा चुना। परन्तु पुर्तगाल में जान के दूसरे पुत्र मिगुएल ने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। उसने फ्रांस एवं स्पेन से वार्ता चलाई। परन्तु ब्रिटेन को इन दोनों देशों के बूर्बां वंश से खतरा था। जान विद्रोह के समय ब्रिटेन भाग गया। ब्रिटेन ने उसकी सहायता की तथा मिगुएल को भगाकर जान को पुर्तगाल का राजा बनाया। ब्राजील को पुर्तगाल से पृथक् कर दिया गया तथा वहां का शासक पेड्रो को ही मान लिया गया। जान ने यह आश्वासन दिया कि वह अपनी जनता के साथ उदारता का बर्ताव करेगा।

पुर्तगाल की समस्या के ऊपर भी इस सम्मेलन में कोई विचार नहीं हुआ।

नेपिल्स—न्यायोचित राजता के सिद्धान्त के आधार पर फर्डिनेण्ड प्रथम को नेपिल्स का राजा बना दिया गया। उसने एकतन्त्रवाद के आधार पर राज्य करना आरम्भ किया। फर्डिनेण्ड तथा मेटर्निख के मध्यम एक सन्धि हुई, जो इस प्रकार थी—

.........will not admit any change that is not in accordance with the ancient institutions of the monarchy and with the principle

of the Austrian Emperor.' इसका अर्थ था कि फर्डिनेण्ड अपने राज्य में अपनी इच्छा अथवा जनता की इच्छा से कोई परिवर्तन न करेगा । वह जनता को कोई नया संविधान न देगा और न जनता ऐसा संविधान माँगेगी । यदि आस्ट्रिया की परम्परा एवं सम्राट् के विरुद्ध कुछ होगा तो आस्ट्रिया उसे सहन न करेगा। आस्ट्रिया के हस्तक्षेप का प्रमुख कारण यह था कि यदि नेपिल्स आदि में विद्रोह होगा तो आस्ट्रिया के अधीन वेनेशिया तथा लोम्बार्डी आदि में भी विद्रोह हो सकते हैं। आस्ट्रिया के अधीन होने के साथ-साथ ये आस्ट्रिया के पड़ोसी देश भी थे ।

कैसलरे ने भी आस्ट्रिया का साथ दिया तथा उसको नेपिल्स में हस्तक्षेप करने का अधिकार दे दिया । लेकिन शर्त यह थी कि आस्ट्रिया आक्रमण न करेगा । तथा एकमात्र रक्षात्मक कार्यवाही करेगा । आस्ट्रिया इससे भी संतुष्ट न हुआ, क्योंकि ब्रिटेन ने १८१५ की कानूनी सन्धि के अनुसार उसको यह अधिकार दिया था। वह इसके द्वारा नेपिल्स में तो हस्तक्षेप कर सकता था, परन्तु अन्य किसी कानूनी सन्धि के अभाव में अन्य किसी देश के मामले में हस्तक्षेप नहीं कर सकता था ।

एलेग्जेण्डर प्रथम का आमूल परिवर्तन—अभी तक तो वह उदारवाद का समर्थक था, परन्तु १८२० में वह अचानक बदल गया तथा मेटर्निख के प्रभाव में आ गया । उसने पूरी तरह मेटर्निख का शिष्यत्व ग्रहण करते हुए कहा—अब आप और हम एक हैं। जो कुछ यह हुआ है सब आपकी बदौलत हुआ है । हमें खेद है कि हमने व्यर्थ में ही समय नष्ट कर दिया । अब हमें स्थिति में सुधार करना चाहिये । इस समय मैं आपके पास कोई निश्चित विचार अथवा योजना लेकर नहीं आया हूँ । परन्तु यह मेरी दृढ़ इच्छा है कि मैं आपकी इच्छा के अनुसार कार्य करूं । बतलाइये आपकी क्या इच्छा है ? तथा आप मुझ से क्या कराना चाहते हैं ।[1]

एलेग्जेण्डर के मेटर्निख के प्रभाव में आने के निम्न कारण बतलाये जाते हैं—

१. जर्मनी में १८१५ की सन्धि को तोड़ने के लिये आन्दोलन चल रहा था । जर्मन अपने देश में एकता स्थापित करना चाहते थे। कोट्जेब्यू (Kotzebue) की जो एलेग्जेण्डर का रूसी एजेन्ट (Russian Agent) था, हत्या कर दी गई ।

२. पेट्रोग्रेड में सम्राट् के अंग रक्षक सैनिक दल ने विद्रोह कर दिया । अब एलेग्जेण्डर समझ गया कि क्रान्तिकारी आन्दोलनों का दमन होना आवश्यक है। इन कारणों से वह घोर प्रतिक्रियावादी हो गया तथा मेटर्निख ने भी उसका स्वागत किया । इससे योरप में प्रतिक्रियावादी शक्तियों का बोलबाला हो गया तथा

---

1. 'Today I deplore all that I have done between the years 1814 and 1818........Tell me what you desire and what you wish me to do. I will do it.'

ब्रिटेन का पक्ष निर्बल हो गया, परन्तु फिर भी अन्त तक वह हस्तक्षेप के सिद्धान्त का विरोध करता रहा।

ट्रोपाउ प्रोटोकल—इस सम्मेलन में मित्र-राष्ट्रों ने हस्तक्षेप का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया। बहुत से राष्ट्रों में क्रान्ति से परिवर्तन हो गया है। यदि इन परिवर्तनों के कारण अन्य देशों को खतरा है तो सब बड़े देशों का कर्तव्य है कि शान्तिमय उपायों अथवा शस्त्र-बल से ऐसे अपराधी राष्ट्र को वापस योरपीय सन्धि की शरण में लावें।[1]

इस प्रकार आस्ट्रिया के प्रभाव के अन्तर्गत हस्तक्षेप का सिद्धान्त मान लिया गया। परन्तु इंग्लैंड इससे अलग रहा। कैसेलरे ने कहा था—'With the internal affairs of each separate States, we have nothing to do.' ग्लैडस्टन ने जनतन्त्रवादी सरकारों के विनाश पर शोक प्रकट करते हुए एक बार कहा था—'An out-rage upon religion, upon civilization, upon humanity and upon decency.'

इस प्रोटोकल के पास होने पर यह सम्मेलन स्थगित कर दिया गया।

३. **लैबाख कांग्रेस**--१८२१ में लैबाख की काँग्रेस हुई। इस कांग्रेस में आस्ट्रिया ने यह मांग की कि उसे नेपिल्स में सेना भेजने का अधिकार मिलना चाहिये। ब्रिटेन ने इसका विरोध किया, परन्तु इस हस्तक्षेप को रोकने के लिये कोई कदम नहीं उठाया। अन्त में आस्ट्रिया को नेपिल्स में सेनायें भेजने का अधिकार प्रदान कर दिया गया। फलतः उसने नेपिल्स के विद्रोह को दबा दिया तथा लौटते समय उस सेना ने पीडमाण्ट के विद्रोह को भी शान्त किया।

४. **वेरोना की कांग्रेस**—१८२२ में वेरोना का सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन का उद्देश्य यूनान के स्वतन्त्रता संग्राम तथा स्पेन के विद्रोह के सम्बन्ध में विचार करना था।

यूनान का स्वतन्त्रता संग्राम—१८२१ में यूनान की जनता ने टर्की के सुल्तान के विरुद्ध स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये विद्रोह कर दिया। समस्त योरप की सहानुभूति यूनानी जनता के साथ थी। रूस यूनानियों की सहायता करना चाहता था। इंग्लैंड की सहानुभूति भी यूनानियों के साथ थी, परन्तु वह अकेले रूस का हस्तक्षेप पसन्द नहीं करता था। अतः यह प्रस्ताव रक्खा गया कि मित्र-मंडल के समस्त सदस्य मिलकर यूनान की सहायता करें, परन्तु मेटर्निख ने इसको स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार यूनान के प्रश्न का कोई हल न निकला।

---

1 'If owing to such alterations, immediate danger threatened other States the powers bind themselves by peacefull means or if need be, by arms, to bring back the guilty states into the bosom of the great Alliance,'

स्पेन का प्रश्न—वेरोना की कांग्रेस अन्तिम थी। स्पेन के सम्राट् फर्डिनेण्ड सप्तम ने १८२० की क्रान्ति के फलस्वरूप इन्क्विजिशन (Inquisition) समाप्त कर दी तथा जनता को एक नया संविधान दिया परन्तु दूसरी ओर फर्डिनैण्ड ने बूर्बां वंश से सहायता मांगी। वहां अल्ट्रा रायलिस्टों (Ultra Royalists) का प्रभाव था। ये राजतन्त्रवादी सत्ता के समर्थक थे। ऐसा अनुमान था कि इस अवसर पर फ्राँस अवश्य ही स्पेन की सहायता करेगा, परन्तु इंग्लैंड ने इसका घोर विरोध किया। मित्र राष्ट्रों ने इंग्लैंड की माँग का विचार न करते हुये फ्रांस को स्पेन में हस्तक्षेप करने का अधिकार दे दिया। फ्रांस की सेनाओं ने नेपिल्स के विद्रोह का दमन कर दिया। १८२२ से १८२७ तक नेपिल्स की सेनायें स्पेन में रहीं और फर्डीनेण्ड फ्राँस की संगीनों के नीचे राज्य करता रहा।

ब्रिटेन अब तक बिल्कुल नाराज हो गया था। उसने अपने को मित्रमंडल से अलग कर लिया। कैनिंग ने कहा था 'प्रत्येक राष्ट्र अपने लिये और भगवान् सबके लिये।'[1]

स्पेन के अमेरिकन उपनिवेशों का विद्रोह—दक्षिणी अमेरिका के कुछ प्रदेश स्पेन के अधीन थे। परन्तु ये प्रदेश स्पेन के अधीन रहना नहीं चाहते थे। ब्रिटेन भी इन प्रदेशों को स्पेन से स्वतन्त्र कराना चाहता था। यह विचारधारा पिट द यंगर के समय से चल रही थी। १८०८ में कैसेलरे ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये।

१८२३ तक इन उपनिवेशों में विद्रोह बहुत अधिक बढ़ गये। इससे इंग्लैंड के व्यापार को बहुत हानि होने लगी। फलतः इंग्लैंड ने इन उपनिवेशों में अपने राजदूत भेज दिये। इनका उद्देश्य ब्रिटेन के व्यापारिक हितों की रक्षा करना था। इस प्रकार अंग्रेजों ने अपने राजदूत भेजकर इन प्रदेशों की पृथकता को स्वीकार कर लिया।

१८२५ में ब्रिटेन ने इन प्रदेशों को स्वतन्त्र मान लिया। मित्र-मण्डल के सब देशों ने इसका विरोध किया। परन्तु ब्रिटेन ने उनके विरोध की कोई परवाह न की। ब्रिटेन के वैदेशिक मन्त्री कैनिंग ने घोषणा की कि यदि मित्र राष्ट्रों की सेनाओं ने उक्त प्रदेशों में प्रवेश किया तो ब्रिटेन उसका अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ विरोध करेगा। इससे मित्र राष्ट्र डर गए और उन्होंने हस्तक्षेप नहीं किया।

मुनरो सिद्धान्त (The Monroe doctrine)—अमेरिका का भी इन प्रदेशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध था। अतः अमेरिका ने भी ब्रिटेन का साथ दिया। अमेरिका के राष्ट्रपति मुनरो ने १८२३ में घोषणा की जो कालान्तर में मुनरो सिद्धान्त के नाम से प्रख्यात हुई। यह घोषणा इस प्रकार थी—महा शक्तियों का कोई भी हस्तक्षेप शत्रुता का काम समझा जायगा। हमारे संसार में तुम हस्तक्षेप

---

1. 'Every nation for itself, and God for us all.

न करो। योरप के झगड़ों एवं राजनीति को उत्तरी अथवा दक्षिणी अमेरिका में मत लाओ। हमने आज तक कभी भी योरप के मामले में हस्तक्षेप नहीं किया है और आगे हस्तक्षेप करने का हमारा कोई विचार भी नहीं है। इसलिये योरोपीय देशों का भी कर्त्तव्य है कि वे अमेरिका के आन्तरिक मामले में हस्तक्षेप न करें और यदि योरप के राष्ट्र अमेरिका के आन्तरिक मामले में हस्तक्षेप करेंगे तो हम अपनी पूरी शक्ति के साथ उनका विरोध करेंगे।' सारांश में मुनरो सिद्धान्त (Monroe Doctrine) यह था कि 'अमेरिका अमेरिका वालों के लिये है। हम उत्तरी अथवा दक्षिणी अमेरिका में किसी का भी हस्तक्षेप सहन नहीं करेंगे।'[1]

अमेरिका एवं इंग्लैंड के मिल जाने के कारण रूस, फ्रांस, आस्ट्रिया तथा प्रशा को विरोध का साहस न हुआ। फलतः स्पैन के हाथ से यह उपनिवेश निकल गए। कैनिंग ने अपनी सफलता पर गर्व करते हुए कहा था—'मैंने पुरानी दुनिया के संतुलन को ठीक करने के लिये नई दुनिया की सृष्टि की है।'[2]

योरपीय संयुक्त व्यवस्था की असफलता—नेपोलियन के युद्धों के बाद योरप में अशान्ति छा गई थी। मित्र राष्ट्रों ने प्रथम बार मिलकर इस अव्यवस्था को दूर करने के लिए कदम उठाया। वास्तव में यह एक प्रशंसनीय प्रयास था; परन्तु मित्र-राष्ट्रों के पारस्परिक मतभेदों के कारण यह सफल न हो सका। इसकी असफलता के निम्नलिखित कारण थे—

१. मित्र राष्ट्रों के उद्देश्य अलग अलग थे। ब्रिटेन का उद्देश्य स्वतन्त्र राज्यों के मामले में हस्तक्षेप न करने का था। एक बार कैनिंग ने कहा था—'हमारा कार्य विश्व-शान्ति की रक्षा करना है तथा यह जातियों की स्वतन्त्रता की रक्षा करने से ही सम्भव हो सकेगी। कैसेलरे अपने सिद्धान्तों पर अटल रहने के साथ-साथ नर्म नीति का पोषक था; परन्तु उसका उत्तराधिकारी कैनिंग बहुत उग्र था। मेटर्निख ने एक बार उसके सम्बन्ध में कहा था—'वह एक अनिष्टकारी उल्कापात है जिसको क्रुद्ध होकर भगवान् ने योरप पर डाल दिया है।'[3]

१८२३ में कैनिंग ने विएना में स्थित अपने राजदूत को एक पत्र लिखा—'इंग्लैंड का उद्देश्य किसी स्वतन्त्र राज्य के मामले में हस्तक्षेप करने का नहीं है और न वह किसी हस्तक्षेप करने वाले राज्य को सहायता देगा। फ्रांस के मामले में इंग्लैंड जो मदद दे रहा है, वह एक अपवाद-स्वरूप मामला है।' फिर उसने अहदनामे के सम्बन्ध में कहा था—'अहदनामा फ्रांस की क्रांति के खतरे से योरप को

---

1. 'America is for the Americans. We can tolerate no European intervention in the South or North America.'

2. 'I have called a new world into existence to redress the balance of the old.'

3. 'Malevolent meteor hurled by an angry Providence upon Europe.'

बचाने के लिये हुआ था। परन्तु निरंकुश देशों ने इसको प्रगतिशील आन्दोलनों के दबाने का एक साधन बना लिया।'

इस प्रकार यह दो विचारधाराओं का संघर्ष था। इंग्लैंड जनता को नवीन संविधान देने के पक्ष में था। परन्तु आस्ट्रिया एवं रूस इसके विरोधी थे। इस प्रकार ये दो विचारधाराएं एक साथ नहीं चल सकती थीं।

मित्रराष्ट्र हस्तक्षेप के सिद्धान्त से समर्थक थे; परन्तु इंग्लैंड इसका घोर विरोधी था।

२. नेपोलियन के भय के कारण इस व्यवस्था का निर्माण हुआ था। जब तक नेपोलियन जीवित रहा, मित्र राष्ट्र बराबर मिले रहे। जब नेपोलियन मर गया तो उनमें पारस्परिक मतभेद उत्पन्न हो गये। इस प्रकार सामूहिक खतरे के समाप्त हो जाने पर संघ समाप्त हो गया।

३. इस संगठन में एक मात्र ४–५ बड़े देशों का ही प्रभुत्व था। छोटे देशों को इसमें बुलाया नहीं जाता था और यदि बुलाया भी जाता था तो उनकी राय को कोई महत्व नहीं दिया जाता था। बड़े राष्ट्रों की निगाह में छोटे राष्ट्रों का कोई सम्मान न था। बड़े राष्ट्र मौका पाकर छोटे राष्ट्रों के घरेलू मामले में हस्तक्षेप करने के लिये कटिबद्ध रहते थे।

४. इस संगठन के संचालक घोर प्रतिक्रियावादी थे। वे परस्पर भी एक दूसरे का विश्वास नहीं करते थे। फलतः पारस्परिक अविश्वास के होने पर कोई भी संस्था अधिक समय तक नहीं चल सकती।

५. फ्रांस की राज्य-क्रान्ति ने समस्त योरप में स्वतन्त्रता, समानता एवं भ्रातृ-भाव की भावनाएं फैला दी थीं; परन्तु इस संगठन के कार्य कर्त्ता प्रतिक्रिया-वादी होने के कारण इस भावनाओं का दमन करना चाहते थे। प्रारम्भ में उनको अपने इस उद्देश्य में कुछ सफलता भी मिली; परन्तु कालान्तर में जनता के घोर विरोध के कारण उनको कोई सफलता न मिली। स्थान-स्थान पर जनता ने खुले आन्दोलन करने आरम्भ किये। जनता के इन आन्दोलनों ने भी संयुक्त व्यवस्था के पतन में बहुत योग दिया।

उपसंहार—यद्यपि यह व्यवस्था बहुत जल्दी असफल हो गई, परन्तु फिर भी इतिहास में इसका विशेष महत्व है। इस व्यवस्था के फलस्वरूप योरप में ४० वर्षों तक शान्ति बनी रही। यद्यपि १८३० तथा १८४६ में पुनः क्रान्तियां हो गईं, परन्तु इनका प्रभाव देशों के आन्तरिक मामलों तक ही सीमित रहा और इन्होंने विश्व-युद्ध का रूप धारण न किया। बीसवीं शताब्दी की लीग ऑफ नेशन्स तथा संयुक्त राष्ट्र संघ (U. N. O.) १९ वीं शताब्दी की इसी संयुक्त व्यवस्था का विकसित रूप हैं।

— ——

२

फ्रांस (१८१५–१८४८)

लुई १८वां। नया संविधान। प्रमुख दल। श्वेत आतंक। मन्त्री तथा उनके कार्य। मृत्यु। चार्ल्स दशम। व्यक्तित्व। नीति। मार्तिग्नेक और उसके कार्य। पोलिग्नेक तथा क्रांति। क्रान्ति के प्रभाव। लुई फिलिप। उसका व्यक्तित्व। संविधान। दल। औद्योगिक क्रान्ति और उसके प्रभाव। लुई फिलिप का मध्यम मार्ग। मन्त्रि-मण्डल। ग्वीजो। वैदेशिक नीति। क्रान्ति और उसके प्रभाव।

विएना कांग्रेस से असन्तोष—मित्र राष्ट्रों ने नेपोलियन को परास्त कर सेन्ट हेलेना के एक निर्जन टापू में बन्दी बना कर भेज दिया। तत्पश्चात् योरप में पुनः व्यवस्था स्थापित करने के लिये १८१५ में विएना में मित्र-राष्ट्रों ने एक विशाल सम्मेलन किया। इस सम्मेलन के निर्णयों के अनुसार फ्रांस को चारों ओर से शक्तिशाली राज्यों द्वारा घेर दिया गया तथा फ्रांस की सीमायें संकुचित कर दी गई। फ्रांसीसी इस सन्धि को अपने देश के लिये अपमानजनक समझते थे तथा इसे नष्ट करना चाहते थे। परन्तु योरप की महान् शक्तियां इस समझौते को बनाये रखने के पक्ष में थीं।

बूर्बा वंश की प्रतिष्ठा—फ्रांस के सिंहासन पर किसको बैठाया जाय, इस बात पर पर्याप्त समय तक मतभेद रहा। बूर्बा वंश अब तक बहुत बदनाम हो गया था। शातोब्रिआं (Chateaubriand) नामक विद्वान् ने लिखा था—"बूर्बा राजवंश तब तक लोकप्रिय नहीं हो सकता जब तक कि वह रणक्षेत्र में ख्याति प्राप्त न करे।' परन्तु फिर भी मित्रराष्ट्रों ने लुई सोलहवें के बड़े भाई प्रावेन्स के काउण्ट (Count of Provence) को राजा बनाया। सिंहासन पर बैठने पर इसने लुई अठारहवें (Louis XVIII) की उपाधि धारण की।

लुई अठारहवां—इंग्लैंड एवं आस्ट्रिया नेपोलियन के साम्राज्य को समाप्त करना चाहते थे तथा नेपोलियन को फ्रांस की सीमित सीमाएं करके उसका राजा बनाना चाहते थे, परन्तु रूस इसका विरोधी था। वह फ्रांस के सिंहासन पर स्वीडन के राजकुमार बर्नाडोटे को बैठाना चाहता था। तालीरां ने बूर्बा वंश का पक्ष लिया। इसके लिये उसने न्यायोचित राजता के सिद्धान्त का आश्रय लिया। इसके अग्रलिखित कारण थे—

(१) नेपोलियन ने तालीरां का अपमान किया था।

(२) उसने रूस के उम्मीदवार बर्नाडोटे का भी विरोध किया, क्योंकि यदि यह सिंहासन पर बैठ जाता तो इसका श्रेय रूस को होता।

(३) अपने मत की पुष्टि करने के लिये उसने न्यायोचित राजता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया—'The legitimacy of kings, or rather of governments, is the safeguard of nations.'

लुई १८वें के पक्ष का समर्थन करते हुये तालीरां ने कहा था—'A government imposed would be weak. With a principle we are strong. Louis XVIII is a principle; he is the legitimate king of France.'

तालीरां की यह बात स्वीकार कर ली गई तथा लुई १८वें को पुनः वापस बुलाकर फ्रांस का सम्राट् बना दिया गया। उस समय उसकी अवस्था ५९ वर्ष की थी। वह गठिया बात का रोगी था। वह २३ वर्ष बाद फ्रांस वापस आया था। इसलिये वह फ्रांस के रीतिरिवाजों से सर्वथा अनभिज्ञ था। फिर भी वह बुद्धिमान था। उसने कहा था कि अब हम पुनः यात्रा के लिये जाना नहीं चाहते हैं। इसका अर्थ था कि अब वह जनता की इच्छा के अनुसार कार्य करेगा। उसने एक बार कहा था—'राजा दो प्रकार के व्यक्तियों के ऊपर शासन नहीं कर सकता।'[1] इसका यह अर्थ था कि वह निर्धनों एवं धनवानों, एकतन्त्रवादी एवं प्रजातन्त्रवादी तथा कैथोलिक एवं प्रोटेस्टेन्टों में समन्वय स्थापित करना चाहता था। इसके साथ-साथ वह पुरातनवाद एवं नवीन विचारधारा में समन्वय स्थापित करना चाहता था। वह दोनों प्रकार के वर्गों के अन्तर को समाप्त करना चाहता था। फलतः १८१४ में उसने जनता को एक नवीन संविधान दिया। इस संविधान की भूमिका (Preamble) में उसने निम्न शब्द कहे थे—हम क्रान्तिकारी सिद्धान्तों के विकास को स्वीकार करते हैं। अब तक देश में जो परिवर्तन हुये हैं—हम उन सब को स्वीकार करते हैं। हम जनता की इच्छा एवं समय की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए शासन करेंगे।[2]

संविधान की विशेषतायें

राजा—राजा वंशानुगत होगा। वह अपने किसी कार्य के लिये उत्तरदायी नहीं था। उसको किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचाई जा सकती। उच्च पदाधिकारियों की वही नियुक्ति करेगा। वही देश की स्थल सेना एवं नौ सेना का प्रधान होगा। वही सन्धि करेगा। उसके द्वारा ही पार्लियामेंट में बिल रक्खा जायगा वही बिल को पास (Sanction) करेगा। अध्यादेश जारी करने का भी उसी को अधिकार होगा। सामन्त बनाने का भी राजा को अधिकार था। इस प्रकार राजा

---

1. 'It will never do to be the king of two peoples.'
2. 'We have recognized that the wish of our subjects for a Constitutional Charter was the expression of a real need.'

कानून से ऊपर था। उस पर किसी प्रकार का अभियोग नहीं चलाया जा सकता था और न उसको किसी प्रकार का दण्ड दिया जा सकता था।

सामन्तों की सभा (Chamber of Peers)—इनकी संख्या अनिश्चित थी। राजा ही इनको मनोनीत करता था। ये दो प्रकार के होते थे—

(१) **वंशानुगत**—पिता के बाद पुत्र को यह अधिकार मिल जाता था।

(२) **व्यक्तिगत**—जीवन भर के लिये यह अधिकार होता था अर्थात् पिता की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र को यह अधिकार नहीं दिया जाता था।

सामन्त सभा के सम्मुख भी बिल आता था। देश का उच्चतम न्यायालय भी यही होता था।

जनता के प्रतिनिधियों की सभा (House of Deputies)—इसके सदस्यों का चुनाव होता था। १/५ सदस्य प्रति वर्ष चुने जाते थे। जो व्यक्ति १००० फ्रैंक प्रति वर्ष कर देता हो तथा जिसकी अवस्था कम से कम ४० वर्ष हो, वही इसका सदस्य हो सकता था। इस प्रकार समस्त जनसंख्या में से एक मात्र १२ हजार मनुष्य ही इस सदन के सदस्य हो सकते थे।

मताधिकार उन्हीं व्यक्तियों को प्राप्त था जो ३०० फ्रैंक वार्षिक कर देते हों तथा उनकी अवस्था कम से कम ३० वर्ष हो। २ करोड़ ६० लाख की जनता में एक मात्र एक लाख मनुष्यों को ही मताधिकार प्राप्त था। इस व्यवस्था से सिद्ध होता है कि राजनीतिक अधिकार एक मात्र समाज के धनिक वर्ग को ही प्राप्त थे।

सामन्त—नेपोलियन-काल में जो सामन्त बनाये गए थे उनको भी स्वीकार कर लिया गया। दोनों प्रकार के सामन्तों को समान अधिकार प्रदान किये गये।

धर्म—कैथौलिक धर्म को राज धर्म स्वीकार कर लिया गया। इसके साथ-साथ अन्य धर्मों को भी मान्यता प्रदान कर दी गई। सबको धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान कर दी गई।

मौलिक अधिकार—जनता को मौलिक अधिकार भी प्रदान किए गए। प्रेस को भी स्वतन्त्रता दे दी गई।

जूरी प्रथा को स्वीकार कर लिया गया। मुकदमें खुले तौर पर होने लगे।

क्रान्ति के समय जिन लोगों ने सामन्तों एवं चर्च की जमीन खरीद ली थी वह उनसे नहीं छीनी जा सकती थी।

कर लगाने का एकमात्र अधिकार संसद को था।

सबको यह अधिकार था कि वे अपनी योग्यता के अनुसार राज्य में नौकरी प्राप्त कर सकें।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इंग्लैंड को छोड़ते हुए ऐसा उदार संविधान किसी भी देश में न था। शातोब्रिआं ने इसके सम्बन्ध में लिखा है—'The Charter is

a treaty of peace between the two parties into which France has been divided, a treaty by which both parties yield some of their pretentions for the glory of their Country.'

इस समय फ्रांस की जनता मुख्यतः दो गुटों में बंटी हुई थी—

(१) **क्रान्ति के समर्थक**—ये स्वतन्त्रता तथा क्रान्ति में मेल कराना चाहते थे।[1] इनका कहना था कि हमें क्रान्ति की रक्षा करनी है तथा क्रान्ति को जारी रखना है, परन्तु क्रान्ति की भावना के साथ नहीं।[2] वे चाहते थे कि जिस राजवंश को सिंहासन पर बैठाया गया है, वह बना रहे तथा क्रान्ति भी चलती रहे। उनका उद्देश्य था कि क्रान्ति-काल में जो प्राप्त किया है, वह हाथ से न जाने पावे। वे केन्द्रीय सत्ता को दृढ़ करना चाहते थे। वे राज-सत्ता को वैधानिक रूप देना चाहते थे। वे चाहते थे कि शासन-संचालन प्रतिनिधियों द्वारा हो। इसको वे राजा एवं प्रजा के मध्य एक समझौता मानते थे।[3]

(२) **न्यायोचित राजता के समर्थक**—लुई १८ वें को राज्य दिलाने में तालीरां एवं फूशे ने प्रमुख भाग लिया था। तालीरां नेपोलियन का साथ छोड़कर मित्र राष्ट्रों के साथ मिल गया था। जनता तालीरां के इस विश्वासघात से अप्रसन्न थी। फूशे भी अधिक लोकप्रिय न था। उसने लुई सोलहवें को मृत्यु-दण्ड दिलाने के लिये मत दिया था। अतः ये दोनों व्यक्ति अपने चरित्र के लिये जनता में कुविख्यात हो गए थे।

फ्रांस की जनता की सहानुभूति लुई १८ वें के साथ न थी। इसका प्रमाण उस समय मिला जब उसके गद्दी पर बैठने के कुछ दिन बाद ही नेपोलियन एल्बा से भागकर फ्रांस की ओर आने लगा। उसके इस प्रकार आगमन को सुनकर लुई १८ वें ने सीनेट में कहा था कि हम नेपोलियन का सामना करेंगे, परन्तु अधिकांश सैनिक नेपोलियन के साथ हो गये। अतः जब वह पेरिस के समीप आ गया तो लुई १८ वें को गद्दी छोड़कर भाग जाना पड़ा। इस घटना से सिद्ध होता है कि फ्रांस इस सम्राट् के साथ न था।

बूर्बां वंश की प्रतिष्ठा कम होने का प्रधान कारण यह था कि वह विजेताओं की सहायता से फ्रांस में आया था। लोग व्यंग के साथ कहा करते थे कि बूर्बां वंश मित्र राष्ट्रों की सहायता से फ्रांस में आ गया है।[4]

---

1. 'Compromise between order and liberty.'
2. 'Wanted to defend the Revolution and continue it, without revolutionary spirit.'
3. 'It was a social pact between the king and his people, while for all the moderate elements in the country it constituated a confession of political faith.' Lipson—
4. 'The Bourbons had returned to France in the baggage train of the Allies'

प्रमुख दल—इस समय देश में निम्नलिखित प्रमुख दल थे –

(१) **कट्टर राजसत्तावादी दल** (Ultra-royalists)—इस दल के अन्तर्गत कुलीन पादरी तथा सामन्त थे। लुई १८ वें के गद्दी पर बैठने के बाद ये फ्रांस वापस आ गये। इनके साथ कट्टर कैथौलिक भी वापस आ गये। क्रान्ति-काल में इनको अत्यधिक हानि उठानी पड़ी थी। अब ये उस हानि की क्षति-पूर्ति चाहते थे। गत २५ वर्षों में क्रान्ति ने फ्रांस को जितना आगे बढ़ाया था यह लोग उसको उतना ही घसीट कर पीछे ले जाना चाहते थे। ये मेटर्निख की प्रतिक्रियावादी नीति के समर्थक थे। इनका नेता लुई १८ वें का भाई आर्त्वा का काउन्ट (Count de Artois) था। इसने निम्नलिखित मांगें प्रस्तुत कीं—

(१) सन् १८१४ के संविधान को नष्ट कर दिया जाय। इसके मतानुसार संविधान देने का अर्थ था क्रान्ति को निमन्त्रण देना।

(२) क्रान्ति-काल में सामन्तों की जो सम्पत्ति छीन ली गई है, वह वापस दिला दी जाय।

(३) फ्रांस का राज-धर्म कैथोलिक चर्च हो। क्रान्ति-काल में चर्च की जो सम्पत्ति जब्त कर ली गई है, वह उसे वापस दे दी जाय। उसे जनता पर कर लगाने का अधिकार हो। शिक्षा देने का अधिकार भी चर्च को ही दिया जाय।

(२) **उदार राजसत्तावादी दल** (Moderate Royalists)—इस दल के सदस्य भी राजसत्ता के समर्थक थे, परन्तु ये कट्टर राजसत्तावादियों की भांति उग्र पंथी न थे। उसमें कुलीन, पादरी तथा सामन्त सम्मिलित थे। ये क्रान्ति की भावनाओं को नष्ट करना नहीं चाहते थे। ये इंग्लैंड की भांति फ्रांस में भी संवैधानिक शासन की स्थापना करना चाहते थे। अधिकाँश व्यक्ति उसी दल के समर्थक थे। स्वयं लुई १८वां भी इसी दल के प्रभाव में था। इसी प्रभाव के अन्तर्गत उसने जनता को वैधानिक चार्टर प्रदान किया था।

(३) **उदार** (Liberals)—ये लोग भी राजसत्ता को बनाये रखने के समर्थक थे। परन्तु ये १८१४ के चार्टर को अपर्याप्त समझते थे। ये १००० फ्रैंक कर की पाबन्दी को सदस्यता के लिए बहुत बड़ी बाधा समझते थे। कालान्तर में इनके प्रयत्नों के बावजूद यह सीमा ५०० फ्रैंक की ही रह गई। ये लोग पार्लियामेंट को शक्ति प्रदान करने के पक्ष में थे।

(४) **बोनापार्टिस्ट दल** (Bonapartists)—इस दल के अन्तर्गत नेपोलियन महान् के सम्बन्धी एवं अफसर थे। ये पुनः नेपोलियन महान् को फ्रांस के सिंहासन पर बैठाना चाहते थे। उसकी मृत्यु होने पर ये उसके पुत्र 'रोम के बादशाह' को नेपोलियन द्वितीय के नाम से सिंहासन पर बैठाना चाहते थे। इनकी दृष्टि में बूर्बों वंश का शासन नितान्त निर्बल तथा फ्रांस के लिये अपमानजनक था। नेपोलियन का वंश ही एक मात्र फ्रांस को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कीर्ति प्रदान कर सकता था।

(५) **गणतन्त्रवादी दल** (Republicans)—ये लोग राजतन्त्र के विरोधी थे। ये फ्रांस में प्रजातन्त्र-राज्य की स्थापना करना चाहते थे।

इस प्रकार उदार सत्तावादी दल को छोड़कर शेष दल लुई १८वें के विरोधी थे।

श्वेत आतंक (White Terror)—कट्टर राजतन्त्रवादियों (Ultra Royalists) ने स्थान-स्थान पर विद्रोह कराने आरम्भ कर दिये। इन घटनाओं ने श्वेत आतंक (White Terror) को जन्म दिया। इस दल ने मार्साई, एविग्नोन तथा टूलाँ में विद्रोह करा दिये। लुई १८वां अकेला इनका दमन न कर सका। उसने आस्ट्रिया की सहायता लेकर इनका दमन किया। लुई १८वें ने पुरानी संसद को भंग कर दिया तथा नये चुनाव की घोषणा की। नए चुनाव ७ अक्टूबर १८१५ को सम्पन्न हुये। इसमें कट्टर राजसत्तावादियों को ही बहुमत प्राप्त हुआ। रिशलू नया मन्त्री नियुक्त किया गया। यह प्रवासी था। यह क्रान्ति के समय फ्राँस छोड़कर बाहर चला गया था। परन्तु यह उग्रवादी नहीं था। शासन-सत्ता हाथ में आने पर उसने उदारता से कार्य करना आरम्भ किया। लुई १८वां, उसका मन्त्री रिशलू तथा हाउस ऑफ पियर्स एक तरफ मिल गए। ये उदारवादी थे। काउण्ट ऑफ आर्त्वा तथा हाउस ऑफ डिपुटीज एक तरफ मिल गए। ये उग्रवादी थे। इन्होंने विभिन्न व्यक्तियों पर मुकदमे चलाये। मार्शल ने (Marshal Ney) पर जो मुकदमा चलाया गया वह उल्लेखनीय है। यह कभी नेपोलियन का सेनापति एवं प्रमुख समर्थक रहा था। इस समय इसको गोली मार दी गई। इसे बहादुरों में सबसे अधिक बहादुर (Bravest of the brave) कहा गया है। इसके अतिरिक्त सात हजार बोनापार्टिस्ट पर मुकदमा चलाया गया तथा अनेकों को जेलों में डाल दिया गया। बहुसंख्यक बोनापार्टिस्ट डर कर देश छोड़कर भाग गये।

चर्च की अधिकांश सम्पत्ति जो जब्त करली गई थी, वापस दिला दी गई। चर्च को कर लगाने का अधिकार भी दिला दिया गया। उसे विवाह सम्पन्न कराने का अधिकार भी दे दिया गया।

नई पार्लियामेंट-रिशलू—कट्टर राजतन्त्रवादियों के इन कार्यों से लुई १८वाँ घबरा गया। उसने प्रथम सितम्बर १८१६ को पार्लियामेंट को भग करा दिया। नये चुनाव में उदार दल का बहुमत हो गया। रिशलू को पुनः मन्त्री बनाया गया। उसके सम्मुख सबसे बड़ी समस्या देश की आर्थिक अवस्था को ठीक कर हर्जाने की राशि की पूर्ति करना था। रिशलू ने बचत करके मित्र राष्ट्रों की क्षति-पूर्ति कर दी तथा मित्रराष्ट्रों ने फ्रांस से अपनी सेनायें हटालीं। रिशलू का यह बहुत बड़ा कार्य था। तत्पश्चात् उसने यह मांग की कि फ्रांस को भी चतुर्मुख संघ में स्थान दिया जाय। मित्र राष्ट्रों ने उसकी यह माँग स्वीकार कर ली और फ्रांस को भी चतुर्मुख संघ में स्थान दे दिया। इससे फ्रांस के गौरव में बहुत वृद्धि हुई। १८१८ में जब

२½ लाख विदेशी सेनायें फ्रांस छोड़कर चली गई तो लुई १८वें को बहुत सन्तोष हुआ। उस समय उसने कहा था कि अब मैं शान्ति पूर्वक मर सकता हूँ।[1]

देकाजें—१८१८ में पार्लियामेंट में बूर्बां वंश के विरोधियों की संख्या कुछ अधिक हो गई। इसमें लाफायत नामक एक व्यक्ति का नाम उल्लेखनीय है। इसके विरोध के कारण रिशलू को त्याग-पत्र देना पड़ा। देकाजे नामक व्यक्ति फ्रांस का नया मन्त्री बनाया गया। उसने अपनी नीति निम्न शब्दों में व्यक्त की—"हमें राजतन्त्र को लोकप्रिय बनाना तथा राजा को सब वर्गों का राजा बनाना है।"[2] दूसरे शब्दों में देकाजे उदार था। उसने प्रेस पर लगी पाबन्दियों को ढीला कर दिया। परन्तु कट्टर राजसत्तावादियों (Ultra Royalists) का अब भी जोर था। वे चुनाव की पद्धति को बदल देना चाहते थे। चुनाव आर्थिक योग्यता के आधार पर होते थे। आर्त्वा यह चाहता था कि आर्थिक योग्यता और बढ़ा दी जाय। परन्तु देकाजे ने इसका विरोध किया तथा पियर्स की संख्या बढ़ाकर अपनी नीति में सफलता प्राप्त की। प्रेस को स्वतन्त्रता देने के कारण अनेक पत्र-पत्रिकाओं का उदय हुआ। इनमें कूरिए (Courier) और मिनर्वा (Minerva) के नाम उल्लेखनीय हैं। इससे ऐसा दिखाई देने लगा था कि देश में सुशासन स्थापित हो जायगा। परन्तु इसी बीच काउण्ट आर्त्वा के पुत्र बेरी के ड्यूक (Duck de Berri) की हत्या कर दी गई। यह हत्या लाविल (Lovil) नामक एक पागल व्यक्ति ने की। बेरी आर्त्वा के पश्चात् राज्य का उत्तराधिकारी समझा जाता था।[3] कट्टर राजसत्तावादियों ने इसका लाभ उठाया। उसके एक प्रतिनिधि ने उदार नीति का विरोध करते हुए कहा—'I have seen the dagger that has pierced Duke of Berry; that was the liberal idea.'

देकाजे का विरोध बहुत बढ़ गया। यह मांग की गई कि 'Either Decazes must retire before the reigning dynasty or the race of our kings must retreat before him.

रिशलू की पुनर्नियुक्ति—फलतः लुई १८वें ने देकाजे को पदच्युत कर दिया और रिशलू को पुनः मन्त्री बनाया; परन्तु रिशलू ने अपनी उदार नीति का परित्याग नहीं किया। इस प्रकार पुरानी ही नीति चलती रही। रिशलू ने निम्नलिखित कार्य किये—

(१) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया।

(२) प्रेस पर नियन्त्रण लगाने की जो मांग हो रही थी, उसको भी स्वीकार न किया गया।

---

1. 'Now I can die in peace.'
2. 'To royalise France and to nationalise the monarchy.'
३. 'राजकुमार बेरी की हत्या के समय उसकी स्त्री गर्भवती थी। इस घटना के कुछ महीने पश्चात् उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो पंचम हेनरी के नाम से प्रख्यात हुआ।

परन्तु कालान्तर में विवश होकर रिशलू को प्रेस पर नियन्त्रण लगाना पड़ा तथा निर्वाचन के लिये आर्थिक योग्यता बढ़ानी पड़ी। परन्तु फिर भी प्रतिक्रियावादी बराबर रिशलू का विरोध करते रहे। अन्त में रिशलू ने त्याग-पत्र दे दिया तथा विलेल को प्रधान मन्त्री बनाया गया।

विलेल (१८२१-२७)—इसके काल में शक्ति लुई १८वें के हाथ से निकल कर कट्टर राजसत्तावादियों (Ultra Royalists) के हाथ में आ गई। इनका नेता काउण्ट आर्त्वा था। विलेल प्रतिक्रियावादी था। वह राज-भक्तों का नेता था। उसके काम करने के साधन बहुत गूढ़ एवं जटिल थे। वह अपनी लम्बी योजनाओं द्वारा फ्रांस को भयभीत करना नहीं चाहता था। वह धीरे-धीरे अपनी योजनाओं को क्रियान्वित करना चाहता था। उसके निम्नलिखित कार्य उसकी प्रतिक्रियावादी नीति का परिचय देते हैं—

१. १८२२ में प्रेस पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिये गए। इस सम्बन्ध में जो मुकदमें होते थे, उनके सम्बन्ध में जूरी बैठाना बन्द कर दिया गया। इस प्रकार लोक-मत का गला घोट दिया गया।

२. क्रान्तिकारी विचारों से सम्बन्धित लेखों का प्रकाशन बन्द करवा दिया गया। जो पुस्तक पादरियों अथवा सामन्तों के विरोध में होती थी, उसको जब्त कर लिया जाता था।

३. शिक्षा देने का कार्य चर्च को सौंप दिया गया।

४. बाहर से आने वाले माल पर भारी चुँगी लगा दी गई। इससे जमींदार तथा पूंजीपतियों को काफी लाभ हुआ।

५. फ्रांस के कुंठित हथियारों को फिर से तीक्ष्ण किया गया। इसी बीच स्पेन में विद्रोह हो गया। फ्रांस ने उसमें हस्तक्षेप किया। स्वतन्त्रता चाहने वाली शक्तियों का दमन कर दिया गया तथा वहां फर्डिनेण्ड का एकतन्त्रवादी शासन स्थापित कर दिया गया।

चार्ल्स दशम (१८२४—३०)

१८२४ में लुई १८वां मर गया तथा उसके स्थान पर काउण्ट आर्त्वा चार्ल्स दशम (Charles X) के नाम से गद्दी पर बैठा। यह घोर प्रतिक्रियावादी था। क्रान्ति के समय इसने लुई १६वें की रानी मेरी अन्तायनेत से मिलकर क्रान्ति के दमन करने का भरसक प्रयत्न किया; परन्तु इस कार्य में इसको सफलता नहीं मिली। अतः अन्य सामन्तों की भांति यह भी फ्रांस छोड़ कर विदेश भाग गया। विदेशों में रहता हुआ भी यह नेपोलियन का विरोध करता रहा। लुई १८वें के गद्दी पर बैठने पर यह पुनः फ्रांस में आ गया। इसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि यह प्रवासी फ्रांसियों का नेता तथा पादरियों के हाथ का खिलौना था।[1] इसका उद्देश्य राज्य एवं

1. 'Comrade of the emigres and the tool of the Jesuits.'

चर्च को एक स्थान पर मिला देना था। पहले चर्च के ऊपर राज्य का नियन्त्रण था। परन्तु इसने इसका विरोध किया। यह चर्च एवं राज्य को एक कर देना चाहता था।

१—कैथोलिकों ने कांग्रेशियन नामक एक संस्था की स्थापना की। इसका उद्देश्य चर्च की शक्ति का विकास करना था।

२—फ्रांस के विश्वविद्यालय का सर्वाध्यक्ष एक पादरी को बनाया गया। कैथोलिक धर्म-विरोधी अध्यापकों का बहिष्कार किया जाने लगा। इसी आधार पर गीजो, पूसेन तथा शातोब्रियां को हटा दिया गया।

३—क्रान्ति-काल में चर्च से शिक्षा का अधिकार छीन लिया गया था। परन्तु अब पुनः चर्च को शिक्षा देने का अधिकार दे दिया गया।

४—उत्तराधिकारी राजकुमार ड्यूक बोर्दों (बेरी का पुत्र) की शिक्षा के लिए थेरे नामक एक कट्टर कैथोलिक को नियुक्त किया गया, जिससे कि यह राजकुमार पक्का कैथोलिक हो जाय।

५—प्रेस की स्वतन्त्रता समाप्त कर दी गई। पत्रिकाओं पर कठोर सेन्सर लगा दिया गया। चर्च की आलोचना करने वाले को सात वर्ष के कारावास के दण्ड की व्यवस्था की गई। जनता ने इस कानून का खूब विरोध किया। शातोब्रियां ने भी इसका विरोध किया। इस घोर विरोध के बावजूद यह कानून वापस ले लिया गया।

६—प्रवासियों की छीनी सम्पति की आंशिक क्षति-पूर्ति करदी गई। इस आंशिक क्षति-पूर्ति में सरकारी खजाने से लगभग एक अरब फ्रैंक खर्च हुए।

७—फ्रांस में सर्वप्रथम भिक्षुणियों के लिए मठों की स्थापना की गई।

८—पिता की सम्पत्ति का बंटवारा सारे भाइयों में नहीं होगा, अपितु सारी सम्पत्ति एक मात्र उसके बड़े पुत्र को दे दी जायगी।

९—चर्च की सम्पत्ति की चोरी के लिये मृत्यु-दण्ड की व्यवस्था की गई, चाहे चोरी कितनी ही छोटी वस्तु की क्यों न हो। जो व्यक्ति चर्च के पवित्र स्थानों को हानि पहुँचाने की चेष्टा करता था, उसको मृत्यु-दण्ड दिया जाता था। तत्पश्चात् उसका एक हाथ काट दिया जाता था।

१०—राष्ट्रप्रतिनिधि संस्था (Chamber of Deputies) की कार्यावधि ५ वर्ष के स्थान पर ७ वर्ष कर दी गई।

११—प्रेस के नियन्त्रण के विरोध में प्रदर्शन हुए। इस प्रदर्शन में नेशनल-गार्ड्स ने भी भाग लिया। अतः नेशनल गार्ड्स को भी भंग कर दिया गया।

१२—अन्त में विरोध के बढ़ने पर उसने चैम्बर को भी भंग कर दिया। परन्तु नये चैम्बर में विरोधियों की संख्या पहले से भी अधिक बढ़ गई। फलतः विवश होकर १८२७ में विलेल को त्याग-पत्र देना पड़ा।

इस प्रकार अनेक दमनकारी कानून बनाकर उसने जनता के समस्त अधिकारों को छीन लिया। क्रान्ति-काल की सब विचार-धाराओं को नष्ट करने का प्रयास किया गया। राज्य में पादरियों का प्रभाव बहुत बढ़ गया। चार्ल्स दशम ने पोप की जयन्ती मनाई। वह स्वयं पादरी के कपड़े पहन कर पेरिस की सड़कों पर जुलूस के साथ घूमा। वेलिंगटन के ड्यूक ने उसके शासन के विषय में लिखा—चार्ल्स दशम जेम्स द्वितीय का उदाहरण अपने सामने रखकर पादरियों का शासन स्थापित कर रहा है। यह शासन पादरियों के द्वारा होगा तथा पादरियों के लिये ही होगा।[1]

मार्तिग्नैक (१८२८–२९)—मार्तिग्नैक नया मन्त्री बनाया गया। इसको अपना मन्त्री बनाते समय चार्ल्स ने उससे कहा था कि विलेल मेरा प्रधान मन्त्री था और उसकी नीति मेरी नीति थी। मेरी इच्छा है कि तुम भी इसी नीति पर चलोगे। मार्तिग्नैक मध्यम मार्गी था। इसलिये न यह चैम्बर को प्रसन्न कर सका और न राजा को ही प्रसन्न कर सका।[2]

इसने चार्ल्स दशम की इच्छा के विरुद्ध कुछ उदार नियमों का प्रतिपादन किया—

१. प्रेस के नियन्त्रणों को कुछ शिथिल कर दिया गया।

२. जो प्राध्यापक पेरिस के विश्व-विद्यालय से निकाल दिये गये थे उनको पुनः बुला लिया गया।

३. चर्च से शिक्षा का अधिकार छीन लिया गया।

इन सुधारों के बावजूद दोनों पक्ष ही मार्तिग्नैक से अप्रसन्न हो गए। एक पक्ष इसको बहुत पिछड़ा हुआ तथा दूसरा बहुत आगे बढ़ा हुआ कहता था। फलतः इसको त्याग-पत्र देना पड़ा।

मार्तिग्नैक के त्याग-पत्र से चार्ल्स दशम बहुत प्रसन्न हुआ। अब उसने पूरी तरह निरंकुशता की नीति का आश्रय लेना निश्चित किया। उसने कहा था कि ब्रिटेन के सम्राट् की भांति शासन करने की अपेक्षा मैं जंगल में जाकर लकड़ी काटना पसंद करूंगा।[3] अब जनता को कोई रियायत नहीं दी जायेगी, क्योंकि रियायत देने के कारण ही मेरे भाई को सिर कटाना पड़ा था।"[4] उसने मार्तिग्नैक से भी कहा था कि अब इन लोगों के साथ कोई समझौता नहीं हो सकता। अतः हमको अब सुधार रोक देने चाहियें। नर्म नीति के दिन अब गुजर गये हैं।[5]

---

1. 'With the warning of James II before him, Charles X is setting up a government by priests, through priests and for priests.'

2. 'Too liberal for the king and too conservative for the chamber.'

3. 'I will saw wood rather be a king of the English type.'

4. 'Concessions have cost my brother his head.'

5. 'There is no way of dealing with these people, it is time to call a halt.'

पालिग्नैक—अतः उसने अत्यन्त प्रतिक्रियावादी व्यक्ति पोलिग्नैक को अपना मन्त्री बनाया। फ्राँसीसी क्रान्ति के समय यह प्रवासी सामन्तों का नेता था। इसने योरप के राज्यों को फ्रांस पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित किया था। नेपोलियन महान् की हत्या करने का भी इसने प्रयत्न किया, परन्तु इसमें यह असफल रहा और पकड़ा गया तथा इसको मृत्यु-दण्ड दिया गया, परन्तु यह किसी प्रकार भाग निकला और बच गया। १८१४ के चार्टर का यह विरोधी था। इसकी नियुक्ति का अपने समय के घोर प्रतिक्रियावादी मेटरनिख एवं निकोलस प्रथम ने भी विरोध किया था, परन्तु चार्ल्स दशम ने किसी भी बात के ऊपर कोई ध्यान नहीं दिया। इसने अपने अन्य मन्त्री भी प्रतिक्रियावादी चुने। वर्मा को इसने अपना युद्ध-मन्त्री चुना। वर्मा ने वाटरलू के युद्ध में नेपोलियन को धोखा दिया था। इससे सर्वत्र असंतोष फैल गया। चार्ल्स दशम तथा पोलिग्नैक के विरुद्ध प्रचार होने लगा। लफायत इसका नेता था। इन्होंने जनता को कर देने से रोका। देश में सर्वत्र गुप्त संस्थाओं का जाल बिछ गया।

मार्च, १८३० में नए चैम्बर के सम्मुख भाषण देते हुए चार्ल्स दशम ने कहा—'क्राउन के अधिकार पवित्र हैं, तथा इनकी रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है।' थिए ने नेशनल नामक पत्र में राजा की इस नीति के विरोध में एक लेख लिखा।

१८ मार्च, १८३० को पोलिग्नैक के विरोध में चेम्बर में अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दिया गया। इस पर राजा ने चैम्बर को भंग कर दिया। जून-जुलाई में नए निर्वाचन हुए। नई पार्लियामेंट में विरोधियों की संख्या पहले से भी अधिक हो गई।

२५ जुलाई, १८२० को चार्ल्स ने जनता को धमकाते हुए कहा—हमारे देश में एक नए प्रकार के जनतन्त्र का उदय हो रहा है। यह सब व्यवस्था को भंग कर देना चाहता है। राजा के दैवी अधिकारों का दमन करना चाहता है। अतः हमारा कर्तव्य है कि हम इस प्रकार के जनतन्त्र को नष्ट कर दें। अतः २६ जुलाई को उसने चार अध्यादेश जारी किये—

(१) प्रेस की स्वतन्त्रता समाप्त कर दी गई। बिना आज्ञा लिए कोई पत्रिका प्रकाशित नहीं की जा सकती थी। यह आज्ञा केवल तीन महीने के लिए ही दी जाती थी तथा यह कभी भी मध्य में भी वापस ली जा सकती थी।

(२) जनता की प्रतिनिधि-सभा (Chamber of Deputies) को समय से पूर्व ही भंग कर दिया गया।

(३) मताधिकार के लिए सम्पत्ति की योग्यता पहले से अधिक बढ़ा दी गई। फलतः एक लाख मतदाताओं के स्थान पर एकमात्र २५ हजार मतदाता ही रह गये। प्रतिनिधि-सभा के सदस्यों की संख्या घटाकर २२८ कर दी गई।

(४) सभा की कार्यावधि ७ वर्ष से घटा कर ५ वर्ष कर दी।

इन अध्यादेशों से लुई १८वें के द्वारा दिया हुआ चार्टर समाप्त हो गया।

थिए और मिगने नामक नेताओं ने पत्रकारों को इकट्ठा करके समस्त देश से

अपील की कि हमें जनता एवं फ्रांस की क्रान्ति के सिद्धान्तों की रक्षा के लिए एक क्रान्ति करनी है। बस फिर क्या था ? चारों ओर क्रान्ति की तैयारियाँ होने लगीं। सड़कों पर ईंट-पत्थर एवं पेड़ डाल दिये गए जिससे कि राजा की सेना न गुजर सके। राजा ने पेरिस की जनता के दमन के लिए मार्शल मार्मा को नियुक्त किया। यह समाचार सुनकर जनता ने क्रान्ति कर दी। जनता ने यह घोषित किया कि हम चार्ल्स को अपना राजा नहीं मानते। यद्यपि इस क्रान्ति का प्रारम्भ पत्रकारों ने किया था, परन्तु धीरे-धीरे इसमें विद्यार्थी, मजदूर एवं बहुत से सैनिकों ने भी भाग लिया। २७ जुलाई से २९ जुलाई तक जनता एवं राजा की सेना में भयंकर युद्ध होता रहा, परन्तु इस क्रान्ति का दमन न हो सका। इसके निम्नलिखित कारण थे—

(१) नगर की सड़कों पर जनता ने ईंट, पत्थर एवं पेड़ डाल दिए थे। इससे सैनिकों के जाने के लिए मार्ग बन्द हो गया।

(२) पेरिस की गलियाँ बहुत तंग थीं। उनमें शाही तोपखाना नहीं जा सकता था। सैनिक गलियों से परिचित न थे तथा गलियों के युद्ध से भी वे अनभिज्ञ थे।

(३) पेरिस में राजा के पास एकमात्र १४ हजार सैनिक थे जबकि विद्रोहियों की संख्या १० हजार से कम न थी।

(४) बहुत से सैनिकों ने जनता पर गोली चलाने से इंकार कर दिया।

फलतः राजा निराश हो गया और ३० जुलाई को उसने घोषणा की कि मैं २६ जुलाई के चारों कानूनों को वापस लेने के लिए तैयार हूँ। परन्तु अब स्थिति बहुत भयंकर हो गई थी। उत्तेजित भीड़ ने राजमहल को घेर लिया था। फलतः चार्ल्स अपने १० वर्ष के पौत्र शोम्बां के काउन्ट के पक्ष में सिंहासन त्याग कर इंगलैंड भाग गया। तत्पश्चात् वह आस्ट्रिया चला गया। वहीं १८३६ में उसकी मृत्यु हो गई। लफायत ने होटेल द विले (Hotel de ville) में एक अस्थायी सरकार की स्थापना कर दी। अन्त में औरलियां वंश के प्रतिनिधि लुई फिलिप को फ्राँस का सम्राट् बनाया गया। इस प्रकार १८३० की क्रांति के फलस्वरूप फ्रांस से एक राजवंश का तो अन्त हो गया, परन्तु उसके स्थान पर उसी वंश की एक दूसरी शाखा (औरलियाँ शाखा) का राज्य स्थापित हो गया। इस प्रकार एक राजतन्त्र का तो अन्त हो गया, परन्तु एकतंत्रवादी सत्ता का अन्त नहीं हुआ। इस प्रकार की व्यवस्था भी तत्कालीन राजनीतिज्ञों ने बहुत सोच-विचार कर की थी। यदि इस समय फ्राँस में गणतन्त्र स्थापित हो जाता तो इसका अर्थ समस्त योरप को चुनौती देना था। योरप के देश १७८९ की क्राँति को नहीं भूले थे। वे फ्राँस के प्रत्येक परिवर्तन को ध्यानपूर्वक देखते रहते थे। यदि फ्रांस में गणतन्त्र स्थापित कर दिया जाता तो योरप के देश तुरन्त फ्रांस के विरुद्ध कार्यवाही करते। इसीलिए उन्होंने फ्राँस में गणतन्त्र स्थापित न कर लुई फिलिप को राजा बना दिया। इससे इतना तो निश्चित हो गया कि जनता निरंकुश राजा को हटाकर उसके स्थान पर अपनी इच्छानुसार किसी भी व्यक्ति को अपना राजा बना सकती है।

१८३० की क्राँति इतिहास में जुलाई क्रांति (July Revolution) के नाम से प्रख्यात है। यह क्रांति चार्ल्स की प्रतिक्रिया एवं निरंकुशता के कारण हुई थी। अतः कुछ विद्वान् इस क्रांति को राजा द्वारा की गई क्रांति अर्थात् कू-दे-ता (Coup-De-tat) कहते हैं। यह क्रांति २७ जुलाई को आरम्भ हुई थी। तीन दिन तक बराबर युद्ध चलता रहा। इसलिये इस जुलाई क्रांति को कभी-कभी तीन दिन का गौरवशाली युद्ध भी कहा जाता है। यह युद्ध केवल पेरिस तक सीमित रहा। वस्तुतः यह एक पेरिस की संकीर्ण सड़कों की लड़ाई थी। इसमें एकमात्र १० हजार विद्रोहियों ने भाग लिया था। किसी विशेष तैयारी के बिना ही यह क्राँति सम्पन्न हुई थी।

१८३० की क्रान्ति के कारणों का सारांश—१८३० की फ्राँसीसी राज्य-क्रांति का प्रधान कारण चार्ल्स दशम की प्रतिक्रियावादी नीति थी। चार्ल्स दशम के सम्बन्ध में उसकी नीति तथा १८३० की क्रान्ति के कारणों का विस्तारपूर्वक वर्णन कर चुके हैं। पाठकों की सुविधा के लिए यहाँ भी क्रांति के कारणों का साराँश देना उपयुक्त होगा।

(१) चार्ल्स दशम एक प्रतिक्रियावादी सम्राट् था। वह राजा के दैवी अधिकार के सिद्धान्त का समर्थक था। क्रान्ति के सिद्धान्तों तथा जनता के अधिकारों का वह विरोधी था। अतः उसने लेख लिखने तथा भाषण देने पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

(२) वह चर्च तथा राज्य को एक जगह मिलाना चाहता था। वह चर्च की शक्ति में पुनः वृद्धि करना चाहता था। क्रान्ति-काल में चर्च से शिक्षा देने का अधिकार छीन लिया गया था; परन्तु उसको फिर यह अधिकार दे दिया गया। फ्राँस के विश्व-विद्यालय का अध्यक्ष एक पादरी नियुक्त किया गया। कैथोलिक धर्म-विरोधी अध्यापकों को हटा दिया गया। चर्च की सम्पत्ति की चोरी के लिये मृत्यु-दण्ड की व्यवस्था की गई। भिक्षुणियों के लिए भी मठों की स्थापना की गई। अपने उत्तराधिकारी ड्यूक आफ बोर्दो की शिक्षा के लिए थेरे नामक एक कट्टर कैथोलिक को नियुक्त किया गया, जिससे कि वह राजकुमार भी कट्टर कैथोलिक हो जाय। इसी से इतिहासकारों ने उसके शासन को पुजारियों की सरकार कहा है।

(३) वह प्रारम्भ से ही क्रान्ति का विरोधी था। प्रारम्भ में उसने मेरी अन्टायनेट के साथ मिलकर क्रान्ति के दमन करने का प्रयास किया था। इस कार्य में असफल होने पर वह विदेश में भाग गया। वहाँ भी वह क्रान्ति के विरोध में प्रचार करता रहा। लुई १८वें के समय वह कट्टर राजतन्त्रवादियों का नेता हो गया। फ्रांस का राजा बनने पर उसने फ्राँसीसी क्रान्ति के सिद्धान्तों तथा मान्यताओं को उखाड़ फेंकने में बहुत उत्साह दिखलाया। इस कार्य में वह अपने समय के प्रमुख प्रतिक्रियावादी मेटरनिख से भी आगे था।

(४) फ्रांस से भागने पर वह विदेशों में प्रवासी फ्रांसीसियों का नेता हो गया था। सम्राट् होने पर भी प्रवासी फ्राँसीसियों की क्षति-पूर्ति करने के लिए उसने बहुत

सा धन व्यय किया था । इससे राष्ट्र को बहुत अधिक हानि हुई थी । इसकी पूर्ति के लिये उसने राष्ट्रीय ऋण की ब्याज की दर ५ से घटाकर ४ प्रतिशत कर दी थी। इससे पूंजीपति वर्ग भी चार्ल्स दशम का विरोधी हो गया था ।

(५) चार्ल्स दशम की इस प्रतिक्रिया से उदारवादियों का प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया । १८२७ के आम चुनावों में प्रतिक्रियावादियों ने मतदाताओं पर अनेक प्रकार से प्रभाव डाला; परन्तु फिर भी राजसत्तावादियों को १२५ स्थान तथा उदारवादियों को ४२८ स्थान प्राप्त हुए । इससे चार्ल्स दशम घबरा गया । उसने चैम्बर को भंग करा दिया । पुनः चुनाव हुआ; परन्तु इस बार भी उदारवादियों को बहुमत प्राप्त हुआ ।

(६) सन् १८३० की फ्राँसीसी क्रान्ति का तात्कालिक कारण चार्ल्स दशम के सेन्ट क्लाउड के अध्यादेश (Ordinances of St. Cloud) थे । इसके अनुसार चार्ल्स ने जुलाई १८३० में चार अध्यादेश जारी किए—

(१) प्रतिनिधि सभा को उसकी अवधि के पूर्व ही भंग कर दिया गया ।
(२) मताधिकार सीमित कर दिया गया ।
(३) प्रेस की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया ।
(४) सभा की कार्यविधि ७ से ५ वर्ष कर दी गई ।

इन अध्यादेशों से लुई अठारहवें द्वारा प्रदत्त चार्टर समाप्त हो गया । पत्रकारों ने जनता में और अधिक असंतोष उत्पन्न किया । चारों ओर चार्ल्स दशम का विरोध होने लगा । विद्यार्थी, अवकाश-प्राप्त सैनिक तथा मजदूर आदि सब क्रान्ति के लिये तैयार हो गये । स्थान-स्थान पर राजा की सेना से मोर्चा लेने के लिये संगठन किया गया । चारों ओर क्रान्ति के नारे लगाये जाने लगे और अन्त में २७ जुलाई को क्रान्ति प्रारम्भ हो गई । इस क्रान्ति का नेतृत्व वयोवृद्ध नेता लाफायत ने किया । जनता ने राजमहल को लूट लिया । चार्ल्स दशम ने अपने उक्त चारों अध्यादेशों को वापस लेने की बात कही; परन्तु अब जनता इसके लिये तैयार न थी । फलतः चार्ल्स दशम अपने १० वर्ष के पौत्र के पक्ष में सिंहासन परित्याग कर फ्रांस छोड़ कर भाग गया ।

१८३० की क्रान्ति का प्रभाव

१८३० की क्रान्ति इतिहास में जुलाई क्रान्ति के नाम से भी प्रख्यात है । इस क्रान्ति में रक्तपात बहुत कम हुआ था । मेटरनिख अपने देश के विद्रोहों के दमन में लगा होने के कारण इसमें अधिक हस्तक्षेप नहीं कर सका था । फिर भी इस क्रान्ति का प्रभाव समस्त यूरोप में फैल गया । किसी न किसी रूप में यूरोप के सभी देश इससे प्रभावित हुए । संक्षेप में इसके प्रभाव का निम्न प्रकार वर्णन किया जा सकता है—

फ्रांस—विएना कांग्रेस के न्यायोचित राजता के सिद्धान्त के आधार पर बूर्बा वंश को पुनः सिंहासन दे दिया गया था । इसलिए लुई सोलहवें का भाई लुई

अठारहवाँ गद्दी पर बैठा। इसके बाद चार्ल्स दशम गद्दी पर बैठा। परन्तु ये दोनों राजा ही निरंकुश तथा प्रतिक्रियावादी थे। किसी ने इनके विषय में ठीक लिखा है– 'बूर्वा वंश के सम्राट् अपने निर्वासन-काल में न कुछ सीखे थे और न कुछ भूले ही थे।' इस क्रान्ति के फलस्वरूप चार्ल्स दशम को सिंहासन का परित्याग कर फ्राँस छोड़कर भागना पड़ा क्राँतिकारियों ने उसके उत्तराधिकारी ड्यूक आफ बोर्दो को भी सिंहासन से वंचित कर दिया। इस प्रकार फ्राँस से बूर्वा वंश के शासक का अन्त हो गया। क्राँतिकारियों ने ऑर्लियां वंश के राजकुमार फिलिप को राजा बनाया। इस क्रान्ति से राजसत्ता का तो अन्त नहीं हुआ; परन्तु राजवंश का परिवर्तन अवश्य हो गया। परन्तु इससे न्यायोचित्त राजता (Legitimacy) के सिद्धान्त का महत्व जाता रहा। इस क्रान्ति से इस बात की पुष्टि हो गई कि जनता भी आवश्यकतानुसार राजा बन सकती है। लुई फिलिप ने सम्राट् बनने पर स्वयं स्वीकार किया था—'हम भगवान् की कृपा तथा जनता की इच्छा से राजा हुये हैं।' १८३० की क्राँति के पश्चात् फ्रांस में वैध राजसत्ता की स्थापना हुई तथा निरंकुश राजतन्त्र को भारी धक्का लगा।

इटली—इटली में इस समय राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहा था। अतः इस क्रान्ति से इटली के देश-भक्तों को बहुत प्रोत्साहन मिला। उसको यह आशा थी कि उनके राष्ट्रीय आन्दोलन में फ्राँसीसी क्रान्तिकारी भी सहयोग देंगे। फलतः इटली की अनेक रियासतों में विद्रोह प्रारम्भ हो गये। मोडेना में क्रान्तिकारियों ने अपने राजा को भगा दिया। पारमा रियासत से वहाँ की रानी मेरिया लुईसा क्रान्तिकारियों से पराजित होकर भाग गई। पोप के राज्य में भी असंतोष की भयंकर ज्वाला प्रज्ज्वलित हो गई। इस प्रकार समस्त देश में क्रान्ति की लहर दौड़ गई। सर्वत्र क्रान्तिकारी झण्डे दृष्टिगोचर होने लगे। इससे मैटरनिख घबरा गया। उसने आस्ट्रिया की सेनाओं को क्रान्ति को दबाने के लिए भेजा। आस्ट्रिया की संगठित सेनाओं ने पारमा, मोडेना तथा पोप राज्य आदि के विद्रोहों का कठोरता से दमन कर दिया। क्रान्तिकारी प्राण-रक्षा के लिए इधर उधर भाग गए। पुरातन राजाओं को पुनः उनके सिंहासन प्राप्त हो गए। इस प्रकार १८३० के फलस्वरूप इटली में भी भयंकर उथल-पुथल मची; परन्तु मेटरनिख के हस्तक्षेप के कारण देश-भक्तों को सफलता न मिली।

जर्मनी—इटली की भाँति जर्मनी पर भी १८३० की क्रान्ति का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। प्रारम्भ में इटली की भाँति जर्मनी में भी अनेक राज्य थे। प्रारम्भ में वहाँ ३०० छोटे-छोटे राज्य थे। सर्वप्रथम नैपोलियन महान् ने जर्मनी में एक संघ बनाकर वहाँ राष्ट्रीयता को प्रोत्साहन दिया था। परन्तु विएना कांग्रेस ने पुनः जर्मनी को ३९ रियासतों में बाँट दिया। आस्ट्रिया को उसका सभापति तथा प्रशा को उसका उपसभापति बनाया गया। परन्तु इस कार्य से जर्मनी को राष्ट्रीयता की भावना का विनाश नहीं किया जा सका। जर्मन देश-भक्त बराबर देश में राष्ट्रीयता की भावनाओं का प्रसार करते रहे।

१८३० की क्रान्ति के प्रभाव के अन्तर्गत जर्मनी के बहुत से राज्यों में विद्रोह

हो गया । फलतः यहाँ के शासकों को जनता को नवीन विधान देने पड़े । आस्ट्रिया तथा प्रशा में प्रतिक्रियावादियों का संगठन दृढ़ होने के कारण वहाँ विद्रोह न हो सका । इन दोनों देशों के राजा संविधान के घोर विरोधी थे । आस्ट्रिया का सम्राट् फांसिस कहा करता था 'संविधान' तो एकमात्र शैतान के ही पास होता है । राष्ट्र-वादी समस्त देश में एक सुसंगठित शासन स्थापित करना चाहते थे । जनता में राष्ट्रीयता का प्रचार करने के लिए स्थान-स्थान पर नेताओं की सभाएँ होने लगीं । इससे मेटरनिख घबरा गया । उसने राष्ट्रवादियों को दबाने का निश्चय किया । फलतः उसने जर्मनी की फेडरल डाइट को बुलाकर अनेक कठोर कानून पास कराए । इन कानूनों के द्वारा राष्ट्रवादियों का दमन किया गया । बहुत से राष्ट्रवादी पकड़ कर जेलों में डाल दिए गए । बहुत से राष्ट्रवादियों को देश निकाले की सजा दी गई । पत्र-पत्रिकाओं पर कठोर सेन्सर लगा दिया गया । सभा बुलाने तथा भाषण देने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया । गुप्त समितियों को भंग कर दिया गया । जिन राज्यों में जनता को नवीन संविधान दिए थे, वे भंग कर दिए गए । इस प्रकार जर्मनी के राष्ट्रीय आन्दोलन को दबाने में मेटरनिख को पूर्ण सफलता मिली । परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इस दमन-चक्र से जर्मनी की राष्ट्रीय भावनाओं का विनाश हो गया था । यद्यपि प्रतिक्रियावादी शक्तियों द्वारा इस आन्दोलन का दमन कर दिया गया, परन्तु अवसर पाकर जर्मनी में पुनः राष्ट्रीय आन्दोलन ने जोर पकड़ा ।

स्विट्जरलैण्ड—स्विट्जरलैण्ड के संविधान से एकमात्र कुलीनों को ही लाभ होता था । इससे वहाँ बहुत असंतोष था । १८३० की क्रान्ति का समाचार सुनकर जनता का यह असंतोष बहुत अधिक बढ़ गया । जनता ने सुधार के लिए दूने उत्साह से अपनी आवाज बुलन्द की । अन्त में सरकार को जन-साधारण के हितों को ध्यान में रखते हुए संविधान में कई महत्वपूर्ण संशोधन करने पड़े । प्रान्तीय तथा स्थानीय सरकारों ने भी जनता के हितों के लिए कुछ सुधार किए । इस प्रकार १८३० की क्रान्ति के परिणामस्वरूप स्विट्जरलैण्ड की साधारण जनता को भी अनेक सुविधाएँ प्राप्त हो गईं ।

पुर्तगाल—सन् १८०७ में नैपोलियन महान् ने पुर्तगाल पर अधिकार कर लिया । फलतः वहाँ के राजा जान छठे को अपने अमेरिका-स्थित उपनिवेश ब्राजील में जाकर शरण लेनी पड़ी । कालान्तर में वहाँ अंग्रेजों ने अपना अधिकार जमा लिया । परन्तु राष्ट्रवादियों ने उसका घोर विरोध किया । फलतः अंग्रेजों को पुर्तगाल छोड़ना पड़ा । उसके पश्चात् वहाँ राष्ट्रवादियों का शासन स्थापित हो गया । परन्तु यूरोपीय मित्र-मण्डल के सदस्यों ने जान छठे को ब्राजील से बुलाकर पुर्तगाल के सिंहासन पर बैठा दिया । सिंहासन प्राप्त करने पर जान छठे ने स्वेच्छाचारिता के साथ शासन करना प्रारम्भ कर दिया । उसने जनसाधारण के हितों की उपेक्षा कर सामन्तों तथा कुलीनों को अनेक विशेषाधिकार देने प्रारम्भ कर दिए । इससे देश में

बहुत अधिक असंतोष फैल गया; परन्तु जान छठे को इसकी कोई परवाह न थी। अन्त में वहाँ जनता ने विद्रोह कर दिया। जान छठा सिंहासन छोड़कर भाग गया। परन्तु यूरोपीय संयुक्त व्यवस्था के सदस्यों ने उसकी सहायता की और उसको पुनः पुर्तगाल के सिंहासन पर बैठा दिया।

जान छठे की मृत्यु होने पर उसका लड़का डोमपेड्रो जो कि ब्राजील का गवर्नर था, पुर्तगाल का शासक बना। परन्तु वह अपनी पुत्री डोना मेरिया को पुर्तगाल के सिंहासन पर बैठाकर पुनः अपने उपनिवेश ब्राजील में चला गया। परन्तु १८२८ में उक्त राजकुमारी के चाचा डोम मिगुएल ने उससे सिंहासन छीन लिया और स्वेच्छाचारी ढंग से शासन करने लगा। इससे जनता में बड़ा असंतोष उत्पन्न हुआ। १८३० की क्रान्ति का समाचार सुनकर राष्ट्रवादियों में नया जोश आया तथा राजकुमारी डोना मेरिया ने भी वैधानिक शासन स्थापित करने के लिए अपनी इच्छा व्यक्त की। इससे पुर्तगाल की राजनीति में एक प्रबल संघर्ष प्रारम्भ हो गया। पुर्तगाल के देश-भक्तों ने अन्य देशों के देश-भक्तों की भी सहानुभूति प्राप्त कर ली। अन्त में देश-भक्तों की विजय हुई और १८३४ में पुर्तगाल में वैधानिक शासन की स्थापना हो गई।

स्पेन—नैपोलियन के पतन के पश्चात् स्पेन के पदच्युत सम्राट् फर्डीनैण्ड को पुनः मित्र राष्ट्रों ने स्पेन के सिंहासन पर बैठा दिया। यह एक स्वेच्छाचारी शासक था। इसने सिंहासन पर आसीन होते ही पार्लियमेन्ट को भंग कर दिया। १८१२ का उदार संविधान भी रद्द कर दिया गया। कुलीनों को पुनः प्रधानता प्रदान कर दी गई। प्रेस पर सेन्सर लगा दिया गया। सभाओं तथा भाषणों पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया। चर्च को मान्यता प्रदान कर दी गई। धार्मिक स्वतन्त्रता का अन्त कर दिया गया। देश-भक्तों को कैद में डाल दिया गया और बहुत से देशभक्त निर्वासित कर दिए। इससे फर्डीनैण्ड का विरोध यहाँ तक बढ़ा कि १८२० में स्पेन में उसके विरुद्ध विद्रोह हो गया और फर्डीनैण्ड को स्पेन की गद्दी छोड़कर भागना पड़ा। परन्तु १८२२ की वैरोना कॉंग्रेस ने फ्रांस को स्पेन के विद्रोह के दमन करने का अधिकार दिया। फलतः फ्रांस ने एक विशाल सेना स्पेन भेजकर विद्रोहियों का दमन कर दिया तथा फर्डीनैण्ड को पुनः स्पेन की गद्दी पर आसीन करा दिया। परन्तु १८३० की क्रान्ति का समाचार सुनकर स्पेन के राष्ट्रवादियों में भी एक नए उत्साह का संचार हुआ। उन्होंने पुनः फर्डीनैण्ड का प्रबल विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु निरंकुश फर्डीनैण्ड ने आन्दोलनकारियों का कठोरता से दमन कर दिया। इस प्रकार १८३० में स्पेन में राष्ट्रवादियों को सफलता न मिली। परन्तु वे दमन के बावजूद भी विद्रोह करते रहे। धीरे-धीरे राजा की पार्लियामेन्ट में उदारवादियों का बहुमत हो गया। फलतः राजा को झुकना पड़ा और १८३७ में स्पेन में भी वैधानिक राजतन्त्र की स्थापना हो गई।

बेल्जियम—१७८९ की फ्रांसीसी राज्य क्रान्ति के समय बेल्जियम आस्ट्रिया के अधिकार में था और हालैण्ड एक स्वतन्त्र देश था। परन्तु नैपोलियन ने इन दोनों

ही देशों को जीत लिया। नेपोलियन के पतन के पश्चात् विएना कांग्रेस ने इन दोनों देशों को एक जगह मिला दिया, क्योंकि उनका ध्येय फ्रांस के उत्तर पूर्व में एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना करना था। विएना कांग्रेस का यह कार्य बहुत असंगत था। इन दोनों देशों में अनेक विभिन्नतायें थीं। हालैण्ड के निवासी प्रोटेस्टेन्ट धर्म के मानने वाले थे। बेल्जियम के निवासी कैथोलिक धर्म के अनुयायी थे। हालैण्ड की जाति डच थी। बेल्जियम की जाति बेलजियन थी। हालैण्ड एक उन्नतिशील तथा व्यापारिक देश था, जबकि बेलजियम एक कृषि प्रधान देश था। हालैण्ड में प्रजातन्त्र तथा बेल्जियम में राजतन्त्रवाद था। अतः इन विभिन्नताओं के कारण बेल्जियम में बहुत असन्तोष था।

बेल्जियम तथा हालैण्ड के संयुक्त शासन के लिए एक संयुक्त पार्लियामेन्ट की स्थापना की गई थी। मन्त्रि-मण्डल में बेलजियम का केवल एक तथा हालैण्ड के छः मन्त्री रक्खे। बेल्जियम की जनसंख्या हालैण्ड से दुगुनी थी। अतः इस अनुपातः से उसके प्रतिनिधि भी हालैण्ड से दुगुने होने चाहिए थे। परन्तु पार्लियामेन्ट में प्रतिनिधियों की संख्या दोनों देशों की बराबर थी। बेल्जियम के निवासियों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता समाप्त कर दी गई थी। उनके स्कूलों के ३० निरीक्षक प्रोटेस्टेन्ट रक्खे गये थे। बेलजियम के व्यवसायियों पर अनेक अतिरिक्त कर लगा दिए गए थे। इस प्रकार बेल्जियम निवासियों की स्थिति गुलामों जैसी हो गई। इससे वहाँ और भी अधिक असंतोष बढ़ रहा था। १८३० की क्रान्ति से प्रभावित होकर बेल्जियम-निवासियों ने भी विद्रोह कर दिया। उन्होंने डच सेना को परास्त कर बेल्जियम को एक स्वतन्त्र राष्ट्र घोषित कर दिया।

फ्राँस के सम्राट् लुई फिलिप ने भी क्रान्तिकारियों की सहायता की। परन्तु ब्रिटेन बेल्जियम के मामले में फ्रांस के हस्तक्षेप को अनुचित समझता था। अतः उसने रूस, आस्ट्रिया तथा प्रशा आदि का सहयोग प्राप्त कर बेल्जियम को तटस्थ राज्य घोषित कराने का प्रस्ताव रक्खा। १८३१ में राजकुमार लियोपोल्ड को बेल्जियम का राजा बना दिया गया। इङ्गलैंड, प्रशा, आस्ट्रिया, रूस तथा फ्रांस आदि देशों ने एक संयुक्त घोषणा द्वारा बेलजियम को एक तटस्थ राज्य मान लिया। इससे हालैण्ड के राजा को चुप होना पड़ा। इस प्रकार बेल्जियम का स्वतन्त्र होना राष्ट्रवादियों की भारी सफलता थी।

पोलैण्ड—पोलैण्ड का इतिहास बहुत विचित्र है। सोलहवीं शताब्दी में इसकी गणना शक्तिशाली राष्ट्रों में होती थी। परन्तु इसके बाद इसका ह्रास होता चला गया। १७७२ से १७९५ तक इसके तीन बार अंग-भंग हुये और इसका अस्तित्व समाप्त हो गया। पोलैण्ड की इस शोचनीय अवस्था के निम्न कारण बतलाये जा सकते हैं :—

१. पोलैण्ड के तीन प्राकृतिक भाग थे। इससे सम्पूर्ण देश में एकता कायम रहनी असम्भव थी। प्राकृतिक सीमाओं के अभाव में कोई भी राष्ट्र इस पर अधिकार कर सकता था।

२. देश में पोल, रूसी तथा जर्मन आदि अनेक जातियाँ रहती थीं। इन जातियों की भाषा, धर्म आदि में भी विभिन्नता थी। इससे विभिन्न जातियों में परस्पर कोई सहयोग न था।

३. देश में मुख्यतया दो वर्ग थे—सम्पन्न तथा विपन्न। सामन्त लोग विलासिता का जीवन व्यतीत करते थे। इसके विपरीत कृषक कठोर परिश्रम करने पर भी भूखे रहते थे। इससे दोनों वर्गों में सहयोग का सर्वथा अभाव था।

४. यहाँ राजा का पद वंशानुगत न था। प्रत्येक राजा की मृत्यु के बाद राजा का निर्वाचन होता था। यह निर्वाचन देश की डाइट द्वारा होता था। निर्वाचित राजा इसी डाइट के हाथ का खिलौना होता था। वह अपनी इच्छानुसार कोई कार्य नहीं कर सकता था।

५. पोलैण्ड का यह दुर्भाग्य था कि उसकी सीमा पर रूस, प्रशा तथा आस्ट्रिया नामक तीन बड़े राष्ट्र थे। ये बराबर इस देश को हड़पने का प्रयास करते रहते थे। १७७२ से १७९५ तक इसका तीन बार विभाजन हुआ और अन्तिम विभाजन के बाद यूरोप के मानचित्र से इसका अस्तित्व समाप्त हो गया।

प्रथम अंग-भंग—सन् १७६३ में पोलैण्ड के पुराने राजा का देहान्त होने पर रूस तथा प्रशा ने अपने प्रभाव से स्टेनिस्लास नामक एक सामन्त को राजा चुना। यह एक योग्य व्यक्ति था। इसने सामन्तों की शक्ति का अन्त करने के लिये उनके वीटो के सिद्धान्त को रद्द करने का प्रयास किया। परन्तु रूस तथा प्रशा ने उसके इस कार्य का विरोध किया। उन्होंने वहाँ के जागीरदारों द्वारा गृह-युद्ध प्रारम्भ करा दिया। आस्ट्रिया ने भी पोलैण्ड के कुछ प्रदेशों पर अधिकार करना चाहा। फलतः तीनों देशों ने मिल कर १७७२ में सेन्ट पीटर्सवर्ग नामक स्थान पर एक सन्धि कर ली। इस सन्धि के अनुसार पोलैण्ड के राज्य के १/४ भाग को निम्न प्रकार बांट लिया गया—

(१) लिवोनिया तथा लिथुनिया का पूर्वी भाग रूस को मिला।
(२) गेलेशिया का प्रदेश आस्ट्रिया को मिला।
(३) पश्चिमी प्रशा का भाग प्रशा को मिला।

द्वितीय अंग-भंग—उपर्युक्त विभाजन से पोलैण्ड का महत्व कम हो गया था। इसी मध्य रूसी-टर्की युद्ध प्रारम्भ हो जाने के कारण पोलैण्ड के राजा स्टेनिस्लास ने शासन में अनेक सुधार किये। उसने सामन्तों के वीटो के अधिकार को समाप्त कर दिया। राजा के पद को वंशानुगत कर दिया तथा सबको धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान कर दी गई। इन सुधारों से पोलैण्ड की शक्ति में बहुत वृद्धि हो गई। आस्ट्रिया का सम्राट् लियोपोल्ड द्वितीय इससे बहुत प्रसन्न हुआ। उसको यह विश्वास हो गया कि पोलैण्ड का यह बढ़ता हुआ प्रभाव रूस की आक्रमणकारी शक्ति को रोकने में सहायक होगा; परन्तु इसके विपरीत रूस का इन सुधारों से भयभीत होना स्वाभाविक था। अतः उसने टर्की से सन्धि हो जाने पर पोलैण्ड पर आक्रमण कर दिया। प्रशा के राजा ने भी रूस की सहायता की। पोलैण्ड के असंतुष्ट सामन्तों ने

भी रूस तथा प्रशा की सेनाओं की सहायता की। आस्ट्रिया के सम्राट् लियोपोल्ड द्वितीय की इस समय तक मृत्यु हो चुकी थी। इस संयुक्त विरोध के कारण पोलैण्ड का पराजित होना स्वाभाविक था। अन्त में १७९३ में पोलैण्ड का द्वितीय अंग-भंग कर दिया गया। इस अंग-भंग के अनुसार निम्न प्रकार से प्रशा तथा रूस ने पोलैण्ड का बंटवारा कर लिया :—

(१) पोलैण्ड के समस्त पूर्वी प्रदेशों पर रूस ने अधिकार कर लिया।

(२) पोलैण्ड के उत्तर-पश्चिम के प्रदेशों पर प्रशा ने अधिकार कर लिया।

तृतीय अंग-भंग—दो बार के विभाजन के फलस्वरूप भी पोलैण्डवासियों ने अपना आत्म-गौरव नहीं खोया। वहाँ कोस्कि डस्को नामक एक नेता ने राष्ट्रीयता की भावना का प्रचार किया। १७९४ में वहाँ विद्रोह हो गया। प्रारम्भ में पोल निवासियों को पर्याप्त सफलता मिली। इस सफलता से घबराकर रूस की महारानी केथरीइन ने पोलैण्ड पर आक्रमण कर दिया। प्रशा तथा आस्ट्रिया ने भी रूस का साथ देते हुए पोलैन्ड पर आक्रमण कर दिया। तीनों देशों की संयुक्त शक्ति के आगे पोलैण्ड का पराजित होना स्वाभाविक था। पोलैण्ड का राजा पदच्युत कर दिया गया तथा १७९५ में तीसरी बार पोलैण्ड का अंग-भंग कर दिया गया। इस तृतीय बंटवारे के अनुसार निम्न प्रकार से पोलैण्ड का विभाजन किया गया :—

(१) आस्ट्रिया को पश्चिमी गेलेशिया तथा दक्षिणी मैसोविआ के प्रदेश मिले।

(२) प्रशा को पश्चिमी मैसोविआ का प्रदेश मिला।

(३) शेष समस्त पोलैण्ड को रूस ने अपने अधिकार में रख लिया।

इस प्रकार १७९५ में पोलैण्ड नाम का कोई देश यूरोप के मानचित्र में न रहा।

विएना कांग्रेस ने प्रशा तथा आस्ट्रिया से पोलैण्ड के प्रदेश लेकर रूस के सम्राट् अलेक्जेण्डर प्रथम को दे दिये और उसने पोलैण्ड नाम के एक छोटे से देश का निर्माण कर दिया। उसके लिए एक पृथक् शासन-विधान का निर्माण किया; परन्तु फिर भी यह देश रूस के ही अधीन था। अलेक्जेण्डर प्रथम की मृत्यु के पश्चात् निकोलस गद्दी पर बैठा। यह घोर प्रतिक्रियावादी सम्राट् था। इसने पूरी तरह पोलों का रूसीकरण करने का प्रयास किया। उनका उदार संविधान भंग कर दिया गया। वार्सा तथा विलना के विश्वविद्यालय भंग कर दिये गये। इससे पोलैण्ड में बहुत असन्तोष हुआ। १८३० में फ्रांसीसी क्रांति का समाचार सुन कर पोलैण्डवासियों ने भी विद्रोह कर दिया। पोलैण्ड की सेनाओं ने एक वर्ष तक रूस की सेनाओं से संघर्ष किया। अन्त में निकोलस ने निर्दयतापूर्वक पोलों का दमन कर दिया। हजारों देश-भक्तों को फांसी दे दी गई और हजारों देश-भक्त साइबेरिया के ठण्डे मैदानों में निर्वासित कर दिये गये। बहुत से देश-भक्त देश छोड़ कर इङ्गलैंड तथा अमेरिका भाग गये। इस प्रकार १८३० की क्रान्ति पोलैण्ड में असफल रही। इस सम्बन्ध में किसी विद्वान् ने ठीक

कहा है—'१८३० की क्रान्ति के फलस्वरूप एक राज्य (बेल्जियम) का निर्माण हुआ तथा दूसरे राज्य (पोलैण्ड) का अन्त हो गया।'

इङ्गलैंड—१८३० में इङ्गलैंड में टोरी (अनुदार) सरकार थी। टोरी दल का नेता विलिङ्गटन का ड्यूक उस समय वहाँ का प्रधान मन्त्री था। यह भी अपने समय का एक घोर प्रतिक्रियावादी तथा मेटरनिख के मित्रों में से था। इस समय वोट का अधिकार बहुत कम लोगों को था। जनता मताधिकार-प्रणाली में सुधार चाहती थी। परन्तु विलिंग्टन का ड्यूक सुधारों का घोर विरोधी था। इससे ह्विग (उदार) दल बहुत लोकप्रिय हो गया। इसी दल ने संसद में सुधार बिल प्रस्तुत किया। परन्तु सफलता न मिली। अन्त में इसी बिल का आधार मान कर निर्वाचन हुए। इस निर्वाचन में उदारवादियों को भारी सफलता मिली। लोक सभा में बिल पास हो गया, परन्तु लार्ड सभा ने इस सुधार सभा में बिल को अस्वीकृत कर दिया। इससे बहुत से स्थानों पर दंगे हो गये। अन्त में विवश होकर लार्ड सभा को भी यह बिल पारित करना पड़ा। इस प्रकार १८३२ में इंगलैंड में प्रथम सुधार बिल पास हो गया। स्पेन्सर वालपूल ने इस सुधार बिल को इंगलैंड की सबसे बड़ी क्रान्ति कहा है। इसके द्वारा २४ व्यक्तियों में से एक व्यक्ति को मताधिकार प्राप्त हो गया। मैरियट महोदय ने लिखा है—'इस बिल के पास होने से यह स्पष्ट हो गया कि अब सम्राट के हाथ में शक्ति नहीं है, केवल प्रभाव है और आवश्यकतानुसार उसे लार्ड सभा का समर्थन न करके लोक सभा का ही समर्थन करना होगा।' रेम्जेम्योर के शब्दों में 'इस बिल के पास होने से कामन्स सभा की शक्ति में वृद्धि हुई तथा लार्ड सभा की शक्ति का ह्रास हुआ।' इस प्रकार १८३० की क्रान्ति का इंगलैंड पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा।

अमेरिका—१८३० की क्रान्ति का प्रभाव यूरोप पर ही नहीं अपितु एटलांटिक महासागर को पार कर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका पर भी पड़ा। अमेरिका में दो वर्ग थे। प्रथम वर्ग पूंजीपतियों का था। ये लोग दिन प्रति दिन धनवान् होते जा रहे थे। अपने धन के बल पर इन्होंने अनेक विशेषाधिकार प्राप्त कर लिये थे। शासन की मशीनरी पर इनका पूरा अधिकार था। इससे यह अपने हित को दृष्टिकोण में रखते हुए ही कानूनों का निर्माण करते थे। दूसरे वर्ग के अन्तर्गत मजदूर थे। उनकी हालत बहुत शोचनीय थी। घोर परिश्रम करने पर भी उनको भर पेट भोजन नहीं मिलता था। समाज में उनका कोई स्थान न था। सरकारी विभागों में उनकी पहुंच नहीं थी। उनके हितों की ओर ध्यान देने वाला कोई भी न था। बहुत से मजदूर दासों की भांति जीवन व्यतीत करते थे। कर्ज अदा न करने पर उनको जेलों में डाल दिया जाता था। इससे समाज के निर्धन वर्ग में बड़ा असन्तोष था। १८३० की क्रान्ति का समाचार सुन कर उनके हृदय में आशा का संचार हुआ। सर्वत्र निर्धन मजदूरों की दशा सुधारने के लिए आन्दोलन चलने लगा। दास प्रथा के विरोध में अनेक समितियों का निर्माण हुआ। आन्दोलन के भारी विकास को देख कर शासक वर्ग को झुकना पड़ा और उन्होंने मजदूरों की दशा सुधारने के लिए अनेक कानून पास किए। मजदूरों को भी शासन के कार्यों में भाग लेने का अधिकार दिया

गया। दास प्रथा का अन्त कर दिया गया। ऋण न देने पर ऋणी को जेल में नहीं डाला जा सकता था। कारखानों में कार्य करने वाले मजदूरों की दशा सुधारने के लिये भी कुछ कानून बने। इस प्रकार १८३० की क्रांति के फलस्वरूप जन-साधारण के विकास के लिए अमेरिका में अनेक कानून पास हुए।

१८३० की क्रान्ति का मूल्यांकन—१८३० की फ्रांस की राज्य-क्रान्ति योरोपीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। इससे योरप बहुत अधिक प्रभावित हुआ। अमेरिका भी इसके प्रभाव से नहीं बच सका। वहाँ दास प्रथा का अन्त कर दिया गया। इंगलैंड में १८३२ का सुधार बिल पास हुआ। स्विटजरलैंड में जनता के हितों को मान्यता प्रदान की गई। बेल्जियम को एक तटस्थ तथा स्वतन्त्र देश मान लिया गया। फ्रांस में वैध राजसत्ता की स्थापना हुई। ये सफलतायें प्रति-क्रियावादी शक्तियों की असफलतायें तथा राष्ट्रवादियों की सफलतायें थीं। निरंकुश राजाओं के लिए यह खतरे की घण्टी थी। फ्रांस में बूर्वा वंश के शासन को समाप्त कर ओलियाँ वंश के शासन की स्थापना की गई। इससे न्यायोचित्त राजता के सिद्धान्त को गहरा धक्का लगा। इससे यह भी सिद्ध हो गया कि जनता को भी अपने राजा के निर्वाचन करने का अधिकार है। फ्रांस के नये सम्राट लुई फिलिप ने स्वयं स्वीकार किया था कि "... हम जनता की इच्छा से राजा हुए हैं।' मेटरनिख की प्रतिक्रियावादी नीति पर आधारित व्यवस्था की नींव हिल गई। यद्यपि बहुत से स्थानों पर १८३० के आन्दोलन दबा दिये गये, परन्तु राष्ट्रीयता की भावनाओं का विनाश नहीं किया जा सका। अवसर पाकर १८४८ में पुनः यूरोप के अनेक देशों में क्रान्ति हो गई। इसका विस्तारपूर्वक वर्णन हम अगले अध्याय में करेंगे।

लुई फिलिप (Louis Philippe)—१८३० में चार्ल्स दशम के विरुद्ध क्रान्ति हो गई। थिए और लाफायत आदि नेताओं ने आलिया वंश के प्रतिनिधि लुई फिलिप को फ्रांस का राजा बनाया। आलियाँ वंश बूर्वा वंश की एक शाखा थी। लुई फिलिप का राज्य July Monarchy के नाम से प्रख्यात है। लुई फिलिप का जन्म १७७३ ई० में हुआ था। वह फिलिप एगालीत का पुत्र था। यह एक कुविख्यात व्यक्ति था। इसने क्रान्ति के समय अपने चचेरे भाई लुई सोलहवें से सिंहासन छीनने के लिए षडयन्त्र किया था। अन्त में सूली चढ़ाकर इसकी हत्या कर दी गई थी। क्रान्ति के समय इसके पुत्र लुई फिलिप की अवस्था १६ वर्ष की थी। अतः फ्राँस की क्राँति में इसने कोई भाग नहीं लिया। कालान्तर में यह जैकोबिन दल का सदस्य हो गया। जिस समय यूरोप के देशों में फ्राँस की क्रान्ति को कुचलने के लिये आक्रमण किये तो इसने भी क्रान्तिकारियों के साथ मिलकर वाल्मी के युद्ध में भाग लिया और विदेशियों का विरोध किया। परन्तु आतंक काल में क्रान्तिकारियों से इसका मतभेद हो गया और यह स्विटजरलैंड चला गया। वहाँ इसने अध्यापक का कार्य किया। २१ वर्ष तक यह विदेशों में घूमता रहा। यह अमेरिका एवं इंगलैंड भी गया। जिस समय लुई १८वाँ फाँस का सम्राट बना दिया गया तो यह भी फाँस वापस आ गया। अपने उदार व्यव-हार के कारण यह फ्राँसीसी जनता में बहुत लोकप्रिय हो गया था।

राजा बनने पर उसने कभी भी ताज धारण नहीं किया। वह हमेशा एक ऊँची हैट पहनता था। उसने कभी राजदण्ड भी धारण नहीं किया। राजदण्ड के स्थान पर वह एक छाता रखता था। वह अपने बच्चों को 'King of France' न कहकर 'King of the French' कहता था। उसने अपने बच्चों को भी साधारण स्कूलों में शिक्षा दिलाई। वह सभी वर्ग के व्यक्तियों से बातें करता था। कभी-कभी वह बाजार में सामान खरीदने भी स्वयं चला जाता था।

उसने गद्दी पर बैठते ही जनता को एक संविधान दिया। उसकी निम्न-लिखित विशेषतायें हैं—

(१) राजा ने घोषित किया कि मैं ईश्वर की कृपा तथा जनता की इच्छा से राजा हुआ हूं। उसने अपने को फ्रांस का सम्राट् न कह कर फ्रांसीसी जनता का सम्राट् घोषित किया।

(२) सामन्तों का चैम्बर (Chamber of Peers) वंशानुगत न रहा। इसकी सदस्यता आजीवन कर दी गई। ये राजा द्वारा मनोनीत होंगे। राजा उच्च पदा-धिकारियों में से इनको मनोनीत करेगा। इस प्रकार Chamber of Peers सामन्तों की संख्या न रहकर कर्मचारियों की संख्या रह गई।

(३) प्रतिनिधि सभा (House of Deputies) का सदस्य होने के लिये आर्थिक योग्यता १००० फ्रेंक के स्थान पर घटाकर ५०० फ्रेंक कर दी तथा अवस्था की योग्यता ४० वर्ष से घटा कर ३० वर्ष कर दी।

(४) मताधिकार व्यापक बना दिया गया। मताधिकार की आर्थिक योग्यता ३०० फ्रेंक से घटाकर २०० फ्रेंक कर दी गई। उम्र की योग्यता घटाकर ३० वर्ष के स्थान पर २५ वर्ष कर दी गई। इससे मतदाताओं की संख्या पहले से दुगुनी हो गई।

(५) पहले संसद एकमात्र राजा द्वारा भेजे हुए बिल पर ही विचार करती थी। परन्तु अब बिल प्रस्तुत करने का अधिकार जनता को भी दे दिया गया।

(६) सबको धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान कर दी गई। अब एकमात्र कैथोलिक धर्म राज-धर्म न रहा। राज्य कैथोलिक धर्म के साथ साथ प्रोटेस्टेन्ट एवं यहूदी धर्मों की संस्थाओं को भी समान रूप से आर्थिक सहायता प्रदान करने लगा। शिक्षा पर चर्च का अधिकार न रहा।

(७) सेन्सर समाप्त कर दिया गया।

(८) क्रान्ति काल में नेशनल गार्ड समाप्त कर दी गई थी; परन्तु उसकी अब पुनः स्थापना कर दी गई।

(९) संविधान में कहा गया था कि मन्त्री उत्तरदायी होंगे; परन्तु यह नहीं लिखा गया कि किसके प्रति उत्तरदायी होंगे, राजा के प्रति अथवा संसद के प्रति। इससे अन्त में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गईं।

लुई फिलिप की कठिनाइयां

लुई फिलिप के गद्दी पर बैठने पर अनेक कठिनाइयों का सामना करना

रड़ा। इस समय देश में कई पार्टियां थीं तथा ये सभी लुई फिलिप की विरोधी थीं—

(१) **बूर्बां पार्टी**—यह पार्टी राजा के दैवी सिद्धान्तों में विश्वास रखती थी। यह बूर्वां वंश के किसी राजकुमार को गद्दी पर बैठाना चाहती थी।

(२) **बोनापार्टिस्ट पार्टी**—यह पार्टी सिंहासन पर नेपोलियन के पुत्र को बैठाना चाहती थी।

(३) **रिपब्लिकन पार्टी**—लामार्तीन इसका नेता था। यह फ्रांस में गणतन्त्र स्थापित करना चाहती थी।

(४) **समाजवादी पार्टी**—यह फ्राँस में मजदूरों की सरकार स्थापित करना चाहती थी।

इस प्रकार इनमें से कोई भी दल लुई फिलिप का समर्थक न था। वे उसको औद्‌भिज्ज (Upstart) ख्याल करते थे। वे इसको एक चोर समझते थे जिसने कि छल से बोर्दों के ड्यूक का राजमुकुट चुरा लिया था। अतः ये पार्टियां उसको गद्दी से उतारने के लिये विद्रोह कर रही थीं। बेरी की पत्नी (Duchesse de Berri) इन विद्रोहों का नेतृत्व कर रही थी। इसने लावेन्डी (Lavendee) तथा प्रोवेन्स (Provence) में विद्रोह करा दिये। परन्तु इन विद्रोहों को दबा दिया गया। बोना-पार्टिस्ट दल के नेता नेपोलियन तृतीय ने सन् १८३० में स्ट्रास वर्ग (Stras-burg) तथा १८३६ में बोलोन (Bolone) में विद्रोह करा दिया; परन्तु लुई फिलिप ने इन विद्रोहों का भी दमन करा दिया। गणतन्त्रवादी पार्टी ने पेरिस तथा लियोन्स (Lyons) में विद्रोह करा दिये, परन्तु इन विद्रोहों का भी दमन कर दिया गया। लुई फिलिप की हत्या करने के छः बार प्रयत्न किये गये; परन्तु वह प्रत्येक बार बच गया।

वास्तव में जिस समय लुई फिलिप गद्दी पर बैठा तो उसकी स्थिति बहुत नाजुक थी। उसका निर्वाचन प्रतिनिधि सभा द्वारा हुआ था। जनता का अधिकांश भाग इस निर्वाचन को अवैध समझता था, क्योंकि इस सभा ने अभी तक कभी राजा का निर्वाचन नहीं किया था। उसको सिंहासन देने के पक्ष में प्रतिनिधि सभा के ४३० सदस्यों में से केवल २१९ सदस्य ही थे। फ्राँस में इस समय ड्यूमा, विक्टर, ह्यूगो तथा लामारतीन आदि ने रोमान्टिक-साहित्य की रचना की। इस साहित्य ने समाज में नई विचारधारा का श्रीगणेश किया तथा पुरातन परम्पराओं का घोर विरोध किया। इससे समाज में नये-नये सुधारों की मांग होने लगी।

औद्योगिक क्रान्ति

उस समय तक फ्राँस का औद्योगीकरण हो गया था। यह औद्योगीककरण चार्ल्स दशम के समय में ही आरम्भ हो गया था। घरेलू उद्योग-धन्धों के स्थान पर बड़ी-बड़ी मशीनें लग गईं। देश में पूंजीवाद का उदय हुआ। इससे धनी और मानी तथा निर्धन और निर्बल होते चले गये। मजदूरों की समस्या भी उत्पन्न हो गई। फ्रेंच गाइना, मेडागास्कर तथा इन्डोचायना आदि पर फ्रांस ने अपना प्रभाव स्था-पित कर लिया। इससे देश में साम्यवादी भावना का प्रादुर्भाव हुआ। सेन्ट साइमन (Saint Simon) फूरिये (Fourier) तथा लुई ब्लांक (Louis Blanc) के नाम

उल्लेखनीय हैं। इनमें सबसे अधिक प्रभाव लुई ब्लांक का था। इसने श्रम का संगठन (Organisation of Labour) नामक पुस्तक की रचना की। यह पुस्तक १८४८ की क्रान्ति की बाइबिल बन गई। उसने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में विशेष तौर से निम्न बातों पर जोर दिया—

(१) उत्पादन के साधनों पर व्यक्ति विशेष का अधिकार नहीं होना चाहिए। इस पर मजदूरों का आधिपत्य होना चाहिये।

(२) समाज के प्रत्येक व्यक्ति का मूल्यांकन श्रम के आधार पर हो।

(३) प्रत्येक व्यक्ति को श्रम करने का अधिकार प्राप्त हो। दूसरे शब्दों में प्रत्येक व्यक्ति को नौकरी दी जानी चाहिये। सन् १८४८ की क्रान्ति का प्रधान नारा यही था कि प्रत्येक व्यक्ति को काम मिले।

(४) शासन का प्रमुख उद्देश्य यह होना चाहिये कि श्रम करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को श्रम का फल मिले।

समाजवादी पार्टी के इस प्रचार से देश में बहुत असंतोष फैल गया। मुख्यतया किसान एवं मजदूर लुई फिलिप के विरोधी हो गये।

लुई फिलिप का मध्यम मार्ग—लुई फिलिप जिस समय गद्दी पर बैठा उसकी अवस्था ५७ वर्ष की थी। अतः उससे यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वह क्रान्तिकारी विचारधारा को दृष्टि में रखते हुए कार्य करेगा। मुख्यतया उसके समर्थक व्यापारी, वकील एवम् धनी व्यक्ति थे। ये लोग क्रान्ति के विरोधी थे और देश में शान्ति तथा सुव्यवस्था चाहते थे, क्योंकि क्रान्ति काल में इन लोगों को ही सबसे अधिक हानि होती है। लुई फिलिप ने १८ वर्ष तक इसी वर्ग की सहायता से शासन किया। इससे लुई फिलिप की सरकार मध्यम वर्ग की सरकार (Middle Class Government) भी कहा जाता है। लुई फिलिप ने केवल इसी वर्ग को मताधिकार दे रक्खा था तथा इसी को नागरिकता के अधिकार प्राप्त थे। इसी से व्यंग्यपूर्वक कुछ इतिहासकारों ने लुई फिलिप को नागरिक सम्राट् (Citizen King) भी कहा है। उसका यह ख्याल था कि केवल सम्पत्तिवान् एवं शिक्षित व्यक्तियों में ही शासन करने की क्षमता है।

लुई फिलिप के मन्त्रि-मण्डल—लुई फिलिप का प्रारम्भिक शासन-काल अशान्ति तथा अस्थायी मन्त्रि-मण्डलों का था। इन १० वर्षों में उसने १० मन्त्री बदले। सर्व-प्रथम उसने **पेरिए** को अपना प्रधान मन्त्री बनाया। यह वैध राजसत्ता के सिद्धान्त में विश्वास रखता था। इसने एक वर्ष तक सफलतापूर्वक काम किया। तत्पश्चात् इसकी मृत्यु हो गई। फिर **थिए** को प्रधान **मन्त्री** बनाया गया। यह राजभक्त था। यह भी वैधानिक राजसत्ता के सिद्धान्त में विश्वास रखता था। इसका यह मत था कि चैम्बर में जिस दल का बहुमत हो उसी से मन्त्री चुने जायें, परन्तु अन्त में विदेश नीति के सम्बन्ध में विरोध होने पर उसने त्याग-पत्र दे दिया। कालान्तर में **सोल्ट** (Soult) तथा **मोल** (Mole) प्रधान मन्त्री बनाये गये, परन्तु इन्होंने भी मतभेद होने पर त्याग-

पत्र दे दिया । तत्पश्चात् राजा ने अपने परम भक्त तथा निरंकुशता एवं स्वेच्छाचारिता के अवतार ग्वीजो (Guizot) को अपना प्रधान मन्त्री बनाया । जनता के विरोध के बावजूद भी यह १८४० से १८४८ तक कार्य करता रहा । प्रधान मन्त्री होने पर ग्वीजो ने अपनी नीति की घोषणा निम्न शब्दों में की थी—हमें अपने देश में क्रान्ति की गति को रोकना है तथा दूसरे देशों के साथ ऐसी उदार नीति का व्यवहार करना है, जिससे कि वर्तमान संधियों का पालन हो तथा दूसरे देशों के मामले में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न हो । निरंकुशता की नीति का समर्थन करते हुये उसने कहा था 'मैं प्रत्येक स्थान पर तथा प्रत्येक समय शान्ति स्थापित करना चाहता हूं ।'[1] इसका अर्थ यह था कि यह शासन में कोई सुधार नहीं करेगा तथा विदेशी नीति में सक्रिय रूप से भाग नहीं लेगा; परन्तु जनता इस नीति की विरोधी थी । उसने राजा की स्वेच्छाचारिता का समर्थन करते हुए कहा था कि राजसिंहासन कोई खाली कुर्सी नहीं है ।[2] ग्वीजो प्रोटेस्टेन्ट धर्मानुयायी था; परन्तु फ्रांस की अधिकाँश जनता कैथोलिक थी । अत: कैथोलिक जनता का इससे नाराज होना अवश्यम्भावी था । यद्यपि ग्वीजो अपने व्यक्तिगत जीवन में बहुत पवित्र था, वह एक सुयोग्य वक्ता, इतिहासकार एवं अध्यापक था, परन्तु उसका राजनीतिक जीवन बहुत भ्रष्ट था । इसी भ्रष्टाचार द्वारा उसने मन्त्रि मण्डल को अपने पक्ष में रक्खा । उसने चैम्बर के अधिकाँश सदस्यों को उच्च पदों पर नियुक्त कर दिया था । चेम्बर के लगभग एक-तिहाई सदस्य ग्वीजो द्वारा उच्च पदों पर नियुक्त होने के कारण सदैव उसका समर्थन करते थे । इस प्रकार ग्वीजो का मन्त्री मण्डल उच्च-पदाधिकारियों (Place Men) के ऊपर आधारित था । ग्वीजों मन्त्रियों को अपने पक्ष में करने के लिये खुले आम रिश्वत देता था । इसलिये एक बार किसी सदस्य ने कहा था—'प्रतिनिधि सभा एक बाज़ार है जहाँ प्रतिनिधि अपनी आत्मा बेचते हैं ।'[3] जनता ने इस भ्रष्टाचार का विरोध किया । इस पर ग्वीजो ने विरोधियों पर भारी-भारी जुर्माने किये; कुछ को जेलों में डाल दिया । प्रेस पर सेन्सर लगा दिया । पत्रकारों को भी कठोर सजायें दी गईं । इस दमन के बावजूद ग्वीजो एवम् लुई फिलिप दोनों का विरोध पहले से भी अधिक बढ़ गया । सुप्रसिद्ध गणतन्त्रवादी नेता लामार्तीन ने आलोचना करते हुए कहा था—'यदि राजा निरंकुशता एवम् स्वेच्छाचारिता से शासन करना चाहता है, तो उसे अपना प्रधान मन्त्री नियुक्त करने की क्या आवश्यकता है ? प्रधान मन्त्री के स्थान पर एक पाषाण-स्तम्भ खड़ा किया जा सकता है ।'

भौगोलिक सुधारों की मांग—देश का औद्योगीकरण हो जाने के कारण संवैधानिक सुधारों की माँग के साथ-साथ आर्थिक सुधारों की भी मांग होने लगी । अब राजनीतिक समानता के साथ-साथ आर्थिक समानता की भी माँग होने लगी ।

---

1. 'To maintain peace everywhere and always.'
2. 'The throne is not an empty chair.'
3. 'A bazar where the deputies barter their conscience.'

रेशम के कारखानों में काम करने वाले मजदूरों ने काले झण्डे लेकर राजा के विरोध में नारे लगाये। फलतः १८४८ में लुई फिलिप ने एक फैक्ट्री कानून पास किया। इस कानून के अनुसार ८ वर्ष से कम अवस्था के बच्चों से काम लेना अवैध घोषित कर दिया गया। १६ वर्ष से कम अवस्था के बच्चों से भी १२ घण्टे से अधिक समय तक काम नहीं लिया जा सकता था। परन्तु इन कानूनों का कभी भी पूरी तरह पालन नहीं हुआ। अतः मजदूरों का आन्दोलन भी बराबर चलता रहा। इस अवस्था को देखकर जर्मनी के सुप्रसिद्ध विद्वान स्टीन ने घोषित किया था—'अब फ्रांस में राजनीतिक क्रान्ति के दिन समाप्त हो गये हैं तथा अब उसके स्थान पर आर्थिक क्रान्ति के दिन आ गए।'

इस प्रकार सन् १८४८ के आते-आते जनता भली प्रकार समझ गई थी कि उन्होंने लुई फिलिप को गद्दी पर बैठा कर बहुत बड़ी गलती की है। उनको आशा थी कि वह जनता के साथ उदारता का व्यवहार करेगा; परन्तु उसने इसके स्थान पर जनता के साथ घोर दमन-नीति का आश्रय लिया।

वैदेशिक नीति

गृह-नीति की भाँति लुई की वैदेशिक नीति भी असफल रही। जिस समय वह गद्दी पर बैठा था यूरोप के देश अपने घरेलू मामलों में व्यस्त थे। गद्दी पर बैठने पर उसने यूरोप के राष्ट्रों को यह आश्वासन दिया था कि वह विएना काँग्रेस की व्यवस्था को बराबर बनाए रक्खेगा। सर्वप्रथम ब्रिटेन ने उसको मान्यता प्रदान कर दी।

इटली में क्रान्ति—उसकी विदेश नीति असफल रही। जनता को आशा थी कि वह विदेशों में होने वाली क्रान्तियों को सहायता देगा। इसी बीच इटली के पर्मा, मोडेना एवं पोप राज्य में विद्रोह हो गया। उसने इन क्रान्तियों के समर्थन करने में उदासीनता दिखलाई। फलतः आस्ट्रिया ने इन तीनों देशों की क्रान्तियों को दबा दिया।

पौलैण्ड—अलेक्जेण्डर प्रथम ने पौलैण्ड को पर्याप्त स्वतन्त्रता दे दी थी। परन्तु निकोलस प्रथम ने पौलेण्ड पर नियन्त्रण स्थापित करना प्रारम्भ कर दिया। उससे पौलेण्ड में असन्तोष बढ़ने लगा। अन्त में १८३० में पौलेण्ड में विद्रोह हो गया। एक वर्ष तक युद्ध चलता रहा; परन्तु लुई फिलिप ने पौलेण्ड को कोई सहायता न दी। अन्त में निकोलस ने पौलेण्ड के विद्रोह का दमन कर दिया तथा पौलेण्ड को रूस का एक प्रान्त बना लिया।

बेल्जियम—विएना काँग्रेस ने हालैण्ड तथा बेल्जियम का संयुक्त-राज्य बना दिया था। परन्तु इन दोनों देशों में बहुत विभिन्नतायें थीं। हालैण्ड में अधिक शिक्षा एवं जागृति थी। राज्य में इन्हीं को उच्च पद प्राप्त थे। इन्होंने डच भाषा को राज-भाषा बनाने का प्रयत्न किया। इस पर बेल्जियम की जनता ने विद्रोह कर दिया। लुई फिलिप ने अपने साम्राज्य का विस्तार करने के लिए अपने पुत्र नेम्यूर

(Nemour) को बेल्जियम का राजा बनाना चाहा। परन्तु इङ्गलैंड के विदेश मन्त्री पामर्स्टन ने इसका विरोध किया। लन्दन में एक सम्मेलन हुआ। सम्मेलन के निर्णय के अनुसार कोलबर्ग (Colburg) वंश के प्रतिनिधि लियोपोल्ड को बेल्जियम का सम्राट बनाया गया।

पूर्वी समस्या—मिश्र के गवर्नर मेहमतअली ने अपने टर्की के सुलतान के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। यह मिस्र में अपनी स्वतन्त्र सरकार स्थापित कर कुस्तुन-तुनिया पर अधिकार करना चाहता था। लुई फिलिप ने मेहमत अली का पक्ष लिया। उसका उद्देश्य मिस्र के साथ व्यापार बढ़ाना था। परन्तु मिस्र में इङ्गलैंड के भी व्यापारिक हित थे। अतः इङ्गलैंड ने फ्रांस का विरोध किया। इङ्गलैंड ने रूस, आस्ट्रिया तथा प्रशा को अपनी तरफ मिला लिया और मेहमत अली को परास्त कर दिया। १८४१ में लन्दन में एक सम्मेलन हुआ। उसमें फ्राँस को नहीं बुलाया गया। इस पर फ्राँस ने युद्ध की धमकी दी। ब्रिटेन ने भी इसके प्रत्युत्तर में युद्ध की चुनौती दी।[1] इस पर लुई फिलिप डर कर चुप हो गया।

स्पेन का प्रश्न—इस समय स्पेन में आइजावेला का राज्य था। उसकी एक बहन का नाम मेरी लुइसा था। इन दोनों के विवाह का प्रश्न था। लुई फिलिप आइजावेला का विवाह अपने पुत्र के साथ कराना चाहता था। इङ्गलैंड ने इसका विरोध किया। विचार-विमर्श के बाद यह निर्णय किया गया कि फ्रांसीसी राजकुमार माउण्ट पेन्तिए (Mount Pantier) का विवाह राजकुमारी लुइसा के साथ हो सकता है; परन्तु यह विवाह जब हो जबकि आइजावेला के पुत्र उत्पन्न हो जाय। यह योजना महारानी विक्टोरिया ने इङ्गलैंड में बनाई थी। परन्तु लुई फिलिप ने इस समझौते को तोड़कर आइजावेला का विवाह अपने भतीजे एवं लुइसा का विवाह अपने पुत्र ड्यूक माउण्ट पेन्तिए के साथ करा दिया। इस विवाह-सम्बन्ध से इङ्गलैंड एवं फ्राँस दोनों देशों की जनता बहुत नाराज हुई। कारण यह था कि उसने आइजावेला का विवाह बीमार राजकुमार के साथ करा दिया था। इससे उसके सन्तान उत्पन्न होने की आशा न थी। इस प्रकार लुई फिलिप ने अपने वंश के उत्तराधिकार की स्थिति को दृढ़ किया। परन्तु उसके इस कार्य से उसकी बदनामी बहुत बढ़ गई तथा ब्रिटेन से उसकी घोर शत्रुता हो गई।

स्विट्जरलैंड—स्विटजरलैंड कैन्टनों का एक संघ था। इनमें कुछ कैन्टन प्रगतिवादी थे तथा कुछ पिछड़े हुए थे। फलतः इन दोनों में विरोध हो गया। इङ्गलैंड ने प्रगतिशील कैन्टनों का साथ दिया। फ्रांस ने रूढ़िवादी कैन्टनों का साथ दिया। अन्त में इङ्गलैंड के नेतृत्व में प्रगतिशील कैन्टनों की विजय हुई। इस प्रकार इङ्गलैंड ने स्विटजरलैंड में फ्राँसीसी हस्तक्षेप रोक दिया।

कूटनीतिक विवाह—अपने वंश की स्थिति दृढ़ करने के लिए उसने कूटनीतिक विवाहों का भी आश्रय लिया। उसने अपने पुत्र माउण्ट पेन्तिए का विवाह स्पेन की

1. 'If France throws down the gauntlet we shall not refuse to pick it up.'

महारानी आइजावेला की बहन लुइसा के साथ सम्पन्न करा दिया। अपनी एक पुत्री का विवाह उसने बेल्जियम के राजा लियोपोल्ड के साथ तथा दूसरी पुत्री का विवाह वर्टेनबर्ग के राजा के साथ कर दिया; परन्तु उसके इन कूटनीतिक विबाहों के फलस्वरूप यूरोप के अनेक देश तथा मुख्यतया ब्रिटेन उसका घोर विरोधी हो गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लुई फिलिप अपनी गृह एवं वैदेशिक दोनों नीतियों में ही असफल रहा। लामार्तीन ने कहा था कि फ्रांस इस राजा से ऊब गया है।[1] किसी विद्वान् ने यह भी कहा था कि फ्राँस ज्वालामुखी पर सो रहा है।[2]

१८४८ की क्रान्ति तथा लुई फिलिप के शासन का अन्त—लुई की गृह एवं वैदेशिक नीति की असफलता के कारण कोई भी सच्चे अर्थों में लुई फिलिप का समर्थक न रह गया था। मेटरनिख ने कहा था 'लुई फिलिप का शासन आकस्मिक घटनाओं पर आधारित रहेगा।' अन्ततोगत्वा उसकी यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। यदि लुई फिलिप दूरदर्शिता से काम लेता तो लिप्सन के शब्दों में १८ वर्ष तक और राज्य-सत्ता उसके वंश के हाथ में रह सकती थी। उसने राजा एवं प्रजा के मध्य एक खाई उत्पन्न कर दी और यह खाई धीरे-धीरे चौड़ी होती चली गई।

फ्राँस में स्थान-स्थान पर लुई फिलिप तथा उसके मन्त्री ग्विजो के विरोध में सभायें होने लगीं। समाचार-पत्रों में लुई फिलिप एवं उसके मन्त्री ग्विजो के विरोध में व्यंग्य चित्र (कार्टून) छापे जाने लगे। २२ फरवरी १८४८ को पेरिस में एक विशाल सभा का आयोजन किया गया। राजा एवं उसके मन्त्री ग्विजो ने उस सभा पर प्रतिबन्ध लगा दिया। परन्तु राजाज्ञा के विरुद्ध भी यह सभा हुई। जनता ने ग्विजो को मन्त्रि पद से हटाने की मांग की। राजा ने शक्ति द्वारा जनता का दमन करना चाहा। फलतः अगले दिन २३ फरवरी को पेरिस की जनता ने विद्रोह कर दिया। इन्होंने एक विशाल जुलूस निकाला। इस जुलूस में पत्रकार, अध्यापक एवं विद्यार्थी आदि सभी सम्मिलित हुए। इन्होंने सड़कों एव गलियों में ये नारे लगाये—'ग्विजो का नाश हो, सुधार चिरजीवी हों तथा ग्विजो का मन्त्रि-पद से हटा दिया जाय।' राजा ने डर कर जनता की इन मांगों को स्वीकार कर लिया। २३ फरवरी को ग्विजो को मन्त्री पद से हटा दिया गया। इससे जनता बहुत प्रसन्न हुई। इस प्रसन्नता के उपलक्ष में पेरिस की जनता ने रात को दीपावली मनाई। इससे ऐसा दिखाई देने लगा था कि अब संकट दूर हो गया है। इस प्रकार स्पष्टतया यह जनता की विजय तथा राजा की पराजय थी।

अगले दिन उत्तेजित भीड़ ने ग्विजो का मकान घेर लिया। राजा को यह भय हो गया कि कहीं उत्तेजित जनता ग्विजो की हत्या न कर दे। इसलिये राजा ने ग्विजो के मकान की रक्षा के लिए पुलिस भेज दी। पुलिस ने उत्तेजित भीड़ को हटाने के लिये गोली चला दी। इससे २३ आदमी मर गए तथा ३० घायल हो गए। मृतकों के शवों को बड़ी शान के साथ निकाला गया तथा उनकी अमर शहीदों के रूप में पूजा

1. 'France was bored.'
2. 'France was sleeping on a valcano.'

की गई। इससे जनता में उत्तेजना और अधिक बढ़ गई। फ्रांस में सर्वत्र ये नारे लगाए जाने लगे—'लुई फिलिप अत्याचारी है। हमें ऐसा राजा नहीं चाहिए। इसे वहीं भेज दो जहाँ चार्ल्स दशम् गया है।' उत्तेजित भीड़ ने राजप्रासाद को घेर लिया। राजा ने फौज को गोली चलाने की आज्ञा दी; परन्तु फौज पर भी क्रान्तिकारियों का प्रभाव पड़ चुका था। अतः फौज ने क्रान्तिकारियों पर गोली नहीं चलाई। बचाव का कोई उपाय न देखकर २३ फरवरी १८४८ को सम्राट् लुई फिलिप अपने पौत्र पेरिस के काउण्ट (Count De Peris) के पक्ष में सिंहासन त्याग कर डा० स्मिथ के वेश में इंगलैंड भाग गया। गिजो ने भी सम्राट् का अनुसरण किया। क्रान्तिकारियों ने राजप्रासाद को लूट लिया तथा राजसिंहासन को जला दिया। क्रान्तिकारियों ने कहा था कि अब इस राजसिंहासन की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अब देश में कोई राजा नहीं होगा, अब तो देश में प्रजातन्त्र स्थापित होगा। लुई फिलिप के सिंहासन त्याग देने पर लामार्तीन की अध्यक्षता में एक अस्थायी सरकार का निर्माण हुआ और अन्त में फ्रांस में १८४८ में द्वितीय बार गणतन्त्र की स्थापना कर दी गई। इस प्रकार १८४८ की क्रान्ति के फलस्वरूप लुई फिलिप के शासन का अन्त हो गया। १८४८ की क्रान्ति को फरवरी की क्रान्ति भी कहा जाता है।

सन् १८४८ की क्रान्ति के कारणों का सारांश—१८४८ की फ्रांसीसी क्रान्ति का प्रधान कारण लुई फिलिप तथा उसके मन्त्री गिजो का प्रतिक्रियावाद था। लुई फिलिप के सम्बन्ध में हम उसके कार्यों का विस्तारपूर्वक वर्णन कर चुके हैं। फिर भी साधारणतया १८४८ की क्रान्ति के निम्न कारण बतलाये जा सकते हैं :—

(१) मध्यम वर्ग की प्रधानता—हम पीछे उल्लेख कर चुके हैं कि १८३० की क्रान्ति के पश्चात् जनता ने चार्ल्स दशम् को पदच्युत कर उसके स्थान पर लुई फिलिप को सिंहासन पर बैठाया था। लुई फिलिप ने सिंहासन पर बैठने पर जनता को एक उदार संविधान दिया था। इसके अन्तर्गत मतदान व्यापक करने का प्रयास किया गया था, परन्तु फिर भी इससे जनता का अधिक भला नहीं हुआ। मत का आधार धन होने के कारण प्रतिनिधि सभा में सदैव मध्यम वर्ग के लोगों की ही प्रधानता रही। निम्न वर्ग के व्यक्ति प्रतिनिधि सभा में पहुंच नहीं पाते थे। अतः मध्यम वर्ग के लोग अपने हितों को ध्यान में रखते हुए ही कानून बनाया करते थे। मध्यम वर्ग के लोगों को अपने हितों के स्थान पर जनसाधारण के हितों का कोई ध्यान न था। इस प्रकार लुई फिलिप के शासन से जनता को कोई लाभ नहीं हुआ। इससे जनता ने समझा कि हमारे लिये तो चार्ल्स दशम् तथा लुई फिलिप में कोई अन्तर सिद्ध नहीं हुआ। दूसरे शब्दों में १८३० की क्रान्ति से उनको कोई लाभ नहीं हुआ है। इससे वे लुई फिलिप को घृणा की दृष्टि से देखने लगे तथा उसको पदच्युत करने की सोचने लगे।

(२) समाजवाद का उदय—व्यावसायिक क्रान्ति हो जाने के कारण देश में अनेक कल-कारखाने स्थापित हो गए थे। इससे देश में पूँजीपति तथा मजदूर वर्ग का

प्रादुर्भाव हुआ। पूँजीपति दिन प्रतिदिन और धनी होते जा रहे थे और मजदूर दिन प्रतिदिन निर्धन होते जा रहे थे। इससे समाजवाद का उदय हुआ। लुई ब्लांक नामक समाजवादी नेता ने बड़े सुन्दर शब्दों में मजदूरों के हितों का प्रतिपादन किया। उसने मजदूरों को अपनी ट्रेड यूनियन स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित किया। मजदूरों ने अपना संगठन करके वेतन बढ़ाने तथा अन्य सुविधायें प्राप्त करने के लिए सरकार से मांग की। मजदूरों ने मांग की कि वेतन श्रम के अनुसार निर्धारित किया जाय। लुई ब्लांक ने सरकार की आर्थिक नीति की आलोचना की तथा लुई फिलिप की सरकार को 'पूँजीपतियों की सरकार' घोषित किया।[1] परन्तु लुई फिलिप ने साम्यवादियों के इस विरोध की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। उसने इस संघर्ष में पूँजीपतियों का पक्ष लिया। इससे समाजवादी लुई फिलिप के विरोधी हो गये।

(३) **लुई फिलिप की स्थिति का निर्बल होना**—सिंहासन प्राप्त करने पर भी लुई फिलिप की स्थिति निर्बल थी। ४३० सदस्यों में केवल २१९ सदस्यों ने ही उसके पक्ष में मतदान किया था। इस प्रकार प्रतिनिधि सभा के लगभग आधे सदस्य उसके विरोधी थे। सच्चे अर्थों में कोई भी दल उसके साथ नहीं था। राजसत्तावादी चार्ल्स दशम् के पौत्र को सिंहासन पर बैठाना चाहते थे। बोनापार्टिस्ट दल वाले नेपोलियन बोनापार्ट के किसी सम्बन्धी को सिंहासन देना चाहते थे। इस प्रकार लुई-फिलिप की स्थिति बहुत निर्बल थी।

(४) **लुई फिलिप की विदेश नीति**—लुई फिलिप की विदेश नीति बहुत निर्बल थी। अपनी निर्बल नीति के कारण बेल्जियम, इटली, पोलैण्ड तथा मिस्र आदि के मामले में उसको असफलता मिली थी। फ्रांस की जनता उसकी इन असफलताओं से बहुत नाराज थी। वह अभी नेपोलियन महान् को नहीं भूली थी। फ्रांस की जनता विजयों की शृंखला देखना चाहती थी; परन्तु लुई फिलिप में इतनी सामर्थ्य नहीं थी। अतः लुई फिलिप की निर्बल विदेश नीति भी उसके लिये विनाशकारी सिद्ध हुई।

(५) **लुई फिलिप का दमन कार्य**—उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि लुई फिलिप फ्रांस की जनता में लोकप्रिय नहीं था। सर्वत्र उसका विरोध हो रहा था। प्रत्येक पार्टी उसकी नीति से असन्तुष्ट थी। गणतन्त्रवादी तो उसके अस्तित्व को ही समाप्त कर फ्रांस में जनतन्त्र की स्थापना करना चाहते थे। समाचार-पत्रों में उसके कार्टून छापे जा रहे थे। इससे लुई फिलिप बहुत नाराज हुआ। उसने गुप्तचरों की सेनायें दौड़ा दीं। गणतन्त्रवादियों का कठोरता से दमन किया। सभा बुलाने तथा भाषण देने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। समाचार पत्रों पर कठोर सेन्सर लगा दिया गया। परन्तु उसके इन कार्यों से उसका विरोध और भी अधिक बढ़ गया।

१८४८ की क्रान्ति का प्रभाव

लुई फिलिप की प्रतिक्रियावादी नीति से १८४८ में फ्रांस में क्रांति हो गई। इस क्रांति का प्रभाव बहुत व्यापक हुआ। जिस प्रकार तालाब में एक कंकर फेंकने से उसकी लहरें समस्त तालाब में फैल जाती हैं, उसी प्रकार इस क्रांति की लहरें

1. 'Government of the rich, for the rich and by the rich.'

समस्त योरप में फैल गई। इस क्रान्ति का प्रभाव १८३० की क्रांति से भी अधिक था। इस क्रांति के प्रभाव के अन्तर्गत ही प्रतिक्रियावाद के सबसे अधिक शक्तिशाली मेटरनिख का भी पतन हो गया और उसको आस्ट्रिया छोड़ कर भाग जाना पड़ा। अब संक्षेप में हम इस क्रांति का अध्ययन करेंगे —

फ्रांस—लुई फिलिप तथा उसके मन्त्री ग्वीजो के विरोध में पेरिस में एक विशाल सभा का आयोजन किया गया; परन्तु राजा ने इसका विरोध किया। फलतः फरवरी १८४८ में पेरिस में विद्रोह हो गया। विद्रोहियों का नारा था—'ग्वीजो का नाश हो, सुधार चिरजीवी हों, तथा ग्वीजो को मन्त्री पद से पृथक् किया जाय।' अगले दिन क्रांतिकारियों ने ग्वीजो का मकान घेर लिया। राजा को यह भय हो गया कि कहीं क्रांतिकारी ग्वीजो की हत्या न कर दें। इससे उसने ग्वीजो की रक्षा के लिये पुलिस भेज दी। इसके फलस्वरूप २३ व्यक्ति मर गए तथा ३० घायल हो गये। क्रांतिकारियों ने मृत व्यक्तियों का जनाजा बड़ी शान के साथ निकाला तथा उनको अमर शहीद घोषित किया। इससे जनता में उत्तेजना बहुत अधिक बढ़ गई। जनता ने सड़कों पर नारे लगाये—'हमें अत्याचारी राजा की आवश्यकता नहीं है। इसको भी वहीं भेज दिया जाय, जहाँ कि चार्ल्स दशम गया है।' अन्त में क्रांतिकारियों ने राजमहल को घेर लिया। रक्षा के लिये राजा ने सेना को गोली चलाने का आदेश दिया; परन्तु सेना ने गोली चलाने से इंकार कर दिया। फलतः राजा अपने पौत्र पैरिस के काउण्ट के पक्ष में सिंहासन का परित्याग कर इंगलैंड भाग गया। ग्वीजो भी फ्रांस छोड़ कर भाग गया। क्रांतिकारियों ने राजमहल को लूट लिया और सिंहासन को फूँक दिया, क्योंकि अब राजसिंहासन की आवश्यकता नहीं थी। अब तो फ्रांस में गणतन्त्र की स्थापना होनी थी।

लुई फिलिप के भागने के पश्चात् फ्रांस में गणतन्त्रवादी तथा समाजवादी दो सरकारें स्थापित हुईं। अन्त में दोनों दलों के नेताओं ने समझौता कर एक अस्थायी सरकार की स्थापना की। समाजवादियों की ओर से लुई ब्लांक नामक सुप्रसिद्ध लेखक ने इसमें प्रतिनिधित्व किया। गणतन्त्रवादियों ने लुई ब्लांक के एक सिद्धान्त के आधार पर बेकारों को कार्य दिलाने की व्यवस्था स्वीकार की। प्रारम्भ में इस योजना को क्रियान्वित भी किया गया। परन्तु बेकारों की भारी संख्या के कारण यह योजना असफल हो गई। इससे गणतन्त्रवादियों तथा समाजवादियों में तीन दिन तक भयंकर संघर्ष हुआ। अन्त में समाजवादी पराजित हुए तथा फ्रांस में द्वितीय गणतन्त्र की घोषणा कर दी गई।

नेपोलियन तृतीय का उत्कर्ष—नेपोलियन तृतीय नेपोलियन महान् का भतीजा था। नाम की समता के आधार पर यह फ्रांस की जनता को चकाचौंध कर फ्रांस का सिंहासन प्राप्त करना चाहता था। इसी हेतु इसने दो बार फ्रांस में विद्रोह करा दिये थे। इसी अपराध में इसको फ्रांस से निर्वासित करा दिया गया था; परन्तु लुई फिलिप के पतन के पश्चात् यह पुनः फ्रांस में आ गया। व्यवस्थापिका सभा के

निर्वाचन में इसने भाग लिया तथा इसमें यह चुन लिया गया। इसके पश्चात् यह राष्ट्रपति के चुनाव में खड़ा हुआ। इसमें भी इसको सफलता मिली। धीरे-धीरे अपने कूटनीतिक कार्यों से उसने जनता, सेना तथा पोप आदि सभी का समर्थन प्राप्त कर लिया। इस प्रकार उसके उत्कर्ष का मार्ग तैयार हो गया। इसका पूर्ण वर्णन एक अध्याय में अलग से किया जायगा। लिप्सन महोदय ने ठीक ही लिखा है— '१७८९ और १८४८ में क्रांतिकारियों ने फ्रांस में जनतन्त्र स्थापित करने के लिए क्रान्ति की थी; परन्तु परिस्थितिवश दोनों ही अवसरों पर नेपोलियन का साम्राज्य स्थापित हो गया।'

आस्ट्रिया—आस्ट्रिया में रूमानियन, स्लाव, जर्मन, पोल, चैक, इटालियन, हंगेरियन तथा सर्वियन आदि अनेक जातियाँ निवास करती थीं। इस प्रकार आस्ट्रिया विभिन्न जातियों का एक अजायबघर था। राष्ट्रवादियों के प्रचार के कारण इन जातियों में बहुत जागृति आ गई थी। अतः ये अवसर पाकर स्वतन्त्र होने के लिए प्रयास करने लगी थीं। १८४८ की फ्रांसीसी क्रांति का समाचार पाकर अपने समय के कट्टर प्रतिक्रियावादी मेटरनिख के गढ़ आस्ट्रिया में उथल-पुथल होनी प्रारम्भ हो गई। १३ मार्च १८४८ को विएना में यूरोप के पुलिसमैन मेटरनिख के विरुद्ध विद्रोह हो गया। क्रांतिकारियों ने मेटरनिख के महल को घेर कर यह नारा लगाया— 'मेटरनिख का नाश हो।' मेटरनिख एक पुराना हकीम था। वह साध्य तथा असाध्य रोगों को भली प्रकार समझता था। अब वह समझ गया कि यह रोग असाध्य है। अतः वह तुरन्त आस्ट्रिया छोड़ कर अपने मित्र विलिंगटन के पास इंगलैंड चला गया। अपने जीवन के अन्तिम दिन उसने वहीं व्यतीत किये। इस प्रकार १८४८ की क्रांति से अपने समय के सबसे अधिक प्रतिक्रियावादी मेटरनिख का पतन हो गया।

मेटरनिख के भाग जाने से आस्ट्रिया का सम्राट फर्डिनेण्ड प्रथम बहुत घबरा गया। उसने जनता को संतुष्ट करने के लिए शासन में कुछ सुधार किये। उसने कुलीन वर्ग के विशेषाधिकारों का अन्त कर दिया। जनता को सभा करने भाषण देने तथा पत्र निकालने की आज्ञा दे दी। एक उदार विधान बनाने का भी आश्वासन दिया। परन्तु क्रांतिकारी इससे सन्तुष्ट नहीं हुए। वे फ्रांस में गणतन्त्र स्थापित करना चाहते थे। इससे सम्राट फर्डीनेण्ड बहुत घबरा गया और वह भी अपने प्रधान मन्त्री मेटरनिख की भांति देश छोड़ कर भाग गया।

क्रांतिकारियों ने देश के लिए एक नवीन संविधान बनाने के लिए एक सभा बुलाई। इस सभा के अधिकांश सदस्य वैध राजसत्ता के पक्षपाती थे। अतः क्रांतिकारियों ने पुनः राजा को बुला लिया। राजा फर्डिनेण्ड ने बड़ी शान से विएना में प्रवेश किया। परन्तु इसके कुछ ही दिन बाद हंगरी तथा बोहेमिया आदि में क्रांति हो गई। इससे क्रांतिकारियों ने उत्तेजित होकर पुनः आस्ट्रिया में गणतन्त्र की स्थापना का निश्चय किया। इससे राजा भयभीत हो गया और वह पुनः आस्ट्रिया छोड़ कर भाग गया। परन्तु सेना बराबर उसके साथ रही। सेना ने पूर्ण तैयारी के

साथ विएना पर आक्रमण किया। सेना तथा क्रांतिकारियों में भयंकर युद्ध हुआ। अन्त में क्रांतिकारी पराजित हो गये। सेना ने कठोरतापूर्वक उनका दमन किया और राजा फर्डिनैण्ड पुन: आस्ट्रिया का सम्राट घोषित किया गया। इस प्रकार १८४८ की क्रांति आस्ट्रिया में असफल रही। इसका प्रधान कारण यह था कि सेना ने अन्त तक राजा का साथ नहीं छोड़ा। परन्तु इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि इस क्रांति के फलस्वरूप मेटरनिख का पतन हो गया।

बोहेमिया—बोहेमिया आस्ट्रिया के सम्राट के अधीन था। बोहेमिया में जर्मनों की संख्या बहुत अधिक थी। वहाँ की दूसरी प्रमुख जाति जेक (Czeek) थी। जेक नेताओं ने आस्ट्रिया के सम्राट से कुछ सुविधायें प्राप्त कर लीं। परन्तु जर्मनों ने इसका विरोध किया। अत: इस समस्या का समाधान करने के लिये प्राग में एक राष्ट्रीय सभा (Pan-Slav Congress) बुलाई गई। परन्तु इसी बीच जेकों ने जर्मनों के विरुद्ध क्रान्ति कर दी। क्रान्तिकारियों ने प्राग के सेनापति विन्डिसग्रेट्स (Windischgratz) के मकान पर आक्रमण कर किया। इस आक्रमण में उसकी पत्नी मारी गई। इस पर विन्डिसग्रेट्स ने प्राग पर आक्रमण कर दिया। भारी बम्ब वर्षा के फलस्वरूप देश-भक्तों ने आत्म-समर्पण दिया। इस प्रकार सेना की सहायता से बोहेमिया की क्रान्ति का भी अन्त कर दिया गया।

हंगरी—हंगरी भी आस्ट्रिया के अधीन था। वहाँ पर भी पर्याप्त समय से कोसूथ (Kossuth) तथा डीक (Deak) राष्ट्रीय विचारों का प्रचार कर रहे थे। फ्रांसीसी राज्य क्रान्ति का समाचार सुनकर मार्च १८४८ में हंगरी में भी विद्रोह हो गया। विवश होकर आस्ट्रिया के सम्राट ने हंगरी को स्वायत्त शासन दे दिया। नवीन मन्त्रि-मण्डल ने अनेक कानून पास कर हंगरी से पुरातनवाद का विनाश करने का निश्चय किया। सामन्त प्रथा का अन्त कर दिया गया। कुलीनों के विशेषाधिकारों का अन्त कर दिया गया। सामाजिक तथा धार्मिक दृष्टि से सबको समानता प्रदान की गई। हंगरी के राष्ट्रीय ध्वज को मान्यता प्रदान कर दी गई। परन्तु हंगरी में बसने वाली गैर हंगेरियन जातियों को इससे कोई लाभ नहीं हुआ। उनको मन्त्रि-मण्डल में भी शामिल नहीं किया गया। इससे उन जातियों में बहुत असंतोष उत्पन्न हुआ। उन्होंने स्थान-स्थान पर विद्रोह करने प्रारम्भ कर दिये। आस्ट्रिया के सम्राट् ने विद्रोही जातियों को प्रोत्साहन दिया। इस पर देशभक्तों ने हंगरी में गणतन्त्रात्मक शासन की स्थापना कर आस्ट्रिया से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। कोसूथ को गणतन्त्रात्मक सरकार के अन्तर्गत राष्ट्रपति बनाया गया। क्रान्तिकारियों ने ने सेनापति विन्डिसग्रेटज को दो युद्धों में पराजित कर दिया। हंगरी के इस गणतन्त्र से रूस को भी भय हो गया। वह अपनी सीमा पर इस प्रकार के गणतन्त्रात्मक आन्दोलनों को पनपने देना अपने लिए खतरे की घण्टी समझता था। अत: उसने आस्ट्रिया के सम्राट की सहायता के लिये डेढ़ लाख सेना भेज दी। पश्चिम से विन्डिस-ग्रेट्स ने हंगरी पर आक्रमण कर दिया। फलत: हंगरी के देश-भक्त पराजित हो

गये। कोसूथ किसी प्रकार जान बचाकर टर्की भाग गया। देश-भक्तों को मौत के घाट उतार दिया गया। कोसूथ टर्की से इंगलैंड तथा अमेरिका आदि देशों में भी सहायता लिये गया; परन्तु वहाँ से उसको कोई सहायता नहीं मिली। अन्त में निराशावस्था में उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार हंगरी की क्रान्ति का भी दमन कर दिया गया।

इटली—इटली में भी पर्याप्त समय से सुधारवादी आन्दोलन चल रहा था। १८४६ में पोप पायस नवम् सिंहासनासीन हुआ। यह आस्ट्रिया के प्रभाव का विरोधी था। उसने एक उदार संविधान का निर्माण कराया। उसने प्रेस, भाषण तथा सभाओं पर स्थापित प्रतिबन्ध का अन्त कर दिया तथा राजनीतिक बन्दियों को मुक्त कर दिया। मेटरनिख इससे घबरा गया। उसने कहा था कि हमको ऐसी आशा कभी नहीं थी कि पोप उदार हो जायगा; परन्तु अब ऐसा हो गया है। धीरे-धीरे समस्त इटली में यह सुधारवादी भावना फैल गई। साडीनिया-पीडमाण्ट के राजा एलबर्ट ने एक उदार संविधान की घोषणा की। सिसली तथा नेपिल्स में भी सुधारों के लिए आन्दोलन चलने लगा। अन्त में इन दोनों राज्यों ने स्वायत्त शासन प्राप्त कर लिया। मोडेना तथा टस्कनी में भी जनता की माँगों को स्वीकार कर लिया गया।

अन्त में १८४८ की फ्राँसीसी क्रान्ति का समाचार पाकर विद्रोह हो गया। सर्वप्रथम मिलान में विद्रोह की अग्नि प्रज्ज्वलित हुई। जनता तथा आस्ट्रिया की सेना में पांच दिन तक भयंकर युद्ध हुआ। इसमें जनता को सफलता मिली। वेनिस, पर्मा तथा मोडेना में भी विद्रोह हो गया। २३ मार्च १८४८ को साडीनिया के राजा एल्बर्ट ने अपने को क्रान्ति का नेता घोषित किया। जनता के प्रोत्साहन पर टस्कनी के ग्राँड ड्यूक ने भी विद्रोह कर दिया। नेपिल्स ने भी इसका पक्ष लिया। मिलान, वेनिस, मोडेना तथा पर्मा आदि में जनमत संग्रह हुआ तथा इन्होंने पीडमाण्ट के साथ रहने का निश्चय किया। मेजिनी भी इस युद्ध में भाग लेने के लिये इटली आ गया। इस समय ऐसा दिखाई देने लगा था कि अब शीघ्र ही इटली एक राष्ट्र के रूप में संगठित हो जायगा।

इस प्रकार इटली पर १८४८ की क्रान्ति का १८३० की क्रान्ति की अपेक्षा अधिक प्रभाव पड़ा। परन्तु अन्त में यह क्राँति भी असफल हो गई। सर्वप्रथम पोप पायस नवम् ने युद्ध से हाथ खींच लिया, क्योंकि आस्ट्रिया का सम्राट एक सच्चा कैथोलिक था। नेपिल्स के राजा ने भी अपनी सेनाओं को वापस बुला लिया। परन्तु साडीनिया-पीडमाण्ट का राजा एल्बर्ट बराबर युद्ध करता रहा। परन्तु आस्ट्रिया की सेना ने कुस्तोजा तथा नोवारा के युद्ध में उसको क्रमशः पराजित किया। इसके पश्चात् एल्बर्ट ने अपने पुत्र विक्टर इमानुएल को गद्दी दे दी। विक्टर इमानुएल ने आस्ट्रिया से सन्धि करने के लिये वार्ता प्रारम्भ की। आस्ट्रिया के सेनापति ने यह शर्त रक्खी कि तुम अपने पिता का दिया हुआ संविधान भंग कर दो; परन्तु विक्टर एमानुएल इसके लिए तैयार नहीं हुआ। उसने कहा कि 'इस शर्त को स्वीकार करने की अपेक्षा मैं सौ राजमुकुटों को खो देना अधिक पसंद करूंगा। यदि आप जीवन-मरण

का युद्ध करना चाहते हैं, तो उसको होने दो। मैं एक बार पुनः युद्ध करने के लिए अपना संगठन कर लूंगा। यदि मैं इसमें असफल रहा तो मेरे लिए यह कोई शर्म की बात नहीं होगी। मेरा परिवार निर्वासन सहन कर सकता है; परन्तु अपमान सहन नहीं कर सकता।[1] अतः सन्धि की शर्तों में से आस्ट्रिया ने इस शर्त को हटा दिया। इस प्रकार विक्टर इमानुएल ने अपने उदार संविधान को बनाए रक्खा। इस प्रकार विक्टर इमानुएल इटली के एकीकरण का नायक माना जाने लगा। पराजित होने पर भी इस वंश की प्रतिष्ठा में बहुत अधिक वृद्धि हो गई। इसके पश्चात् पर्मा, मोडेना, वेनिस तथा लोम्बार्डी आदि के विद्रोहों को आस्ट्रिया ने दबा दिया। उदार संविधानों को भग कर दिया गया। इस प्रकार १८४८ की क्रान्ति के पश्चात् एक बार पुनः इटली में पुरातन राज्यों की स्थापना हो गई।

क्रान्ति का रोम पर प्रभाव—रोम का पोप पायस नवम बहुत उदार था। उसने अनेक सुधारों की घोषणा की थी, परन्तु आस्ट्रिया के विरुद्ध चलने वाले स्वतन्त्रता-संग्राम में उसने मध्य में ही हाथ खींच लिया था। इससे मैजिनी के नेतत्व में रोम निवासियों ने विद्रोह कर पोप पायस नवम को गद्दी छोड़कर भागने के लिए विवश किया। पोप के भाग जाने पर रोम में गणतन्त्र की स्थापना की गई। परन्तु मेजिनी ने कार्य से कैथोलिक उसके विरोधी हो गये और फ्रांस के राष्ट्रपति नेपोलियन तृतीय की सहावता से पोप को पुनः रोम के सिंहासन पर बैठा दिया गया।

इटली में क्रान्ति की असफलता के कारण—१८४८ की क्रान्ति इटली में असफल हो गई। उसके निम्न कारण बताए जा सकते हैं—

१. चार्ल्स एल्बर्ट को अन्य राजाओं का पूरा-पूरा सहयोग नहीं मिला। पोप ने युद्ध के मध्य में ही सहायता देना बन्द कर दिया। टस्कनी तथा नेपिल्स ने भी एल्बर्ट का साथ नहीं दिया। अतः अकेला एल्बर्ट आस्ट्रिया की सेनाओं के सम्मुख पराजित हो गया।

२. मैजिनी ने पोप के राज्य में जनता से विद्रोह कराकर कर पोप को भगा दिया था तथा वहाँ गणतन्त्र की स्थापना करा दी थी। इससे कैथोलिक संसार इटैलियन देश-भक्तों का विरोधी हो गया।

३. इटली के देश-भक्तों के हित अलग-अलग थे। एल्बर्ट इटली में वैधानिक शासन स्थापित करना चाहता था। मैजिनी इटली में गणतन्त्र स्थापित करना चाहता था तथा कुछ देश-भक्त पोप की अध्यक्षता में एक संघ-राज्य की स्थापना करना चाहते थे। इससे देशभक्त ठीक प्रकार से मिलकर कार्य करने में असमर्थ रहे।

जर्मनी—१८४८ की क्रान्ति का जर्मनी पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। पर्याप्त समय से अध्यापक तथा विद्यार्थी जर्मनी में जागृति उत्पन्न कर रहे थे। मजदूर

---

1. '......I would lose a hundred crowns...... . If you want war to the death, be it so. I will call my people once more to arms......If I fail, it shall be without shame. My house knows the road of exile but not of dishonour.'

लोग अपनी दशा में परिवर्तन करने के बहुत इच्छुक थे । १८४८ की क्रान्ति का समाचार पाकर जर्मन देश-भक्तों में दुगुना उत्साह आ गया । फलतः १३ मार्च १८४८ को प्रशा की राजधानी बर्लिन में क्रान्ति हो गई । सड़कों पर जनता ने स्वतन्त्रता प्राप्त करने के नारे लगाए । अन्त में क्रान्ति-कारियों ने प्रशा के राजा फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ ने राजप्रासाद पर आक्रमण कर दिया । फलतः पुलिस को गोली चलानी पड़ी । इस हत्या-काण्ड में २०० क्रान्तिकारी मारे गये । इससे क्रान्ति बहुत तीव्र हो गई । फलतः राजा ने क्रान्तिकारियों की मांगों को स्वीकार कर लिया तथा मृत शहीदों को अपनी श्रद्धांजली अर्पित की । फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ को यह आश्वासन देना पड़ा कि वह क्रान्तिकारियों का नेतृत्व करेगा । इसके पश्चात प्रायः सभी जर्मन रियासतों में क्रान्ति हो गई और प्रत्येक स्थान पर क्रान्तिकारियों को सफलता मिली ।

फ्रैन्कफर्ट की पार्लियामैन्ट (Frankfurt Parliament)—राष्ट्रवादियों ने सार्वजनिक मताधिकार के आधार पर समस्त नागरिकों द्वारा निर्वाचित एक राष्ट्रीय सभा की स्थापना की । इसका कार्य जर्मन-संघ के लिए एक संविधान का निर्माण करना था । मई के महीने में फ्रैन्कफर्ट नामक स्थान पर इस सभा का कार्य बहुत धीरे-धीरे चला । इसके सदस्यों ने मनुष्यों के मूलाधिकारों के सोच-विचार में ही बहुत समय नष्ट कर दिया । इस संघ में आस्ट्रिया को रक्खा जाय अथवा नहीं, इस पर भी बहुत वाद-विवाद चला । अन्त में फ्रैन्कफर्ट संसद ने निम्न निर्णय प्रस्तुत किए—

१. नवीन संघ में आस्ट्रिया को नहीं रक्खा जायगा, क्योंकि वह एक विदेशी राज्य है ।

२. नए संघ का अध्यक्ष प्रशा का सम्राट् होगा और उसका पद वंशानुगत होगा ।

३. केन्द्र में दो भवनो वाली संसद का निर्माण किया जायगा ।

अन्त में २८ मार्च १८४९ को इस पार्लियामैन्ट ने जर्मनी का सम्राट्-पद फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ को देना चाहा । परन्तु उसने इसको लज्जाजनक मुकुट (Crown of shame) कहकर ग्रहण करने से अस्वीकार कर दिया । उसने जनता के प्रतिनिधियों द्वारा ताज को ग्रहण करना अपना अपमान समझा । यदि राज्यों के राजा उसे इसको दे देते तो वह इसको स्वीकार कर लेता । इसके साथ-साथ उसको आस्ट्रिया तथा प्रशा के विरोध का भी भय था । अतः उसने लज्जा-जनक ताज (Crown of shame) को इन शब्दों के साथ ग्रहण करने से इन्कार कर दिया—'I do not want to be the seal of Revolution' इससे जर्मनी के एकीकरण की योजना असफल हो गई । राष्ट्रवादियों को इससे बड़ा दुःख हुआ । बहुत से स्थानों पर दंगे हो गये; परन्तु प्रशा की सेना ने उसका दमन कर दिया । इस प्रकार फ्रैन्क-फर्ट की संसद की योजना असफल हो गई ।

इरफर्ट की संसद (Erfurt Parliament)—फ्रैंकफर्ट की पर्लियामैंट के असफल हो जाने पर फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ ने सैक्सनी तथा हैनोवर आदि कुछ प्रदेशों को मिलकर इरफर्ट में एक दूसरी संसद बुलाई। इसके निम्न उद्देश्य थे—

१. जर्मनी राष्ट्रों का संगठन किया जायगा।

२. आस्ट्रिया को जर्मन संघ से बाहर निकाल दिया जायगा।

३. जमान संघ में एक द्विसदनात्मक संसद होगी।

परन्तु इस समय तक क्रान्ति की लहर समाप्त हो गयी थी। इस समय मेटरनिख के स्थान पर स्वार्जिनवर्ग आस्ट्रिया का प्रधान मंत्री हो गया था। उसने इरफर्ट संसद का विरोध किया। उसने हैनोवर तथा सैक्सनी आदि राज्यों को अपनी ओर मिला लिया। अन्त में नवम्बर १८५० में ओल्मुज (Olmutz) नामक स्थान पर पुरानी संसद का अधिवेशन हुआ। इसमें फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ ने १८१५ के अनुसार आस्ट्रिया द्वारा बने संघ का सदस्य बने रहना स्वीकार कर लिया। अन्त में फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ ने जनता को एक उदार संविधान दिया। यद्यपि इस संविधान में कुलीन वर्ग की प्रधानता थी, फिर भी आस्ट्रिया ने इसका विरोध किया। परन्तु सम्राट फ्रेडरिक विलियन चतुर्थ ने इसकी कोई परवाह न की। इरफर्ट संसद के भंग हो जाने पर फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ को बहुत दुःख हुआ और १८५७ में वह पागल हो गया। इस प्रकार १८४८ की क्रान्ति भी जर्मनी में असफल रही।

हालैंड—फ्राँस की १८४८ की क्रान्ति के फलस्वरूप हालैंड में भी क्रान्ति हो गई। अतः विवश होकर वहाँ के राजा विलियम द्वितीय को जनता को एक उदार संविधान देना पड़ा। इस संविधान के अन्तर्गत मन्त्रि-मण्डल राष्ट्रीय संसद के प्रति उत्तरदायी माना गया। जनता को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की गई। जनता को सभा करने, भाषण देने तथा पत्र प्रकाशित करने का अधिकार दे दिया गया।

स्विटजरलैंड—इससे पूर्व स्विटजरलैण्ड की स्थिति बहुत खराब थी। वहाँ कैथोलिकों तथा प्रोटेस्टेन्टों में भारी संघर्ष चल रहा था। शासन की समस्त शक्ति कुलीनों के हाथ में थी। जन साधारण के हितों का इनको कोई ध्यान न था। फलतः १८४८ की क्रान्ति का समाचार पाकर स्विटजरलैण्ड में भी जागृति उत्पन्न हुई तथा वहाँ एक उदार विधान की स्थापना की गई।

इंगलैंड—१८३२ के सुधार ऐक्ट से निर्धनों को कोई लाभ नहीं हुआ था। अतः वहाँ १८३८ में एक चार्टर लीग की स्थापना की गई। इन लोनों ने एक चार्टर तैयार किया। उसमें उन्होंने छः मांगें रक्खीं—

१. संसद के सदस्यों को वेतन दिया जाय।

२. संसद का निर्वाचन प्रति वर्ष हो।

३. संसद का सदस्य होने के लिए साम्पत्तिक योग्यता का अन्त कर दिया जाय।

४. मतदान प्रणाली गुप्त हो।

५. निर्वाचन क्षेत्र समान हों।

६. वयस्क पुरुषों को मताधिकार प्रदान किया जाय।

ओकोनर तथा लावेट इस आन्दोलन के नेता थे। उन्होंने सर्वप्रथम १८३९ में १० हजार व्यक्तियों के हस्ताक्षर कराकर एक चार्टर संसद के सम्मुख पेश किया; परन्तु संसद ने इसको अस्वीकार कर दिया। इससे कुछ स्थानों पर चार्टिस्टों ने विद्रोह कर दिया। फलतः सरकार को उनका दमन करना पड़ा। इस संघर्ष में ३० चार्टिस्ट मारे गये तथा उनके नेता जेलों में डाल दिये गये। १८४२ में उन्होंने दूसरा चार्टर सरकार के सम्मुख प्रस्तुत किया। इस बार इन्होंने उस पर ३० लाख व्यक्तियों के हस्ताक्षर कराये। परन्तु संसद ने इस चार्टर को भी अस्वीकृत कर दिया। पील की सरकार ने ७९ चार्टिस्टों को देश-निर्वासन का दण्ड दिया तथा १५०० को जेलों में डाल दिया। १८४८ की फ्रांसीसी सरकार ने चार्टिस्टों में नई आशा का संचार किया। अतः इस बार उन्होंने एक विशाल चार्टर तैयार कराया और उस पर लगभग ५०-६० मनुष्यों के हस्ताक्षर कराये। ये इस चार्टर को लेकर संसद के सम्मुख प्रदर्शन करना चाहते थे; परन्तु वेलिंगटन के ड्यूक ने १ लाख ७ हजार स्पेशल सैनिकों द्वारा इनका मार्ग रोक दिया और इनको वेस्ट मिनिस्टर ब्रिज से आगे न बढ़ने दिया। इस बीच वर्षा होने से भी बहुत से व्यक्ति भाग गये। इसके पश्चात् एक गाड़ी रखकर चार्टर को संसद में ले जाया गया। वहाँ उसकी जांच की गई और उसमें अनेक हस्ताक्षर जाली पाये गये। महारानी तथा वेलिंगटन के ड्यूक के हस्ताक्षर भी जाली थे। कुछ हस्ताक्षर ऐसे थे जिन नामों के व्यक्ति इंगलैंड में थे ही नहीं। बहुत से हस्ताक्षर बार-बार किये गये थे। इससे चार्टिस्टों की बहुत बदनामी हुई और वे मजाक का विषय बन गए तथा उनको दबाने की आवश्यकता न रही। यद्यपि चार्टिस्ट आन्दोलन असफल हो गया परन्तु इससे सरकार को यह पता चल गया कि शासन में सुधार की आवश्यकता है। अतः चार्टिस्टों की द्वितीय मांग के अतिरिक्त कालान्तर में शेष सभी मांगों को धीरे-धीरे स्वीकार कर लिया गया।

१८४८ की क्रान्ति का महत्व—यद्यपि १८४८ की क्रान्ति प्रायः प्रत्येक देश में असफल हो गई, फिर भी इसका बहुत अधिक महत्व है। इससे यूरोप के प्रायः समस्त देश किसी न किसी रूप में प्रभावित हुए। इंगलैंड तक इसके प्रभाव से न बच सका। इस क्रान्ति के फलस्वरूप ही मेटरनिख का पतन हो गया तथा उसकी प्रतिक्रियावादी व्यवस्था पर आधारित महल पूरी तरह नष्ट हो गया। प्रशा तथा सार्डिनिया में जनता की मांगों को स्वीकार कर उदार संविधान लागू किये गये। इस प्रकार राष्ट्रीयता के विकास में १८४८ की क्रान्ति का बहुत अधिक महत्व है।

१८४८ की क्रान्ति की असफलता के कारण—संक्षेप में १८४८ की क्रान्ति की असफलता के निम्न कारण बताये जा सकते हैं :—

(१) क्रान्ति को दबाने में राजाओं ने आपस में सहयोग से कार्य किया। आस्ट्रिया के सम्राट को हंगरी की क्रान्ति का दमन करने के लिये रूस के सम्राट ने सहायता दी। आस्ट्रिया के सम्राट ने इटली तथा जर्मनी की क्रान्तियों के दमन करने

का कार्य किया। क्रान्तिकारियों को विदेशों से कोई सहायता न मिली। कोसूथ ने इंगलैंड तथा अमरीका से सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया, परन्तु इसको कहीं से कोई सहायता न मिली।

(२) क्रान्ति के नेताओं में एकमत का अभाव रहा। फ्रांस तक में गणतन्त्र-वादियों तथा समाजवादियों में भयंकर युद्ध हुआ। हंगरी में भी नेता इसी प्रकार परस्पर झगड़ते रहे। इटली में भी क्रान्तिकारी एकमत न हो सके। वहाँ कुछ लोग गणतन्त्र स्थापित करना चाहते थे, कुछ वैध राजतन्त्र की स्थापना के समर्थक थे तथा कुछ पोप के नेतृत्व में एक संघ राज्य स्थापित करना चाहते थे। इसी प्रकार अन्य देशों में भी नेता एक दूसरे के विरोधी थे। वे सब मिलकर संयुक्त रूप से निरंकुश राजाओं का मुकाबला न कर सके, परन्तु निरंकुश सम्राटों ने परस्पर मिलकर उनका दमन कर दिया।

(३) देशों में अनेक जातियाँ रहती थीं। इनमें आपस में सहयोग नहीं था। एक जाति दूसरी जाति को संदेह की दृष्टि से देखती थी। बोहेमिया में जर्मन तथा जेक जाति का संघर्ष इसी प्रकार का था। इन जातियों के संघर्ष से निरंकुश राजाओं ने लाभ उठाया।

(४) क्रान्तिकारी दल भली प्रकार संगठित न थे फलतः निरंकुश राजाओं ने अपनी सेना के बल पर कठोरतापूर्वक उनका दमन करा दिया।

(५) यद्यपि इस क्रान्ति के फलस्वरूप घोर प्रतिक्रियावादी नेता मेटरनिख का पतन हो गया, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं था कि प्रतिक्रियावाद का ही अन्त हो गया था। निरंकुश राजाओं का उनकी सेनाओं ने अन्त तक साथ दिया। अतः क्रान्ति को भली प्रकार दबा दिया गया।

प्रश्न (बी० ए०)

१ 'सन् १८३० की क्रान्ति फ्रांस के इतिहास में एक बहुत महत्वपूर्ण घटना थी।' इस कथन की पुष्टि कीजिये।

२ 'सन् १८३० में फ्राँस का इतिहास समस्त यूरोप का इतिहास था।' आप इस विचार से कहाँ तक सहमत हैं?

३ सन् १८३० की क्रान्ति के कारणों का परीक्षण कीजिए।

४ चार्ल्स दशम् की गृह-नीति और विदेशी नीति की विवेचना कीजिये।

५ लुई फिलिप की गृह-नीति और विदेशी नीति की आलोचना कीजिये।

६ लुई फिलिप के सम्मुख कौन-कौन सी कठिनाइयाँ थीं? उन्हें दूर करने में वह कहाँ तक सफल अथवा असफल रहा?

७ १८४८ का वर्ष योरप के इतिहास में क्रान्ति का वर्ष था। इस कथन की समीक्षा कीजिये।

८ १८३० और १८४८ की क्रान्तियों की तुलना कीजिये।

९ १७९३ और १७९५ में पोलैण्ड के विभाजन का विवरण लिखिये।

Questions (M. A.)

1 'A government by priests, through priests and for priests.' Give a critical account of Charels X.'s home policy.

2 'The influence of the Revolution of 1830 was felt all over Europe—in Poland, Germany, Italy, Switzerland, England, and the Netherlands.' Discuss.

3 'France is bored.' Do you agree with this condemnation of Louis Philippe's internal and foreign policy? In either case, give your reasons.

4 The July Monarchy of France met the fate which it amply deserved.' Comment.

5 'The year of 1848 was the year of Revolutions in Europe.' Amplify.

6 'The year 1848 was a year of miracles.' Examine the truth of this statement.

—:o:—

३ मेटरनिख (१७७३—१८५९)

मेटरनिख; नेपोलियन और एलेग्जेण्डर के प्रति दृष्टिकोण; विएना कांग्रेस में; पवित्र सन्धि और चतुःराज्य संधि; प्रतिक्रियावाद; गृह नीति; जर्मनी और इटली में नीति; मूल्यांकन।

मेटरनिख—मेटरनिख उन्नीसवीं शताब्दी के महान् कूटनीतिज्ञों में गिना जाता है। अपने विचारों और कार्यों से उसने अन्तर्राष्ट्रीय नीति को जितना अधिक प्रभावित किया उतना सम्भवतः उसके किसी भी समकालीन ने नहीं। उसका महत्व इसी बात से स्पष्ट हो जाता है कि १८१५ से लेकर १८४८ तक का युग योरोपीय इतिहास में मेटरनिख युग (Age of Metternich) के नाम से प्रख्यात है।

मेटरनिख का जन्म मई १७७३ में काब्लेंज नामक नगर में हुआ था। उसने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा जैकोबिन जान फ्रीड्रिख साइमन से पाई थी। उच्च शिक्षा के लिये वह स्ट्रासबर्ग और मेंज के प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों में पढ़ा था। अपनी तरुणावस्था में उसने फ्रांसीसी क्रान्ति की लोमहर्षक घटनायें सुनी थीं। उसके भयंकर रक्तपात ने उसके तरुण मस्तिष्क के ऊपर भारी प्रभाव डाला था। कालान्तर में वह फ्राँस से भागे हुये प्रवासी फ्राँसीसी सामन्तों और पादरियों के सम्पर्क में आया। इनके प्रतिक्रियावादी विचारों ने भी उसे प्रभावित किया था। कुछ समय पश्चात् वह इंगलैंड गया। वहाँ वह पिट, फाक्स और बर्क आदि राजनीतिज्ञों से मिला था। ये भी फ्राँसीसी क्रान्ति की आत्यान्तिकता और उग्रता के विरोधी थे। इस प्रकार मेटरनिख की अन्तश्चेतना में क्रांति-विरोधी विचार क्रमशः पुष्ट होते गये।

मेटरनिख प्रारम्भ से ही अत्यन्त शिष्ट, कुशाग्रबुद्धि और वाक्पटु था। १८०१ में वह ड्रेस्डेन में और १८०३ में बर्लिन में मंत्री नियुक्त किया गया। १८०६ से लेकर १८०९ तक उसने पेरिस में राजदूत के रूप में कार्य किया। इस समय तक उसकी ख्याति काफी फैल चुकी थी। अतः आस्ट्रिया के सम्राट् फांसिस प्रथम ने १८०९ में उसे अपना प्रधान मन्त्री बनाया। इस पद पर वह १८४८ तक रहा।

मेटरनिख के सौभाग्य से उसका सम्राट् भी उसी की भाँति प्रतिक्रियावादी और एकतन्त्रवादी था। वह कहा करता था कि सम्पूर्ण संसार पागल है और नवीन संविधान चाहता है। ऐसे सम्राट् और मेटरनिख में पूर्ण सहयोग होना स्वाभाविक था।

1. 'The whole world is mad and wants new constitutions.'

१८३५ में फ्राँसिस प्रथम की मृत्यु के पश्चात् फर्डीनेण्ड प्रथम राजा हुआ। यह १८४८ तक राज्य करता रहा। यह फ्राँसिस प्रथम से भी गया बीता था। न इसमें शासन की योग्यता थी और न रुचि। अतः इसके शासन काल में भी प्रधान मन्त्री मेटरनिख पूर्ण प्रभावशाली रहा।

नेपोलियन और एलेग्जेण्डर के प्रति दृष्टिकोण—नेपोलियन के युद्धों के प्रति आस्ट्रिया की जो नीति थी वह वस्तुतः मेटरनिख द्वारा ही निर्मित हुई थी। मेटरनिख ने नेपोलियन के व्यक्तित्व को भली-भाँति समझ रक्खा था। वह नेपोलियन की कुशाग्रबुद्धि और कार्यपटुता से बड़ा प्रभावित था। वह कहा करता था कि नेपोलियन जिस किसी युग में उत्पन्न होता उसी को प्रभावित करता।[1] परन्तु वह उसकी महत्वाकाँक्षा और उसके हठपूर्ण स्वभाव को खतरनाक समझता था।

परन्तु मेटरनिख रूसी जार एलेग्जेण्डर प्रथम को भी कम खतरनाक नहीं समझता था। उसका मत था कि भावुकता और आवेश में आकर एलेग्जेण्डर आस्ट्रिया के लिये कोई भी संकटपूर्ण स्थिति उत्पन्न कर सकता है। रूस भी कुछ कम शक्तिशाली देश न था। योरप के अन्यान्य देश नेपोलियन से युद्ध करते-करते थक गये थे। परन्तु रूस इस युद्ध में सबसे बाद को सम्मिलित हुआ था। अतः उसकी शक्ति का अधिक ह्रास न हुआ था। इस परिस्थिति में मेटरनिख ने कूटनीति से काम लिया। उसने कभी नेपोलियन को और कभी एलेग्जेण्डर को सहानुभूति और सहायता का आश्वासन दिया। १८१० में उसने अपने सम्राट् फ्रांसिस प्रथम की पुत्री मेरी लूसी का विवाह नेपोलियन के साथ करा दिया। उधर रूस को सन्तुष्ट रखने के लिये उसने १८१२ के रूसी-फ्राँसीसी युद्ध में नेपोलियन की कोई विशेष सहायता भी न की।

रूस में नेपोलियन की पराजय के पश्चात् मेटरनिख ने रूस, प्रशा, आस्ट्रिया और फ्राँस के बीच सन्धि-वार्ता चलाई जिससे योरप में शान्ति स्थापित की जा सके। इस उद्देश्य से उसने १८१३ में प्राग सम्मेलन किया। परन्तु इंगलैंड के विरोध और नेपोलियन के दुराग्रह के कारण यह सम्मेलन असफल रहा। इस समय तक नेपोलियन की पराजय अवश्यम्भावी हो गई थी। मेटरनिख ने नेपोलियन से वार्ता करते हुये उसके मुंह पर भी कह दिया था कि आपका अन्त निकट है।[2]

अब मेटरनिख ने मित्र राष्ट्रों के साथ मिल कर नेपोलियन के विरुद्ध युद्ध करने का निश्चय किया। उसने नेपोलियन को पराजित करने में महत्वपूर्ण योग दिया।

नेपोलियन की पराजय के बाद योरोपीय व्यवस्था बनाने के लिये विएना का अधिवेशन हुआ। मित्र राष्ट्रों ने मेटरनिख के प्रभाव को स्वीकार करते हुये ही उसकी

---

1. 'He would have played a prominent part at whatever epoch he had appeared'.

2. 'Sire, you are a lost man'.

राजधानी को इस अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का स्थान चुना था। इस समय मेटरनिख अपनी प्रतिष्ठा की पराकाष्ठा पर था। विएना काँग्रेस के अधिकाँश निर्णय उसकी मन्त्रणा से हुये थे। अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करने के मार्ग में वह अब भी रूस को सबसे बड़ा बाधक समझता था। अत: वह बराबर एलेग्जेण्डर प्रथम को जनतन्त्रवादी आन्दोलनों और संवैधानिक माँगों से उत्पन्न होने वाले खतरे से सावधान करता रहता था। उसके सिखाने-पढ़ाने का प्रभाव यह हुआ कि १८१८ तक एलेग्जेण्डर भी मेटरनिख की नीति का समर्थक हो गया। उसने अपनी रही-सही उदारता को भी त्याग दिया।

विएना कांग्रेस—विएना काँग्रेस ने आस्ट्रिया के मानचित्र में भी अनेक परिवर्तन किये। आस्ट्रिया ने स्वेच्छा से दक्षिणी जर्मनी और बेल्जियम के अपने प्रदेश छोड़ दिये। इन्हें वह दूरवर्ती समझता था। उसके विचार से इन पर शासन करना कठिन था। परन्तु पोलैण्ड में उसके भाग उसे पुनः दे दिये गये। बेल्जियम के बदले उसे इटली में लोम्बार्डी और वेनेशिया के प्रदेश भी प्राप्त हुये। एड्रिआटिक सागर के तट पर उसे इलीरिया-प्रदेश भी दिया गया। इस तटीय प्रदेश के हाथ में आ जाने से उसकी सामुद्रिक शक्ति बढ़ गई। पश्चिम में उसे टाइरोल और साल्जबर्ग के प्रदेश भी प्राप्त हुये।

इस काँग्रेस में मेटरनिख का दृष्टिकोण यह था कि आस्ट्रिया साम्राज्य की सीमाओं से फ्रांस को दूर रक्खा जाय[1] जिससे क्रांतिकारी फ्रांसीसी विचारों का प्रभाव आस्ट्रिया पर न पड़े।

नवीन प्राप्त प्रदेशों से आस्ट्रिया-साम्राज्य पहले से अधिक शक्तिशाली हो गया—विशेषतया मध्य योरप में। परन्तु इटली के लोम्बार्डी और वेनेशिया को अपने अधिकार में लेकर उसने आस्ट्रिया को इटली का शत्रु बना दिया। आगामी इटली का स्वतन्त्रता-संग्राम विशेष रूप से आस्ट्रिया के ही विरुद्ध था।

इसी प्रकार प्रशा को सैक्सनी का अधिकांश भाग और राइन प्रदेश दिला कर मेटरनिख ने बड़ी भूल की। इन प्रदेशों की प्राप्ति से प्रशा का शक्ति पहले से बहुत अधिक बढ़ गई। वह आस्ट्रिया को चुनौती देने लगा।

पवित्र सन्धि—१८१५ से लेकर १८२२ तक का काल इतिहास में 'काँग्रेसों का काल' (Age of Congresses) कहलाता है। इस काल में युद्ध का परित्याग करके कूटनीति और विचार-विमर्श के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का निर्णय करने का प्रयत्न किया गया। इस उद्देश्य से दो योजनायें बनाई गईं—(१) पवित्र सन्धि (Holy Alliance) और (२) चतुःराज्य सन्धि (Quadruple Alliance)। प्रथम योजना एलेग्जेण्डर प्रथम की भावुकता और रहस्यवादिता का परिणाम थी। नितान्त व्यावहारिक मेटरनिख ने इसे निरर्थक समझा, यद्यपि ऊपर से जार को प्रसन्न रखने के लिए वह इसे स्वीकार करता रहा।

---

1. 'We wished to establish our empire without there being any direct contact with France'. —Metternich

चतु:राज्य सन्धि—दूसरी योजना के निर्माण का प्रमुख श्रेय मेटरनिख को ही है। उसने आस्ट्रिया, प्रशा, रूस और इंगलैंड को मिलाकर चतु:राज्य सन्धि की। १८१८ में इस सन्धि में फ्रांस भी सम्मिलित कर लिया गया। इस प्रकार यह पंचराज्य सन्धि (Quintuple Alliance) बन गई। इस गुट ने योरप में शान्ति बनाये रखने का कार्य अपने हाथ में ले लिया। परन्तु मेटरनिख के नेतृत्व में यह गुट अन्यान्य देशों की आन्तरिक नीति में सशस्त्र हस्तक्षेप करने लगा और जनतन्त्र, स्वाधीनता और राष्ट्रीयता का घोर विरोधी हो गया। इस गुट ने एलाशपल, ट्रोपाउ, लैबाख और वेरोना के अधिवेशनों में जो निर्णय किये वे नितान्त प्रतिक्रियावादी थे। इस गुट में इंगलैंड मेटरनिख के प्रतिक्रियावाद का विरोधी था। परन्तु अल्पमत में होने के कारण वह मेटरनिख के निर्णयों को न रोक पाता था। अत: १८२२ में वेरोना की कांग्रेस में इंगलैंड ने मेटरनिख के योरपीय संघ (Concert of Europe) को छोड़ दिया। इस प्रकार योरप में पुलिस-राज्य का अन्त हुआ।

प्रतिक्रियावाद—संयुक्त योरपीय व्यवस्था के भंग हो जाने के पश्चात् भी मेटरनिख अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रतिक्रियावादी नीति का अनुसरण करता रहा। उसने स्वयं अपने आस्ट्रिया साम्राज्य में कठोर एकतन्त्रवादी शासन की स्थापना की। इस साम्राज्य में भिन्न-भिन्न जातियों, भाषाओं, धर्मों और परम्पराओं के मनुष्य रहते थे। इनमें जर्मन, मग्यर, रूमानियन, स्लाव, इटैलियन आदि विशेष उल्लेखनीय थे। इनमें यदि स्वाधीनता और राष्ट्रीयता की भावना का प्रचार हो जाता तो यह आस्ट्रिया साम्राज्य से स्वतन्त्र होने की चेष्टा करते। अत: आस्ट्रिया के सम्राट् फ्रांसिस प्रथम (१७९२-१८३५) और उसके प्रधान मन्त्री मेटरनिख (१८०९-१८४८) ने यथाशक्ति यही चेष्टा की कि उसके साम्राज्य में जनतन्त्रवादी और राष्ट्रीयतावादी विचारधारायें पनप न सकें। आस्ट्रिया में शासनतन्त्र का विकास न किया गया।[1]

गृह-नीति—आस्ट्रिया की सामाजिक व्यवस्था सामन्तवादी थी। उसके बड़े-बड़े सामन्तों के पास बड़े-बड़े भूमि-खण्ड थे। उन्हें अपने प्रदेशों में कर लगाने, बेगार लेने और न्याय करने का अधिकार था। उनके पास अपनी पुलिस होती थी। राज्य के समस्त बड़े पदों पर उन्हीं की नियुक्ति होती थी। परन्तु वे अधिकांश करों से मुक्त थे। उन्हें अनिवार्य सैनिक सेवा भी न करनी पड़ती थी।

इसके विरुद्ध साधारण किसानों की दशा अत्यन्त दयनीय थी। वे दिन-रात परिश्रम करते थे। परन्तु उनकी उपज का अधिकाँश भाग सामन्तों के पास चला जाता था। उन्हें बेगार करनी पड़ती तथा सामन्तों को अनेकानेक कर और उपहार देने पड़ते थे।

---

1. 'There was no central, coherent cabinet, nor group of ministers. There were, of course, various departments, but some had jurisdiction over the whole empire, some only over parts. In any case the boundaries were not carefully defined. Government was exceedingly slow, cumbrous, disjointed, inefficient.' —Hazen

न्तु मेटरनिख के शासनकाल में ही आस्ट्रिया में औद्योगिक क्रान्ति हो रही
ां, फैक्टरियों, मिलों और पूँजीवाद के उदय के कारण लघु उद्योग-धन्धे
थे। हाथ से कार्य करने वाले बहुसंख्यक कारीगर बेकार हो रहे थे। धन
वितरण न होने के कारण मजदूरों की दशा उत्तरोत्तर खराब हो रही
और निर्धन तथा धनी और धनी हो रहे थे। इस आर्थिक असमानता ने
ट्रिया-साम्राज्य में और भी अधिक असन्तोष उत्पन्न किया।

व्यवस्था में मेटरनिख ने कोई सुधार न किये। क्रान्तिकारी विचारों को
लए उसने पुलिस विभाग और गुप्तचर विभाग को पर्याप्त रूप से संगठित
स्ट्रिया में विचार-प्रकाशन की स्वतन्त्रता न थी। प्रेस अविकसित था।
क्षा के ऊपर भी सरकार का नियन्त्रण था। विश्वविद्यालयों पर राज्य का
र था। वही उनके पाठ्यक्रम को निश्चित करती थी। अध्यापक-पदों पर
की नियुक्ति न होती थी। राजनीति और इतिहास का अध्ययन-अध्यापन
समझा जाता था। विद्यार्थी अपने संघ न बना सकते थे। उन्हें चर्च में
ा था। सरकार विदेश-यात्रा को कोई प्रोत्साहन न देती थी।

स्ट्रिया-साम्राज्य में भिन्न-भिन्न जातियों, धर्मों, संस्कृतियों, भाषाओं और
के लोग रहते थे।[1] उदाहरणार्थ, हंगरी में मग्यर और स्लाव, बोहेमिया
र जर्मन, आस्ट्रिया में जर्मन, गैलेशिया में पोल तथा वेनिस और लोम्बार्डी
न लोग रहते थे।

टरनिख की नीति का सर्वप्रमुख लक्ष्य इस विशाल और विविध साम्राज्य
रना था। यह तभी सम्भव था जब इसकी विभिन्न जातियों में राष्ट्रीयता
न्त्रता की भावनायें न आने पायें। इसी से मेटरनिख अपने सम्पूर्ण शासन-
वीन विचार-धाराओं के विरुद्ध युद्ध करता रहा। १८१५ और १८४८ के
निख योरप के समस्त देशों के सुधार-आन्दोलनों और स्वतन्त्रता-संग्रामों का
रता रहा।

र्मनी में नीति—१८१९ के कार्ल्सबाड नियमों के द्वारा उसने जर्मनी में
और प्रगतिशील आन्दोलनों को दबाये रक्खा। १८३० की फ्राँसीसी क्रान्ति
मस्वरूप जर्मनी के कुछ राज्यों के राजाओं को विवश होकर नवीन संविधान
। इस परिस्थिति को नियन्त्रित करने के लिये मेटरनिख ने विएना में
राजाओं का अधिवेशन किया। उसने उनसे कार्ल्सबाड नियमों को अधिक
से लागू करवाया तथा विश्वविद्यालयों पर विशेषतया दृष्टि रखने की
की। उसकी इन कार्यवाहियों से जर्मनी में १८३० के स्वतन्त्रता-आन्दोलन
हो सके।

१८३३ में मेटरनिख ने आस्ट्रिया, प्रशा और रूस के बीच एक संघ का
किया। इसका उद्देश्य सर्वत्र जनतन्त्रवादी आन्दोलनों का दमन करना था।

1. 'Austria is a purely imaginery name, a conventional
r a complex of sharply divided peoples.'

इटली में नीति—इटली में भी उसकी प्रतिक्रियावादी नीति चलती रही। इटली के सबसे प्रमुख राज्य लोम्बार्डी और वेनेशिया उसके आधीन थे। पर्मा की रानी मेरी लूसा आस्ट्रिया की राजकुमारी थी। मोडेना और टस्कनी में भी आस्ट्रिया के राजवंश हैप्सबर्ग के ही राजकुमार राज्य कर रहे थे। कैथोलिक-धर्म-प्रधान आस्ट्रिया और पोप में घनिष्ठता थी। नेपल्स और सिसली के बूर्बावंशीय राजा फर्डीनेण्ड ने आस्ट्रिया के साथ एक सन्धि कर रक्खी थी। इस प्रकार सम्पूर्ण इटली मेटरनिख के प्रभाव-क्षेत्र में था।

१८२० में जब नेपल्स और पीडमाण्ट में विद्रोह हुए तो मेटरनिख ने अपनी सेना भेजकर सरलतापूर्वक उसका दमन कर दिया।

१८३० की फ्राँसीसी क्रान्ति का प्रभाव इटली पर भी पड़ा था। इसके परिणामस्वरूप पर्मा, मोडेना और पोप-राज्य में विद्रोह हो गये थे। परन्तु आस्ट्रिया ने पुनः इनका दमन कर दिया।

१८२१ में टर्की के अत्याचारी शासन के विरुद्ध यूनानियों ने अपना स्वतन्त्रता संग्राम प्रारम्भ किया। १८२७ तक यूनानी अकेले ही सबल तुर्कों के दमन-चक्र का सामना करते रहे। परन्तु मेटरनिख ने न तो स्वयं ही यूनानियों को किसी प्रकार की सहायता दी और न अन्य योरपीय राज्यों को ही सहायता देने दी। वह यूनानी स्वतन्त्रता-संग्राम को एक वैध शासन के विरुद्ध विद्रोह समझता था। अतः उसके प्रति उसे तनिक भी सहानुभूति न थी।

इस प्रकार मेटरनिख अपने समय का घोर प्रतिक्रियावादी कूटनीतिज्ञ था। कार्ल्सवाड नियम और ट्रोपाउ नियम उसके प्रतिक्रियावाद के मूर्त दृष्टान्त हैं। जब तक वह सत्ताधारी रहा तब तक उसने आस्ट्रिया, जर्मनी और इटली कहीं भी क्रान्तियों एवं विद्रोहों को सफल न होने दिया। कार्ल्सवाड नियमों को पारित कराने के पश्चात् मेटरनिख ने घोषित किया था—'I have become a moral power in Germany, and perhaps even in Empire'. उसका यह कथन उसके महान् प्रभाव को प्रकट करता है।

मूल्यांकन—वह परिवर्तनों का घोर विरोधी था।[1] वह 'क्रान्ति के खतरे' (Revolutionary Menace) के दमन के लिये सदैव तैयार रहता था। वह क्रान्ति को रोग, ज्वालामुखी पर्वत, कोढ़ अथवा प्रलय के रूप में समझता था।[2]

---

1. '...although in the day to day conduct of affairs, he displayed an opportunism which bounded upon levity, the main principles which guided his political course were unvarying and rigid.'

—Nicholson

2. 'The disease which must be cured, the volcano which must be extinguished, the gangrene which must be burned out with the hot iron, the hydra with jaws open to swallow up the social order.'

एकतन्त्रवादी होने के कारण उसे संविधानों में कोई रुचि न थी। राजकुमार लीवें ने उससे कहा था कि आपको संविधान आकर्षित नहीं करते।[1] जनतन्त्रवादी फ्रांस और इंगलैंड के विषय में उसका मत था कि वहाँ कोई सरकार नहीं है।[2]

मेटरनिख ने फ्राँसीसी क्रान्ति और नेपोलियन के युद्धों के परिणामस्वरूप दीर्घ-कालीन रक्तपात देखा था। इसने उसके मस्तिष्क पर भारी प्रभाव उत्पन्न हुआ था। वह कहा करता था कि जनता को शान्ति चाहिये, स्वतन्त्रता नहीं।

इसके अतिरिक्त उसे अपने साम्राज्य की हित-साधना भी करनी थी। यदि वह स्वतन्त्रता, राष्ट्रीयता और समानता के विचारों को प्रोत्साहन देता तो उसका अनेक देशों, जातियों, भाषाओं और धर्मों का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो जाता। उसके लिये यह श्रेय की बात थी कि जब तक वह सत्ताधारी रहा उसने अपने अनेकरूप साम्राज्य की रक्षा की। जिस दिन आस्ट्रिया ने उसकी नीति का परित्याग कर दिया उसी दिन से वह छिन्न-भिन्न होने लगा।

यह भी मानना पड़ेगा कि मेटरनिख हृदय से योरपीय संयुक्त व्यवस्था (Concert of Europe) में विश्वास करता था। वह भली भांति समझता था कि कोई भी राज्य एकाकी जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। प्रत्येक राज्य को दूसरे राज्यों के सहयोग-सम्पर्क से कार्य करना पड़ेगा। राजनीति अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर निर्भर है।[3] परन्तु उसकी गलती यह अवश्य थी कि उसने अपनी प्रतिक्रियावादी नीति से संयुक्त व्यवस्था को 'पुलिस-राज्य' में परिवर्तित कर दिया।

मेटरनिख का सबसे बड़ा दोष यह था कि उसने फ्रांसीसी क्रान्ति के सिद्धान्तों की पूर्णरूप से उपेक्षा की और अपनी नीति से संसार को पीछे ढकेलने की चेष्टा की। उसकी नीति समय के प्रतिकूल थी। वह स्वयं कहा करता था कि मैं संसार में या तो बहुत पहले आया हूं या बहुत बाद को।[4]

इसमें कोई सन्देह नहीं कि फ्रांसीसी क्रान्ति और नेपोलियन के युद्धों के पश्चात् योरप को शान्ति की आवश्यकता थी और तब सम्भवतः मेटरनिख की भी उपयोगिता थी। परन्तु अभाग्यवश अपनी उपयोगिता के समाप्त हो जाने के बाद भी वह जीवित

---

1. 'You do not feel drawn to constitutions.' —Prince Lieven

2. 'France and England may be considered as countries without a government.'

3. 'Since, however, an isolated state no longer exists and is found only in the annals of the beathen world...we must always view the society of states as the essential condition of the modern world...The establishing of international relations on the basis of reciprocity under the guarantee of respect for acquired rights... constitutes in our time the essence of politics......'. —Metternich

4. 'I have come into the world either too early or too late.'

रहा। वह यह अनुभव न कर सका कि वह तो वृद्ध और निर्बल हो रहा है, परन्तु संसार में नवयौवन का संचार हो रहा है।[1]

मेटरनिख को अपने ऊपर बड़ा विश्वास था। कभी-कभी उसका यह आत्म-विश्वास दम्भ-सा दिखाई देता है। वह समझता था कि मैं कभी गलती नहीं कर सकता हूं।[2] वह कहा करता था कि मैं पतनोन्मुख विश्व-व्यवस्था को संभालने के लिये उत्पन्न हुआ हूं।[3]

मेटरनिख की आलोचना करते हुये प्रोफेसर वेब्स्टर ने लिखा है—'A timid statesman, though fertile in diplomatic expedients, he was an opportunist, pure and simple.'

उसके कुछ समकालीन राजनीतिज्ञों ने उसकी कटु आलोचना की है। कैसेलरे उसे राजनीतिक विदूषक (a political harlequin) कहता था। ड्यूक आफ वेलिङ्गटन का मत था कि मेटरनिख राजनीतिज्ञ न था।[4]

इन आलोचनाओं के विरुद्ध सोरेल महोदय ने मेटरनिख की निम्नलिखित शब्दों में प्रशंसा की है—

He 'deserved to govern Europe as long as Europe deserved to be governed by diplomacy...... . Metternich remains by exterior grace, by the excellence of tone, the perfection of attitude, and the subtle knowledge of the proprieties, an incomparable master. The great comedy of the world, the high intriguing of the European stage, has never had so fertile an author, an actor so consummate'.

१८४८ की फ्राँसीसी क्रान्ति का प्रभाव आस्ट्रिया साम्राज्य पर पड़ा। वियना की जनता ने मेटरनिख के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। विद्रोह की भयंकरता के सामने इस बार मेटरनिख को झुकना पड़ा। उसने प्रधानमन्त्री के पद से त्याग-पत्र दे दिया। मेटरनिख-युग समाप्त हो गया था। वेश बदल कर मेटरनिख को वियना छोड़ना पड़ा। अनेक स्थानों की यात्रा करते हुये अन्त में वह राइन प्रदेश में पहुंचा और वहीं बस गया। अपने पतन के पश्चात् ११ वर्ष तक यह महान् कूटनीतिज्ञ जीवित रहा। ११ जून १८५९ में इसकी मृत्यु हुई। उसका आत्मविश्वास अन्त तक बना रहा। वह कहा करता था कि लोगों ने उसके वास्तविक रूप को समझा नहीं था।[5]

---

1. 'For a tired and timid generation, he was a necessary man; and it was his misfortune that he survived his usefulness and he failed to recognise that, while he was growing old and feeble, the world was renewing its youth.'
2. 'My mind has never entertained error.'
3. 'To prop up the decaying structure.'
4. 'I never shared the view that he was a great statesman; he was a society hero and nothing more.' —Duke of Willington
5. 'I was not understood, I became a phantasm, and im[illegible]nary being, a thing without substance.'

प्रश्न (बी० ए०)

१ मेटरनिख की नीति की समीक्षा कीजिये और उसकी असफलता के कारणों को समझाइए।

२ मेटरनिख की विदेश-नीति की भली प्रकार समीक्षा कीजिये।

३ 'मेटरनिख का नाम प्रतिक्रिया एवं पुरातनवाद का पर्याय हो गया है।' इस कथन के महत्व की समीक्षा कीजिए और समसामयिक घटनाओं पर उसके प्रभाव का महत्व समझाइए।

४ मेटरनिख सनातनवाद का पुजारी तथा अंधकार की शक्तियों का भक्त कहा गया है। क्या आप इस मत से सहमत हैं?

५ मेटरनिख घोर प्रतिक्रियावादी तथा लोकतन्त्र का प्रबल शत्रु था। उसको गृह-एवं बाह्य नीति को ध्यान में रखते हुए इस कथन की विवेचना कीजिए।

Question (M. A.)

1. State the main principles of Metternich's policy. Is it correct to say that he was the "reactionary genius' of Europe?

—:o:—

४

पूर्वी समस्या

(Eastern Question)

(१८१५–१८४८)

पूर्वी समस्या का रूप; आन्तरिक कारण, बाह्य कारण, सर्विया की स्वतन्त्रता, यूनान का स्वतन्त्रता-संग्राम; मेहमतअली; रूसी-तुर्की युद्ध, पामर्स्टन की कूट-नीति ।

पूर्वी समस्या का रूप—मॉर्ले के शब्दों में पूर्वी समस्या बहुत जटिल, उलझी हुई तथा विभिन्न व्यक्तिमों के परस्पर विरोधी हितों से सम्बन्धित थी।[1] मिलर के अनुसार 'पूर्वी समस्या योरप से धीरे-धीरे समाप्त होते हुए टर्की साम्राज्य के रिक्त स्थान की पूर्ति की समस्या थी।'[2] हेजन के अनुसार 'पूर्वी समस्या प्रमुखतया योरोपीय टर्की के भाग्य की समस्या थी।'[3] एक रूसी विद्वान ने इसकी तुलना गठिया बात से की है जो कभी हाथों को जकड़ लेती है तो कभी पैरों को।'[4] लिप्सन महोदय के शब्दों में 'पूर्वी समस्या सदैव से एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न बना हुआ है, जो किसी न किसी रूप में गत बारह शताब्दियों से योरप की राजनीति की पृष्ठभूमि बना रहा है।'

अपने उत्कर्ष काल में तुर्कों ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी। यह साम्राज्य तीन महाद्वीपों—एशिया, योरप एवं अफ्रीका में फैला हुआ था। एशिया में मेसोपोटामिया, ईरान और अरब में तुर्कों का राज्य था। योरप में बाल्कान प्रदेश तथा अफ्रीका में मिस्र तुर्की साम्राज्य के अन्तर्गत थे।

१८वीं शताब्दी तथा १९वीं शताब्दी में इस साम्राज्य का पतन होने लगा। इस साम्राज्य के पतन के निम्न कारण थे :—

---

1. 'The shifting, intractable and interwoven tangle of of conflicting interests, rival peoples and antagonistic faiths that is veiled under the easy name of the Eastern Question.'

2. 'The Near Eastern Question may be defined as the problem of filling up the vaccum created by the gradual disappearance of the Turkish Empire from Europe.'

3. 'The Eastern Question was primarily that of the fate of European Turkey.'

4. 'This dammed Eastern Question is like the gout, it sometimes takes you in the leg, and sometimes it nips your hand.'

आन्तरिक कारण—(१) १७८९ में फ्रांस में राज-क्रान्ति हो गई। इस क्रान्ति ने विश्व को स्वतन्त्रता, समानता एवं भातृ भाव की भावनायें प्रदान कीं। तुर्की साम्राज्य में भी ये भावनायें आ गईं तथा तुर्की के अधीन राज्य स्वतन्त्र होने के लिए प्रयत्न करने लगे।

(२) तुर्की साम्राज्य में अनेक धर्मों एवं भाषाओं के लोग रहते थे। इसलिए तुर्की साम्राज्य Many Tongued Empire कहलाता था। वहाँ रोम का चर्च, ग्रीक-आर्थोडाक्स, चर्च, बलगेरिया का चर्च तथा यहूदी आदि जातियों के अलग चर्च थे। इस प्रकार देश में विभिन्न प्रकार की भावनायें प्रचलित थीं और देश को भावात्मक एकता (Emotional Unity) की आवश्यकता थी। तुर्की सुल्तान ने अपने को सदैव विजित जातियों से अलग रक्खा। विजित जातियों के लिए मुस्लिम धर्म ग्रन्थों के अनुसार निम्न मार्ग थे :—

(अ) समस्त विजित जाति की हत्या कर दी जाय।

(ब) विजित जाति का धर्म परिवर्तन कर दिया जाय।

(स) पराजित जातियों को अपने अधीन कर उनसे कर वसूल किया जाय।

विशाल तुर्क साम्राज्य में पराजित जातियों की संख्या बहुत अधिक थी। अतः प्रथम दो उपायों का आश्रय लेना तो सम्भव नहीं था। इसलिए उन्होंने अन्तिम नीति का आश्रय लिया।

(३) तुर्की सुल्तान एकतन्त्रवादी था। उसने कभी भी अपनी जनता का सहयोग प्राप्त करने की चेष्टा न की।

(४) तुर्क एक कुशल विजेता था; परन्तु वह एक श्रेष्ठ प्रबन्ध-कर्त्ता न था।[1] तुर्कों के सम्बन्ध में मेसीडोनिया में दो कहावतें प्रचलित थीं—(१) तुर्क कभी भी अपनी आदतों में परिवर्तन नहीं कर सकता।[2] (२) तुर्क जहाँ जाता है वहाँ विनाश करता है। वह समन्वय के सिद्धान्त को नहीं जानता।[3]

(५) तुर्की साम्राज्य बहुत विस्तृत था। इतने विस्तृत साम्राज्य पर शासन करने की योग्यता सुल्तानों में न थी। इस परिस्थिति का लाभ उठा कर स्थानीय शासक स्वतन्त्र होने की चेष्टा करने लगे। इस प्रकार के गवर्नरों में जेनिना (अलबानिया) के अलीपाशा तथा मिस्र के मेहमतअली का नाम उल्लेखनीय है।

बाह्य करण—आन्तरिक कारणों के अतिरिक्त तुर्की साम्राज्य के पतन के कुछ बाह्य कारण भी थे। अपने विभिन्न हितों के कारण निम्न देश भी तुर्की साम्राज्य में हस्तक्षेप कर रहे थे :—

(१) **रूस**—रूस का टर्की साम्राज्य में दिलचस्पी रखने का यह कारण था कि रूस तथा टर्की के निवासियों का धर्म Greeck Orthodox Church था।

1. 'The Turk was a very good fighter, but he was not a good administrator'.
2. 'Turk never changes.'
3. 'Where the foot of the Turk had trodden the grass never grows.'

दोनों राज्यों में स्लाव जाति रहती थी। तीसरे व्यापार के लिए रूस के पास कोई समुद्र-तट न था। उसकी उत्तरी सीमा का आर्कटिक महासागर तथा पूर्व की ओर का प्रशान्त महासागर वर्ष के अधिकांश भाग में जमा रहता था। अतः रूस काले सागर पर प्रभाव स्थापित करना चाहता था। वह टर्की साम्राज्य के मध्य में स्थित डार्डेनेलीज एवं वासफोरस पर अपना प्रभाव स्थापित कर इनके मध्य में स्थित कॉन्स्टेन्टिनोपुल पर अधिकार स्थापित करना चाहता था, क्योंकि उसका ख्याल था कि यदि इन प्रदेशों पर उसका अधिकार हो जाय तो वह संसार पर अपना अधिकार कर सकता है। नेपोलियन महान् ने सर्वप्रथम इस प्रकार के विचार व्यक्त किये थे।[1] तत्पश्चात् इन प्रदेशों का महत्व बराबर बढ़ता गया। पीटर महान् ने भी (बन्दरगाहों) Windows की मांग की थी। कैथरीन महान् ने भी इसी नीति का पालन किया था। जार सम्राट् ने भी इसी नीति का पालन किया था। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए या तो टर्की से युद्ध किया जाय या सन्धि करके डेन्यूब नदी की घाटी पर कम से कम प्रभाव स्थापित कर लिया जाय। इन लाभों की प्राप्ति के हेतु रूस तुर्की साम्राज्य का विघटन चाहता था। सन् १८४४ में निकोलस प्रथम ने ब्रिटेन के विदेश मन्त्री एबर्डीन से कहा था कि टर्की यूरोप का बीमार आदमी है। अतः उसके मरने के पूर्व ही उसकी सम्पत्ति का बंटवारा कर लेना चाहिए।

(२) **आस्ट्रिया** —मध्य युग में आस्ट्रिया तुर्कों का सबसे बड़ा शत्रु था। उस समय उसका कार्य टर्की के विस्तार को रोकना था। परन्तु इस समय उसका एकमात्र उद्देश्य रूस को ही रोकना रह गया था। वह चारों ओर स्थल से घिरा हुआ था। उसके पास केवल एड्रिआटिक सागर का एक कोना था। आस्ट्रिया भी डार्डेनेलीज, वासफोरस एवं डेन्यूब नदी की घाटी पर अपना अधिकार बनाये रखना चाहता था।

आस्ट्रिया में विभिन्न भाषा-भाषी व्यक्ति रहते थे। इसलिए आस्ट्रिया भी Many Tongued Empire कहलाता था। उधर रूस में पान-स्लाव आन्दोलन चल रहा था। इसका उद्देश्य बिखरी हुई सर्व जाति को एक शासन के अन्तर्गत संगठित करना था। यदि इस प्रकार के सिद्धान्त आस्ट्रिया में भी आ जाते तो आस्ट्रिया के लिए भी खतरा था, क्योंकि आस्ट्रिया में भी सर्व रहते थे। इस प्रकार टर्की साम्राज्य के सम्बन्ध में रूस एवं आस्ट्रिया के परस्पर विरोधी दृष्टिकोण थे।

(३) **इङ्गलैंड** —रूस के इस विस्तार से इंगलैंड के पूर्वी साम्राज्य के लिए खतरा था। वह मध्य एशिया एवं पूर्व में उसका विस्तार नहीं चाहता था। इसलिए वह रूस की भाँति तुर्की साम्राज्य को योरप का बीमार आदमी (Sick man of Europe) नहीं मानता था।

(४) **फ्रांस** —फ्रांस भी व्यापारिक हितों के कारण पूर्वी समस्या में भाग ले रहा था। वह मिस्र एवं सीरिया में व्यापारिक सुविधायें प्राप्त करना चाहता था। ये सुविधायें प्राप्त करना तभी सम्भव था जब कि वहाँ का पाशा फ्रांस के पक्ष में

1. 'Constantinople meant the Empire of the World.'

हो। पाशा एवं सुल्तान में झगड़ा रहता था। इसलिए फ्रांस प्रायः पाशा का साथ देता था। इस प्रकार पाशा का साथ देना टर्की समस्या के विघटन को मान लेना था।

(५) **सार्डिनिया पीडमाण्ट**—पूर्वी समस्या में सार्डिनिया पीडमाण्ट का कोई हित न था। परन्तु १८५४ में क्रीमिया युद्ध के अवसर पर कैबूर ने भी इसमें भाग लिया। वास्तव में यह कैबूर की कूटनीतिक चाल थी।

(६) **प्रशा**—बिस्मार्क प्रारम्भ में पूर्वी समस्या में उदासीन रहा। वह कहा करता था कि कोन्स्टेन्टिनोपुल से आने वाली डाक को तो हम खोलते तक नहीं हैं। परन्तु अन्त में उसको एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न समझकर १८७८ की बर्लिन कान्फ्रेंस में उसने एक ईमानदार दलाल (Honest Brocker) के रूप में कार्य किया।

घटनायें

(१) **सर्विया का स्वतन्त्रता संग्राम**—सबसे पहले सर्व जाति में जागृति आ गई। कारा जार्ज के नेतृत्व में उन्होंने १८०४ में विद्रोह किया; परन्तु सन् १८१३ में टर्की ने पुनः सर्विया को अपने अधिकार में कर लिया तथा कारा जार्ज की हत्या कर दी गई। तत्पश्चात् वहाँ मिलोश ओब्रोनोविच नामक एक नये नेता का उदय हुआ। यह सर्विया का दूसरा संस्थापक कहलाता है। इसके प्रयत्नों के कारण बहुत शीघ्र ही सर्विया ने स्वायत्त शासन प्राप्त कर लिया। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् यह सर्व जाति का नेता हो गया। बोस्निया एवं सर्विया की जनता भी सर्व थी। परन्तु इन प्रदेशों पर आस्ट्रिया का शासन था। आस्ट्रिया को इन प्रदेशों को अपने राज्य में मिलाने का अधिकार न था। परन्तु १९०८ में आस्ट्रिया ने इन प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया। इससे आस्ट्रिया एवं सर्विया का झगड़ा बढ़ गया। सर्विया एवं रूस में मित्रता थी। सर्विया की रूस सदैव रक्षा करता था। इसके विपरीत जर्मनी आस्ट्रिया का सहायक था। इस झगड़े के फलस्वरूप दो बाल्कान युद्ध हुए तथा अन्त में प्रथम महायुद्ध हुआ।

(२) **यूनानी स्वतन्त्रता संग्राम**—टर्की साम्राज्य में यूनानियों का बहुत बड़ा भाग था। ऐसा कहा जाता था कि देश में केवल दो ही जातियाँ हैं। तुर्क और यूनानी।[1] यूनानियों का प्राचीन इतिहास भी बहुत गौरवपूर्ण था उन्होंने प्राचीन काल में दक्षिणी एवं पूर्वी यूरोप में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी। यूनानी अपने देश को समस्त यूरोप की सभ्यता एवं संस्कृति की जननी ख्याल करते थे। इन सब कारणों से तुर्की सुलतान ने यूनानियों को शासन में अनेक अधिकार दे दिये थे। उच्च पदों पर भी उनको नियुक्त किया जाता था। एड्रियाटिक एवं इजियन के टापू तथा अनेक नगरों में उन्हें स्वायत्त शासन प्राप्त था। जहाजी बेड़े में भी अधिकांश पदों पर यूनानी ही नियुक्त थे। १७८३ में रूस ने टर्की के सुलतान से एक सन्धि की। इसके

1. 'Superior class of Christians forming a counter-part of the Turks'. —Illiot

अनुसार उसने यूनानियों को विशेष व्यापारिक एवं सामुद्रिक अधिकार देने की सिफारिश की। नेपोलियन महान् ने ब्रिटेन को पराजित करने के लिए महाद्वीपीय योजना का आश्रय लिया था। अतः इसके प्रत्युत्तर में ब्रिटेन भी सब देशों के जहाजों की तलाशी लेता था। परन्तु वह यूनान को अपना मित्र समझता था। अतः वह उसके जहाजों की तलाशी नहीं लेता था। इससे यूनानियों को अपना सामुद्रिक विकास करने के लिए अच्छा अवसर मिल गया। यूनानियों में आरमाटोरी तथा कल्फेट नामक दो युद्धजीवी जातियाँ थीं।

टर्की के सुलतान ने यूनानियों को अपना Greek Orthodox चर्च पालन करने का भी अधिकार दे दिया था। टर्की का सुलतान पेट्रिआर्क के माध्यम से ही यूनानियों से वार्ता करता था।[1]

साहित्यिक दृष्टिकोण से भी यह उत्थान का काल था। इस समय फेगरान तथा कोरएज जैसे उच्च कोटि के लेखक हुए। इनके लेखों द्वारा यूनानी अपने महत्व को समझने लगे।

यूनान के ऊपर फ्रांसीसी राज्य-क्रान्ति का भी प्रादुर्भाव पड़ा। फ्रांसीसी राज्य-क्रान्ति की स्वतन्त्रता तथा समानता की भावनायें समस्त यूरप में फैल गईं।

इस प्रकार यूनान में बौद्धिक जागृति हो गई और प्रत्येक प्रकार की सुविधा होने पर भी वे स्वतन्त्र होने के लिए प्रयत्न करने लगे।

अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ व्यापारियों ने मिल कर ओडेसा में फिल्केहितारिया नामक संस्था की स्थापना की। समस्त देश में इस संस्था की शाखायें फैल गईं। कुछ ही समय में इसके सदस्यों की संख्या ८० हजार हो गई। इस संस्था के कुछ सदस्य रूसी अफसर भी थे। रूस के सम्राट् अलेक्जेण्डर प्रथम यूनानियों की मदद करना चाहता था। वह राष्ट्रीयता के सिद्धान्तों का समर्थक था।[2] उसने छिन्न-भिन्न होते हुए टर्की साम्राज्य को देख कर कहा था कि इससे गैर तुर्क जातियों को लाभ होगा। इस प्रकार यूनान को आशा थी कि हमारे स्वतन्त्रता-संग्राम में रूस भी सहायता देगा।

हम पूर्व पृष्ठों में उल्लेख कर चुके हैं कि यूनानियों को अनेक विशेषाधिकार प्राप्त थे। फिलिप्स महोदय ने लिखा है कि उनको अपने धर्म के पालन करने की स्वतन्त्रता थी।[3] वे तुर्कों के केवल इतना ही अधीन थे कि इन्हें प्रति वर्ष तुर्की सरकार को कुछ कर देना पड़ता था। परन्तु यह बात उनके स्वभाव के खिलाफ थी। राष्ट्रीयता के आधार पर यूनानियों ने विद्रोह कर दिया। वे पेरेक्लीज के समय

---

1. 'A kind of under-secretary to the Grand Vizier for the affairs of the Orthodox Christians'. —Finley

1. 'To restore to each nation the full and entire enjoyment of its rights and its institutions.'

2. 'He was free to exercise his religion.'

को याद करते थे। वे पुनः अपने लिए एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना करना चाहते थे।

स्वतन्त्रता संग्राम—यूनानी स्वतन्त्रता संग्राम का नेतृत्व फिल्केहितारिया नामक संस्था ने किया। १८२१ में जेनिना के गवर्नर अलीपाशा ने अपनी स्वतन्त्रता के लिए विद्रोह कर दिया। इसका लाभ उठाते हुए बलाशिया तथा मोल्डाविया (डेन्यूब नदी के प्रदेश) में विद्रोह हो गया। इसका नेता सीलान्टी था। यूनानियों को आशा थी कि रूस का सम्राट् अलेक्जेण्डर उनकी सहायता करेगा। परन्तु मेटरनिख के प्रभाव में आ जाने के कारण उसने यूनानियों की सहायता न की। बलाशिया एवं मोल्डालिया की जनता को इससे बहुत दुख हुआ। बलाशिया एव मोल्डाविया के किसानों ने यूनानियों का कोई साथ नहीं दिया। फलतः यह विद्रोह दबा दिया गया और सीलान्टी भाग कर चला गया।

इसी बीच मोरिया में भी विद्रोह हो गया। यह विद्रोह बहुत भयंकर था। इसका उद्देश्य तुर्कों को मोरिया से बाहर निकालना था। विद्रोहियों का नारा था—'तुर्क अब अधिक दिन तक नमोरिया में रहेंगे और न समस्त संसार में रहेंगे'।[1] अप्रैल १८२१ में तुर्कों का भीषण हत्याकाण्ड प्रारम्भ हुआ। एकमात्र मोरिया में ही २५ हजार तुर्कों की हत्या कर दी गई। एक महीने में तुर्कों का राज्य मोरिया से समाप्त हो गया। अब तुर्कों ने भी बड़ी बर्बरतापूर्वक बदला लेना आरम्भ कर दिया। यूनानियों का धर्माध्यक्ष (कुस्तुन्तुनिया का पेट्रीआर्क) जिस समय प्रार्थना करके आ रहा था तो उसकी हत्या कर दी गई। उसकी अवस्था ८० वर्ष की थी। इसके साथ तीन आर्कबिशप भी थे। इन तीनों को फांसी पर लटका दिया गया। तीन दिन तक ये इसी प्रकार लटके रहे। चार दिन बाद उनके शवों के टुकड़े कर उन्हें एड्रिआटिक में फेंक दिया गया। थैसले, मेसीडोनिया तथा एशिया माइनर में यूनानियों को मार कर उनकी स्त्रियों को गुलाम बना लिया गया तथा उनके गिर्जों को भंग कर दिया गया।

मेहमतअली की सहायता—तुर्की सुलतान अकेला इस विद्रोह के दमन करने में असमर्थ रहा। अतः उसने अपने मिस्र के गवर्नर मेहमतअली से सहायता मांगी तथा इसके बदले में उसको मोरिया, सीरिया तथा दमस्कस का पाशा बनाने का आश्वासन दिया। मेहमतअली ने अपने पुत्र इब्राहीम को ११ हजार सेना देकर तुर्की सुलतान की सहायता के लिए भेजा। इस सेना की सहायता से मोरिया के यूनानी बुरी तरह पराजित कर दिये गये। मिसिलांघी, एथेन्स तथा अक्रोपोलिश का पतन हो गया। इससे यूनानी स्वतन्त्रता संग्राम की स्थिति बहुत निर्बल हो गई।

यूनानियों के प्रति यूरोप के देशों का रुख—यूनान के स्वतन्त्रता-संग्राम की सूचना पाकर मेटरनिख ने कहा था कि इस मामले को सभ्यता की सीमा से बाहर

---

1. 'The Turk shall liveno longer, neighter in Morea nor in the whole earth.'

समझना चाहिए।[1] उसने इस मामले में हस्तक्षेप का विरोध किया। रूस का जार सम्राट् अलेक्जेण्डर भी इससे सहमत हो गया। इस पर मेटरनिख ने बड़े गर्व के साथ कहा था—'अब अलेक्जेण्डर भी मेरे सम्प्रदाय का हो गया है।' इसके साथ अलेक्जेण्डर युद्ध भी पसन्द नहीं करता था। एक बार उसने कहा था—'मैं कोई महत्वाकांक्षा नहीं रखता। मेरा साम्राज्य बहुत विस्तृत है। मैं आसानी से उसकी देख-भाल नहीं कर सकता। अतः युद्ध करना देश के अहित में होगा।' ग्रेट ब्रिटेन भी इस मामले में हस्तक्षेप न करना चाहता था।

रूस का रुख—यूनानियों की निर्मम हत्या की कहानियाँ जब रूस पहुंचीं तो वहाँ के सम्राट् को बहुत दुःख हुआ। इसके दो प्रमुख कारण थे—

(१) आर्थोडाक्स चर्च के अध्यक्ष (पेट्रीयार्क ऑफ कान्स्टेन्टिनोपुल) की हत्या एक भयंकर अपराध था। यह कभी भी क्षमा नहीं किया जा सकता था।

(२) टर्की ने डेन्यूब नदी की घाटी पर अधिकार कर लिया था। यह सन्धि की शर्तों के विरुद्ध था। टर्की ने ऐसे यूनानी जहाजों का अपमान किया था जिन पर रूसी झण्डा बंधा हुआ था।

अतः रूसी सम्राट् ने टर्की में स्थित अपने राजदूत के पास कुछ मांगें प्रस्तुत कीं। राजदूत ने वे मांगें सुलतान के सम्मुख रक्खीं। वे मांगे निम्न प्रकार थीं :—

(१) विद्रोह के दौरान में जिन यूनानी चर्चों का विध्वंस हुआ है, उनको फिर से स्थापित कर दिया जाय।

(२) ईसाई धर्म को फिर से मान्यता प्रदान कर दी जाय।

(३) शान्तिप्रिय यूनानियों एवं युद्धप्रिय यूनानियों में अन्तर माना जाय तथा शान्तिप्रिय यूनानियों को कोई क्षति न पहुंचाई जाय।

(४) टर्की बलाशिया को खाली कर दे तथा रूस को इस प्रदेश में शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित करने का अधिकार दिया जाय।

परन्तु, सुलतान ने इन मांगों की ओर कोई ध्यान न दिया। अतः सम्राट् अलेक्जेण्डर ने कुस्तुन्तुनिया से अपना राजदूत वापस बुला लिया। इससे युद्ध की सम्भावना दिखाई देने लगी। परन्तु इनमें से कोई भी देश युद्ध नहीं चाहता था। अन्त में मेटरनिख के प्रभाव से तुर्कों ने यह प्रदेश खाली कर दिया।

१८२१ से १८२७ तक यूनानी अकेले ही अपना स्वतन्त्रता संग्राम चलाते रहे; परन्तु इसके पश्चात् परिस्थिति बदल गई। यूरोप के कुछ देशों ने भी यूनानियों के स्वतन्त्रता संग्राम में हस्तक्षेप किया। इस परिवर्तन के निम्नलिखित कारण थे :—

(१) तुर्कों ने बड़ी कठोरतापूर्वक यूनानियों का दमन किया था। इब्राहीम ने भी भयंकर हत्याकाण्ड किया। कुछ नगरों में बच्चों को छोड़ कर सब मार दिये गये। इसी बीच यह अफवाह फैली कि इब्राहीम मोराविया, मोल्डाविया तथा बलाशिया आदि के समस्त मनुष्यों का हत्याकाण्ड करना चाहता है तथा उनको दास बना कर मिस्र

1. 'To burn itself out beyond the pale of civilizatin.'

भेजना चाहता है और वहाँ मिस्र के निवासियों को लाकर बसाना चाहता है। अनेक देशों में यूनानियों की सहायता के लिए स्वयंसेवकों का संगठन किया जाने लगा। इङ्गलैंड में बायरन नामक कवि ने स्वयंसेवकों का संगठन किया। उसने युद्ध में भी भाग लिया तथा वहीं पर उसकी मृत्यु हुई। बायरन ने अपनी एक कविता में कहा था—'...मुझे स्वप्न दिखाई दिया है कि यूनान अब बहुत शीघ्र ही स्वतन्त्र हो जायेगा।'

(२) रूस के सम्राट् अलेक्जेण्डर प्रथम की १८२५ में मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् निकोलस प्रथम रूस का सम्राट् हुआ। इसकी नीति हस्तक्षेप करने की थी।

(३) कैसलरे के बाद कैनिंग इङ्गलैण्ड का प्रधान मन्त्री हुआ। यह कैसलरे की नीति का विरोधी था। अतः इसने यूनानियों के स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया।

(४) फ्रांस पहले से ही यूनानी स्वतन्त्रता संग्राम में दिलचस्पी रखता था।

यूनान समस्त यूरोप की सभ्यता एवं संस्कृति की जननी रहा था। अतः इन इन देशों की सहानुभूति यूनान के साथ हो गई। कैनिंग ने निकोलस प्रथम से एक सन्धि की। इसके अनुसार यह तय हुआ कि दोनों देश इब्राहीम पाशा की कार्यवाहियों को रोकने के लिये सम्मिलित रूप से कार्य करेंगे। कैनिंग की यह बहुत बड़ी विजय थी। उसने यूनानी स्वतन्त्रता संग्राम में भाग भी लिया तथा रूस को अकेले कोई भी कार्यवाही करने से रोक दिया।

१८२७ में रूस, ब्रिटेन तथा फ्रांस ने लन्दन की सन्धि की। इस सन्धि के अनुसार मित्र राष्ट्रों ने टर्की साम्राज्य में हस्तक्षेप का निर्णय किया।

(१) दोनों दलों में विराम-सन्धि कर ली जाय।

(२) यदि विराम-सन्धि स्वीकार न हो तो मित्र राष्ट्रों को ऐसा कदम उठाने का अधिकार होगा कि दोनों पक्षों का संघर्ष आगे न बढ़े। इसका अर्थ था कि युद्ध को छोड़ कर सब कदम उठाये जायेंगे। परन्तु विलिंगटन ने भविष्यवाणी की कि एक न एक दिन दोनों पक्षों में युद्ध अवश्य होगा।

मोराविया में इब्राहीम पाशा द्वारा भयंकर कत्ले-आम चल रहा था। तुर्की जहाजी बेड़ा नेवारिनों की खाड़ी में जमा हुआ था। मित्र राष्ट्रों ने भी अपना जहाजी बेड़ा नेवारिनों की खाड़ी में भेज दिया। मित्र राष्ट्रों का उद्देश्य इब्राहीम पाशा को समझाना अथवा डराना था। परन्तु तुर्कों ने गोली चला दी। फलतः मित्र राष्ट्रों ने युद्ध आरम्भ कर दिया। इस प्रकार २० अक्तूबर १८२७ को नेवारिनों का भयंकर जल-युद्ध हुआ। इस युद्ध में तुर्की जहाजी बेड़ा पूरी तरह नष्ट कर दिया गया।[1] परन्तु इसी बीच ब्रिटेन के मन्त्रि-मण्डल में परिवर्तन हो गया। कैनिंग के स्थान पर विलिंगटन प्रधान मन्त्री हुआ। वह कैनिंग की नीति का विरोधी था। अतः उसने

---

1. 'The Turko-Egyptain fleet had disappeared, the bay of Navarino was covered with their wrecks.'

कहा कि टर्की हमारा मित्र है और हमें उसे स्वतन्त्र रखना है। उसने नेवारिनों की घटना को एक अवांछनीय दुर्घटना कह कर खेद प्रकट किया।[1] इस प्रकार विलिंगटन ने कैनिंग की नीति का परित्याग कर यूनानियों को अपने भाग्य पर छोड़ दिया। अब सुलतान अपनी इच्छानुसार यूनानियों का दमन कर सकता था। इङ्गलैंड एवं फ्रांस के साथ छोड़ देने पर रूस मनचाहा करने के लिये स्वतन्त्र हो गया। अतः ऐसा कहा जाता है कि कैनिंग ने अपनी कूटनीति से वर्षों में जो प्राप्त किया था उसके उत्तराधिकारी ने अपनी लापरवाही से उसको कुछ ही महीनों में ही खो दिया।

रूसी-तुर्की युद्ध—२७ अप्रैल १८२८ को सम्राट् निकोलस ने युद्ध की घोषणा कर दी। एक लाख पचास हजार सैनिकों के साथ वह स्वयं युद्ध-क्षेत्र में आया। वलाशिया तथा मोल्डाविया पर रूस ने अधिकार कर लिया। उसने डार्डेनेलीज पर भी अधिकार कर लिया। इङ्गलैंड एवं फ्रांस ने अपनी नीति बदल कर हस्तक्षेप किया। फ्रांस ने अपनी सेनायें मोराविया में भेज दीं तथा मोराविया इब्राहीम से खाली करा दिया गया। यह निर्णय किया गया कि मोराविया का राज्य मित्र-राष्ट्रों के संरक्षण में रहेगा। यूनान को स्वायत्त शासन दे दिया जाय। फिर भी वह टर्की सुलतान के संरक्षण में रहेगा तथा उसे कर देता रहेगा। यूनान में कौन राजा होगा, इसका निर्णय भी मित्र राष्ट्रों (ब्रिटेन, फ्राँस तथा रूस) द्वारा होगा।

अन्त में टर्की इस युद्ध में हार गया और उसे रूस के साथ अगस्त १८२९ में एड्रियानोपुल की सन्धि करनी पड़ी। इस सन्धि की निम्न शर्तें थीं :—

(१) टर्की ने यूनान को स्वायत्त शासन दे दिया। जिस व्यक्ति को मित्र राष्ट्र यूनान का राजा घोषित करेंगे, उसे सुलतान स्वीकार कर लेगा।

(२) वलाशिया तथा मोल्डाविया के प्रदेश स्वतन्त्र कर दिये गये तथा उनको रूस का संरक्षण प्रदान कर दिया गया।

(३) जार्जिया तथा काकेशस के प्रदेश भी रूस को दे दिये गये।

(४) काला सागर एवं डेन्यूब नदी-शान्ति काल में सब राष्ट्रों के लिये खोल दिये गये। परन्तु युद्ध-काल में ये सब राष्ट्रों के लिये बन्द रहेंगे।

(५) टर्की में रूसी व्यापारियों को सुविधायें दी जायेंगी तथा उनकी रक्षा का भार रूसी अफसरों को दिया गया।

सन् १८३० में ब्रिटेन, फ्रांस एवं रूस ने मिल कर प्रोटोकल ऑफ लन्दन पास किया। इसके अनुसार यूनान को स्वतन्त्रता दे दी गई और उसकी रक्षा का भार मित्र राष्ट्रों ने अपने ऊपर ले लिया। उक्त तीनों राज्यों ने यूनान को उसके विकास के लिए ६ करोड़ फ्रांक का ऋण देना भी स्वीकार कर लिया। अन्त में उक्त तीनों देशों ने १८३३ में बवेरिया के राजकुमार प्रिंस ओटो को वहाँ का राजा बना दिया।

---

1. 'This untoward event will not be followed by further hostilities.'

मेहमतअली का विद्रोह—फ्रांस एवं इङ्गलैंड दोनों ही मिस्र पर अधिकार करना चाहते थे। नेपोलियन महान् के समय में भी फ्रांस ने मिस्र पर अधिकार करने का प्रयत्न किया था। इङ्गलैंड भी अपने पूर्वी साम्राज्य की सुरक्षा के हेतु मिस्र पर अधिकार करना चाहता था। इससे मिस्र में बहुत अव्यवस्था फैली हुई थी। इस अव्यवस्था काल में कैरो के शेखों ने १८०५ में मेहमतअली को अपना नेता चुना। तुर्की सुलतान ने भी उसको मान्यता दे दी।

१८२४ से १८२६ तक टर्की में यूनानियों का विद्रोह चलता रहा। सुलतान इस विद्रोह का दमन न कर सका। अतः उसने अपने मिस्र के गवर्नर मेहमतअली से सहायता मांगी। उसने अपने पुत्र इब्राहीम को एक विशाल सेना देकर सुलतान की सहायता के लिये भेजा। इस सेवा के बदले में सुलतान ने उसको क्रीट का गवर्नर मान लिया तथा यदि हो सका तो मोराविया भी उसको देने का वायदा किया। अन्त में पुरस्कार-स्वरूप उसको क्रीट मिला। इससे वह सन्तुष्ट नहीं हुआ। फलतः उसने विद्रोह कर दिया। उसने सीरिया पर आक्रमण किया और जाफा,गाजा तथा डेमेक्स पर अधिकार कर लिया। विवश होकर टर्की के सुलतान महमूद ने मेहमतअली के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। सुलतान महमूद ने अपने सेनापति हुसैन पाशा को मेहमतअली के विरुद्ध भेजा। हुसैन पाशा पराजित हुआ। तत्पश्चात् सुलतान ने अपने दूसरे सेनापति रशीद पाशा के नेतृत्व में दूसरी सेना मेहमतअली के विरुद्ध भेजी; परन्तु मेहमतअली ने इस सेना को भी पराजित कर दिया। इस पर सुलतान ने महाशक्तियों (Great Powers) से सहायता की याचना की। इस समय ब्रिटेन बेल्जियम के मामले में फंसा हुआ था। फ्रांस मिस्र के गवर्नरों को सहायता देता था। आस्ट्रिया एवं प्रशा वैध राजता के सिद्धान्त के आधार पर किसी विदेशी शक्ति द्वारा हस्तक्षेप के विरोध में थे। अतः वे भी टर्की सुलतान को कोई सहायता देने में असमर्थ थे। इस प्रकार अब एकमात्र रूस ही उसको सहायता देने के लिये तैयार था। उसका उद्देश्य कान्स्टेन्टीनोपुल, वासफोरस एवं डार्डेनेलीज पर प्रभाव स्थापित करना था। वह मेहमतअली का दमन कर टर्की सुलतान को बराबर बनाये रखना चाहता था। वह यह भली प्रकार जानता था कि यदि तुर्की सुलतान के स्थान पर मेहमतअली आ गया तो वह इन प्रदेशों पर अपना प्रभाव स्थापित न कर सकेगा। इसके साथ-साथ सुलतान यह भली प्रकार जानता था कि रूस की एकांकी सहायता से रूस का और भी अधिक हस्तक्षेप टर्की साम्राज्य में बढ़ जायगा। परन्तु किसी अन्य देश से सहायता न मिलते देख अन्त में विवश होकर सुलतान को रूस की सहायता लेनी पड़ी। इससे फ्रांस एवं इङ्गलैंड घबरा गये। उन्होंने हस्तक्षेप किया। उन्होंने दोनों पक्षों को युद्ध समाप्त करने को कहा। ८ अप्रैल १८३३ को एक विराम सन्धि हो गई। इसके अनुसार निम्न निर्णय हुये :—

(१) मेहमतअली को सीरिया का सम्पूर्ण प्रदेश दे दिया जाय।
(२) उसको मेसोपोटामिया का भी कुछ भाग दे दिया जाय।
(३) उसको अदना का जिला एवं बन्दरगाह भी दे दिया जाय।

अभी तक रूस को कुछ नहीं मिला। अतः वह सुलतान को बराबर दबाता रहा। उसने एक सेना भेज कर बासफोरस एवं डार्डेनेलीज का दुर्गीकरण करना आरम्भ कर दिया। अन्त में ८ जुलाई १८३३ को सुलतान ने रूस के साथ भी एक सन्धि कर ली जो अंकिएर—स्केलेसी की सन्धि के नाम से प्रख्यात है। इस सन्धि के अनुसार निम्न निर्णय हुए :—

(१) आवश्यकता पड़ने पर रूस टर्की को सैनिक सहायता देगा।

(२) यदि रूस का किसी अन्य देश से युद्ध हो तो टर्की रूस की सहायता करेगा।

(३) युद्ध-काल में बासफोरस एवं डार्डेनेलीज सब देशों के लिये बन्द रहेंगे; परन्तु युद्ध-काल में भी ये रूस के लिये बन्द नहीं होंगे।

इस प्रकार मेरीयट के शब्दों में टर्की साम्राज्य में रूसी हस्तक्षेप को बहुत बढ़ा दिया।[1] यह सन्धि टर्की साम्राज्य में रूसी हस्तक्षेप को मान्यता प्रदान करना था।

इङ्गलैंड एवं फ्रांस ने इसका विरोध किया। इङ्गलैंड ने खासतौर से तुर्की सुलतान का ध्यान १८०८ की ऐंग्लो-तुर्की सन्धि की ओर आकृष्ट किया। इसके अनुसार किसी भी देश का जहाज बासफोरस एवं डार्डेनेलीज में से होकर नहीं निकलेगा। टर्की ने इसके प्रत्युत्तर में कहा है कि यद्यपि रूस को ये सुविधायें प्रदान कर दी गई हैं, परन्तु वह उन सुविधाओं का उपयोग नहीं करेगा। कुछ समय के लिए झगड़ा शान्त हो गया। परन्तु १८३८ में पुनः पूर्वी समस्या पैदा हो गई। कारण यह था कि प्रशा ने अपने सेनापती मोल्टके को टर्की साम्राज्य में सेना का संगठन करने भेजा। इससे टर्की के सुलतान एव प्रशा के सम्राट् की मित्रता सिद्ध होती है। इससे टर्की को यह आशा थी कि भविष्य में होने वाले किसी युद्ध में प्रशा हमारा विरोध न करेगा।

इस बीच टर्की ने इंगलैंड से भी एक व्यापारिक सन्धि कर ली। टर्की में इंगलैंड को भी कुछ व्यापारिक सुविधायें प्रदान कर दी गईं। इससे टर्की को आशा हो गई कि किसी भी संकट-काल में इंगलैंड उसकी सहायता करेगा।

इस प्रकार प्रशा एवं ब्रिटेन से मित्रता कर टर्की के सुलतान ने मेहमतअली पर आक्रमण किया। परन्तु मेहमतअली के पुत्र इब्राहीम ने टर्की सेना को पराजित कर दिया। इसी बीच तुर्की सुलतान महमूद की मृत्यु हो गई और उसका १६ वर्ष का पुत्र अब्दुल मजीद सुलतान हुआ। यह मेहमतअली की सब मांगों को स्वीकार कर युद्ध समाप्त करना चाहता था। परन्तु मित्र राष्ट्रों ने हस्तक्षेप किया और कहा कि यह एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न है। अतः जो सन्धि हो वह महाशक्तियों (Great Powers) के द्वारा हो। इस समय केवल फ्राँस ही मेहमतअली का साथ दे रहा था। उसका

1. 'The famous treaty marked the zenith of Russian influence at Constantinople.'

कारण यह था कि उसकी स्पेन से मित्रता थी तथा अलजीरिया पर उसका अधिकार था। अब वह भूमध्य सागर पर अपना प्रभाव स्थापित करना चाहता था। इस कार्य में उसको मेहमतअली से भी सहायता मिल सकती थी। इंगलैंड एवं फ्रांस इससे भयभीत हो गये। अतः पामर्स्टन ने एक योजना रक्खी—

(१) इंगलैंड यह कभी नहीं स्वीकार करता कि टर्की यूरोप का एक बीमार आदमी है। उसको ऐसा ख्याल करना मूर्खता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

(२) मेहमत अली का प्रभाव मिस्र से आगे न बढ़ने पावे।[1]

(३) टर्की को सुरक्षा मिले, परन्तु यह कार्य एकमात्र रूस का न होकर मित्र-राष्ट्रों का हो। फ्राँस भी मेहमतअली की सहायता कर रहा था। अतः ऐसे अवसर पर इंगलैंड का कर्त्तव्य फ्रांस एवं रूस दोनों के प्रभाव को रोकना था और यदि वह ऐसा न करता तो टर्की साम्राज्य को रूस एवं फ्रांस परस्पर बांट लेते।[2]

पामर्स्टन ने इस समस्या को सुलझाने के लिये १५ जुलाई १८४० को लन्दन में एक सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन में इंगलैंड, रूस, आस्ट्रिया एवं प्रशा ने भाग लिया। इस सम्मेलन ने निम्न निर्णय दिए—

(१) मेहमतअली मिस्र का वंशानुगत पाशा मान लिया जाय।

(२) मेहमतअली को जन्म भर के लिए दक्षिणी सीरिया का शासन दे दिया जाय। उसकी मृत्यु के बाद दक्षिणी सीरिया उसके पुत्र इब्राहीम को न मिलकर टर्की के सुलतान को दे दिया जायगा।

(३) यदि मेहमतअली १० दिन के अन्दर-अन्दर इस सन्धि को स्वीकार न करे तो उससे सीरिया का अधिकार छीन लिया जायगा।

(४) यदि मेहमतअली २० दिन तक इस सन्धि को स्वीकार न करे तो मिस्र का अधिकार भी उससे छीन लिया जायगा।

(५) चारों देशों ने यह आश्वासन दिया कि वे सम्मिलित रूप से टर्की साम्राज्य की सुरक्षा करेंगे।

इस व्यवस्था के फलस्वरूप अंकिएर-स्केलेसी की सन्धि भंग हो गई। विएना कांग्रेस के बाद यह पहला मौका था, जबकि फ्रांस को अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में नहीं बुलाया गया। फ्राँस का सम्राट् लुई फिलिप इससे बहुत नाराज हुआ। उससे भी कहीं अधिक नाराज हुआ उसका मन्त्री थिए। फलतः फ्रांस ने युद्ध की धमकी दी। पामर्स्टन यह भली प्रकार जानता था कि फ्राँस कभी भी चार देशों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा नहीं कर सकता। इसलिये पामर्स्टन ने घोषित किया कि यदि फ्राँस युद्ध चाहता है तो हम भी युद्ध के लिए तैयार हैं।[3] पामर्स्टन की इस घोषणा से लुई फिलिप खामोश

1. 'To withdraw into his original shell of Egypt.'

2. 'The practical division of the Ottoman Empire into two separate and independent states, where of one would be a dependency of France and the other a satellite of Russia.'

3. 'If France throws down the gauntlet, we shall not refuse to pick it up.'

हो गया। थिए ने अपना विरोध प्रदर्शित करते हुए त्याग-पत्र दे दिया। तत्पश्चात् ग्वीजो फ्रांस का प्रधान मन्त्री हुआ। यह इंगलैंड का मित्र था। मेहमत अली ने उपर्युक्त पाँचों प्रस्तावों को अस्वीकृत कर दिबा तथा सुलतान ने मेहमतअली को पदच्युत कर दिया। मित्र-राष्ट्रों (इंगलैंड, रूस, आस्ट्रिया तथा प्रशा) ने मिलकर मेहमतअली के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही की तथा उसके पुत्र इब्राहीम को कई स्थानों पर पराजित किया। अन्त में इब्राहीम ने मित्र-राष्ट्रों के सम्मुख आत्म-समर्पण कर दिया। १८४१ में लन्दन में एक दूसरा सम्मेलन हुआ जिसके अनुसार निम्न निर्णय किये गये—

(१) मेहमत अली को मिस्र का वंशानुगत गवर्नर मान लिया गया।

(२) मेहमतअली ने यह स्वीकार किया कि वह सीरिया, अरब एवं क्रीट को खाली कर देगा।

(३) वास्फोरस एवं डार्डनेलीज में किसी भी देश के जंगी जहाज प्रवेश न कर सकेंगे।

यह पामर्स्टन की बहुत भारी विजय थी। उसने टर्की साम्राज्य में रूस एवं फ्राँस के प्रभाव को न बढ़ने दिया। इंगलैंड के विरोध में जो अंकिएर-स्केलेसी सन्धि हुई थी, वह भंग कर दी गई।

प्रश्न (बी० ए०)

१ पूर्वी समस्या का क्या अर्थ है? इसके प्रधान कारण क्या थे?

२ यूनानी स्वतन्त्रता-संग्राम का संक्षिप्त इतिहास लिखिए।

३ मेहमतअली कौन था? उसके कार्यों ने पूर्वी समस्या को किस प्रकार प्रभावित किया?

४ १८१५ और १८४८ के बीच पूर्वी समस्या किन रूपों में उपस्थित हुई?

५ उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में तुर्की साम्राज्य के पतन के कारणों पर विचार कीजिये।

Questions (M. A.)

1 Describe briefly the story of the decline of the Turkish Empire during your period.

2 'The maintenance of the integrity of Turkey was the traditional British policy.' Examine critically this statement in the light of the events during your period.

3 Briefly indicate the nature of the policy adopted by (a) England (b) France and (c) Russia towards the Turkish Empire during your period.

4 Give an account of th : Greek War of Independence.

—:o:—

५

जर्मनी का एकीकरण

पृष्ठभूमि, राष्ट्रीय चेतना और आन्दोलन, कार्ल्सबाड के नियम, १८३० की क्रान्ति की असफलता, १८४८ की क्रान्ति और फ्रैंकफोर्ट पार्लियामेण्ट, एर्फर्ट का अधिवेशन, प्रशा का महत्व, जोल्वेरीन, फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ। प्रशा का नेतृत्व।

पृष्ठभूमि—नेपोलियन के उदय के पूर्व जर्मनी के विभिन्न राज्य पवित्र रोमन साम्राज्य (Holy Roman Empire) के अन्तर्गत माने जाते थे। वाल्टेयर के शब्दों में न यह पवित्र रह गया था, न रोमन और न साम्राज्य।'[1] यह एकमात्र अपने प्राचीन गौरव का स्मरण दिलाता था। १८०६ में नेपोलियन ने इसे नष्ट कर दिया और जर्मनी के अधिकांश राज्यों को राइन-संघ (Confederation of the Rhine) के रूप में संगठित किया था। प्रशा और आस्ट्रिया के दो प्रमुख राज्य इस संघ से बाहर थे। नेपोलियन के इस कार्य से जर्मनी में एकता की भावना का संचार हुआ था। उसकी जनता को यह आशा थी कि नेपोलियन के पतन के पश्चात् विजेता मित्रराष्ट्र जर्मनी की एकता को और अधिक दृढ़ कर देंगे। परन्तु मेटरनिख के नेतृत्व में वियना काँग्रेस ने जर्मनी को ३९ स्वतन्त्र राज्यों के एक शिथिल संघ में परिवर्तित कर दिया। संघीय शासन चलाने के लिये केन्द्र में एक संघीय संसद (Federal Diet) की कल्पना की गई। इसका अधिवेशन फ्रैंकफोर्ट में होता था। इसके सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित नहीं होते थे। वे विभिन्न राज्यों के राजाओं के द्वारा मनोनीत होते थे और प्रत्येक कार्य अपने राजाओं के इशारों पर करते थे। डायट कभी साधारण सभा (Ordinary Assembly) के रूप में बैठती थी और कभी सार्वजनिक सभा (General Assembly) के रूप में। मताधिकार भी अद्भुत ढंग का था। साधारण सभा में ३९ राज्यों में ११ बड़े राज्यों में से प्रत्येक को एक एक वोट था। शेष राज्य ६ वर्गों में संगठित थे और प्रत्येक वर्ग को (प्रत्येक राज्य को नहीं) एक एक वोट था। इस प्रकार साधारण सभा के रूप में संघीय संसद में कुल १७ वोट थे। जब डायट सार्वजनिक सभा के रूप में बैठती थी तो उसमें ६९ वोट होते थे। इसमें आस्ट्रिया, प्रशा, सैक्सनी, बवेरिया, हैनोवर और वर्टेमबर्ग नामक बड़े राज्यों में से प्रत्येक को ४-४ वोट प्राप्त थे। शेष राज्यों में कुछ को ३-३, कुछ को २-२ और कुछ को केवल १-१ वोट प्राप्त था।

1. It was neither Holy nor Roman nor Empire.

सम्पूर्ण जर्मनी का न तो कोई सम्राट् था, न कोई झण्डा और न कोई नागरिक। प्रत्येक इकाई राज्य के पृथक-पृथक राजा झण्डे और नागरिक थे। बाह्य देशों के साथ स्वतन्त्रता से पृथक्-पृथक कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित करते थे। बस, बन्धन केवल इतना ही था कि ये इकाई राज्य आपस में युद्ध नहीं कर सकते थे। अपने आपसी झगड़ों को इन्हें संघीय संसद् के सामने रखना पड़ता था और उसके निर्णय को स्वीकार करना पड़ता था। यदि संसद किसी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करे तो प्रत्येक राज्य को संसद के पक्ष से युद्ध करना पड़ेगा।

जर्मन संघ के सम्बन्ध में एक अन्य कठिनाई यह भी थी कि कई विदेश भी इसके सदस्य थे। हैनोवर के रूप में इंगलैंड, लग्जेम्बर्ग के रूप में नीदरलैंड और होल्स्टीन के रूप में डेन्मार्क भी संघीय संसद् के सदस्य थे। इनके गैर-जर्मन हित थे। अत: इनके कारण किसी भी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न में जटिलता उत्पन्न हो सकती थी।

यही हाल आस्ट्रिया का था। वह भी गैर-जर्मन राज्य था। उसका विशाल साम्राज्य था जिसमें जर्मन जाति के अतिरिक्त अनेकानेक अन्यान्य जातियां भी रहती थीं। अतः ऐसे देश को जर्मन संघ का अध्यक्ष बनाना सर्वथा अनुचित था।

इस प्रकार विएना कांग्रेस ने जर्मनी की राष्ट्रीय एकता को अस्वीकार किया। उसने वहाँ जिस प्रकार के संघीय शासन की स्थापना की थी वह जनतन्त्रवादी सिद्धांतों के विरुद्ध तथा नितान्त शिथिल था। अत: स्वाभाविक था कि जर्मनी की जनता ने इस योजना को कभी भी हृदय से स्वीकार नहीं किया था। जर्मनी को अपनी राष्ट्रीय एकता संवैधानिक ढंग से न मिली। उसे प्राप्त करने के लिये अन्त में उसे युद्ध का अवलम्ब लेना पड़ा।[1]

यह कहा जाता है कि किसी संविधान को निरर्थक करने के लिए जितने दोष हो सकते थे वे इसमें विद्यमान थे।[2]

जर्मनी में राष्ट्रीय चेतना और आन्दोलन—शीघ्र ही जर्मनी में वियना कांग्रेस द्वारा निर्मित व्यवस्था के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ हो गये। इन आन्दोलनों के केन्द्र जर्मनी के विश्वविद्यालय थे। विद्यार्थियों ने अपना संगठन बनाया। यह संगठन

---

1. 'The high hopes of the German nationalists and liberals were doomed to disappointment; the opportunity was missed to create a German Confederation which might well have been liberal, civilised and humane; the unity of Germany could thereafter only be forged by blood and iron.' —Nicholson

2. 'Judged by the requirements of a practical political organisation, this German Act of Confederation, produced with so much effort, possessed about all the faults that can render a constitution utterly useless.'

—Sybel, Foundation of the German Empire

बर्शेनशैफ्ट (Burshenschaft) के नाम से प्रख्यात है। धीरे-धीरे इसकी शाखायें १६ विश्वविद्यालयों में फैल गई। सिबेल ने विद्यार्थी-संगठनों का निम्नलिखित शब्दों में वर्णन किया है—

'The young heroes returning from the war filled universities with their patriotic indignation, and by the founding of societies of students (Burschenscha ten), represented at all the universities, they sought to fill all the educated youth of Germany with their enthusiasm for unity, justice and freedom......By moral elevation and patriotic inspiration they hoped to lead the state of the future to great goal of national unity.'

इस आन्दोलन का सबसे अधिक जोर जेना विश्वविद्यालय में था। विद्यार्थियों ने सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीयता की शक्तियों को सबल बनाने के लिए १८ अक्टूबर, १८१७ को वार्टबर्ग में लूथर द्वारा घोषित धर्म-सुधार (Reformation) की त्रिशताब्दी और लीप्जिग के राष्ट्रीय युद्ध की चौथी वर्षी मनाने के लिए एक राष्ट्रीय उत्सव का आयोजन किया।

मेटरनिख इन घटनाओं से घबरा गया। १८१८ में एलाशपल की कांग्रेस हुई। मेटरनिख ने इसमें उपस्थित कूटनीतिज्ञों और राजनीतिज्ञों को पुनः सचेत किया कि संसार में क्रान्तिकारी विचारों के दमन की आवश्यकता अब भी विद्यमान है।

२३ मार्च, १८१६ में जर्मनी में एक आतङ्ककारी घटना घटित हुई। इस दिन एक जर्मन विद्यार्थी कार्ल सैण्ड ने कोत्जेब्यू नामक एक पत्रकार और नाटककार की छुरे से हत्या कर दी। जर्मनी के राष्ट्रीयतावादियों को यह सन्देह था कि कोत्जेब्यू रूसी गुप्तचर है और जर्मनी की राष्ट्रीय एकता का विरोधी है।

कार्ल्सबाड का नियम—अब मेटरनिख ने राष्ट्रीय आन्दोलन के दमन करने का निश्चय किया। प्रशा के राजा फ्रेडरिक विलियन तृतीय को अपनी ओर मिलाकर मेटरनिख ने अगस्त १८१६ में कार्ल्सबाड में एक सभा बुलाई। इसमें जर्मनी के प्रमुख राज्यों के मन्त्री सम्मिलित हुए। मेटरनिख ने इस सभा में कुछ नियम पारित कराये जो इतिहास में कार्ल्सबाड के नियम (Carlsbad Decrees) के नाम से प्रख्यात हैं। इसके पश्चात् ये नियम फ्रेंकफोर्ड के संघीय संसद् में रक्खे गये। वहाँ भी मेटरनिख ने इन्हें पारित करा लिया और इस प्रकार ये कानून बन गये। कार्ल्सबाड की सभा में अनेक जर्मन राज्यों ने भाग नहीं लिया था। परन्तु फ्रेंकफोर्ड की संसद् में पास हो हो जाने के पश्चात् इन कानूनों को सभी राज्यों को मानना पड़ा। मेटरनिख ने संसद् में इन नियमों पर बोलने के लिये किसी भी प्रतिनिधि को अवसर न दिया। बिना विचार-विमर्श के उन नियमों पर एकमात्र मत-विभाजन कर लिया गया था और आस्ट्रिया तथा प्रशा के प्रभाव में वे तत्काल पारित करा लिए गये थे।

कार्ल्सबाड-नियमों की प्रमुख धाराओं का मन्तव्य इस प्रकार था—

(१) इकाई राज्य नवीन संविधान न देंगे।

(२) प्रत्येक विश्वविद्यालय में एक सरकारी प्रतिनिधि रहेगा जो अध्यापकों और विद्यार्थियों के कार्यों के ऊपर दृष्टि रक्खेगा। प्रत्येक अध्यापक को यह आदेश दिया जायगा कि वह सरकार-विरोधी और अहितकर सिद्धान्तों का प्रचार न करे।[1] इस आदेश का उल्लंघन करने वाला अध्यापक पदच्युत कर दिया जायगा और फिर वह कभी भी शिक्षा-संस्था में नियुक्त न हो सकेगा।

(३) विश्वविद्यालयों में बर्शेनशैफ्ट जैसे विद्यार्थी संगठन नहीं बन सकते।[2]

(४) एक विश्वविद्यालय से निकाला गया विद्यार्थी किसी अन्य विश्वविद्यालय में भर्ती नहीं हो सकेगा।

(५) प्रेस के ऊपर प्रतिबन्ध लगाये जायेंगे।

(६) एक विशेष कमीशन नियुक्त किया जायगा जो प्रत्येक व्यक्ति और संस्था के कार्यों पर दृष्टि रक्खेगा। आवश्यकता पड़ने पर यह कमीशन किसी को भी गिरफ्तार कर सकता था। इस कमीशन का प्रधान कार्यालय मेंज में स्थापित किया जायगा।

इस प्रकार कार्ल्सब्राड नियमों ने जर्मनी में घोर प्रतिक्रियावाद को जन्म दिया। ये नियम १८४८ तक मेटरनिख की दमन-नीति के मूलाधार बने रहे।

जर्मनी के राज्यों में प्रशा का राज्य ही ऐसा था जो इन नियमों के विरुद्ध आस्ट्रिया का विरोध कर सकता था। परन्तु प्रशा का राजा फ्रेडरिक विलियम तृतीय मेटरनिख के हाथ की कठपुतली बन गया था। उसने मेटरनिख के प्रभाव में अपने राज्य में नया संविधान नहीं दिया। पुलिस और गुप्तचर विभागों के अधिकार बढ़ा दिये गए। प्रेस की स्वतन्त्रता छीन ली गई। आर्न्ड जैसे प्रसिद्ध प्रोफेसर पदच्युत कर दिए गए। जान जैसे देश-भक्तों को जेल में डाल दिया गया।

जर्मनी के छोटे-छोटे राज्यों में इतना साहस न था कि वे मेटरनिख का विरोध करते। अतः उनमें भी घोर दमन-चक्र चलाया गया।

१८३० की क्रान्ति—१८३० में फ्राँस में पुनः क्रान्ति हो गई। आस्ट्रिया एवं प्रशा पर इस क्रान्ति का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। परन्तु छोटे-छोटे राज्यों में इसका कुछ प्रभाव पड़ा। ब्रुंजविक की जनता ने अपने राजा चार्ल्स को पदच्युत कर दिया और देश में एक नवीन संविधान लागू किया। कासिल, ड्रेस्डन और गोटिनजन आदि प्रदेशों में जनता ने विद्रोह किये तथा नवीन संविधान लागू किये। दक्षिणी राज्यों पर भी इसका प्रभाव पड़ा। इनमें बवेरिया उल्लेखनीय है। सब राज्यों में नए संविधानों

---

1. 'Not to 'propagate harmful doctrines hostile to public order or subversive of existing governmental institutions.'

2. 'Since the very conception of the society implies the utterly unallowable plan of permanent fellowship and constant communication between the various universities.'

की मांग हो रही थी। दक्षिण के राज्य आस्ट्रिया के नेतृत्व के स्थान पर प्रशा का नेतृत्व चाहते थे। ये देश एक मिलिटरी लीग की स्थापना करना चाहते थे। यह लीग देश में शान्ति-स्थापना का कार्य करेगी। यह कार्य डाइट का था, परन्तु अब यह कार्य सैनिक संघ को दिया जा रहा था। इस सैनिक संघ के संगठन से यह सिद्ध हो रहा था कि अब फेडरल डाइट के हाथ से सत्ता निकल रही थी।

विलियम फ्रेडरिक ने मेटरनिख के प्रभाव में आकर यह निर्णय किया कि आन्दोलन को दबा दिया जाय। मई १८३२ में कार्ल्सबाड के निर्देशों की पुनरावृत्ति की गई :—

(१) स्टेट की पार्लियामेंट के अधिकार कम कर दिये गये।

(२) विभिन्न राज्यों के प्रेसों के अधिकार एकदम समाप्त कर दिये गये।

(३) यदि किसी राज्य में विद्रोह हो तथा वह राज्य डाइट से सहायता की याचना करे तो डाइट को अधिकार है कि वह जनता के आन्दोलनों को दमन करने के लिए सेना भेज दे।

अप्रैल १८३३ में कुछ उपद्रवियों ने डाइट पर आक्रमण कर दिया। सेना ने इस आक्रमण का दमन कर दिया, परन्तु इस घटना से यह विदित हो गया कि डाइट के हाथ से सत्ता निकल कर जनता के हाथ में आ रही थी।

इस समय कैथोलिकों की सेन्टर पार्टी प्रशा का विरोध कर रही थी। १८३३ में हनोवर के राजा आगस्टस ने पार्लियामेन्ट के सब अधिकार छीनकर अपने हाथ में ले लिए। जनता ने अपने अधिकार की रक्षा के लिए डाइट से प्रार्थना की, परन्तु मेटरनिख के प्रभाव के अन्तर्गत डाइट ने जनता की कोई सहायता न की। इसलिए डाइट पर से जनता का विश्वास उठ गया।

सामूहिक रूप से मेटरनिख के नेतृत्व में जर्मनी में १८३० की क्रान्ति के प्रभावों को नष्ट कर दिया गया। १८३० से लेकर १८४८ तक का काल जर्मनी में प्रतिक्रियावाद का काल है।

फ्रैंकफोर्ट पार्लियामेन्ट—१८४८ में फ्रांस में क्रान्ति हो गई। इसका प्रभाव योरप के विभिन्न देशों पर पड़ा। विएना में मेटरनिख का पतन हो गया। जर्मनी के लिए यह उत्साहवर्धक घटना थी। वहां के विभिन्न राज्यों में भी विद्रोह और आन्दोलन होने लगे। राष्ट्रीय नेताओं ने पुरानी संघीय संसद की उपेक्षा करते हुए फ्रैंकफोर्ट में एक नवीन संसद बुलाई। इसमें विभिन्न राज्यों से निर्वाचित लगभग ५५० प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। अधिवेशन की अध्यक्षता के लिए हीनरिख फान गैगर्न को चुना गया।

इस संसद में सिद्धान्तवादी विद्वान्, पत्रकार और राजनीतिज्ञ अधिक थे। उनमें व्यावहारिकता कम थी। अतः उन्होंने कई सप्ताह निरर्थक वाद-विवाद में ही लगा दिए। बड़ी कठिनाई से उन्होंने आस्ट्रिया के उदार राजकुमार आर्कड्यक जान को सम्पूर्ण जर्मनी का प्रधान-मन्त्री (Imperial Vicar) चुना और उसे अपना मन्त्रि-मण्डल बनाने का अधिकार दे दिया। इसके पश्चात् उन्होंने जर्मन नागरिकों के मौलिक

अधिकारों की घोषणा की। परन्तु जर्मनी के भावी शासन-तन्त्र के ऊपर बड़ा झगड़ा हुआ। अन्त में यह तय हुआ कि जर्मनी से आस्ट्रिया को निकाल दिया जाय और शेष राज्यों को मिलाकर एक संघ की स्थापना की जाय। यह संघीय शासन राजतन्त्रात्मक होगा। शासन-संचालय के लिये केन्द्र में दो भवनों की एक संसद होगी। अन्त में नेताओं ने प्रशा के राजा **फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ** को नवीन जर्मन संघ का सम्राट् चुना। फ्रेडरिक प्रारम्भ से ही जर्मन के एकीकरण के लिये उत्सुक था। १८४७ में उसने घोषणा की थी कि I will settle the German question 'with Austria, without Austria, yes, if need be, against Austria.' फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ यदि इस पद को स्वीकार कर लता तो सम्भव है कि जर्मनी १८४६ में ही एक हो जाता। परन्तु अनेक कारणों से उसने जर्मन नेताओं के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया :—

(१) वह स्वभावतः रूढ़िवादी था। अतः इतने बड़े परिवर्तन के लिये वह तैयार न था।

(२) वह राजा के दैवी अधिकार में विश्वास करता था। अतः वह जनता के इस दावे को सहसा स्वीकार करने के लिये तैयार न था कि उसे राजा को सिंहासनासीन करने अथवा पदच्युत करने का अधिकार है।

(३) १८४८ की अपनी प्रारम्भिक असफलताओं के कुछ समय बाद ही आस्ट्रिया संभल गया था। विएना की क्रान्ति का दमन हो गया था। हंगरी की क्रान्ति भी असफल हो गई थी और आस्ट्रिया ने उसे अपने साम्राज्य में मिला लिया था। नोवारा में सार्डिनिया-पीडमाण्ट का राजा एल्बर्ट पराजित हो चुका था और इटली का स्वतन्त्रता-संग्राम भी प्रायः असफल हो गया था। इस परिस्थिति में फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ आस्ट्रिया से झगड़ा मोल लेने के लिये तैयार न था।

(४) प्रशा के सम्राट् को रूस के ज़ार निकोलस प्रथम के हस्तक्षेप का भी भय था।

इन कारणों से उसने फ्रैंकफोर्ट पार्लियामेण्ट के प्रस्ताव को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया और यह घोषित किया कि मैं 'क्रान्ति का दास' (Serf of the revolution) नहीं होना चाहता। उसने फ्रैंकफोर्ट की पार्लियामेण्ट द्वारा दिये गये राजमुकुट को 'Crown of Shame' कहा। अतः फ्रैंकफोर्ट की पार्लियामेण्ट द्वारा किया गया सारा काम चौपट हो गया। एक बार फिर संवैधानिक उपायों की निर्बलता स्पष्ट हो गई। जर्मनी के एकीकरण के लिए किसी अन्य उपाय की छान-बीन होने लगी। यह उपाय शस्त्र-बल का था।

एर्फर्ट का अधिवेशन—कुछ दिनों पश्चात् प्रशा के राजा फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ ने जर्मनी के एकीकरण के लिए पुनः प्रयास किया और जर्मनी के अनेक राज्यों की सहायता से मार्च, १८५० में एर्फर्ट में एक दूसरी पार्लियामेण्ट बुलाई। यह निर्णय किया गया कि जर्मनी के नवीन संघ से आस्ट्रिया को निकाल दिया जाय। संघीय शासन के लिए द्विसदनात्मक संसद बनाई जाय। संघ का अध्यक्ष प्रशा होगा।

परन्तु शीघ्र ही सैक्सनी और हैनोवर इस अधिवेशन से अलग हो गये। आस्ट्रिया के प्रधान-मन्त्री स्वार्जेनबर्ग ने इस परिस्थिति से लाभ उठाया। उसने वर्टेम्बर्ग, बवेरिया, सैक्सनी, हैनोवर आदि अनेक जर्मन राज्यों को अपने पक्ष में मिला लिया। तत्पश्चात् उसने नवम्बर, १८५० में प्रशा के मन्त्री माण्ट्यूफेल से ओल्मुज में भेंट की और उसे समझा-बुझाकर पुराने जर्मन संघ को पुनः मान्यता दिला दी। इस प्रकार जर्मनी के एकीकरण की योजना असफल हुई।

प्रशा का उदीयमान महत्व—जर्मन संघ में आस्ट्रिया के बाद प्रशा का महत्व था। वहाँ १७९७ से लेकर १८४० तक **फ्रेडरिक विलियम तृतीय** ने शासन किया। जर्मनी के अन्यान्य राजाओं की भांति फ्रेडरिक भी प्रतिक्रियावादी और एकतन्त्रवादी शासक था। उसने जनता को न तो संविधान दिया, न पार्लियामेण्ट और न विचार-प्रकाशन की स्वतन्त्रता। विश्वविद्यालयों पर उसकी कड़ी दृष्टि थी। उसके शासन-काल में अनेकानेक प्रोफेसरों और विद्यार्थियों का दमन किया गया। मेटरनिख के साथ मिल कर प्रशा ने भी कार्ल्सबाड नियमों को कठोरतापूर्वक लागू किया।

परन्तु बौद्धिक और आर्थिक दृष्टिकोण से फ्रेडरिक विलियम तृतीय का शासन-काल अत्यन्त महत्वपूर्ण था।[1]

इसी समय देश में प्रबल बौद्धिक जागरण हुआ। फ्रेडरिक ने १८१७ में आल्टेण्स्टीन को शिक्षा-मन्त्री नियुक्त किया। यह बड़ा कुशल शिक्षा-शास्त्री था। इसने विश्वविद्यालयों की शिक्षा को संगठित किया। इसने बान में एक नवीन विश्व-विद्यालय स्थापित किया, विटेनबर्ग और हाल के विश्वविद्यालयों को एक में संगठित किया तथा फ्रैन्कफोर्ट के विश्वविद्यालय को ब्रेस्लाउ में स्थानान्तरित कर दिया। आल्टेन्स्टीन ने अध्यापकों के लिये प्रशिक्षण-विद्यालय भी खोले।

फ्रेडरिक विलियम तृतीय के शासन-काल में ही विश्वविद्यालयों के नेतृत्व में जर्मनी में राष्ट्रीयता का प्रचार हुआ। जेना का विश्वविद्यालय इस राष्ट्रीयता के आन्दोलन में सबसे आगे था। यहाँ से प्रारम्भ होकर विद्यार्थियों के संगठन (Burschenschaften) देश के अन्य विश्यविद्यालयों में भी फैल गये।

यह काल प्रशा में पत्रकारिता के विकास का भी था। इस समय राज्य के पत्रकारों ने निर्भीकतापूर्वक देश-भक्ति और राष्ट्रीय एकता का प्रचार करना प्रारम्भ किया।

---

1. 'The interest of German history between 1830 and 1848 does not lie in the evolution of political liberty, for political repression and absolutism were the order of the day. It lies rather in growth along economic lines, in intellectual achievements outside the domain of politics and in those movements of opinion and of racial aspiration which rendered so notable and far reaching the vast turmoil of 1848.' —Hazen

फ्रेडरिक विलियम तृतीय एक कुशल एवं परिश्रमी प्रशासक था। नेपोलियन के युद्धों के परिणामस्वरूप उसके राज्य की आर्थिक अवस्था खराब हो गई थी। राज्य का बजट घाटे में चल रहा था। उस पर भारी कर्ज था। फ्रेडरिक ने राज्य की कर-व्यवस्था को संगठित करके तथा सम्पूर्ण प्रशासन में मितव्ययिता दिखा कर अपने बजट के आय-व्यय को संतुलित किया।

जोल्वेरीन—अभाग्यवश प्रशा दो भागों में बटा हुआ था—पूर्वी प्रशा और पश्चिमी प्रशा। इन दोनों के बीच अन्य स्वतन्त्र राज्य स्थित थे। इन दोनों प्रदेशों की आर्थिक व्यवस्था नितान्त भिन्न थी। एक औद्योगिक प्रदेश था और दूसरा कृषि-प्रधान। यही नहीं, प्रशा के विभिन्न जिलों और नगरों में अलग-अलग चुंगी-व्यवस्था थी। यह कहा जाता है कि प्रशा में ६७ नितान्त भिन्न चुंगी-व्यवस्थायें थीं। इनके कारण राज्य का व्यापार पनप नहीं पाता था। सीमाओं के अरक्षित होने के कारण स्थान-स्थान पर चोरी से माल (Smuggling) भी लाया जाता था। फ्रेडरिक विलियम तृतीय ने मासेन (Maasen) नामक अर्थशास्त्री के निर्देशों के अन्तर्गत प्रशा में आन्तरिक आर्थिक व्यवस्था स्थापित की।

उसने २८ मई, १८१८ को एक चुंगी-कानून (Tariff Reform Law) पास कराया। इसके अनुसार निम्नलिखित व्यापारिक व्यवस्था स्थापित की गई :—

(१) प्रशा में आने वाले कच्चे माल पर कोई चुंगी न लगेगी।

(२) तैयार माल (Manufactured goods) पर १० प्रतिशत की चुंगी लगेगी।

(३) औपनिवेशिक माल पर २० प्रतिशत की चुंगी लगेगी।

(४) प्रशा के आन्तरिक व्यापार पर कोई भी सीमा-चुंगी न ली जायेगी।

इस प्रकार प्रशा एक व्यापारिक इकाई (Commercial unit) हो गया। विदेशी माल के ऊपर वह जो चुंगी लगाता था वह विदेशों में ली जाने वाली चुंगियों से कहीं कम थी।

इसके पश्चात् प्रशा ने जर्मन-संघ के अन्य राज्यों को भी आमन्त्रित किया कि वे भी प्रशा की चुंगी-व्यवस्था को अपनायें और इस प्रकार एक चुंगी-संघ (Zollverein) की स्थापना करें। १८१३ में स्वार्जबर्ग-सोण्डरशौसेन प्रशा के चुंगी-संघ में सम्मिलित हो गया। १८२२ में वीमर, गोथा, मेक्लेनबर्ग-स्वेरिन, सौम्बर्ग-लिप, रुडोल्स्टाड और बैम्बर्ग ने भी इस संघ की सदस्यता स्वीकार कर ली।

यह चुंगी-संघ-व्यवस्था इतनी अधिक लोकप्रिय हुई कि प्रशा की भाँति दो-तीन अन्य स्वतन्त्र चुंगी-संघ भी बनाये गये। एक संघ में बवेरिया और बर्टेम्बर्ग तथा कुछ अन्य राज्य सम्मिलित हुये। इसी प्रकार के दूसरे संघ में सैक्सनी, हैनोवर, हेस-कासेल, ब्रंजविक, फ्रैन्कफोर्ट हैम्बर्ग, ब्रेमेन आदि सदस्य थे।

परन्तु धीरे-धीरे ये पृथक् चुंगी-संघ समाप्त हो गये और १८३३ तक सब संघ प्रशा के चुंगी-संघ में ही सम्मिलित हो गये। १८४१ तक जर्मन-संघ के प्रायः

परन्तु शीघ्र ही सैक्सनी और हैनोवर इस अधिवेशन से अलग हो गये। आस्ट्रिया के प्रधान-मन्त्री स्वार्जेनबर्ग ने इस परिस्थिति से लाभ उठाया। उसने वर्टेम्बर्ग, बवेरिया, सैक्सनी, हैनोवर आदि अनेक जर्मन राज्यों को अपने पक्ष में मिला लिया। तत्पश्चात् उसने नवम्बर, १८५० में प्रशा के मन्त्री माण्ट्यूफेल से ओलमुज में भेंट की और उसे समझा-बुझाकर पुराने जर्मन संघ को पुनः मान्यता दिला दी। इस प्रकार जर्मनी के एकीकरण की योजना असफल हुई।

प्रशा का उदीयमान महत्व—जर्मन संघ में आस्ट्रिया के बाद प्रशा का महत्व था। वहाँ १७९७ से लेकर १८४० तक **फ्रेडरिक विलियम तृतीय** ने शासन किया। जर्मनी के अन्यान्य राजाओं की भांति फ्रेडरिक भी प्रतिक्रियावादी और एकतन्त्रवादी शासक था। उसने जनता को न तो संविधान दिया, न पार्लियामेण्ट और न विचार-प्रकाशन की स्वतन्त्रता। विश्वविद्यालयों पर उसकी कड़ी दृष्टि थी। उसके शासन-काल में अनेकानेक प्रोफेसरों और विद्यार्थियों का दमन किया गया। मेटरनिख के साथ मिल कर प्रशा ने भी कार्ल्सबाड नियमों को कठोरतापूर्वक लागू किया।

परन्तु बौद्धिक और आर्थिक दृष्टिकोण से फ्रेडरिक विलियम तृतीय का शासन-काल अत्यन्त महत्वपूर्ण था।[1]

इसी समय देश में प्रबल बौद्धिक जागरण हुआ। फ्रेडरिक ने १८१७ में आल्टेण्स्टीन को शिक्षा-मन्त्री नियुक्त किया। यह बड़ा कुशल शिक्षा-शास्त्री था। इसने विश्वविद्यालयों की शिक्षा को संगठित किया। इसने बान में एक नवीन विश्व-विद्यालय स्थापित किया, विटेनबर्ग और हाल के विश्वविद्यालयों को एक में संगठित किया तथा फ्रैन्कफोर्ट के विश्वविद्यालय को ब्रेस्लाउ में स्थानान्तरित कर दिया। आल्टेन्स्टीन ने अध्यापकों के लिये प्रशिक्षण-विद्यालय भी खोले।

फ्रेडरिक विलियम तृतीय के शासन-काल में ही विश्वविद्यालयों के नेतृत्व में जर्मनी में राष्ट्रीयता का प्रचार हुआ। जेना का विश्वविद्यालय इस राष्ट्रीयता के आन्दोलन में सबसे आगे था। यहाँ से प्रारम्भ होकर विद्यार्थियों के संगठन (Burschenschaften) देश के अन्य विश्वविद्यालयों में भी फैल गये।

यह काल प्रशा में पत्रकारिता के विकास का भी था। इस समय राज्य के पत्रकारों ने निर्भीकतापूर्वक देश-भक्ति और राष्ट्रीय एकता का प्रचार करना प्रारम्भ किया।

---

1. 'The interest of German history between 1830 and 1848 does not lie in the evolution of political liberty, for political repression and absolutism were the order of the day. It lies rather in growth along economic lines, in intellectual achievements outside the domain of politics and in those movements of opinion and of racial aspiration which rendered so notable and far reaching the vast turmoil of 1848.'
—Hazen

फ्रेडरिक विलियम तृतीय एक कुशल एवं परिश्रमी प्रशासक था। नेपोलियन के युद्धों के परिणामस्वरूप उसके राज्य की आर्थिक अवस्था खराब हो गई थी। राज्य का बजट घाटे में चल रहा था। उस पर भारी कर्ज था। फ्रेडरिक ने राज्य की कर-व्यवस्था को संगठित करके तथा सम्पूर्ण प्रशासन में मितव्ययिता दिखा कर अपने बजट के आय-व्यय को संतुलित किया।

जोल्वेरीन—अभाग्यवश प्रशा दो भागों में बटा हुआ था—पूर्वी प्रशा और पश्चिमी प्रशा। इन दोनों के बीच अन्य स्वतन्त्र राज्य स्थित थे। इन दोनों प्रदेशों की आर्थिक व्यवस्था नितान्त भिन्न थी। एक औद्योगिक प्रदेश था और दूसरा कृषि-प्रधान। यही नहीं, प्रशा के विभिन्न जिलों और नगरों में अलग-अलग चुंगी-व्यवस्था थी। यह कहा जाता है कि प्रशा में ६७ नितान्त भिन्न चुंगी-व्यवस्थायें थीं। इनके कारण राज्य का व्यापार पनप नहीं पाता था। सीमाओं के अरक्षित होने के कारण स्थान-स्थान पर चोरी से माल (Smuggling) भी लाया जाता था। फ्रेडरिक विलियम तृतीय ने मासेन (Maasen) नामक अर्थशास्त्री के निर्देशों के अन्तर्गत प्रशा में आन्तरिक आर्थिक व्यवस्था स्थापित की।

उसने २८ मई, १८१८ को एक चुंगी-कानून (Tariff Reform Law) पास कराया। इसके अनुसार निम्नलिखित व्यापारिक व्यवस्था स्थापित की गई :—

(१) प्रशा में आने वाले कच्चे माल पर कोई चुंगी न लगेगी।

(२) तैयार माल (Manufactured goods) पर १० प्रतिशत की चुंगी लगेगी।

(३) औपनिवेशिक माल पर २० प्रतिशत की चुंगी लगेगी।

(४) प्रशा के आन्तरिक व्यापार पर कोई भी सीमा-चुंगी न ली जायेगी।

इस प्रकार प्रशा एक व्यापारिक इकाई (Commercial unit) हो गया। विदेशी माल के ऊपर वह जो चुंगी लगाता था वह विदेशों में ली जाने वाली चुंगियों से कहीं कम थी।

इसके पश्चात् प्रशा ने जर्मन-संघ के अन्य राज्यों को भी आमन्त्रित किया कि वे भी प्रशा की चुंगी-व्यवस्था को अपनायें और इस प्रकार एक चुंगी-संघ (Zollverein) की स्थापना करें। १८१३ में स्वार्जबर्ग-सोण्डरशौसेन प्रशा के चुंगी-संघ में सम्मिलित हो गया। १८२२ में वीमर, गोथा, मेक्लेनबर्ग-स्वेरिन, सौम्बर्ग-लिप, रुडोल्स्टाड और बैम्बर्ग ने भी इस संघ की सदस्यता स्वीकार कर ली।

यह चुंगी-संघ-व्यवस्था इतनी अधिक लोकप्रिय हुई कि प्रशा की भाँति दो-तीन अन्य स्वतन्त्र चुंगी-संघ भी बनाये गये। एक संघ में बवेरिया और बर्टेम्बर्ग तथा कुछ अन्य राज्य सम्मिलित हुये। इसी प्रकार के दूसरे संघ में सैक्सनी, हैनोवर, हेस-कासेल, ब्रंजविक, फ्रैन्कफोर्ट हैम्बर्ग, ब्रेमेन आदि सदस्य थे।

परन्तु धीरे-धीरे ये पृथक् चुंगी-संघ समाप्त हो गये और १८३३ तक सब संघ प्रशा के चुंगी-संघ में ही सम्मिलित हो गये। १८४१ तक जर्मन-संघ के प्रायः

सभी प्रमुख राज्य तथा अनेक नगर इस संघ के सदस्य हो गये थे। परन्तु यह महत्वपूर्ण बात है कि प्रशा ने अपनी इस संघ-व्यवस्था से आस्ट्रिया को बाहर रक्खा।

तत्पश्चात् प्रशा ने अपने चुंगी-संघ का कार्य-क्षेत्र और भी अधिक बढ़ा दिया और अनेक विदेशों से व्यापारिक सन्धियाँ कीं। १८३१ में हालैण्ड, १८४१ में इङ्गलैण्ड और १८४४ में बेल्जियम के साथ व्यापारिक सन्धियाँ की गईं। इसके अनुसार इन देशों ने चुंगी संघ के राज्यों के माल पर कम से कम चुंगी लगाने का वचन दिया।

चुंगी संघ की अपनी एक संसद (Customs Parliament) थी। प्रतिवर्ष इसका अधिवेशन होता था। किसी निर्णय के लिये यह अनिवार्य था कि वह सर्व-सम्मत से हो। संघ के सारे सदस्य-राज्य समान सीमा-शुल्क लेते थे। सब राज्यों का यह सीमा-शुल्क एक ही स्थान पर संग्रह हो जाता था और बाद को सब राज्य अपनी-अपनी जनसंख्या के आधार पर आपस में इसका वितरण कर लेते थे।

लिस्ट—जर्मनी की राजनीतिक एकता में लिस्ट नामक एक अर्थशास्त्री की विचारधारा ने बड़ा योग दिया। यह विद्वान् आर्थिक समृद्धि के लिये जर्मनी की राष्ट्रीय एकता को आवश्यक बताता था। यह व्यापारिक क्षेत्र में संरक्षण (Protection) का प्रतिपादक था। इसके निम्नलिखित शब्द महत्वपूर्ण थे :—

'On the development of the German protective system depend the existence, the independence, and the future of German nationality. Only in the soil of general prosperity does the national spirit strike its roots ··· only from the unity of material interests does mental power arise, and only from both of these national power.'

लिस्ट के विचारों ने जोल्वेरीन के संगठन को भी प्रभावित किया।

इस प्रकार जोल्वेरीन ने महत्वपूर्ण प्रभाव उत्पन्न किये। इसने आर्थिक दृष्टिकोण से जर्मनी में एकता का सूत्रपात किया। इस आर्थिक एकीकरण से राजनीतिक एकीकरण भी सम्भव प्रतीत होने लगा। इसने प्रशा को जर्मनी का नेता बना दिया। लोगों को यह विश्वास हो गया कि यदि आस्ट्रिया जर्मनी के आर्थिक संगठन से निकाला जा सकता है तो वह राजनीतिक संगठन से भी निकट भविष्य में निकाला जा सकेगा। जोल्वेरीन प्रशा के उदीयमान महत्व और आस्ट्रिया के उदीयमान पराभव का प्रतीक था।

डा० बोरिंग ने जोल्वेरीन के विषय में निम्नलिखित वाक्य लिखे थे—

'The Zollverein has brought the sentiment of German nationality out of the regions of hope and fancy into those of positive and material interests.........By a community of interests

on commercial and trading questions it has prepared the way for a political nationality.'

फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ—फ्रेडरिक विलियम तृतीय के शासन-काल की सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटना, जोल्वेरीन है । परन्तु राजनीतिक क्षेत्र में उसने विशेष सुधार न किये । १८४० में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ सिंहासन पर बैठा । इसके शासन-काल में जनता ने पुनः सुधारों की मांग करना प्रारम्भ किया ।[1] नवीन राजा सिंहासनारोहण के समय ४५ वर्ष का था । यह बड़ा प्रतिभावान् था । राजनीति के साथ-साथ यह विद्या, कलादि में भी बड़ी रुचि रखता था । इसने राजा होते ही अनेक विद्वानों को कारा से मुक्त कर दिया । जनता की मांग को संतुष्ट करने के लिए इसने १८४७ में एक नवीन कानून के द्वारा दो भवनों की एक नई संसद (United Landtag) बनाई । परन्तु इसके अधिकार सीमित रक्खे । अतः जनता का आन्दोलन जारी रहा । परिणाम यह हुआ कि राजा ने नई संसद को भंग कर दिया । प्रशा में एक वैधानिक संकट उत्पन्न हो गया था । इसी बीच १८४८ मे फ्रांस की क्रान्ति के परिणामस्वरूप जर्मनी में भीषण क्रान्ति हो गयी । उसमें प्रशा और उसके राजा फ्रेडरिक विलियम ने क्या कार्य किये, इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है ।

यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ स्वभावतः राजा के एकतन्त्रवाद और दैवी अधिकार का समर्थक था । उसने १८४७ में संविधान के विषय में कहा था कि—

'Never will I allow a sheet of written paper to come, like a Second Providence, between our Lord God in Heaven and this land, to govern us by its paragraphs. The crown cannot and ought not to depend upon the will of majorities.'

अपने इसी रूढ़िवाद के कारण उसने १८४८ की फ्रैंकफोर्ट संसद के द्वारा दिये गये राजमुकुट को अस्वीकार कर दिया था ।

परन्तु यह मानना पड़ेगा कि वह हृदय से जनता की भलाई चाहता था । उसे अनेक बार समय की माँग के लिए अपने स्वाभाविक रूढिवाद के विरुद्ध संघर्ष करना पड़ा था । एर्फर्ट का अधिवेशन इसी संघर्ष का परिणाम था । १८४८ की असफलता के पश्चात् भी उसने प्रशा में अपने नवीन संविधान को भंग नहीं किया, यद्यपि इसके लिए उस पर आस्ट्रिया ने बड़ा जोर डाला । पुनः, १८४८ की अपनी असफलता से उसके मस्तिष्क पर इतना बड़ा आघात लगा कि वह पागल हो गया । उसकी

---

1. 'All the long pent-up grievances and hopes of Prussia overflowed irresistibly, gushing and forming like molten metal when the spigot is knocked out.' —Treitschke

अस्वस्थता के काल में उसके भाई विलियम ने संरक्षक के रूप में शासन किया। तत्पश्चात् १८६१ में वह विलियम प्रथम के नाम से प्रशा का राजा हुआ।

१८४८ तक निम्नलिखित कारणों से प्रशा जर्मन संघ में आस्ट्रिया को छोड़ कर सबसे अधिक महत्वपूर्ण राज्य बन गया था और लोग जर्मनी के स्वतन्त्रता-संग्राम के लिये उसी को उपयुक्त नेता समझने लगे थे—

(१) प्रशा एक विशाल और साधन-सम्पन्न राज्य था।

(२) उसने बौद्धिक, साहित्यिक और आर्थिक दृष्टिकोण से बड़ी उन्नति की थी।

(३) जोल्वेरीन के द्वारा उसने जर्मनी में एकता की भावना को व्यावहारिक रूप दिया था तथा आस्ट्रिया को जर्मनी के आर्थिक संगठन से बाहर निकाल दिया था।

(४) प्रशा जर्मनी का राष्ट्रीय राज्य था। उसने १८४८ में किसी सीमा तक राष्ट्रीय क्रांति का नेतृत्व किया था।

(५) १८४८ की असफलता के पश्चात् भी प्रशा ने अपने संविधान को रद्द नहीं किया था।

१८४८ तक जर्मनी के राजनीतिक क्षेत्र में दो बातें स्पष्ट रूप से प्रकट हो गई थीं—

(१) जर्मनी के एकीकरण और स्वतन्त्रता के संग्राम का नेतृत्व प्रशा करेगा।

(२) संवैधानिक साधनों से जर्मनी एक और स्वतन्त्र नहीं हो सकता। इसके लिए उसे दूसरा मार्ग—सशस्त्र युद्ध—अपनाना पड़ेगा।

जर्मनी का भावी इतिहास इन्हीं निष्कर्षों पर आधारित हुआ।

प्रश्न

१ १८१५ से लेकर १८४८ तक जर्मनी-निवासियों ने अपने देश में एकता स्थापित करने के लिए क्या प्रयत्न किये और वे क्यों असफल रहे?

२ १८३० और १८४८ की क्रान्तियों ने जर्मनी में क्या प्रभाव उत्पन्न किये? जर्मनी के एकीकरण में उनका क्या महत्व था?

३ प्रशा ने जर्मनी के स्वतन्त्रता-संग्राम के नेतृत्व के लिये अपने को किस प्रकार तैयार किया? उसके महत्व के कारण बताइये।

४ अपने अध्ययनगत काल में जर्मनी के एकीकरण-संग्राम का संक्षिप्त इतिहास लिखिये।

—०—

६

इटली का एकीकरण

(१८१५-१९४८)

पृष्ठभूमि; वियना कांग्रेस और इटली का विभाजन; १८२० का विद्रोह और आस्ट्रिया द्वारा दमन; मैजिनी; १८३० की क्रान्ति और उसका दमन, १८४८ की क्रान्ति और उसकी असफलता; गैरीवाल्डी; रोम का पतन।

पृष्ठभूमि—इटली का प्राचीन इतिहास बहुत गौरवपूर्ण रहा है। अब से लगभग २३०० वर्ष पूर्व इटली रोम के गणतन्त्र के अधीन था। परन्तु २७ ई० पू० में सीजर नामक एक व्यक्ति ने रोम के गणतन्त्र को अपने अधीन कर लिया। इस काल में यूरोप का अधिकाँश भाग इटली साम्राज्य के अन्तर्गत आ गया। परन्तु कालान्तर में रोमन सम्राट्-निर्बल हो गये और तीसरी शताब्दी में उनका साम्राज्य दो भागों में बंट गया। इसी समय इटली ईसाई धर्म का प्रधान केन्द्र हो गया और रोम का पोप समस्त ईसाई जगत का धर्म-गुरु माना जाने लगा। धर्म के क्षेत्र में वह समस्त जनता पर सम्राट् की भांति शासन करता था। ७६८ में शार्लमेन इस विशाल साम्राज्य का सम्राट् बना। शार्लमेन पवित्र रोमन सम्राट् तथा उसका साम्राज्य पवित्र रोमन साम्राज्य कहा जाने लगा। इसी समय रोमन साम्राज्य की शक्ति का केन्द्र इटली से निकलकर जर्मनी में स्थापित हो गया। कालान्तर में उसका यह गौरव समाप्त हो गया और इटली अनेक छोटे-छोटे राज्यों में बंट गया। १५ वीं शताब्दी से लेकर १८वीं शताब्दी तक यूरोप के विभिन्न राजवंश इटली के इन राज्यों पर अधिकार करने के लिए प्रयत्न करते रहे। नेपोलियन महान् ने भी इटली पर आक्रमण किया और उत्तरी इटली में अपना राज्य स्थापित कर लिया। जिस प्रकार जर्मनी के एकीकरण का श्रेय बिस्मार्क एवं नेपोलियन को है; उसी प्रकार इटली के एकीकरण का श्रेय कैबूर एवं नेपोलियन को दिया जा सकता है। जिस समय नेपोलियन ने इटली पर आक्रमण किया था तो वहां अनेक राज्य थे। नेपोलियन ने इनका एकीकरण कर वहाँ अपना कोड लागू किया। इटली के सामन्तों पर भी कर लगाये गये। जनता को भाषण और लेखन की स्वतन्त्रता दे दी। पद योग्यता के अनुसार दिए जाने लगे। शिक्षा का प्रबन्ध चर्च से छीनकर केन्द्र को दे दिया गया। मठों का दमन किया गया। अनेक सड़कें बनाई गईं। ऐसा कहा जाता है कि आस्ट्रिया तो ८ वर्ष तक इटली में योजनायें ही बनाता रहा। परन्तु नेपोलियन का

सेनापति मारमा अपने घोड़े पर चढ़कर जहाँ तक चला गया वहाँ तक सड़क बनवा दी गई।[1] नेपोलियन के शासन ने इटली को सर्वप्रथम एकता दी थी।[2]

विएना काँग्रेस—विएना कांग्रेस ने इटली को अनेक राज्यों में बांट दिया—

(१) **पर्मा**—मेरी लूसी को दे दिया गया। यह आस्ट्रियन राजकुमारी थी। इसका विवाह नेपोलियन महान् के साथ हुआ था। उसके निर्वासन के बाद विएना सम्मेलन के प्रतिनिधियों ने इसको पर्मा का राज्य दे दिया।

(२) **टस्कनी**—हैब्सवर्ग वंश के राजकुमार फर्डीनैण्ड तृतीय को दे दी गई।

(३) **मोडेना**—मोडेना में भी हैब्सवर्ग वंश का एक राजकुमार गद्दी पर बैठाया गया।

(४) **नेपिल्स और सिसली**—में बूर्बा वंश का राजा फर्डीनेण्ड प्रथम गद्दी पर बैठाया गया।

(५) **रोम**—में पोप पायस सप्तम गद्दी पर बैठाया गया।

(६) **वेनिस और लोम्बार्डी**—के राज्य आस्ट्रिया को प्रदान कर दिये गये।

इस प्रकार एकमात्र सार्डिनिया पीडमाण्ट ही इटली में एक राष्ट्रीय राज्य रहा। यह राज्य पुनः यहां के राजा विक्टर इमानुएल को दे दिया गया।

इस अवस्था को देखकर मेटरनिख ने कहा था कि इटली एक भौगोलिक संज्ञा मात्र रह गई है। वहाँ से स्वतन्त्रता एवं भ्रातृत्व की भावनायें नष्ट हो गई हैं। अब उसको एक राष्ट्र नहीं कहा जा सकता।[3]

इटली में आस्ट्रिया की शक्ति बहुत दृढ़ थी। वेनेशिया एवं लोम्बार्डी के उपजाऊ प्रदेश उसके पास थे। पर्मा में आस्ट्रियन राजकुमारी का राज्य था। पोप ने भी आस्ट्रिया से सन्धि कर रक्खी थी। नेपिल्स और सिसली के राज्यों ने भी आस्ट्रिया से मित्रता कर रक्खी थी। मोडेना एवं टस्कनी के राजवंश भी इटली से सम्बन्धित थे। ये सब राज्य प्रतिक्रियावादी थे। आस्ट्रिया इनमें सबसे अधिक

---

1. 'The Austrians discussed plans for eight years; Marmont mounted his horse, and when he got off, the road was made.'

2. '...... he was the first to hold out to the subjects of the Kingdoms and Duchies and Republics he overthrew the splendid hope of a united Italy, and his policy was uniformly directed towards its achievements.' —Marriot

3. 'It was generally a geographical expression........liberty, brotherhood, all are wrested from them ... she could not be called a nation any more than a stack of timber can be called a ship.'

'Italy became again a collection a small states, largely under the dominance of Austria. Each of the restored princes was an absolute monarch. In none of the states was there a parliament. Italy had neither unity nor constitutional forms nor any semblance of popular participation in the government.' —Hazen

प्रतिक्रियावादी था। अतः यह निश्चित था कि इटली में आस्ट्रिया के रहते हुए इटली के एकीकरण के प्रयत्न सफल नहीं हो सकते थे। कैवूर ने एक बार अपने भाषण में कहा था—'आस्ट्रिया इटली की स्वतन्त्रता का परम शत्रु है।'[1] इस प्रकार आस्ट्रिया पूरी तरह इटली का भाग्य-विधाता बना हुआ था। इस तथ्य को मैजिनी ने भली-भाँति अनुभव किया था।[2]

आन्दोलन—मित्र राष्ट्रों ने इटली में स्वच्छाचारी राजाओं का शासन स्थापित कर दिया था। नेपिल्स-सिसली का राजा फर्डीनेण्ड घोर प्रतिक्रियावादी था। इसने नेपोलियन द्वारा खरीदे हुए राज-प्रासाद के फर्नीचर को जलवा दिया था। इसने नेपोलियन द्वारा बनवाई गई सड़कों का प्रयोग वर्जित कर दिया था। नेपोलियन ने टीके की प्रथा का प्रचलन किया था। अतः उसने टीका लगवाना भी वर्जित कर दिया था। रोम में पोप के राज्य में वह सब बुराइयाँ थीं जो एक अव्यवस्थित एवं अत्याचारी शासन में हुआ करती हैं। इस अवस्था को देखकर इंगलैंड में यह कहा जाता था—'पोप का राज्य यूरोप के लिये भारी अपमान है।' सार्डिनिया पीडमान्ट का राजा विक्टर इमानुएल १५ वर्ष के निर्वासन के पश्चात् वापस आया था। अतः इसने सत्ता प्राप्त होने पर प्रतिक्रियावादी नीति का परिचय दिया। उसने नेपोलियन द्वारा प्रचलित गैस लाइट के प्रयोग को बन्द कर दिया था। वेनेशिया एवं लोम्बार्डी में शासन करने के लिये एक आस्ट्रिया का गवर्नर नियुक्त किया गया। उसने आस्ट्रिया के व्यापार की वृद्धि के हेतु इटली के व्यापार को नष्ट कर दिया। उच्च पदों पर आस्ट्रिया के निवासियों को नियुक्त कर दिया गया। विद्यालयों में आस्ट्रिया-निवासी ही अध्यापक रक्खे गये। स्कूलों में यह पढ़ाया जाने लगा कि वेनेशिया और लोम्बार्डी आस्ट्रिया के ही प्रान्त हैं।

इटली के निवासियों में नेपोलियन के सुधारों के कारण बहुत अधिक जागृति आ गई थी। इस प्रतिक्रियावादी व्यवस्था के स्थापित हो जाने पर यह जागृति समाप्त होने के स्थान पर और अधिक बढ़ी। स्थान-स्थान पर इटली का एकीकरण करने के लिये गुप्त संस्थाओं (Carbonaris) का निर्माण हुआ। सेन्ट हेलेना में बन्दी का जीवन व्यतीत करते हुए नेपोलियन ने भी कहा था—इटली एक राष्ट्र है और वह भविष्य में एक राष्ट्र रहेगा तथा उसकी राजधानी रोम होगी। अन्त में जाकर उसकी यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। इन सब बातों से प्रोत्साहन पाकर इटली के नवयुवकों ने आन्दोलन करना आरम्भ कर दिया।

१८२० का विद्रोह—१८१२ में इंगलिश कमाण्डर विलियम बेंटिक ने नेपिल्स

1. 'Austria is the arch enemy of Italian independence.'

2. 'Country, liberty, brotherhood, all are wrested from them; their faculties are mutilated, curbed, chained within a narrow circle traced for them by men who are strangers to their tendencies, to their wants, to their wishes, their tradition is broken under the care of an Austrian corporal; their immortal soul feudatory to the stupid caprices of a man seated on a throne at Vienna.'

की जनता को एक उदार संविधान दिया था। वहां का राजा फर्डीनेण्ड प्रतिक्रियावादी होते हुये भी डरपोक था। १८१२ के संविधान को लागू करते समय उसने कहा था—'ईश्वर की बड़ी कृपा है कि उसने हमें जनता की सेवा करने का अवसर दिया है। हम सदैव इस संविधान की रक्षा करेंगे।'[1] परन्तु उसने इस संविधान की स्याही सूखने से पूर्व ही ट्रपाउ काँग्रेस में अपने प्रतिनिधि भेजे। उन्होंने काँग्रेस में कहा—जनता ने डरा धमका कर नेपिल्स के सम्राट् से एक उदार संविधान ले लिया है। ऐसा उदार संविधान वह कभी नहीं देना चाहता था। अतः जनता से राजा के अधिकारों की रक्षा की जाय। राजा के इन कार्यों से नाराज होकर नेपिल्स की जनता ने विद्रोह कर दिया। ट्रपाउ की काँग्रेस स्थगित होकर लैवाख में हुई। इसमें इंगलैंड के विरोध के बावजूद भी आस्ट्रिया को नेपिल्स के विद्रोह को दबाने का अधिकार प्रदान कर दिया गया। १८२० में आस्ट्रिया ने इस विद्रोह को दबा दिया। नेपिल्स के अनुकरण पर पीडमाण्ट तथा लोम्बार्डी में भी विद्रोह हो गये। पीडमाण्ट का विद्रोह कार्बोनारी संस्था ने किया था। इसका उद्देश्य था—'War against Austria, at home a constitution.' पीडमाण्ट का राजा विक्टर इमानुएल मध्यम मार्गी था। उसने पद-त्याग कर दिया तथा अपने भाई चार्ल्स फेलिक्स (Charles Felix) को राजा बना दिया। यह प्रतिक्रियावादी था। अतः जनता इसको नहीं चाहती थी। इसका एक भाई एल्बर्ट भी था। यह उदार था। अतः जनता इसी को राजा बनाना चाहती थी। इस पारस्परिक झगड़े के कारण उदारतावादियों की शक्ति का बहुत ह्रास हो गया। इससे आस्ट्रिया को मौका मिल गया। नेपिल्स का विद्रोह दबाने के पश्चात् लौटती हुई आस्ट्रिया की सेना ने पीडमाण्ट के विद्रोह को भी दबा दिया। इस प्रकार ये क्रान्तियाँ असफल रहीं। इससे जनता में निराशा छा गई।

मैजिनी (Mazzini) का उदय—मैजिनी का जन्म १८०५ में जेनेवा में हुआ था। उसका पिता एक प्रसिद्ध डाक्टर था। फ्राँसीसी क्रान्ति के सिद्धान्तों का वह समर्थक था। उसने फ्राँसीसी क्रान्ति के ग्रन्थों को अपने चिकित्सा-सम्बन्धी ग्रन्थों के पीछे छिपा कर रख छोड़ा था। मैजिनी भी इन ग्रन्थों को छिपकर पढ़ा करता था। फ्राँसीसी क्रान्ति की घटनाओं को उसने अपने पिता द्वारा बड़े रोचक शब्दों में सुना था। इससे मैजिनी भी बचपन से ही क्रान्तिकारी हो गया। उसका उद्देश्य अपने देश को विदेशियों से मुक्त कराना था। अपने देश की हीन अवस्था देखकर उसको बहुत दुःख होता था। अपने भाषणों में वह अपने देश की हीन अवस्था के सम्बन्ध में बड़े ही मार्मिक विचार प्रकट किया करता था। उसने इटली की दुरवस्था को यथार्थ रूप में समझा था। इस दुरवस्था के लिये वह सबसे अधिक आस्ट्रिया को उत्तरदायी मानता था।[2]

---

1. 'Omnipotent God, who with infinite penetration lookest into the past and into the future, if I lie or if I have it in mind to break the oath, do Thou at this instant hurl on my head the lightning of Thy Vengence.'

2. 'Country, liberty, brotherhood, all are wrested from them; their faculties are mutilated, curbed, chained, within a narrow circle traced for them by men, who are strangers to their tendencies.'
—Mazzini

फलतः वह कार्बोनारी संस्था का सदस्य हो गया। इस संस्था का उद्देश्य लोकतन्त्रवादी शासन की स्थापना करना था। इस संस्था की शाखायें समस्त देश में फैली हुई थीं। लाखों व्यक्ति इसके सदस्य थे।

मैजिनी का उद्देश्य आल्प्स की पर्वत श्रेणी से लेकर दक्षिण के समुद्र-पर्यन्त एक विशाल तथा सुसंगठित इटालियन राष्ट्र का निर्माण करना था। मैजिनी के क्रान्तिकारी विचारों के कारण उसको १८३० में गिरफ्तार कर लिया गया तथा सेवोना के किले में उसको बन्द कर दिया गया। वहाँ रहते हुये भी गुप्त लिपि के पत्रों द्वारा वह अपने क्रान्तिकारी विचारों को व्यक्त करता रहा।

वह कार्बोनारी की कार्यप्रणाली को अपर्याप्त और असन्तोषजनक समझने लगा था। उसका विचार था कि 'They had no programme, no faith, no lofty ideals.'

जेल से छूटने के पश्चात् मैजिनी मार्साई में निर्वासित कर दिया गया था। वहीं उसने यंग इटली (Young Italy) नामक संस्था का निर्माण किया। इस संस्था ने इटली में बहुत अधिक जागृति उत्पन्न कर दी। मैजिनी का कथन था कि इटली का उद्धार नवयुवकों द्वारा होगा। क्रान्तिकारियों के आगे नवयुवकों को रक्खो। इटली एक भौगोलिक संज्ञा नहीं है। बहुत शीघ्र वह एक राष्ट्र में परिणित होने वाला है। मैजिनी ने नवयुवकों को शिक्षा दी कि मजदूरों की भाँति साधारण भोजन करो, पर्वतों पर चढ़ो तथा कारखानों मे जाकर उपेक्षित मजदूरों से मिलो। देश-भक्तों की असफलता से वह कभी निराश नहीं होता था। उसका कहना था कि शहीदों के रक्त से सींचे जाने के परिणामस्वरूप ही नये विचार फलते-फूलते हैं। उसने समस्त इटली में एकता की भावना उत्पन्न की। उसका नारा था—'Never rise in any other name than that of Italy and of all Italy.'

मैजिनी गणतन्त्र का पक्षपाती था। वह राजाओं की सत्ता का विरोधी था। छोटे-छोटे राज्यों को मिलाकर वह एक शक्तिशाली विशाल इटालिन संघ की स्थापना करना चाहता था। मैजिनी साहित्य तथा कला का प्रेमी था। उसने देखा कि तत्कालीन वातावरण में साहित्य एवं कला की उन्नति नहीं हो सकती।[1] अतः उसने सोचा कि देश को साहित्य एवं कला के विकास के योग्य बनाना है। दूसरे शब्दों में साहित्य और कला की उन्नति के लिये भी इटली को स्वतन्त्रता दिलानी आवश्यक था

मैजिनी सच्चे अर्थों में इटली का निर्माता था। अपने क्रान्तिकारी विचारों के कारण लगभग ४० वर्ष तक वह विदेशों (इङ्गलैंड, फ्रान्स एवं स्विटजरलैंड) में रहा। परन्तु बाहर रहता हुआ भी वह अपने क्रान्तिकारी साहित्य द्वारा अपने देश को बराबर जागृत करता रहा।

१८३० का विद्रोह—१८३० में फ्रांस में जुलाई में क्रान्ति हो गई। इसके प्रभाव के अन्तर्गत पर्मा, मोडेना एवं पोप-राज्य में भी विद्रोह हो गये। इनके परिणाम-

1. 'Without a country and without liberty we might perhaps produce some prophets of art but no vital art.'

स्वरूप यहां के शासकों को जनता ने भगा दिया । आस्ट्रिया से उन राजाओं ने सहायता की याचना की । आस्ट्रिया ने पुनः उन राजाओं को उनके सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया ।

इस क्रांति में मैजिनी ने भी भाग लिया था । अतः क्रान्ति की असफलता के पश्चात् उसका भी निर्वाचन कर दिया गया । वह मार्साई नगर में चला गया । उसने 'Associan of Young Italy' नामक एक पार्टी का निर्माण किया ।

इस संस्था के निम्नलिखित उद्देश्य थे—

१. आस्ट्रिया को इटली से बाहर निकाल दिया जाय ।

२. इटली को स्वतन्त्र कर उसका एकीकरण किया जाय ।

३. इटली में गणतन्त्र की स्थापना हो । देश का नया संविधान जनता द्वारा बनाया जाय ।

४. पोप का भी सुधार किया जाय ।

५. इटली का स्वतन्त्रता-संग्राम एक मात्र इटैलियन द्वारा चले । उनका नारा था कि इटली इटैलिअन्स (Italy for Italians) के लिए है ।

पीडमाण्ट में एक लिबरल पार्टी काम कर रही थी । इसका नेता 'द' अजेग्लिओ ('D' Azeglio) था । इसके तरीके संवैधानिक थे । इसका उद्देश्य था कि शासन में सुधार हों, विद्रोह, हिंसा एवं गुप्त संस्थाओं का विरोध किया जाय, देश में एकतन्त्रात्मक शासन के स्थान पर गणतन्त्र हो तथा संघ-शासन (Feeral Government) की स्थापना की जाय और इटली के एकीकरण और स्वतन्त्रता का संग्राम पीडमाण्ट के नेतृत्व में चले ।

इस समय पीडमाण्ट के राजा चार्ल्स फेलिक्स (Charls Felix) की मृत्यु हो गई तथा एल्बर्ट राजा हुआ । वह उदार था । प्रारम्भ में वह कार्बोनारी नामक संस्था का सदस्य रह चुका था । मैजिनी ने उससे कहा कि देश के स्वतन्त्रता-संग्राम को आगे बढ़ाया जाय । परन्तु एल्बर्ट ने घोषित किया कि मैजिनी जैसे ही मार्साई नगर से बाहर आवे उसे गिरफ्तार कर लिया जाय । इससे एल्बर्ट का विरोध बहुत बढ़ गया । उसकी हत्या के लिए प्रयत्न किये जाने लगे । मैजिनी पर भी कुछ आदमी सन्देह करने लगे । मैजिनी के अनुयायियों ने सेवाय पर आक्रमण किया, परन्तु उनको इसमें सफलता न मिली । फलतः मैजिनी बहुत बदनाम हो गया और इंगलैंड भाग गया । एल्बर्ट ने घोषित किया—'If the occassion presents itself, my life, the lives of my sons, my arms, any treasure, my army, all shall be devoted to the cause of Italy'. उसका कहना था कि हम समय के साथ-साथ चलेंगे । इससे उसने पीटमाण्ट में अनेक सुधार कर उसको एक आदर्श राज्य बना दिया ।

निओग्वेल्फ पार्टी (Neoguelph Party)—इस पार्टी का नेता गिओबर्टी था । यह पादरी था । इस दल में अधिकांश राष्ट्रीय कैथोलिक थे । ये देश का स्वतन्त्रता संग्राम पोप के नेतृत्व में चलाना चाहते थे । इसके साथ-साथ ये पोप के स्वरूप में सुधार चाहते थे ।

१८४६ में पोप पायस नवां राजा हुआ। यह उदार था। इसने राजनीतिक बन्दियों को मुक्त कर दिया। जनता की सुधारों की माँग को स्वीकार कर लिया। इसने घोषित किया कि आष्ट्रिया को पोप-राज्य में सेनायें रखने का अधिकार नहीं है। मेटरनिख इससे घबरा गया। उसने कहा था कि हमें कभी भी यह आशा नहीं थी कि पोप उदार हो जायगा, परन्तु अब ऐसा हो गया है।[1]

इटली में क्रान्ति—१८४८ की फ्रांसीसी क्रान्ति के पूर्व ही नेपल्स, टस्कनी, पीडमाण्ट और रोम की जनता ने अपने शासकों से नवीन संविधान प्राप्त कर लिये थे। इस क्रान्ति की सूचना पाते ही आस्ट्रिया साम्राज्य की राजधानी विएना में विद्रोह हो गया और उसके प्रतिक्रियावादी प्रधान मन्त्री मेटरनिख को देश छोड़ कर भागना पड़ा। मेटरनिख का पतन एक युगान्तकारी घटना थी। इसने इटली में आस्ट्रिया के साम्राज्य में भी विद्रोह की आग भड़का दी। सर्वप्रथम लोम्बार्डी की राजधानी **मिलान** में विद्रोह हो गया। पाँच दिन के घमासान युद्ध के पश्चात् भी आस्ट्रिया का सेनापति रैडेस्की (Radetky) उसका दमन न कर सका। इसी प्रकार **वेनिस** की जनता ने भी आस्ट्रिया के शासन के विरुद्ध झण्डा उठाया और वहाँ अपने स्वतन्त्र गणतन्त्र स्थापना की।

जन-आन्दोलन के जोर को देख कर **पर्मा** और **मोडेना** के प्रतिक्रियावादी शासक भाग खड़े हुये।

जनता की मांग स्वीकार करते हुये **सार्डीनिय-पीडमाण्ट** के राजा **चार्ल्स एल्बर्ट** ने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। **टस्कनी** के शासक ने भी चार्ल्स एल्बर्ट को सैनिक सहायता दी। **नेपल्स** का घोर प्रतिक्रियावादी शासक और रोम का **पोप** भी जनता के दबाव में विवश हो गये। उन्हें भी सार्वदेशीय विद्रोह का पक्ष लेना पड़ा। इस प्रकार १८४८ की क्रान्ति ने सम्पूर्ण इटली में क्रान्ति करा दी।

क्रान्ति की असफलता—परन्तु अन्ततोगत्वा यह क्रान्ति भी असफल हुई। सर्वप्रथम पोप पायस नवें ने क्रान्तिकारियों का साथ छोड़ दिया और आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध जारी रखने से इन्कार कर दिया। पोप का अनुकरण करते हुये नेपल्स के शासक फर्डीनेण्ड ने भी युद्ध से हाथ खींच लिया और लोम्बार्डी से अपनी सेना वापस बुला ली।

उधर चार्ल्स एल्बर्ट को आस्ट्रिया की सेनाओं ने कुस्तोजा के युद्ध में बुरी तरह पराजित किया। मिलान में भी एल्बर्ट की पराजय हुई और उस नगर पर आस्ट्रिया ने अधिकार कर लिया। अन्त में विवश होकर एल्बर्ट ने विगेवैंनो की सन्धि कर दी और लोम्बार्डी तथा वेनेशिया खाली कर दिया।

रोम में गणतन्त्र—राजाओं का युद्ध समाप्त हो गया। अब जनता का युद्ध प्रारम्भ हुआ।[2] रोम में अब भी क्रान्तिकारियों का जोर था। उनसे भयभीत होकर

1. 'We were prepared for any thing except a liberal Pope. Now we have got one. There is no telling what may happen.'

2. 'The war of the princes was finished, that of the peoples begun.'

पोप रोम छोड़ कर भाग गया और उसने नेपल्स के राजा फर्डीनेण्ड के पास शरण ली। रोम में क्रान्तिकारियों ने स्वतन्त्र गणतन्त्र की स्थापना की। गणतन्त्र की केन्द्रीय कार्यकारिणी में तीन व्यक्ति थे। मैजिनी इनमें से एक था।

सार्डीनिआ-पीडमाण्ट के राजा चार्ल्स एल्बर्ट ने पुनः संग्राम का नेतृत्व करने का निर्णय किया। उसने फिर आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। परन्तु आस्ट्रिया की सेना ने उसे नोवारा के युद्ध में पराजित कर दिया। निरन्तर असफलता से क्षुब्ध होकर उसने सिंहासन छोड़ दिया। उसके पश्चात् उसका पुत्र विक्टर एमानुएल द्वितीय राजा हुआ।

इस समय तक क्रान्ति की शक्ति समाप्त-प्राय हो चुकी थी। नेपल्स ने सिसली पर अधिकार कर लिया। टस्कनी का राजा पुनः सत्ताधारी हो गया। इसी समय फ्रांस के राष्ट्रपति नेपोलियन तृतीय ने पोप का पक्ष लेते हुये इटली की राजधानी में हस्तक्षेप किया। इस हस्तक्षेप के कुछ प्रमुख कारण थे —

(१) नेपोलियन अपने देश की कैथोलिक पार्टी को सन्तुष्ट करना चाहता था। रोम में पोप के शासन की पुनः स्थापना करके वह कैथोलिकों में लोकप्रिय हो सकता था।

(२) अपनी विदेशी नीति की सफलता से वह अपने देशवासियों को चकाचौंध करना चाहता था।

(३) वह अपने देश की जनता का ध्यान घरेलू समस्याओं से हटा कर अन्यत्र लगाना चाहता था जिससे उसकी स्थिति सुरक्षित बनी रहे।

(४) वह नहीं चाहता था कि इटली में आस्ट्रिया ही एकमात्र निर्णायक हो। इटली के भाग्य का निर्णय वह स्वयं भी करना चाहता था।

गैरीबाल्डी—इन कारणों से प्रेरित होकर नेपोलियन ने एक सेना रोम भेजी। परन्तु रोम पर अधिकार करना सरल कार्य न था। इस समय उसकी रक्षा के लिये गैरीबाल्डी भी आ पहुंचा था। गैरीबाल्डी दक्षिणी अमेरिका में निर्वासित जीवन व्यतीत कर रहा था। इटली की क्रान्ति की सूचना पाते ही वह भाग आया था। परन्तु चार्ल्स एल्बर्ट ने उसका विश्वास नहीं किया। अतः वह मिलान चला गया और वहाँ शीघ्र ही क्रान्ति का नेता बन गया। उसने चार्ल्स एल्बर्ट द्वारा आस्ट्रिया के साथ की गई विगेनैवो की सन्धि को मानने से इन्कार कर दिया और आस्ट्रिया के विरुद्ध गुरेला युद्ध जारी रक्खा। इसी समय गैरीबाल्डी ने सुना कि मैजिनी आदि क्रान्तिकारियों ने रोम में स्वतन्त्र गणतन्त्र की स्थापना कर दी है। अतः उसकी रक्षा के लिये वह तत्काल रोम पहुंच गया।

परन्तु रोम में मैजिनी और गैरीबाल्डी को फ्रांसीसी सेनाओं ने पराजित किया। इस प्रकार रोम में भी पोप का निरंकुश राज्य स्थापित हो गया।

आस्ट्रिया ने वेनिस पर भी अधिकार कर लिया। इस प्रकार १८४८–४९ की इटली की व्यापक क्रान्ति भी असफल रही।

———

७

रूस

(१८०१–१८५५)

रूस की सामाजिक स्थिति; सम्राट् की निरंकुशता; एलेग्जेण्डर प्रथम; आन्तरिक सुधार; पवित्र सन्धि; एलेग्जेण्डर का चरित्र और मूल्यांकन; निकोलस प्रथम; गृह-नीति; विदेशी नीति; यूनानी स्वतन्त्रता-संग्राम; पोलैण्ड का विद्रोह-दमन; त्रिराष्ट्र-सन्धि; पूर्वी समस्या; १८४८ की क्रान्ति और रूस; क्रीमिया-युद्ध; निकोलस का मूल्यांकन।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में रूस भी एशिया के देशों की भाँति एक पिछड़ा देश था। इसलिये यह कहा जाता है कि वह यूरोप में था अवश्य परन्तु वह यूरोप का देश नहीं था।[1] यद्यपि पीटर महान् एवं कैथरीन महान् ने रूस को एक सभ्य एवं सुसंस्कृत देश बनाने के लिये बहुत प्रयास किया था, परन्तु फिर भी रूस पिछड़ा हुआ देश था।

समाज—रूसी समाज दो वर्गों में विभक्त था—

(१) **अधिकारयुक्त वर्ग**—इस वर्ग के अन्तर्गत राज-परिवार के व्यक्ति, उच्च पदाधिकारी एवं सामन्त आते थे। इनको राज्य में अनेक प्रकार के विशेषाधिकार प्राप्त थे।

(२) **अधिकारहीन वर्ग**—इस वर्ग के अन्तर्गत किसान, मजदूर एवं दास सम्मिलित थे। इन लोगों से मनचाहा बेगार लिया जाता था। इनको राज्य को अनेक प्रकार के कर देने पड़ते थे। ये लोग सर्वथा अशिक्षित होने के कारण अपने कर्तव्य तथा अधिकारों से अनभिज्ञ थे।

दास—रूस में ४ करोड़ ६५ लाख दास थे। इनमें २ करोड़ ३० लाख दास सम्राट् के थे। लगभग इतने ही दास सामन्तों के थे। शेष संख्या चर्च, अन्य संस्थाओं एवं घरों में कार्य करने वाले दासों की थी। खेतों पर कार्य करने वाले दासों की अवस्था बहुत खराब थी। वे भूमि के साथ सम्बन्धित थे। उनको भी भूमि के साथ बेच दिया जाता था। ऐसा बताया जाता है कि इन दासों की अवस्था अमेरिका में चाय के बगीचों में काम करने वाले हब्शियों से भी खराब थी। मालिक दासों से मनचाहा कार्य लेता था। उनको जेलों में भी डाल देता था। उनको सेना में भी भरती करवा देता था। उनसे कल-कारखानों में भी काम करवाया जाता था। कभी-

1. 'Though in Europe, she had never been in Europe.'

कभी तो दासों के कोड़े मार-मार कर उनका प्राणान्त कर दिया जाता था। दासों को पशुओं की भाँति बेच भी दिया जाता था। इस प्रकार रूसी समाज में दासों की अवस्था बहुत खराब थी।

सम्राट् की निरंकुशता—रूस के जार सम्राट् घोर निरंकुशतावादी थे। उनकी उपाधि 'Autocrat of all the Russians' थी। उच्च पदाधिकारियों की वे ही नियुक्ति करते थे तथा उनको अपनी इच्छानुसार पदच्युत कर देते थे।

शासन में भ्रष्टाचार था। बिना रिश्वत दिये कोई भी छोटे से छोटा कार्य होना कठिन था। नियुक्तियाँ भी रिश्वत अथवा प्रभाव के आधार पर होती थीं। प्रार्थी की योग्यता के विषय में कभी ध्यान नहीं दिया जाता था। प्रान्तीय गवर्नर भी अत्याचारी एवं निरंकुश थे।

चर्च—रूस का धर्म Orthodox Greek Church था। यह चर्च पोप से सम्बन्धित न था। इसका केन्द्र कुस्तुनतुनिया था। इस चर्च का अध्यक्ष पेट्रियार्क था। इसकी शिक्षा भी रोमन कैथोलिक चर्च से भिन्न थी। रूसी सम्राट् को भी चर्च में अधिकार प्राप्त थे। इसलिये रूसी सम्राट् Little Father कहलाता था।

देश की जनसंख्या बिखरे हुए रूप में बसी हुई थी। देश में नगर बहुत कम थे। वास्तव में उस समय रूस की जनसंख्या ग्राम-प्रधान थी। अभी तक वहाँ मध्यम वर्ग का उदय नहीं हुआ था।

अलेक्जेण्डर प्रथम (१८०१–१८२५)

सन् १८०१ में जार सम्राट् पाल की हत्या कर दी गई और अलेक्जेण्डर प्रथम रूस का सम्राट् हुआ। उसने लाहार्प नामक एक उदार स्विस अध्यापक से शिक्षा पाई थी। इससे अलेक्जेण्डर भी पर्याप्त मात्रा में उदार हो गया। उस समय के सुप्रसिद्ध उदारवादी व्यक्ति उसके मित्रों में से थे। इनमें जार्टोविस्की, स्ट्रेगोनोव तथा कोचिव्यू आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। अपनी उदारवादी भावनाओं के वशीभूत होकर उसने अनेक सुधार किये। १८११ से १८२० के मध्य उसने उदारता का परिचय दिया तथा शासन में निम्न सुधार किये :—

(१) **आन्तरिक सुधार**—(१) कजन, कारखोव आदि नगरों में नये विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई। विलना एवं मास्को आदि के पुराने विश्वविद्यालयों का सुधार किया गया।

(२) औद्योगिक एवं प्राइमरी स्कूलों की स्थापना की गई।

(३) मृत्यु-दण्ड को हटाने के लिये प्रयत्न किया गया। सामन्त, पादरी एवं व्यापारी आदि वर्गों को मृत्यु-दण्ड से मुक्त कर दिया।

(४) दासों की स्थिति सुधारने के लिये प्रयास किया गया। सामन्तों को अपने दासों को मुक्त कराने का अधिकार दे दिया गया।

(२) **पोलैण्ड**—विएना सम्मेलन के निर्णय के अनुसार पोलैण्ड रूस को प्राप्त हुआ। परन्तु अलेक्जेण्डर ने इस प्रदेश को अपने साम्राज्य में नहीं मिलाया। वहाँ का शासन-संचालन का कार्य वहाँ की जनता को दे दिया गया। उनकी भाषा एवं

धर्म के मामले में हस्तक्षेप नहीं किया। इस प्रकार अलेक्जेण्डर ने पोलैण्ड के वासियों के साथ पूरी उपारता का परिचय दिया।

(३) **फिनलैण्ड**—फिनलैण्ड भी रूस के अधीन था। अतः फिनलैंड-निवासियों के साथ भी उदारता का परिचय दिया तथा फिनलैंड को एक नया संविधान दिया।

(४) **फ्रांस**—अलेक्जेण्डर के प्रभाव के अन्तर्गत ही फ्रांस के सम्राट् लुई १८वें ने फ्रांस की जनता को एक उदार संविधान दिया।

(५) **पवित्र मित्र संघ** (Holy Alliance)—अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में पवित्र मित्र-मंडल अलेक्जेण्डर की प्रमुख देन है, यद्यपि यह उसका मौलीक विचार न था। इसका प्रतिपादन फ्रांस के सम्राट् हैनरी चतुर्थ के प्रधान-मन्त्री सली ने किया था। लगभग २०० वर्षों बाद अलेक्जेण्डर ने इस योजना को पुनः यूरोप के सम्राटों के सम्मुख रक्खा। इस योजना के अनुसार यह प्रतिपादित किया गया कि यूरोप के सब सम्राट् एक दूसरे के भाई हैं। ईसाई धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार उनको अपनी जनता पर शासन करना चाहिये तथा युद्ध का परित्याग कर वार्ता द्वारा अपने झगड़ों का निर्णय करना चाहिये। वास्तव में उसके विचार उदार एवं उद्देश्य महान् थे। परन्तु उसने राजनीति को धर्म की आँखों से देखा था। अतः उसको सफलता न मिली। कैसरले एवं मेटरनिख ने उसकी योजना की कटु आलोचना की। अलेक्जेण्डर दृढ़ विचारों वाला व्यक्ति न था। धीरे-धीरे वह मेटरनिख के प्रभाव में आ गया और वह भी उसी की भाँति कट्टर एवं प्रतिक्रियावादी हो गया। उसने मेटरनिख का शिष्यत्व ग्रहण करते समय कहा था कि 'आप जिस प्रकार चाहें क्रान्तिकारी भावनाओं को दबाने के लिये मेरा उपयोग कर सकते हैं।' १८२० में उसकी सेना में विद्रोह हो गया। इससे उसकी सारी उदारता समाप्त हो गई। उसने सोचा कि उदारता समाप्त हो ाई। उसने सोचा कि उदार भावना से शासन का संचालन नहीं हो सकता। अ ाः सुदृढ़ शासन के लिये कठोरता की आवश्यकता है।

इसके साथ-साथ अलेक्जेण्डर प्रथम के सम्मुख निम्नलिखित कठिनाइयाँ भी थीं :—

(१) रूस पर भी फ्रांसीसी राज्य क्रान्ति का प्रभाव पड़ा। रूस की अनेक जातियाँ स्वतन्त्रता चाहने लगीं। १८१८ में वहाँ 'Union of Public Good' नामक एक संस्था की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य स्वतन्त्र विचारों का प्रचार करना था। कालान्तर में यह संस्था दो भागों में बंट गई। इस संस्था के सदस्यों की संख्या बहुत थोड़ी थी। अतः इसको कोई सफलता न मिली। फिर भी रूस के इतिहास में इस संस्था के सदस्यों का कर्म अमर है।

(२) जार सम्राट् निरंकुश थे। उनके यहाँ जनमत का कोई महत्व न था। जनता इस प्रतिक्रियावादी शासन को समाप्त कर उसके स्थान पर लोकतन्त्रात्मक सरकार स्थापित करना चाहती थी।

(३) रूस के विशाल साम्राज्य के अन्तर्गत अनेक जातियाँ रहती थीं। इनमें जर्मन, यहूदी, पोल, फिन, आर्मिनियन, मंगोलियन आदि अनेक जातियां रहती थीं।

अन्त में अलेक्जेण्डर घोर प्रतिक्रियावादी हो गया तथा उसने सुधार योजनाओं को समाप्त कर दिया और १८२० से १८२५ का काल घोर प्रतिक्रिया का काल है ।

उसके प्रतिक्रियावादी होने के सम्बन्ध में दो बातें बतलाई जा सकती हैं—

१. विद्रोहों एवं क्रान्ति की खून खराबी से वह घबराता था । अतः अपने सुदृढ़ शासन द्वारा ऐसी व्यवस्था स्थापित करना चाहता था कि कभी क्रान्ति अथवा विद्रोह की सम्भावना ही न हो ।

२ कालान्तर में वह मेटरनिख के प्रभाव में आ गया । उसने स्पष्ट शब्दों में मेटरनिख का शिष्यत्व ग्रहण करते हुए कहा—'अब भविष्य में मैं आपके सिद्धान्तों के अनुसार ही कार्य करूँगा । आप क्रान्तिकारी भावनाओं को दबाने के हेतु अपनी इच्छानुसार मेरा उपयोग कर सकते हैं ।'

इस प्रकार प्रतिक्रियावादी होने पर अलेक्जेन्डर ने एकतन्त्रवादी आस्ट्रिया का साथ दिया तथा इङ्गलैण्ड का विरोध किया ।

१. सन् १८२० में नेपिल्स, सिसली एवं स्पेन में विद्रोह हो गया । रूस के प्रभाव के अर्न्तगत ही ट्रॉपाउ प्रोटोकल पास हुआ । अन्त में उसी के आधार पर अन्य देशों ने हस्तक्षेप कर इन विद्रोहों का दमन करा दिया ।

२. रूस की टर्की के साथ परम्परागत शत्रुता थी । रूस उसको एक बीमार आदमी समझकर उसकी सम्पत्ति का बटंवारा करना चाहता था । अलेक्जेण्डर भी इसी नीति का समर्थक था । उसका विचार था कि टर्की साम्राज्य विभिन्न राज्यों में बाँट दिया जाय तथा उसका प्रधान भाग रूस को दे दिया जाय । इस प्रमुख भाग के अन्तर्गत वासफोरस, डार्डेनेलीज, काफ्यूं, कटारों तथा कुस्तुनतुनिया के राज्यों के नाम थे । यदि आस्ट्रिया इस योजना को स्वीकार कर ले तो उसे वेलग्रेड, बलाशिया, क्रोसिया तथा बोस्निया का कुछ भाग दे दिया जायगा ।

३. सन् १८२१ में यूनानी स्वतन्त्रता संग्राम आरम्भ हो गया । यूनानियों को आशा थी कि अलेक्जेण्डर उनके स्वतन्त्रता-संग्राम में सहायता देगा, क्योंकि अलेक्जेण्डर टर्की का शत्रु था और यूनानी भी टर्की साम्राज्य के विरोध में अपना स्वतन्त्रता-संग्राम चला रहे थे । दूसरे दोनों का एक ही धर्म था । तीसरे अलेक्जेण्डर को पिछड़े देशों से सहानुभूति रखने वाला ख्याल किया जाता था । परन्तु फिर भी अलेक्जेण्डर प्रथम ने यूनानियों की कोई सहायता न की, क्योंकि वह पवित्र संघ का सदस्य था और उसने ट्रॉपाउ प्रोटोकल पर भी हस्ताक्षर किये थे । वह मेटरनिख के प्रभाव में था तथा मेटरनिख यूनानियों का घोर शत्रु था । फलतः इस स्वतन्त्रता संग्राम में अलेक्जेण्डर प्रथम ने यूनानियों की कोई सहायता न की ।

मूल्यांकन—एलेक्जेण्डर के विषय में उसके समकालीन और परकालीन व्यक्तियों की भिन्न-भिन्न धारणायें रही हैं । नेपोलियन उसकी बुद्धि की बड़ी प्रशंसा करता था । परन्तु एलेक्जेण्डर किस समय क्या करेगा और क्यों करेगा, इस सम्बन्ध में नेपोलियन भी

भली-भाँति निश्चित नहीं हो पाता था ।[1] दूसरे अवसरों पर नेपोलियन ने एलेक्जेण्डर को 'The Talma of the North' और 'A Byzantine of the decadent period' के नामों से पुकारा है । मेटरनिख भी उसके स्वभाव का आकस्मिकता से परेशान रहता था ।[2] बहुतों ने उसे 'mixture of opposites' माना है ।

एक ओर तो वह साम्राज्यवादी, सैनिकवादी और प्रतिक्रियावादी प्रतीत होता है । वह किसी भी परिस्थिति में फिनलैण्ड और पोलैंड को छोड़ने के लिए तैयार न था । इन प्रदेशों पर अपना अधिकार कायम रखने के लिये वह अपने मित्र देशों के विरुद्ध युद्ध तक के लिये तैयार था । उसने स्पेन के लोकतन्त्रीय आन्दोलन को कुचलने के लिए सैनिक हस्तक्षेप करने के लिए मित्र-राष्ट्रों से अनुमति चाही थी । उसने यूनान के स्वतन्त्रता संग्राम को किसी प्रकार की सहायता नहीं दी । उसने जर्मनी और इटली में एकीकरण-संग्राम को दबाने के लिए मेटर्निख की प्रतिक्रियावादी नीति का समर्थन किया ।

दूसरी ओर एलेग्जेण्डर सुधारवादी और उदारतावादी प्रतीत होता है । उसने पोलैंड को एक उदार संविधान देते हुये उसकी पृथक् सत्ता को स्वीकार कर लिया । उसकी पवित्र सन्धि (Holy Alliance) उसकी आदर्शवादिता का प्रमाण है ।

इन परस्पर-विरोधी विचारों और कार्यों के पीछे एक बड़ी पृष्ठभूमि थी । उसके ऊपर कैथरीन महान् की बौद्धिक प्रकृष्टता का भारी प्रभाव पड़ा था । उसे ला हार्प नामक एक उदार स्विस अध्यापक ने शिक्षा दी थी । एलेक्जेण्डर ने स्वयं ही ला हार्प के प्रभाव को स्वीकार किया था ।[3]

इसके विरुद्ध रूस के राजपरिवार, सामन्तवर्ग और सैनिक पदाधिकारियों की परम्परागत एकतन्त्रवादी कौर सैनिकवादी प्रवृत्तियों ने भी भावुक एलेक्जेण्डर के व्यक्तित्व को प्रभावित किया था । फ्रांसीसी क्रान्ति और नेपोलियन के युद्धों के परिणालस्वरूप जो भीषण रक्तपात हुआ उसने भी एलेग्जेण्डर की अन्तश्चेतना में अधिक सुधारों, परिवर्तनों और नूतन प्रयोगों में अरुचि उत्पन्न कर दी थी । कालान्तर में वह मेटरनिख के घनिष्ठ प्रभाव मे आया । इससे वह प्रतिक्रियावादी भी हो गया ।

एलेक्जेण्डर के व्यक्तित्व में इन परस्पर-विरोधी प्रभावों का समन्वय न हो सका था । उसमें चारित्रिक सन्तुलन का सदैव अभाव रहा । निकोल्सन महोदय ने उसके व्यक्तित्व का वर्णन निम्नलिखित शब्दों में में किया है—

'A modern psychiatrist would experience no difficulty in deciding what, among the Tsar's great gifts and qualities, was the

---

1. 'It would be diffierent to have more intelligence than the Emperor Alexande; but there is a piece missing; I have never managed to discover what it is.' Napoleon

2. 'Periodic evolutions of Tsar'. mind' —Metternich

3. All that I know, all that I am worth, is due to La Harpe.' —Alexander I

missing component, it was the faculty of co-ordination. Tainted as he was with his father's insanity, the Emperor Alexander was affected with split personality, or schizophrenia, which in his later years degenerated into depressive mania.'

१८२५ में एलेक्जेण्डर की मृत्यु हो गई।

निकोलस प्रथम (१८२५-१८५५)

एलेक्जेण्डर प्रथम की मृत्यु के पश्चात् १८२५ में निकोलस प्रथम सिंहासन पर बैठा। वह निरंकुशता एवं प्रतिक्रियावाद का अवतार था। इसने ३० वर्ष तक घोर निरंकुशता के साथ रूस में राज्य किया। वह उदार विचारों का शत्रु था। जिस समय समस्त यूरोप में उदारता की भावनायें जोर पकड़ रही थीं, उस समय भी निकोलस प्रथम उन भावनाओं की अवहेलना कर बड़ी निरंकुशतापूर्वक शासन कर रहा था।

अलेक्जेण्डर के मरने के पश्चात् उत्तराधिकार के सम्बन्ध में कुछ भ्रम हो गया। अलेक्जेण्डर तीन भाई थे। इनमें सबसे बड़ा कास्टेन्टाइन था, परन्तु निकोलस ने उसको समझा-बुझाकर सिंहासन पर बैठने से इन्कार करा दिया और स्वयं गद्दी पर बैठ गया। जनता को इन बातों का कोई पता न था। फलतः जनता ने २६ दिसम्बर को पेट्रोग्रेड में निकोलस के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। जनता कास्टेन्टाइन को सिंहासन देना चाहती थी विद्रोहियों का नारा था—'Constantine and Constitution' परन्तु अशिक्षित होने के कारण आम जनता ने Constitution (संविधान) को कान्स्टेन्टाइन की पत्नी समझा। जनता ने भीषण विद्रोह किया, परन्तु निकोलस प्रथम ने कठोरतापूर्वक इस विद्रोह का दमन करा दिया। विद्रोहियों को कठोर दण्ड दिये गये। उनके पाँच बड़े नेताओं को फाँसी पर लटका दिया गया। अन्य नेताओं को साइबेरिया के ठण्डे मैदानों में निर्वासित कर दिया गया।

निकोलस प्रथम जन्मजात प्रतिक्रियावादी था। इस विद्रोह के पश्चात् वह और अधिक अनुदारवादी हो गया। उसने ३० वर्ष तक घोर निरंकुशता के साथ शासन किया।

वह सुधारों का घोर विरोधी था। सुधार करने का एकमात्र अधिकार सम्राट् को है।[1] प्रदर्शनकारियों का कठोरतापूर्वक दमन कर देना चाहिये। प्रत्येक वस्तु जनता के लिये है; परन्तु वह जनता द्वारा नहीं होनी चाहिए।[2] टेनिसन महोदय भी उसके चरित्र का विश्लेषण करते हुए उसे घोर प्रतिक्रियावादी बतलाते हैं।[3]

---

1. 'Reform must issue from a legally constituted authority.'
2. 'Everything for the people, not by the people.'
3. 'He was an icymoscovite, over-grown Barbarian of the east.

गृह-नीति—निकोलस प्रथम प्रतिक्रियावाद का निरंकुश सिपाही था। इतिहासकारों ने उसको निरंकुशता का अवतार कहा है। उसकी गृह-नीति के निम्न-लिखित प्रमुख आधार थे :—

१. उसने विकेन्द्रीयकरण को समाप्त कर केन्द्रीयकरण की नीति का आश्रय लिया। प्रत्येक प्रान्त का रूसीकरण करना आरम्भ किया। पुलिस को अनेक विशेष अधिकार प्रदान किए गए। Third Section (C. I. D.) की स्थापना की गई। खुफिया पुलिस का संगठन बहुत कठोर था। सारे देश में गुप्तचरों का जाल फैला दिया गया था। इसका कार्य समस्त बातों की सूचना सम्राट् तक पहुंचाना था। संदिग्ध व्यक्तियों को गिरफ्तार करने का भी इसको अधिकार प्राप्त था। गुप्तचर विभाग संगीत के स्वरों की भी जाँच किया करता था। उनका ख्याल था कि संगीत द्वारा गुप्त समाचार भेजे जा सकते हैं। थर्ड सेक्सन को असीमित अधिकार प्राप्त थे। इस सम्बन्ध में लिखते हुए लिप्सन महोदय कहते हैं—'यह संस्था स्पेन की इन्क्विजीशन से बढ़कर शायद न हो, लेकिन उसके बराबर तो थी ही।' इस संस्था ने अनेक व्यक्तियों को गिरफ्तार कर जेलों में डाल दिया, कुछ को निर्वासित कर दिया तथा कुछ को फाँसी के तख्ते पर लटकवा दिया। इस संस्था ने २० वर्षों के अन्दर (१८३२–५२) १$\frac{१}{२}$ लाख मनुष्यों को देश से निर्वासित कर दिया था। इस संस्था का प्रमुख कार्य रूस को यूरोप के गणतन्त्रवादी विचारों से सुरक्षित रखना था।

२. विदेश यात्रा पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये। रूस के नवयुवकों को विदेश में अध्ययन करने जाने से रोक दिया गया। विदेशी पुस्तकों पर भी प्रतिबन्ध लगा दिए गए। पास-पोर्ट देने के नियम कठोर कर दिये गये। किसी भी व्यक्ति को ५ वर्ष से अधिक समय के लिये पास-पोर्ट नहीं दिया जाता था। यदि कोई व्यक्ति ५ वर्ष से अधिक समय तक विदेश से नहीं लौटता था तो उसकी समस्त सम्पत्ति जब्त कर ली जाती थी। वापिस लौटने पर उसको जेल में डाल दिया जाता था। इसी प्रकार कोई भी विदेशी अधिक समय तक रूस में नहीं रह सकता था। सेन्सर अधिकारी कठोर निरीक्षण के बाद ही किसी विदेशी पुस्तक को रूस में घुसने देता था।

३. निकोलस ने प्राइमरी तथा सेकेण्डरी शिक्षा को प्रोत्साहन दिया, परन्तु उच्च शिक्षा का दमन किया। विद्यार्थियों को यह बतलाया गया कि विश्वविद्यालयों में हाजिर रहने की कोई आवश्यकता नहीं है। विश्वविद्यालयों को वह क्रान्ति के अड्डे (Hot-beds of revolution) कहा करता था। दर्शनशास्त्र की शिक्षा देने का अधिकार विश्वविद्यालयों को न रहा। अब दर्शन-शास्त्र की शिक्षा देने का कार्य पादरियों को दे दिया गया। एक नये आदेश द्वारा यह घोषित किया गया कि किसी भी विश्वविद्यालय में तीन सौ से अधिक विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते। फलस्वरूप रूस की ७ करोड़ जनता में केवल १२ हजार विद्यार्थी ही विश्वविद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करते थे। विश्वविद्यालयों का पाठ्यक्रम राज्य द्वारा ही निश्चित होता था। अध्यापकों के लेक्चरों का भी निरीक्षण किया जाता था।

४. निकोलस की भांति रूस का चर्च भी प्रतिक्रियावादी नीति का समर्थक था। रूस Greek Orthodox चर्च में विश्वास रखता था। इस धर्म का अध्यक्ष पेट्रीआर्क होता था। इस धर्म का केन्द्र कान्स्टेन्टिनोपुल था। १५वीं शताब्दी में तुर्कों ने कान्स्टेन्टिनोपुल को अपने अधीन कर लिया था। इसलिये इस चर्च का केन्द्र कान्स्टेन्टिनोपुल के स्थान पर रूस हो गया। इस पर राज्य एवं चर्च को एक जगह मिला दिया गया। निकोलस ने इस चर्च को सब व्यक्तियों के ऊपर लादने का प्रयत्न किया। कुछ व्यक्ति इस चर्च का पालन करना नहीं चाहते थे। इसलिये निकोलस ने अन्य धर्मावलम्बियों—रोमन, कैथोलिक, प्रोटेस्टेन्ट तथा कैथोलिकों पर घोर अत्याचार किये।

५. विचार-प्रकाशन पर घोर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। अखबारों पर कठोर सेन्सर लगा दिया गया। ऐसा बतलाया जाता है कि १८४३ में रूस में अखबार पढ़ने वाले व्यक्तियों की संख्या १२ हजार से अधिक न थी। यदि कोई व्यक्ति बिना सोचे-समझे कोई शब्द बोल देता था अथवा उसके पास कोई ऐसी पुस्तक मिल जाती थी जो सरकार द्वारा जब्त कर ली गई थी तो ऐसे व्यक्ति को बिना मुकदमा चलाये साइबेरिया के ठण्डे मैदानों में मरने के लिये छोड़ दिया जाता था। सन्देह होने पर सरकारी कर्मचारी जनता की डाक को भी खोल कर देखा करते थे। नवीन विचारों के प्रचार को रोकने के लिये नाटक-गृह आदि पर भी कठोर प्रतिबन्ध लगा दिये।

वैदेशिक नीति

निकोलस हस्तक्षेप के सिद्धान्त को मानने वाला था। उसकी वैदेशिक नीति भी घरेलू नीति की भाँति घोर प्रतिक्रियावादी थी।[1]

यूनानी स्वतन्त्रता-संग्रास—अलेक्जेण्डर प्रथम ने मेटरनिख के प्रभाव के अन्तर्गत ग्रीक स्वतन्त्रता-संग्राम में कोई हस्तक्षेप नहीं किया था। परन्तु निकोलस हस्तक्षेप की नीति का समर्थक था। उसने तुर्की सुलतान को एक अल्टीमेटम दिया कि यूनानियों को स्वतन्त्र कर दिया जाय। परन्तु तुर्की सुल्तान ने उसके अल्टीमेटम की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। रूस ने ब्रिटेन तथा फ्राँस को भी अपनी ओर मिला लिया तथा नेवारिनो के जल-युद्ध में टर्की के जहाजी बेड़े को नष्ट कर दिया। तत्पश्चात् ब्रिटेन एवं फ्राँस ने युद्ध से हाथ खींच लिया, परन्तु निकोलस बराबर युद्ध करता रहा। विवश होकर सुल्तान को निकोलस के साथ १८२९ में एड्रियानोपुल की सन्धि करनी पड़ी। इस सन्धि की निम्न शर्तें थीं—

(१) सर्विया, मोल्डाविया तथा बलाशिया को स्वायत्त शासन दे दिया गया।
(२) यूनान को स्वतन्त्रता दे दी गई।
(३) काला सागर रूसी झील बन गया।

1. 'Nicholos' foreign policy was marked by the same characteristics and made him hated throughout Europe as the most brutal autocrat of Europe.' —Hazen

(४) डार्डेनेलीज एवं बासफोरस में भी रूस का प्रवेश हो गया।

इस प्रकार निकोलस प्रथम ने टर्की साम्राज्य में अनेक अधिकार प्राप्त कर लिये तथा यूनान को स्वतन्त्र कराने का श्रेय रूस को है।

पोलैण्ड—अलेक्जेण्डर प्रथम ने रूस के साथ उदारता का बर्ताव किया था। उसने पोलों को स्वतन्त्रता दे दी थी। उनको अपनी भाषा के प्रयोग एवं धर्म का पालन करने का अधिकार था। परन्तु निकोलस ने पोलैण्ड-निवासियों के साथ अनुदारता का व्यवहार करना आरम्भ कर दिया। अतः १८३० में पोलों ने रूस के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। निकोलस ने कठोरतापूर्वक इस विद्रोह का दमन कर दिया। पोलैण्ड का पूरी तरह रूसीकरण कर दिया गया। १८१५ का उदार संविधान भंग कर दिया गया। वार्सा एवं विलना के विश्वविद्यालय भंग कर दिये गये। पोलो का रूसीकरण करने का पूरा प्रयत्न किया गया।[1]

इसी बीच १८३० में फ्रांस में राज्य-क्रान्ति हो गई। इस क्रान्ति के फलस्वरूप बूर्बा वंश समाप्त हो गया। इस अवसर पर निकोलस उसकी अवश्य सहायता करता; परन्तु इसी समय उसे पोलैण्ड के विद्रोह का दमन करना पड़ा। इस प्रकार अपने घरेलू मामले में उलझे रहने के कारण वह बूर्बा वंश की सहायता न कर सका।

त्रिराष्ट्र सन्धि—रूस, आस्ट्रिया एवं प्रशा ने एक सन्धि कर ली जो त्रिराष्ट्र सन्धि कहलाती है। इसका उद्देश्य तीनों राजतन्त्रवादी देशों की क्रान्तिकारी विचारों से रक्षा करना था।

पूर्वी समस्या—मिस्र के गवर्नर मेहमतअली ने टर्की के सुलतान के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और उसने सीरिया को अपने अधीन कर लिया। तुर्की का सुलतान निर्बल था। वह उसका दमन नहीं कर सकता था। अतः उसने विवश होकर निकोलस प्रथम से सहायता की याचना की। निकोलस ने इस अवसर का लाभ उठाया। उसने मेहमतअली के विरुद्ध सहायता का वचन दिया। १८३३ में टर्की के सुलतान से अंकिएर स्केलेसी की सन्धि कर निकोलस प्रथम ने निम्न अधिकार प्राप्त कर लिये :—

(१) डार्डेनेलीज एवं वासफोरस में भी रूस का प्रवेश हो गया।

(२) काले सागर पर रूस का प्रभाव मान लिया गया।

परन्तु रूस अधिक समय तक इन लाभों का उपयोग न कर सका। इंगलैंड के प्रधान मन्त्री पामर्स्टन ने इसका विरोध किया। इस समस्या पर विचार करने के लिये १८४१ में लन्दन में एक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में अंकिएरस्केलेसी की सन्धि को भंग कर दिया तथा रूस को इस सन्धि के अनुसार प्राप्त सब अधिकारों से वंचित कर दिया गया। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में निकोलस प्रथम की यह बहुत बड़ी पराजय थी।

---

1. The reign of Nicholas I was 'one long conspiracy on the part of a monarch to denationalize a people.' —Day

१८४८ की क्रान्ति से रूस की रक्षा—सन् १८४७ में फ्रांस में पुनः क्रान्ति हो गई। इस क्रान्ति का समस्त यूरोप पर प्रभाव पड़ा। यूरोप के अधिकांश देशों में विद्रोह हो गये। परन्तु निकोलस प्रथम के प्रभाव से रूस में कोई विद्रोह न हुआ।

कहते हैं कि जब निकोलस प्रथम को १८४८ की क्रान्ति का पता चला तो वह अपने प्रमुख सामन्तों के साथ नृत्य-गृह में था। उसने अपने सामन्तों से कहा—'सज्जनों अपने घोड़ों को तैयार कर लो। फ्रांस में पुनः गणतन्त्र की स्थापना हो गई है।'[1]

हंगरी का विद्रोह—१८४८ में हंगरी ने आस्ट्रिया के विरोध में विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह का नेता कोसूथ था। रूस एवं आस्ट्रिया ने मिल कर इस विद्रोह को शान्त कर दिया। कोसूथ प्राण-रक्षा के लिये भाग गया। उसके अधिकांश साथी मारे गये तथा कुछ साइबेरिया के मैदानों में निर्वासित कर दिये गये।

जर्मनी—१८४८ में जर्मनी के विभिन्न राज्यों में विद्रोह हो गया। उन्होंने फ्रैंकफोर्ट में एक संसद बुलाई तथा विलियम चतुर्थ को सिंहासन देना चाहा; परन्तु निकोलस प्रथम के भय के कारण उसने राजमुकुट को स्वीकार नहीं किया तथा उसको Crown of Shame कह कर अस्वीकार कर दिया।

१८४४ तथा १८५३ के प्रस्ताव—१८४४ में रूस के सम्राट् निकोलस ने इंगलैंड के विदेश मन्त्री एबर्डीन से तुर्की साम्राज्य के विभाजन के लिए कहा था। १८५३ में उसने पुनः इसी प्रकार के विचार प्रकट करने आरम्भ कर दिये। १८५३ में निकोलस प्रथम ने इंगलैंड के राजपूत हैमिल्टन के सम्मुख निम्न प्रस्ताव रक्खे :—

(१) टर्की यूरोप का बीमार आदमी (Sickman of Europe) है। अतः उसकी मृत्यु के पूर्व उसकी सम्पत्ति का विभाजन कर लेना चाहिये।

(२) सर्विया, बलगेरिया तथा मोल्डाविया को पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी जाय। रूस को इन प्रदेशों का संरक्षक बनाया जाय।

(३) इंगलैंड को मिस्र, साइप्रस तथा क्रीट के प्रदेश दे दिये जायें।

(४) कुस्तुनतुनिया के ऊपर कोई देश अपना प्रभाव स्थापित न करेगा।

(५) इटली का राज्य छोटे-छोटे गणतन्त्र राज्यों में विभक्त न किया जाय।

क्रीमिया युद्ध—१८४९ में निकोलस अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर था। परन्तु इसके बाद धार्मिक प्रश्न को लेकर फ्रांस से उसका मतभेद हो गया। इसी मतभेद के फलस्वरूप क्रीमिया का भयंकर युद्ध हुआ। ब्रिटेन, सार्डीनिया-पीडमान्ट ने फ्रांस का साथ दिया। यह युद्ध १८५४ से १८५६ तक चलता रहा। १८५६ में इस युद्ध में रूस को भयंकर पराजय उठानी पड़ी। इस युद्ध में उसके २½ लाख सैनिक मारे गये। इससे भी कहीं अधिक सैनिक घायल हुये। भारी मात्रा में धन इस युद्ध के संचालन में काम आया। इसके बावजूद भी रूस को पराजय निश्चित दिखाई देने लगी। निकोलस को इससे बहुत दुःख हुआ तथा वह युद्ध-समाप्ति से एक वर्ष पूर्व

1. 'Gentlemen ! saddle your horses, France is a Repūblic.'

ही १८५५ में मर गया। ऐसा कहा जाता है कि क्रीमिया युद्ध ने उसको मार डाला। वह अपने पुत्र के लिये एक सुव्यवस्थित राज्य छोड़ना चाहता था; परन्तु यह सम्भव न हो सका। इससे उसको बहुत दुःख था। उसने मरते समय अपने पुत्र से कहा था कि अब तो मैं केवल तुम्हारे लिये तथा रूस के लिये भगवान से प्रार्थना कर सकता हूँ।

क्रीमिया युद्ध के परिणाम के फलस्वरूप निकोलस की सेना का खोखलापन प्रकट हो गया। अब तक यह सेना अजय समझी जाती थी; परन्तु अब यह भ्रम दूर हो गया। वास्तव में रूसी सेना की पराजय का प्रमुख कारण सेना के उच्च पदाधिकारियों का भ्रष्टाचार था। सेना को रसद एवं युद्ध-सामग्री भी भली प्रकार नहीं मिल पाती थी। स्वार्थी पदाधिकारी उसको मार्ग में ही हजम कर जाते थे।

निकोलस प्रथम का मूल्यांकन—लिप्सन महोदय ने निकोलस को निरंकुशता का क्विग्जोट (Don Quixte of Autocracy) कहा है। हेजेनमहोदय के शब्दों में वह 'Thorough-going absolutist' था। मैरियट महोदय ने निम्नलिखित शब्दों में उसका उल्लेख किया है—'Of Alexander's idealism, of his mysticism, of his veneer of western culture Nicholas had none; he was a Muscovite to the core.' एक दिन उसने अपने भाषण में कहा था—'भगवान ने हमको रूस का सम्राट् बनाया है। मेरी इच्छा ही कानून है। मुझे ईश्वर से बुद्धि प्राप्त हुई है। मेरा सिंहासन ईश्वर का सिंहासन है। मैं तुम सब लोगों की चिन्ता करता हूँ। अतः तुमको कोई चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। मुझे घरेलू एवं बाह्य सब शत्रुओं की कार्यविधियों का पता रहता है। अतः मुझे किसी भी प्रकार के परामर्श की आवश्यकता नहीं है। तुम लोगों को इस बात का घमण्ड होना चाहिए कि तुम सब मेरे दास हो।' परन्तु इस आश्वासन के बावजूद भी जनता का कोई भला नहीं हुआ। लिप्सन महोदय के शब्दों में 'सरकारी कागजों के पहाड़ों के नीचे जनता के हित दब गये।'

राज्य में नियुक्तियाँ सम्राट् की इच्छा से होती थीं। योग्यता के ऊपर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। अयोग्य सामन्तों को गवर्नर बना दिया जाता था। एक बार तबेले में कार्य करने वाले एक लड़के को अखबार का सेन्सर अधिकारी बना दिया गया। एक बार सम्राट् निकोलस ने अपने मुंह लगे भांड को नौ-सेना का अध्यक्ष बना दिया।

निकोलस की निरंकुशता प्रदर्शित करने के लिये एक उदाहरण देना उचित होगा। १८५१ में सेन्टपीटर्सवर्ग से मास्को तक एक रेलवे लाइन बनाने की योजना बनाई गई। यह लाइन कहाँ-कहाँ होकर जाय, इस पर जनता ने विभिन्न मत प्रकट किये; परन्तु निकोलस ने इन सबकी अवहेलना कर नक्शे में सेन्टपीटर्सवर्ग तथा मास्को को मिलाती हुई एक सीधी पंक्ति खींच दी तथा यह कहा कि जहाँ हमने लाइन खींच दी है, उन्हीं नगरों में होकर यह जायगी।

अपने राज्याभिषेक के समय उसने कहा था कि 'Not by insolent, and always destructive dreams are the institutions of the country to be perfected, their short-comings made good, and abuses corrected. We shall accept with good will every modest expression of a desire for improvement, if it implies that improvement shall be gradual.'

इस प्रकार वह बड़े सुधारों और परिवर्तनों का घोर विरोधी था।

निकोलस प्रथम के पास एक विशाल सेना थी। उस पर वह राष्ट्रीय आमदनी का ४० प्रतिशत धन व्यय करता था। विद्वानों का मत है कि उसकी सेना यूरोप के समस्त देशों की सेना से शक्तिशाली थी।

निकोलस प्रथम तथा फिलिप द्वितीय की तुलना— निकोलस प्रथम की तुलना स्पेन के फिलिप द्वितीय से की जाती है। निकोलस प्रथम घोर निरंकुशतावादी एवं पुरातन विचारधारा का प्रतिपादक था। इसी प्रकार स्पेन का फिलिप द्वितीय भी सुधारों का घोर विरोधी था। दोनों ने ही अपने देश में यूराप के नवीन विचारों को आने से रोका। निकोलस ने थर्ड सेक्शन द्वारा विद्रोहियों का दमन किया तथा फिलिप ने इंक्विजीशन द्वारा क्रान्तिकारियों का दमन किया। मास्को से नेपोलियन महान् भारी हानि उठाकर वापस आया था। इससे रूस की सेना का बहुत प्रभाव बढ़ गया था; परन्तु १८५६ की क्रीमिया युद्ध की पराजय से उसकी सेना का खोखलापन स्पष्ट हो गया। इसी प्रकार आर्मेडा (Armada) की पराजय के पश्चात् स्पेन की नौ-सेना की अजेयता समाप्त हो गई।

निकोलस प्रथम का इतिहास में स्थान—वह संकीर्ण बुद्धि का भले रहा हो, परन्तु साथ ही साथ वह तीक्ष्ण बुद्धि का व्यक्ति था।[1] उसने भली-भाँति समझ लिया था कि पूर्वी समस्या में रूस की भाँति इंगलैंड भी अत्यधिक रुचि रखता है। इसी से १८४४ में इंगलैंड जाकर उसने पूर्वी समस्या के सम्बन्ध में रूस और इंगलैंड के बीच एक समझौता करने की चेष्टा की थी। परन्तु वह वार्ता सफल न हो सकी थी। एड्रिआनोपुल की सन्धि उसकी सूझ- बूझ का परिणाम थी। उसने रूस, प्रशा और आस्ट्रिया का जो गुट बनाया था वह काफी समय तक मध्य योरप में निर्णायक बना रहा। उदारता और जनतन्त्रवाद के सिद्धान्तों के प्रतिकूल होते हुये भी उसकी गृह-नीति और विदेशी-नीति ने काफी समय तक रूस की हित-साधना की। १८३० और १८४८ की क्रान्तियों ने रूस में कोई व्यापक प्रभाव उत्पन्न न किया।[2]

यद्यपि निकोलस प्रथम में अनेक दोष थे, फिर उसका काल रूस के इतिहास में बहुत महत्व रखता है। वह जिस कार्य को उचित समझता था, उसको पूर्ण करने

1. 'His intellect may have been narrow, but it was singularly acute.' —Marriot.

2. 'For twenty-five years the system or repression was consistently and, to all appearances, successfully persued.' —Marriot

के लिये अपनी समस्त शक्ति लगा देता था। वह दास प्रथा का विरोधी था। इस प्रथा को समाप्त करने के लिये उसने छः समितियों की स्थापना की थी; परन्तु सामन्तों के घोर विरोध के कारण उसको अपने कार्य में सफलता न मिली। दास-प्रथा के विषय में वह कहा करता था कि 'I do not understand how man came to be a thing, and I can explain the fact only by deception on one side and ignorance on the other. We must make an end to this. It is better we should give up, of our own account, that which might otherwise be wrested from us. उसने कुछ नई रेलवे लाइनों का निर्माण कराया था। साहित्य एवं कला की भी उसके समय में उन्नति हुई। सुप्रसिद्ध उपन्यासकार दास्तोवस्की, टर्गेनीफ, गोगल तथा महान् कवि पुश्किन इसी समय हुये थे। विद्वानों ने निकोलस प्रथम के शासन-काल को रूस का आगस्टस-काल कहा है। १८५५ में निकोलस प्रथम की मृत्यु हो गई।

प्रश्न

१. अलेक्जेण्डर प्रथम की गृह तथा वैदेशिक नीति का विवेचन कीजिये।

२. 'निकोलस प्रथम अपनी गृह तथा वैदेशिक—दोनों ही नीतियों में अनुदार था।' पूर्णतया वर्णन कीजिये।

———

योरप का इतिहास

(१८४८–१८७०)

खण्ड ३

१
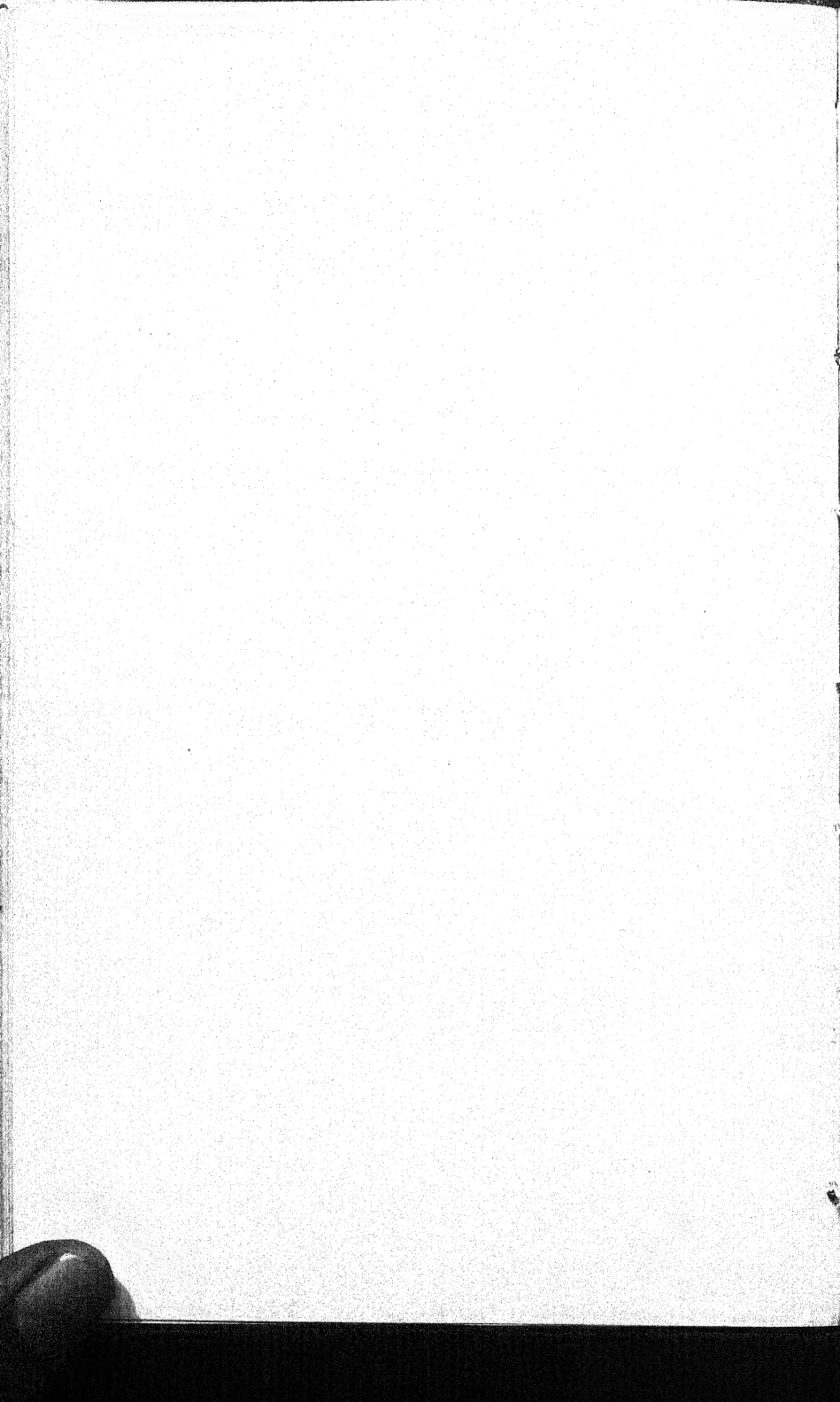
फ्रांस

(१८४८–१८७०)

१८४८ की क्रांति के पश्चात्, गणतन्त्रवादी और समाजवादी, द्वितीय गणतन्त्र और राष्ट्रपति, लुई नेपोलियन, नेशनल एसेम्बली, द्वितीय साम्राज्य, नवीन संविधान, गृह-नीति, विदेशी नीति, नेपोलियन तृतीय का पतन, पतन के कारण, चरित्र, इतिहास में स्थान ।

१८४८ के पश्चात्—लुई फिलिप ने सिंहासन छोड़ते समय अपनी पत्नी डचेज आफ आर्लियां (Duchess of Orleans) को अपने पुत्र काउण्ट आफ पेरिस (Comte of Paris) की संरक्षिका बनाया था । उसकी इच्छा थी कि फ्रांस उसके पुत्र को अपना राजा स्वीकार करले । परन्तु फ्राँसीसी नेता राजतन्त्रवाद का विनाश कर गणतन्त्र की स्थापना करना चाहते थे । अतः उन्होंने एक अस्थायी सरकार (Provisional Government) की घोषणा की । इसके नेताओं में लामार्तीन, दूपाँ, लुई ब्लाँक और एल्बर्ट विशेष उल्लेखनीय थे । अस्थायी सरकार ने २६ फरवरी, १८४८ को घोषणा की कि—

'In the name of the French people, monarchy, under every form, is abolished without possibility of return.'

परन्तु फ्राँस गणतन्त्र के लिये तैयार न था ।[1] उसकी जनता, उसके नेताओं, किसी के पास भी स्पष्ट, सुनिश्चित गणतन्त्रवादी योजना न थी । नेताओं के विचार अस्पष्ट और बहुधा परस्पर-विरोधी थे ।

अस्थायी सरकार में दो प्रमुख दल थे—समाजवादी और गणतन्त्रवादी । समाजवादियों में लुई ब्लाँक और एल्बर्ट प्रमुख थे । ये व्यक्तिगत सम्पत्ति का विनाश कर जनता के सहकारी उत्पादक संघ (Co-operative Productive Associations) बनाना चाहते थे । परन्तु इनके अनुयायी इनसे कहीं अधिक अतिवादी थे । वे समाजवाद के नाम पर अनेक प्रकार की अव्यावहारिक योजनाओं का प्रचार कर रहे थे ।

उधर गणतन्त्रवादियों का प्रमुख नेता लामार्तीन था । १८४८ में वह अपनी लोकप्रियता की पराकाष्ठा पर था । वह देश की आर्थिक समस्याओं के हल करने के लिये व्यक्तिगत सम्पत्ति का पूर्ण विनाश आवश्यक न समझता था ।[2]

---

1. 'The Revolution had come before its time.' —Proudhon
2. 'Charity among the different classes of citizens, to be realised by all such institutions of assistance, association, benevolence as are compatible with the liberty of capital and the security of property.' —Lamartine.

अन्त में समाजवादियों के दबाव में अस्थायी सरकार को 'श्रम के अधिकार' (droit an travail or right to labour) के सिद्धाँत को स्वीकार करना पड़ा। बेरोजगारी को दूर करने के लिये सरकार ने राष्ट्रीय दूकानें (National Workshops) स्थापित कीं। परन्तु यह समाजवादी योजना अनुपयुक्त सिद्ध हुई। इन दूकानों में काम पाने के लिए व्यवसायहीन मनुष्यों के साथ-साथ हड़ताली, आलसी और आरामपसन्द मनुष्य भी बहुत बड़ी संख्या में आने लगे। धीरे-धीरे इनकी संख्या एक लाख हो गई। सरकार इन्हें काम और वेतन कहाँ से देती ?

थोड़े ही दिनों में लुई ब्लांक ने लग्जेम्बर्ग में अपने एक श्रम-कमीशन (Labour Commission) की स्थापना की। इसने देश में व्यवसायी-संघों की स्थापना की और यह चेष्टा की कि ये संघ ही सारे सरकारी अनुबन्धों (Contracts) को लिया करें और उन्हे पूरा किया करें। परन्तु धन के अभाव में लुई ब्लाँक की यह योजना भी असफल हुई।

इस प्रकार राष्ट्रीय दूकानें और लग्जेम्बर्ग का श्रम-कमीशन समाजवादियों की संस्थायें थीं और इनसे गणतन्त्रवादी सरकार को सदैव भय था।

इसी बीच अस्थायी सरकार ने देश के लिए नवीन संविधान बनाने के हेतु नवीन एसेम्बली (Constituent Assembly) के निर्वाचन कराये। मताधिकार बढ़ जाने से ८० लाख जनता ने वोट दिये थे। एसेम्बली के कुल ९०० सदस्य चुने गये। इनमें उग्र और अतिवादी समाजवादियों की संख्या कम थी। ४ मई, १८४८ को नवीन एसेम्बली का अधिवेशन हुआ और इसने फ्रांसीसी गणतन्त्र की पुनः घोषणा की।

एसेम्बली ने ५ व्यक्तियों की एक कार्यकारिणी नियुक्त की। यह महत्व की बात है कि इसमें लुई ब्लाँक और उसके सहयोगी नहीं रक्खे गये। इस कार्य से स्पष्ट हो गया था कि एसेम्बली गणतन्त्र के पक्ष में थी, परन्तु वह समाजवादियों के गणतन्त्र के विरुद्ध थी।

अब समाजवादियों ने सरकार के विरुद्ध विद्रोह की योजना बनाई। उनके प्रोत्साहन से एक विशाल उपद्रवकारी भीड़ ने १५ मई १८४८ को एसेम्बली के भवन को घेर लिया और एसेम्बली को भंग करते हुये पुनः एक अस्थायी सरकार की घोषणा की। परन्तु लामार्तीन ने नेशनल गार्ड की सहायता से इन उपद्रव-कारियों और उनकी तथाकथित अस्थायी सरकार को भगा दिया।

अब एसेम्बली ने राष्ट्रीय दूकानों के दमन का निश्चय किया। इस पर २३ जून, १८४८ को मजदूरों की एक भारी भीड़ ने सशस्त्र विद्रोह कर दिया। इसका दमन करने के लिए एसेम्बली ने कैवेग्नैक को डायरेक्टर चुना। उसने सेना और स्वयं-सेवकों की सहायता से चार दिन के भयंकर रक्त-पात के पश्चात् उस विद्रोह का दमन किया।

द्वितीय गणतन्त्र—इन प्रारम्भिक कठिनाइयों के पश्चात् एसेम्बली ने देश के लिये एक नया संविधान निर्मित किया। इस संविधान के अन्तर्गत एक संसदीय व्यवस्थापिका सभा (Legislative Assembly) और एक राष्ट्रपति (President) की योजना बनाई गई। दोनों का निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा होना निश्चित हुआ। परन्तु यह व्यवस्था दोषपूर्ण थी। सम्भावना यह थी कि व्यवस्थापिका सभा और राष्ट्रपति दोनों ही जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होने के पश्चात् एक दूसरे के विरुद्ध अधिक शक्तिशाली बनने की चेष्टा करेंगे और इससे गणतन्त्र का विनाश हो सकता था।

राष्ट्रपति –नये संविधान के अन्तर्गत १० दिसम्बर, १८४८ को राष्ट्रपति का निर्वाचन हुआ। इसमें ५ उम्मीदवार थे। परन्तु वास्तविक संघर्ष दो उम्मीदवारों में था—कैवेग्नाक और लुई बोनापार्ट में। कैवेग्नाक ने डायरेक्टर के रूप में जून, १८४८ के सशस्त्र विद्रोह का दमन किया था। वह जनतन्त्रवादियों का उम्मीदवार था। लुई बोनापार्ट नेपोलियन महान् का भतीजा था।

गणतन्त्रवादियों का जोर केवल नगरों में था। उनमें आपस में मतभेद थे। उनकी ओर से ४ उम्मीदवार खड़े किये गये थे। उधर गाँव की जनता अशान्ति से थक गई थी। अतः जब लुई नेपोलियन ने शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित करने का आश्वासन दिया तो गाँवों के किसान उसके समर्थक बन गये। देश के वैध राजता के समर्थकों (Legitimists) और औलियाँ वंश के अनुयायियों (Orleanists) ने भी उसका साथ दिया। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि ये सब एकमत थे। उनका एक ही उम्मीदवार था—लुई बोनापार्ट। परिणाम यह हुआ कि नेपोलियन निर्वाचन में विजयी हुआ। उसने ५० लाख से अधिक मत पाए। कैवेग्नैक को २० लाख से भी कम मत मिले। गणतन्त्रवादियों के दूसरे उम्मीदवार लामार्तीन को केवल १८ हजार मत मिले।

लुई नेपोलियन—लुई नेपोलियन नेपोलियत महान् का भतीजा था। उसका पिता लुई बोनापार्ट हालैण्ड का राजा रह चुका था। लुई नेपोलियन को उच्च शिक्षा प्राप्त हुई थी। वह स्विट्जरलैण्ड, इंगलैंड आदि देशों में घूमा था और उसने वहाँ की सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन किया था। नेपोलियन के पतन के पश्चात् वही बोनापार्ट दल का प्रतिनिधि और नेता था। वह फ्राँस में पुनः अपने महान् चाचा की भाँति साम्राज्य की स्थापना करना चाहता था। नेपोलियन ने सेण्ट हेलेना में अपने बन्दी-जीवन में अपने कार्यों का विश्लेषण करते हुए अपने संस्मरण तैयार किये थे। इनमें उसने यह कहा था कि मैं सदैव शान्ति, सुव्यवस्था और धर्म का पक्षपाती रहा था। उसके पतन के पश्चात् उसके इन संस्मरणों ने फ्राँस को प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया था। लुई नेपोलियन ने इस प्रभाव को और अधिक पुष्ट करने की चेष्टा की। उसने नेपोलियन के दर्शन (Napoleanic Cult) के ऊपर एक ग्रन्थ लिखा और फ्राँस की जनता को आश्वासन देने लगा कि मैं अपने चाचा के कार्य-क्रम को कार्यान्वित करूंगा।

नेपोलियन महान् की भाँति लुई नेपोलियन ने अपने सामने चार उद्देश्य रक्खे—(१) क्रान्ति के सिद्धान्तों की रक्षा, (२) राष्ट्रीयता के सिद्धान्त की रक्षा, (३) शान्ति की स्थापना और (४) धर्म की स्थापना।

उधर लुई नेपोलियन के सौभाग्य से लुई फिलिप का शासन-काल नितान्त गौरवहीन और निष्क्रिय था। जनता उससे थक गई थी। लुई फिलिप की शिथिल गृह और विदेशी नीति के प्रतिकूल उसे अपने पुराने सम्राट् नेपोलियन की सुदृढ़ नीति का स्मरण होने लगा था।

लुई नेपोलियन ने लुई फिलिप की लोक-अप्रियता से लाभ उठाना चाहा। उसने उसके विरुद्ध १८३६ में **स्ट्रासबर्ग** में विद्रोह कर दिया। परन्तु यह विद्रोह असफल रहा। वह पकड़ा गया और अमेरिका निर्वासित कर दिया गया। परन्तु कुछ समय पश्चात् वह फिर फ्राँस चला आया और १८४० में उसने **बोलोन** में पुनः विद्रोह का झण्डा उठाया। इस बार भी वह असफल रहा और उसे आजीवन कारावास का दण्ड मिला। परन्तु १८४६ में वह इङ्गलैंड भाग गया। वहाँ उसने चार्टिस्ट आन्दोलन के समय एक सिपाही के रूप में भी कार्य किया था।

१८४८ की फ्राँसीसी क्रान्ति ने उसे एक सुअवसर प्रदान किया। उसने गण-तन्त्र के पक्ष में अपनी घोषणा की। परन्तु फ्रांस की जनता ने अभी तक उसका विश्वास न किया था। वह दोनों बार एसेम्बली के लिए भी चुना गया। परन्तु उसने बड़े धैर्य और दूरदर्शिता का प्रदर्शन करते हुए एसेम्बली की सदस्यता अस्वीकार कर दी। वह तब तक कोई निश्चित कदम नहीं उठाना चाहता था जब तक कि वह यह न समझ ले कि फ्राँस पूर्णतया उसके पक्ष में हो गया है। फ्राँस धीरे-धीरे उसके पक्ष में हो रहा था।

इसके पश्चात् वह पांच स्थानों से एसेम्बली का सदस्य चुना गया और अन्त में सितम्बर, १८४८ में उसने बड़ी खामोशी के साथ एसेम्बली की सदस्यता स्वीकार कर ली। फ्रांस की विचारधारा को अपने पक्ष में बहते देखकर वह राष्ट्रपति के पद के लिये खड़ा हुआ और उसमें भी विजयी हुआ। इस प्रकार एक सामान्य स्थिति से निकल कर अनेक प्रकार के घात-प्रतिघात को सहते हुए लुई नेपोलियन १० दिसम्बर, १८४८ को फ्राँस का सबसे बड़ा व्यक्ति बन गया।

उसकी सफलता का सबसे बड़ा कारण उसका नाम था। वह नेपोलियन महान् का भतीजा था और उसी के कार्य-क्रम को फ्राँस में पुनः कार्यान्वित करना चाहता था। १८४० में अपने मुकदमे के दौरान में उसने घोषित किया था—

'I represent before you a principle, a cause, a defeat; the principle is the sovereignty of the people, the cause is that of the Empire the defeat, Waterloo.'

उसके ये शब्द थोड़े ही दिनों में फ्राँस के घर-घर में गूँजने लगे थे। वह बड़ा भाग्यवादी था। उसमें भारी आत्म-विश्वास था। उसने लिखा था—

'In all my adventures, I have been governed by one principle. I believe that from time to time men are created whom I will call providential, in whose hands the destinies of their country are placed. I believe myself to be one of these men'

राष्ट्रपति पद की शपथ लेते हुए उसने जनता को विश्वास दिलाया कि मैं इस शपथ का अक्षरशः पालन करूंगा और जो भी व्यक्ति फ्राँस की इस नवस्थापित व्यवस्था को गैर-कानूनी ढंग से भंग करने की चेष्टा करेगा उसे मैं देश का शत्रु समझूंगा।[1]

उसने जनता की इच्छा और प्रभुसत्ता का आदर करने का आश्वासन दिया था—

'I have respected and shall respect the sovereignty of the people, even in what may be false and hostile to myself in its expression. If I have acted thus, it is because the title I covet most is that of an honest man. I know nothing above duty.'

परन्तु फ्रांस ने गणतन्त्र में विश्वास न रखने वाले व्यक्ति को राष्ट्रपति बनाकर गणतन्त्र के विनाश की भूमिका तैयार कर दी थी।

नेशनल एसेम्बली—मई, १८४९ में नये संविधान के अन्तर्गत नेशनल एसेम्बली का निर्माण हुआ। इसमें राजतन्त्रवादी अधिक संख्या में थे। ये गणतन्त्र का विनाश कर फ्राँस में पुनः स्वतन्त्रता की स्थापना करना चाहते थे। इसमें बोनापार्ट वंश के समर्थक, ओर्लियाँ वंश के समर्थक और वैध राजता के समर्थक (Legitimists) समान रूप से सम्मिलित थे। इसके विरुद्ध गणतन्त्रवादी थे। ये दो दलों में विभक्त थे—नरम दल (Moderates) और गरम दल (Social Democrats)।

विद्रोह और दमन—१८४९ में इटली में स्वतन्त्रता-संग्राम चल रहा था। वहाँ मैजिनी ने रोम पर आक्रमण करके पोप को भगा दिया था और रोम में अपने स्वतन्त्र गणतन्त्र की स्थापना की थी। नेपोलियन ने अनेक कारणों से प्रेरित होकर पोप का पक्ष लिया और रोम के गणतन्त्र का विनाश करने के लिये वहां अपनी सेना भेजी। इस सेना ने मैजिनी, गैरीबाल्डी तथा उसके सहयोगियों को परास्त कर दिया और पोप को पुनः प्रतिष्ठित कर दिया।

---

1. 'The votes of the nation and the oath which I have just taken, control my future conduct. My duty is clear. I will fulfil it as a man of honour. I shall regard as enemies of the country all those who endeavour to change by illegal means that which France has established.'

फ्राँस के गणतन्त्रवादियों ने नेपोलियन के इस कार्य का विरोध करते हुये विद्रोह कर दिया। परन्तु वह असफल रहा। इस अवसर से लाभ उठाकर एसेम्बली ने फ्रांस में विरोधी तत्वों का काफी दमन किया। उसने राजनीतिक क्लबों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। प्रेस की स्वतन्त्रता छीन ली। जनता को मीटिंग करने का अधिकार न रहा। सार्वजनिक वयस्क मताधिकार भी जाता रहा। मतदान की योग्यता बढ़ाकर लगभग ३० लाख नागरिकों से मताधिकार छीन लिया गया।

नेपोलियन ने दलों और नेताओं के इस पारस्परिक मतभेद का पूरा लाभ उठाया। उसने फ्राँस का दौरा करना और जनता के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करना प्रारम्भ किया। वह संविधान में परिवर्तन करना चाहता था जिससे फ्राँस में गणतन्त्र का विनाश और उसके साम्राज्य की स्थापना हो सके। इसके लिये जनता का सहयोग आवश्यक था। उसने अपने एक भाषण में कहा था—

'I seek with pleasure all opportunities which may bring me into contact with this great and generous people which haseleted me; for, believe me, my sincerest and most devoted friends are not in the palace, but under the thatch, not under cloth of gold, but in the workshop and the field.

फ्रांस में व्याप्त भ्रान्ति, कलह और असन्तोष से जनता थक गई थी। वह वर्तमान गणतन्त्र के स्थान पर किसी भी शासन-तन्त्र का, चाहे वह एकतन्त्रवादी ही क्यों न हो, स्वागत करेगी, यदि वह देश में शान्ति, सुव्यवस्था और स्थिरता वापस ला सके। इस काम के लिये न तत्कालीन राजतन्त्रवादी उपयुक्त थे और न गणतन्त्रवादी। फ्राँस पुनः क्रान्ति अथवा एकतन्त्रवाद की प्रतीक्षा कर रहा था।[1] इस परिस्थिति ने नेपोलियन को अपनी हित-साधना कर अच्छा अवसर प्रदान किया।

जनता की भावनाओं को समझते हुये नेपोलियन ने कदम उठाने का निश्चय किया। उसने सेना को अपनी ओर मिलाकर २ दिसम्बर १८५२ को नेशनल एसेम्बली भंग कर दी और सम्राट् के रूप में शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली। इस प्रकार फ्रांस में द्वितीय गणतन्त्र का विनाश हो गया और उसके स्थान पर द्वितीय साम्राज्य की स्थापना हुई। २० दिसम्बर को उसने यह जानने

---

१. इस परिस्थिति का उल्लेख करते हुये फ्रांस में स्थित तत्कालीन स्पेनी दूत ने लिखा था—

'It is filled with Monarchists who cannot establish a Monarchy, and who groan under the weight of a Republic who has no Republicans to defend it. In the midst of this confusion only personages remain standing, Louis Napoleon and the Mountain; two things only, are possible, a new Revolution or a Dictatorship.

के लिये जनमत-गणना (Plebiscite) की कि जनता उसके शासनतन्त्रीय परिवर्तन (Coup d'etat) को स्वीकार करती है अथवा नहीं। इस जनमत गणना में आतङ्क और प्रलोभन से भी काम लिया गया। जनता ने भारी बहुमत से नेपोलियन के कार्य का समर्थन किया और उसे अपना सम्राट् स्वीकार कर लिया। लुई नेपोलियन सम्राट् नेपोलियन तृतीय बन गया। उसकी सफलता में उसके नाम का भी बहुत हाथ था। इस समय तक जनता द्वितीय गणतन्त्र की अयोग्यतापूर्ण नीति के विरुद्ध नेपोलियन महान् की सुदृढ़ और अनुशासनपूर्ण नीति चाहती थी। यह कार्य सम्भवतः उसके भतीजे नेपोलियन के द्वारा सम्पन्न हो सके।

द्वितीय साम्राज्य
(Second Empire)

नेपोलियन तृतीय के अपने विचार थे। उसका विश्वास था कि अपने महान् चाचा की कार्यपद्धति को अपनाकर वह फ्रांस की पूर्व प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित कर सकेगा। उसने १८४० में Ieeus Napoleoniennes नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित किया था। इसमें उसने अपने चाचा के कार्यों की प्रशंसा और अपने कार्यों की भूमिका प्रस्तुत की थी। उसका मत था कि नेपोलियन महान् केन्द्रीकृत एकतन्त्रवादी व्यवस्था के द्वारा देश में अशान्ति, अराजकता, अनुशासनहीनता, धर्महीनता, वर्ग-संघर्ष आदि को समाप्त करना चाहता था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के पश्चात् वह फ्रांस में पुनः विकेन्द्रीयकरण, निर्वाचन, लोकसभाओं, विचार-प्रकाशन की स्वतन्त्रता आदि के द्वारा लोकतन्त्रवादी उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना चाहता था। परन्तु लोगों ने उसके विचारों को भलीभांति समझा नहीं और उन्हें कार्यान्वित नहीं होने दिया।

जो कार्य नेपोलियन प्रथम पूर्ण नहीं कर सका उसे नेपोलियन तृतीय करेगा। साम्राज्य स्थापना के कुछ समय पूर्व उसने एक लम्बे भाषण में अपने विचारों को स्पष्ट किया था—

'I confess, however, that It like the Emperor, have many conquests to make. I wish, like him, to conquer to reconciliation the dissident parties······ I wish to conquer to religion, to morality to prosperity that part of the population, stillso numerous, wnich, in the midst of a country of faith and belief, scarcely knows the precepts of Christ,······we have immense ditsricts cf virgin soil to clear, roads to open, harbours to dig, rivers to render navigable, canals to finish, our network of railways to complete······we have everywhere ruins to restore, false gods to overthrow, truths to establish in triumph. That is how I should understand the Empire, if the Empire is to be re-established. Such are the conquests that I meditate, and all of you who surround me, who desire, like myself, the welfere of our country, you are my soldiers.

नवीन संविधान—नेपोलियन तृतीय ने देश को एक नया संविधान दिया। इसके अन्तर्गत सम्राट् के हाथ में सम्पूर्ण शक्ति केन्द्रित थी। वह मन्त्रियों की नियुक्ति करता था और अपनी इच्छा से उन्हें पदच्युत कर सकता था। मन्त्री अपने समस्त कार्यों के के लिए उसके प्रति उत्तरदायी थे, किसी लोक-सभा के प्रति नहीं। वह **राज्य-सभा** (Council of State) के सदस्यों को भी मनोनीत करता था।

व्यवस्थापिका सभा (Legislative Assembly) में जनता के चुने हुये प्रतिनिधि अवश्य थे, परन्तु उसकी शक्ति नितान्त सीमित थी। वह स्वयं किसी बिल को विचारार्थ रख नहीं सकती थी। यह कार्य सम्राट् का था। उसके अधिवेशन के बुलाने और स्थागित करने का अधिकार भी सम्राट् को ही था। अपनी इच्छानुसार वह व्यवस्थापिका सभा को भंग भी कर सकता था। यह सभा राजमन्त्रियों द्वारा रक्खे गये बिलों अथवा प्रस्तावों पर विचार कर सकती थी और उन्हें स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सकती थी। परन्तु राज्यसभा (Council of State) की अनुमति केबिना वह किसी भी बिल में संशोधन नहीं कर सकती थी। व्यवस्थापिका सभा का निर्वाचन वयस्क मताधिकार के द्वारा होता था। परन्तु पदाधिकारियों के आतङ्क, प्रलोभन और प्रभाव से यह निर्वाचन स्वतन्त्र और निष्पक्ष नहीं हो पाता था। इसकी कार्याविधि ६ वर्ष की होती थी।

सीनेट (Senate) में सम्राट् द्वारा मनोनीत चर्च, सेना आदि के पदाधिकारी आते थे। इसका कार्य संविधान की व्याख्या करना था। आवश्यकता पड़ने पर यह उसमें संशोधन भी कर सकती थी।

शासन का सम्पूर्ण ढाँचा एकतन्त्रवादी था। संविधान के अन्तर्गत निर्वाचन की व्यवस्था थी, परन्तु पदाधिकारियों के हस्तक्षेप, आतंक और प्रलोभन के कारण वे स्वतन्त्र और निष्पक्ष नहीं होते थे। निर्वाचक-क्षेत्रों और मतदाताओं की सूचियों में सरकार अपनी सुविधा के अनुसार परिवर्तन किया करती थी। सरकारी उम्मीदवारों को जिताने के लिये सरकारी अखबार पूरा यत्न करते थे। यही नहीं, विरोधी और स्वतन्त्र प्रेस का दमन किया जाता था। विरोधी उम्मीदवारों को मीटिंग करने और प्रचार करने की सुविधायें नहीं मिलती थीं। दीवारों पर जहाँ कहीं उनके छपे हुए वक्तव्य मिलते थे, वे नष्ट कर दिये जाते थे। छोटे से बड़े तक सभी सरकारी कर्मचारियों को सरकारी उम्मीदवारों को ही मत देना पड़ता था। घूस और लालच देकर भी मत प्राप्त किये जाते थे। ऐसी परिस्थिति में निर्वाचन का सिद्धांत एक मजाक बन गया था।

सरकार प्रेस के ऊपर भी कड़ी दृष्टि रखती थी। उसके ऊपर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये गये जिससे वे सरकार की आलोचना न कर सकें। १८६८ के पूर्व फ्रांस में विरोधी अथवा स्वतन्त्र प्रेस का प्रायः अभाव था।

कालान्तर में नेपोलियन तृतीय ने इस संविधान में कुछ सुधार भा किये, विशेषतया उस समय जब उसकी गृह-नीति और विदेशी नीति की असफलता के विरुद्ध

देश में असन्तोष बढ़ने लगा। कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि एकतन्त्रवादी सरकार के द्वारा शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित करने के पश्चात् नपोलियन तृतीय हृदय से जनतन्त्रवादी और उत्तरदायी राजतन्त्र की स्थापना करना चाहता था।

अस्तु, नवम्बर, १८६० में उसने प्रतिनिधियों को सरकारी नीति की आलोचना करने का अधिकार दे दिया। दिसम्बर, १८६१ में उसने उन्हें बजट के किसी भी अंश को अस्वीकार करने का अधिकार दे दिया। जनवरी, १८६७ के एक कानून के अनुसार प्रतिनिधि मन्त्रियों से जवाब तलब कर सकते थे। सितम्बर १८६६ में व्यवस्थापिका सभा को बिल प्रस्तुत करने का अधिकार प्राप्त हो गया। अब मन्त्री अपने कार्यों के लिये इस सभा के प्रति उत्तरदायी बना दिये गये।

उसी वर्ष उसने स्थानीय शासन में भी सुधार घोषित किये। इनके अनुसार प्रिफेक्ट के अधिकार बढ़ा दिए गए। अब वे मन्त्रियों से पूछे बिना ही अनेक निर्णय ले सकते थे। अनेक स्थानों पर मेयर स्थानीय सभाओं द्वारा निर्वाचित होने लगे। इसके पूर्व वे सम्राट् द्वारा मनोनीत होते थे। कैण्टन और कम्यून की स्थानीय सरकारों का निर्वाचन के आधार पर पुनः संगठन होने लगा। उनके अधिकार बढ़ा दिये गये।

गृह-नीति

सुव्यवस्था—नेपोलियन वास्तव में अपने देश को भव्य, समृद्ध और सुखी बनाना चाहता था। इस ध्येय की पूर्ति के लिये यह अत्यन्त आवश्यक था कि फ्रांस में शान्ति, सुव्यवस्था और अनुशासन रहे। अतः नेपोलियन ने अपने शासन का आधार स्वतन्त्रता नहीं वरन् कार्य-कुशलता माना था। शासन के सारे सूत्रों को अपने हाथ में रखते हुए उसने अशान्ति, आन्दोलन और विरोध प्रदर्शन का कठोरतापूर्वक दमन किया।

कृषि और व्यापार कृषि और व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिए नेपोलियन ने राज्य की ओर से ऋण और आर्थिक सहायता दी। अंगूर के उत्पादन पर विशेष जोर दिया गया। अनुपजाऊ भूमि को खेती के योग्य बनाया गया। दलदलों को सुखाया गया। देश में कृषि-समितियों का निर्माण किया गया। दो केन्द्रीय बैंक खोले गये। गमनागमन के लिये नई सड़कें और रेलवे का निर्माण हुआ। नये बन्दरगाह बनाये गये और नई नहरें निकाली गईं। व्यापार के क्षेत्र में अधिक स्वतन्त्रता और सुविधा दी गई। चुंगियां कम की गईं। व्यापारिक संघों का निर्माण कराया गया। उत्पादन कार्य में मशीनों का अधिकाधिक प्रयोग किया जाने लगा। १८६० में नेपोलियन ने इंगलैंड के साथ एक व्यापारिक सन्धि की जिससे दोनों देशों के बीच होने वाले व्यापार को सुविधा दी गई।

मजदूर—मजदूरों की दशा को सुधारने के लिए नेपोलियन ने उन्हें अच्छे और सस्ते घर देने की योजना बनाई। उनके लिये बीमा योजना भी लागू की गई। १८६३ के कानून के अनुसार वे अपने संघ बना सकते थे। १८६४ के कानून ने उन्हें हड़ताल करने का भी अधिकार दे दिया। उनके भोजन के लिये सस्ती दुकानों की व्यवस्था

की गई। बचत बैंक (Savings Bank) खोले गये। मजदूरों के काम करने के घण्टे कम किये गये। उन्हें अधिक छुट्टियां मिलने लगीं।

पेरिस—नेपोलियन ने अपनी राजधानी पेरिस को सुन्दर बनाने का यथेष्ट प्रयत्न किया। इसकी योजना बैस हाउसमन ने बनाई थी। इसके अन्तर्गत पेरिस में बहुसंख्यक भव्य-भवनों, हालों, उद्यानों, सड़कों आदि का निर्माण किया गया। १८५५ में उसने पेरिस में एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी की। १८५६ में क्रीमिया युद्ध का अन्त पेरिस में हुये अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन ने किया। इन कार्यों से पेरिस संसार का विशेष आकर्षण बन गया।

धार्मिक नीति—अपने व्यक्तिगत जीवन में नेपोलियन कट्टर धर्मानुयायी न था। परन्तु राजनीतिक कारणों से उसने कैथोलिक धर्म को प्रश्रय दिया। वह संसार में कैथोलिक चर्च का संरक्षक-सा बन गया। इसका विशेष कारण यह था कि फ्रांस में कैथोलिक दल एक शक्तिशाली दल था। नेपोलियन अपनी स्थिति को दृढ़ बनाये रखने के लिए इस दल को सन्तुष्ट रखना चाहता था। इसी से उसने सदैव कैथोलिकों के हित को ध्यान में रखते हुए कार्य किया। चर्च के सभी उत्सवों में राज्य का प्रतिनिधित्व होता था। राज्य चर्च को आर्थिक सहायता देता था।

उसके समय में फ्राँस की अधिकांश शिक्षा कैथोलिक स्कूलों में होती थी। विश्वविद्यालयों और सार्वजनिक विद्यालयों में भी पादरियों का प्रभाव बढ़ाया गया। विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। कैथोलिकों के धर्माध्यक्ष पोप के हित को ध्यान में रखते हुए नेपोलियन ने इटली में हस्तक्षेप किया और रोम के गण-तन्त्र को नष्ट करके वहां पोप को पुनः प्रतिष्ठित कर दिया। कैथोलिक पादरियों के पक्ष को लेकर उसने क्रीमिया का युद्ध लड़ा।

एकतन्त्रवादी नीति—१८६० तक नेपोलियन फ्रांस में विशेष शक्तिशाली रहा। इस समय तक उसने घोर एकतन्त्रवादी शासन-पद्धति स्थापित की थी। १८५८ में उसने एक कानून पास कराया था। इसके अनुसार निर्वाचन के पूर्व प्रत्येक उम्मीदवार को सम्राट्-भक्ति की शपथ लेनी पड़ती थी। निर्वाचन निष्पक्ष न था। 'सरकारी' उम्मीदवारों का निर्वाचन-व्यय नेपोलियन देता था। घूस, प्रलोभन, भय और पद देकर विरोधी सदस्य सरकार के पक्ष में किये जाते थे। राज्य में गुप्तचर विभाग संदिग्ध व्यक्तियों के पीछे पड़ा रहता था। राजनीतिक अपराधी बिना मुकदमा चलाये अल्जीरिया में निर्वासित कर दिये जाते थे। प्रेस और भाषण की कोई स्वतन्त्रता न थी।

परन्तु १८६० के पश्चात् नेपोलियन का विरोध बढ़ने लगा। विरोधियों को सन्तुष्ट करने के लिये उसने उसी वर्ष संविधान में परिवर्तन किया। परिवर्तन की आवश्यकता को अनुभव करते हुए मजाक के रूप में नेपोलियन ने स्वयं कहा था—

'How can you expect my Government to go on? The Empress is a Legitimist; Morny is an Orleanist; Prince Napolean is a Republican; I am a Socialist Only Persigny is an Imperialist—and he is mad.'

परिवर्तन के अनुसार अब सीनेट और व्यवस्थापिका सभा (Legislative Body) सरकारी नीति की आलोचना कर सकते थे। राजा तथा राजमन्त्री अब धारा-सभाओं को समय-समय पर सूचना देने लगे। धारा सभाओं की कार्यवाही अब प्रकाशित भी की जाने लगी।

फिर भी विरोध बढ़ता गया। १८६३ के निर्वाचन में विरोधी बहुत बड़ी संख्या में निर्वाचित हुये। इनमें गैम्बेटा, थिये, सिमाँ और फेरी विशेष उल्लेखनीय हैं।

१८६७ में नेपोलियन ने कुछ और भी सुधार किए। अब मन्त्री धारा सभाओं में बैठने लगे और अपने कार्यों को समझाने लगे। प्रेस को कुछ स्वतन्त्रता दे दी गई तथा सार्वजनिक सभाएँ करने का भी अधिकार दे दिया गया।

१८६९ के निर्वाचन में विरोधी दल और भी अधिक बड़ी संख्या में सफल हुआ। नेपोलियन ने ओलीविअर (Ollivier) को मन्त्रिमन्डल बनाने के लिये आमन्त्रित किया। ओलीविअर उदार विचारों का नेता था। उसने देश को नया संविधान दिया। इसके अन्तर्गत धारा सभाओं के अधिकार बढ़ा दिये गये। उन्हें आलोचना का पूरा अधिकार दे दिया गया। अर्थ-सम्बन्धी सभी विषय उनके अधीन कर दिये गये। वे बहुमत से कोई भी कानून बना सकती थीं। अपने नवीन संविधान के विषय में ओलीविअर ने कहा था कि १७८९ के पश्चात् उसका संविधान सबसे अधिक उदार था।[1]

अपने विरोधियों को सन्तुष्ट करने के लिये १८६९ में नेपोलियन ने नवीन सुधारों की घोषणा की जिसकी रूप-रेखा निम्नलिखित थी—

(१) प्रत्येक क्षेत्र में स्वायत्त शासन की स्थापना की जायेगी। सभी प्रादेशिक लोक-समितियों (जैसे कम्यून, कैण्टन आदि) के सदस्य और पदाधिकारी निर्वाचित होंगे।

(२) गांवों में भी बचत-बैंकों (Savings Banks) की स्थापना होगी।

(३) निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा का विस्तार होगा।

(४) मजदूरों की स्थिति को सुधारने के लिये मिलों और फैक्टरियों पर नियन्त्रण स्थापित किया जायेगा।

परन्तु १८७० में सेडन की पराजय के परिणामस्वरूप साम्राज्य का पतन हो गया और ये सुधार कार्यान्वित न किये जा सके।

विदेशी-नीति

नेपोलियन तृतीय की विदेश नीति—नेपोलियन तृतीय फ्राँस को एक शक्तिशाली देश देखना चाहता था। परन्तु अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसके पास कोई सुनिश्चित योजना न थी। बिस्मार्क ने एक बार कहा था—'नेपोलियन तृतीय युद्ध करना चाहता है, परन्तु उसके मस्तिष्क में युद्ध का ठीक-ठीक नक्शा नहीं है। वह चाहता था कि लुई फिलिप की भाँति उसका पतन न हो।' वह अपने वंश की नींव दृढ़ करना चाहता था और यह कार्य किसी गौरवपूर्ण विजय किये बिना

1. 'The most truly liberal Constitution which France has enjoyed since 1789.'

होना असम्भव था। इस प्रकार एक ओर तो वह युद्ध के लिए तैयार था तथा दूसरी ओर वह यह भी जानता था कि यदि उसने युद्ध किया तो कहीं यूरोप के समस्त राष्ट्र मिलकर उसके विरोधी न बन जायें? इस प्रकार उसकी स्थिति बहुत नाजुक थी। अतः वह अवसर पाकर लाभ उठाने की ताक में था। इसके बावजूद भी उसके निर्णय अस्थायी थे। वह कल्पनाओं की दुनिया में उड़ा करता था। प्रो० फिशर के शब्दों में वह परस्पर-विरोधी गुणों का सम्मिश्रण था। पामर्स्टन के शब्दों में उसका मस्तिष्क योजनाओं से इस प्रकार भरा हुआ था, जिस प्रकार कि बिल खरगोशों से भरे हुये हैं।[1] अपने इन्हीं अस्थिर विचारों पर उसकी विदेश नीति आधारित थी। जैसे-जैसे उसकी राजनीतिक योजनायें प्रकट होने लगीं, वैसे ही वैसे जनता में असंतोष बढ़ने लगा तथा राजनीतिक सत्ता उसके हाथ से निकलने लगी।

इटली—१८४८ में फ्रांस में राज-क्रांति हो गई। इटली पर भी उसका प्रभाव पड़ा। इटली में मैजिनी ने रोम के पोप के विरुद्ध विद्रोह कर दिया तथा अपने स्वतन्त्र शासन की स्थापना की। इटली में इस क्रान्ति का संचालन कार्बोनारी नामक एक संस्था कर रही थी। नेपोलियन इस संस्था का सदस्य रह चुका था। अतः इटली को यह आशा थी कि वह गणतन्त्रवादियों की सहायता करेगा, परन्तु कैथोलिकों के संतुष्ट करने के हेतु उसने गणतन्त्रवादियों की कोई सहायता न की। उसकी सेना ने इस विद्रोह का दमन कर दिया।

क्रीमिया युद्ध (१८५४-५६)—नेपोलियन तृतीय ने फ्रांस की कैथोलिक जनता की सहानुभूति प्राप्त कर जेरुसलम के पवित्र तीर्थ स्थानों पर फ्राँस का संरक्षण बतलाया। रूस इन प्रदेशों को अपने संरक्षण में मानता था। इस छोटी सी बात को लेकर क्रीमिया का भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। यह युद्ध दो वर्ष तक चलता रहा। इस युद्ध में ५ लाख व्यक्ति मारे गए तथा अपार सम्पत्ति का विनाश हुआ। इङ्गलैंड ने भी इस युद्ध में फ्राँस की ओर से भाग लिया था। अतः रूस पराजित हो गया। अन्त में १८५६ में पेरिस की सन्धि हुई। परन्तु यह सन्धि अस्थायी सिद्ध हुई। लिप्सन महोदय के शब्दों में सन्धि-पत्र की स्याही सूखने से पूर्व ही इस सन्धि की धाराओं का उल्लंघन होने लगा। अतः इस युद्ध से पूर्वी समस्या का कोई समाधान न हो सका। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि इस युद्ध के कारण अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में नेपोलियन तृतीय की अत्यधिक प्रतिष्ठा बढ़ गई। युद्धोपरान्त फ्रांस की राजधानी पेरिस में ही सन्धि हुई। नेपोलियन तृतीय ने ही उसकी अध्यक्षता की। नेपोलियन की भारी सफलता के फलस्वरूप फ्रांस का चर्च वर्ग संतुष्ट हो गया। उसने नेपोलियन महान् की मास्को-पराजय का बदला ले लिया। निकोलस प्रथम नेपोलियन तृतीय को राजवंशी नहीं मानता था। अतः वह उसको My brother न कहकर My good friend कहता था। नेपोलियन तृतीय इसको अपना अपमान समझता था। अतः

1. 'His head is as full of schemes as a warren is full of rabbits.'

उसने अपने इस अपमान का बदला भी ले लिया। उसकी इन सफलताओं से फ्रांस तथा यूरोप चकाचौंध हो गया। इस प्रकार उसने अपने इन कार्यों से फ्रांस के पुराने घावों की मरहम-पट्टी की। इस समय उसका यश अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया था।

इटली में पुनः हस्तक्षेप—इटली में आन्दोलन बराबर चलता रहा। इटली के राष्ट्रवादी नेताओं का उद्देश्य किसी शक्तिशाली राष्ट्र से मित्रता कर अपने देश का एकीकरण करना था। इसलिए बिना किसी हित के इटली ने क्रीमिया युद्ध में भाग लिया। इसलिये पेरिस के सन्धि-सम्मेलन में उसको भी बुलाया गया। इस प्रकार उसको सब देशों के सम्मुख अपनी कठिनाइयां प्रस्तुत करने का अवसर मिल गया। इसके साथ-साथ इटली के राजा विक्टर इमानुएल प्रथम की पुत्री का विवाह नेपोलियन तृतीय के भाई जेरोम के साथ कर दिया गया।

कैवूर नेपोलियन तृतीय से प्लोम्बिए नामक स्थान पर मिला। उसने लोम्बार्डी तथा वेनेशिया से आस्ट्रिया को भगाने के लिये नेपोलियन तृतीय की सहायता मांगी। नेपोलियन ने उसकी इस मांग को स्वीकार कर लिया; परन्तु इसके बदले में उसने सेवाय का प्रदेश मांगा और यदि हो सके तो नाइस का भी प्रदेश भी उसको दे दिया जाय। यह समझौता इतिहास में प्लोम्बिए की सन्धि के नाम से प्रख्यात है।

नेपोलियन तृतीय की सहायता का आश्वासन पाकर सार्डिनिया पीडमाण्ट ने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस अवसर पर अपनी सेना-सहित नेपोलियन तृतीय स्वयं युद्ध क्षेत्र में आया। दोनों ने मिल कर लोम्बार्डी से आस्ट्रिया को भगा दिया। परन्तु इसी मध्य नेपोलियन ने प्लोम्बिए की सन्धि तोड़ कर आस्ट्रिया के साथ विलाफ्रेन्का की सन्धि कर ली तथा युद्ध से हाथ खींच लिया। नेपोलियन द्वारा मध्य में ही युद्ध से हाथ खींच लेने के निम्नलिखित कारण बतलाये जा सकते हैं :—

(१) फ्रांस की कैथोथिक पार्टी ने नेपोलियन् तृतीय के इस कार्य का विरोध किया, क्योंकि इटली का एकीकरण होने पर पोप के राज्य को सकट में पड़ जाने की सम्भावना थी।

(२) एकीकरण के फलस्वरूप इटली की शक्ति में बहुत वृद्धि हो जायगी तथा फ्रांस की सीमा पर एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना हो जायगी। यह फ्रांस की सुरक्षा के लिये भयंकर खतरा हो सकता था।

(३) प्रशा से भी फ्रांस को भय था, क्योंकि प्रशा में बिस्मार्क के नेतृत्व में सैनिकवादी नीति का आश्रय लिया जा रहा था। वह राइन नदी के समीप के प्रदेशों पर अधिकार करने की चेष्टा कर रहा था। यह कार्य नेपोलियन की इच्छा के विरोध में था।

(४) लोम्बार्डी पर अधिकार करने के समय फ्रांस को अपार जन-धन की हानि उठानी पड़ी थी। वेनेशिया पर अधिकार करना उससे भी कठिन था। भावी युद्ध में उसको पराजय का भय था।

(५) फ्रांसीसी सेना में हैजा फैल रहा था। यातायात व्यवस्था खराब हो जाने के कारण फ्रांस से रसद नहीं आ रही थी।

नेपोलियन के युद्ध से हाथ खींचने के सम्बन्ध में कैवूर ने कहा था—'मौसम गर्म होने के कारण वह थक गया था।'[1] इस सम्बन्ध में नेपोलियन ने स्वयं कहा था—'इटली की स्वतन्त्रता की सुरक्षा के लिये यूरोप के राष्ट्रों की इच्छा के विरुद्ध भी मैंने युद्ध किया। लेकिन जब मैंने अपने देश की सुरक्षा खतरे में देखी तो शान्ति स्थापित कर दी।[2]

इस प्रकार युद्ध के मध्य में ही इटली का साथ छोड़ कर नेपोलियन तृतीय ने अपने द्वारा की गई प्लाम्बिए की सन्धि को भंग कर दिया। उसके इस विश्वासघात से उसकी बहुत बदनामी हुई तथा इटली उससे नाराज हो गया; परन्तु फिशर महोदय ने नेपोलियन के इस कार्य की बहुत प्रशंसा की है। वे उसके इस कार्य को उसके जीवन का सबसे अधिक बुद्धिमानी का कार्य बतलाते हैं।[3] यदि वह युद्ध बराबर जारी रखता तो हो सकता था कि १८५९ में ही उसका पतन हो जाता।

विलाफ्रेन्का की सन्धि के अनुसार निम्नलिखित निर्णय किये गये थे :—

(१) लोम्बार्डी पर सार्डीनिया पीडमाण्ट का अधिकार स्वीकार कर लिया गया।

(२) वेनेशिया पर आस्ट्रिया का अधिकार स्वीकार कर लिया गया।

(३) युद्ध काल में पर्मा, मोडेना तथा टस्कनी आदि राज्यों में विद्रोह हो गये तथा इन राज्यों ने अपने राजाओं से सिंहासन छीन कर गणतन्त्रात्मक सरकार की स्थापना कर ली थी। परन्तु इस सन्धि के अनुसार उन राजाओं को पुनः उसके राज्य वापस करा दिये गये।

उपर्युक्त तीनों धारायें पूर्व स्थिति (Status quo) बनाये रखने के सम्बन्ध में थीं।

(४) इटली के समस्त राज्यों को मिला कर एक संघ बनाया जायगा तथा पोप इस संघ का अध्यक्ष होगा।

उधर पर्मा, मोडेना तथा टस्कनी आदि राज्यों में बराबर विद्रोह चलते रहे तथा वे स्वायत्त शासन की मांग करते रहे। परन्तु यह कार्य विएना-कांग्रेस के निर्णय के विरोध में था। इसी समय कैवूर ने बिना किसी शर्त के सेवाय तथा नाइस के

1. 'He was tired, the weather was hot.'

2. 'To secure Italian independence I made war against the wish of Europe; as soon as the future of my country seemed to be in danger I made peace.'

3. 'Yet of all the actions of his career there have been few more judicious than Napoleon's sudden decision to close the Italian campaign after Solferino.'

प्रदेश नेपोलियन तृतीय को दे दिये। इन प्रान्तों की प्राप्ति से वह बहुत प्रसन्न हुआ। अतः अब उसने पर्मा, मोडेना तथा टस्कनी आदि राज्य में जनमत-संग्रह की बात का अनुमोदन किया। फलतः जनमत-संग्रह के अनुसार उक्त राज्य सार्डीनिया-पीडमाण्ट के साथ मिला दिये गये।

नेपोलियन का विरोध—नेपोलियन तृतीय के इन कार्यों के परिणामस्वरूप इटली का आंशिक एकीकरण हो गया। यह उसके भावी एकीकरण की भूमिका थी। भविष्य में इटली के पूर्ण एकीकरण हो जाने के पर पोप के राज्य का खतरे में पड़ जाना स्वाभाविक था।

नेपोलियन तृतीय ने गणतन्त्रवादी मैजिनी तथा गैरीबाल्डी के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही की थी। इससे गणतन्त्रवादी भी नेपोलियन के विरोधी हो गये।

बूर्बा वंश के विरुद्ध नेपिल्स तथा सिसली में विद्रोह हो गया तथा ये दोनों राज्य इटली के साथ मिल गये। इस कार्य में नेपोलियन ने भी इन राज्यों का साथ दिया था। इससे बूर्बां दल तथा यूरोप के अन्य राजतन्त्रवादी राष्ट्र नेपोलियन के विरोधी हो गये।

नेपोलियन तृतीय ने विएना-कांग्रेस के निर्णय का उल्लंघन कर नाइस तथा सेवाय पर अधिकार कर लिया था। उसके सीमा-विस्तार-सम्बन्धी इस कार्य को देखकर यूरोप के राष्ट्र उसके साम्राज्यवादी स्वरूप को समझने लगे। इङ्गलैंड उसका घोर विरोधी हो गया। सर्वत्र ऐसा कहा जाने लगा कि अपने उदात्त विचारों की ओट में वह अपने साम्राज्य का विस्तार कर रहा है।

पोलैण्ड—१८६३ में पोलैण्ड ने रूस के विरुद्ध विद्रोह कर दिया, क्योंकि वह स्वतन्त्रता चाहता था। रूस उसकी स्वतन्त्रता की मांग का विरोधी था। वह उसका रूसीकरण करना चाहता था। अतः रूस की सरकार ने दो हजार पोल्स को गिरफ्तार कर लिया। फलतः वहाँ विद्रोह हो गया। नेपोलियन पहले उनको सहायता का आश्वासन दे चुका था; परन्तु इस अवसर पर उसने उनकी कोई सहायता न की। अतः रूस के सम्राट् अलेक्जेण्डर द्वितीय ने बिस्मार्क का सहयोग प्राप्त कर पोल्स का बुरी तरह दमन कर दिया। इससे पोल्स नेपोलियन के शत्रु हो गये तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उसका विश्वास समाप्त हो गया।

टामस महोदय के अनुसार नेपोलियन तृतीय ने इस अवसर पर सब दलों को अपने पक्ष में करने का सुअवसर गंवा दिया।[1]

नेपोलियन तृतीय ने स्वयं इस सम्बन्ध में कहा था—'मुझे युद्ध की भी इच्छा

1. 'The Polish question gave Napoleon a unique opportunity of ralling all parties. The Catholics considered that nation a martyr to its faith; for democrates it's independence was a dogma; while even conservatives remembered the historic role of Poland as the ally of France against Austria.' —Thomas

नहीं है और न मुझे शान्ति की इच्छा है।'[1] दूसरे शब्दों में उसके कहने का अर्थ यह था कि वह पोलैंड की स्वतन्त्रता के पक्ष में था। पौलैण्ड की सहायता करने पर रूस तथा प्रशा से उसका युद्ध अनिवार्य था।

मैक्सिको की दुर्घटना—मैक्सिको में सिंहासन प्राप्त करने के लिए गणतन्त्र-वादी तथा राजतन्त्रवादी पार्टी में संघर्ष चल रहा था। कैथोलिक राजतन्त्रवादियों को सहायता दे रहे थे। इस संघर्ष में गणतन्त्रवादियों को सफलता प्राप्त हुई तथा उनका नेता बेनिटो ज्वारेज (Benito Juareg) राष्ट्रपति बनाया गया। उसने उन सब ऋणों को अदा करना अस्वीकार कर दिया जो कि मैक्सिको पर इंगलैंड, फ्राँस तथा स्पेन के थे। इस समय अमेरिका में गृह-युद्ध चल रहा था। अतः नेपोलियन तृतीय ने इस सुअवसर का लाभ उठाना चाहा। उसने इस सरकार को मान्यता प्रदान नहीं की। उसने अपने एक उम्मीदवार मैक्सीमिलियन को मैक्सिको का राजा बनाना चाहा। मैक्सीमिलियन आस्ट्रिया के सम्राट् जोसेफ का भाई तथा बेल्जियम के सम्राट् लियोपोल्ड का दामाद था। उसको मैक्सिको का राजा बनाने में नेपोलियन तृतीय को निम्नलिखित लाभ प्रतीत हो रहे थे :—

(१) मैक्सीमिलियन कट्टर कैथोलिक था। अतः इसके मैक्सिको के राजा बन जाने पर फ्राँस की कैथोलिक जनता प्रसन्न हो जाती।

(२) मैक्सीमिलियन आस्ट्रिया के सम्राट् का भाई तथा बेल्जियम के सम्राट् का दामाद था। इससे फ्राँस को आस्ट्रिया तथा बेल्जियम दोनों देशों की सहानुभूति प्राप्त हो जाती।

(३) मैक्सिको में प्रभाव स्थापित हो जाने पर फ्राँस के व्यापार की भी उन्नति हो जाती। इससे फ्राँस का व्यापारी वर्ग नेपोलियन का समर्थक हो सकता था।

(४) मैक्सिको के नये राष्ट्रपति ने यूरोप के फ्राँस, इंगलैंड तथा स्पेन आदि देशों के ऋणों को देना अस्वीकार कर दिया था। इससे उस डूबी हुई पूंजी का उद्धार किया जा सकता था। इससे फ्राँस के पूँजीपति वर्ग की सहानुभूति नेपोलियन तृतीय के साथ हो जाती।

जनवरी १८६२ में नेपोलियन तृतीय के कहने से इंगलैंड तथा स्पेन ने भी उसकी सहायता की तथा तीनों ने मिलकर मैक्सिको पर आक्रमण कर दिया। ज्वारेज अकेला इन तीनों का सामना नहीं कर सकता था। अतः उसने उक्त देशों के ऋण का भुगतान करने का आश्वासन दिया तथा सूद अदा कर दिया। इस पर इंगलैंड तथा स्पेन की सेनायें वापस आ गईं; परन्तु नेपोलियन तृतीय वहीं डटा रहा तथा अन्त में मैक्सीमिलियन को मैक्सिको के सिंहासन पर बैठा दिया गया। यह उसकी बहुत भारी सफलता थी; परन्तु यह अस्थायी सिद्ध हुई और कुछ ही समय पश्चात् उसको इस सम्बन्ध में भारी असफलता उठानी पड़ी। १८६५ में ज्वारेज ने पुनः

1. 'I do not desire war, but neither do I desire peace.'

विद्रोह कर दिया। इस समय तक अमेरिका का गृह-युद्ध समाप्त हो चुका था। अतः अमेरिका ने नेपोलिय तृतीय पर यह जोर डाला कि वह 'मुनरो सिद्धान्त'[1] के अनुसार मैक्सिको से अपनी सेनायें हटा ले। अतः विवश होकर नेपोलियन तृतीय को वहाँ से अपनी सेनायें हटानी पड़ीं। मैक्सीमिलियन को उसके भाग्य पर अकेला छोड़ दिया गया। वह ज्वारेज के विद्रोह को दबाने में असमर्थ रहा और उसके गोली मार दी गई।

इससे नेपोलियन तृतीय की भारी बदनामी हुई। उसकी अजेयता नष्ट हो गई। आस्ट्रिया तथा बेल्जियम के सम्राट् उसके घोर विरोधी हो गये। इस युद्ध में जो करोड़ों रुपयों का व्यय हुआ था, वह व्यर्थ गया। ऐसा कहा जाता है कि जिस प्रकार नेपोलियन महान् के लिये मास्को की दुर्घटना उसके पतन का कारण बनी, उसी प्रकार मैक्सिको की दुर्घटना उसके पतन का कारण बनी।

स्लेजविग-होल्सटीन का प्रश्न—बिस्मार्क प्रशा का एकीकरण कर रहा था। अतः वह स्लेजविंग तथा होल्सटीन के प्रदेशों पर अधिकार करना चाहता था। उधर डेन्मार्क भी इन प्रदेशों पर दृष्टि लगाए हुए था। इस सम्बन्ध में इङ्गलैंड प्रशा का विरोधी था। वह इस समस्या को अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न बनाना चाहता था। अतः उसने रूस तथा फ्रांस से सहायता की याचना की। इङ्गलैंड ने कहा कि यदि प्रशा उक्त तीनों देशों की बातों को न माने तो उस पर आक्रमण कर देना चाहिए। रूस इस सम्बन्ध में उदासीन रहा, क्योंकि पोलैण्ड के विद्रोह के दमन में प्रशा उसकी सहायता कर चुका था। नेपोलियन ने इंगलैंड की बात पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वह भी पोल्स को सहायता का आश्वासन दे चुका था। परन्तु सहायता देने के समय वह सफल न हो सका था। अतः फ्राँस ने इस मामले को तय करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन की माँग की। परन्तु इंगलैंड ने इसको अस्वीकार कर दिया। वास्तव में नेपोलियस इस समय युद्ध के लिए तैयार न था, क्योंकि मैक्सिको की दुर्घटना में उसकी शक्ति का बहुत ह्रास हो गया था। फलतः प्रशा ने मनमाने ढंग से इस प्रश्न का निर्णय किया और अन्त में बिस्मार्क ने इन प्रदेशों को अपने राज्य में मिला लिया। नेपोलियन तृतीय की इस सम्बन्ध में कोई राय नहीं ली गई। अतः यह उसकी कूटनीतिक पराजय थी।

सडोवा का युद्ध (१८६६)—प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी का एकीकरण हो रहा

---

1. 'सन् १८२३ में अमेरिका के राष्ट्रपति मुनरो ने एक घोषणा की थी, जो इतिहास में उसी के नाम से, मुनरो सिद्धान्त (Monroe doctrine) के नाम से प्रख्यात है। वह घोषणा इस प्रकार है—अमेरिका अमेरिका वालों के लिए है। हम उत्तरी अथवा दक्षिणी अमेरिका में किसी का भी हस्तक्षेप सहन नहीं करेंगे।...... हमने आज तक कभी भी यूरोप के मामलों में हस्तक्षेप नहीं किया है और न हस्तक्षेप करने का हमारा विचार है। अतः यूरोप के राष्ट्रों को भी चाहिए कि वे अमेरिका के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप न करें। यदि वे अमेरिका के मामलों में हस्तक्षेप करेंगे तो हम अपनी पूरी शक्ति के साथ उनका विरोध करेंगे।

था । आस्ट्रिया इस एकीकरण में बाधक था । अतः १८६६ में प्रशा तथा आस्ट्रिया के मध्य सेडोवा का युद्ध हुआ । नेपोलियन तृतीय को इसका विरोध करना चाहिए था, क्योंकि जर्मनी के एकीकरण हो जाने से फ्रांस की सीमा पर एक शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण हो जाता ।

ब्यारिज में (Biarriz) बिस्मार्क तथा नेपोलियन तृतीय ने एक सन्धि कर ली थी। इसके अनुसार बिस्मार्क ने नेपोलियन को युद्धोपरान्त कुछ प्रदेश देने का वायदा किया। इस प्रस्ताव में यह तय नहीं किया था कि कौन से प्रदेश नेपोलियन तृतीय को दिए जायेंगे । अन्त में आस्ट्रिया इस युद्ध में पराजित हो गया । नेपोलियन तृतीय यह सोचता था कि इन दोनों शक्तियों में दीर्घकालीन युद्ध होगा । अन्त में इनमें से कोई न कोई हमसे सहायता के लिये अवश्य ही याचना करेगा । परन्तु सात सप्ताह के अन्दर ही आस्ट्रिया इस युद्ध में सरलतापूर्वक पराजित कर दिया गया । अतः यह युद्ध इतिहास में सात सप्ताह के युद्ध (Seven Weeks War) के नाम से प्रख्यात है ।

यदि इस अवसर पर नेपोलियन तृतीय आस्ट्रिया की सहायता करता तो आस्ट्रिया कभी भी पराजित नहीं होता और फ्राँस की सीमा पर एक शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण न होता । इसलिए यह ठीक ही कहा जाता है कि सडोवा के युद्ध में आस्ट्रिया नहीं अपितु फ्रांस पराजित हुआ था ।[1]

युद्ध समाप्त हो जाने पर नेपोलियन तृतीय ने बिस्मार्क से मेज तथा पैलेटीनेट (Palatinate) के प्रदेश मांगे । बिस्मार्क ने इस बात को समाचारपत्रों में प्रकाशित करा दिया । इससे नेपोलियन साम्राज्यवादी सिद्ध हो गया । उसकी यह मांग विएना कांग्रेस के निर्णयों के विरोध में थी । अतः इंगलैंड ने भी उसकी इस मांग का घोर विरोध किया । अन्त में नेपोलियन तृतीय को अपने इस प्रस्ताव को वापस लेना पड़ा । उसके इन कार्यों से उसका विरोध उत्तरोत्तर बढ़ने लगा, जो उसके पतन का प्रमुख कारण बना ।

सेडन का युद्ध—आस्ट्रिया के पराजित होने पर प्रशा की शक्ति में बहुत वृद्धि हो गई थी । इससे फ्रांस को प्रशा से बहुत भय हो गया था । यदि इस अवसर पर नेपोलियन आस्ट्रिया की सहायता करता तो प्रशा उसको कभी पराजित नहीं कर सकता था और प्रशा की शक्ति में कभी भी इतनी वृद्धि नहीं हो सकती थी। नेपोलियन की लापरवाही से फ्रांस की जनता बहुत नाराज थी । अतः नेपोलियन जनता को प्रसन्न करने के लिए युद्ध चाहता था । उधर बिस्मार्क भी युद्ध चाहता था, क्योंकि अभी दक्षिणी जर्मनी का एकीकरण शेष था तथा प्रशा की सैनिक तैयारियाँ पूर्ण हो चुकी थीं । नेपोलियन दक्षिण के प्रदेशों को प्राप्त करना चाहता था । अतः ये बिस्मार्क के साथ मिल गये । ऐसी परिस्थिति में प्रशा तथा फ्रांस में युद्ध होना स्वाभाविक हो गया । युद्ध का तात्कालिक कारण स्पेन का प्रश्न था । वहाँ की रानी आइजाबेला के विरोध में विद्रोह हो गया । वह भाग कर फ्रांस में आ गई । स्पेन के

1. 'It was France who was defeated at Sadowa.'

नेताओं ने प्रशा के राजा के एक सम्बन्धी लियोपोल्ड को स्पेन का राजा बनाने का निश्चय किया। नेपोलियन ने इसका विरोध किया। फलतः प्रशा ने अपना प्रतिनिधि हटा लिया। नेपोलियन को इससे संतोष नहीं हुआ। उसने प्रशा में स्थित अपने राजदूत को लिखा कि वह प्रशा के राजा से यह वचन ले कि वह भविष्य में कभी भी अपने किसी सम्बन्धी को स्पेन के सिंहासन पर बैठाने की चेष्टा न करे। फ्रांस का राजदूत बेनेडेटी प्रशा के राजा से इस सम्बन्ध में विचार करने के लिये एम्स नामक स्थान पर मिला। उसने पुनः यह आश्वासन दिया कि वह लियोपोल्ड को स्पेन के सिंहासन पर नहीं बैठायेगा। परन्तु उसने इस सम्बन्ध में भविष्य के लिये कोई आश्वासन देने से इंकार कर दिया। राजा ने इस सारी सूचना को एक तार द्वारा बिस्मार्क के पास भेजा। बिस्मार्क ने तार की भाषा में कुछ परिवर्तन कर प्रकाशित किया। इससे प्रशा की जनता ने यह समझा कि उसके राजा का अपमान हुआ है तथा फ्रांस की जनता ने यह समझा कि फ्रांस के राजदूत का अपमान हुआ है। अतः दोनों ओर से युद्ध की भारी तैयारियाँ होने लगीं। अन्त में जुलाई १८७० को फ्रांस ने प्रशा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। फ्रांस को अपनी विजय की पूर्ण सम्भावना थी। परन्तु इस युद्ध में उसको भारी असफलता मिली। उसके सत्रह हजार सैनिक युद्ध में काम आये तथा नेपोलियन तृतीय को ८३ हजार सेना सहित प्रशा के जनरल मोल्टके के सम्मुख आत्म-समर्पण करना पड़ा। जब नेपोलियन की पराजय का समाचार पेरिस पहुंचा तो फ्रांस में तृतीय गणतन्त्र की घोषणा कर दी गई।

इस प्रकार नेपोलियन तृतीय की विदेशी नीति पूर्णतया असफल रही। उसे अपमान का कड़वा घूंट पीकर फ्रांस के सिंहासन का परित्याग करना पड़ा तथा अपने जीवन के अन्तिम दिन व्यतीत करने के लिए इङ्गलैंड में जाने के लिये विवश होना पड़ा।

नेपोलियन तृतीय के पतन के कारण—नेपोलियन तृतीय एक महत्वाकांक्षी सम्राट् था। उसने शासन में अनेक सुधार किये। उसके समय में फ्रांस के व्यापार की अभूतपूर्व उन्नति हुई। उसने फ्रांस के साम्राज्य का भी विस्तार किया; परन्तु फिर भी बहुत शीघ्र उसका पतन हो गया। उसके पतन के निम्नलिखित कारण थे—

(१) नेपोलियन तृतीय एक निरंकुश सम्राट् था। वह अपने वंश की स्थिति सुदृढ़ करना चाहता था। उसने जो सुधार किये जनता उनसे सन्तुष्ट न हो सकी। वह बराबर सुधारों के लिये आन्दोलन करती रही।

(२) फ्रांस के सभी दल तथा पार्टियाँ उसके विरोधी थे। गणतन्त्रवादी उसकी निरंकुशता का अन्त करना चाहते थे। कट्टर राजतन्त्रवादी चार्ल्स दशम अथवा लुई फिलिप के किसी वंशज को सिंहासन देना चाहते थे। व्यापारी तथा पादरी भी उसके विरोधी थे।

(३) उसने अपनी विदेश नीति में अनेक भयंकर भूलें की थीं। इससे अनेक राष्ट्र उसके विरोधी हो गये और अवसर पड़ने पर उन्होंने उसका साथ नहीं दिया

यूरोप के राष्ट्रों के अधिकांश विदेश मन्त्री उसको एक खतरनाक आदमी मानने लगे थे। इटली को स्वतन्त्र कराने के सम्बन्ध में नेपोलियन तृतीय ने अधूरे साधनों का आश्रय लिया था। फलतः उसके इस कार्य से कोई भी सन्तुष्ट नहीं हुआ। इटली के एकीकरण से पोप के राज्य को खतरा था। अतः पादरियों ने नेपोलियन का घोर विरोध किया। नाइस तथा सेवाय पर अधिकार करने से इङ्गलैण्ड से भी उसकी कटुता हो गई। सार्डीनिया-पीडमाण्ट से मित्रता करने के कारण आस्ट्रिया उससे अलग हो गया। उसके आक्रमणकारी स्वरूप को देख कर प्रशा भी उससे सशंकित हो गया। १८६२ में पोलैंड में विद्रोह हो गया। नेपोलियन तृतीय ने पोलों को सहायता देने का आश्वासन दिया था; परन्तु रूस ने पोलैंड के विद्रोह का भली प्रकार दमन कर दिया और वह पोलों की कोई सहायता न कर सका। इससे उसकी बहुत बदनामी हुई। इस समय सारा फ्रांस पोलों के साथ सहानुभूति रखता था। यदि वह उनकी सहायता करता तो देश के समस्त दल उसके साथ हो जाते। यह कार्य उसके स्वभाव एवं फ्रांस की जनता की इच्छा के अनुकूल होता। परन्तु इङ्गलैंड तथा आस्ट्रिया के उदासीन हो जाने के कारण नेपोलियन ने पोलों की सहायता न की, केवल मौखिक विरोध ही किया; परन्तु इससे पोलैंड का कोई भला न हो सका और रूस से भी उसकी शत्रुता हो गई। मैक्सिको के अभिमान में भी उसको मुंह की खानी पड़ी। लिप्सन महोदय ने उसके इस कार्य को अस्थिर मस्तिष्क की कल्पना कहा है। अमेरिका के विरोध करने पर उसने फ्रांसीसी सेनायें मैक्सिको से हटा लीं तथा मैक्सीमिलियन को वहाँ अपने भाग्य पर छोड़ दिया। मैक्सिको में विद्रोह हो गया तथा मैक्सीमिलियन की हत्या कर दी गई। इससे नेपोलियन तृतीय की बहुत बदनामी हुई।

(४) प्रारम्भ में नेपोलियन तृतीय को पर्याप्त सफलता मिली; परन्तु कालान्तर में उत्तरोत्तर उसका विरोध बढ़ने लगा। संसद में उसके विरोधियों की संख्या में वृद्धि होने लगी। १८५७ मे संसद में उसके विरोधियों की संख्या ७ थी। १८६३ के चुनावों में उनकी संख्या ३५ हो गई तथा १८६९ में विरोधी सदस्यों की संख्या बढ़ कर ९३ हो गई। बोर्दो, मार्साई तथा लियान्स विरोधी दलों के अड्डे थे। १८७० में नेपोलियन तृतीय ने जनमत लिया। इसमें जनता ने उसी का समर्थन किया; परन्तु फिर भी उसकी स्थिति नाजुक थी। यदि विदेश नीति में उसको सफलता मिलती तो सम्भवतः उसका साम्राज्य पतन से बच जाता। अतः जनमत को अपने पक्ष में करने के लिये १८७० में बिना तैयारी के उसने प्रशा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस युद्ध में उसकी भयंकर पराजय हुई तथा उसका साम्राज्य बालू की दीवार की भांति नष्ट हो गया।

नेपोलियन तृतीय का शासन में उदारता लाने का प्रयास—अपने बढ़ते हुये विरोध को देख कर नेपोलियन तृतीय ने शासन में उदारता लाने का प्रयास किया। उसने शासन में निम्नलिखित महत्वपूर्ण सुधार किये :—

(१) सन् १८५६ में राजनीतिक बन्दियों को मुक्त कर दिया गया। इससे देश का विरोधी दल संगठित हो गया तथा सुधार की मांग बलवती हो गई।

(२) सन् १८६० में प्रेस पर से नियन्त्रण उठा दिया गया। इससे फ्रांस में लगभग १४० पत्रिकायें प्रकाशित होने लगीं।

(३) सन् १८६० में सीनेट और लेजिस्लेटिव असेम्बली को सम्राट् के वार्षिक भाषण (Throne Speech) की आलोचना करने का अधिकार दे दिया गया।

(४) संसद की रिपोर्ट भी प्रकाशित करने की व्यवस्था की गई।

(५) सन् १८६१ में बजट को पृथक्-पृथक् मदों (Sub-sections) में बाँट दिया गया।

(६) सन् १८६७ में मन्त्रियों से प्रश्न पूछने का भी अधिकार दे दिया गया।

सन् १८६३ के आम चुनावों में नेपोलियन तृतीय ने अपना पर्याप्त प्रचार किया था; परन्तु फिर भी पेरिस में उदारवादियों तथा गणतन्त्रवादियों को सफलता प्राप्त हुई। सिमां, थिए, फेरी तथा गैम्बेटा आदि विरोधी दल के नेता भी चुन लिये गये; परन्तु ग्रामों तथा नगरों में राज्याधिकारियों के प्रभाव के परिणामस्वरूप नेपोलियन तृतीय के समर्थक प्रतिनिधियों को ही सफलता प्राप्त हुई। नेपोलियन ने पर्याप्त विचार-विमर्श के पश्चात् निम्नलिखित सुधारों की घोषणा की :—

१. जनता की भाषण तथा लेखन की स्वतन्त्रता में वृद्धि की जायगी।

२. अर्थव्यवस्था पर संसद का पूर्ण नियन्त्रण होगा।

३. पेरिस तथा अन्य बड़े नगरों में स्वायत्त शासन के अधिकारियों का चुनाव होगा। राज्य को अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार न होगा।

४. श्रमिकों को ट्रेड यूनियन बनाने एवं हड़ताल करने का अधिकार दिया जायगा। इसी समय उग्रवादियों ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ (Inter-national Association of Workers) की स्थापना की।

उपर्युक्त सुधार बहुत महत्वपूर्ण थे। इससे इङ्गलैंड की भांति फ्रांस में भी जनतन्त्रात्मक शासन स्थापित हो गया। इस सम्बन्ध में ओलीविए नामक विरोधी नेता ने कहा था—'इन सुधारों के कारण या तो साम्राज्य (Empire) कायम हो गया है, या नष्ट हो गया है। इसका अर्थ है कि यदि सुधारों का आरम्भ है तो साम्राज्य कायम हो गया है और यदि यह सुधारों का आरम्भ तथा अन्त दोनों है तो साम्राज्य का भी अन्त हो गया है।'[1]

सन् १८६७ में नेपोलिय तृतीय ने जनता को कुछ और अधिकार दिये और जनता को पहले से अधिक स्वतन्त्रता दे दी। प्रेस की स्वतन्त्रता में वृद्धि कर दी गई। जनता को पूर्व आज्ञा लिये बिना ही सभा करने का अधिकार दे दिया गया। मन्त्रियों को पार्लियामेन्ट में आकर प्रश्नों का उत्तर देना आवश्यक हो गया।

---

1. 'The Empire is either estalished or doomed, established if this is a beginning, doomed if it is both the beginning and the end.'

१८६९ के आम चुनावों में विरोधी दलों के सदस्यों की संख्या संसद में पहले से भी अधिक बढ़ गई। अब यह दिखाई देने लगा कि सुधारों के बावजूद भी साम्राज्य अधिक दिन तक नहीं चल सकता। विवश होकर नेपोलियन तृतीय ने जनमत-संग्रह कराया। जनमत-संग्रह में जनता की यह राय ली गई थी कि देश में नेपोलियन का राजतन्त्रवादी शासन रहे अथवा गणतन्त्र की स्थापना कर दी जाय। इस अवसर पर अधिकांश जनता ने नेपोलियन तृतीय का समर्थन किया। परन्तु फिर भी संसद के कुछ सदस्य उसका बराबर विरोध करते रहे। औलीविए ने कहा था—'अब केवल एक ही मार्ग शेष है—वह है—गृह नीति की ओर से जनता का ध्यान हटाकर विदेश-नीति की ओर लगाना।' इसी उद्देश्य को सम्मुख रखकर बिना किसी विशेष तैयारी के उसने प्रशा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। सेदा का भयंकर युद्ध हुआ। उसमें प्रथम सितम्बर १८७० को फ्रांस पराजित हो गया। नेपोलियन तृतीय ने अपनी ८३ हजार सेना सहित प्रशा के जनरल मोल्टके के सम्मुख आत्म-समर्पण कर दिया। इस घटना की सूचना पेरिस पहुंचने पर ४ सितम्बर १८७० को गणतन्त्र-वादी नेता गैम्बेटा ने फ्रांस में तृतीय गणतन्त्र (Third Republic) की स्थापना कर दी। एक प्रस्ताव द्वारा यह निश्चित कर दिया गया कि अब फ्रांस के सिंहासन पर नेपोलियन तृतीय अथवा उसके वंशजों का कोई अधिकार नहीं है।

नेपोलियन तृतीय का चरित्र—नेपोलियन तृतीय की स्थिति बहुत नाजुक तथा डांवाडोल थी। १८४९ में उसने घोषणा की थी कि नेपोलियन का नाम स्वयं एक कार्य-क्रम है। सच्चे अर्थों में इस उक्ति को चरितार्थ करने के लिये उसे सुदृढ़ शासन, शक्ति का संचय तथा देश-गौरव की वृद्धि करना था। परन्तु नेपोलियन तृतीय में अपने चचा नेपोलियन महान् की भाँति उच्च सैनिक गुण न थे। नेपोलियन महान् को युद्धों में आनन्द आता था; परन्तु इसके विपरीत नेपोलियन तृतीय युद्धों से भयभीत होता था। वास्तव में वह एक शान्ति-प्रिय व्यक्ति था। इसी से किसी ने कहा है कि वह घोड़े की पीठ पर बैठा हुआ सेन्ट साइमन था।[1] टाम्सन महोदय ने कहा है—'नेपोलियन तृतीय योग्य होते हुये भी नेपोलियन महान् जैसा योग्य न था'[2]

किंग्सलेक तथा विक्टर ह्यूगो आदि विद्वानों ने नेपोलियन तृतीय को अपने लेखों द्वारा बहुत बदनाम करने का प्रयास किया है। विक्टर ह्यूगो व्यंग्य में उसको लघु नेपोलियन (Napoleon, the Little) कहता है। वास्तव में नेपोलियन तृतीय गुण तथा दोष दोनों का सम्मिश्रण था। वह इतना बड़ा महत्वाकांक्षी था कि उन महत्वाकांक्षाओं की कभी भी पूर्ति नहीं की जा सकती थी।

नेपोलियन तृतीय सच्चे अर्थों में अपनी प्रजा की उन्नति करना चाहता था। उसने अपनी प्रजा के सामाजिक तथा आर्थिक विकास करने का बहुत प्रयास किया।

1. 'He was Saint Simon on horse-back.
2. 'He had undoubted talents, but he certainly lacked the genious of Napolcon I.'

वास्तव में वह समय नेपोलियन के लिये परीक्षा-काल था। एक ओर तो उसे देश में शान्ति तथा सुव्यवस्था स्थापित करनी थी तथा दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में फ्राँस का गौरव स्थापित करना था। इस प्रकार उसने दोनों ही नीतियों का आश्रय लिया; परन्तु उसको इसमें सफलता नहीं मिली। इसमें हम नेपोलियन को दोष नहीं दे सकते। इन परस्पर-विरोधी दो आदर्शों को लेकर चलना बहुत कठिन कार्य था। यदि नेपोलियन को इसमें सफलता नहीं मिली तो आश्चर्य ही क्या है?

बिस्मार्क कहता था कि नेपोलियन का हृदय उसके मस्तिष्क से कहीं अच्छा था। लिप्सन महोदय लिखते हैं—उसका शासन-काल कठिनाइयों से परिपूर्ण था; परन्तु उसमें उन कठिनाइयों का सामना करने की योग्यता का सर्वथा अभाव था। वह एक कुशल राजनीतिज्ञ नहीं था। उसमें अनेक सद्‌गुण थे। वह एक उदार व्यक्ति था; परन्तु अपनी अस्थिर योजनाओं एवं कायरता के फलस्वरूप वह कूटनीति के जाल में फंस गया। इसी से कुछ व्यक्ति उसको नीच तथा धोखेबाज ख्याल करने लगे। वास्तव में उसके विचार महान् थे। अपने समय के कुछ व्यक्तियों से वह बहुत ऊँचा था; परन्तु अपने इन उच्च विचारों को क्रियान्वित करने के लिये उसमें साहस न था। अन्त में उसने अपनी सब सद्‌भावनाओं का परित्याग कर दिया। अपने जीवन के प्रारम्भिक चरण में उसको सफलता मिली, परन्तु अन्त में उसका पतन हो गया और उस समय कोई भी उसकी सहायता के लिये नहीं आया। उसके पतन के लिये किसी ने भी आँसू नहीं बहाये।

नेपोलियन तृतीय अवसरवादी था, परन्तु संकट-काल में उचित निर्णय करने की क्षमता का उसमें सर्वथा अभाव था। कठिनाइयों के समय वह जुआरियों की भांति काम करता था। अपनी इसी प्रवृत्ति के वशीभूत हो उसने बिना उचित सैनिक संगठन किये प्रशा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। यदि वह दूरदर्शिता से कार्य करता तो अपनी सैनिक तैयारियां होने तक युद्ध को रोक सकता था। अपनी इस भाग्यवादी तथा जुआरी मनोवृत्ति के कारण ही वह अपने पतन का कारण बना।

नेपोलियन तृतीय का इतिहास में स्थान—नेपोलियन महान् की भाँति नेपोलियन तृतीय भी यूरोप के इतिहास में एक विशेष स्थान रखता है। वास्तव में नेपोलियन के नाम के लिए यूरोप में बहुत आकर्षण था। वह अपने उदार विचारों की आड़ में अपना स्वतन्त्रवादी शासन स्थापित करना चाहता था। उसने एक बार कहा था—'यदि फ्रांस की सीमा पर राइन के स्थान पर समुद्र होता तो फ्राँस में गणतन्त्र सफल हो सकता था, परन्तु अब राइन की स्थल-सीमा होने के कारण वहाँ दूसरे देशों का हस्तक्षेप होता है। अतः फ्रांस में गणतन्त्रात्मक शासन कभी सफल नहीं हो सकता।' उसने यूरोप की राजनीति में सक्रिय भाग लिया था। परन्तु अन्त में उसको असफलता उठानी पड़ी और उसका साम्राज्य बालू की दीवार की भांति बहुत शीघ्र नष्ट हो गया। उसको अपने जीवन का अन्तिम चरण एक शरणार्थी के रूप में इंगलैंड में व्यतीत करना पड़ा। नेपोलियन तृतीय के कार्यों तथा चरित्र के सम्बन्ध में विद्वानों में बहुत अधिक मत-भेद है। कुछ विद्वान् उसको एक सुयोग्य एवं उदार

सम्राट् ख्याल करते हैं तथा कुछ विद्वान उसको एक पागल शासक के नाम से सम्बोधित करते हैं। वास्तव में वह एक पहेली की भांति था। उसका इतिहास में स्थान निर्धारित करना बहुत कठिन है।

वास्तव में उसका चरित्र बहुत आकर्षक था। मैरियट महोदय लिखते हैं कि 'नेपोलियन को अपने उद्देश्य तथा सिद्धान्तों में तनिक भी सन्देह न था। वह कहा करता था कि मेरा ऐसा विश्वास है कि समय-समय पर कुछ व्यक्ति ईश्वर की इच्छानुसार जन्म लेते हैं और उनके हाथों में देश का शासन-सूत्र सौंप दिया जाता है। मुझे पूर्ण आशा है कि मैं उनमें से एक हूं।' हेज (Hayes) महोदय लिखते हैं कि 'तत्कालीन यूरोपीय राजनीतिज्ञों में नेपोलियन तृतीय सबसे महान् था। उसके चरित्र तथा साम्राज्य की कथा १९वीं शताब्दी के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है।'

प्रश्न

१ नेपोलियन तृतीय की वैदेशिक नीति की विवेचना कीजिये।

२ नेपोलियन तृतीय ने अपने समय की बाह्य नीति में क्या भाग लिया ?

३ नेपोलियन तृतीय की विदेश-नीति की विवेचना कीजिये और उसकी असफलता के कारण भी लिखिये।

४ नेपोलियन तृतीय के पतन के कारणों का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

५ नेपोलियन तृतीय ने अपने समय के मामलों में क्या भाग लिया ? क्या उसकी नीति फ्रांस के लिए लाभदायक थी ? क्या उसके कारण उसके वंश का शासन आगे चल सकना असम्भव था।

६ नेपोलियन तृतीय गुणों और दोषों का सम्मिश्रण था। क्या यह कथन उसके चरित्र और व्यक्तित्व का सही मूल्यांकन है ?

७ 'नेपोलियन तृतीय का चरित्र और उसके कार्य ऐतिहासिकों के लिए एक समस्या है।' उसके विषय में अपने विचार दीजिये।

—:०:—

२

पूर्वी समस्या

क्रीमिया-युद्ध के कारण; विभिन्न देशों के दृष्टिकोण; घटनायें; पेरिस की सन्धि; क्रीमिया-युद्ध के परिणाम; इङ्गलैंड का औचित्य; क्रीमिया-युद्ध का मूल्यांकन।

लिप्सन के शब्दों में पूर्वी समस्या सदैव से एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न बना हुआ है। किसी न किसी रूप में गत १२ शताब्दियों से यह यूरोप की राजनीति की पृष्ठ-भूमि बना रहा है। पूर्वी समस्या की पूर्ण व्याख्या पहले की जा चुकी है। क्रीमिया युद्ध से पूर्व की समस्त घटनाओं का पूर्व भाग में हम वर्णन कर चुके हैं। अतः इससे आगे की घटनाओं का यहां उल्लेख यहाँ किया जायगा।

क्रीमिया युद्ध (१८५४–५६)

१८५४ में पैलेस्टाइन के पवित्र स्थानों के सम्बन्ध को लेकर क्रीमिया युद्ध हुआ। झगड़े का कारण यह था कि इन पवित्र स्थानों के संरक्षण का भार लैटिन-मान्कस का हो अथवा ग्रीकमान्क्स का। टर्की के सुलतान ने यह अधिकार लैटिन-मान्क्स को दे दिया था तथा १७४० तक ये स्थान उन्हीं के संरक्षण में रहे। परन्तु कालान्तर में इस ओर उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया। इसलिए इन पवित्र स्थानों के संरक्षण का भार लैटिनमान्क्स के हाथ से निकल गया और यह ग्रीकमान्कस के हाथ में आ गया। यह बहुत मामूली झगड़ा था। इसका समाधान किया जा सकता था, परन्तु फ्रांस और रूस युद्ध के लिए कटिबद्ध थे। अतः यह साधारण-सा झगड़ा एक अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ा बन गया।[1] थिए ने भी इस सम्बन्ध में लिखा है—'A war to give a few wreched monks the key of a grotto.' यह युद्ध क्रीमिया प्रायद्वीप पर लड़ा गया था। अतः यह इतिहास में क्रीमिया युद्ध के नाम से प्रख्यात हुआ।

युद्ध के कारण—कहने के लिये तो क्रीमिया युद्ध का कारण ग्रीक एवं लैटिन मान्क्स का झगड़ा था। परन्तु इसकी पृष्ठ-भूमि में अनेक देशों के परस्पर-विरोधी हित कार्य कर रहे थे। महारानी विक्टोरिया ने इस युद्ध का कारण जार सम्राट् निकोलस प्रथम की स्वार्थपरता बतलाया था।[2] किंग्सलेक महोदय ने इसका कारण नेपोलियन तृतीय की महत्वाकांक्षा बतलाया है। इन दोनों मतों में आंशिक सत्यता है, परन्तु फिर भी इनमें से किसी एक को अथवा दोनों को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा

---

1. 'The question at issue seemed purely on the verge of criminal levity.' —Marriot

2. Due to 'selfishness and ambition of one man (Nicholas I) and his servants.'

सकता। वास्तविकता को जानने के लिए हमें एक निष्पक्ष आलोचना की दृष्टि से प्रत्येक देश के दृष्टिकोण को देख लेना चाहिए—

फ्रांस का दृष्टिकोण—(१) नेपोलियन तृतीय ने जनता के सम्मुख नेपोलियन महान् का आदर्श रक्खा, अर्थात् उसका उद्देश्य भी नेपोलियन महान् की भाँति गौरव (Glory) प्राप्त करना था। वह प्रत्येक अन्तर्राष्ट्रीय झगड़े के समय यह देखा करता था कि इससे फ्राँस का कुछ न कुछ लाभ हो अर्थात् उसे कुछ प्रदेश मिलें और यदि प्रदेश न मिलें तो कम से कम कीर्ति तो मिल ही जाय।

(२) नेपोलियन ने कैथोलिकों की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए पैलेस्टाइन के जेरूसलम के पवित्र स्थानों को फ्राँस के संरक्षण में घोषित किया। परन्तु १७७४ की सन्धि के अनुसार रूस इन पवित्र स्थानों को अपने संरक्षण में मानता था।

(३) १८४० की लन्दन सन्धि के समय जो फ्रांस का अपमान हुआ था, वह उसका बदला लेना चाहता था।

(४) नेपोलियन तृतीय का सिंहासन कैथोलिकों एवं सैनिकों के समर्थन पर आधारित था। अतः वह इन दोनों को सन्तुष्ट करना चाहता था।

(५) निकोलस प्रथम नेपोलियन तृतीय को औद्भिज्ज (upstart) मानता था तथा उसको घृणा की दृष्टि से देखता था। निकोलस सदैव नेपोलियन तृतीय को My brother न कहकर My friend कहता था। इससे नेपोलियन तृतीय निकोलस से मन ही मन बहुत घृणा करता था।

(६) नेपोलियन तृतीय किसी वीरता के कार्य से फ्राँसीसी जनता को चकाचौंध कर देना चाहता था।

(७) इसके साथ-साथ नेपोलियन तृतीय रूस को पराजित कर नेपोलियन महान् की मास्को-पराजय का बदला लेना चाहता था।

रूस का दृष्टिकोण—(१) रूस भी युद्ध चाहता था। वह पीटर महान् के समय से ही ग्रीक कैथोलिक के संरक्षण का भार चाहता था।

(२) रूस, टर्की साम्राज्य का विघटन चाहता था। सन् १८४४ में रूस के जार सम्राट् निकोलस ने ब्रिटेन के विदेश मन्त्री एबर्डीन से तुर्की साम्राज्य को विभाजन के लिये कहा। १८५३ में उसने पुनः इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये थे। उसने ब्रिटिश राजदूत हेमिल्टन सैमूर से कहा था—'हमारे हाथ में एक बीमार आदमी है, जो बहुत बीमार है और उसका रोग असाध्य है। मैं आपसे स्पष्टतया कहना चाहता हूँ कि यह हमारे लिये दुर्भाग्य की बात होगी कि कहीं यह आवश्यक प्रबन्ध किये बिना हमारे हाथ से निकल जाये।[1] रूस ने ब्रिटेन को यह भी आश्वासन दिया कि

1. 'We have on our hands a sick man, a very sick man : it will be, I tell you frankly, a great misfortune if, one of these days, he should ship away from us before all necessary arrangements were made.'

उसे काले सागर में जो अधिकार प्राप्त होंगे उसके बदले में वह ब्रिटेन को मिस्र तथा टर्की में अधिकार देने को तैयार है।

(३) रूस वास्फोरस एवं डार्डेनेलीज पर अधिकार प्राप्त करना चाहता था। स्केलेसी की सन्धि के अनुसार उसने यह अधिकार प्राप्त भी कर लिए, परन्तु १८४१ की लन्दन सन्धि के अनुसार रूस को उक्त सुविधाओं से वंचित कर दिया।

इंगलैंड का दृष्टिकोण—(१) इंगलैंड टर्की साम्राज्य का विघटन नहीं चाहता था। अतः वह प्रत्येक आवश्यकता के समय टर्की की सहायता करता था। रसेल ने कहा था—'यदि हम रूसियों को डेन्यूब में नहीं रोकेंगे तो उन्हें हमें सिन्धु नदी में रोकना पड़ेगा।'[1]

(२) इंगलैंड यह नहीं चाहता था कि पूर्वी समस्या का हल किसी एक देश द्वारा हो, उसकी यह इच्छा थी इस समस्या का समाधान योरप के प्रमुख देशों द्वारा हो।

(३) इस युद्ध का बहुत कुछ उत्तरदायित्व ब्रिटेन के कुस्तुन्तुनिया में स्थित राजदूत लार्ड स्ट्रैफर्ट डि-रेडक्लिफ पर भी है। वह व्यक्तिगत रूप से रूस के सम्राट् का विरोधी था। कारण यह था कि १८३२ में जार निकोलस ने रूस में उसका राजदूत होने का विरोध किया था। टर्की के सुलतान पर उसका बहुत प्रभाव था। अतः उसने टर्की के सुलतान को एड्रियानोपुल की सन्धि तोड़ने की प्रेरणा दी।

अन्य देशों का दृष्टिकोण—(१) आस्ट्रिया अपने घरेलू मामलों में व्यस्त था। उस पर १८४८ की क्रान्ति का भारी प्रभाव पड़ा था। उसके अनेक प्रान्त स्वतन्त्र होने के लिये प्रयत्न कर रहे थे। उनमें हंगरी का नाम उल्लेखनीय है। यदि निकोलस प्रथम आस्ट्रिया की सहायता न करता तो हंगरी स्वतन्त्र हो ही जाता।

(२) प्रशा का बिस्मार्क पूर्वी समस्या में कोई भाग नहीं ले रहा था। उसने एक बार कहा था कि हम टर्की से आने वाली डाक को खोलते भी नहीं हैं।

(३) अभी तक इटली का निर्माण नहीं हुआ था। केवल सार्डीनिया-पीडमाण्ट ने इङ्गलैंड एवं फ्रांस की कूटनीतिक सहानुभूति प्राप्त करने के लिये इस युद्ध में भाग लिया था।

रूस की दो प्रमुख मांगें थीं—

१. पवित्र स्थानों पर रूस का अधिकार हो।

२. टर्की साम्राज्य में बसने वाले ईसाइयों के संरक्षण का भार भी रूस को दे दिया जाय।

मित्र-राष्ट्रों ने रूस की पहली मांग को तो स्वीकार कर लिया, परन्तु दूसरी को स्वीकार नहीं किया। इस पर रूस ने सेनायें भेजकर बलाशिया एवं मोल्डाविया पर अधिकार कर लिया। वास्तव मे यह कार्यवाही करते समय रूस ने अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को समझने में गलती की। उसका ख्याल था कि इंगलैंड युद्ध नहीं करेगा। यदि वह युद्ध करेगा भी तो हम उसका मुकाबिला कर लेंगे। यदि फ्राँस भी आक्रमण

---

1. 'If we do not stop Russia on the Denube, we shall have to stop her on the Indus.'

करेगा तो उसका मुकाबला आस्ट्रिया एवं प्रशा करेंगे। परन्तु उसका यह सोचना गलत सिद्ध हुआ। कारण यह था कि पूर्वी समस्या में रूस एवं आस्ट्रिया के हित टकरा रहे थे। अतः आस्ट्रिया एवं प्रशा इस युद्ध में तटस्थ रहे।

जुलाई १८५३ में मित्र राष्ट्रों ने विएना में एक सम्मेलन किया। इसमें उन्होंने 'विएना नोट' तैयार किया और यह नोट रूस एवं टर्की दोनों के पास भेजा गया। इस नोट में कहा गया था कि 'पवित्र स्थानों का संरक्षण आवश्यक है।' यह संरक्षण किसके द्वारा होगा, यह स्पष्ट नहीं था, रूस के सम्राट् निकोलस ने समझा कि यह संरक्षण रूस करेगा। टर्की के सुलतान ने समझा कि संरक्षण का कार्य टर्की करेगा। रूस ने इस नोट को स्वीकार कर लिया; परन्तु रेडक्लिफ के कहने पर टर्की ने इस नोट को अस्वीकार कर दिया तथा इस नोट को स्पष्ट करने की माँग की।

५ अक्तूबर १८५३ को टर्की ने रूस से यह मांग की कि वह बलाशिया तथा मोल्डाविया के प्रदेशों को १५ दिन के अन्दर खाली कर दे। रूस ने टर्की की मांग को अस्वीकार कर दिया। रेडक्लिफ के प्रोत्साहन पर २३ अक्तूबर को टर्की ने रूस रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। दोनों पक्षों में पहला युद्ध सिनोप की खाड़ी में हुआ। इस युद्ध में रूसी जहाजी बेड़े ने टर्की जहाजी बेड़े को नष्ट कर दिया। यह घटना इतिहास में सिनोप का हत्याकाण्ड कहलाता है।

इसी अवसर पर इङ्गलैंड एवं फ्रांस ने भी हस्तक्षेप किया। इन दोनों देशों ने रूस को झगड़े का कारण बतलाया, क्योंकि उसने बलाशिया एवं मोल्डाविया के प्रदेश खाली नहीं किये थे। अतः इङ्गलैंड एवं फ्राँस ने भी रूस को इन प्रदेशों को खाली करने के लिये कहा। परन्तु रूस ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। अतः इंगलैंड एवं फ्रांस ने भी रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। फ्रांस एवं इंगलैंड को आस्ट्रिया की सहायता मिलने का आश्वासन था। परन्तु युद्ध छिड़ने पर आस्ट्रिया ने इन देशों की कोई सहायता न की। जिस समय इन देशों ने आस्ट्रिया से सहायता की याचना की तो उसने कहा कि हमारा विचार कोई सीधी कार्यवाही करने का न था। हमारा उद्देश्य तो एकमात्र कूटनीतिक सहायता देने का था।

घटनायें

इंगलैंड एवं फ्रांस ने अपना जहाजी बेड़ा काले सागर में भेज दिया रूस ने तुरन्त बलाशिया एवं मोल्डाविया को खाली कर दिया। इस प्रकार युद्ध का कारण समाप्त हो गया और अब युद्ध को बन्द हो जाना चाहिये। परन्तु मित्र राष्ट्रों ने युद्ध को बन्द नहीं किया। उनका उद्देश्य रूस की शक्ति को पूरी तरह कुचल देना था।[1] वह रूस के सुप्रसिद्ध दुर्ग सेवेस्टोपोल पर अधिकार करना चाहते थे।[2]

---

1. 'And once Russia had withdrawn from the Principalities, no further excuse for the war except that of teaching the Czar a lesson, existed. Hence the diversion of the war from the Balkans, where it made sense in relation to the Turkish Empire, to the Crimean peninsula where it made very little sense at all.' —Seaman

2. 'Strike at the very heart of Russian power in the east and that heart is Sebastopol.'

युद्ध के क्षेत्र को सीमित करने के उद्देश्य से मित्र राष्ट्रों ने २३ जुलाई को रूस के पास निम्न मांगें भेजीं :—

(१) रूस हमेशा के लिये बलाशिया एवं मोल्डाविया का अधिकार त्याग दे।
(२) काले सागर पर रूस अपना प्रभाव स्थापित न करे।
(३) डेन्यूब नदी सब राष्ट्रों के जहाजों के लिये खोल दी जाय।
(४) रूस टर्की साम्राज्य के ईसाइयों के संरक्षण की मांग न करे।

परन्तु रूस ने इन मांगों को अस्वीकार कर दिया। रूसी सेनापति मेन्सिकोफ ने इंगलैंड एवं फ्रांस की सेनाओं को रोकने की चेष्टा की। अल्मा का भयंकर युद्ध हुआ। इसमें मित्र राष्ट्रों की विजय हुई। बालाक्लावा तथा इंकरमन के युद्धों में भी मित्र राष्ट्र जीते तथा रूस पराजित हुआ। एकमात्र इंकरमन के युद्ध में रूस के १० हजार सैनिक मारे गये। १८५४–५५ की सर्दियाँ मित्र राष्ट्रों के लिये बड़ी विनाशकारी सिद्ध हुईं। वर्षा, बर्फ तथा तूफान से बहुत बड़ी संख्या में सैनिकों की मृत्यु होने लगी। बर्फ जमने से यातायात बन्द हो गया। युद्ध-सामग्री तथा रसद का युद्ध-स्थल तक पहुंचना असम्भव हो गया। असंख्य घोड़ों के मर जाने के कारण सामान ढोने के लिये घोड़ों का अभाव हो गया। अधिकांश सैनिक मारे गये तथा १३००० युद्ध के प्रमुख पड़ाव स्कुटारी के अस्पताल में भरती किये गये। इस अस्पताल में औषधियों एवं सुयोग्य चिकित्सकों का सर्वथा अभाव था। इस अवस्था को देख कर जार सम्राट् ने बड़े गर्व के साथ कहा था कि 'मेरे पास जनवरी एवं फरवरी नाम के दो बड़े सेनापति हैं और ये कभी भी मेरा साथ न छोड़ेंगे।' तीन भयंकर युद्धों के बाद भी मित्र राष्ट्र सेवास्टोपल के प्रसिद्ध दुर्ग पर अधिकार न कर सके।

१८ दिसम्बर १८५४ को मित्र राष्ट्रों ने निम्नलिखित मांगें रूस के पास भेजीं। इस समय उनको आस्ट्रिया का भी सहयोग प्राप्त हो गया :

(१) बलाशिया, मोल्डाविया तथा सर्बिया में रूस का संरक्षण न रहे तथा ये तीनों महाशक्तियों के संरक्षण में रहें।
(२) काले सागर में रूसी प्रभाव न रहे।
(३) रूस टर्की साम्राज्य में बसने वाले ईसाइयों के संरक्षण की मांग न करे।

परन्तु, इस बार भी रूस ने इन मांगों को अस्वीकार कर दिया। परन्तु इस समय परिस्थिति बदल गई। इसके दो प्रमुख कारण थे —

(१) २६ जनरवी १८५५ को सार्डीनिया-पीडमाण्ट ने इंगलैंड एवं फाँस की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी तथा १८ हजार सैनिक मित्र राष्ट्रों की सहायता के लिये भेजे।

(२) २ मार्च १८५५ को निकोलस प्रथम की मृत्यु हो गई। पंच नामक अखबार ने मृत निकोलस के शव के चित्र के नीचे लिखा था—'निकोलस प्रथम के जनवरी एवं फरवरी नामक प्रसिद्ध सेनापति विश्वासघाती सिद्ध हुये।'

१८५५ को सेवास्टोपल दुर्ग का पतन हो गया और इसके साथ-साथ युद्ध समाप्त हो गया।

पेरिस की सन्धि—निकोलस प्रथम की मृत्यु के पश्चात् अलेक्जेण्डर द्वितीय रूस का सम्राट् हुआ। उसने १८५६ में मित्र राष्ट्रों से सन्धि कर ली। इस सन्धि की प्रमुख धारायें निम्न प्रकार थीं :—

(१) टर्की की अखण्डता का उत्तरदायित्व फ्रांस, इंगलैंड तथा आस्ट्रिया को दे दिया गया।

(२) टर्की के सुलतान ने वायदा किया कि वह अपने देश में बसने वाले विधर्मियों के साथ उदारता का बर्ताव करेगा।

(३) शान्ति-काल में काला सागर सब राष्ट्रों के लिये खोल दिया गया। परन्तु युद्ध-काल में कोई भी देश इसका उपयोग नहीं कर सकता।

(४) वास्फोरस एवं डार्डेनेलीज के अंतरीप युद्ध-काल में सब देशों के लिये बन्द कर दिये गये।

(५) कार्स का प्रदेश फिर से टर्की को दे दिया गया।

(६) जीते स्थान एक दूसरे को लौटा दिये गये; परन्तु रूस को यह आश्वासन देना पड़ा कि वह सेवोस्टोपोल दुर्ग का पुनः दुर्गीकरण नहीं करेगा।

(७) मोल्डाविया तथा बलाशिया पर से रूस का प्रभाव समाप्त कर दिया गया तथा इन प्रदेशों को स्वायत्त शासन दे दिया गया।

(८) डेन्यूब नदी सब राष्ट्रों के लिये खोल दी गई।

(९) रूस ने यह वायदा किया कि वह टर्की साम्राज्य में हस्तक्षेप न करेगा। अतः रूस तथा टर्की साम्राज्य के मध्य बेसराविया का राज्य स्थापित कर दिया गया।

(१०) सर्विया की स्वतन्त्रता का भार मित्र राष्ट्रों ने अपने ऊपर ले लिया।

यह बात पेरिस की सन्धि में नहीं थी, बाद को जोड़ दी गई कि तटस्थ देशों के जहाजों पर आक्रमण नहीं किया जायगा तथा शत्रु देश के जहाजों की भी केवल युद्ध-सामग्री ही पकड़ी जायगी।

इस प्रकार पेरिस की सन्धि रूस के लिए बहुत अपमानजनक थी। मेरियट के शब्दों में पेरिस की सन्धि रूस के लिये बहुत अपमानजनक सिद्ध हुई, क्योंकि पीटर महान् के समय से ही पूर्वी समस्या में रूस की जो इच्छायें चली आ रही थीं, वे समाप्त हो गईं। पूर्वी समस्या में प्रमुखतया रूस की निम्न इच्छायें थीं।

१. काले सागर के उत्तर में अपना जहाजी बेड़ा रखने के लिये अपना प्रभाव स्थापित करना।

२. काले सागर से होकर भूमध्य सागर में प्रवेश करना तथा डार्डेनेलीज तथा वास्फोरस पर अधिकार करना।

३. टर्की के ईसाइयों के संरक्षण का अधिकार प्राप्त करना।

क्रीमिया युद्ध के परिणाम—प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से क्रीमिया युद्ध के निम्नलिखित परिणाम हुये—

१. रूस पराजित हो गया तथा टर्की साम्राज्य में प्राप्त अनेक विशेषाधिकारों से उसे हाथ धोना पड़ा।

२. इङ्गलैण्ड में एबर्डीन के मन्त्रि-मंडल का पतन हो गया तथा पामर्स्टन प्रधान मन्त्री बना।

३. ब्रिटेन की युद्ध में भाग लेने के उद्देश्य की भी कुछ अंशों में पूर्ति हो गई अर्थात् कुछ समय तक बाल्कन प्रदेश में रूस की प्रगति रुक गई।

४. जार का शासन बदनाम हो गया, क्योंकि अधिकारियों ने उसका साथ नहीं दिया। वे अधिकाँश सामग्री को युद्ध-क्षेत्र तक पहुंचने नहीं देते थे। मध्य में ही खा जाते थे।

५. जनता ने भी युद्ध में जार सम्राट निकोलस का साथ नहीं दिया। चारों ओर सुधारों की मांग होने लगी। फलतः निकोलस प्रथम के उत्तराधिकारी अलेक्जेण्डर द्वितीय को शासन में अनेक सुधार करने पड़े। प्रायः यह देखा गया है कि रूस में सुधार युद्ध के बाद होते थे।

६. नेपोलियन द्वितीय को भी व्यक्तिगत ढंग से फायदा हुआ। इससे उससे फ्रांस के सब दल सन्तुष्ट हो गये।

७. क्रीमिया युद्ध में भाग लेकर कैवूर ने इङ्गलैंड और फ्रांस को अपना मित्र बना लिया। इन्होंने कालान्तर में इटली के एकीकरण में सहायता दी। इस युद्ध के पूर्व रूस और आस्ट्रिया मित्र थे। रूस ने आस्ट्रिया की अनेक बार सहायता की थी, विशेषतया १८४८ की क्राँति के समय। परन्तु क्रीमिया-युद्ध में आस्ट्रिया ने रूस की सहायता नहीं की। यही नहीं, कुछ समय पश्चात् उसने रूस को युद्ध की धमकी भी दी। अतः क्रीमिया-युद्ध के परिणाम-स्वरूप रूस और आस्ट्रिया की शत्रुता हो गई। जब बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध किया तो रूस तटस्थ रहा। उसने आस्ट्रिया की सहायता न की और बिस्मार्क ने आस्ट्रिया को पराजित करके जर्मनी का नव-निर्माण किया। इस प्रकार क्रीमिया की मिट्टी से इटली और जर्मनी दोनों का निर्माण हुआ।[1]

८. इस युद्ध ने मेटरनिख-युग की समाप्ति कर दी। मेटरनिख ने योरप में जो व्यवस्था स्थापित की थी वह इस युद्ध के पश्चात् छिन्न-भिन्न हो गई।[2]

1. 'Out of the mud of Crimea a new Italy was created and less obviously a new Germany. —Kettleby.

2. 'Not 1848, but the Peace of Paris, ends the Metternich era, for only with the Crimean War do those political upheavals become possible which Metternich had so long hoped to postpone. —Seaman.

९. पेरिस की सन्धि में कुछ अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का भी प्रतिपादन किया गया। इससे अन्तर्राष्ट्रीयता का विकास हुआ। निजी व्यापार को समाप्त कर दिया गया। युद्ध की सामग्री को छोड़कर तटस्थ देशों के जहाज अन्य सामग्री को ढो सकते थे।

१०. युद्ध-कला का विकास हुआ। सैनिकों को ट्रेनिंग देने की व्यवस्था की गई। युद्ध-व्यय को कम करने के लिए स्वयंसेवकों की व्यवस्था की गई।

११. इस युद्ध के पश्चात् चिकित्सा-पद्धति में एक नए युग का प्रारम्भ हुआ। इस सम्बन्ध में फ्लोरेन्स नाइटिङ्गेल का नाम सराहनीय है। उसने स्कुटारी के अस्पताल में घायल सैनिकों की बहुत सेवा की। रेडक्रॉस सोसाइटी (Red Cross Society) तथा आर्मीएम्बुलेन्स कोर (Army Ambulance Corps) की विशेष उन्नत्ति हुई।

इंगलैंड का इस युद्ध में भाग लेने का औचित्य—किंग्सलेक का मत है कि क्रीमिया युद्ध में इंगलैंड का कोई हित न था। वह तो एकमात्र नेपोलियन तृतीय द्वारा प्रज्ज्वलित आग में कूदा था। नेपोलियन किसी चमत्कारपूर्ण कार्य से फ्रांस में अपना प्रभाव स्थापित करना चाहता था तथा मास्को की पराजय का बदला लेना चाहता था। इस युद्ध के उपरान्त उसकी इस इच्छा की पूर्ति हो गई। सन्धि की शर्तें निश्चित करने के लिए पेरिस में ही अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। नेपोलियन तृतीय ही इस सम्मेलन का सभापति बनाया गया। इससे समस्त यूरोप में फ्रांस का महत्व बढ़ गया। नेपोलियन तृतीय फ्रांस में राष्ट्रीय नेता (National Hero) के रूप में पूजा जाने लगा। इससे उसको अपनी स्थित सुदृढ़ करने का सुअवसर मिल गया। परन्तु मेरियट महोदय इससे सहमत नहीं हैं। उनका कथन है कि यह ठीक है कि नेपोलियन तृतीय यह दिखलाना चाहता था कि उसका शासन लुई फिलिप के शासन से कहीं अच्छा है; परन्तु उसका यह अर्थ नहीं कि स्ट्रैफोर्ड तथा एबर्डीन नेपोलियन तृतीय की महत्वाकांक्षा की पूर्ति के साधन थे। वास्तव में इङ्गलैण्ड जार की गति विधियों को गत १$\frac{1}{2}$ शताब्दियों तक भली प्रकार देख चुका था और इस समय तक आते-आते उसने हस्तक्षेप का निर्णय कर लिया था।

क्रीमियाँ युद्ध का मूल्यांकन—कुछ इतिहासकारों के मतानुसार क्रीमियाँ युद्ध १९वीं शताब्दी का एक बेकार युद्ध था।[1] इसका उद्देश्य रूस की शक्ति को समाप्त करना था, परन्तु बहुत शीघ्र ही पेरिस की सन्धि को तोड़ दिया गया। इससे यूरोप को स्थायी शान्ति प्राप्त नहीं हुई। आगामी २० वर्षों से ही पेरिस की सन्धि की धारायें भंग हो गई। पेरिस सन्धि के अनुसार काले सागर पर रूस का अधिकार समाप्त कर दिया गया था। परन्तु १८६० में रूस ने बिस्मार्क के प्रोत्साहन से राष्ट्रों के पास एक सरक्युलर (circular) भेजा। इसमें उसने कहा था कि वह काले सागर पर पुनः

---

1. 'The only completely useless modern war that has been waged.'

अधिकार प्राप्त करेगा। इन अधिकारों को उसने Sovereign Rights के नाम से सम्बोधित किया था। इङ्गलैण्ड एवं आस्ट्रिया ने उसकी इस मांग का बहुत विरोध किया था, परन्तु रूस ने किसी के विरोध की कोई परवाह नहीं की। अन्त में लन्दन में मित्र राष्ट्रों का एक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में पेरिस की सन्धि की काले सागर वाली धारा में संशोधन कर दिया गया तथा काले सागर पर रूस का प्रभाव मान लिया गया। बलाशिया, मोल्डाविया तथा वेसराविया पर भी उसने अधिकार कर लिया। इस प्रकार क्रीमिया युद्ध के बावजूद भी पूर्वी समस्या हल नहीं हुई।

२. मैरियट महोदय के अनुसार यदि यह युद्ध एक बड़ी गलती नहीं था तो एक अपराध अवश्य था। इससे बचना चाहिए था तथा बचा भी जा सकता था।[1] इस युद्ध में अपार जन-धन के विनाश को देखकर फ्रांस के राजदूत ने कहा था— 'यह बतलाना बहुत कठिन है कि इस युद्ध में कौनसा पक्ष विजयी हुआ तथा कौन सा पराजित हुआ।' सेटन वाट्स के शब्दों में यदि जनता के अज्ञानपूर्ण आग्रह से कोई युद्ध हुआ तो वह क्रीमिया युद्ध था।

३. क्रीमिया युद्ध में अपार जन-धन की हानि हुई। स्पेन्सर बालपोल के मतानुसार इस युद्ध में छः लाख व्यक्तियों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा। इस के बावजूद भी इस युद्ध से कोई विशेष लाभ न हुआ बल्कि इसने पांच अन्य युद्धों को जन्म दिया।

(१) १८५९ का फ्रांसीसी आस्ट्रिया युद्ध।
(२) १८६४ का डेनिश युद्ध,
(३) १८६६ का आस्ट्रिया-प्रशा युद्ध,
(४) १८७० का फ्रांसीसी प्रशा युद्ध,
(५) १८७७ का रूसी टर्की युद्ध।

४. पेरिस की सन्धि के अनुसार टर्की के सुलतान को यह आदेश दिया गया था कि वह अपने राज्य में बसने वाली ईसाई जातियों के सुधार के लिए कदम उठाए; परन्तु उसने कोई सुधार नहीं किया। फिलिस्तीन के धार्मिक प्रश्न का भी कोई हल नहीं निकला।

५. ग्रान्ट और टेम्परले ने क्रीमिया युद्ध के विषय में निम्नलिखित मत प्रकट किया है—

'The Crimean War occupies a peculiar place in the history of Europe in the nineteenth century....... It was the last war on a large scale to be fought without the help of the modern resources of Science. And if its methods and instruments are strange to the modern student, its amis and its diplomacy seem still more so.

---

1. 'If the Crimean war was not a blunder, it was a crime and ought to have and might have been avoided.'

Ecclesiastical questions that might belong to the time the of Crusades play a part in the causes of the war. The victors in the struggle gaincd little if anything from it. The integrity of Turkey was in fact not maintained. The advance of Russia was not permanently checked............'

१८६७ में सर्विया ने टर्की की सेनाओं को अपने किलों से निकाल दिया और प्राय: अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली। इससे टर्की के साम्राज्य का और भी अधिक विघटन हुआ।

पेरिस सन्धि की धारायें चिरस्थायी न हो सकीं। इस सन्धि ने बलाशिया और मोल्डाविया को पृथक्-पृथक् स्वायत्त शासन दिया था। परन्तु १८५६ में उन्होंने आपस में मिलकर एक सम्मिलित राज्य रूमानिआ बना लिया।

१८६५ में रूस ने टर्की के विरुद्ध क्रीट को विद्रोह करने में प्रोत्साहन दिया।

१८७० में बल्गेरिया ने टर्की के विरुद्ध अपनी धार्मिक स्वतन्त्रता घोषित की।

१८७० में ही रूस ने काले सागर पर जहाजी बेड़ा रखना और दुर्गीकरण करना प्रारम्भ कर दिया।

इस प्रकार क्रीमिया युद्ध आधुनिक समय का सबसे बेकार युद्ध था, परन्तु फिर भी अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इसका पर्याप्त प्रभाव पड़ा। इटली एवं जर्मनी के एकीकरण को बहुत कुछ सहायता मिली। फ्रांस का अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रभाव बहुत बढ़ गया। कुछ दिन के लिए बाल्कन क्षेत्र में रूस की प्रगति रुक गई।

प्रश्न

१ क्रीमिया युद्ध के कारणों और परिणामों पर प्रकाश डालिये ?

२ क्रीमिया-युद्ध में विभिन्न राज्यों के क्या हित थे ? क्या यह युद्ध अनिवार्य था ?

३ पेरिस सन्धि की धाराओं का उल्लेख करते हुये यह बताइये कि योरपीय इतिहास को उन्होंने किस सीमा तक प्रभावित किया।

4 'The Crimean war was in a sense the watershed of European History' (Kettleby) Explain.

5 'If ever a war was made by an ill-informed but ardent public opinion against better judgment it was the Crimean war Seton-Watson. Discuss.

6 'The Peace of Paris (1856) saddled Europe with new responsibilites.' Discus

———

३

जर्मनी का एकीकरण

(१८४८–१८७०)

विलियम प्रथम और सैनिक संगठन; संसद से झगड़ा; बिस्मार्क की नियुक्ति, बिस्मार्क के विचार; स्लेजविग-होल्स्टीन; गैस्टीन का समझौता; आस्ट्रिया की मित्रहीनता; आस्ट्रिया और प्रशा का युद्ध; प्राग की सन्धि; फ्रांस की मित्रहीनता; फाँस से युद्ध; युद्ध की घटनायें, परिणाम।

विलियम प्रथम १८५७–८८—फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ की दुर्बलता के परिणामस्वरूप १८४८ में जर्मनी का स्वतन्त्रता-संग्राम असफल रहा। यदि वह उस समय फ्रैन्कफोर्ट संसद के प्रस्तावों को स्वीकार कर लेता तो सम्भव है कि प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी की एकता उसी वर्ष स्थापित हो जाती।

अपनी इस दुःखद असफलता के पश्चात् फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ के मस्तिष्क का सन्तुलन निरन्तर बिगड़ता गया और १८५७ में वह पागल हो गया। कुछ समय तक उसका भाई विलियम प्रथम उसके संरक्षक (Regent) के रूप में शासन करता रहा। अन्त में १८६१ में अपने भाई की मृत्यु पर वह स्वयं प्रशा का नवीन सम्राट् बना।

विलियम प्रथम अपने पूर्वजों की ही भाँति राजा के दैवी अधिकार में विश्वास करता था। संवैधानिक सुधारों में उसकी भी कोई रुचि न थी। वह महान् सैनिकवादी था। वह कट्टर प्रशियन था और उसका विश्वास था कि प्रशा ही जर्मनी के नव-भाग्य का निर्माण करेगा। वह परिश्रमी, दृढ़संकल्प और नितान्त व्यावहारिक था। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसे मनुष्यों की पहचान थी।[1] यही कारण है कि उसे अनेक योग्य पदाधिकारियों की सेवायें प्राप्त हो सकीं।

हेजेन महोदय ने विलियम प्रथम के चरित्र का निम्नलिखित रूप में वर्णन किया है :—

'The new ruler was intellectually the very antipodes of his brother, slow, solid, persistent, firm, rather than brilliant and

1. 'Though a reactionary he was loyal to engagement once made and he had the good sense to select ministers of ability and give them steead fast support.'. —Ault

imaginative. Common sense was his strongest quality as versatility had been that of his brother.'

विलियम प्रथम सहज सैनिक था। अपने भाई फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ के ओल्मुज-पराभव से उसे बड़ा दुःख हुआ था। इस पराभव का प्रमुख कारण वह प्रशा की सैनिक निर्बलता समझता था। इसी से १८४८ में उसने कहा था कि 'जो भी जर्मनी पर शासन करना चाहता है उसे जर्मनी की विजय करनी होगी और यह कार्य शब्दों से नहीं हो सकता।'[1]

अतः सिंहासनासीन होते ही विलियम ने प्रशा की सेना का पुनः संगठन करने का निश्चय किया। उसने मोल्टके को सेनाध्यक्ष (Chief of the General Staff) नियुक्त किया और रून को युद्ध-मन्त्री। इन लोगों के परिश्रम से ही प्रशा की सेना अत्यन्त सुसंगठित और शक्तिशाली बन सकी थी।[2]

प्रशा का सैनिक संगठन १८१४ के कानून पर निर्भर था। यद्यपि प्रशा की जनसंख्या अब ५० प्रतिशत बढ़ गई थी, परन्तु उसके सैनिकों की संख्या पहले जैसी ही थी। विलियम प्रथम ने १८६० में सैनिक संगठन की एक नवीन योजना बनाई जिसमें निम्नलिखित विशेषतायें थीं :—

(१) प्रशा में ४९ नये रेजीमेन्टों का संगठन किया जाय।

(२) २० वर्ष के प्रत्येक नवयुवक से ३ वर्ष की सैनिक सेवा ली जाय।

इसका अर्थ यह था कि पहले जहाँ प्रति वर्ष ४० हजार रंगरूट भर्ती होते थे वहाँ अब ६३ हजार होंगे। पहले शान्ति-काल और युद्ध-काल में सैनिकों की संख्या क्रमशः १ लाख ३० हजार और २ लाख १५ हजार होती थी। नई योजना के अन्तर्गत वह क्रमशः १ लाख ९० हजार और ४ लाख ५० हजार होगी।

इस नई योजना को कार्यान्वित करने के लिये धन की आवश्यकता थी। परन्तु चैम्बर आफ डेपुटीज ने ३०८ : ११ के बहुमत से सम्राट् की सैनिक योजना का विरोध किया। उसने बिल से सैनिक धाराओं को निकाल दिया और उसे चैम्बर आफ पियर्स के पास भेज दिया। पियर्स राजा के पक्षपाती थे। उन्होंने सैनिक धाराओं को बिल में पुनः जोड़ दिया और उसे चैम्बर आफ डेपुटीज के पास वापस कर दिया। इस प्रकार दोनों भवनों के बीच एक गत्यवरोध (Deadlock) उत्पन्न हो गया।

सम्राट् किसी भी प्रकार अपनी सैनिक योजना को छोड़ने के लिये तैयार न था। वह संसद को भंग भी न करना चाहता था, क्योंकि उसने संविधान के प्रति

---

1. 'Now whoever wishes to rule Germany must conquer it, and that cannot be done with phrases.'

2. These were the men who were responsible for rhe perfecting of that most effective of all fighting machines, the Prussian army, and they remained continuously in office until the final triumph was achieved in 1871.' —Marriot.

शपथ ली थी। अतः अन्त में उसने पद-त्याग करने का निश्चय किया। कहते हैं कि उसके अपना त्याग-पत्र लिख कर तैयार भी कर लिया था। परन्तु इसी समय अचानक उसे एक व्यक्ति विशेष की याद आई जो उसके संकटकाल में सम्भवतः उसे कोई मार्ग दिखा सके। यह व्यक्ति विशेष बिस्मार्क था जो इस समय तक अपनी राज-भक्ति, सैनिकवाद और एकतन्त्रवाद के लिये प्रख्यात हो चुका था। २३ सितम्बर, १८६२ को विलियम प्रथम ने उसे बुला कर प्रधान मन्त्री के पद पर नियुक्त किया।

बिस्मार्क—बिस्मार्क का जन्म १ अप्रैल, १८१५ में हुआ था। उसका पिता ब्रैण्डेनबर्ग का एक सामन्त था। उसकी माता एक प्रोफेसर की पौत्री और एक उच्च पदाधिकारी की पुत्री थी। बिस्मार्क ने अपने पिता से शारीरिक शक्ति और अपनी माता से बौद्धिक प्रखरता प्राप्त की थी। बिस्मार्क ने बर्लिन की व्यायामशाला (Gymnasium) में शिक्षा प्राप्त की थी। तदनन्तर वह गोटिंगेन और बर्लिन के विश्वविद्यालयों में पढ़ा था। शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् उसने प्रशा की सिविल सर्विस में नौकरी कर ली। परन्तु इस कार्य में उसका मन न लगा। एक-दो वर्ष के पश्चात् उसने नौकरी छोड़ दी और पोमेरैनिया में अपनी जागीर की देख-रेख करने लगा। यहाँ उसने कृषि-कर्म और भूमि-प्रबन्ध में बड़ी सफलता प्राप्त की। उसकी इस सफलता से उसके परिवार की आर्थिक स्थिति बड़ी अच्छी हो गई। इस बीच वह विभिन्न भाषाओं, राजनीति, इतिहास और दर्शन आदि का स्वाध्याय भी करता रहा। वह जर्मन, फ्रेंच और अंग्रेजी भाषाओं का ज्ञाता था। उसने फ्रांस, इंगलैंड आदि देशों की यात्रायें भी कीं।

१८४५ से बिस्मार्क का राजनीतिक जीवन प्रारम्भ हुआ। इसी वर्ष वह पोमेरैनिया की प्रान्तीय संसद (Diet) का सदस्य हो गया। इस संसद ने १८४७ में उसे अपने प्रतिनिधि के रूप में प्रशा की संसद (Imperial Diet) में भेजा।

यहाँ उसने जनतन्त्रवाद, संविधान और उदार सुधारों की मांगों का विरोध करना प्रारम्भ किया। उसके घोर प्रतिक्रियावाद को देखकर बहुधा संसद के सदस्य उसके भाषण के बीच शोरगुल करने लगते थे। ऐसा कहा जाता है कि इस शोरगुल के समय बिस्मार्क अपनी जेब से अखबार निकाल कर पढ़ने लगता था और जब शोरगुल शान्त हो जाता था तो वह पुनः अपने प्रतिक्रियावाद का प्रबल प्रतिपादन प्रारम्भ करता था।[1] वह प्रशा के सम्राट् को शक्तिशाली रखना चाहता था, इंगलैंड के राजा की भाँति निर्बल नहीं। अपने विचारों को व्यक्त करते हुये उसने कहा था—'The Prussian Crown must not allow itself to be thrust into the powerless position of the English Crown,

1. 'He reappeared in public life as a member of the Prussian Parliament in 1847, when he promptly made himself known for his contempt of parliamently methods. When his tirades against democracy were interrupted by hoots and hisses, the blond giant would pull a newspaper from his pocket and calmly read until the disorder subsided and then renew his attack.' —Ault

which seems more like a smartly decorative cupola on the state edifice, than its central pillar of support, as I consider ours.' १८४८ में जब चतुर्दिक जनता ने जनतन्त्रवादी अधिकारों और संविधानों की मांग की तो उसने इनका यथाशक्ति विरोध किया और अन्त में जब फ्रैन्कफोर्ट पार्लियामेन्ट भंग हो गई तो उसने हार्दिक प्रसन्नता प्रकट की। १८४८-९ में जर्मन एकता स्थापित करने के जो प्रयत्न हो रहे थे, उनसे बिस्मार्क दो प्रमुख कारणों से सहमत न था —

(१) ये प्रयत्न जनतन्त्रवादी ढंगों से किये जा रहे थे जिनमें बिस्मार्क को तनिक भी विश्वास न था।[1] वह राजतन्त्रवादी और सैनिकवादी था।

(४) इन प्रयत्नों का लक्ष्य जर्मन एकता स्थापित करना अवश्य था, परन्तु इनसे प्रशा की इकाई, उसका सर्वाधिक महत्व समाप्त हो जाता। बिस्मार्क कट्टर प्रशन था। वह जर्मनी को प्रशा में मिलाना चाहता था, प्रशा को जर्मनी में नहीं। इसी से फ्रैन्कफोर्ट की योजना का विरोध करते हुये उसने कहा था—'The Frankfort Crown may be very brilliant, but the gold which would give truth to its brilliancy can only be gained by melting down the Prussian Crown.'

पुन: उसने कहा था—'The scheme for a union annihilates the integrity of the Prussian Kingdom...Prussians we are and Prussians we will remain.'

१८५१ में प्रशा के सम्राट् ने उसे अपने प्रतिनिधि के रूप में फ्रैन्कफोर्ट की नवीन संघीय संसद में भेजा। यहाँ वह १८५९ तक रहा। यह ८ वर्षों का काल बिस्मार्क के लिये बड़ा महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ।[2] इस बीच बिस्मार्क ने कूटनीतिक कार्यों में बड़ी निपुणता प्राप्त कर ली। उसका यह अनुभव बहुत बड़ी मात्रा में उसकी भावी सफलताओं के लिये उत्तरदायी सिद्ध हुआ। उसकी फ्रैन्कफोर्ट में नियुक्ति के विषय में मैरियट ने लिखा है कि—

'But residence at Frankfort was to Bismarck as the historic visit to Rome was to Luther.

फ्रैन्कफोर्ट की संसद में रहते हुये बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के विचारों और कार्यों का अध्ययन किया और वह इस अनुभव पर पहुंचा कि जर्मन संघ में आस्ट्रिया के रहते हुये प्रशा गौरव प्राप्त नहीं कर सकता। आस्ट्रिया प्रशा का सहज शत्रु है और

---

1. 'I look for Prussian honor in Prussia's abstinence before all things from every shameful union with democracy. —Bismarck

2 'Bismarck's career now broadened, and during the next eight years he studied and practised the art of diplomacy, in which he was later to win many sweeping victories.' —Hazen.

अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिये प्रशा को अन्ततोगत्वा आस्ट्रिया से युद्ध करना होगा। वह आस्ट्रिया को गैर-जर्मन राज्य समझता था और कहा करता था कि जर्मनी इतना संकीर्ण है कि उसमें आस्ट्रिया और प्रशा दोनों नहीं रह सकते।[1] १८५६ में उसने लिखा था कि—'I only desire to express my conviction that ere long we shall have to fight Austria for our very existence; it is not in our power to avert that eventuality, for the course of events in Germany can lead to no other result.'

प्रशा का सम्राट् आस्ट्रिया का मित्र था और अपनी मित्रता कायम रखना चाहता था। वह बिस्मार्क के आस्ट्रिया-विरोधी दृष्टिकोण से घबरा गया और उसने १८५९ में उसे फ्रैन्कफोर्ट से हटाकर रूस में अपना राजदूत नियुक्त किया। यह नियुक्ति भी बिस्मार्क के भावी राजनीतिक जीवन के लिये उपयोगी सिद्ध हुई। उसका पहले से ही विश्वास था कि रूस की मित्रता प्रशा के लिये लाभकर सिद्ध होगी।[2] रूस में रहते हुये उसका यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया। वह रूस के जार का मित्र बन गया। कालान्तर में रूसी मित्रता को बनाये रखना बिस्मार्क की विदेशी नीति का एक प्रमुख लक्ष्य बन गया।

रूस में बिस्मार्क १८५९ से लेकर १८६२ तक राजदूत रहा। तत्पश्चात् वह फ्राँस में राजदूत बनाकर भेजा गया। यहां उसने फ्रांसीसी सम्राट् नेपोलियन तृतीय के अद्भुत चरित्र का अध्ययन किया। अपनी सरकार को गुप्त सूचना देते हुए बिस्मार्क ने नेपोलियन तृतीय को 'a great unrecognized incapacity' कहा था। फ्रांस में अभी वह कुछ मास ही रहा था कि प्रशा में पूर्वकथित संवैधानिक संकट उत्पन्न हुआ और अपनी सहायता के लिये प्रशा के सम्राट् विलियम प्रथम ने उसे तत्काल फ्रांस से बुला भेजा तथा १८६२ में उसे अपना प्रधानमंत्री नियुक्त किया। उस समय बिस्मार्क की आयु ४७ वर्ष की थी।

बिस्मार्क ने अपने सम्राट् को राय दी कि वह सैनिक संगठन जारी रक्खे और संसद के विरोध की तनिक भी परवाह न करे। वह प्रतिवर्ष संसद में बजट रखता था। किसी वर्ष निम्नतर भवन उसे अस्वीकार कर देता था और उच्चतर भवन पारित कर देता था। इस विरोध में बिस्मार्क संसद की उपेक्षा करते हुए आवश्यक धन के लिये जनता पर कर लगाता रहा और उन्हें वसूल करता रहा। संसद मौखिक विरोध के अतिरिक्त और कुछ न कर सकी। हेजेन के शब्दों में प्रशा के इतिहास का

---

1 'Germamy is too narrow for Austria and Prussia
—Bismarck.

2. 'Prussia must never let Russia's friendship wax cold. Her alliance is the cheapest among all continental alliances, for the eyes of Russia are turned only towards the East.' —Bismarck.

यह काल तानाशाही का काल था। इसमें संसदीय शासन समाप्तप्राय: हो गया था।[1] इसी अवसर पर बिस्मार्क ने इतिहास-प्रसिद्ध शब्द कहे थे कि 'प्रशा के बड़े-बड़े प्रश्न भाषणों और संसदीय मतों के द्वारा नहीं वरन् रक्त और लौह से हल होंगे।'[2]

बिस्मार्क ने कुछ ही समय में प्रशा में एक विशाल और सुसज्जित सेना का निर्माण कर दिया और अन्त में 'रक्त और लौह' की नीति का अनुसरण करते हुये उसने केवल ६ वर्षों (१८६४–७०) में सम्पूर्ण जर्मनी का एकीकरण कर दिया। १८१५ से लेकर १८४८ तक के संसदीय तथा संवैधानिक प्रयत्न असफल रहे थे। अत: वे कुख्यात हो गये थे। अब जनता ने बिस्मार्क की नई नीति को स्वीकार कर लिया।

स्लेजविग होल्स्टीन—बिस्मार्क ने तत्कालीन स्थिति का बिल्कुल ठीक अध्ययन किया था। अब वह आस्ट्रिया के साथ झगड़ा करने के हेतु अनुकूल कारण ढूंढने लगा। उसके भाग्य से उसे कारण भी मिल गया। यह था स्लेजविग होल्स्टीन का प्रश्न।

(१) ये दोनों डेन्मार्क के प्रदेश (Duchies) थे। परन्तु ये डेन्मार्क राज्य के अंग न थे। डेन्मार्क का राजा इन्हें अपने शेष राज्य में मिला नहीं सकता था। वह इन प्रदेशों का एकमात्र ड्यूक समझा जाता था। दूसरे शब्दों में इन दोनों प्रदेशों का सम्बन्ध इतना डेन्मार्क के साथ न था जितना उसके राजा के साथ।

(२) होल्स्टीन में जर्मन रहते थे, परन्तु स्लेजविग में जर्मन और डेन दोनों लगभग आधे-आधे थे।

(३) होल्स्टीन जर्मन-संघ का भी सदस्य था।

(४) एक पूर्व सन्धि के अनुसार आगस्टनबर्ग का ड्यूक भी इन दोनों प्रदेशों पर अपना दावा करता था।

(५) स्लेजविग और होल्स्टीन दोनों एक दूसरे से अविच्छिन्न (inseparable) समझे जाते थे।

जर्मनी और डेन्मार्क में उदीयमान राष्ट्रीय भावनाओं ने परिस्थिति को गम्भीर बना दिया। डेन्मार्क दोनों प्रदेशों को अपने राज्य में पूरी तरह से मिलाने की बात सोचने लगा। स्लेजविग की आधी डेन जनता ने इस आन्दोलन को पूरा योग दिया। स्लेजविग में आधी जन-संख्या जर्मन की थी। वे इस प्रदेश को जर्मन-संघ में मिलाना चाहते थे। उधर होल्स्टीन तो पहले से ही जर्मन-संघ का सदस्य था। अत: वहाँ की जनता स्लेजविग के जर्मन आन्दोलन के साथ थी।

१८४८ में डेन्मार्क ने दोनों प्रदेशों को अपने राज्य में मिलाने का प्रयत्न किया, परन्तु उन्होंने इस कार्य का विरोध करते हुए आगस्टेनबर्ग के ड्यूक के नेतृत्व में

---

1. 'The period was one of virtual dictatorship and real suspension of parliamentary life.' —Hazen

2. 'The great questions of the time are not to be solved by speeches and parliamentry votes, but by blood and iron.'

विद्रोह कर दिया और अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी। उन्होंने एक स्वतन्त्र अस्थायी सरकार की भी स्थापना कर ली। जर्मन संघ की डायट ने आगस्टेनबर्ग के ड्यूक का साथ दिया। जर्मन संघ और डेन्मार्क के बीच युद्ध छिड़ गया। वह युद्ध रुक-रुक काफी दिनों तक चलता रहा। अन्त में १८५२ में लन्दन की सन्धि हो गई। इसके अनुसार–

(१) ग्लकबर्ग का प्रिंस क्रिश्चियन आगामी राजा होगा। वह डेन्मार्क और दोनों डचीज का अधिकारी होगा।

(२) परन्तु ये दोनों डचीज डेन्मार्क से पृथक समझी जायेंगी।

(३) आगस्टेनबर्ग के ड्यूक को धन देकर उसके अधिकार को समाप्त कर दिया जायेगा।

लन्दन की इस सन्धि में इंगलैंड, फ्राँस, आस्ट्रिया, प्रशा, रूस, नार्वे और स्वीडन सम्मिलित हुए थे। परन्तु यह महत्व की बात है कि इसमें जर्मन संघ की ओर से कोई प्रतिनिधि न बुलाया गया था।

१५ नवम्बर, १८६३ को डेन्मार्क के राजा फ्रेडरिक सप्तम की मृत्यु हो गई और उसके स्थान पर ग्लकबर्ग का प्रिंस क्रिश्चियन क्रिश्चियन नवें के नाम से डेन्मार्क का राजा बनाया गया। उसने एक नवीन संविधान द्वारा स्लेजविग को अपने राज्य में मिला लिया।

उसके इस कार्य से पुनः झगड़ा उठ खड़ा हुआ। जर्मनी की संघीय डायट ने डेन्मार्क से माँग की कि वह अपने इस नये संविधान को रद्द कर दे। साथ ही संसद ने आगस्टेनबर्ग के दावे का पुनः समर्थन किया।

परन्तु बिस्मार्क ने संघीय संसद का साथ न दिया। वह इस अवसर से लाभ उठाकर स्लेजविग और होल्स्टीन पर स्वयं अधिकार करना चाहता था और साथ ही साथ आस्ट्रिया से झगड़ा भी मोल लेना चाहता था। जहां तक अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का प्रश्न है, वह उसके पक्ष में थी।[1]

इस अवसर पर बिस्मार्क ने बड़ी कूटनीतिज्ञता से काम किया। जर्मन डायट आगस्टेनबर्ग के अधिकार का समर्थन कर रही थी। अतः बिस्मार्क को अपने मार्ग से डायट को हटाना था। उसने आस्ट्रिया को यह समझाया कि स्लेजविग और होल्स्टीन के प्रश्न को संघीय डायट में न रक्खे। इससे डायट का महत्व बढ़ेगा और जर्मनी में जनतन्त्रवादी और क्रान्तिकारी विचारों को प्रोत्साहन मिलेगा। आस्ट्रिया बिस्मार्क के चक्कर में आ गया और उसने डायट को इस विवाद से बाहर कर दिया। इसके पश्चात् बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के सामने यह प्रस्ताव रक्खा कि इस प्रश्न पर आस्ट्रिया और प्रशा

1. 'Bismarck could count, thanks to Poland, on the active sympathy of Russia; upon the stupidity of the Hapsburgs; upon the anxiety of Lord Russell to avoid war at any price. Even Napoleon might look kindly upon Prussia's action if it was calculated to embroil her with Austria.' —Marriot

सम्मिलित कार्यवाही करें। आस्ट्रिया ने बिस्मार्क की यह माँग भी स्वीकार कर ली।

अब प्रशा और आस्ट्रिया ने पुरानी लन्दन की सन्धि का सहारा लेते हुए डेन्मार्क को यह धमकी दी कि उसने स्लेजविग को डेन्मार्क में मिलाने के लिए जो संविधान पास किया है वह उस अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि के प्रतिकूल है। अतः डेन्मार्क ४८ घण्टे के भीतर उस संविधान को वापस कर ले। बिस्मार्क जानता था कि डेन्मार्क में राष्ट्रीयता की लहर इतने जोरों से दौड़ रही है कि वह कभी भी इस संविधान को वापस नहीं करेगा। वह चाहता भी नहीं था कि डेन्मार्क उसे वापस करे। उसका उद्देश्य तो एकमात्र झगड़ा मोल लेना था। उसकी योजना सफल हुई। डेन्मार्क ने उसकी माँग को स्वीकार न किया। फलतः १ फरवरी, १८६४ को आस्ट्रिया और प्रशा ने डेन्मार्क के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इन दोनों ने बड़ी सरलता से डेन्मार्क को पराजित कर दिया। विवश होकर डेन्मार्क को इनके साथ विएना की सन्धि करनी पड़ी। इस सन्धि के अनुसार डेन्मार्क ने स्लेजविग होल्स्टीन के प्रदेश प्रशा और आस्ट्रिया को दे दिये।

गैस्टीन का समझौता—बिस्मार्क की कूटनीति का यह प्रथम चरण था। परन्तु अभी उसे बहुत कुछ करना था। आस्ट्रिया स्लेजविग और होल्स्टीन के प्रदेशों में कोई भी रुचि न रखता था। वह उन्हें आगस्टेनबर्ग के ड्यूक को देना चाहता था। बिस्मार्क उन्हें प्रशा में मिलाना चाहता था। अतः अपने मन्तव्य को गुप्त रखते हुये उसने आस्ट्रिया को पुनः अपने जाल में फांसा। उसके साथ उसने गैस्टीन का समझौता कर लिया। इस समझौते के अनुसार यह तय हुआ कि जब तक इन दोनों प्रदेशों के विषय में कोई निश्चित निर्णय न हो जाय तब तक आस्ट्रिया होल्स्टीन पर और प्रशा स्लेजविग पर अपना-अपना अधिकार रक्खेंगे।

गैस्टीन का समझौता बिस्मार्क की कूटनीति की महान् सफलता थी—

(१) इससे आगस्टनबर्ग के ड्यूक को मार्ग से हटा दिया गया।

(२) इन प्रदेशों में प्रशा का हित स्वीकार करा दिया गया।

(३) आस्ट्रिया होल्स्टीन को दिया गया था। परन्तु यह प्रदेश दोनों ओर से प्रशा से घिरा हुआ था। अतः इस पर अपना अधिकार बनाये रखना आस्ट्रिया के लिए बड़ा कठिन था।

इन्हीं कारणों से बिस्मार्क ने कहा था कि गैस्टीन के समझौते से उसने दरारों के ऊपर कागज मढ़ दिया था।[1] निश्चय ही आस्ट्रिया उन दरारों को न देख सका।

कुछ समय पश्चात् आस्ट्रिया को अपनी भूल ज्ञात हुई। वह समझ गया कि होल्स्टीन पर अधिकार बनाये रखना सरल नहीं है। अतः उसने आगस्टनबर्ग के ड्यूक के अधिकार को फिर से उठाया और सम्पूर्ण प्रश्न को जर्मन संघ के सम्मुख रखने की घोषणा की। बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के इस कार्य को गैस्टीन के समझौते के विरुद्ध बताया और होल्स्टीन पर आक्रमण करके उस पर भी प्रशा का अधिकार स्थापित कर दिया।

1. 'Papered over the cracks.'

इसके साथ-साथ जनमत को अपने पक्ष में करने के लिए बिस्मार्क ने यह भी प्रस्ताव किया कि जर्मन संघ में सुधार की आवश्यकता है। जब आस्ट्रिया ने इस प्रस्ताव का विरोध किया और संघीय संसद को इस बात पर तैयार कर लिया कि वह प्रशा के विरुद्ध कार्यवाही करे तो प्रशा ने जर्मन संघ का परित्याग कर दिया और आस्ट्रिया की अमैत्रीपूर्ण कार्यवाही के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस प्रकार १८६६ में आस्ट्रिया और प्रशा का युद्ध प्रारम्भ हुआ।

आस्ट्रिया की मित्रहीनता

कूटनीतिक दृष्टि से बिस्मार्क बहुत दिनों से इस युद्ध के लिए तैयारी कर रहा था। उसने योरप के अनेक देशों के साथ मैत्री करके आस्ट्रिया को पूरी तरह से मित्रहीन और असहाय बना दिया था।

संगठित और शक्तिशाली सेना साधन थी। बिस्मार्क का साध्य जर्मन संघ से आस्ट्रिया को निकाल कर प्रशा के नेतृत्व में एक नवीन जर्मन संघ का निर्माण करना था। परन्तु आस्ट्रिया से युद्ध करने के पूर्व वह अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में आस्ट्रिया को मित्रहीन (isolate) कर देना चाहता था। अतः उसने योरप के सभी प्रमुख देशों की मित्रता तथा सद्भावना प्राप्त करने की चेष्टा की।

उसने जर्मन संघ के छोटे-छोटे राज्यों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए उनके साथ आर्थिक सन्धियाँ कीं और उनके साथ प्रशा के व्यापार की वृद्धि की।

रूस—उसकी सबसे बड़ी चिन्ता रूस की मित्रता प्राप्त करना था। १८५९–६२ में वह रूस में राजदूत के रूप में जार के निकट सम्बन्ध में आ चुका था। वह कहा करता था कि रूस के हित पूर्वी समस्या मे हैं और प्रशा इस समस्या में तनिक भी रुचि नहीं रखता। अतः रूस और प्रशा के बीच झगड़े का कोई कारण नहीं है और प्रशा बड़ी सुगमता से उसकी मित्रता प्राप्त कर सकता है।[1]

रूस की मित्रता प्राप्त करने के लिये शीघ्र ही उसे एक सुअवसर प्राप्त हो गया। १८६३ में रूसी एकतन्त्रवाद के विरुद्ध अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए पोलैंड ने विद्रोह कर दिया। जिस समय योरप के अधिकांश देश, विशेषता फ्रांस, इङ्गलैंड और आस्ट्रिया, स्वतन्त्रता-प्रेमी पोलों के प्रति सहानुभूति प्रकट कर रहे थे, उस समय बिस्मार्क ने प्रतिक्रियावादी रूस का साथ दिया और स्पष्ट रूप से जार के पास संदेश भेजा कि 'उभयनिष्ठ शत्रु (पोलैण्ड) के विरुद्ध प्रशा आप के साथ कंधा मिलाकर खड़ा होगा।[2] 'बिस्मार्क की सहायता के विषय में निश्चित होकर रूस के

1. 'Prussia must never let Russia 's friendship wax cold. Her alliance is the cheapest among all continental alliances, for the eyes of, Russia are turned only tonards the East.' —Bismarck

2. 'Prussia would stand shoulder to shoulder with him against the common enemy.'

जार एलेक्जेन्डर द्वितीय ने फ्रांस, इंगलैंड और आस्ट्रिया के मौखिक विरोधों की ओर तनिक भी ध्यान न दिया और कठोर सैनिक कार्यवाही करके पोलैंड के विद्रोह का निर्दयतापूर्वक दमन कर दिया।

पोलैण्ड का विद्रोह असफल रहा। परन्तु इससे ४ निश्चित परिणाम हुये—

(क) फाँस, इंगलैण्ड और आस्ट्रिया पोलैण्ड की रक्षा न कर सके, क्योंकि वे एकमात्र कूटनीति से कार्य कर रहे थे। बिस्मार्क का इस बात पर और भी अधिक विश्वास हो गया कि कूटनीति तब तक सफल नहीं होती है जब तक उसके पीछे सशस्त्र शक्ति न हो।

(ख) पोलैण्ड का पक्ष लेने के कारण आस्ट्रिया ने रूस को अपना विरोधी बना लिया।

(ग) एकमात्र प्रशा के प्रधान मन्त्री बिस्मार्क ने ही रूस का साथ दिया था। इसलिए रूस और प्रशा में घनिष्ठता उत्पन्न हो गई।

(घ) जब कभी प्रशा और आस्ट्रिया में युद्ध होगा तो इंगलैण्ड और फ्रांस या तो प्रशा का विरोध नहीं करेंगे या पोलैंड के प्रश्न की भांति जर्मनी के प्रश्न पर उनका विरोध एकमात्र कूटनीतिक होगा।

फ्रांस—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, बिस्मार्क १८६२ में फ्रांस में राजदूत रहा था। वहाँ उसने न केवल फ्रांसीसी सम्राट् नेपोलियन तृतीय का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया था वरन् उसे प्रशा का मित्र बनाने का भी प्रयत्न किया था।

१८६५ में बिस्मार्क बिआरिज (Biarritz) में नेपोलियन तृतीय से मिला था और वहाँ उसने निम्नलिखित विषयों पर नेपोलियन तृतीय से आश्वासन प्राप्त किये थे—

(१) यदि प्रशा और आस्ट्रिया का युद्ध हो तो फ्राँस तटस्थ रहेगा।

(२) फ्रांस स्लेजविग-होल्सटीन पर प्रशा का अधिकार स्वीकार कर लेगा।

(३) वेनेशिया से आस्ट्रिया का अधिकार समाप्त हो जायेगा और वह इटली को दे दिया जायेगा।

(४) यदि प्रशा ने जर्मन संघ में सुधार का प्रस्ताव किया तो फ्रांस उसका विरोध न करेगा।

(५) यदि प्रशा ने अपने नेतृत्व में उत्तरी जर्मनी का नया संघ बनाया तो भी फ्रांस उसका विरोध न करेगा।

(६) नेपोलियन के इन समस्त कार्यों के बदले बिस्मार्क चाहेगा कि फ्रांस का दक्षिणी-पूर्वी बेल्जियम पर अधिकार हो जाय।

इस प्रकार बिआरिज की वार्ता ने बिस्मार्क को फ्राँस की ओर से पूरा आश्वासन दे दिया था।

इटली—इस समय इटली में भी स्वतन्त्रता-संग्राम चल रहा था। यह संग्राम प्रमुखतया आस्ट्रिया के विरुद्ध था। ऐसी परिस्थिति में इटली को अपने पक्ष में करना

बिस्मार्क के लिये बड़ा सरल था। सर्वप्रथम बिस्मार्क ने इटली के साथ एक व्यापारिक संधि की और तत्पश्चात् अप्रैल, १८६६ में सामरिक संधि (Military alliance)। इसके अनुसार यह तय हुआ कि—

(१) यदि प्रशा आस्ट्रिया के विरुद्ध तीन मास के भीतर युद्ध की घोषणा कर दे तो इटली भी आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध घोषित कर देगा।

(२) इसके बदले में बिस्मार्क इटली को वेनेशिया दिलायेगा।

इस संधि को 'पारस्परिक आश्वासन और सन्देह' (mutual insurance and suspicion) की सन्धि कहा जाता है। यद्यपि इटली और प्रशा दोनों ही आस्ट्रिया के शत्रु थे परन्तु फिर भी वे आपस में एक-दूसरे पर सन्देह करते थे। प्रत्येक को यह शंका रहती थी कि कहीं दूसरा पक्ष मेरी मित्रता का उपयोग एकमात्र अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए तो नहीं कर रहा है।

जो भी हो, इस सन्धि ने बिस्मार्क को इटली की ओर से भी निश्चिन्त कर दिया।

आस्ट्रिया और प्रशा का युद्ध
(Austro-Prussian War)
१८६६

आस्ट्रिया और प्रशा का युद्ध बड़ी जल्दी समाप्त हो गया। इस युद्ध को सात सप्ताह का युद्ध (Seven Weeks War) कहा जाता है। युद्ध के समय सैनिक दृष्टि से आस्ट्रिया की स्थिति निर्बल थी—

(१) आस्ट्रिया की सेना में वह शक्ति, संगठन और अनुशासन न था जो प्रशा की सेना में था।

(२) आस्ट्रिया को दो दिशाओं (Fronts) पर लड़का था—एक ओर प्रशा से और दूसरी ओर इटली से।

इस ऐतिहासिक संघर्ष में निम्नलिखित स्थानों पर प्रमुख युद्ध हुये—

(१) **कुस्तोजा का युद्ध**—इसमें आद्रिया ने इटली की सेनाओं को परास्त किया।

(२) **लीसा का सामुद्रिक युद्ध**—इसमें भी आस्ट्रिया के जहाजी बेड़े ने इटली के जहाजी बेड़े को छिन्न-भिन्न कर दिया।

(३) **सैडोवा का युद्ध**—यह युद्ध सबसे अधिक महत्वपूर्ण और निर्णायक सिद्ध हुआ। इसमें प्रशा की सेनाओं ने आस्ट्रिया की सेनाओं को बुरी तरह हराया।

इस विजय के पश्चात् यदि बिस्मार्क चाहता तो प्रशा की सेनायें आस्ट्रिया की राजधानी वियना पर भी आक्रमण और अधिकार कर सकती थीं। वास्तव में प्रशा के सेनापति और सम्राट् की भी यही इच्छा थी। परन्तु बिस्मार्क का विचार कुछ दूसरा ही था। वह आस्ट्रिया को और अधिक अपमानित नहीं करना चाहता था। वह कम से कम शक्ति-प्रयोग के द्वारा अपना उद्देश्य पूर्ण करना चाहता था। वह जानता था कि उसे भविष्य में आस्ट्रिया की मित्रता की भी आवश्यकता

पड़ सकती है। अतः वह आस्ट्रिया के साथ अधिक उदारता का व्यवहार करना चाहता था।

प्राग की संधि
(Treaty of Prague)
१८६६

सैडोवा के युद्ध में आस्ट्रिया की कमर टूट गई और उसने सन्धि की प्रार्थना की। बिस्मार्क ने फौरन इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और दोनों देशों में प्राग की सन्धि हो गई। इस सन्धि में प्रमुख धारायें निम्नलिखित थीं—

(१) पुराना जर्मन संघ तोड़ दिया गया।

(२) उसके स्थान पर प्रशा जो नवीन संघ बनायेगा उसमें आस्ट्रिया सम्मिलित नहीं किया जायेगा। आस्ट्रिया को जर्मनी की नवीन व्यवस्था मान्य होगी।

(३) प्रशा को स्लेजविग, होल्स्टीन, हैनोवर, हेस-कासेल, नसाउ, फ्रैन्कफोर्ट का स्वतन्त्र नगर प्राप्त हुये।

(४) इटली को वेनेशिया दे दिया गया।

(५) मेन नदी के उत्तर के समस्त राज्य प्रशा के नेतृत्व में जर्मन संघ में सम्मिलित कर दिये गये।

(६) दक्षिणी जर्मनी के राज्य स्वतन्त्र रहे।

आस्ट्रिया-प्रशा युद्ध के परिणाम

आस्ट्रिया और प्रशा का उपर्युक्त युद्ध योरपीय इतिहास की एक प्रमुख घटना है। इसने निम्नलिखित प्रमुख प्रभाव उत्पन्न किये—

(१) दीर्घकाल के पश्चात् आस्ट्रिया जर्मन-संघ से निकाल दिया गया।

(२) इस युद्ध ने आस्ट्रिया के युग के अन्त और प्रशा के युग के उदय की घोषणा की। इस युद्ध के पश्चात् प्रशा अधिकाधिक महत्वपूर्ण होता गया।

(३) बिस्मार्क की इस सैनिक सफलता ने सैनिकवाद की उपयोगिता सिद्ध कर दी। अब जर्मनी का जनमत उदार दलों (Liberals) की बिस्मार्क-विरोधी नीति का समर्थक न रहा। जर्मनी में जनतन्त्रवादी दर्शन का ह्रास हो गया।

(२) जिस प्रकार इस युद्ध ने जर्मनी के एकीकरण में सहायता दी उसी प्रकार इटली के एकीकरण में भी। वेनेशिया से आस्ट्रिया को हटना पड़ा और वह इटली के सार्डीनिया-पीडमाण्ट राज्य में मिला दिया गया।

(५) जर्मनी और इटली से निकल जाने के पश्चात् अब आस्ट्रिया ने अपने शेष साम्राज्य की ओर अधिक ध्यान दिया। इस समय आस्ट्रिया-साम्राज्य में स्थित हंगेरी के निवासी (Magyars) अपनी स्वतन्त्रता के लिये आन्दोलन चला रहे थे। आस्ट्रिया ने १८६७ में हंगेरी के साथ एक समझौता (Ausgleich) कर लिया। इसके अनुसार आस्ट्रिया और हंगेरी दोनों अपने आन्तरिक मामलों में स्वतन्त्र और पृथक् राज्य मान लिये गये। परन्तु युद्ध और विदेशी नीति पर दोनों देशों ने आपस

में सहयोग करना स्वीकार किया। हंगेरी ने आस्ट्रिया के सम्राट् को अपना राजा स्वीकार किया।

दक्षिणी जर्मनी—दक्षिणी जर्मनी के राज्य अभी तक बिस्मार्क के नवीन जर्मन संघ में सम्मिलित न हुये थे। वे अब भी बिस्मार्क को सन्देह की दृष्टि से देखते थे। अतः बिस्मार्क ने उनके साथ बड़ी सावधानी और सतर्कता बरती। उसने उन्हें उत्तरी जर्मनी के संघ में जबर्दस्ती सम्मिलित करने का प्रयास न किया। उसने उन्हें स्वतन्त्र राज्यों के रूप में स्वीकार कर लिया। यही नहीं, उसने अपने कार्यों से इन राज्यों के सामने यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि प्रशा उनका हितैषी है, शत्रु नहीं। उसने उन्हें व्यापारिक सुविधायें दीं। उनकी आर्थिक दशा को सुधारने के लिये उन्हें कर्ज दिया। उनकी सेना और प्रशासन को संगठित करने के लिये उसने प्रशा के सेनापतियों और प्रशासकों को भेजा।

फ्रांस से सम्बन्ध—समस्त कार्यों के पश्चात् बिस्मार्क ऐसे अवसर की प्रतीक्षा करने लगा जब दक्षिणी जर्मनी के राज्य स्वयं ही उत्तरी जर्मनी के संघ में सम्मिलित होने की प्रार्थना करें। उसका विचार था कि यदि सम्पूर्ण जर्मनी के सामने कोई राष्ट्रीय संकट आ जाय तो सारे राज्य अपने पारस्परिक मतभेदों को भुला कर प्रशा की पताका के नीचे आ सकते हैं।

यह राष्ट्रीय संकट फ्रांस की ओर से उपस्थित हो सकता था। दूसरे शब्दों में बिस्मार्क जर्मनी के एकीकरण को पूर्ण करने के लिये फ्राँस से युद्ध करना चाहता था। वह कहा करता था कि 'A war with France lay in the logic of history.'

बिस्मार्क के भाग्य से फ्रांस भी प्रशा से युद्ध करना चाहता था। इसके दो प्रमुख कारण थे —

(१) फ्रांस का सम्राट् नेपोलियन तृतीय अब अच्छी तरह समझ गया था कि १८६६ के युद्ध के समय उसने तटस्थ रह कर गलती की थी। उसकी तटस्थता से ही प्रशा विजयी और आस्ट्रिया पराजित हुआ था। अभी तक आस्ट्रिया प्रशा के लिये अंकुश था। परन्तु आस्ट्रिया के पराजित होने के पश्चात् प्रशा बहुत अधिक शक्तिशाली हो गया था। नेपोलियन तृतीय ने अपनी अदूरदर्शिता से प्रशा के नेतृत्व में उत्तरी जर्मनी को एक करके फ्रांस की सीमा पर एक नया खतरा उत्पन्न कर दिया था। इसी से यह कहा जाता है कि सैडोवा के युद्ध में आस्ट्रिया नहीं बरन् फ्रांस पराजित हुआ था।[1]

(२) इसके साथ ही साथ नेपोलियन तृतीय की आन्तरिक स्थिति डावाँडोल हो रही थी। देश में उत्तरोत्तर उसका विरोध बढ़ रहा था। अतः वह अपनी जनता का ध्यान घरेलू समस्याओं से हटा कर कहीं अन्यत्र लगाना चाहता था। फ्रांस की जनता बिस्मार्क को अपना शत्रु समझती थी। अतः यदि नेपोलियन तृतीय बिस्मार्क के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दे तो उसके देश की जनता उसका विरोध करना छोड़

1. 'It was France that was defeated at Sadowa.'

कर राष्ट्रीय शत्रु फ्रांस के विरुद्ध उसका पूर्ण सहयोग करेगी और इस प्रकार उसका सिंहासन सुरक्षित हो जायेगा।

फ्राँस की मित्रहीनता
(Isolation of France)

बिस्मार्क ने फ्रांस के विरुद्ध युद्ध करने के पूर्व उसे भी योरप में नितान्त मित्रहीन बना दिया।

रूस—क्रीमिया-युद्ध से रूस और फ्राँस की शत्रुता चल रही थी। बिस्मार्क ने इस शत्रुता को और अधिक बढ़ाया और रूस को प्रोत्साहित किया कि वह पेरिस सन्धि की 'काला सागर सम्बन्धी धारा' (Black Sea Clause) को तोड़ दे और काला सागर पर पुनः दुर्गीकरण करना प्रारम्भ कर दे तथा वहाँ अपना जहाजी बेड़ा भी रक्खे। इस कार्य में बिस्मार्क ने रूस को सहायता देने का वचन दिया।

आस्ट्रिया—सैडोवा के युद्ध के पश्चात् बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के साथ बड़ी उदारता का बर्ताव किया था। प्राग सन्धि की धारायें भी काफी नरम थीं। विजयी होते हुये भी बिस्मार्क ने आस्ट्रिया की राजधानी में प्रवेश न किया था और न आस्ट्रिया से विशेष हर्जाना ही वसूल किया था। उसने युद्ध-क्षति की जो पूर्ति कराई थी वह नगण्य थी। इन सब बातों का प्रभाव यह हुआ था कि आस्ट्रिया शीघ्र ही अपनी पराजय को भूल गया और उसने प्रशा-फ्रांस के युद्ध में तटस्थ रहने का निश्चय कर लिया।

इटली—इटली के राष्ट्रीय राज्य सार्डीनिया-पीडमाण्ट ने क्रीमिया-युद्ध में फ्रांस की सहायता की थी। इसके पश्चात् फ्रांस ने प्लाम्बिये के समझौते (Pact of Plombiers) के अनुसार आस्ट्रिया के विरुद्ध १८५९ में सार्डीनिया-पीडमाण्ट को प्रारम्भिक सहायता भी दी थी। परन्तु कुछ काल पश्चात् नेपोलियन तृतीय ने उस समझौते को भंग करते हुये सार्डीनिया-पीडमाण्ट का साथ छोड़ दिया और आस्ट्रिया के साथ विलाफ्रैन्का की सन्धि कर ली। उसके इस कार्य से सार्डीनिया-पीडमाण्ट वेनेशिया पर अधिकार नहीं कर पाया था। इटली ने नेपोलियन तृतीय के इस कार्य को विश्वासघात समझा था और तभी से वे उससे मन में असन्तुष्ट थे।

इसके साथ ही साथ नेपोलियन तृतीय रोम के पोप-राज्य का समर्थक था। नेपोलियन तृतीय ने १८४९ में मैजिनी और गैरीबाल्डी की राष्ट्रीय सेनाओं को पराजित करके रोम में पुनः पोप के राज्य की स्थापना की थी। तब से फ्राँसीसी सेनायें पोप की रक्षा कर रही थीं। इस समय तक रोम-राज्य ही ऐसा था जो परतन्त्र था। अतः इटली इसे भी अपने अधिकार में करना चाहता था। बिस्मार्क ने इस परिस्थिति से पूरा लाभ उठाया। उसने इटली को आश्वासन दिया कि जब फ्रांस और प्रशा का युद्ध छिड़े तो इटली रोम-राज्य पर अपना अधिकार कर ले। इस प्रकार इटली भी फ्राँस के विरुद्ध और प्रशा के पक्ष में था।

दक्षिणी जर्मनी के राज्य—आस्ट्रिया की पराजय के पश्चात् नेपोलियन तृतीय ने बिस्मार्क से अपनी तटस्थता के बदले में प्रदेश मांगने प्रारम्भ किये। इन

जर्मनी का एकीकरण
1815 - 1870
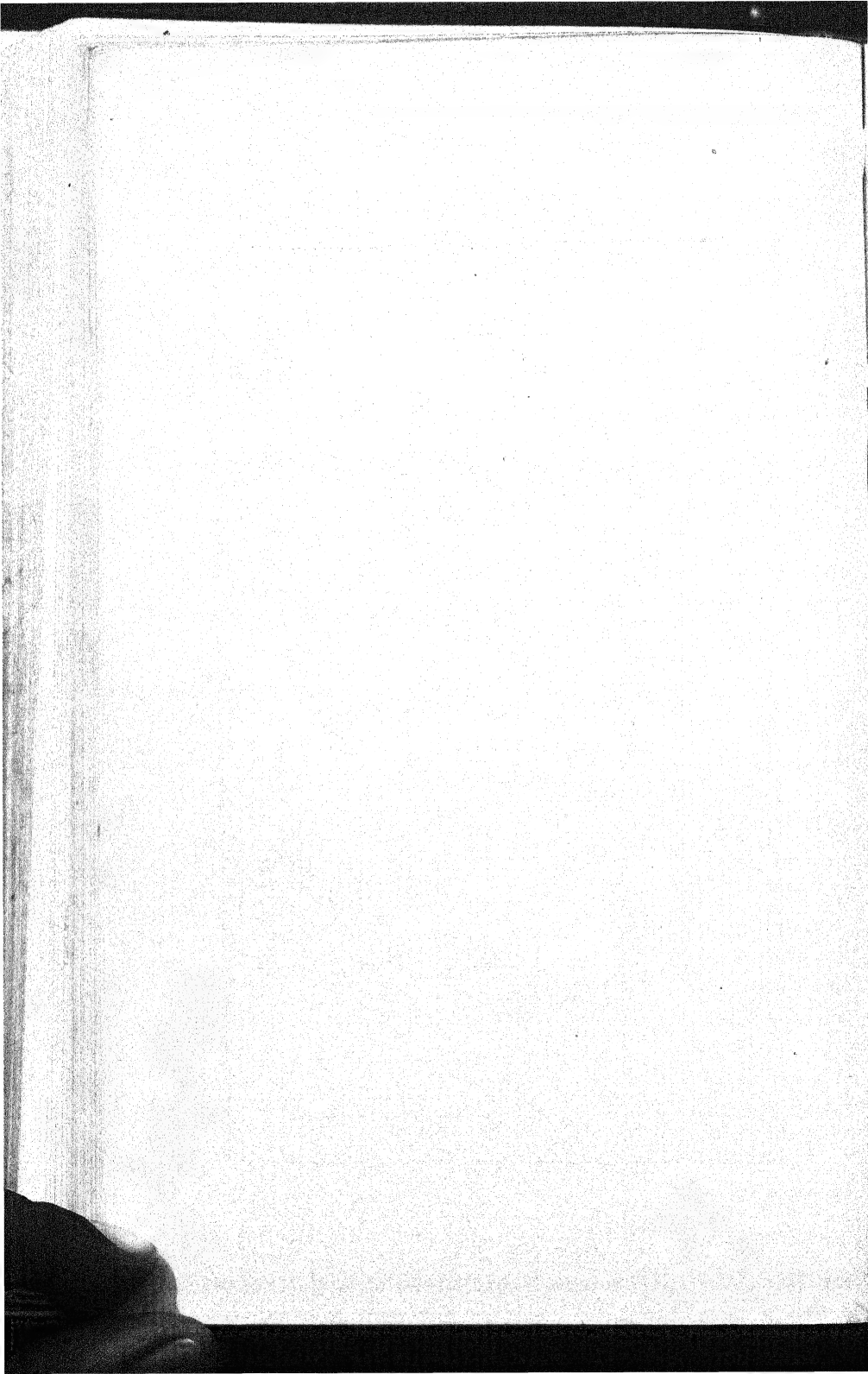
प्रदेशों में मेंज, बवेरियन पैलिटिनेट और लग्जेम्बर्ग भी थे। बिस्मार्क ने इन मांगों को प्रकाशित कर दिया। जब दक्षिणी जर्मनी के राज्यों को यह पता चला कि नेपोलियन उनके देश से भू-प्रदेशों को हड़पने की बात सोच रहा है तो वे सब उसके घोर शत्रु हो गये और उन्होंने बिस्मार्क की पताका के नीचे आकर उसका विरोध करने का निश्चय किया।

इंगलैंड— नेपोलियन तृतीय ने बिस्मार्क से बेल्जियम भी मांगा था। इंगलैंड बेल्जियम की प्रादेशिक अखण्डता और तटस्थता को बड़ा महत्वपूर्ण समझता था। उसे जब यह विदित हुआ कि नेपोलियन तृतीय बेल्जियम पर अधिकार करना चाहता है तो वह भी उसका घोर विरोधी हो गया।

इस प्रकार बिस्मार्क ने अपनी कूटनीति से फ्रांस को एकाकी और मित्रहीन कर दिया।

फ्रांस से युद्ध का तात्कालिक कारण

इस पृष्ठ-भूमि में कोई भी सामान्य कारण दोनों देशों के बीच युद्ध प्रारम्भ कर सकता था। यही हुआ। स्पेन की जनता ने १८६८ में अपनी निरंकुश रानी आइजाबेला के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और उसे देश से भगा दिया। अब होहेनजोलर्न वंश के राजकुमार लिओपोल्ड से प्रार्थना की गई कि वह स्पेन का सिंहासन स्वीकार कर ले। परन्तु लिओपोल्ड प्रशा के राजा का सम्बन्धी था। फ्रांस को भय था कि लिओपोल्ड के राजा होते ही स्पेन पर प्रशा का प्रभाव स्थापित हो जायगा। अतः फ्रांस ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। इस विरोध को शान्त करने के लिये लिओपोल्ड ने स्पेन का राजा बनने से इंकार कर दिया। अब फ्रांसीसी राजा नेपोलियन ने प्रशा से यह माँग की कि वह भविष्य में कभी भी लिओपोल्ड को स्पेन के सिंहासन पर बैठाने का प्रयत्न न करेगा। इस सम्बन्ध में प्रशा में फ्राँसीसी राजदूत बेनेडेटी ने प्रशा के राजा विलियम से एम्स में बातचीत की। विलियम ने नेपोलियन की माँग को अस्वीकार कर दिया और अपनी वार्ता का सारांश तार द्वारा अपने प्रधान मन्त्री बिस्मार्क के पास भेज दिया। यह तार एम्स का तार (Ems Telegram) कहलाता है। बिस्मार्क ने इस तार के शब्दों में हेर-फेर करके उसे प्रकाशित कर दिया। इस हेर-फेर के पश्चात् तार को पढ़ने से ऐसा प्रकट होता था कि एम्स में प्रशा के राजा विलियम प्रथम ने फ्रांसीसी राजदूत बेनेडेटी का अपमान किया है। इस घटना से फ्रांसीसी जनता प्रशा से बड़ी क्रुद्ध हो गई और वह अपमान का बदला लेने के लिये नेपोलियन से युद्ध की माँग करने लगी। बिस्मार्क यही चाहता था। उसने फ्रांस को भड़काने के लिये ही तार में परिवर्तन किया था।

युद्ध की घटनायें

अपनी जनता को सन्तुष्ट करने के लिये नेपोलियन तृतीय ने १८७० में प्रशा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। फ्रांसीसी सेना का नेतृत्व स्वयं नेपोलियन ने किया। परन्तु फ्रांस में प्रशा जैसी न तो सैनिक कुशलता थी और न सैनिक संगठन।

दोनों सेनाओं के बीच पहले वर्थ (Worth) और ग्रेवलाथ (Graveloth) में युद्ध हुए। इन दोनों युद्धों में फ्रांसीसी सेनायें पराजित हुईं। सबसे अधिक महत्वपूर्ण युद्ध सेडन (Sedan) में हुआ। इसमें प्रशा के सेनापति फान मोल्टके (Von Moltke) ने फ्राँसीसी सेना को इतनी बुरी तरह परास्त किया कि उसे आत्मसमर्पण करना पड़ा। इस युद्ध में फ्रांसीसी सम्राट् नेपोलियन तृतीय भी बन्दी बना लिया गया। सेडन की पराजय के परिणामस्वरूप फ्रांस में द्वितीय साम्राज्य (Second Empire) का पतन हो गया।

युद्ध के परिणाम

फ्राँस और प्रशा के इस युद्ध ने अनेक महत्वपूर्ण परिणाम उत्पन्न किये—

(१) इस युद्ध में दक्षिणी जर्मनी के राज्यों ने भी बिस्मार्क का साथ दिया और परिणामस्वरूप सम्पूर्ण जर्मनी की एकता स्थापित हो गई। प्रशा का राजा अब जर्मनी का सम्राट् बन गया। सम्पूर्ण देश के लिए एक संघीय संविधान बनाया गया। इसके अन्तर्गत दो भवनों की एक संसद थी। उच्चतर भवन (Bundesrath) में भिन्न-भिन्न राज्यों के प्रतिनिधि आते थे और निम्नतर भवन (Reichstag) में सम्पूर्ण जनता के प्रतिनिधि।

(२) इस युद्ध ने इटली के एकीकरण को भी पूर्ण कर दिया। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, १८६६ तक रोम को छोड़कर इटली के समस्त राज्य सार्डीनिया-पीडमाण्ट के नेतृत्व में एक हो चुके थे। रोम में पोप का राज्य था और उसकी रक्षा फ्रांसीसी सेनायें कर रही थीं। १८७० में जब फ्राँस और प्रशा में युद्ध छिड़ा तो नेपोलियन तृतीय ने प्रशा के विरुद्ध लड़ने के लिए रोम से भी अपनी सेनायें बुला लीं। फ्राँसीसी सेनाओं के जाते ही सार्डीनिया-पीडमाण्ट के सम्राट् विक्टर एमानुएल ने अपनी सेनायें भेजकर रोम पर अधिकार कर लिया। अब रोम सम्पूर्ण इटली की राजधानी बनाया गया।

(३) बिस्मार्क के प्रोत्साहन से रूस ने भी इस युद्ध का पूरा लाभ उठाया। उसने फ्रांस को युद्ध में फंसा हुआ देखकर पेरिस की सन्धि को तोड़ते हुए काले सागर पर पुनः अपना जहाजी बेड़ा रख दिया और वहाँ अपना दुर्गीकरण करना भी प्रारम्भ कर दिया।

(४) इस युद्ध ने फ्रांसीसी इतिहास पर भारी प्रभाव डाला। वहाँ द्वितीय साम्राज्य (Second Empire) का अन्त हो गया और उसके स्थान पर तृतीय गणतन्त्र (Third Republic) की स्थापना हुई।

प्रशा ने फ्राँस से अल्सेस और लारेन के प्रदेश छीन लिये। इस कार्य से फ्रांस और प्रशा में दीर्घकालीन शत्रुता का जन्म हुआ। यह शत्रुता १८७० से १९१४ तक बराबर चलती रही। यह शत्रुता भी प्रथम महायुद्ध का एक सबल कारण बनी।

(५) इस युद्ध के परिणामस्वरूप विएना कांग्रेस के कार्य को बड़ा भारी धक्का लगा। इस कांग्रेस ने इटली और जर्मनी में जो व्यवस्था बना रक्खी थी उसका अन्त हो गया।

(६) योरप में फ्रांस का पराभव हो गया और शक्तिशाली जर्मनी का प्रादुर्भाव हुआ। अब योरप में किसी भी देश में इतनी शक्ति न थी जो जर्मनी का सामना कर सके। १८७० से १९१४ तक का योरपीय इतिहास जर्मनी की नीति से प्रभावित है।

(७) इस युद्ध से लाभ उठाकर रूस ने पेरिस की अपमानजनक सन्धि को तोड़ दिया और काले सागर पर पुनः अपना प्रभाव स्थापित कर लिया। पूर्वी समस्या में वह पुनः एक खतरा बन गया।

प्रश्न

१ सम्राट् विलियम प्रथम का चरित्र-चित्रण कीजिये। उसने प्रशा का सैनिकीकरण कैसे किया ?

२ बिस्मार्क के विचार क्या थे ? वह जर्मनी का निर्माता क्यों कहा जाता है ?

३ जर्मनी के इतिहास में स्लेजविग-होल्स्टीन प्रश्न का क्या महत्व है ?

4 'Not by speeches and majority votes are the great questions of the day decided but by blood and iron.' Explain how Bismarck brought about the unification of Germany.

5 'The year 1866 is a turning point in the history of Prussia, of Austria, of France, of Modern Europe.' (Hazen). Discuss.

6 What were the causes and effects of the unification of Germany during your period ?

7 'In no county was the result of the battle of Sadowa such an unwelcome surprise as in France.' Discuss.

—:o:—

४

इटली

(१८४८-१८७०)

इटली का असफलता-काल, शिक्षायें, कैवूर का उदय, उसके उद्देश्य, गृह-नीति, विदेशी नीति, प्लाम्बिये का समझौता, आस्ट्रिया से युद्ध, विलाफ्रैन्का की सन्धि, मध्य इटली पर अधिकार, गैरीबाल्डी की जीवनी, सिसली और नेपल्स पर अधिकार, कैवूर का मूल्यांकन, वेनेशिया पर अधिकार, रोम पर अधिकार।

असफलता का काल—१८१५ से लेकर १८४८ तक इटली के देशभक्त निरन्तर अपना स्वतन्त्रता-संग्राम चलाते रहे। परन्तु उन्हें सफलता न मिली। इस असफलता के निम्नलिखित कारण बताये जा सकते हैं—

(१) इटली-निवासियों के सम्मुख कोई एक निश्चित योजना न थी। वे भिन्न-भिन्न उद्देश्यों को लेकर भिन्न-भिन्न ढंगों से कार्य कर रहे थे। मैजिनी गणतन्त्र की स्थापना करना चाहता था। परन्तु गिओबर्टी और उसके अनुयायी पोप के नेतृत्व में संघीय शासन की स्थापना के लिये प्रयत्नशील थे। सार्डीनिआ-पीडमाण्ट के राज-नीतिज्ञ राजतन्त्र के पक्ष में थे।

(२) इटली में कोई भी ऐसा दल या संगठन न था जो सम्पूर्ण देश को अपनी ओर आकृष्ट कर सकता। कार्बोनारी की गुप्त कार्यवाहियों और छोटे-मोटे विद्रोहों से अधिक लाभ की आशा न थी। मैजिनी के 'यंग इटली' नामक दल के पीछे भी लोकमत न था। यह गणतन्त्रवादियों का संगठन समझा जाता था।

(३) १८१५ से १८४८ तक इटली में किसी भी ऐसे कूटनीतिज्ञ का अविर्भाव न हुआ था जो इटली की समस्याओं को यथार्थ में समझ सकता और उनका कोई निश्चित हल ढूंढ सकता। मैजिनी एकमात्र दार्शनिक था और गैरीबाल्डी एक-मात्र योद्धा। पहले ने प्रेरणा दी और दूसरे ने तलवार। परन्तु किसी दूरदर्शी कूट-नीतिज्ञ के अभाव में दोनों ही विफल हो रहे थे।

(४) अभी तक इटली के आन्दोलनकारियों का यह विश्वास था कि वे एकमात्र अपने ही साधनों से इटली को स्वतन्त्र और एक करा लेंगे। उनका सिद्धांत था—'इटली अपनी रक्षा आप कर सकता है।[1]' यह त्रुटिपूर्ण दृष्टिकोण था। इटली की समस्या एकमात्र स्थानीय समस्या न थी। वह अन्तर्राष्ट्रीय समस्या थी। १८१५ में इटली में जो व्यवस्था स्थापित की गई थी उसे वियना सम्मेलन ने बनाया था।

1. 'Italia fara da cse.'

उस व्यवस्था में परिवर्तन करना अन्तर्राष्ट्रीय समझौते को भंग करना था। उस समझौते की रक्षा करने के लिए दूसरे देश इटली के स्वतन्त्रता-संग्राम के विरुद्ध हस्तक्षेप कर सकते थे।

(५) १८१५ से लेकर १८४८ तक इटली के स्वतन्त्रता-संग्राम की असफलता का प्रमुख कारण आस्ट्रिया था। लोम्बार्डी और वेनेशिया में उसका राज्य था। पर्मा, मोडेना और टस्कनी के शासक आस्ट्रिया के राजवंश से सम्बन्धित थे। नेपल्स और सिसली के बूर्बोवंशीय शासन ने आस्ट्रिया के साथ सन्धि कर रक्खी थी। रोम का पोप आस्ट्रिया का समर्थक था। इस परिस्थिति में जब तक आस्ट्रिया की स्थिति को संकटपूर्ण न बनाया जाय तब तक इटली का स्वतन्त्रता-संग्राम कभी भी सफल नहीं हो सकता था।

(६) इटली की स्वतन्त्रता का प्रश्न एकमात्र राजनीतिक न था, वह सामाजिक, बौद्धिक और आर्थिक भी था। अभी तक किसी भी राज्य ने सामाजिक सुधारों, बौद्धिक विकास और आर्थिक योजनाओं से जनसाधारण में पूर्ण चेतना, आत्मविश्वास, संगठन और अनुशासन उत्पन्न न किया था। अतः इटली का स्वतन्त्रता-संग्राम अभी तक एकपक्षीय और सीमित था।

असफलता-काल की शिक्षायें—१८१५ और १८४८ के बीच जो स्वतन्त्रता-संग्राम चला वह इटली को स्वतन्त्रता तो नहीं दिला सका, परन्तु उसने इटली-निवासियों को अनेक महत्वपूर्ण शिक्षायें प्रदान कीं—

(१) मैजिनी की असफलता ने गणतन्त्रवादी विचारधारा को बदनाम कर दिया। इटली-निवासी अब किसी नये मार्ग का अनुसरण करने के लिये तैयार थे।

(२) १८४८–४९ में पोप के विश्वासघात ने उसे भी जनता में बदनाम कर दिया। अब वह उसके नेतृत्व में चलने के लिए तैयार न थी। पोप के नेतृत्व में संघीय शासन की स्थापना का कार्यक्रम समाप्त हो गया।

(३) इस समय तक इटली के समस्त राज्यों में सार्डीनिया-पीडमाण्ट का राज्य सबसे अधिक लोकप्रिय हो गया। वहाँ इटली का राष्ट्रीय वंश—सेवाय वंश—राज्य कर रहा था। उसके राजा चार्ल्स एल्बर्ट ने स्वतन्त्रता-संग्राम का नेतृत्व किया था। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी विक्टर एमानुएल द्वितीय ने आस्ट्रिया के दबाव के बावजूद भी अपने राज्य में उदार संविधान को रद्द नहीं किया था। इन सब बातों से स्पष्ट हो गया था कि सार्डीनिया-पीडमाण्ट ही आगामी स्वतन्त्रता-संग्राम का नेतृत्व करेगा[1] और स्वतन्त्र इटली में राजतन्त्र की स्थापना होगी।

1: The revolutions of 1848–49 gave the Italian cause 'a dynasty to represent it and a people to defend it.'

पुनश्च—

'Except the young sovereign who rules Piedmont, I see no one who would undertake our emancipation. Instead of imitating Pius, Ferdinand and Leopold who violated their sworn compacts, he maintains his with religious observance.' –Gioborsti

(४) इस समय तक यह भी स्पष्ट हो गया था कि इटली अकेले अपनी स्वतन्त्रता और एकता प्राप्त नहीं कर सकता; इटली का प्रश्न अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न है और वह कुछ बड़े देशों के सहयोग और सहानुभूति से ही हल हो सकता है।

कैवूर का उदय (१८१०–६१)

कैवूर की जीवनी—इसी पृष्ठ-भूमि पर इटली में एक महान् कूटनीतिज्ञ का उदय हुआ जिसने इटली के इतिहास को एक नई दिशा दी। यह कैवूर था।

कैवूर का जन्म १८१० में पीडमाण्ट के एक सामन्त माइकेल बेन्सो के घर में हुआ था। १० वर्ष की आयु में वह ट्यूरिन की मिलिटरी एकेडेमी में शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेजा गया। अपनी शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् वह सेना में इंजीनियर हो गया था। परन्तु प्रारम्भ से ही उसकी रुचि राजनीति में थी। वह उदार राजतन्त्रवादी और संविधानवादी सुधारक था। इस प्रकार के विचारों के रहते हुये वह सेना में अधिक समय तक न रह सकता था। अतः उसने १८३१ में सेना में इन्जीनियरी का पद छोड़ दिया और अपने घर जाकर खेती के काम में लग गया। साथ-साथ वह राजनीतिक प्रश्नों में भी बराबर रुचि लेता रहा। वह इंगलैंड और फ्राँस भी गया। इंगलैंड की शासन-पद्धति ने उसे विशेष रूप से प्रभावित किया। १८४२ मेंउसने एक संगठन (Associazone Agraria) की स्थापना की। कुछ समय में यह संगठन बड़ा प्रभावशाली हो गया।[1]

१८४७ में उसने 'रिसार्जिमेण्टो' (Resorgimento) नामक पत्र निकालने लगा। इस पत्र के द्वारा उसने पीडमाण्ट में सुधार-आन्दोलन चलाया। इस आन्दोलन के उद्देश्य थे—(१) इटली की स्वतन्त्रता, (२) राजाओं और जनता में मेल, (३) सुधार तथा (४) राज्यों का पारस्परिक सहयोग। धीरे-धीरे उसका प्रभाव बढ़ता गया। १८५० में वह पीडमाण्ट की कैबिनेट का सदस्य बनाया गया। वह कृषि और वाणिज्य का मन्त्री नियुक्त हुआ। १८५१ में उसे अर्थ और नौसेना के विभाग भी दे दिये गये। १८५२ में वह पीडमाण्ट का प्रधान मन्त्री नियुक्त हुआ। बीच में एक छोटे से काल को छोड़कर वह १८६१ तक निरन्तर इस पद पर बना रहा। १८६१ में उसकी मृत्यु हो गई।

कैवूर के प्रमुख उद्देश्य—यदि हम कैवूर के समस्त विचारों और कार्यों का विश्लेषण करें तो विदित होगा कि उसने कुछ स्पष्ट उद्देश्यों को लेकर कार्य प्रारम्भ किया था—

(१) वह सर्वप्रमुख व्यक्ति था जिसने यह अनुभव किया कि इटली के स्वतन्त्रता-संग्राम का नेतृत्व राष्ट्रीय राज्य सार्डीनिया-पीडमाण्ट ही कर सकता है। वह राजतन्त्रवादी था और राजतन्त्र के अन्तर्गत ही इटली को एक करना चाहता था।

(२) उसने राजनीतिक प्रश्नों के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक और बौद्धिक

---

1. 'An important channel and instrument of political influence.'
--Acton

प्रश्नों पर भी जोर दिया। यदि सार्डीनिया-पीडमाण्ट को इटली के स्वतन्त्रता-संग्राम का नेतृत्व करना है तो उसे राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और बौद्धिक सभी दृष्टि-कोणों से आदर्श राज्य बनने का प्रयास करना चाहिये। ऐसा करने पर ही इटली के अन्य राज्य सार्डीनिया-पीडमाण्ट की ओर आकृष्ट होंगे।[1]

(३) सर्वप्रथम कैवूर ने यह अनुभव किया कि इटली की स्वतन्त्रता का प्रश्न स्थानीय न होकर अन्तर्राष्ट्रीय है। अतः प्रधान मन्त्री होते ही वह इस बात के लिये प्रयत्न करने लगा कि वह कुछ प्रमुख योरपीय देशों के साथ मित्रता और सद्भावना उत्पन्न करे।

(४) वह जानता था कि इटली से विदेशियों को निकालने के लिये उसे सशस्त्र युद्ध करना पड़ेगा। इस कार्य के लिये कार्बोनारी जैसी संस्थाओं के गुप्त विप्लवों और गैरीबाल्डी जैसे साहसिकों के स्वयं-सेवकों से कार्य न चलेगा। इसके लिये उसे अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित एक प्रशिक्षित और अनुशासित सेना की आवश्यकता होगी। अतः उसने सार्डीनिया-पीडमाण्ट के सैनिक संगठन को अपना एक प्रमुख उद्देश्य बनाया।

(५) कैवूर लोकतन्त्रवादी था। वह एकमात्र शस्त्र-बल से ही अपने निर्णयों को आरोपित न करना चाहता था वरन् अपने साथ लोकमत और संसद को लेकर चलना चाहता था। इसी से जहाँ एक ओर उसने सैनिक तैयारी की वहाँ दूसरी ओर इटली के लोकमत को भी अपने पक्ष में संगठित किया। वह कहा करता था—

'Italy must make herself by means of liberty, or we must give up trying to make her'

कैवूर की गृह-नीति

उपर्युक्त उद्देश्यों को सम्मुख रखकर कैवूर ने अपनी गृह-नीति का विकास किया। उसकी गृह-नीति ने सार्डीनिया-पीडमाण्ट को युगान्तरकारी कार्यों के लिये पूरी तरह से तैयार कर दिया।

राजनीतिक कार्य—कैवूर ने सवैधानिक शासन को दृढ़ किया। वह सभी काम लोकमत के अनुकूल और संसद के माध्यम से करना चाहता था। उसने मताधिकार को व्यापक बनाया और भाषण तथा लेख की स्वतन्त्रता दे दी। उसने प्रेस को प्रोत्साहित किया जिससे वह स्वतन्त्रता-पूर्वक विभिन्न विचारों को व्यक्त कर सके।

---

1. 'It would gather to itself all living forces of Italy and will be in a position to lead her to the high destiny to which she is called.' —Cavour

पुनश्च—

'Piedmont must begin by raising herself, by re-establishing in Europe as well as in Italy a position and a credit equal to her ambition.' —Cavour

धार्मिक कार्य—वह असाम्प्रदाय राज्य का समर्थक था। उसका नारा था—'स्वतन्त्र राज्य में स्वतन्त्र चर्च'।'[1] वह राजनीतिक विषयों में चर्च के हस्तक्षेप को पसन्द न करता था। पादरी इटली के एकीकरण के विरोधी थे। वे डरते थे कि इटली के एक हो जाने से पोप का राज्य भी समाप्त हो जायेगा। अत: केवूर ने चर्च के विशेषाधिकारों का दमन दिया और एकमात्र धार्मिक विषयों में ही अपनी कार्य-वाहियों को सीमित रखने के लिये विवश किया। उसने पादरियों के मठों का भी दमन किया।

आर्थिक कार्य—सार्डीनिया-पीडमाण्ट की आर्थिक उन्नति के लिये भी कैवूर ने अनेक कदम उठाये। उसने कृषि की उन्नति के लिए विविध कार्य किये। कृषकों को आर्थिक सहायता और वैज्ञानिक परामर्श दिया गया। उनके लिये नहरें बनवाई गईं तथा सहकारी समितियाँ खोली गईं।

कैवूर स्वतन्त्र व्यापार (Free trade) का समर्थक था। उसका मत था कि प्रतियोगिता के कारण देश में विदेशी सम्पत्ति लगेगी और स्वदेशी उद्योग-धन्धे अपने विकास की अधिकाधिक चेष्टा करेंगे। उसने पीडमाण्ट और अन्य राज्यों के बीच व्यापारिक सन्धियाँ कीं। चर्च की बहुत सी भूमि छीन कर उसका सार्वजनिक उपयोग किया गया।

यातायात को सुविधा देने के लिये कैवूर ने सड़कों और रेलवे का निर्माण कराया।

१८४८-४६ के युद्धों में पीडमाण्ट को बड़ी आर्थिक हानि हुई थी। उसने जो ऋण लिये थे उन पर उसे प्रतिवर्ष ३ लाख लायर ब्याज देना पड़ रहा था। कैवूर ने राज्य की चतुर्दिक समृद्धि करके और नये करों को लगाकर इस कमी को पूरा किया।

सैनिक कार्य—कैवूर का विश्वास था कि इटली का एकीकरण बिना युद्ध के न होगा। अत: उसने सार्डीनिया-पीडमाण्ट के सैनिक संगठन को ऊंची प्राथमिकता दी। भाग्य से उसे ला मारमोरा (La Marmora) नामक कुशल सेनापति की सेवायें प्राप्त थीं। उसके परामर्श से प्रतिवर्ष सार्डीनिया-पीडमाण्ट की संसद अपने बजट में एक भारी धनराशि सैनिक संगठन के लिये पास करती थी। परिणामत: थोड़े ही समय में उसके पास ६० हजार सैनिकों की एक सुसंगठित सेना हो गई।

इसके साथ ही साथ उसने एक जहाजी बेड़े का भी निर्माण किया। राज्य के विभिन्न स्थानों पर दुर्गों का भी निर्माण किया गया।

इस प्रकार उसने सार्डीनिआ-पीडमाण्ट को इटली के भाग्य-निर्माण के लिये सर्वथा तैयार कर दिया।

विदेशी-नीति

क्रीमिया-युद्ध (१८५४-५६)—मैजिनी और कैवूर के दृष्टिकोणों में सबसे बड़ा

1 'A Free Church in a Free State'

अन्तर यह था कि मैजिनी एकमात्र इटली-निवासियों के प्रयत्नों से स्वतन्त्रता प्राप्त करना चाहता था, जब कि कैवूर का विश्वास था कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिये विदेशी सहायता परमावश्यक है। अपने इसी विश्वास के कारण वह प्रधानमन्त्री होते ही कुछ प्रमुख योरपीय देशों के साथ सहयोग प्राप्त करने के अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। उसके भाग्य से शीघ्र ही ऐसा अवसर उपस्थित हो गया। यह था क्रीमिया-युद्ध (१८५४-५६)। यह युद्ध लैटिन पादरियों और यूनानी पादरियों के बीच झगड़े के कारण प्रस्तुत हुआ था। इसमें फ्राँस, इंगलैंड और टर्की एक ओर थे और रूस दूसरी ओर। इस युद्ध में पीडमाण्ट का कोई हित न था। वह न तो पूर्वी समस्या से सम्बन्धित था और न रूस का शत्रु ही था। फिर भी उसके प्रधान-मन्त्री कैवूर ने रूस के विरुद्ध मित्रराष्ट्रों का साथ देने का निश्चय किया। यह उसकी कोरी अवसरवादिता थी। वह जानता था कि ऐसा करने से वह इंगलैंड और फ्राँस को अपना मित्र बना लेगा और कालान्तर में इटली के स्वतन्त्रता-संग्राम में उनकी सहायता अथवा सहानुभूति प्राप्त कर सकेगा। उसके इस कार्य के विषय में मैरियट महोदय लिखते हैं—

'It was seemingly a crazy enterprise. But Cavour's rashness was always the result of prudent calculation. That he was playing for high stakes he knew ; but he was confident of victory.'

इस अवसर पर उसने अपने सेनापति ला मारमोरा को लिखा था कि देश का भविष्य आपके थैलों में है।[1] उसका यह कथन सर्वथा सत्य था। क्रीमिया-युद्ध ने इटली के भाग्य का नव-निर्माण किया। कैवूर ने मित्र राष्ट्रों की सहायता के लिये क्रीमिया में १७ हजार सैनिक भेजे। इन्होंने टर्नया के युद्ध (Battle of Tchernaya) में बड़ी वीरता का प्रदर्शन किया। क्रीमिया का युद्ध लगभग दो वर्ष चला। इसमें रूस की पराजय हुई। उसने आत्म-समर्पण कर दिया और अन्त में दोनों पक्षों में १८५६ में पेरिस की सन्धि हो गई।

इस सम्मेलन में कैवूर भी आमन्त्रित किया गया। उसने वहाँ इटली के प्रश्न को उठाया। इंगलैंड ने इटली में पोप-राज्य की आलोचना की और इंगलैंड तथा फ्रांस ने नेपल्स-राज्य की। कैवूर ने इटली के सारे कष्टों का कारण आस्ट्रिया को बताया। उसने घोषित किया —

'Austria is the arch-enemy of Italian independence; the permanent danger to the only free nation in Italy, the nation which I have the honour to represent.'

इस सम्मेलन से कैवूर को अनेक लाभ हुये—

(१) उसकी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा बहुत अधिक बढ़ गई। वह योरप के प्रमुख कूटनीतिज्ञों में गिना जाने लगा।

---

1. 'You have the future of the country in your haversacks'.

(२) उसके नेतृत्व में सम्पूर्ण इटली के लिये राजतन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था अधिक लोकप्रिय होने लगी। गणतन्त्रवादी और पोपवादी विचार-धारायें निर्बल पड़ गईं।

(३) पीडमाण्ट के छोटे से राज्य को परोक्ष रूप से इटली के स्वतन्त्रता-संग्राम का नेता स्वीकार कर लिया गया।

(४) उसे अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त हो गई।

(५) इटली का प्रश्न अब स्थानीय प्रश्न न रहा। वह अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न बन गया। अपनी सफलता पर कैवूर ने स्वयं घोषित किया था—

'The Italian Question has become for the future a European question. The cause of Italy has not been defended by demagogues, revolutionists and partymen, but has been discussed before the plenipotentiaries of the Great Powers.

(६) पोप, नेपल्स-नरेश और विशेषतया आस्ट्रिया बदनाम हो गये। इटली के राष्ट्रीय हितों के लिये उनका शासन हानिकर समझा जाने लगा।

(७) भविष्य के लिये कैवूर को योरप के दो प्रमुख देशों, इङ्गलैंड और फ्रांस की सहानुभूति प्राप्त हो गई। आगे चल कर इटली के स्वतन्त्रता-संग्राम के लिये यह बड़ी सहायक सिद्ध हुई।

नेपोलियन से सन्धि—पेरिस की सन्धि के पश्चात् कैवूर ने फ्रांसीसी सम्राट् नेपोलियन तृतीय के साथ वार्ता जारी रक्खी। (१) नेपोलियन स्वभावतः राष्ट्रीय आन्दोलनों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण था। (२) वह कार्बोनारी का सदस्य रह चुका था और १८३१ में इटली के स्वतन्त्रता-संग्राम में भाग ले चुका था। (३) उसके चाचा नेपोलियन महान् ने इटली में नई व्यवस्था स्थापित की थी। अतः नेपोलियन तृतीय भी इटली के नव-निर्माण में अभिरुचि रखता था। (४) वह १८१५ की विएना कांग्रेस के निर्णयों को फ्रांस के अपमान का द्योतक समझता था। इन निर्णयों को तोड़ने का सबसे सरल उपाय था इटली में नवीन व्यवस्था की स्थापना करना। (५) अभी तक आस्ट्रिया इटली का भाग्य-विधाता बना हुआ था। अब यदि फ्रांस आस्ट्रिया के इस एकाधिकार को चुनौती दे तो उसका राष्ट्रीय गौरव बढ़ जायगा। (६) सम्भवतः इटली को सहायता देने के बदले में फ्रांस को कुछ प्रदेश मिल जायेंगे।

अभी कैवूर और नेपोलियन तृतीय की वार्ता चल ही रही थी कि इसी बीच एक दुर्घटना हो गई। १८५८ में इङ्गलैंड में कुछ इटली-निवासियों ने नेपोलियन की हत्या करने का एक षड्यन्त्र संगठित किया। इसका नेता ओर्सिनी था। उसके फेंके गये बमों से १० मनुष्यों की मृत्यु हुई और १५० मनुष्य घायल हुये। परन्तु नेपोलियन बच गया।

सम्भव था कि इस षड्यन्त्र से नेपोलियन क्रुद्ध हो जाता और इटली की सहायता करने से इन्कार कर देता। परन्तु कैवूर ने परिस्थिति सम्भाल ली। उसने

नेपोलियन को समझाया कि इस प्रकार के षड्यन्त्र और हत्याकाण्ड उस निराशाजनक वातावरण के परिणाम हैं जिन्हें आस्ट्रिया के अत्याचारी शासन ने उत्पन्न किया है। इस प्रकार के दु:खद काण्डों के अन्त करने का एक ही उपाय है—आस्ट्रिया के शासन का अन्त। कैवूर ने नेपोलियन को यह भी प्रलोभन दिया कि यदि वह इटली से आस्ट्रिया के शासन का अन्त करा दे तो उसे सेवाय और नाइस के प्रदेश भी दे दिये जायेंगे।

प्लाम्बिए का समझौता—कैवूर की कूटनीति सफल हुई। २१ जुलाई, १८५८ को प्लाम्बिए नामक स्थान पर कैवूर और नेपोलियन की वार्ता प्रारम्भ हुई। इसके विषय में हेजेन महोदय ने लिखा है कि—

'The Emperor, always a dreamer and conspirator, was now closeted with a conspirator far more skilful than himself. The interview of Plombiers is one of the most famous in the history of the century.'

अन्त में दोनों के बीच एक समझौता हो गया। यह प्लाम्बिए का समझौता (Pact of Plombieres) कहलाता है। इसके अनुसार यह तय हुआ कि—

(१) यदि आस्ट्रिया पीडमाण्ट के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ करे तो फ्रांस पीडमाण्ट को सैनिक सहायता देगा।

(२) आस्ट्रिया को लोम्बार्डी और वेनेशिया से निकाल दिया जायेगा। ये दोनों प्रदेश पीडमाण्ट को दे दिये जायेंगे।

(३) पर्मा, मोडेना और टस्कनी से भी विदेशी शासन की समाप्ति करा दी जायेगी और ये प्रदेश भी पीडमाण्ट के राज्य में मिला दिये जायेंगे।

(४) पोप-राज्य का कुछ भाग - रोमैग्ना और लीगेशन्स भी पीडमाण्ट को दे दिया जायेगा।

(५) तत्पश्चात् बृहत्तर पीडमाण्ट तथा इटली के अन्य राज्यों का एक संघ (Cenfederation) बनाया जायेगा। इस संघ का अध्यक्ष पोप होगा।

(६) सहायता के बदले में फ्रांस को सेवाय और सम्भवतः नाइस के प्रदेश दिये जायेंगे।

(७) पीडमाण्ट का सम्राट् विक्टर एमानुएल अपनी पुत्री का विवाह नेपोलियन तृतीय के चचेरे भाई राजकुमार जेरोम के साथ कर देगा।

अन्तिम शर्त को स्वीकार करने में सम्राट् विक्टर एमानुएल को बड़ा कष्ट हुआ। उसकी पुत्री क्लोटाइल्ड (Clotilde) केवल १६ वर्ष की थी, जबकि जेरोम की आयु ४३ वर्ष की थी। साथ ही वह दुश्चरित्र भी था। परन्तु देश के हित में विक्टर एमानुएल ने अपनी भावनाओं का दमन कर दिया।

नेपोलियन ने इटली की राजनीति में हस्तक्षेप करने तथा पीडमाण्ट को सहायता देने का निर्णय क्यों किया था? इस विषय में सीमन महोदय ने निम्न-लिखित रूप में अपने विचार व्यक्त किये हैं :—

'For in taking the step he did, he was behaving in confirmity both with the Napoleonic tradition and the Napoleonic legend. The voice from St. Helena told him that the first monarch to espouse the cause of the peoples would become the undisputed leader of Europe. That he should intervene to deliver the Italians from the Austrians was consistent with his self-chosen role as leader of the nationalities; and he clearly felt that in so doing he was placing France and himself at the head of the most powerful political force of the day. He and France, by co-operating with history, could secure the mastery of Europe's destiny, by a great act of moral leadership which was also a piece of shrewd international statecraft.'

इस पृष्ठ भूमि पर सम्राट् विक्टर एमानुएल ने अपनी घोषणा की—'Our country...has acquired credit in the councils of Europe, because she is great in the idea she represents, in the sympathy she inspires. The situation is not free from peril, for, while we respect treaties, we cannot be insensible to the cry of anguish which comes to us from many parts of Italy.'

अब कैवूर की कूटनीति पुनः कार्यरत हुई। प्लाम्बिए की सन्धि के अनुसार नेपोलियन पीडमाण्ट की सहायता तभी करेगा जब कि युद्ध का प्रारम्भ आस्ट्रिया की ओर से हो। अतः कैवूर को ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करना था जिसमें उसके मनोवांछित युद्ध की घोषणा स्वयं आस्ट्रिया करे और वह भी शीघ्र ही, क्योंकि उसे आशंका थी कि अस्थिर-बुद्धि नेपोलियन कहीं अपने वचन को वापस न ले ले अथवा योरोपीय देश कहीं इटली की समस्या में हस्तक्षेप न करने लगें।

कैवूर ने भाषणों और अखबारों के माध्यम से आस्ट्रिया को भड़काना प्रारम्भ किया। उसने आस्ट्रिया के माल पर चुंगियाँ बढ़ा दीं और आस्ट्रिया के अधीन प्रान्तों लोम्बार्डी और वेनेशिया में उपद्रव कराने की चेष्टायें आरम्भ कर दीं। वह खुले आम सेना का जमाव करने लगा।

कैवूर की इन कार्यवाहियों से इंगलैंड घबरा गया। उसने युद्ध को रोकने के यह सुझाव रक्खा कि पीडमाण्ट और आस्ट्रिया के झगड़े को निपटाने के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन किया जाय। अस्थिरमति नेपोलियन ने भी इस सुझाव का समर्थन किया। परन्तु कैवूर युद्ध चाहता था, समझौता नहीं। अतः परिस्थिति को परिवर्तित होते देख कर उसे बड़ी निराशा हुई। परन्तु तभी आस्ट्रिया के अविवेकपूर्ण कार्य ने उसे बचा लिया। २३ अप्रैल १८५९ को आस्ट्रिया ने मदावलेपन में पीडमाण्ट को अल्टीमेटम दे दिया कि वह तीन दिन के भीतर अपना निःशस्त्रीकरण कर दे अन्यथा आस्ट्रिया उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देगा। कैवूर आस्ट्रिया के अल्टीमेटम से बड़ा प्रसन्न हुआ। बड़ी प्रसन्नता के साथ उसने घोषित किया था—'The die is cast, and we have made history.'

इटली का एकीकरण
1815 - 1870
स्विट्जरलैण्ड
लोम्बार्डी
1859
1866
आस्ट्रिया-
हंगरी
पीडमाण्ट
जेनोआ
फ्रांस
1860
1860
1860
1870
1860
कार्सिका
(फ्रान्स की)
सागर
भूमध्य सागर
ट्यूनिस
1860
और
सिसली
1860

अपनी चालाकी से कैवूर ने आस्ट्रिया को आक्रान्ता का रूप दे दिया। यद्यपि कैवूर स्वयं युद्ध चाहता था, परन्तु अपने अल्टीमेटम के द्वारा आस्ट्रिया ने युद्ध प्रारम्भ करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया।[1]

पीडमाण्ट और आस्ट्रिया का युद्ध
१८५९
लोम्बार्डी पर अधिकार

युद्ध आस्ट्रिया ने प्रारम्भ किया था। अतः प्लाम्बिए की सन्धि के अनुसार नेपोलियन तृतीय अपनी सेना के साथ पीडमाण्ट की सहायता के लिये आ गया। इटली-निवासियों को सन्देश के रूप उसने निम्नलिखित शब्द कहे—

'Use the good fortune that presents itself to you. Your dream of independence will be realised if you show yourself worthy of it. Unite in one great effort for the liberation of the country.'

युद्ध की सूचना पाते ही परम साहसिक गैरीबल्डी भी अपने स्वयंसेवकों के साथ स्वतन्त्रता-संग्राम में भाग लेने के लिये आ गया। यही नहीं, इटली के भिन्न-भिन्न प्रदेशों से भी बहुसंख्यक स्वयंसेवक पीडमाण्ट की सेना की सहायता के लिये आ गये।

इस स्वतन्त्रता-संग्राम में निम्नलिखित युद्ध विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं :—

(१) **मैगेण्टा का युद्ध**—इसमें इटैलियनों और फ्रांसीसियों ने आस्ट्रिया को पराजित किया। इसके परिणामस्वरूप उन्होंने मिलान पर अधिकार कर लिया।

(२) **सोल्फेरिनो का युद्ध**—इसमें भी आस्ट्रिया की पराजय हुई।

(३) **सैनमार्टिनो का युद्ध**—इसमें पुनः मित्र राष्ट्रों ने आस्ट्रिया को पराजित किया।

विलाफ्रैन्का की सन्धि—इन विजयों के परिणामस्वरूप आस्ट्रिया को लोम्बार्डी खाली करना पड़ा। अब उसने वेनेशिया में अपनी किलेबन्दी प्रारम्भ की। तभी कैवूर को सूचना मिली कि उसके मित्र नेपोलियन तृतीय ने उसका साथ छोड़ दिया है और उसने आस्ट्रिया के साथ ११ जुलाई, १८५९ को विलाफ्रैन्का की सन्धि कर ली है। इसकी प्रमुख धारायें निम्नलिखित थीं—

(१) लोम्बार्डी पर तो पीडमाण्ट का अधिकार मान लिया जायेगा,

(२) परन्तु वेनेशिया पर आस्ट्रिया का ही अधिकार रहेगा।

(३) जिस समय आस्ट्रिया और पीडमाण्ट के बीच युद्ध हो रहा था उसी बीच पर्मा, मोडेना और टस्कनी की जनता ने विद्रोह करके अपने शासकों को भगा

---

1. 'The public opinion of other nations blamed Austria and exonerated Piedmont, most unjustly, for this war was Cavour's, desired by him and brough about by him with extraordinary skill. That he had succeeded in throwing the whole responsibility for it on his enemy was only further evidence of the cunning of his fine Italian hand.' —Hazen.

दिया था। विलाफ्रैन्का की सन्धि के अनुसार इन शासकों को उनके राज्य पुन: वापस दे दिये जायेंगे।

(४) पोप की अध्यक्षता में इटली के समस्त राज्यों का एक संघ बनाया जायेगा।

विलाफ्रैन्का की सन्धि प्लाम्बिए की सन्धि के प्रतिकूल थी। अत: कैवूर ने नेपोलियन पर विश्वासघात और वचन-भंग का आरोप लगाया। कैवूर इसलिए और भी क्रुद्ध था, क्योंकि आस्ट्रिया के साथ सन्धि करने के पूर्व नेपोलियन ने उसे किसी प्रकार की भी सूचना न दी थी। अत्यन्त क्रोध में कैवूर ने अपने सम्राट् विक्टर एमानुएल को राय दी कि नेपोलियन के विरुद्ध भी कार्यवाही की जाय। परन्तु विक्टर एमानुएल ने अधिक संयम और दूरदर्शिता से काम लिया। उसका विचार था कि इस समय जो प्रदेश (लोम्बार्डी) प्राप्त हो गया है उसे स्वीकार कर लिया जाय और आगामी संघर्ष के लिये फिर तैयारी प्रारम्भ कर दी जाय। उसने घोषित किया था—'The political unity of Italy since Novara a possibility, has become since Villafranca a necessity'

परन्तु कैवर अपने सम्राट् से सहमत न हुआ। उसने क्रोध में आकर अपने पद से इस्तीफा दे दिया। परन्तु कुछ समय पश्चात् वह अपने पद पर पुनः वापस आ गया।

कारण—अब प्रश्न यह होता है कि नेपोलियन तृतीय ने बीच में कैवूर का साथ छोड़कर आस्ट्रिया के साथ सन्धि क्यों की थी? समस्त परिस्थिति पर विचार करने से उसके कार्य के पीछे निम्नलिखित कारण प्रतीत होते हैं—

(१) नेपोलियन लोम्बार्डी में विजयी अवश्य हुआ था, परन्तु उसे भी काफी हानि उठानी पड़ी थी। उदाहरण के लिये सोल्फेरिनो का युद्ध ११ घण्टे तक चला था। इसमें जहाँ आस्ट्रिया के २२ हजार सैनिक मारे गये वहाँ मित्रराष्ट्रों के भी १७ हजार सैनिक काम आये। नेपोलियन को इस युद्ध में भाग लेने से धन भी बहुत अधिक खर्च करना पड़ा था।

(२) नेपोलियन वेनेशिया में आस्ट्रिया के सैनिक जमाव को देखकर घबड़ा गया था। वहाँ आस्ट्रिया के १ लाख ५० हजार सैनिक थे और १ लाख की सेना शीघ्र ही आने वाली थी। वेनेशिया में आस्ट्रिया की किलेबन्दी भी बड़ी दृढ़ थी। अभी तक नेपोलियन योरप में अजेय रहा था। वेनेशिया में नया खतरा मोल लेकर नेपोलियन अपनी अजेयता खोना नहीं चाहता था।

(३) युद्ध के भीषण रक्त-पात को देखकर भी नेपोलियन का हृदय द्रवित हो गया था। इस विषय में उसका उद्‌गार महत्वपूर्ण था—'The poor people, the poor people, what a horrible thing is war.'

(४) फ्रांस का महत्वपूर्ण दल—कैथोलिक दल—नेपोलियन की इटली-नीति की आलोचना कर रहा था। उसे भय था कि इटली के एकीकरण के साथ-साथ पोप का रोम-राज्य भी समाप्त हो जायेगा।

(५) युद्ध के दौरान में इटली में जो घटनायें हुई उनसे भी नेपोलियन घबड़ा गया। उसे सूचना मिली कि पर्मा, मोडेना, टस्कनी और रोमैग्ना की जनता ने विद्रोह कर दिया है और वह पीडमाण्ट के साथ मिलना चाहती है। नेपोलियन इतने भारी परिवर्तन के लिये तैयार न था।

(६) यदि इटली एक हो गया तो इसका अर्थ होगा कि फ्राँस की दक्षिणी सीमा पर एक नवीन शक्तिशाली राज्य का उदय। कूटनीतिक दृष्टि से फ्रांस के लिये यह अच्छी बात न होगी।

(७) नेपोलियन को सूचना मिली कि प्रशा भी इटली में हस्तक्षेप करने के लिये सैनिक तैयारी कर रहा है। नेपोलियन आस्ट्रिया और प्रशा दोनों के साथ लड़ने को तैयार न था।

(८) इटली में नेपोलियन के हस्तक्षेप से इंगलैंड और बेल्जियम में भी शंका उत्पन्न हो गई थी। उन्हें भय होने लगा था कि नेपोलियन अपने प्रभाव और साम्राज्य का विस्तार तो नहीं कर रहा है।

इन कारणों से नेपोलियन ने कैवूर का साथ छोड़ दिया और अपने इस कार्य को स्पष्ट करते हुये उसने स्वयं कहा था—

'To secure Italian independence I made war against the wish of Europe; as soon as the fortunes of my own country seemed to be endangered I made peace.'

नेपोलियन की भाँति आस्ट्रिया भी युद्ध समाप्त करने के लिये उत्सुक था—

(१) पिछले दो मास के युद्ध में आस्ट्रिया को अनुभव हो गया था कि उसकी सेना में संगठन और अनुशासन की कमी है और वह पीडमाण्ट तथा फ्रांस की सम्मिलित शक्ति का सामना नहीं कर सकता।

(२) आस्ट्रिया के विरुद्ध हंगरी में आन्दोलन चल रहा था। अतः अपने घरेलू झगड़ों को निबटाने के लिए भी उसे शान्ति की आवश्यकता थी।

(३) प्रशा आस्ट्रिया की सहायता करने के लिये तैयार था। परन्तु आस्ट्रिया प्रशा से डरता था। प्रशा अपनी सहायता के बदले आस्ट्रिया से यह चाहेगा कि वह जर्मन संघ से निकल जाय। आस्ट्रिया इसके लिये बिल्कुल तैयार न था, चाहे उसका इटली में एक प्रान्त ही क्यों न चला जाय।[1]

उपर्युक्त कारणों से नेपोलियन और आस्ट्रिया के बीच विलाफ्रैन्का की सन्धि हुई थी। कालान्तर में ज्यूरिख की सन्धि ने विलाफ्रैन्का की सन्धि का अनुमोदन कर दिया।

मध्य इटली पर अधिकार

मध्य इटली में क्रान्ति -जिस समय पीडमाण्ट और आस्ट्रिया का युद्ध हो रहा था उसी समय मध्य इटली के पर्मा, मोडेना और टस्कनी की जनता ने अपने शासकों

1. 'Better lose a province than be present again at so awful a spectacle.'

को भगा दिया और पीडमाण्ट के साथ मिलने की इच्छा प्रकट की। पोप राज्य में बोलोग्ना और रोमैग्ना में भी विद्रोह हो गये। जनता ने पीडमाण्ट के साथ मिलने का निर्णय किया।

पीडमाण्ट भी गुप्त रूप से विद्रोही नेताओं को सम्मति और सहायता देता रहा। परन्तु स्पष्ट रूप में उसने इन राज्यों को अपने राज्य में मिलाने से इन्कार कर दिया। पीडमाण्ट को भय था कि इतने बड़े परिवर्तन को देखकर, विशेषतया पोप-राज्य को खण्डित होते देखकर कहीं नेपोलियन तृतीय घबड़ा न जाय। अतः वह नेपोलियन की राय के बिना तत्काल कोई कार्य नहीं करना चाहता था। बहुत दिनों तक मध्य इटली की स्थिति डांवाडोल रही। परन्तु इसी बीच कुछ ऐसी घटनायें हुईं जिन्होंने समस्या को हल कर दिया—

(१) जून १८५९ में इंगलैंड में पामर्स्टन की सरकार आई। यह सरकार इटली के स्वतन्त्रता-संग्राम के पक्ष में थी। पामर्स्टन ने घोषित किया—'The people of the duchies have as much right to change their sovereigns as the English people or the French, or the Belgian or the Swedish. The annexation of the duchies to Piedmont will be an unfathomable good to Italy.'

(२) ६ मास पृथक् रहने के पश्चात् जनवरी, १८६० में कैवूर पुनः प्रधान-मन्त्री के पद पर आ गया। उसने आते ही परिस्थिति अपने पक्ष में करनी प्रारम्भ कर दी।

(३) नेपोलियन भली-भांति समझ गया था कि विद्रोही प्रदेशों की जनता का सरलतापूर्वक दमन नहीं किया जा सकता। अतः लोकमत के अनुकूल ही कार्य करना चाहिये।

(४) नेपोलियन यह भी नहीं चाहता था कि इटली में आस्ट्रिया शक्तिशाली बना रहे। अतः आस्ट्रिया के सम्बन्धी मध्य इटली के राजवंशों की समाप्ति हो जाये तो अच्छा हो।

(५) कैवूर ने नेपोलियन को यह भी प्रलोभन दिया कि यदि वह विद्रोही राज्यों के लोकमत के अनुसार कार्य करने में सहायता दे तो पीडमाण्ट फ्रांस को सेवाय और नाइस के प्रदेश दे देगा। वचन-भंग करने के कारण अभी तक ये प्रदेश नेपोलियन को नहीं मिले थे।

इस परिस्थिति में नेपोलियन भी विद्रोही राज्यों में जनमत-गणना (Plebiscite) कराने के लिये तैयार हो गया। पर्मा, मोडेना, टस्कनी और रोमैग्ना में ११–१२ मार्च, १८६० को जनमत-गणना हुई। इसमें जनता ने भारी बहुमत से पीडमाण्ट के राज्य में मिलने की राय दी। परिणामस्वरूप ये राज्य पीडमाण्ट में मिला दिये गये।

इस प्रकार उत्तरी और मध्य इटली एक हो गया और २ अप्रैल, १८६० को उन सबकी संसद का ऐतिहासिक अधिवेशन ट्यूरिन में हुआ।

जनमत-गणना के प्रस्ताव का समर्थन करने के बदले में सेवाये और नाइस के प्रदेश नेपोलियन को दे दिये गए। सेवाय सम्राट् विक्टर एमानुएल का पैतृक प्रदेश था। इसे फ्रांस को देते हुए सम्राट् को बड़ा दुःख हुआ। गैरीबाल्डी नाइस का निवासी था। अतः नाइस के फ्राँस के हाथ में चले जाने से गैरीबाल्डी को भी बड़ी खिन्नता हुई। उसने बड़े दुःख के साथ कहा था—'You have made me a foreigner in the land of my brith.'

परन्तु कैवूर कूटनीतिज्ञ था। इटली के एकीकरण के लिए वह मूल्य देने के लिये तैयार था। गैरीबाल्डी के दुःख को समझते हुये उसने संसद में अपनी सफाई पेश की थी—'The act that has made this gulf between us, was the most painful duty of my life. By what I have felt myself I know what Garibaldi must have felt. If he refuses me his forgivekess, I cannot reproach him for it.'

गैरीबाल्डी की जीवनी

गैरीबाल्डी—गैरीबाल्टी अपने समय का परम देश-भक्त और साहसिक था। उसका जन्म १८०७ में नाइस में हुआ था। वह इटली के अन्य दो सर्वप्रसिद्ध नेताओं—मैजिनी और कैवूर का लगभग समवयस्क था। उसके माता-पिता उसे पादरी बनाना चाहते थे, परन्तु उसकी रुचि सामुद्रिक जीवन में थी। अतः युवा होते ही वह एक कुशल नाविक हो गया और अनेक वर्षों तक वह अपनी नौका लिये इधर-उधर घूमता रहा।

उस समय मैजिनी का काफी नाम हो चुका था। अतः गैरीबाल्डी उसके 'यंग इटैली' नामक दल में सम्मिलित हो गया। शीघ्र ही वह अपने गुरीली-प्रणाली-युद्ध' के लिये प्रसिद्ध हो गया।

१८३४ में मैजिनी ने सेवाय में विद्रोह कर दिया। गैरीबाल्डी ने भी इस विद्रोह में भाग लिया। परन्तु विद्रोह असफल रहा और गैरीबाल्डी को मृत्यु-दण्ड मिला। परन्तु वह किसी प्रकार बचकर दक्षिणी अमेरिका भाग गया। वहाँ वह १४ वर्ष रहा। गैरीबाल्डी वहां भी चुपचाप न बैठ सका। उस समय दक्षिणी अमेरिका में युद्ध हो रहे थे। गैरीबाल्डी ने अपना 'इटली-दल' (Italian Legion) संगठित किया और उन युद्धों में भाग लिया। इस प्रकार उसकी साहसिकता और संगठन-शक्ति और भी अधिक बढ़ गई।

१८४८ में इटली में पुनः स्वतन्त्रता-संग्राम छिड़ गया। उसकी सूचना पाते ही गैरीबाल्डी पुनः इटली आ गया। उसने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध में भाग लिया। परन्तु इस युद्ध में आस्ट्रिया की विजय हुई। तत्पश्चात् १८४९ में मैजिनी ने रोम पर अधिकार कर लिया और वहां गणतन्त्र की स्थापना की। पोप का पक्ष लेकर नेपोलियन तृतीय ने रोम पर आक्रमण कर दिया। उस समय गैरीबाल्डी रोम में मैजिनी की रक्षा के लिये आ पहुंचा और बड़ी वीरता से फ्रांसीसी सेना के विरुद्ध मोर्चा लिया। परन्तु अपनी पराजय निश्चित समझकर वह अपने ४००० सैनिकों

के साथ भाग निकला। उसका विचार आस्ट्रिया के वेनेशिया-राज्य पर आक्रमण करने का था। परन्तु आस्ट्रिया और फ्रांस की सेनाओं ने उसका पीछा किया। उसके साथ उसकी पत्नी अनिता भी था। गैरीबाल्डी को मार्ग में अनेकानेक कष्टों का सामना करना पड़ा। मार्ग में ही उसकी पत्नी का भी देहान्त हो गया। उसके बहु-संख्यक सहगामी भी या तो मर गये या तितर-बितर हो गये। पपन्तु गैरीबाल्डी किसी प्रकार बच कर दक्षिणी अमेरिका भाग गया। इसके इस महान् संघर्ष की कहानी ने इटली के स्वतन्त्रता-पुजारियों को बड़ा प्रोसाहित किया।[1]

१८५४ में गैरीबाल्डी पुनः इटली वापस आया और कैप्रेरा द्वीप में एक कृषक के रूप में जीवन-यापन करने लगा। इस समय तक कैवूर का उदय हो गया था। कैवूर ने अपनी कूटनीति से फ्रांसीसी सम्राट् नेपोलियन तृतीय का सहयोग प्राप्त कर १८५६ में आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। गैरीबाल्डी ने भी अपने सैनिकों के साथ इस स्वतन्त्रता-संग्राम में भाग लिया। अपने शौर्य और साहस के कारण वह सैनिकों का परम प्रिय नेता बन गया। परन्तु अन्ततोगत्वा नेपोलियन तृतीय ने आस्ट्रिया से संधि कर ली और इटली के नेताओं को पूर्ण सफलता न मिल सकी। कैवूर की भाँति गैरीबाल्डी भी नेपोलियन तृतीय के विश्वासघात से बड़ा क्रुद्ध हुआ था। वह नेपोलियन को 'लोमड़ीवत् धूर्त' (Vulpine Knave) कहता था।

सिसली और नेपल्स पर अधिकार

सिसली का विद्रोह—इस पृष्ठभूमि पर १८६० में सिसली की जनता ने अपने बूर्बो-नरेश के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। बूर्बो वंश का शासन अत्यन्त निरंकुश, प्रतिक्रियावादी और अत्याचारी था। ग्लैडस्टन ने इसे धर्म, सभ्यता, मानवता और भद्रता के नाम पर अत्याचार बताया था।[2]

विद्रोह के नेता क्रिस्पी ने अपनी सहायता के लिए गैरीबाल्डी को आमन्त्रित किया। गैरीबाल्डी ऐसे साहसिक कार्यों के लिये सदैव तैयार रहता था। सिसली-निवासियों की सहायता के लिये जाने से पूर्व गैरीबाल्डी ने पीडमाण्ड के सम्राट् विक्टर एमानुएल को एक भावपूर्ण पत्र लिखा जिसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार थीं—

'I know that I embark on a perilous enterprise. If we achieve it I shall be proud to add to your majesty's crown a new and perhaps more glorious jewel, always on the condition that Your Majesty will stand opposed to counsellors who would cede this province to the foreigner, as has been done with the city of my birth.'

---

1. 'But his story, through and through with heroism and chivalry and romance, moved the Italian peopce to unwonted depths of enthusiasm and admiration.' —Hazen.

2 'an outrage upon religion, upon civilisation, upon humanity and upon decency.

कैवूर की कूटनीति—अब गैरीबाल्डी ने जेनोआ में स्वयं-सेवक भर्ती करने प्रारम्भ किये। कैवूर के सामने एक विकट परिस्थिति उत्पन्न हो गई। पीडमाण्ट और बूर्बा राज्य के बीच युद्ध-स्थिति न थी। अतः यदि कैवूर एक साहसिक को अपने राज्य में बूर्बा राज्य के ऊपर आक्रमण करने की तैयारी करने देता तो उसका यह कार्य अमैत्रीपूर्ण समझा जाता। यदि वह गैरीबाल्डी के मार्ग में बाधा डालता तो स्वतन्त्रता-प्रेमियों की भावना को आघात पहुंचाता। अतः उसने कूटनीति से कार्य किया। उसने घोषित किया कि पीडमाण्ट गैरीबाल्डी की योजना को किसी प्रकार की सहायता न देगा और न अपने राज्य में एक मित्र राज्य के विरुद्ध तैयारी करने की अनुमति ही देगा। परन्तु गुप्त रूप से वह गैरीबाल्डी को पर्याप्त सुविधा और सहायता देता रहा। जेनोआ में जनता ने दिल खोलकर आर्थिक सहायता दी। स्वयं सम्राट् विक्टर एमानुएल ने अपनी निजी निधि से ३० लाख फ्रान्क की सहायता दी। देश भर से स्वयंसेवक जेनोआ में आ-आकर एकत्र होने लगे। भिन्न-भिन्न दिशाओं से अस्त्र-शस्त्र और गोला-बारुद आने लगा। ट्रेवेलियन महोदय ने गैरीबाल्डी के अभियान और कैवूर की कूटनीतिक सहायता के विषय में लिखा है कि 'Mazzini and his friends instigated the expedition; Garibaldi a :complished it; the King and Cavour allowed it to start, and when it had begun to succeed, gave it the support and guidance without which, it must inevitably have failed midway.' ऐक्टन महोदय ने कैवूर की कूटनीति को 'a triumph of unscrupulous statesmanship' कहा है।

गैरीबाल्डी के पास एक हजार से कुछ अधिक स्वयंसेवक हो गये। उनकी वर्दी लाल थी। अतः इतिहास में वे Red Shirts के नाम से प्रख्यात हुए। उन सबको दो स्टीमरों में बैठाकर गैरीबाल्डी ५ मई, १८६० को जेनोआ से सिसली के लिये रवाना हुआ। उसका यह अभियान 'Expedition of the Thousand' के नाम से प्रख्यात है। ऊपर से देखने से प्रतीत होता था कि यह अभियान निश्चित रूप से असफल हो जायेगा, क्योंकि बूर्बा नरेश के पास गैरीबाल्डी से कहीं अधिक सेना थी। सिसली में उसके पास २४ हजार सैनिक थे और नेपल्स में १ लाख। परन्तु संसार को यह सुनकर आश्चर्य हुआ कि गैरीबाल्डी ने दो मास के भीतर ही सम्पूर्ण सिसली पर अधिकार कर लिया। उसने ५ अगस्त, १८६० को विक्टर एमानुएल द्वितीय की अधीनता में अपने आपको सिसली का शासक घोषित किया।

अब गैरीबाल्डी से नेपल्स के ऊपर भी अधिकार कर लेने का निश्चय किया। समुद्र पार करने में अंग्रेजी जहाजी बेड़े ने उसकी सहायता की। साधारण विरोध के पश्चात् नेपल्स का बूर्बा नरेश फ्रांसिस द्वितीय ६ सितम्बर, १८६० को नेपल्स छोड़कर भाग गया और ७ सितम्बर को गैरीबाल्डी का नेपल्स पर अधिकार हो गया। गैरीबाल्डी की सिसली और नेपल्स की विजय इतिहास की रोमांचकारी घटना है।[1]

---

1. 'In less than five months he had conquered a kingdom of 1100000 people, an achievement unique in modern history.'

—Hazen

इस बीच पीडमाण्ट की संसद ने सिसली और नेपल्स को अपने राज्य में मिलाने का निर्णय किया। परन्तु गैरीबाल्डी ने घोषित किया कि वह पहले रोम पर अधिकार करके विक्टर एमानुएल को वहाँ का सम्राट् बनायेगा और फिर सिसली और नेपल्स भी उसे प्रदान कर देगा।

गैरीबाल्डी की इस घोषणा ने कैवूर के सामने एक चिन्ताजनक स्थिति उत्पन्न कर दी। रोम की रक्षा फ्रांसीसी सेनायें कर रही थीं। यदि गैरीबाल्डी रोम पर आक्रमण करता तो फ्रांसीसी सम्राट् नेपोलियन तृतीय निश्चित रूप से पीडमाण्ट के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देता। सम्भवतः योरप के कुछ अन्य राज्य भी पोप की रक्षा में इटली में हस्तक्षेप करते। इस परिस्थिति में पीडमाण्ट का अभी तक का किया हुआ कार्य चौपट हो सकता था।

फलतः अब कैवूर ने मौन रहना उचित न समझा। उसने घोषित किया—'Italy must be saved from foreigners, evil principles and mad men.' उसका लक्ष्य था इटली को विदेशियों के हस्तक्षेप, बुरे (गणतन्त्रात्मक) सिद्धान्तों और पागल मनुष्यों (गैरीबाल्डी तथा उसके साथियों) से बचाना था। इसलिये उसने अपने सम्राट् विक्टर एमानुएल को स्वयं एक सेना के साथ पोप-राज्य पर आक्रमण करने के लिये भेजा। एमानुएल ने पोप के उम्ब्रिआ (Umbria) और मार्चेज (Marches) नामक प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। परन्तु फ्रांसीसी हस्तक्षेप से बचने के लिए रोम पर आक्रमण न किया।

२१ अक्टूबर, १८६० को कैवूर ने सिसली और नेपल्स में जनमत-गणना कराई। जनता ने भारी बहुमत से पीडमाण्ट के साथ मिलने का मत दिया। अतः सिसली और नेपल्स भी पीडमाण्ट राज्य में मिला लिये गये। इसी प्रकार कुछ दिन पश्चात् मार्चेज और उम्ब्रिया में भी जनमत-गणना की गई और भारी बहुमत से वे राज्य भी पीडमाण्ट के राज्य में मिल गये।

अब विक्टर एमानुएल अपनी सेना के साथ नेपल्स में प्रविष्ट हुआ। वहाँ अभी तक कपुआ (Capua) और गेटा (Gaeta) पर फ्रांसिस द्वितीय का अधिकार था। एमानुएल ने युद्ध के पश्चात् दोनों स्थानों पर अधिकार कर लिया। फ्रांसिस नेपल्स छोड़कर रोम भाग गया।

गैरीबाल्डी ने विक्टर एमानुएल का विरोध न किया। उसने अपने जीते हुए प्रदेश एमानुएल के सुपुर्द कर दिये और स्वयं अपने घर कैप्रेरा चला गया। एमानुएल ने उसे पद और पुरस्कार देना चाहा। परन्तु उसने बड़े विनीत भाव से अस्वीकार कर दिया। गैरीबाल्डी का कार्य समाप्त हो चुका था।

१७ मार्च, १८६१ को पीडमाण्ट की नई संसद ने अपने राजा विक्टर एमानुएल द्वितीय को संयुक्त इटली का सम्राट् घोषित किया। वेनेशिया और रोम को छोड़कर सम्पूर्ण इटली एक हो चुका था। ट्यूरिन संयुक्त इटली की राजधानी बना।

कैवूर की मृत्यु—अनवरत परिश्रम के कारण कैवूर का स्वास्थ्य खराब हो गया था। उसे अनिद्रा-रोग हो गया। ६ जून, १८६१ को उस महान् कूटनीतिज्ञ की मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय उसकी आयु ५१ वर्ष की थी। मृत्यु के समय के उसके उद्‌गार थे—'Italy is made, all is safe.'

कैवूर का मूल्यांकन

कैवूर १९वीं शताब्दी के महान् कूटनीतिज्ञों में गिना जाता है। यह कहना बड़ा कठिन है कि इस शताब्दी के दो प्रसिद्ध कूटनीतिज्ञों—बिस्मार्क और कैवूर—में बड़ा कौन था। बिस्मार्क और कैवूर दोनों ही देश-प्रेमी थे। दोनों को ही अनेकश: विभक्त देश मिले थे और दोनों ने ही उन्हें एक किया था। परन्तु दोनों देशों की परिस्थिति भिन्न-भिन्न थी। इटली में जर्मनी की अपेक्षा प्रान्तीयता अधिक थी। अतः कैवूर का कार्य अधिक कठिन था। इसके अतिरिक्त इटली में एक नहीं वरन् अनेक विदेशों के हित थे। पोप के राज्य में योरप के सभी कैथोलिक राज्य और निवासी अभिरुचि रखते थे। सिसली और नेपल्स का बूर्बा वंश रक्त-सम्बन्ध के कारण फ्रांस और स्पेन से सहायता प्राप्त करता रहा था। सबसे प्रमुख राज्य लोम्बार्डी और वेनेशिया के थे। यहाँ शक्तिशाली आस्ट्रिया साम्राज्य का अधिकार था। पर्मा, मोडेना और टस्कनी के शासक आस्ट्रिया के राजवंश से सम्बन्धित थे। इस प्रकार जहाँ बिस्मार्क को एक देश—आस्ट्रिया—के विरुद्ध संघर्ष करना था वहाँ कैवूर को अनेक राज्यों के विरुद्ध। जर्मनी में काफी बौद्धिक सजगता थी। परन्तु इटली काफी पिछड़ा हुआ था। इस कारण से भी कैवूर का कार्य अधिक दुष्कर हो गया था।

कैवूर बिस्मार्क की भांति एकतन्त्रवादी न था। उसने संसद और जनता के सहयोग से कार्य किया। जीते हुए प्रदेशों में उसने जनमत-गणना कराई और जनता की इच्छा को जानकर ही उन राज्यों को अपने राज्य में मिलाया। वह कहा करता था—'I always feel strongest when Parliament is sitting.'

कैवूर ने ही इटली के प्रश्न को सर्वप्रथम अन्तर्राष्ट्रीय बनाया। क्रीमिया मे भाग लेना उसकी कूटनीति की महान् दूरदर्शिता थी। तत्पश्चात् अस्थिर नेपोलियन के साथ सन्धि करने और उसके सहयोग को कायम रखने में भी उसने बड़ी कुशलता दिखाई। जिस समय कैवूर और नेपोलियन तृतीय की कूटनीतिक वार्ता चल रही थी उस समय फ्रांस के भूतपूर्व मन्त्री गुइजो ने कहा था—'There are two men upon whom the eyes of Europe are fixed, the Emperor Napoleon and M. de Cavour. The game is being played. I back M. de Cavour.'

गैरीबाल्डी के प्रति उसकी नीति उसकी कूटनीतिक निपुणता का उत्कृष्ट उदाहरण है। उसने गैरीबाल्डी के उत्साह, शौर्य और साहस का पूरा लाभ उठाया, परन्तु उसे उच्छृंखल न होने दिया। अन्त में जब गैरीबाल्डी ने रोम-विजय का निर्णय किया तो

कैवूर को उसे रोकना पड़ा और परिस्थिति को अपने हाथ में लेना पड़ा। यदि वह ऐसा न करता तो उसका दीर्घकाल का किया हुआ कार्य तत्काल नष्ट हो जाता।[1]

इटली के निर्माण का प्रमुख श्रेय कैवूर को ही है। यदि वह न होता तो मैजिनी की प्रेरणा और गैरीबाल्डी का साहस व्यर्थ जाता।[2] इस समय की स्थिति में गैरीबाल्डी और कैवूर के विषय में ट्रेवेलियन ने लिखा है—'The principle of audacity and the principle of guidance, both essential for successful revolutions, had each in 1860 an almost perfect representative.'

कैवूर ने इटली की समस्या को एक नये दृष्टिकोण से देखा था। वह नितान्त व्यावहारिक था। वह कोरे आदर्शवाद अथवा साहसिक कार्यों को अधिक लाभप्रद न समझता था। उसके पूर्व इटली में जो गुप्त षड्यन्त्र हो रहे थे, उन्हें भी उसने स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिये अनुपयोगी बताया। उसने नवीन कूटनीति का अनुसरण करते हुए इटली को संगठित सेना, पताका, सरकार और विदेशी मित्र प्रदान किये।[3]

लार्ड पामर्स्टन ने कैवूर के विषय में अपनी संसद में कहा था—"Cavour left a name 'to point a moral and adorn a tale.' The moral was, that a man of transcendent talent, indomitable industry, inextinguishable patriotism, could overcome difficulties which seemed insurmountable, and confer the greatest, the most inestimable benefits on his country. The tale with which his memory would be associated was the most extraordinary, the most romantic, in the annals of the

---

1. 'Everything was now at stake : the life-work of Cavour; the life-work of Mazzini; the life-work of Garibaldi himself. Cavour in this supreme moment of his great career was equal to the crisis. By a masterly stroke of policy the control of the movement was taken out of the rash hands of the knight errant and confirmed in those of sober statesmanship.' —Marriot

2. 'If there had been no Cavour to win the confidence, sympathy and support of Europe, if he had not been recognised as one whose sense was just in all emergencies, Mazzini's efforts would have run to waste in unquestionable insurrections, and Garibaldi's feat of arms must have added one chapter more to the history of unproductive patriotism.'

3. 'Italy as a nation is the legacy, the life-work of Cavour. Others have been devoted to the national liberation, he knew how to bring it into the sphere of possibilities;...... he kept it clear of reckless conspiracies; steered straight between rebels and reactions; and gave it an organised force, a flag, a government and foreign allies.' —Phillips

world. A people who had seemed dead had risen to new and vigorous life, breaking the spell which bound it, and showing itself worthy of a new and splendid destiny.'

वेनेशिया पर अधिकार
(१८६६)

कैवूर के समय एकमात्र वेनेशिया और रोम ही इटली के बाहर थे। वेनेशिया पर आस्ट्रिया का अधिकार था और रोम में पोप-राज्य की रक्षा फ्रांसीसी सेनायें कर रही थीं। इन दोनों प्रदेशों की स्वतन्त्रता की कहानी जर्मनी के एकीकरण से सम्बद्ध है।

जर्मन संघ से आस्ट्रिया को निकालने के लिए १८६६ में बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। युद्ध के पूर्व १८६५ में इटली के राजा विक्टर एमानुएल द्वितीय ने आस्ट्रिया के सम्मुख यह प्रस्ताव रक्खा था कि यदि वह वेनेशिया खाली करदे तो इटली उसे प्रशा के विरुद्ध सैनिक सहायता देगा। परन्तु आस्ट्रिया ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। १८६६ में विक्टर एमानुएल ने बिस्मार्क के साथ सन्धि कर ली और उसे आस्ट्रिया के विरुद्ध सहायता देने का वचन दिया। इसके बदले बिस्मार्क ने वेनेशिया पर इटली का अधिकार करा देने का आश्वासन दिया।

इटली ने बिस्मार्क की सहायता की और आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध में भाग लिया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आस्ट्रिया की सेनाओं ने इटली की सेनाओं को पराजित किया, परन्तु इटली के युद्ध में आ जाने से कम से कम इतना अवश्य हुआ कि आस्ट्रिया को दो मोर्चों पर लड़ना पड़ा—एक ओर प्रशा से और दूसरी ओर इटली से। प्रशा से लड़ते हुए आस्ट्रिया की सैडोआ में भयंकर पराजय हुई। इसके बाद आस्ट्रिया ने हथियार डाल दिये। आस्ट्रिया और प्रशा में सन्धि हो गई। सन्धि की एक शर्त के अनुसार आस्ट्रिया ने वेनेशिया छोड़ दिया। इस प्रकार वेनेशिया भी पीडमाण्ट के राज्य में मिल गया।

रोम पर अधिकार
(१८७०)

अब एकमात्र रोम इटली के बाहर था। उसकी रक्षा फ्रांसीसी सेनायें कर रहीं थीं। १८६७ में गैरीबाल्डी और उसके पुत्र मेनोटी ने रोम पर आक्रमण किया था, परन्तु फ्राँसीसी सेनाओं ने उन्हें पराजित कर दिया था।

एक वर्ष पश्चात् प्रशा और फ्रांस का युद्ध हुआ।

विक्टर एमानुएल ने पोप से निम्नलिखित शब्दों में अपील की कि वह इटली के साथ समझौता कर ले—'With the affection of a son, with the faith of a Catholic, with the soul of an Italian, to accept the position,

at once dignified and independent, which the Italian Government was anxious to secure to him.' परन्तु पोप ने उसकी बात न मानी।

जर्मनी के एकीकरण के लिए बिस्मार्क को १८७० में फ्रांस से युद्ध करना पड़ा था। इस अवसर पर फ्रांसीसी सम्राट् नेपोलियन तृतीय ने रोम से अपनी सेनायें बुला लीं ताकि वह उन्हें प्रशा के विरुद्ध लगा सके। इस स्थिति में पीडमाण्ट ने अरक्षित रोम पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में कर लिया। इसके पश्चात् वहाँ जनमत-गणना की गई जिसमें पोप को केवल ४६ मत मिले। भारी बहुमत से रोम भी पीडमाण्ट के राज्य में आ गया। रोम संयुक्त इटली की राजधानी घोषित किया गया। १८५६ में कँवूर ने कहा था—'I am confident that Italy will become a single state and that Rome will be her capital......' उसकी मृत्यु के पश्चात् उसकी यह भविष्यवाणी पूर्ण हुई।

प्रश्न

१ कँवूर की जीवनी का उल्लेख करते हुए उसके कार्यों की समीक्षा कीजिये।
२ कँवूर के उद्देश्य क्या थे ? उसने उन्हें किस प्रकार प्राप्त किया ?
३ कँवूर की गृह-नीति और विदेश-नीति का विवरण दीजिये।
४ अपने अध्ययनगत काल में इटली के एकीकरण का इतिहास लिखिये।
5 Give an account of the services of Cavour and Garibaldi to the cause of Italian unity.
6 'A man of vision and a man of action.' Do you agree with this estimate of Cavour ?
7 'Cavour was the maker of modern Italy.' Elucidate.
8 "Cavour, said Lord Palmerston in the British House of Commons, left a name to point a moral and adorn a tale." Discuss.
9 'Italy as a nation is the legacy, the life-work of Cavour.' Discuss.

—:o:—

५

रूस

(१८५५—१८८१)

एलेक्जेण्डर द्वितीय; शासन-काल के दो चरण; क्रीमिया-युद्ध की समाप्ति, आन्तरिक सुधार, पोलैण्ड का विद्रोह; निहिलिस्ट आन्दोलन; विदेशी नीति; एलेग्जेण्डर द्वितीय की हत्या ।

अलेक्जेण्डर द्वितीय (१८५५—८१)

निकोलस की मृत्यु के पश्चात् १८५५ में अलेक्जेण्डर रूस का सम्राट् हुआ। वह एक उदार, सुधारवादी एवं स्वतन्त्रता-प्रिय व्यक्ति था। उसका उद्देश्य निकोलस की प्रतिक्रियावादी नीति के स्थान पर उदारवादी नीति का पालन करना था। फिर भी उसका व्यक्तित्व इतना महान् नहीं था कि वह समस्त यूरोप पर छा जाय। उसके चरित्र के सम्बन्ध में वेल्स महोदय लिखते हैं—'His character was rather representative than commanding.'

उसका शासन काल दो भागों में बांटा जा सकता है—

प्रथम चरण (१८५५-१८६५)—यह काल उसके शासन का सुधार-युग (Period of Reform) था। इस काल में उसने जनता की मांगों का समर्थन किया तथा अनेक सुधार किए।[1]

द्वितीय चरण (१८६५-१८८१)—जनता सुधारों के बावजूद भी विद्रोह करती रही। अत: अलेक्जेण्डर द्वितीय ने १८६५ में अपनी नीति का परित्याग कर दिया। इसके पश्चात् वह प्रतिक्रियावादी हो गया तथा अपने शासन के अन्तिम समय तक वह जनता के अधिकारों का दमन करता रहा।

क्रीमिया युद्ध को समाप्त करना—अब तक की घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया था कि रूस युद्ध का अधिक दिनों तक संचालन न कर सकेगा। परन्तु पामर्स्टन इस युद्ध का विस्तार करना चाहता था। वह सेन्ट पीटर्सबर्ग एवं मास्को पर अधिकार करना चाहता था। परन्तु इस समय फ्रांस का सम्राट् नेपोलियन तृतीय युद्ध की समाप्ति करना चाहता था, क्योंकि उसके निम्न उद्देश्यों की पूर्ति हो गई थी :—

(१) नेपोलियन तृतीय ने मास्को की पराजय का बदला ले लिया था।
(२) नेपोलियन तृतीय भी जार सम्राटों के समकक्ष मान लिया गया था।
(३) लैटिन ग्रीक चर्च को मान्यता प्रदान कर दी गई थी।

---

1. "...Under the Liberator Tsars Alexander II, Russia look a quarter turn to the left." — Ault.

अतः नेपोलियन तृतीय ने युद्ध को आगे बढ़ाने की पामर्स्टन की बात को न माना। १८५६ में पेरिस की सन्धि हुई। यह समय रूस के पराभव एवं नेपोलियन तृतीय के उत्कर्ष का था। इस अपमानजनक सन्धि पर हस्ताक्षर करते समय अलेक्जेण्डर द्वितीय को बहुत दुःख हुआ। क्रीमिया की पराजय ने रूसी शासन का खोखलापन सिद्ध कर दिया और रूस में सुधार-आन्दोलनों को प्रोत्साहन दिया।[1]

आन्तरिक सुधार—अलेक्जेण्डर द्वितीय ने शासन में सुधार करना अनिवार्य समझा। इन सुधारों में निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं :—

(१) राजनीतिक बन्दियों को मुक्त कर दिया गया।

(२) प्रेस पर जो प्रतिबन्ध लगे हुए थे, वे समाप्त कर दिये गये।

(३) विश्वविद्यालयों को स्वायत्त शासन दे दिया गया और उनमें प्रत्येक वर्ग के छात्रों को प्रवेश मिल सकता था।

(४) विदेश-यात्रा पर लगे हुए प्रतिबन्धों को समाप्त कर दिया गया।

(५) **दास प्रथा का अन्त**—सन् १८६० में रूस में लगभग ४ करोड़ दास थे। मालिक इन पर घोर अत्याचार करते थे। इनको पशुओं की भाँति खरीदा-बेचा जा सकता था। भूमिदासों की अवस्था और भी हीन थी। १७६२ में पीटर तृतीय के सुधारों के बावजूद दास स्वतन्त्रता की मांग करने लगे थे। अलेक्जेण्डर प्रथम ने कहा था कि दासों को मुक्त करना समय की मांग है। पत्रकारों ने भी इसका विरोध किया। उपन्यासकार गोगल ने दास प्रथा पर व्यंग करते हुए 'Dead Souls' नामक एक उपन्यास लिखा। टर्गेनिफ ने 'Memoirs of a huntsman' नामक एक पुस्तक लिख कर दास प्रथा पर भीषण प्रहार किया। इस विरोध के बावजूद भी यह प्रथा अब तक समाप्त नहीं हुई थी। इसका कारण यह था कि सामन्त दास प्रथा के अन्त करने का विरोध कर रहे थे। कुछ किसान भी इस प्रथा की समाप्ति का विरोध कर रहे थे। कारण यह था कि सामन्तों के जंगल तथा चरागाह थे। किसानों को इससे लकड़ी एवं घास मुफ्त मिल जाती थी। यदि दास प्रथा समाप्त हो जाती तो इनको ये वस्तुयें निःशुल्क मिलनी असम्भव थीं। एलेक्जेण्डर द्वितीय ने इस प्रथा के विषय में कहा था कि 'It was 'better to abolish serfdom from above than to wait until it begins to abolish itself from below'. १८६१ में अलेक्जेण्डर द्वितीय ने दास प्रथा उन्मुक्ति ऐक्ट पास कर दिया। इस कानून के पास होने पर ४ करोड़ व्यक्ति स्वतन्त्र हो गए। इस कानून को पास कराने में म्ल्यूटिन नामक एक मन्त्री का भी बहुत हाथ था।

---

1. "For Russia the Crimean war marked the end of an epoch. It was evident that her vaunted greatness was a myth. The boasted splendour of a regime of orthodoxy, autocracy, and Pan-Slavism under Nicholas I stood revealed as merely thirty years of 'grinding servitude' ending in a national disaster." Autt.

प्रभाव–(१) दासों को नागरिक अधिकार प्रदान कर दिए गए। उन्हें दासता के बन्धन से मुक्त करा कर स्वतन्त्र किसान बना दिया गया।

(२) सामन्तों से बड़े-बड़े भू-खण्ड छीन लिए गए। उनको आंशिक हर्जाना भी दे दिया गया।

(३) किसान जिस भूमि पर खेती कर रहा था वह उसका पूर्ण अथवा आंशिक भाग खरीदेगा। यह रुपया ४९ किश्तों में दिया जायगा। इस धन पर किसानों को ६ प्रतिशत ब्याज भी देना होगा।

(४) सामन्तों से छीनी हुई भूमि मीरों (ग्राम पंचायतों) में बांट दी गई।

(५) भूमि का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया।

(६) इससे कृषि का उत्पादन बहुत अधिक मात्रा में बढ़ गया।

(७) कृषकों की अवस्था पहले से अच्छी हो गई। उन्हें रूसी समाज में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त हो गया।

(८) बहुत से दास स्वतन्त्र होने पर मिलों एवं फैक्ट्रियों में काम करने लगे। इससे देश का औद्योगिक विकास हुआ।

दोष—उपर्युक्त गुणों के साथ इस व्यवस्था में कुछ दोष भी थे। एक रूसी किसान ने स्वयं कहा था कि मेरी दशा सुधर भी गई है और बिगड़ भी गई है। एक बार एक सामन्त ने कहा था कि पहले हम कोई हिसाब भी नहीं रखते थे और शराब भी अच्छी पीते थे। अब हम हिसाब भी रखते हैं और शराब भी घटिया प्रकार की पीते हैं। सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टिकोण से इनका बहुत महत्व है। इतना होते हुए भी इस व्यवस्था में निम्न दोष थे :—

(१) जमीन के टुकड़े जो किसानों को दिए गए थे वे बहुत थोड़े थे। एक परिवार के लिए ये अपर्याप्त थे।

(२) सामन्तों ने कृषकों की निर्धनता से लाभ उठाया। उन्होंने कृषकों को उस जमीन का, जिसको कि वे जोतते थे, ¼ भाग मुफ्त में दे दिया तथा शेष भूमि पर अपना अधिकार कर लिया।

(३) इससे कृषकों को कोई विशेष लाभ भी नहीं हुआ। अब वे सामन्तों के स्थान पर मीरों के अधीन कर दिए गए। ये मीर बहुत अत्याचारी थे। इसलिए इस व्यवस्था को एकमात्र स्वामियों का परिवर्तन (Change ot Masters) कहते हैं।

(४) लगान एवं किश्त वसूल करने वाले पदाधिकारी अत्याचारी थे।

(५) किश्तों का धन अधिक था। निर्धन किसान इतनी बड़ी किश्तें अदा न कर सकते थे।

न्याय सम्बन्धी सुधार—रूस की न्याय व्यवस्था में बहुत दोष थे।[1] न्याय व्यवस्था के दोषों का पता लगाने के लिये एक कमीशन नियुक्त किया गया। इस

1. 'About the best thing that could be said for the old system was that it was thoroughly corrupt.' —Autt.

कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में रूसी न्याय व्यवस्था में २५ दोष बतलाए। प्रमुख दोष निम्न प्रकार हैं :—

(१) मुकदमे दीर्घकालीन होते थे।
(२) आवश्यक बातों को विस्तारपूर्वक लिखा नहीं जाता था।
(३) मुकदमे गुप्त होते थे।
(४) वकीलों की सुविधा प्राप्त न थी।
(५) जूरी की प्रणाली न थी।

न्याय व्यवस्था के इस भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए १८६२ में एक नया कानून पास किया गया। इसके अनुसार निम्न व्यवस्था की गई :—

(१) फ्रांसीसी एवं ब्रिटिश न्याय सिद्धान्तों के आधार पर अदालतों का निर्माण किया गया। प्रबन्धकारिणी के हाथ से न्याय के अधिकार छीन लिए गए।

(२) मुकदमे की सुनवाई जूरी (Jury) द्वारा होने लगी।

(३) जज स्वतन्त्र कर दिए गए। जजों के पदच्युत करने का एकमात्र अधिकार अदालतों को दिया गया।

(४) वकीलों की सहायता की भी व्यवस्था कर दी गई।

(५) छोटे-छोटे अभियोगों की सुनवाई के लिए Justice of Peace के नाम के अधिकारियों की नियुक्ति की गई।

(६) कानून का संग्रह कर उसे लिखित रूप दिया गया।

(७) स्थानीय शासन की भी व्यवस्था की गई। ग्रामों में ग्राम पंचायतों (मीरों) की स्थापना की गई। इसी प्रकार प्रत्येक जिले एवं प्रान्त में निर्वाचित कौंसिलों की नियुक्ति की गई।

(८) मुकदमे खुले रूप में (Open Trials) होने लगे।

स्थानीय शासन में सुधार – १८६४ में स्थानीय शासन में अनेक सुधार किए गए। पुलिस के अधिकार सीमित कर दिये गये। प्रत्येक जिले एवं प्रान्त में निर्वाचित कौंसिलों (Zems-Tvo) की व्यवस्था की गई। इनके प्रमुख कार्य निम्नलिखित थे[1]—

(१) सड़कों एवं पुलों का जीर्णोद्धार करना।
(२) शिक्षा एवं सफाई की व्यवस्था करना।
(३) दुर्भिक्ष के समय जनता की सहायता करना।

---

1. 'The Zemstvo has done a great deal to provide medical aid and primary education for the common people, and it has improved wonderfully the condition of the hospitals, lunatic asylums, and other benevolent institutions committed to its charge. ...it has helped to improve the nature breeds of horses and cattle, and it has created a system of obligatory fire insurance together with means for preventing and extinguishing fires.' —Wallace.

(४) स्थानीय झगड़ों का समाधान करना।

(५) इनको स्थानीय जनता पर कर लगाने का भी अधिकार था; परन्तु इन स्थानीय निकायों की आर्थिक अवस्था खराब थी। प्रान्तीय गवर्नरों को इन कौंसिलों के निर्णयों को रद्द करने का अधिकार प्राप्त था।

अन्य सुधार—पुलिस के अधिकार सीमित कर दिये गये। विदेश यात्रा एवं प्रेस के प्रतिबन्ध समाप्त कर दिये गये। विश्वविद्यालयों को स्वायत शासन दे दिया गया। रेलवे में भी सुधार किये गये। सेना का संगठन किया गया।

उपर्युक्त सुधार करने के कारण अलेक्लेण्डर द्वितीय मुक्तिदाता जार (Tsar the Liberator) कहलाने लगा। अब लोगों को विश्वास हो गया था कि प्रतिक्रियावाद का समय समाप्त हो गया है। एक पत्रकार ने इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा था—"अब रूस में शान्तिपूर्वक ऐसे सुधार होने वाले हैं जो योरप के अन्य देशों में शताब्दियों तक रक्त बहाने के बावजूद भी प्राप्त नहीं हुए हैं।'

प्रतिक्रिया—परन्तु ये सुधार अधिक समय तक न चल सके। कालान्तर में अलेक्जेण्डर ने सुधारों को समाप्त कर कठोरता की नीति का पालन किया। उसके इस परिवर्तन के निम्न कारण थे—

(१) **पोलैंड का विद्रोह**—१८२५ से १८६१ तक पोलैण्ड ने बहुत उन्नति की। वहां पर एग्रीकल्चर सोसाइटी की स्थापना हुई। इसके निम्न उद्देश्य थे—

(१) कृषकों की उन्नति करना।

(२) दास-प्रथा का उन्मूलन करना।

(३) स्थानीय शासन में सुधार करना।

इस संस्था ने अनेक सुधार सम्राट् से बिना पूछे किये। इससे जार सम्राट् इस संस्था से नाराज हो गया तथा उसने इस संस्था का दमन करना आरम्भ कर दिया। इस दमन कार्य के विरुद्ध पोलैंड में स्थान-स्थान पर प्रदर्शन आरम्भ हो गये। इस पर अलेक्जेण्डर ने पोलैण्ड में कुछ सुधार किये। उसने अपने भाई को पोलैंड का वाइसराय बनाया। १८१५ का उदार संविधान जो भंग कर दिया गया पुनः लागू कर दिया गया। परन्तु पोलैंड में अपनी प्राचीन सीमाओं को प्राप्त करने के लिए बराबर आन्दोलन चलते रहे। जार ने पुनः कठोरतापूर्वक दमन आरम्भ कर दिया। १८६३ में एक रात को वार्सा के समस्त घरों की तलाशी ली गई। अनेक गिरफ्तारियां की गईं। पोलैंड के पास कोई सेना न थी। वहाँ की सेना १८३० के विद्रोह के समय भंग कर दी गई। बिस्मार्क ने रूस का साथ दिया था और इस विद्रोह का दमन करा दिया। पोलैंड का पूर्णतया रूसीकरण कर दिया गया।

२. **निहलिस्ट आन्दोलन** (Nihilist Movement)—Nihilist शब्द लैटिन भाषा के Nihil शब्द से बना है। Nihil का अर्थ है–कुछ नहीं (nothing)। ये सब परम्पराओं एवं मान्यताओं के विरोधी थे। इनका दृष्टिकोण विध्वंसकारी था।

इनका कहना था कि विध्वंस के बाद व्यवस्था स्वयं स्थापित हो जायगी। ये जनता में जागरण पैदा करना चाहते थे। इनका कहना था कि किसी बात को पुरातन होने के कारण ग्रहण मत करो। उसे तर्क की कसौटी पर कसने के बाद ग्रहण करो। ये किसी भी प्रकार का नियन्त्रण पसन्द नहीं करते थे। ये धर्म, विवाह, नैतिकता सभी के विरोधी थे।[1]

प्रारम्भ में निहलिस्टों ने शान्तिपूर्वक कार्य करना आरम्भ किया और जार ने इनके कार्यों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया; परन्तु इनका अधिक प्रभाव बढ़ने पर जार ने इनका कठोरतापूर्वक दमन करना आरम्भ कर दिया। इस कठोरता एवं दमन के कारण निहलिस्ट भी उग्रवादी हो गये। उन्होंने स्थान स्थान पर हत्याकाण्ड आरम्भ कर दिये।

जार सम्राट ने निहलिस्टों का दूनी कठोरता से दमन आरम्भ कर दिया। निहलिस्टों एवं आतंकवादियों को पकड़-पकड़ कर कठोर दण्ड देने आरम्भ कर दिये। बिना अभियोग चलाये सहस्त्रों को साइबेरिया के ठंडे मैदानों में निर्वासित कर दिया गया। दो वर्षों (१८७८–७९) में एकमात्र सेण्ट पीटर्सवर्ग में २००० व्यक्तियों को गिरफ्तार कर जेलों में डाल दिया। जार सम्राट् पर भी १८७९ में पाँच बार गोलियाँ चलाई गई, परन्तु सौभाग्यवश उसको कोई हानि नहीं हुई। सम्राट् की स्पेशल ट्रेन को भी बारूद द्वारा नष्ट कर दिया। परन्तु उस ट्रेन में सम्राट् नहीं था। सम्राट के सेन्टपीटर्स वर्ग के डाइनिंग रूम की छत को भी बारूद से नष्ट कर दिया गया; परन्तु सौभाग्यवश इस बार भी सम्राट् को कोई हानि न हुई। १८८० में जार के विन्टर प्लेस के ऊपर एक बम्ब फेंका गया। परन्तु सम्राट् उस समय महल में नहीं था। अतः बच गया।

निहलिस्टों का नारा था कि जनता से सम्पर्क स्थापित किया जाय।[2] अतः निहलिस्ट गुप्त रूप से विश्वविद्यालयों, घरों एवं कारखानों आदि में प्रवेश कर गए। उन्होंने अस्त्र-शस्त्र बनाने के कारखाने स्थापित कर लिये और पृथक् गुप्तचर विभाग स्थापित कर लिया। गुप्त रूप से राजप्रासाद तक में इन्होंने नौकरियां कर ली थीं। इन्होंने जार के नौ गुप्तचरों तथा ६ उच्च-पदाधिकारियों की हत्या कर दी।

३. अलेक्जेण्डर के को यह भ्रम हो गया था कि यदि जनता को अधिक सुविधायें दी जायेंगी तो उसकी निरंकुशता में कमी आ जायगी।

४. अलेक्जेण्डर के सुधार कागज पर तो बड़े आकर्षक प्रतीत होते थे; परन्तु व्यवहार में अधिक लाभकारी सिद्ध नहीं हुए। दासता के समाप्त हो जाने पर भी

---

1. "The fundamental principle of Nihilism was absolute individalism. It was the negation, in the name of individual liberty, of all the obligations imposed upon the individual by society, by family life and by religion.'

2. 'Go among the people.'

किसानों की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं हुई। वे एकको परतन्त्रता से स्वतन्त्र हो, दूसरे के अधीन हो गये। न्याय व्यवस्था में भी आशातीत सफलता न मिली। रूस में योग्य जजों एवं कुशल प्रबन्धकों का अभाव था। जनता जो आशायें लगाए बैठी थी उनकी पूर्ति न होने पर वह निराश हो गई।

५. **समाजवाद**—सन् १८७० के पश्चात् रूस में समाजवादियों का भी प्रादुर्भाव हुआ। ये आर्थिक स्वतन्त्रता के समर्थक थे। ये सामाजिक स्वतन्त्रता स्थापित करना चाहते थे। इनका कथन था कि कृषक भूख एवं परिश्रम से परेशान है तथा वह अधिकारयुक्त वर्ग का दास बना हुआ है। ये शान्तिपूर्वक अपना प्रचार कर जनता को जागृत करना चाहते थे। इनका प्रधान केन्द्र ज्युरिख था। इनका नेता लेवरोफ (Lavroff) था।

६. **अराजकतावादी**—सम्राट् के कठोर दमन के बाद निहलिस्ट अराजकतावादी हो गए। उनका कार्य राज-परिवार के व्यक्तियों एवं सामन्तों की हत्या करना हो गया। अराजकतावादियों का नेता बाकुनीन (Bakunin) था। लिप्सन महोदय ने इसको विध्वस का अवतार कहा है।

७. **पान स्लाव आन्दोलन**—इसी बीच रूस में पान-स्लाव आन्दोलन का भी आरम्भ हो गया। इसका उद्देश्य स्लाव जाति को जागृत कर उसको एक शासन के अन्तर्गत संगठित करना था। स्लाव रूस की प्रमुख जाति थी। कुछ प्रदेशों में उसकी अवस्था खराब थी। रूस एवं टर्की का युद्ध होने का एक कारण पान स्लाव आन्दोलन ही था।

इस प्रकार के विभिन्न आन्दोलनों के प्रादुर्भाव के कारण अलेक्जेण्डर प्रतिक्रियावादी हो गया। पोलैण्ड के आक्रमण के समय उसने कहा था 'सुधार की मांग की पूर्ति सुधार की माँग को समाप्त नहीं कर सकती।' अतः वह प्रतिक्रियाबादी हो गया। उसके निम्न कार्य उसके इस उद्देश्य को स्पष्ट करते हैं :—

(१) राजनीतिक अपराधों की सुनवाई के लिए एक विशेष प्रकार की अदालतों की स्थापना की गई। छोटे-छोटे अपराधों के लिए कठोर सजायें दी जाती थीं।

(२) उच्च शिक्षा प्राप्त कर विश्वविद्यालयों से निकलने वाले नवयुवकों को सरकारी नौकरी से वंचित कर दिया गया।

(३) जिले की कौंसिलों एवं अदालतों पर नियन्त्रण स्थापित कर दिया गया।

(४) प्रेस की स्वतन्त्रता बहुत सीमित कर दी गई।

(५) मिल, स्पेन्सर तथा लेकी जैसे विचारकों के ग्रन्थों का रूस में प्रवेश वर्जित कर दिया गया।

इस प्रकार अलेक्जेण्डर द्वितीय के शासन में वे सब बुराइयाँ आ गईं जो कि भूतपूर्व जार सम्राटों के समय में थीं। शासन में उत्कोच एवं भ्रष्टाचार का बोलबाला

हो गया। शिक्षित वर्ग का घोर विरोध होने लगा। फलतः शिक्षित वर्ग आतंकवादी एवं शासक वर्ग प्रतिक्रियावादी होता चला गया। इन लोगों के कार्य से समस्त देश में आतंक छा गया और सम्राट् अलेक्जेण्डर द्वितीय को विवश होकर शासन में कुछ सुधार करने पड़े। उसने जनता को एक नवीन उदार संविधान दिया। बहुत से राजबन्दियों को मुक्त कर दिया गया तथा प्राण-दण्ड देना बहुत कम कर दिया गया, परन्तु जनता इन सुधारों से सन्तुष्ट नहीं हुई। आतंकवादियों ने १३ मार्च १८८१ को मुक्तिदाता जार अलेक्जेण्डर द्वितीय की बम्ब फेंक कर हत्या कर दी।

वैदेशिक नीति

(१) उसने क्रीमिया युद्ध को समाप्त कर पेरिस की सन्धि कर ली। बाल्कन प्रदेश में रूस का प्रभाव समाप्त हो गया। परन्तु १८७० में बिस्मार्क के प्रोत्साहन से काले सागर पर पुनः अपना जहाजी बेड़ा रखना आरम्भ कर दिया। लन्दन में १३ मार्च १८८१ को एक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में पेरिस की सन्धि में संशोधन कर दिया गया तथा रूस के लिए काला सागर खोल दिया गया। इङ्गलैंड के लिए यह बड़े अपमान की बात थी।

(२) १८७२ में बिस्मार्क ने जार से त्रिसम्राट् समझौता (Three Emperors League) कर लिया। यह समझौता जर्मनी, आस्ट्रिया एवं रूस के सम्राटों के मध्य में हुआ था। इसका उद्देश्य राजाओं के पवित्र अधिकारों की रक्षा करना था।

(३) **पूर्वी समस्या**—पीटर महान् के समय से ही रूसी सम्राटों का उद्देश्य पूर्वी समस्या में हस्तक्षेप करना था। अलेक्जेण्डर द्वितीय ने भी इस नीति का आश्रय लिया।१८७७ में रूस एवं टर्की का युद्ध हो गया। कारण यह था कि टर्की राज्य में बहुसंख्यक ईसाई जातियाँ रहती थीं। बोस्निया, हर्जेगोविना तथा बलगेरिया में स्वतन्त्र होने के लिए विद्रोह हो गया। सर्बिया एवं मान्टेनिग्रो ने इनको सहायता दी। सुलतान ने कठोरतापूर्वक इनका दमन कर दिया। ईसाई राज्यों ने इसका विरोध किया। सुलतान को शासन में सुधार करने के लिए अन्द्रेसी नोट दिया गया; परन्तु उसने इसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। तत्पश्चात् सुलतान के पास बर्लिन नोट भेजा गया। इनका उद्देश्य यह था कि टर्की का सुलतान अत्याचार बन्द कर दे तथा अपने अधीन गैर-तुर्क जातियों के साथ उदारता का व्यवहार करे। परन्तु सुलतान ने इधर कोई ध्यान नहीं दिया। रूस भी युद्ध चाहता था। अतः १८७७ में उसने टर्की पर आक्रमण कर दिया। प्लेवना का भयंकर युद्ध हुआ। सेन्टस्टेफेनो की सन्धि हुई। इसके अनुसार रूस ने टर्की साम्राज्य में अनेक सुविधायें प्राप्त कीं —

(१) रूमानिया, सर्बिया तथा माण्टेनिग्रो को स्वतन्त्र कर दिया गया। इसका अर्थ यह था कि टर्की साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया।

(२) बृहद् बलगेरिया का निर्माण हुआ। इसका निर्माण रूस के प्रभाव के अन्तर्गत हुआ।

(३) रूस को बेसराविया का प्रदेश दिया गया।

इङ्गलैंड ने इस सन्धि का घोर विरोध किया। उसने आस्ट्रिया को भी अपने साथ मिला लिया। उसने एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन की मांग की। अन्त में बर्लिन की सन्धि हुई —

(१) रूमानिया, सर्विया तथा मान्टेनिग्रो को स्वतन्त्र मान लिया गया।

(२) बृहत् बलगेरिया को छोटा बलगेरिया बना दिया गया तथा उससे पूर्वी रूमेलिया का प्रदेश छीन लिया गया तथा उसको नाममात्र के लिए स्वतन्त्र कर दिया गया।

(३) बोस्निया तथा हर्जेगोविना का शासन आस्ट्रिया को दे दिया गया; परन्तु इन प्रदेशों को वह अपने राज्य में मिला नहीं सकता था।

(४) बसरेबिया का प्रदेश रूस के पास ही रहेगा।

यह सन्धि रूस की पराजय का प्रतीक थी। सेनस्टफेनो की सन्धि के अनुसार उसने जो प्राप्त किया था, बर्लिन सम्मेलन में वह सब उससे छीन लिया गया।

बर्लिन सन्धि का सबसे बड़ा अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव जर्मनी से रूस का खिंचने लगना था। बिस्मार्क ने आस्ट्रिया का पक्ष लिया। अलेक्जेण्डर बिस्मार्क से बहुत नाराज हुआ। उसने कहा था कि जर्मनी एवं रूस की मित्रता सैंकड़ों वर्ष पुरानी है। रूस के तटस्थ रहने के कारण ही जर्मनी का एकीकरण सम्भव हो सका है। यदि जर्मनी पुन: रूस की मित्रता चाहता है तो उसे अपनी नीति में परिवर्तन करना होगा।[1]

१८७९ में बिस्मार्क ने डर कर आस्ट्रिया से द्विराष्ट्र सन्धि कर ली। यह सन्धि रूस के विरुद्ध हुई थी। प्रारम्भ में यह सन्धि गुप्त रक्खी गई। १८८८ तक रूस की जनता को इस सन्धि का कोई पता न था।

अलेक्जेण्डर ने चीनी सरकार से पत्र-व्यवहार करके ब्लाडीवोस्टक के बन्दरगाह पर अधिकार कर लिया।

पूर्वी समस्या में अलेक्जेण्डर को असफलता प्राप्त हुई। परन्तु उसने स्थल के मार्ग में अनेक सुविधायें प्राप्त कर लीं। अब उसने मध्य एशिया की ओर जाने का प्रयत्न किया। इस कार्य में उसको पर्याप्त सफलता मिली। कैस्पियन सागर एवं काकेशस के पर्वत के प्रदेश पर उसने अधिकार कर लिया। मध्य एशिया में वह मर्व तक पहुंच गया। अंग्रेजों को भारत एवं अफगानिस्तान के कारण उससे बहुत खतरा उत्पन्न हो गया।

अलेक्जेण्डर द्वितीय की हत्या—क्रान्ति का दमन करने के लिए सम्राट् ने Land and Liberty नामक एक संस्था बनाई। रूस के प्रत्येक भाग में इसकी शाखायें स्थापित कर दी गईं। इसका कार्य क्रान्ति की भावनाओं का दमन करना था। रूस के क्रान्तिकारी दलों में भी फूट थी। वे दो पार्टियों में बंटे हुए थे—Black

---

1. 'If Germany wished the friendship of a hundred years to continue, she must alter her ways.'

Party तथा Will of the People Party. ब्लैक पार्टी शान्तिमय तरीकों से कार्य करती थी; परन्तु Will of the People Party हिंसात्मक तरीकों से अपने उद्देश्यों की पूर्ति करना चाहती थी। क्रान्तिकारियों ने थर्ड सेक्सन के अधिकारी की भी दिन के समय पेट्रोग्रेड की सड़क पर हत्या कर दी। हत्यारे को गिरफ्तार नहीं किया जा सका। अलेक्जेण्डर द्वितीय को मारने के लिए भी पाँच बार प्रयत्न किए गए। सम्राट् के विन्टर प्लेस पर भी बम्ब फेंका गया। सम्राट् की स्पेशल ट्रेन को भी बारूद से उड़ाने का प्रयत्न किया गया। उसके सेन्टपीटर्सबर्ग के डाइनिंग रूम की छत भी बारूद से उड़ा दी गई। १३ मार्च १८८१ में एक निहलिस्ट ने अलेक्जेण्डर द्वितीय पर जबकि वह घूम कर लौट रहा था, एक बम्ब फेंका। अलेक्जेण्डर तो इससे बच गया; परन्तु उसके अंग-रक्षक मारे गये। वह जब उन रक्षकों को देख रहा था तो एक दूसरा बम्ब फेंका गया। यह खतरनाक सिद्ध हुआ और इसके फलस्वरूप मुक्तिदाता जार अलेक्जेण्डर बुरी तरह घायल हो गया तथा कुछ ही समय पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार मुक्तिदाता जार एवं उसके साथ-साथ उदार शासन की समाप्ति हो गई।[1]

इस हत्या के पश्चात् आतंकवादियों ने एक घोषणा-पत्र द्वारा घोषित किया कि यदि हमारी दो मांगें मान ली जायें तो हम आतंकवादी नीति का परित्याग कर देंगे—

(१) वयस्क मताधिकार के आधार पर एक संसद का निर्माण किया जाय।

(२) प्रेस, भाषण एवं सभा करने की स्वतन्त्रता प्रदान की जाय।

प्रश्न

१ एलेग्जेण्डर द्वितीय को मुक्तिदाता जार (Tzar the Liberator) क्यों कहते हैं ?

२ एलेक्जेण्डर द्वितीय के सुधारों की समीक्षा कीजिये।

३ एलेक्जेण्डर द्वितीय की गृह-नीति और विदेशी नीति का विवरण दीजिये।

४ निहिलिस्ट आन्दोलन क्या था ? इसने रूसी इतिहास पर क्या प्रभाव डाला।

५ Discuss the claim of Alexander II to be regarded as the Czar Librator.

—:o:—

1. 'Thus perished the Tsar Liberator. At the same time the hopes of the liberals perished also.'
—Hazen.

खण्ड ४

१
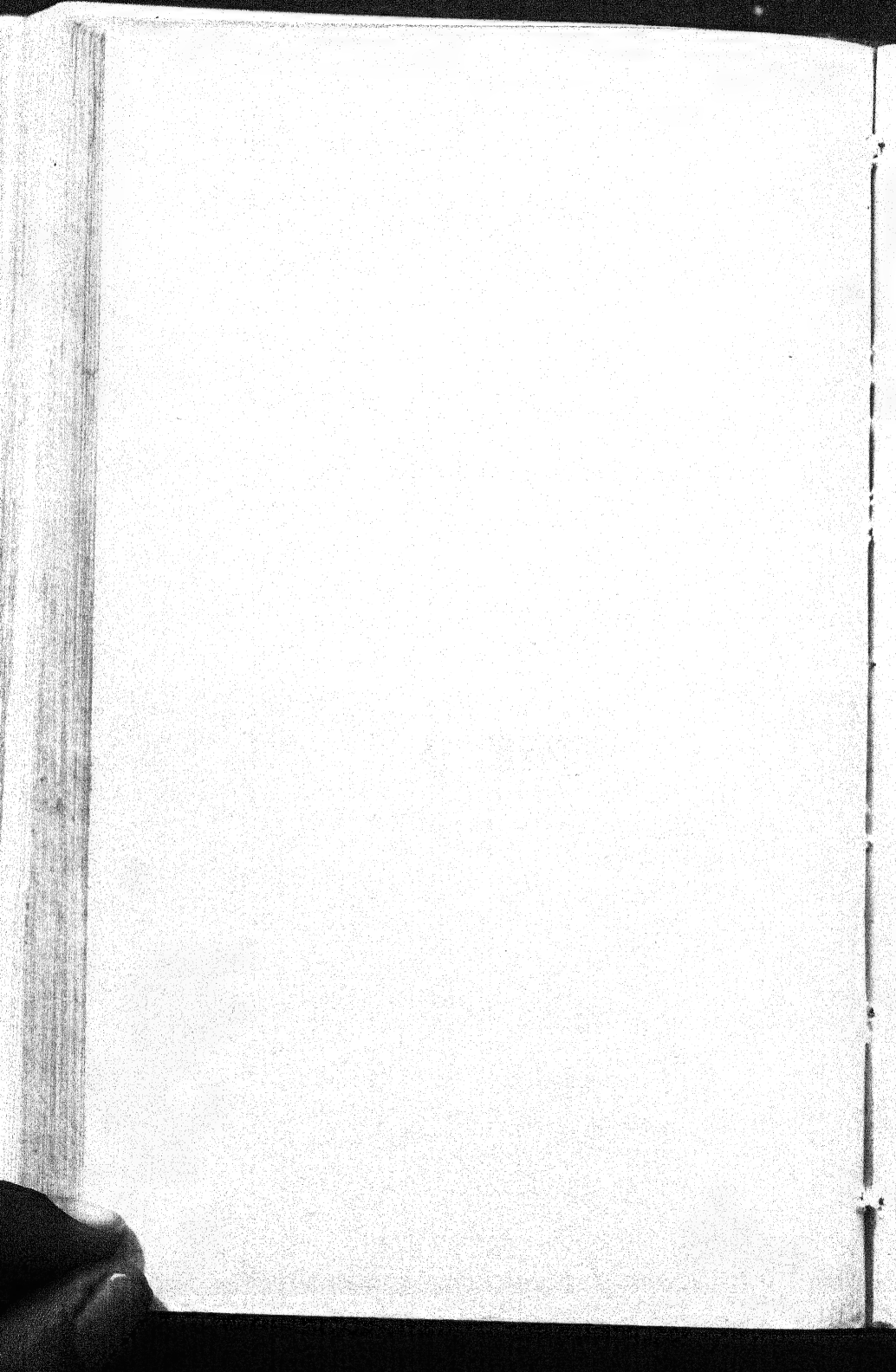
फ्रांस

(१८७०–१९१४)

फ्रांस, फ्रैन्कफोर्ट की सन्धि, थिये, गृह-युद्ध, राष्ट्रीय पुनर्निर्माण, तृतीय गणतन्त्र की स्थापना, नवीन संविधान, गैम्बेटा, तृतीय गणतन्त्र की कठिनाइयाँ, बूलांजे, पनामा कम्पनी, ड्रेफस, चर्च, विदेशी नीति, १९०४ की मैत्री-सन्धि।

१८७० के सेडन के युद्ध में जर्मनी ने फ्रांस को बुरी तरह पराजित कर दिया। फ्रांस का सम्राट् नेपोलियन तृतीय अपनी ८३ हजार सेना के साथ बन्दी बना लिया गया। देश में सर्वत्र नेपोलियन तृतीय की कटु आलोचना होने लगी। उस पर देश को बर्बाद करने का आरोप लगाया गया। चारों तरफ प्रजातन्त्र की स्थापना के लिए नारे लगने लगे। ४ सितम्बर को सुप्रसिद्ध गणतन्त्रवादी नेता गैम्बेटा के नेतृत्व में फ्रांस में तृतीय गणतन्त्र (Third Republic) की घोषणा कर दी गई। देश की सुरक्षा के लिये एक अस्थायी सरकार की स्थापना की गई तथा जर्मनी का सामना करने के लिये योजना बनाई गयी। पेरिस के स्थान पर बोर्दो को राजधानी बनाया। अस्थायी सरकार ने जर्मन सेना को पराजित करने का निश्चय किया। युद्ध के संचालन का भार गैम्बेटा ने अपने ऊपर लिया तथा अत्यधिक उत्साह से कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। परराष्ट्र मन्त्री जूलिस फेवर (Jules Favre) ने घोषित किया—'हम बिना लड़े एक इंच भी भूमि नहीं देंगे तथा अपने किलों का एक पत्थर भी नहीं देंगे।' परन्तु इतने उत्साह के बावजूद भी फ्रांस पराजय के अपमान से न बच सका। एक वर्ष के वीरतापूर्ण युद्ध के पश्चात् फ्रांस के गणतन्त्र ने आत्म-समर्पण कर दिया।

फ्रैन्कफर्ट की सन्धि (Treaty of Frankfort)—२८ जनवरी १८७१ को फ्रांसीसी सेनाओं ने पूर्णतया आत्म-समर्पण कर दिया तथा १० मई १८७१ को जर्मनी के साथ फ्रैन्कफर्ट की सन्धि कर ली। इस सन्धि के अनुसार निम्नलिखित निर्णय किये गये—

(१) फ्रांस ने अल्सेस तथा लोरेन के प्रदेश जर्मनी को दे दिये।

(२) फ्राँस पर २० करोड़ पौंड क्षतिपूर्ति के रूप में लाद दिया गया।

(३) जब तक फ्राँस क्षतिपूर्ति की सम्पूर्ण राशि अदा न करे तब तक जर्मनी की एक सेना फ्राँस के व्यय पर फ्रांस के उत्तरी-पूर्वी भाग में रहेगी।

थिए कार्यपलिका के अध्यक्ष के रूप में—फ्रांस में गणतन्त्र की स्थापना के लिये जनता की राय नहीं ली गई थी तथा युद्ध-काल में जनता की राय लेना सम्भव भी नहीं था। गणतन्त्र के संचालन के लिये थिए (Thiers) को कार्यपालिका का अध्यक्ष (Chief of Executive) बनाया गया। उसका कोई निश्चित शासन काल न था। वह तब तक ही कार्य कर सकता था जब तक कि नेता चाहते। क्षति-पूर्ति के सम्बन्ध में जनता की राय ली जानी थी। अतः १८७१ में चुनाव की व्यवस्था की गई तथा राष्ट्रीय सभा (National Assembly) की स्थापना हुई। इसमें ७५० सदस्य निर्वाचित हुए। नेशनल असेम्बली के पश्चात् अस्थायी सरकार भंग कर दी गई। थिए स्थायी सरकार का प्रेसीडेन्ट चुना गया। चुनाव के फलस्वरूप राजतन्त्रवादियों को बहुमत प्राप्त हुआ। गणतन्त्रवादी युद्ध के समर्थक थे और राजतन्त्रवादी युद्ध बन्द करना चाहते थे। गाँव की जनता युद्ध से परेशान थी। अतः उसने राजतन्त्र-वादियों का समर्थन किया। वास्तव में उनका यह उद्देश्य था कि प्रजातन्त्रवादियों का विरोध कर युद्ध को बन्द कर दिया जाय। परन्तु पेरिस तथा फ्रांस के अन्य बड़े नगरों में गणतन्त्रवादियों को ही सफलता प्राप्त हुई। इसके बावजूद भी राष्ट्रीय सभा में राजतन्त्रवादियों का बहुमत बहुत अधिक था। यदि ये चाहते तो एक बार पुनः फ्रांस में राजतन्त्र की स्थापना कर सकते थे। परन्तु इस समय उन्होंने ऐसा करना उचित नहीं समझा; क्योंकि उस समय शत्रु देश के अन्दर घुसा हुआ था और बिस्मार्क अल्सेस तथा लारेन के महत्वपूर्ण प्रदेश प्राप्त करने की शर्त पर ही युद्ध बन्द करने के लिये तैयार था। अतः राजतन्त्रवादी राजा से ऐसी अपमानजनक सन्धि कराना उचित नहीं समझते थे। वे गणतन्त्र को बदनाम करने के लिये उससे ही ऐसी अपमानजनक सन्धि पर हस्ताक्षर कराना चाहते थे।

सरकार तथा पेरिस कम्यून के मध्य गृह-युद्ध—१८७१वां वर्ष फ्रांस के इतिहास में भारी संकट का काल था। इसको इतिहास में खतरनाक वर्ष (Terrible Year) के नाम से पुकारा गया है। इसी वर्ष फ्राँस की सरकार तथा पेरिस कम्यून (Commune) के मध्य गृह-युद्ध हो गया। इससे पेरिस रक्त-रंजित हो गया। इस गृह-युद्ध के निम्नलिखित कारण बतलाये जा सकते हैं

१. नेशनल असेम्बली में जनतन्त्रवादियों का बहुमत था। इसके विपरीत पेरिस निवासी प्रजतन्त्रवादी थे। अतः गणतन्त्रवादियों को यह भय हो गया कि कहीं वे राजतन्त्र की स्थापना के लिये प्रयास न करने लगें। उनके सम्मुख लुई फिलिप तथा नेपोलियन तृतीय के राजसत्ता प्राप्त करने के दो उदाहरण विद्यमान थे। इस प्रकार गणतन्त्रवादी तथा राजतन्त्रवादी एक दूसरे को शंका की दृष्टि से देख रहे थे।

२. सन् १८७० के फ्रांस तथा प्रशा के युद्ध के समय नेशनल गार्ड की शक्ति में बहुत वृद्धि हो गई थी। नेशनल असेम्बली इससे भयभीत हो गई। अतः उसने एक कानून द्वारा इसको भंग कर दिया तथा यह घोषित किया कि अब इसमें वही सदस्य

रह सकेंगे जो कि अपनी पवित्रता का प्रमाण-पत्र दे सकें। इसके भंग होने के परिणाम-स्वरूप लाखों स्वयं सेवक बेकार हो गये। इससे देश में बहुत असंतोष उत्पन्न हुआ। बेकार स्वयंसेवक अपने अपने ग्रामों तथा नगरों में जाकर नेशनल असेम्बली के विरोध में प्रचार करने लगे। नेशनल असेम्बली ने छटनी के समय इनके हथियार नहीं छीने थे। अतः ये नेशनल असेम्बली का सामना करने का पूरा साहस रखते थे।

३. युद्ध-काल में पेरिस के स्थान पर बोर्दों को राजधानी बनाया गया था; परन्तु युद्ध समाप्त होने पर भी पेरिस को पुन: राजधानी नहीं बनाया गया। इससे वहाँ बहुत असंतोष उत्पन्न हुआ। पेरिस का फ्रांस के इतिहास में बहुत अधिक महत्त्व है। यह प्राचीन काल से ही फ्रांस का एक प्रमुख नगर रहा है। फ्रीमैन नामक विद्वा ने लिखा है कि इसके चारों ओर ही फ्रांस का विस्तार हुआ है। पेरिस प्रत्येक क्रान्ति का केन्द्र रहा है। पराजित होने पर उसने अन्त तक युद्ध किया था। उसी ने तृतीय गणतन्त्र की घोषणा की थी। इस प्रकार पेरिस का ऐतिहासिक गौरव बहुत अधिक था। मार्च १८७१ में राष्ट्रीय सभा ने बोर्दों से राजधानी हटाकर वार्साय में स्थापित की। वह नगर दीर्घकाल तक बूर्बां शासकों की राजधानी रहा था तथा प्रतिक्रियावाद का केन्द्र था। इससे पेरिस नगर-निवासियों के सम्मान को बहुत ठेस पहुंची। उनके दिलों में यह आशंका होना स्वाभाविक था कि देश में राजतन्त्र की स्थापना हो सकती है। पेरिस फ्रांस का प्रमुख देश था। उसमें देश के प्रमुख व्यापारी, पूंजीपति तथा बैंकर्स रहते थे। उन्होंने भी कम्यून को सहायता देने का आश्वासन दिया।

४. युद्ध-काल में पेरिस नगर का व्यापार नष्ट हो गया था।। इससे लोगों की आर्थिक दशा खराब हो गई थी। कुछ मनुष्य बिल्कुल बेरोजगार हो गये थे। वे लोग मकानों का किराया, टैक्स तथा ऋण आदि अदा नहीं कर सकते थे। अत: उन्होंने यह मांग की कि हमारा धन युद्ध के संचालन में लगा हुआ है। अतः कुछ समय तक पुराने ऋणों, टैक्सों तथा किरायों आदि की वसूली न हो। सरकार ने उनकी इस मांग को स्वीकार कर लिया। परन्तु शान्ति स्थापित होने पर उन्हें आदेश दिया गया कि समस्त पुराने ऋण तथा टैक्स आदि ४८ घंटे के अन्दर अदा कर दिये जायें। आर्थिक अवस्था खराब होने के कारण इतने थोड़े से काल में डेढ़ लाख मनुष्य अपने ऋण तथा टैक्स आदि अदा न कर सके। अत: उनके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही की गई। फलतः बहुत अधिक असंतोष फैला।

५. पेरिस में असंतोष बहुत अधिक बढ़ रहा था तथा वहां सब विस्फोटक पदार्थ विद्यमान थे—जैसे अराजकतावादी, साम्यवादी, बेरोजगार, बेकार सैनिक तथा क्रान्तिकारी आदि। अब ऐसा दिखाई देने लगा कि पेरिस नगर कभी भी विद्रोह कर सकता है। अत: नेशनल असेम्बली ने पेरिस से तोपखाना हटाने की आज्ञा दी। परन्तु पेरिस-निवासियों ने इसका विरोध किया। यहीं से पेरिस कम्यून तथा सरकार में संघर्ष प्रारम्भ हो गया। पेरिस-निवासियों के नगर के प्रशासन के लिए एक क्रान्तिकारी नगरपालिका (Commune) की स्थापना की। उन्होंने समस्त देश में इसी

प्रकार की कम्यूनों के निर्माण की माँग की। वे समस्त देश के शासन का आधार नगरपालिकाओं को बनाना चाहते थे। उनका झण्डा लाल था। वे साम्यवादी सिद्धान्तों के आधार पर फ्रांस की कायापलट करना चाहते थे।

कम्यून ने नेशनल असेम्बली से युद्ध करने के लिये स्वयंसेवक भेजे; परन्तु नेशनल असेम्बली ने उनको पराजित कर दिया। थिए गृह-युद्ध नहीं करना चाहता था। अतः उसने यह घोषित किया कि हम स्थानीय शासन को अधिकाधिक अधिकार प्रदान कर रहे हैं। परन्तु कम्यून को इससे संतोष नहीं हुआ। अतः थिये ने अत्यधिक शक्ति का संचय कर पेरिस कम्यून पर आक्रमण कर दिया। सेनाओं ने चारों ओर से नगर को घेर लिया। यह पेरिस का दुर्भाग्य था कि उसको एक वर्ष में ही दो भयंकर घेरों का सामना करना पड़ा। ७ सप्ताह (२ अप्रैल से २१ मई) के घेरे के पश्चात् सेनाओं ने नगर के अन्दर प्रवेश किया। एक सप्ताह तक दोनों पक्षों में भयंकर युद्ध हुआ। सड़कें शवों से आच्छादित हो गयीं। इस संघर्ष में २० हजार पेरिस निवासी मारे गये। यह घटना इतिहास में खूनी सप्ताह (Bloody Week) के नाम से प्रख्यात है। लिप्सन महोदय के अनुसार उस शताब्दी में इससे भयंकर कोई और युद्ध नहीं हुआ। अन्त में गली-गली तथा घर-घर के युद्ध के पश्चात् सरकारी सेनाओं ने पेरिस पर अधिकार कर लिया। विजेताओं ने भीषण प्रतिशोध लिया। युद्ध-परिषद ने १३००० मनुष्यों को दण्डित किया। उनमें ७५०० मनुष्यों को देश से निर्वासित कर दिया। शेष में से कुछ व्यक्तियों को लम्बे समय के लिए जेलों में डाल दिया गया तथा कुछ को मृत्यु-दण्ड दे दिया गया। इस गृह-युद्ध से अपार जन-धन की हानि हुई। वर्षों बाद तक भी विद्रोहियों की गिरफ्तारियाँ होती रहीं। किसी विद्वान् ने ठीक कहा है— '१८७० के युद्ध से पेरिस को इतनी हानि नहीं हुई, जितनी कि इस गृह युद्ध से हुई।' पेरिस के इस भयंकर दमन के साथ-साथ साम्यवाद का दमन हो गया और वह १९वीं शताब्दी के अन्त तक सिर उठाने का साहस न कर सका।

कम्यून के कार्य की आलोचना—कम्यून का यह विद्रोह कहां तक देश के हित में था, यह बतलाना कठिन है। कुछ विद्वानों ने उसके इस कार्य की कटु आलोचना की है, क्योंकि उस समय देश में शत्रु घुसा हुआ था। अतः ऐसे समय विद्रोह नहीं करना चाहिए था। दूसरा पक्ष यह है कि फ्रांस ने युद्ध जनतन्त्र की रक्षा के लिए किया था; परन्तु वार्साय के अधिवेशन में राजतन्त्रवाद को बल मिल रहा था। जनतन्त्र से लिये यह भयंकर बात थी। पेरिस-निवासी वार्साय पर विश्वास नहीं करते थे, क्योंकि वह शताब्दियों से बूर्बो वंश के शासकों से सम्बन्धित रहा था। लिप्सन के शब्दों में संघर्ष का यही मूल कारण था। इस अवसर पर लोग पागल होकर विद्रोह के लिये कटिबद्ध हो गये। इस प्रकार यह आन्दोलन राजतन्त्रवाद के विरोध में था। मैरियट ने इसको नगरो के मध्यम वर्ग के लोगों के विशेषाधिकारों के विरोध में नगर के मजदूरों का विद्रोह कहा है। कैटलबी के अनुसार इस विद्रोह से राजसत्तावादियों को भारी आघात लगा तथा जनतन्त्रवादियों को भारी बल मिला।

राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण का कार्य—पेरिस की कम्यून के विद्रोह के दमन के पश्चात् थिए ने राष्ट्रीय पुनः निर्माण के कार्यों की ओर ध्यान दिया। इस सम्बन्ध में उसने निम्नलिखित महत्वपूर्ण कार्य किये :—

(१) **क्षति-पूर्ति अदा करना**—वह शीघ्रातिशीघ्र क्षति-पूर्ति अदा कर फ्रांसीसी भूमि से जर्मन सेनाओं को हटाना चाहता था। अतः उसने नागरिकों से यह अपील कि 'इस समय हमको अपने पारस्परिक मतभेदों को भूल जाना चाहिये, क्योंकि अभी तक देश में विदेशी सेनायें पड़ी हुई हैं। यह देश के गौरव के लिये एक अपमानजनक बात है। आर्थिक दृष्टि से भी यह देश के लिये विनाशकारी है, क्योंकि विदेशी सेनाओं का समस्त खर्चा राज्य को देना पड़ता है।' उसकी इस अपील का जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा तथा देश के पूंजीपतियों से उसे भारी मात्रा में ऋण मिल गया। अतः उसने दो वर्ष के अल्प काल में ही क्षति-पूर्ति की २० करोड़ पौण्ड की राशि अदा कर दी। ऐसा बतलाया जाता है कि उस समय तक किसी भी देश को क्षति-पूर्ति के रूप में इतनी धन-राशि नहीं देनी पड़ी थी। क्षति-पूर्ति की समस्त राशि का भुगतान होने पर जर्मन सेनाओं ने फ्रांस को खाली कर दिया। इस पर फ्रांसीसी जनता ने थिए को 'मुक्तिदाता' की उपाधि से सम्मानित किया।

(२) **सैन्य-संगठन**—उसने प्रशा के ढंग के आधार पर अपनी सेना का संगठन किया। १८७२ के एक कानून के द्वारा सबके लिये सैनिक सेवा अनिवार्य कर दी गई। अध्यापक, विधवाओं के इकलौते पुत्र तथा ऐसे मनुष्य जिनके ऊपर बड़ा परिवार निर्भर होता था अनिवार्य सैनिक सेवा से मुक्त कर दिये गये। जो मनुष्य उच्च शिक्षा-प्राप्त थे उनके लिये अनिवार्य सैनिक सेवा की अवधि दो वर्ष रक्खी गई; परन्तु उनको कर कुछ अधिक मात्रा में देना होता था।

(३) **निर्माण कार्य**—उसने अनेक सड़कों, रेलवे लाइनों तथा पुलों का निर्माण कराया। दुर्गों तथा सरकारी भवनों का जीर्णोद्धार किया गया। इन कार्यों में बहुत धन व्यय हुआ; परन्तु इस समय फ्रांस में उद्योग-धन्धों की बहुत प्रगति हो रही थी। अतः उनसे कर के रूप में पर्याप्त धन प्राप्त हो रहा था।

(४) **स्थानीय संस्थाओं का संगठन**—स्थानीय संस्थाओं के अध्यक्षों की नियुक्ति राज्य के द्वारा होती थी। अब यह व्यवस्था की गई कि छोटे-छोटे नगरों के स्थानीय संस्थाओं के अध्यक्षों का चुनाव हुआ करेगा।

(५) **गणतन्त्र की स्थापना**—नेशनल असेम्बली में राजसत्तावादियों का बहुमत था। वे पुनः देश में राजतन्त्र की स्थापना करना चाहते थे। थिए स्वयं भी राजतन्त्रवादी था तथा ऑर्लियाँ वंश का समर्थक था। परन्तु राजतन्त्रवादियों में परस्पर ही संघर्ष था। उनका कोई कार्य-क्रम न था। उनकी ओर से राजसत्ता प्राप्त करने के लिये तीन उम्मीदवार प्रयास कर रहे थे। नेशनल असेम्बली में न्यूनाधिक संख्या में तीनों के ही समर्थक विद्यमान थे तीनों उम्मीदवारों के नाम इस प्रकार हैं —

(१) बूर्बा वंश का उम्मीदवार चार्ल्स दशम का पौत्र काउण्ट ऑफ शेम्बा (Compte de Chambord)।

(२) ऑर्लियाँ वंश का उम्मीदवार लुई फिलिप का पौत्र काउण्ट ऑफ पेरिस (Compte de Paris)।

(३) नेपोलियन तृतीय का पुत्र प्रिंस इम्पीरियल (Prince Imperial)।

इस प्रकार थिए के शब्दों में सिंहासन एक था और उस पर बैठने के इच्छुक तीन थे। नेपोलियन का वंश बहुत बदनाम हो चुका था। उसके समर्थक असेम्बली में बहुत कम थे। सत्ता प्राप्त करने के लिये भारी संघर्ष बूर्बा वंश तथा ऑर्लियाँ वंश के प्रतिनिधियों में था; परन्तु दुर्भाग्यवश इन दोनों में कोई समझौता नहीं हो सका। अतः थिए परिस्थितिवश राजतन्त्रवादी से प्रजातन्त्रवादी हो गया। उसने प्रजातन्त्र की घोषणा कर दी और कहा कि यदि ऐसी शासन-पद्धति है जो कि हमारा सबसे कम विभाजन करती है। इस पर राजतन्त्रवादी उससे नाराज हो गये। उन्होंने १८७३ में उसके प्रति अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दिया। फलतः उसने त्याग-पत्र दे दिया। मैकमहोन (Mac Mahon) नया प्रेसीडेन्ट चुना गया। वह घोर राजतन्त्र-वादी था। अतः उसने राजतन्त्रवादियों में समझौता कराने का प्रयास किया तथा एक नया फार्मूला प्रस्तुत किया। यह प्रस्ताव रक्खा गया कि काउण्ट ऑफ शैम्बा हेनरी पंचम के नाम से राजा बनाया जाय। वह वृद्ध तथा निःसन्तान है। अतः उसकी मृत्यु के पश्चात् काउण्ट ऑफ पेरिस को राजा बनाया जाय। परन्तु यह फार्मूला भी समझौता कराने में सफल न हो सका, क्योंकि काउण्ट ऑफ शैम्बा ने तिरंगे झण्डे को अस्वीकार कर दिया। वह बूर्बा वंश के श्वेत ध्वज को फ्रांस का राष्ट्रीय झण्डा बनाना चाहता था। उसने घोषित किया कि 'हेनरी पंचम, कभी भी हेनरी चतुर्थ के श्वेत झण्डे का परित्याग नहीं कर सकता।' इस प्रकार काउन्ट ऑफ शेम्बा ने पुराने झण्डे का परित्याग करने की अपेक्षा सिंहासन का परित्याग करना अच्छा समझा, क्योंकि वह यह भली प्रकार समझता था कि प्राचीन झण्डे के परित्याग करने का अर्थ है राज्य के दैवी सिद्धान्त तथा अनियन्त्रित राज-सत्ता का परित्याग करना। परन्तु इस समय फ्रांस तिरंगे झण्डे का परित्याग करने को तैयार नहीं था। तिरंगा झण्डा फ्रांस की क्रान्ति का प्रतीक था। कट्टर राजतन्त्रवादी राष्ट्रपति मेकमहोन ने ठीक ही कहा था—'यदि श्वेत झण्डा पुनः स्वीकार कर लिया गया तो विद्रोह हो जायगा।' परन्तु फिर भी एकतन्त्र स्थापित करने के सम्बन्ध में राजतन्त्रवादियों ने हिम्मत नहीं हारी। उन्हें यह आशा थी कि सम्भवतः काउन्ट ऑफ शैम्बा के विचार बदल जायेंगे और यदि ऐसा नहीं हुआ तो वह अत्यधिक वृद्ध होने के कारण शीघ्र मर जायगा। तत्पश्चात् वे काउण्ट ऑफ पेरिस को राजा बना देंगे, क्योंकि उसे तिरंगा झण्डा स्वीकार था। फलतः वे समय व्यतीत करने का प्रयास करने लगे। अतः उन्होंने सात वर्ष के लिये राष्ट्रपति का चुनाव कर लिया। गणतन्त्रवादियों का दमन किया गया। वे सरकारी आज्ञा प्रदान किये बिना सभा नहीं कर सकते थे। इस प्रकार की आज्ञायें

बहुत कम मिलती थीं। किसी पत्र में रिपब्लिक (Republic) शब्द नहीं लिखा जा सकता था। उधर गैम्बेटा देहातों में घूम-घूम कर गणतन्त्र के सिद्धान्तों का प्रचार कर रहा था। उधर बोनापार्टिस्ट दल भी अपना प्रचार कर रहा था। उप-चुनावों में उस दल के कई सदस्य विजयी हुए। इन बातों से नेशनल असेम्बली के सदस्य भयभीत हो रहे थे। इससे बहुत से राजतन्त्रवादी एकतन्त्र की स्थापना को असम्भव समझ कर गणतन्त्रवादियों से मिल गये। अन्त में १८७५ में नेशनल असेम्बली ने जिसमें राजतन्त्रवादियों का बहुमत था, कट्टर राजतन्त्रवादी राष्ट्रपति के कार्य-काल में फ्रांस में एकमत के बहुमत से तृतीय गणतन्त्र की स्थापना की घोषणा कर दी।

नवीन संविधान—फ्रांस के १८७५ के संविधान की रूपरेखा इस प्रकार है :—

विधान सभा—नये निर्वाचकों के फलस्वरूप एक राष्ट्रीय सभा (National Assembly) की व्यवस्था की जायगी। उसमें निम्नांकित दो भवन होंगे—

सीनेट (Senate)—इसके सदस्यों की संख्या ३०० थी। इनमें से ७५ सदस्यों का निर्वाचन जीवन भर के लिये किया गया था तथा २२५ का चुनाव निर्वाचक-मण्डलों द्वारा ९ वर्ष के लिये होता था। इस प्रकार सीनेट के $\frac{1}{4}$ सदस्यों की कार्यावधि आजीवन थी तथा शेष $\frac{3}{4}$ सदस्यों की कार्यावधि ९ वर्ष थी। इसके $\frac{1}{3}$ सदस्य प्रति चौथे वर्ष अवकाश प्राप्त करते रहते थे। इससे सीनेट में नये सदस्यों का आगमन बराबर होता रहता था।

प्रतिनिधि सभा (Chamber of Deputies)—इसके सदस्यों की संख्या ६१० थी। इनकी कार्यावधि ४ वर्ष थी। इनका निर्बाचन पुरुष वयस्क मताधिकार के आधार पर होता था। देश के समस्त कार्य इस सभा के हाथ में होते थे। बहुमत दल का नेता प्रधान मन्त्री होता था तथा वही अपने मन्त्रि-मण्डल का निर्माण करता था। प्रधान मन्त्री प्रतिनिधि सभा के प्रति उत्तरदायी होता था।

राष्ट्रपति—राष्ट्रपति का निर्वाचन सीनेट तथा प्रतिनिधि सभा मिलकर करती थीं। उसकी कार्यावधि सात वर्ष होती थी। वह पुनः भी निर्वाचन में भाग ले सकता था। वह संसद में बिल भी प्रस्तुत कर सकता था। अपराधियों को क्षमा करने का उसको अधिकार था। सैनिक तथा असैनिक पदाधिकारियों की नियुक्ति करने का भी उसको अधिकार था। वह जल-सेना तथा स्थल-सेना को निर्देशन दे सकता था। सीनेट का अनुमोदन प्राप्त कर वह प्रतिनिधि सभा को भंग कर सकता था। देशद्रोह के अतिरिक्त अन्य किसी अपराध के लिये उस पर अभियोग नहीं चलाया जा सकता था। वास्तव में वह एक गैर-जिम्मेदार व्यक्ति था। उसके प्रत्येक आदेश पर किसी एक मन्त्री के हस्ताक्षर अवश्य होते थे और उसके लिए वह मन्त्री ही जिम्मेदार होता था। इस प्रकार वह नाममात्र का अध्यक्ष था। इस संविधान में उपराष्ट्रपति (Vice President) की व्यवस्था नहीं की गई थी।

मन्त्रि-मण्डल—बहुमत दल का नेता प्रधान मन्त्री बनाया जाता था। राष्ट्रपति

उसकी नियुक्ति करता था। अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति प्रधान मन्त्री द्वारा होती थी। मन्त्री सीनेट तथा प्रतिनिधि सभा दोनों में से चुने जाते थे। मन्त्री दोनों भवनों की बैठकों में भाग ले सकते थे; परन्तु उनको मत देने का अधिकार उसी सदन में था, जिसके कि वे सदस्य होते थे। मन्त्री-गण सामूहिक रूप से तथा व्यक्तिगत रूप से सरकार की नीति तथा अपने व्यक्तिगत कार्यों के लिये प्रतिनिधि सभा के प्रति उत्तरदायी होते थे।[1]

मन्त्रि-मण्डल के कार्य—राष्ट्रपति शासन का नाममात्र का अध्यक्ष होता था। शासन की सम्पूर्ण सत्ता मन्त्रि-मण्डल के हाथ में होती थी। सभी महत्वपूर्ण राजनीतिक समस्याओं पर वही विचार करता था। बिलों का प्रस्ताव भी वही रखता था। उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति भी उसी के द्वारा होती थी। राष्ट्रपति की प्रत्येक आज्ञा पर किसी न किसी मन्त्री के हस्ताक्षर अवश्य होते थे। फ्रांस में अनेक छोटे-छोटे दल थे। फलतः मन्त्रि-मण्डल अस्थायी होते थे।

नए संविधान का मूल्यांकन—फ्रांस का १८७५ का संविधान राजतन्त्रवादी तथा गणतन्त्रवादी नामक दो विचारधाराओं के मध्य एक समझौता था। इसमें फ्रांस के ऐतिहासिक विकास के विभिन्न स्वरूपों का ध्यान रक्खा गया था। इसी से यह स्थायी सिद्ध हुआ तथा ७० वर्ष तक चला। लिप्सन महोदय के शब्दों में इस समय फ्रांस में गणतन्त्र की जड़ें बहुत गहरी पहुंच गई थीं। हम देखते हैं कि फ्रांस में प्रत्येक बार क्रान्ति गणतन्त्रवादियों ने की थी। परन्तु उनका प्रभाव एकमात्र पेरिस तक ही सीमित रहा और कालान्तर में देश में पुनः राजतन्त्र स्थापित हो गया; परन्तु १८७० की क्रान्ति के पश्चात् ऐसा नहीं हुआ। जनतन्त्रवादियों के उद्देश्य की पूर्ति होने पर क्रान्ति का भय सदैव के लिये जाता रहा। इस संविधान के फलस्वरूप देश में सीमित गणतन्त्र की स्थापना हुई थी। परन्तु फिर भी यह एकतन्त्रवाद से कहीं अच्छा था। गणतन्त्र के लोकप्रिय होने के कारण इसमें अनेक संशोधन हो गये थे। इस संविधान के सम्बन्ध में हेजन महोदय ने कहा था—'१८७५ में फ्रांस का संविधान इंगलैंड तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की अपेक्षा कहीं अधिक जनतन्त्रात्मक था।[2]' राजतन्त्रवादी भी इस संविधान से प्रसन्न थे। उनका यह विचार था कि सीनेट में राजतन्त्रवादियों का बहुमत रहेगा। राष्ट्रपति तथा सीनेट दोनों मिलकर प्रतिनिधि सभा पर पूर्ण नियन्त्रण बनाये रहेंगे।

गणतन्त्र का अन्त करने का प्रयास—यह हम पीछे उल्लेख कर आये हैं कि १८७५ का संविधान जनतन्त्रवाद तथा निरंकुशवाद के मध्य एक समझौता था। उसमें पर्याप्त मात्रा में निरंकुश शासन के तत्व विद्यमान थे। कट्टर

1. 'The ministers are jointly and severally responsible to the chambers of the general policy for the Government and individually for their acts.'

2. 'In 1875 France had a constitution more democratic than that of England or the United States.........'. —Hazen.

राजतन्त्रवादी राष्ट्रपति मेकमहोन इसका लाभ उठाकर गणतन्त्र का अन्त करना चाहता था। १८७६ में नया निर्वाचन हुआ। उसके अनुसार सीनेट में राजतन्त्रवादियों तथा प्रतिनिधि सभा में गणतन्त्रवादियों का बहुमत हो गया। मैकमहोन को विवश होकर गणतन्त्रवादियों का मन्त्रि-मण्डल बनाना पड़ा। सिमां फ्रांस का प्रधान मन्त्री बना। परन्तु फिर भी मैकमहोन अपने समस्त वैधानिक अधिकारों का व्यापक रूप में उपयोग करना चाहता था। अतः उसने घोषित किया कि युद्ध, जल-सेना तथा विदेश नीति पर प्रतिनिधि सभा का अधिकार न होगा। निर्वाचन में पराजित राजतन्त्रवादियों तथा कैथोलिकों का भी समर्थन उसको प्राप्त हो गया। गैम्बेटा मैकमहोन का कट्टर विरोधी था। उसने देश में घूम-घूम कर गणतन्त्रवादियों तथा जनता के सम्मुख इस खतरे को रक्खा। अन्त में १६ मई १८७७ को मैकमहोन ने सिमां मन्त्रि-मण्डल को भंग कर दिया। एक राजतन्त्रवादी मन्त्रि-मण्डल का निर्माण किया गया तथा ड्यूक आफ ब्रोगली प्रधान मन्त्री बनाया गया। परन्तु जनता ने नये निर्वाचन की माँग की। अन्त में प्रतिनिधि सभा को भंग कर नया निर्वाचन कराया गया। निर्वाचन के समय मतदाताओं पर तरह-तरह के प्रभाव डाले गये। गणतन्त्रवादी प्रतिनिधियों को हटाकर उनके स्थान पर राजतन्त्रवादी प्रतिनिधियों की नियुक्ति की गई। गणतन्त्रवादियों की पत्रिकाओं पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिये गए। गणतन्त्रवादी नेता गैम्बेटा ने इन कार्यों का घोर विरोध किया। फलतः उसको एक भाषण के आधार पर दोषी ठहराकर २ वर्ष के लिये जेल में डाल दिया गया और उस पर दो हजार फ्रैंक का जुर्माना किया गया। कैथोलिकों तथा बोनापार्टिस्टों ने भी गणतन्त्र के विरोध में प्रचार किया। कैथोलिक ने यह धर्म-आज्ञा प्रसारित की कि जनता अपना मत राजतन्त्रवादियों को दे। इतने विरोधों के बावजूद भी गण-तन्त्रवादियों को बहुमत प्राप्त हुआ। अतः विवश होकर मैकमहोन को गणतन्त्रवादियों के मन्त्रि-मण्डल का निर्माण करना पड़ा। इस समय भी सीनेट में गणतन्त्रवादियों की प्रधानता थी। १८७८ में सीनेट के $\frac{1}{3}$ सदस्यों (१०० सदस्यों) का निर्वाचन हुआ। इस निर्वाचन में गणतन्त्रवादियों को भारी सफलता मिली। इस प्रकार दोनों सदनों में उनका बहुमत हो गया। अब एकमात्र राष्ट्रपति मैकमहोन ही कट्टर राजतन्त्रवादी रह गया था। फलतः उसकी स्थिति निर्बल हो गई तथा उसका विरोध बहुत अधिक बढ़ गया। गणतन्त्रवादियों ने यह माँग की कि सेना में कुछ ऐसे पदाधिकारी हैं जो गणतन्त्र के घोर विरोधी हैं। उन्हें अवकाश प्रदान कर देना चाहिये। मैकमहोन उनकी इस मांग की पूर्ति करने को तैयार न था। अतः उसने कहा कि सेना मन्त्रि-मण्डल के क्षेत्र से बाहर है। उसको इसमें हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। यदि ऐसा किया गया तो सेना का विघटन हो जायगा। अतः उक्त गणतन्त्र-विरोधी सैनिक पदाधिकारियों को अवकाश प्रदान नहीं किया गया। परन्तु इस समय मैकमहोन की स्थिति बहुत जटिल हो गई थी। अतः ३० जनवरी १८७९ को उसने नेशनल असेम्बली के सम्मुख अपने पद का परित्याग कर दिया। इस प्रकार राजतन्त्रवादी

तथा पादरी पराजित हो गए और उनका गणतन्त्र के अन्त करने का प्रयास सफल न हो सका। अन्त में विधान सभा के दोनों भवनों ने मिलकर गैम्बेटा के कट्टर अनुयायी, मित्र तथा उम्मीदवार जूलिस ग्रेवी (Jules Grevy) को अपना राष्ट्रपति चुना। ग्रेवी गत ३० वर्षों से जनतन्त्र के प्रचार के लिए कार्य कर रहा था। इस प्रकार राष्ट्रपति, प्रतिनिधि सभा तथा सीनेट तीनों गणतन्त्रवादियों के हाथ में आ गयीं। यह गणतन्त्रवादियों की भारी सफलता थी।

गणतन्त्र को सुदृढ़ करने का प्रयास—राजतन्त्रवादियों तथा कैथोलिकों को पराजित करने के पश्चात् गैम्बेटा तथा फेरी ने गणतन्त्र को सुदृढ़ करने के लिए निम्नलिखित कार्य किये :—

(१) १८८० में वर्साय के स्थान पर पेरिस को राजधानी घोषित किया गया।

(२) इसी वर्ष १४ जुलाई को राष्ट्रीय पर्व (National Holiday) घोषित किया गया।

(३) १८८१ में नागरिकों को सभा करने तथा पत्र प्रकाशित करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान कर दी।

(४) १८८३ के एक कानून के द्वारा यह घोषित किया गया कि जो व्यक्ति भूतकाल में फ्रांस में शासन कर चुके हैं, उनके परिवार से सम्बन्धित कोई भी व्यक्ति फ्रांस का राष्ट्रपति नहीं हो सकेगा। फ्रांस के गणतन्त्रात्मक स्वरूप में कभी परिवर्तन नहीं किया जायगा।

(५) स्थानीय संस्थाओं को मेयर का चुनाव करने का अधिकार दे दिया गया।

(६) मजदूरों को १८८४ में ट्रेड यूनियनों के निर्माण करने का अधिकार दे दिया गया।

(७) नेपोलियन कोड के अनुसार फ्रांस में तलाक प्रथा प्रचलित हो गई थी; परन्तु नेपोलियन के पतन के पश्चात् इस प्रथा का अन्त हो गया। अब इस प्रथा को पुनः मान्यता प्रदान कर दी गई।

(८) फ्रांस में अशिक्षा बहुत अधिक थी। गणतन्त्र की सफलता के लिये जनता का शिक्षित होना आवश्यक था। अतः १८८१ के एक कानून के द्वारा प्राइमरी शिक्षा निःशुल्क कर दी गई। अगले वर्ष ६ से १३ वर्ष की आयु के बच्चों के लिये प्राइमरी शिक्षा अनिवार्य कर दी गई। धार्मिक शिक्षा बन्द कर दी गई। अध्यापकों की नियुक्ति सरकार द्वारा होगी तथा चर्च से सम्बन्धित व्यक्ति अध्यापक नहीं हो सकते थे। इस प्रकार धर्म का शिक्षा से सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया गया।

(९) चर्च का दमन किया गया तथा जेस्विट्स को देश से बाहर निकाल दिया गया।

(१०) संविधान में यह व्यवस्था की गई थी कि सीनेट के $\frac{1}{3}$ सदस्य जीवन भर के लिये निर्वाचित किये जायेंगे। परन्तु अब संविधान की इस धारा में संशोधन कर

दिया गया। इसके अनुसार उक्त सदस्यों की कार्यावधि आजीवन के स्थान पर ९ वर्ष कर दी गई।

(११) देश की औद्योगिक उन्नति के लिये भी प्रयास किया गया। नई सड़कों, रेलों तथा बन्दरगाहों का निर्माण किया गया। अंगूर की खेती कर शराब के व्यापार को प्रोत्साहन दिया गया।

(१२) उपनिवेश-स्थापना की ओर भी ध्यान दिया गया। इस सम्बन्ध में जूलिस फेरी ने बहुत अधिक प्रयास किया। बिस्मार्क के प्रोत्साहन पर १८८७ में फ्रांस ने ट्यूनिस पर अधिकार कर लिया। अगले वर्ष अनाम पर अधिकार कर लिया गया। १८८७ में सेगौन, कोचीन तथा कम्बोडिया पर भी फ्रांस ने अधिकार कर लिया। इस प्रकार फेरी के नेतृत्व में फ्रांस के उपनिवेशों का बहुत अधिक विस्तार हो गया। परन्तु इस कार्य में बहुत अधिक धन व्यय हुआ। उसकी पूर्ति के लिए अतिरिक्त कर लगाने पड़े तथा राष्ट्रीय ऋण बहुत अधिक बढ़ गया। इस पर फेरी का बहुत अधिक विरोध हुआ। इस सम्बन्ध में उसका सबसे अधिक विरोध करने वाला रेडिकल नेता क्लीमेन्शू था। वह कट्टर गणतन्त्रवादी तथा देशभक्त होते हुये भी उग्रवादी था। वह पर्याप्त समय तक विरोधी दल का नेता रहा। उपनिवेश-स्थापना के विरोध में उसके विचार इस प्रकार थे—'उपनिवेशवाद गणतन्त्र के विरोध में है। अपने देश की स्वतन्त्रता के साथ-साथ दूसरे देश की स्वतन्त्रता का भी सम्मान करना चाहिये। उपनिवेश-स्थापना के कारण फ्रांस अल्सेस-लोरेन को भूल जायगा।'

गणतन्त्र संकट में—क्लीमेन्शू उपनिवेश-स्थापना के सम्बन्ध में फेरी का घोर विरोध कर ही रहा था। इसके साथ-साथ उसने यह भी प्रचार करना प्रारम्भ किया कि अपर हाउस ठीक प्रकार से कार्य नहीं कर रहा है। धनिकों पर कर अधिक होना चाहिये। इस प्रकार एक भारी आन्दोलन का संगठन हो गया। फलत: १८८५ में फेरी के मन्त्रि-मण्डल का पतन हो गया। फेरी बहुत योग्य तथा शक्तिशाली व्यक्ति था। वह पर्याप्त समय तक कटु आलोचना के बावजूद भी शासन का संचालन करता रहा था। सुयोग्य गणतन्त्रवादी नेता गैम्बेटा की मृत्यु १८८२ में हो गई थी। अतः अब देश में कोई सुयोग्य नेता नहीं रह गया था। शासन-सूत्र स्वार्थी व्यक्तियों के हाथ में आ गया था। गणतन्त्रवादियों में भी फूट पड़ गई। इससे मन्त्रि-मण्डलों का जल्दी-जल्दी पतन होने लगा। इस परिस्थिति से विरोधियों ने लाभ उठाना चाहा। राष्ट्रपति ग्रेवी अपने व्यक्तिगत जीवन में बहुत पवित्र था; परन्तु उसके दामाद विल्सन पर राजकीय सम्मान (Legion of honour) बेचने का अभियोग चलाया गया। ग्रेवी का उसमें कोई हाथ न था। परन्तु उसने अपने दामाद का पक्ष लिया। इससे ग्रेवी बहुत बदनाम हो गया और लोकमत के विरोध पर उसको १८८७ में पद-त्याग करना पड़ा। तत्पश्चात् कार्नो फ्रांस का नया राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ। शिक्षा, उपनिवेश तथा चर्च सम्बन्धी नीति के कारण भी गणतन्त्र का बहुत विरोध हो रहा था। इससे देश में बहुत अशान्ति फैल गई तथा गणतन्त्र भारी संकट में दिखाई देने लगा। अशिक्षित जनता ने इस अशान्ति में और अधिक योग दिया।

गैम्बेटा का मूल्यांकन—गैम्बेटा की गणना फ्रांस के महान् नेताओं में होती है। वह कट्टर गणतन्त्रवादी था। वह नेपोलियन तृतीय का बराबर विरोध करता रहा। १८७० में नेपोलियन के पतन के पश्चात् उसी ने फ्रांस में तृतीय गणतन्त्र की घोषणा की। अस्थायी सरकार में वह युद्ध-मन्त्री बना था। उसने शत्रु का अदम्य वीरता के साथ सामना किया था। सन्धि हो जाने पर उसने जनता में घूम-घूम कर जनतन्त्र के सिद्धान्तों का प्रचार किया था। उसको इस कार्य में सफलता मिली और फ्रांस में गणतन्त्र की स्थापना हो गई। उसने कट्टर राजतन्त्रवादी राष्ट्रपति मेकमहोन का घोर विरोध किया। फलतः उसको कारावास का दण्ड मिला। राजतन्त्र के विरोध के साथ-साथ उसने कैथोलिकों का भी विरोध किया। उसने एक बार पुनः देहातों में घूम-घूम कर जनतन्त्र के सिद्धान्तों का प्रचार किया। उसको इस कार्य में भी सफलता मिली। १८७७ के निर्वाचन में गणतन्त्रवादियों को भारी बहुमत प्राप्त हुआ और राष्ट्रपति मेकमहोन का गणतन्त्र को एकतन्त्र में बदलने का प्रयास सफल न हो सका। वह सच्चा निःस्वार्थी था। उसको कोई पद प्राप्त करने की लालसा नहीं थी। राष्ट्रपति का पद स्वीकार करने से उसने इंकार कर दिया था। वह १८८१ में केवल तीन महीने के लिए प्रधान मन्त्री बना था। निःस्वार्थी होने पर भी उसने देश की महान् सेवायें कीं। वास्तव में वह फ्रांस में तृतीय गणतन्त्र का सच्चे अर्थों में निर्माता था।

तृतीय गणतन्त्र के सम्मुख कठिनाइयां—फ्राँस में तृतीय गणतन्त्र की स्थापना तो हो चुकी थी, परन्तु अभी उसके विरोधियों की कमी नहीं थी। राजतन्त्रवादी तथा कैथोलिक गणतन्त्र के कट्टर शत्रु थे ही, इनके अतिरिक्त कुछ किसान तथा दूकानदार आदि भी गणतन्त्र का विरोध कर रहे थे। उग्र राष्ट्रवादी भी गणतन्त्र के विरोधी थे। उनका कहना था कि गणतन्त्रवादी फ्रांस कभी भी एकतन्त्रवादी जर्मनी का मुकाबला नहीं कर सकता। गणतन्त्र-विरोधियों का यह विश्वास था कि तृतीय गण-तन्त्र का भी उसी प्रकार अन्त होगा, जिस प्रकार कि पहले दो गणतन्त्रों का अन्त हो चुका है। अतः उन्होंने तृतीय गणतन्त्र के मार्ग में अनेक बाधायें उत्पन्न कीं —

जनरल बूलांजे (General Boulanger) **का उदय**—गणतन्त्र के असन्तुष्ट व्यक्तियों ने जनरल बूलांजे को अपना नेता बना लिया। जनरल बूलांजे एक योग्य सैनिक अफसर था। वह अल्जीरिया, इटली, कोचीन तथा १८७० के युद्धों में भाग ले चुका था। १८८२ में वह युद्ध-विभाग में पैदल सेना का अध्यक्ष बनाया गया था। १८८४ में उसको ट्यूनिस की सेना का अध्यक्ष बनाया गया। एक वर्ष पश्चात् वह वहाँ से पेरिस लौट आया। १८८६ में उसने युद्ध-मन्त्री का पद प्राप्त कर लिया। उसने सेना में अनेक महत्वपूर्ण सुधार किये—

(१) सैनिकों का वेतन बढ़ा दिया गया।
(२) सैनिकों की रहन-सहन व्यवस्था में सुधार किया गया।
(३) सैनिकों के लिये अधिक छुट्टियों की व्यवस्था की गई।
(४) सैनिक सेवा कम कर दी गई।

उपर्युक्त सुधारों की मांग पर्याप्त समय से हो रही थी। अतः इनके पूर्ण होने पर सैनिक तथा अफसर दोनों ही अत्यधिक प्रसन्न हुये और वे बूलाँजे के पक्षपाती बन गये। बूलाँजे का व्यक्तित्व बहुत आकर्षक तथा प्रभावशाली था। अतः अब वह जनता को भी अपने पक्ष में करने का प्रयास करने लगे। उसने अपना उद्देश्य जर्मनी से प्रतिशोध का युद्ध कर फ्रांस के पुराने अपमान का प्रक्षालन करना बताया। उसके अनुसार यह कार्य उस समय तक सम्भव नहीं था जब तक कि पार्लियामेन्ट की शक्ति कम कर उसके अधिकार राष्ट्रपति को न दिये जायें। राष्ट्रपति का चुनाव अप्रत्यक्ष न होकर जनता द्वारा प्रत्यक्ष हो। बूलाँजे का अनेक समाचार-पत्रों पर अधिकार था। अतः उसने उनके द्वारा अपने विचारों का प्रचार कराना आरम्भ कर दिया। शीघ्र ही गणतन्त्रवादी, कैथोलिक, बोनापार्टिस्ट, समाजवादी तथा उग्र गणतन्त्रवादी उसके समर्थक हो गये। उसने काउन्ट ऑफ पेरिस तथा क्लीमेन्शू की भी सहानुभूति प्राप्त कर ली। उन्होंने मिल कर एक राष्ट्रीय दल का निर्माण किया तथा शासन का स्वरूप निर्धारित करने के लिये जनमत-संग्रह की माँग की। उनका उद्देश्य बूलाँजे की तानाशाही (Boulangist Dictatorship) स्थापित करने का था।

बूलाँजे युद्ध-मन्त्री के पद पर नियुक्त होने के समय से ही जर्मनों द्वारा संदेह की दृष्टि से देखा जा रहा था। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य व्यक्ति भी उससे सशंकित थे। २ जुलाई १८८६ को लार्ड लॉयस ने कहा था—'आजकल बूलाँजे वार्तालाप का मुख्य केन्द्र बना हुआ है। उसने उच्च सैनिक पदों पर अपने समर्थकों को नियुक्त कर दिया है। ऐसा बताया जाता है कि मन्त्रि-परिषद में वह विचित्र भाषा में बातचीत करता है। लोग उसके विषय में जो कहते हैं, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि वह या तो क्रॉमवेल बनना चाहता है अथवा एक पादरी।' लार्ड ल्यूटन ने उसको सरकस के काले घोड़े का घुड़सवार बताया है, जिसकी उछल-कूद से जनता में जोश आता है तथा ग्रेवी और शान्तिवादी मन्त्री उससे भयभीत होते हैं। इस प्रकार बूलाँजे एक खतरनाक व्यक्ति ख्याल किया जाता था। राजनीतिज्ञों का यह ख्याल था कि यदि वह अपने पद पर रहा तो १८८८ में अवश्य ही युद्ध प्रारम्भ हो जायगा।

१८८८ में उसको पेरिस के बाहर भेज दिया गया; परन्तु बिना छुट्टी लिये ही वह शीघ्र पेरिस लौट आया। अतः उसको बर्खास्त कर दिया गया। इसके पश्चात् वह प्रतिनिधि सभा के निर्वाचनों में भाग लेने लगा। ५ महीने के अल्पकाल में ही वह छः स्थानों से निर्वाचित हुआ। ७वीं बार जनवरी १८८९ में वह पेरिस से निर्वाचन के लिये खड़ा हुआ। पेरिस गणतन्त्रवादियों का अड्डा था; परन्तु वहाँ पर भी वह भारी बहुमत से चुना गया। गणतन्त्र के लिये भारी खतरा था। यदि वह इस समय गणतन्त्र पर आक्रमण कर देता तो सत्ता प्राप्त कर सकता था; परन्तु उसमें इतना साहस नहीं था। वह एक घमण्डी तथा बकवासी व्यक्ति था। इसी से वह ठीक समय पर कार्य कर सफलता प्राप्त न कर सका। इस संकट के समय गणतन्त्रवादी अपने पारस्परिक मतभेदों को भूल कर एक हो गये। उन्होंने तुरन्त संसद का एक

अधिवेशन किया। संसद ने उस पर देश की सुरक्षा खतरे में डालने का आरोप लगाया तथा उसको यह आदेश दिया कि वह अपने को संसद के सम्मुख प्रस्तुत करे। इस पर वह देश छोड़ कर बेल्जियम भाग गया। उसकी अनुपस्थिति में ही उस पर अभियोग चलाया गया तथा उसको आजन्म कारावास का दण्ड दिया गया। उसके भागने पर उसकी पार्टी नष्ट हो गई थी। अत: १८९१ में उसने बेल्जियम में ही आत्म-हत्या कर ली। इस प्रकार बड़ी आसानी से यह सारा संकट दूर हो गया। गणतन्त्र के विरोधी बुरी तरह पराजित हो गये। इससे गणतन्त्र नष्ट होने के स्थान पर और अधिक सुदृढ़ हो गया।

परिणाम—बूलाँजे द्वारा उत्पन्न संकट के निम्नलिखित महत्वपूर्ण परिणाम हुए —

(१) संविधान में सुधार के लिये जो माँग चली आ रही थी उसका अन्त हो गया।

(२) सेना से राजतन्त्रवादी पदाधिकारियों को पदच्युत कर दिया गया।

(३) सैनिक सेवा की अवधि ५ वर्ष से घटा कर तीन वर्ष कर दी गई।

(४) इस घटना से पोप लियो तेरहवें (Leo XIII) ने यह भली प्रकार समझ लिया कि अब गणतन्त्रात्मक शासन का अन्त नहीं होगा। अत: १८९२ में उसने घोषित किया कि अब हम तृतीय गणतन्त्र के साथ सहयोग करेंगे तथा उसका विरोध नहीं करेंगे। कट्टर कैथोलिकों ने इस घोषणा को स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार गणतन्त्र के विरोधी कैथोलिकों में परस्पर ही फूट पड़ गई। गणतन्त्रवादियों को इससे लाभ ही रहा

(५) देश की आर्थिक दशा में सुधार करने के लिए १८९२ में संरक्षण के सिद्धान्त को अपनाया गया। १८९३ तक फ्रांस ने अपने एकाकीपन का अन्त कर दिया तथा रूस के साथ मैत्री-सम्बन्ध स्थापित कर लिये।

(६) इस घटना से तृतीय गणतन्त्र की शक्ति में बहुत वृद्धि हो गई तथा अब पुन: एकतन्त्र की स्थापना की आशा समाप्त हो गई।

पनामा कम्पनी का दिवाला—पनामा नहर खोदने के लिये पनामा कम्पनी का निर्माण हुआ था। उसमें करोड़ों रुपये के शेयर लगे हुये थे। १८८८ में उस कम्पनी का दिवाला निकल गया। जाँच करने पर विदित हुआ कि ६ करोड़ पौण्ड की धन-राशि का कोई हिसाब ही नहीं है। इस गबन में कई मन्त्रियों तथा संसद के सदस्यों का भी हाथ पाया गया। इस पर राजतन्त्रवादियों ने गणतन्त्रवादियों को बदनाम करने के लिये भारी प्रचार करना आरम्भ कर दिया। परन्तु गणतन्त्रवादी सरकार ने इस संकट का भी सफलतापूर्वक सामना किया। वास्तव में इस समय सरकार की स्थिति काफी दृढ़ हो गई थी। उसके प्रयास से शिक्षा, उद्योग-धन्धों तथा उपनिवेश-स्थापना में बहुत उन्नति हुई थी। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में फ्रांस ने अपने पूर्व गौरव को पुन: प्राप्त कर लिया था। इस प्रकार अब फ्रांस का तृतीय गणतन्त्र काफी शक्तिशाली हो गया था।

ड्रेफस अभियोग (DrefusC ase)—तृतीय गणतन्त्र का यह दुर्भाग्य था कि उसको एक के बाद एक संकटों का सामना करना पड़ा। १८९४ में उसको ड्रेफस-अभियोग के रूप में एक भयंकर आपत्ति का सामना करना पड़ा। ड्रेफस एक यहूदी था। वह फ्रांसीसी सेना में कैप्टन था। अक्तूबर १८९४ में उसको गिरफ्तार कर लिया गया। उस पर यह आरोप लगाया गया कि उसने किसी शत्रु देश (सम्भवत: जर्मनी) को सेना के गुप्त कागज भेजे थे। प्रमाण के रूप में कुछ डाकूमेन्ट्स की एक लिस्ट प्रस्तुत की गई। उस पर किसी के हस्ताक्षर नहीं थे। उनको ड्रेफस द्वारा लिखे जाने का संदेह किया गया। ये डाकूमेन्ट इतिहास में बोर्डरू (Bordereau) के नाम से प्रख्यात हैं। उसका कोर्ट-मार्शल किया गया। मुकदमे में समस्त कार्यवाही गुप्त रूप से हुई। अन्त में उसको दोषी ठहराया गया। उसको सेना से हटा दिया गया तथा आजीवन कारावास का दण्ड दिया गया। उसको दक्षिणी अमेरिका के उत्तरी तट पर स्थित एक अत्यधिक अस्वास्थ्य का फ्रांसीसी टापू 'शैतान का द्वीप' (Devil's Island) में भेज दिया गया।

ड्रेफस बराबर यही कहता रहा कि उक्त डाकूमेन्ट उसका लिखा हुआ नहीं है और उसके साथ अन्याय हुआ है। अत: समस्त मामले की किसी दूसरी अदालत द्वारा जाँच होनी चाहिए। मुकदमें के दौरान में किसी को भी ड्रेफस से सहानुभूति नहीं थी; परन्तु इस समय उसके कुछ मित्र भी उसके पक्षपाती हो गये थे। १८९६ में कर्नल पिक्वार्ट (Colonel Picquart) सेना में गुप्तचर विभाग का अध्यक्ष बनाया गया। उसने यह घोषित कि जिन डाकूमेन्ट्स के आधार पर ड्रेफस को दण्डित किया गया है, वे उसके द्वारा नहीं लिखे गये हैं। उनको एक कुविख्यात पदाधिकारी मेजर ऐस्टरहेज़ी (Major Esterhazy) ने लिखा है। सरकार ने सैनिक न्यायालय तथा सेना की प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिये इस बात को दबाना चाहा। अत: कर्नल पिक्वार्ट को पदच्युत कर ट्यूनिस भेज दिया तथा उसके स्थान पर कर्नल हेनरी को नियुक्त किया। परन्तु अब जनता इस मामले में दिलचस्पी लेने लगी थी वह और इस सम्बन्ध में न्याय चाहती थी। सेना, चर्च तथा राजतन्त्रवादी ड्रेफस की सजा को ठीक समझते थे और वे उसके परिवर्तन के विरोधी थे। वे ड्रेफस के पक्षपातियों को गद्दार कहते थे। इस प्रकार इस मामले के सम्बन्ध में एक भारी आन्दोलन खड़ा हो गया था और समस्त देश दो गुटों में विभाजित हो गया था। फलत: मेजर एस्टरहेज़ी पर सैनिक न्यायालय में दिखावे के लिये मुकदमा चलाया गया। अन्त में उसको निर्दोष घोषित किया गया। इस प्रकार की गलतफहमी उत्पन्न करने के आरोप में पिक्वार्ट को बन्दी बना लिया गया। जनता इस मामले में अब और भी अधिक दिलचस्पी लेने लगी थी। इस समय ड्रेफस को सुप्रसिद्ध उपन्यासकार एमिली जोला, अनातोले फ्राँस तथा क्लीमेन्शू जैसे महानुभावों की सहानुभूति प्राप्त हो गई थी। साम्यवादियों, प्रोटेस्टेन्ट, मजदूर तथा गणतन्त्रवादियों ने भी उसका समर्थन किया। उपन्यासकार एमिलीजोला ने इस सम्बन्ध में एक लेख लिख कर ड्रेफस को निर्दोष बतलाया। सरकार इससे बहुत नाराज हुई। उसको सरकार को बदनाम करने के लिए दोषी ठहराया गया। दण्ड से बचने के लिये वह लन्दन भाग गया।

इसके पश्चात् भी ड्रेफस का मामला जनता में लोकप्रिय बना रहा। इसी समय ब्रीआँ का नया मन्त्रि मण्डल बना। इसमें कैविग्नैग युद्ध-मन्त्री बना। उसने ड्रेफस द्वारा लिखे हुए तीन डाकूमेन्ट प्रतिनिधि सभा में प्रस्तुत किये। पिक्वार्ट ने बतलाया कि उक्त तीन डाकूमेन्ट्स में से दो एकदम अप्रासंगिक हैं तथा तीसरा जाली है। इस पर मामला गम्भीर हो गया। इसी समय (१८६६) कर्नल हेनरी ने यह घोषित किया कि तीसरा डाकूमेन्ट वास्तव में जाली है और उसको उसने ही तैयार किया था। इसके पश्चात् कर्नल हेनरी ने आत्म-हत्या कर ली। इस पर कैविग्नैक को पद-त्याग करना पड़ा। १८६६ में प्रेसीडेन्ट फेवर की मृत्यु हो गई और लूबे (Loubet) फ्रांस का प्रेसीडेन्ट बना। वह ड्रेफस का पक्षपाती था। इससे परिस्थिति बदलने लगी। एस्टरहेजी फ्रांस छोड़कर लन्दन भाग गया और वहाँ जाकर उसने अपराध स्वीकार कर लिया। अतः १८६६ में यह मामला पुनः न्यायालय के सम्मुख न्याय के लिये प्रस्तुत किया गया। न्यायालय ने इस बार भी निःपक्षता से कार्य नहीं किया। उसकी आजन्म कारावास की सजा १० वर्ष की सजा में परिवर्तित कर दी गई। ५ वर्ष की सजा वह काट चुका था। अतः अब उसकी केवल ५ वर्ष की ही सजा रक्खी गई। इस समय तक यह स्पष्ट हो गया था कि ड्रेफस निर्दोष था और उसको धाँधलेबाजी से सजा दी जा रही थी। इस विषय में लन्दन टाइम्स ने लिखा था—'कैप्टेन ड्रेफस के विरोध में फ्रेंच सेना के अध्यक्ष ने जो मामला दर्ज किया है, वह एकदम जाली है। उसमें जो कुछ भी कहा गया है, वह तनिक भी सत्य नहीं है।' फिर भी फ्रेंच सेना के सम्मान की रक्षा के लिये न्यायालय ने स्पष्ट न्याय नहीं किया। जनता के दबाव में आकर राष्ट्रपति लूबे ने अपने विशेषाधिकारों के बल पर उसको क्षमा कर दिया। परन्तु इससे भी जनता सन्तुष्ट नहीं हुई। वह उसको निर्दोष घोषित कराना चाहती थी। अतः यह आन्दोलन बराबर जारी रहा। १६०० में यह कानून बनाया गया कि ड्रेफस-अभियोग में जितने भी व्यक्ति सम्बन्धित हैं, उनके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही नहीं की जायगी। यह कानून पदाधिकारियों की रक्षा के लिये बनाया गया था। ड्रेफस के समर्थकों ने अपना प्रचार बराबर जारी रक्खा। अन्त में १६०६ में उसका मामला फ्रांस के सर्वोच्च न्यायालय में प्रस्तुत किया गया। इस न्यायालय ने सैनिक न्यायालय के निर्णय को गलत बतलाकर उसको सर्वथा निर्दोष घोषित कर दिया। एस्टरहेजी ने इस समय लिखा था—'अब यह मामला हमेशा के लिये समाप्त हो गया है।' सरकार ने ड्रेफस को पुनः सेना में नियुक्त कर लिया। इस झगड़े का समय भी उसकी सर्विस में जोड़ दिया गया। उसको पदोन्नति देकर कैप्टेन से मेजर बना दिया गया। जिस स्थान पर उसको गिरफ्तार किया गया था, उसी स्थान पर उसको राजकीय सम्मान (Legion of Honour) प्रदान किया गया। कर्नल पिक्वार्ट ने ड्रेफस के मामले को आगे बढ़ाया था। अतः उसको पदोन्नति देकर ब्रिगेडियर जनरल बना दिया गया। कालान्तर में उसको फ्रांस का युद्ध-मन्त्री बनाया गया। एमलजोला का १६०३ में देहान्त हो गया था। अतः उसको सम्मान

प्रदान करने के लिये उसके शव को खोदकर पैन्थिअन लाया गया और उसको उस स्थान पर दफनाया गया जहाँ कि बड़े आदमियों के शव दफनाये जाते थे।

ड्रेफस अभियोग का महत्व—यह एक साधारण सा मामला था; परन्तु कालान्तर में इसका महत्व बहुत अधिक हो गया। तृतीय गणतन्त्र के लिये यह एक भारी संकट बन गया। इसके आधार पर प्रतिक्रियावादी गणतन्त्र के विरोध में प्रचार करने लगे। उन्होंने गणतन्त्र को बदनाम करने के लिये पूरा प्रयास किया। ड्रेफस के पक्षपाती यहूदी, समाजवादी, उग्रवादी तथा प्रोटेस्टेन्ट थे तथा उसके विरोधी सैनिक तथा पादरी थे। दूसरे शब्दों में उसके पक्षपाती गणतन्त्र के पक्षपाती थे तथा उसके विरोधी गणतन्त्र के विरोधी थे। इस प्रकार ड्रेफस की विजय का अर्थ–गणतन्त्र विरोधियों की पराजय थी। इस प्रकार इस मामले से गणतन्त्र की स्थिति दृढ़ हो गई। सेना तथा पादरियों का प्रभाव कम हो गया।

चर्च से सम्बन्ध-विच्छेद–बिस्मार्क की भांति फ्राँस के तृतीय गणतन्त्र को भी चर्च के विरुद्ध भारी संघर्ष करना पड़ा था। बिस्मार्क उस संघर्ष में असफल रहा था; परन्तु तृतीय गणतन्त्र ने उसमें सफलता प्राप्त की। फ्राँस के सुप्रसिद्ध गणतन्त्र-वादी नेता गैम्बेटा ने १८७८ में यह घोषित किया था कि पादरीवाद (Clericalism) गणतन्त्र का शत्रु है। आगे चलकर बूलाँजे तथ ड्रेफस संकट के समय उक्त कथन का सत्य स्पष्ट हो गया। उन अवसरों पर चर्च ने तृतीय गणतन्त्र को पूरी तरह बदनाम करने का प्रयास किया था। इस प्रकार चर्च से राज्य को बहुत अधिक खतरा था। वह राज्य के विरोध में प्रबल विरोधी शक्ति थी। चर्च धर्म के क्षेत्र के अतिरिक्त आर्थिक तथा राजनीतिक मामलों में भी राज्य का विरोधी था। अतः राज्य तथा चर्च का संघर्ष होना स्वाभाविक था।

फ्रांस में चर्च के अनेक मठ थे। वहाँ पादरियों की संख्या १ लाख ९० हजार थी। १८७० में फ्रांस में भिक्षुणियों की संख्या १४ हजार थी; परन्तु १८९० में यह संख्या बढ़कर २७ हजार हो गई। चर्च के पास अपार सम्पत्ति थी। १८८० में चर्च की सम्पत्ति ७० करोड़ फ्रांक थी; परन्तु १९०० में वह बढ़कर एक अरब फ्राँक हो गई। यह सम्पत्ति सरकार के किसी काम नहीं आती थी।उसका देश मे प्रसार (Circulation) नहीं हो रहा था। अतः यह बात देश के आर्थिक विकास के लिये हानिकारक थी। इसके अतिरिक्त शिक्षा पर भी चर्च ने अधिकार कर रक्खा था। चर्च की पाठशालाओं में प्रतिक्रियावादी शिक्षा दी जाती थी। वहाँ बच्चों को जनतन्त्र से घृणा करने का पाठ सिखाया जाता था। फलतः नई पीढ़ी के नवयुवक चर्च के प्रभाव में आकर राजतन्त्रवादी होते जा रहे थे। चर्च का यह कार्य तृतीय गणतन्त्र के लिए असह्य था। अतः सरकार के लिये चर्च का दमन कर गणतन्त्र की रक्षा करना आवश्यक था।

अतः १९०१ में प्रधान मन्त्री वाल्डेक रूसो (Waldeck Rousseau) ने गणतन्त्र की रक्षा के लिये पहला कानून (Law of Associations) पास किया। इसके

अनुसार प्रत्येक धार्मिक संस्था को राज्य से स्वीकृति लेना आवश्यक हो गई। जो संस्था सरकारी आज्ञा प्राप्त नहीं करेगी उसको शिक्षा देने का अधिकार नहीं होगा। बहुत सी संस्थाओं ने धार्मिक स्वीकृति लेने से इंकार कर दिया तथा बहुत सी संस्थाओं को स्वीकृति प्रदान नहीं की गई। फलतः तीन हजार धार्मिक संस्थायें बन्द हो गयीं। इस प्रकार शिक्षा पर से चर्च का नियन्त्रण समाप्त हो गया। १९०४ में एक दूसरा महत्वपूर्ण कानून बनाया गया। इसके अनुसार यह घोषित किया गया कि अगले १० वर्षों में स्वीकृत धार्मिक संस्थाओं को भी शिक्षा का कार्य बन्द कर देना होगा तथा शिक्षा पूर्णतया राज्य का कार्य समझा जायगा। इस कानून का प्रभाव ५०० धार्मिक शिक्षा-संस्थाओं पर पड़ा। इससे कैथोलिकों में बहुत असंतोष उत्पन्न हुआ।

इस प्रकार चर्च तथा राज्य का विरोध बराबर बढ़ता गया। इस सम्बन्ध में १९०४ की एक महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख किया जा सकता है। इस वर्ष फ्रांस का प्रेसीडेन्ट लूबे विक्टर इमानुएल तृतीय से मिलने के लिये रोम गया। परन्तु पोप ने लूबे की इस यात्रा का विरोध किया, क्योंकि इटली के एकीकरण के समय पोप का राज्य भी छीन लिया गया था। इटली की सरकार ने रोम भी उससे छीन लिया था। अतः वह इटली के राजा को अपहरणकर्ता मानता था। वह यूरोप के समस्त राज्यों से यह आशा कर रहा था कि वे उसको मान्यता प्रदान नहीं करेंगे। अतः पोप यह नहीं चाहता था कि लूबे रोम जाकर विक्टर इमानुएल तृतीय से भेंट करे।

अब तक पोप तथा राज्य के सम्बन्ध के विषय में कंकार्डाट (Concordat) का समझौता चल रहा था। यह समझौता १८०१ में नेपोलियन महान् ने पोप पायस सप्तम से किया था। इसके द्वारा चर्च के समस्त उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति राज्य द्वारा होती थी; परन्तु इस सम्बन्ध में पोप की सहमति भी ले ली जाती थी। छोटे पादरियों की नियुक्ति बिशपों द्वारा होती थी। बिशप भी इस सम्बन्ध में सरकार से अनुमति ले लेते थे। चर्च के इन समस्त पदाधिकारियों को वेतन देने का उत्तर-दायित्व राज्य का था। पादरियों को राज्य के प्रति वफादारी की शपथ ग्रहण करनी पड़ती थी। चर्च की समस्त इमारतें राज्य की सम्पत्ति समझी जाती थीं; परन्तु उनके प्रयोग करने का चर्च को अधिकार था। तृतीय गणतन्त्र के अन्तर्गत परिस्थिति में परिवर्तन होने लगा। बहुत से मनुष्य कैथोलिक धर्म को नहीं मानते थे। उनका कहना था कि किसी एक धर्म को राज-धर्म घोषित करना अनुचित है। जो व्यक्ति कैथोलिक धर्म में विश्वास नहीं रखते उन पर इसके लिए कर देने का उत्तरदायित्व नहीं होना चाहिये। अतः धर्म का राज्य से कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिये। इस प्रकार नेपोलियन के साथ किये जाने वाले समझौते का विरोध होने लगा तथा धर्म-निरपेक्ष राज्य की माँग होने लगी।

अतः १९०५ में पृथक्करण का कानून (Act of Separation) पास कर नेपोलियन तथा धर्म के मध्य हुए समझौते (Concordat) का अन्त कर दिया गया। इस प्रकार चर्च तथा राज्य का सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। इस कानून में कहा

गया था कि 'तृतीय गणतन्त्र न तो किसी धर्म को स्वीकार करता है और न उसकी सहायता करता है।' अब सरकार ने पादरियों को नियुक्त करने तथा उनको वेतन देने के कार्य को बन्द कर दिया। परन्तु वृद्ध पादरियों को वेतन देना राज्य ने स्वीकार कर लिया। जिन पादरियों की सर्विस अधिक हो गई थी उनको भी कुछ रुपया देने की व्यवस्था की गई। चर्च की सम्पत्ति की व्यवस्था करने के लिए गृहस्थ कैथोलिकों की समितियों (Associations of Worship) की स्थापना की गई। पोप पायस दसवें ने इस कानून का घोर विरोध किया। उसने चर्च तथा राज्य को अलग करने के सिद्धान्त को बहुत त्रुटिपूर्ण बतलाया। उसका विचार था कि पोप सर्वोपरि है। सब मामलों में उसकी सलाह लेनी आवश्यक है तथा राजनीतिक मामलों में भी उसकी सलाह अवश्य ली जानी चाहिये। परन्तु तृतीय गणतन्त्र ने उसके विरोध की ओर कोई ध्यान नहीं दिया तथा चर्च और राज्य को पूर्णतया अलग कर दिया गया। फ्रांस में पूर्णतया धर्म-निरपेक्ष राज्य की स्थापना हो गई। धर्म-निरपेक्ष स्कूलों की स्थापना की गई। स्कूलों में धार्मिक शिक्षा बन्द कर दी गई। चिकित्सालय तथा अनाथालय आदि समस्त संस्थाओं को धर्म-निरपेक्ष घोषित कर दिया गया। पार्लियामेन्ट के अधिवेशन के प्रारम्भ होने पर धार्मिक प्रार्थना बन्द कर दी गई। तलाक प्रथा को स्वीकार कर लिया गया। कैथोलिकों ने इस पर बहुत आन्दोलन किया। अन्त में १९०७ में ब्रिआँ की सिफारिश पर सरकार ने कैथोलिकों को कुछ सुविधायें प्रदान कर दीं। इसके कारण भी फ्रांस से चर्च का प्रभाव समाप्त हो गया। फ्रांस के इतिहास में यह बहुत बड़ी धार्मिक क्रान्ति थी।[1]

विदेश-नीति

जर्मनी से सम्बन्ध—फ्रांस तथा जर्मनी की शत्रुता बहुत पुरानी थी। १८७० के सेडन के युद्ध में जर्मनी ने फ्रांस को भारी पराजय दी थी। उसने फ्रांस से अल्सेस तथा लोरेन के महत्वपूर्ण प्रदेश छीन लिए थे तथा उस पर भारी हर्जाना लाद दिया था। इसके पश्चात् बिस्मार्क ने फ्रांस के साथ उदारता का बर्ताव किया; परन्तु फिर भी फ्रेंच जनता अल्सेस-लोरेन की क्षति को भूलने के लिए तैयार नहीं थी। वह अपने राष्ट्रीय गौरव को पुनः प्राप्त करने के लिए फ्रांस से प्रतिशोध का युद्ध करने के लिए तैयार थी। परन्तु बिस्मार्क ने अपनी कूटनीति से उनको यूरोप की राजनीति में अकेला कर दिया था और ऐसी अवस्था में वह कभी भी जर्मनी से युद्ध नहीं कर सकता था। १८७५ में फ्रांस तथा जर्मनी के मध्य युद्ध की आशंका बहुत बढ़ गई। बिस्मार्क ने उग्र भाषण देने प्रारम्भ कर दिये। इस अवसर पर जर्मनी के सम्राट् विलियम ने कहा था—'मैं फ्रांस से युद्ध करना नहीं चाहता हूं; परन्तु मुझे यह भय है कि बिस्मार्क धीरे-धीरे मुझको इसमें घसीट लेगा।'[2] परन्तु रूस तथा इंगलैंड के

---

1. 'This was a revolution in the ecclesiastical regime of France.'

2. 'I do not wish war with France, but I fear that Bismark may drag me into it little by little.'

हस्तक्षेप के फलस्वरूप युद्ध की आशंका समाप्त हो गई। १८७८ की बर्लिन काँग्रेस में जर्मनी तथा रूस के सम्बन्ध खराब हो गये। इस अवसर पर फ्राँस तथा रूस की मित्रता हो सकती थी। परन्तु तीन वर्ष पश्चात् १८८१ में कूटनीतिज्ञ बिस्मार्क ने रूस से समझौता कर लिया। जब तक बिस्मार्क सत्ताधारी रहा तब तक फ्राँस को कोई मित्र न मिला।

रूस से सम्बन्ध—यूरोप के राज्यों में एक मात्र रूस ही ऐसा था जिसकी फ्रांस से मित्रता होनी सम्भव थी, क्योंकि पूर्वी समस्या के प्रश्न पर आस्ट्रिया से उसकी शत्रुता थी और आस्ट्रिया जर्मनी का मित्र था। परन्तु पर्याप्त समय तक उससे भी उसकी मित्रता न हो सकी। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित कारण बतलाए जा सकते हैं :—

१. बिस्मार्क ने १८७० में फ्रांस को बुरी तरह पराजित किया था। इसके पश्चात् उसकी कूटनीति का मुख्य उद्देश्य फ्रांस को यूरोप में अकेला रखना हो गया था। जो देश फ्रांस से मिल सकते थे उनको वह कूटनीति से अपने से मिलाए रहा। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए बिस्मार्क ने १८७२ में तीन सम्राटों के गुट का निर्माण किया था और १८८१ में रूस से समझौता कर लिया था। जब तक बिस्मार्क सत्ताधारी रहा उसने फ्रांस को कोई मित्र न मिलने दिया।

२. रूस राजतन्त्रवादियों का गढ़ था; परन्तु फ्रांस प्रजातन्त्रवादियों का अड्डा था। रूस का शासक-वर्ग गणतन्त्रवादी फ्रांस को घृणा की दृष्टि से देखता था।

३. फ्रांस के मन्त्रि-मण्डल अस्थायी होते थे। अतः रूस को यह भय था कि जल्दी-जल्दी सरकार बदलने के कारण फ्राँस के साथ किया हुआ समझौता शीघ्र प्रकट हो सकता है।

४. फ्राँस को यह भय था कि यदि उसने रूस के साथ सन्धि कर ली तो हो सकता है बिस्मार्क तुरन्त उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दे। फलतः फ्राँस उस समय तक शान्ति की नीति का पालन कराना चाहता था जब तक कि उसके पास एक शक्तिशाली तथा सुसंगठित सेना न हो जाय।

५. सन् १८८५ में फ्राँस की सरकार ने रूस के अराजकतावादी नेता क्रोपाट-किन को उसकी सजा की अवधि समाप्त होने से पूर्व ही छोड़ दिया था। इससे रूस बहुत नाराज हुआ और उसने फ्राँस के राजदूत को अपने देश में रखना अस्वीकार कर दिया।

उपर्युक्त मतभेद होने पर भी अन्त में दोनों देश एक दूसरे के समीप आने लगे। १८७५ में फ्राँस तथा जर्मनी के मध्य युद्ध प्रारम्भ होने की आशंका बहुत अधिक बढ़ गई थी। इस अवसर पर रूस ने फ्राँस का साथ देने का आश्वासन दिया। इस पर बिस्मार्क को चुप होना पड़ा। १८८७ में बूलाँजे के संकट के समय पर भी रूस की सहानुभूति फ्राँस के साथ रही। १८८८ तथा १८६१ में फ्राँस ने रूस को भारी ऋण दिए। १८८८ में रूस के ग्राण्ड ड्यूक ने पेरिस की यात्रा की और वहाँ उसका

भारी स्वागत हुआ। १८८६ में फ्राँस ने रूस के लिए कुछ उच्च कोटि की राइफलों का निर्माण कराया। १८६० में रूस के ग्राण्ड ड्यूक ने पुनः पेरिस की यात्रा की। इस बार भी वहाँ उसका भारी स्वागत हुआ। इस प्रकार दोनों में पर्याप्त घनिष्ठता स्थापित हो गई। १८६० में बिस्मार्क का पतन हो गया। इसके पश्चात् १८६३ में फ्रांस तथा रूस ने परस्पर सन्धि कर ली। इसके अनुसार निम्नलिखित निर्णय किए गए—

(१) यह सन्धि गुप्त रहेगी तथा तब तक चलती रहेगी, जब तक कि त्रिराष्ट्र सन्धि रहेगी।

(२) दोनों देश एक दूसरे के विरोधी देशों के साथ अलग-अलग सन्धि नहीं करेंगे।

(३) यदि फ्रांस पर जर्मनी अथवा जर्मनी की सहायता से इटली आक्रमण करे तो रूस इन दोनों देशों के विरुद्ध फ्रांस की सहायता करेगा।

(४) यदि रूस पर जर्मनी अथवा उसकी सहायता से आस्ट्रिया आक्रमण करे तो फ्रांस इन दोनों देशों के विरुद्ध रूस की सहायता करेगा।

इस सन्धि के फलस्वरूप फ्रांस का एकाकीपन समाप्त हो गया तथा उसकी शक्ति में बहुत वृद्धि हो गई। यह सन्धि योरप के इतिहास में बिस्मार्क के युग के अन्त होने का द्योतक है। यह एक सुरक्षात्मक सन्धि थी। इसके फलस्वरूप योरप में फ्रांस की प्रतिष्ठा पुनः स्थापित हो गई।

इटली से सम्बन्ध—उत्तरी अफ्रीका में ट्यूनिस का एक महत्वपूर्ण प्रदेश था। उस पर फ्रांस तथा इटली दोनों ही अधिकार करना चाहते थे। कूटनीतिज्ञ बिस्मार्क भी यह चाहता था कि इस प्रश्न पर दोनों देशों में कटुता उत्पन्न हो जाय। अतः उसने १८७८ में इटली को ट्यूनिस पर अधिकार करने के लिये प्रोत्साहन दिया; परन्तु उसने फ्रांस के भय से उस पर अधिकार नहीं किया। अतः उसने फ्रांस को उस पर अधिकार करने के लिये प्रोत्साहित किया। फलतः १८८१ में फ्राँस ने ट्यूनिस पर अधिकार कर लिया। इससे इटली बहुत असन्तुष्ट हुआ और उसने अगले ही वर्ष (१८८२) में जर्मनी तथा आस्ट्रिया से त्रिराष्ट्र सन्धि कर ली। इटली का इटैलियन भाषा-भाषी प्रदेश के सम्बन्ध में आस्ट्रिया से झगड़ा था और आस्ट्रिया जर्मनी का मित्र था। अतः इटली की फ्रांस से मित्रता हो सकती थी; परन्तु ट्यूनिस के प्रश्न ने दोनों की मित्रता का अन्त कर दिया।

इङ्गलेंड से सम्बन्ध—बिस्मार्क फ्राँस को उपनिवेश-स्थापना के लिये बराबर प्रोत्साहन दे रहा था। उसका यह विचार था कि यदि फ्रांस इस दिशा में प्रगति करता रहा तो वह अल्सेस और लोरेन की क्षति को भूल जायगा। फ्रांस का सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ जूलिस फेरी उपनिवेश-स्थापना की ओर विशेष ध्यान दे रहा था। फलतः उसका इंगलेंड से संघर्ष हो गया।

मिस्र का शासक इस्माइल पाशा बहुत अधिक फिजूल-खर्ची था। इसके साथ-साथ उसने बहुत अधिक धन सुधार-कार्यों में भी व्यय किया था। इससे उस पर

इंगलैंड तथा फ्रांस का भारी ऋण हो गया। अतः उसने १८७५ में स्वेज नहर के अपने हिस्से अंग्रेजों को बेच दिये। इस पर इंगलैंड का मिस्र से और भी अधिक सम्पर्क हो गया। १८७६ में अत्यधिक आर्थिक अवस्था खराब होने पर इस्माइल ने इंगलैंड तथा फ्रांस के ऋणों को चुकाने से इन्कार कर दिया। फलतः १८७९ में में इंगलैंड तथा फ्रांस ने मिल कर मिस्र पर अपना संयुक्त आर्थिक नियन्त्रण कायम कर लिया। इससे मिस्र पर दोनों देशों का बहुत अधिक प्रभाव स्थापित हो गया। इस पर मिस्र के राष्ट्रवादी नेताओं ने उन दोनों देशों के विरुद्ध आन्दोलन करना प्रारम्भ कर दिया। अब तक मिस्र में इंगलैंड तथा फ्रांस दोनों सहयोग के साथ कार्य कर रहे थे; परन्तु इस आन्दोलन के दमन के सम्बन्ध में दोनों में मतभेद हो गया। उधर बिस्मार्क ने भी इन दोनों देशों में मतभेद बढ़ाने के लिये प्रयास किया। इसी समय मिस्र में विद्रोह हो गया और उसमें लगभग ५० व्यक्ति मारे गये। इंगलैंड ने विद्रोह दमन के लिये फ्रांस से प्रार्थना की; परन्तु उसने उसका कोई सहयोग नहीं दिया। इस पर अकेले इंगलैंड को विद्रोह दमन के लिये कार्यवाही करनी पड़ी। शान्ति स्थापित होने पर मिस्र पर इंगलैंड का पूर्ण प्रभाव स्थापित हो गया। फ्रांस को इस पर बहुत क्रोध आया। वह पग-पग पर इंगलैंड का विरोध करने लगा। इस पर इंगलैंड ने फ्रांस के विरोध में बिस्मार्क से कूटनीतिक सहायता प्राप्त की। इस प्रकार मिस्र के सम्बन्ध में इंगलैंड तथा फ्रांस के मध्य अधिकाधिक कटुता बढ़ती चली गई।

सूडान के प्रदेश के सम्बन्ध में भी इंगलैंड तथा फ्रांस के मध्य भारी संघर्ष था। अपने उत्तरी तथा दक्षिणी उपनिवेशों को जोड़ने के लिये इंगलैंड मध्य के प्रदेश सूडान पर अधिकार करना चाहता था। बिस्मार्क बराबर इन दोनों देशों को लड़ाने का प्रयत्न करता रहा और जब तक वह सत्ताधारी रहा तब तक उसने इंगलैंड तथा फ्रांस के मध्य मित्रता न होने दी। इंगलैंड से अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने के लिए बिस्मार्क ने न तो जर्मनी का जहाजी बेड़ा बढ़ाया और न उपनिवेशों की स्थापना की ओर ध्यान दिया, क्योंकि वह भली प्रकार जानता था कि इन दो बातों के कारण ही इंगलैंड का दूसरे देशों से संघर्ष होता है। इंगलैंड की यह नीति थी कि वह अपने जहाजी बेड़े को किन्हीं दो देशों के बराबर रखना चाहता था। बिस्मार्क ने एक बार कहा था कि हम पृथ्वी के चूहे (Land Rat) तथा जल के चूहे (Sea Rat) के मध्य झगड़ा कराना उचित नहीं समझते। पृथ्वी के चूहे से उसका तात्पर्य जर्मनी से तथा जल के चूहे से उसका तात्पर्य इंगलैंड से था। वास्तव में बिस्मार्क की नीति का यह उद्देश्य था कि किसी भी मूल्य पर इंगलैंड की मित्रता बनाये रखनी चाहिए।[1]

फशोदा की घटना—फ्रांसीसी सूडान तथा लाल सागर को जोड़ने के लिए नील नदी की उत्तरी घाटी पर अधिकार करना चाहते थे। अतः इस कार्य की पूर्ति के लिए उन्होंने अपने सेनापति मार्शां (Marchand) को भेजा। परन्तु अंग्रेज इस

1. 'To avoid losing England's good-will.'

प्रदेश को अपने अधिकार में समझते थे। इसलिये इस प्रदेश में स्थित फशोदा नामक स्थान पर फ्रांसीसी सेनापति मार्शां का अंग्रेजी सेनापति किचनार से मतभेद हो गया। अन्त में दोनों ने सारा मामला अपनी-अपनी सरकारों के पास भेज दिया। इंगलैंड के लार्ड सेलिसबरी तथा फ्रांस के थिए ने इस प्रश्न पर युद्ध की घोषणा करना आवश्यक समझा। परन्तु फ्राँस के प्रधान सेनापति देलकाजे ने युद्ध करना देश के लिए विनाशकारी बतलाया। उसका कहना था कि इंगलैंड से युद्ध करना जर्मनी की इच्छा की पूर्ति करना है। युद्ध में इंगलैंड बड़ी आसानी से अपने विशाल जहाजी बेड़े द्वारा फ्राँस के समस्त उपनिवेशों पर अधिकार कर लेगा। अतः इस सम्बन्ध में शान्ति की नीति से कार्य करना चाहिए। अन्त में देलकाजे के प्रयास से १८९९ में दोनों में समझौता हो गया। उसने फशोदा पर अंग्रेजों का अधिकार स्वीकार कर लिया। इसके बदले में अंग्रेजों ने फ्राँस को पश्चिमी-अफ्रीका में सहारा की ओर विस्तार करने का अधिकार दे दिया।

फ्राँस की स्थिति इस समय बहुत खराब थी। अफ्रीका में उपनिवेश स्थापना के सम्बन्ध में उसको जर्मनी से दबना पड़ता था। जर्मनी उसके मित्र रूस को भी अपनी ओर मिलाने की चेष्टा कर रहा था। अतः फ्रांस को एक शक्तिशाली मित्र की आवश्यकता थी। अतः देलकाजे यह चाहता था कि फ्राँस की इंगलैंड से सन्धि हो जाय। इधर इस समय इंगलैंड को भी अपनी पार्थक्य-नीति का परित्याग करना आवश्यक हो गया था। बोअर-युद्ध के समय उसने अपनी एकाकिता के खतरे को भली प्रकार समझ लिया था। बिस्मार्क के पतन के पश्चात् जर्मनी की नीति में भी परिवर्तन हो गया था। जर्मन सम्राट् विलियम द्वितीय ने जहाजी बेड़े के संगठन तथा उपनिवेश-स्थापना को बहुत अधिक महत्व देना प्रारम्भ कर दिया था। इससे वह अंग्रेजों का भयंकर प्रतिस्पर्द्धी हो गया था। उसने अंग्रेजों से मित्रता करने से इंकार कर दिया था और अंग्रेजों के मैत्री-प्रस्ताव को यह कह कर ठुकरा दिया था कि बर्लिन का मार्ग विएना होकर आता है।[1] अतः इंगलैंड ने जर्मनी से सुरक्षा पाने के लिए फ्राँस से मित्रता करना उचित समझा। इस प्रकार इस समय दोनों ही देश एक दूसरे से समझौते के लिए उत्सुक थे। अन्त में देलकाजे के प्रयास से १९०४ में इंगलैंड तथा फ्राँस ने हार्दिक मैत्री कर ली। इसके अनुसार निम्नलिखित निर्णय किए गए —

(१) इंगलैंड ने मोरक्को के ऊपर फ्राँस का प्रभाव स्वीकार कर लिया।

(२) फ्रांस ने मिस्र पर इंगलैंड का प्रभाव स्वीकार कर लिया।

(३) मेडागास्कर पर फ्रांस का प्रभाव मान लिया गया।

(४) फ्राँस ने न्यू फाउण्डलैंड के मछली पकड़ने के क्षेत्र पर से अपना प्रभाव छोड़ दिया।

(५) इसके बदले में फ्राँस को पश्चिमी अफ्रीका की ओर विस्तार करने का अधिकार मिल गया।

---

1. 'The way to Berlin lies through Vienna.'

यह एक मैत्री-सन्धि थी। इसमें सैनिक सहायता की कोई बात नहीं थी। वास्तव में यह इंगलैंड तथा फ्रांस के पारस्परिक मतभेदों को दूर करने का प्रयत्न था। इसके द्वारा उक्त दोनों देशों के सम्बन्ध बहुत अच्छे हो गए। जर्मनी को इससे भय उत्पन्न हो गया। उसने इस समझौते को भंग कराने के लिए १९०५, १९०८ तथा १९११ में मोरक्को का संकट खड़ा किया। १९११ में तो जर्मनी ने फ्राँस के विरुद्ध मोरक्को में एक जंगी जहाजी बेड़ा भी भेज दिया। परन्तु उपर्युक्त तीनों संकटों के समय इंगलैंड ने अपने मित्र फ्रांस का पूरा साथ दिया। इससे दोनों के सम्बन्ध भंग होने के स्थान पर पहले से भी अधिक दृढ़ हो गये। अन्त में प्रथम महायुद्ध में दोनों देशों ने एक दूसरे को पर्याप्त सहयोग दिया।

औपनिवेशिक नीति—फ्राँस का उपनिवेश स्थापना का कार्य लुई फिलिप के समय से ही चल रहा था। १८४७ में अलजीरिया पर अधिकार कर लिया गया था। नेपोलियन तृतीय के समय सेनेगल घाटी पर अधिकार कर लिया गया था। अनाम में झगड़ा होने पर कुछ फ्राँसीसियों की हत्या कर दी गई। फलतः नेपोलियन तृतीय ने अनाम पर आक्रमण किया। अनाम के राजा ने उससे सन्धि कर ली और १८६८ में उसको कोचीन का प्रदेश दे दिया। कम्बोडिया में भी फ्राँस का संरक्षण स्वीकार कर लिया गया। इस प्रकार १८७० तक फ्रांस के उपनिवेशों का काफी विस्तार हो गया था। तृतीय गणतन्त्र ने उपनिवेश-स्थापना के इस कार्य को और आगे बढ़ाया। अलजीरिया के पूर्व में ट्यूनिस का प्रदेश था। फ्राँस इस पर अधिकार कर इसको अलजीरिया के साथ मिलाना चाहता था। अन्त में १८८१ में बिस्मार्क के प्रोत्साहन से फ्राँस ने उस पर अधिकार कर लिया। पश्चिमी-अफ्रीका में सेनेगल की घाटी के आस-पास के प्रदेश पर भी फ्राँस ने अधिकार कर लिया। गायना, आइवरी कोस्ट, नॉर्थ काँगो तथा सहारा के नखलिस्तान के ऊपर भी फ्राँस ने अपना संरक्षण स्थापित कर लिया। इन प्रदेशों तक अभी कोई पश्चिमी देश नहीं पहुंचा था। एशिया में भी उपनिवेशों की स्थापना की गई। १८८५ में चीन से टोकिन का प्रदेश छीन लिया गया। इसी मध्य हिन्द महासागर में मेडागास्कर पर संरक्षण स्थापित कर लिया गया। १९९८ में क्वाँग चोवान (Kwang Chwan) पर भी अधिकार कर लिया गया। १९१२ में अफ्रीका स्थित मोरक्को पर भी संरक्षण स्थापित कर लिया गया।

प्रश्न (बी० ए०)

१८७१ के पश्चात् फ्रांस के सामने कौन-कौन समस्यायें थीं और उसने उनको किस प्रकार हल किया ?

२ १८७१ और १९१४ के मध्य फाँस के तृतीय गणतन्त्र की गृह-नीति अथवा विदेश-नीति का वर्णन कीजिये।

३ तृतीय फ्राँसीसी गणतन्त्र के संविधान की विवेचना कीजिए।

४ ड्रेफस-केस का राजनीतिक महत्व समझाइये।

५ फ्राँस के तृतीय गणतन्त्र के समय में चर्च तथा राज्य के मध्य वैमनस्य के कारणों को समझाइए तथा इन दोनों के सम्बन्ध-विच्छेद का क्रमपूर्वक वर्णन कीजिए।

६ १८७१ से १९०७ तक फ्राँस और रूस के पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या कीजिए।

७ तृतीय फ्रांसीसी गणतन्त्र के शिक्षा-सम्बन्धी सुधारों का वर्णन कीजिए।

८ बूलाँजे संकट का वर्णन करते हुए उसके परिणामों पर प्रकाश डालिए।

Questions (M. A.)

1 'The Drefus Affair marked an important epoch in the history of the Third Republic'. Explain the significance of of the Drefus Affair, and show how it affected the course of French politics.

2 Give a short account of the Drefus Affair and discuss its political importance.

3 Elucidate the importonce of the Drefus case and show how it led to the establishment of the secular state in France.

4 Examine the political significance of the Drefus case.

5 Write a short note on the colonial policy of France between the years 1870–1914.

———

२

रूस

(१८८१–१९१४)

एलेक्जेण्डर तृतीय, चरित्र, गृहनीति, आर्थिक विकास, विदेशी नीति, निकोलस द्वितीय, चरित्र, गृहनीति, असन्तोष, खूनी रविकर, १९०५ की क्रान्ति, कारण, प्रभाव, ड्यूमा का प्रयोग, असफलता निकोलस द्वितीय की विदेशी नीति, चीन-जापान-युद्ध, आँग्ल-जापानी सन्धि, रूसी-जापानी युद्ध, पोट्र्स-माउथ की सन्धि।

अलेक्जेण्डर तृतीय (१८८१–९४)

मुक्तिदाता जार अलेक्जेण्डर द्वितीय की हत्या के पश्चात् उसका पुत्र अलेक्जेण्डर तृतीय १८८१ में गद्दी पर बैठा। इसने १८९४ तक राज्य किया। गद्दी पर बैठने के समय उसकी अवस्था ३६ वर्ष की थी। निहलिस्ट पार्टी को यह ख्याल था कि यह राजा गद्दी पर बैठने पर शासन में सुधार करेगा। परन्तु उसका यह विश्वास गलत निकला। यह उग्र मनोवृत्ति, हठधर्मी तथा सैनिकवादी था। इसने अपने पिता की हत्या के कारण अपनी सम्पूर्ण नीति बदल दी। उसका विश्वास था कि उसके पिता के उदार होने के कारण ही उसके शासन-काल में अनेक आन्दोलन हुए और इन्हीं के फलस्वरूप उनकी हत्या हुई। गद्दी पर बैठने पर उसने अपने पिता के हत्यारे की खोज कराई। इस खोज के फलस्वरूप अनेक निरपराध व्यक्ति भी पकड़े गये तथा दण्डित किये गये। इनमें से अधिकांश व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया गया तथा कुछ को साइबेरिया के ठण्डे मैदानों में निर्वासित कर दिया गया। गद्दी पर बैठते ही उसने घोषित किया था—'ईश्वर की वाणी हमको यह आदेश देती है कि हम जनता के हित में निरंकुशतापूर्वक शासन करें।'

गृह-नीति

अलेक्जेण्डर तृतीय ने गद्दी पर बैठते ही एक स्त्री को फांसी की सजा दी। गत ५० वर्षों में किसी औरत को ऐसी सजा नहीं दी गई थी। इस घटना के सम्बन्ध में फ्रांस के सुप्रसिद्ध इतिहासकार रेम बोड (Ram Baud) ने लिखा है—'अलेक्जेण्डर तृतीय का राज्य निराशा की काली छाया में आरम्भ हुआ है।' इस प्रकार उसके शासन-काल का प्रथम चरण ही घोर प्रतिक्रियावाद का प्रतीक था। निकोलस प्रथम की तरह वह भी स्लाव राष्ट्रीयता का कट्टर भक्त था। उसने अपने शासन में तीन बातों पर बहुत जोर दिया—निरंकुश शासन, धर्मान्ध चर्च तथा स्लाव राष्ट्रीयता।

प्रतिक्रियावादी नीति का आश्रय लेते हुए उसने प्राध्यापकों की नियुक्ति राज्य का कार्य घोषित किया। पाठ्यक्रम भी राज्य द्वारा निर्धारित किया जाने लगा। स्थानीय संस्थाओं (Zemstvos) के अधिकार छीन लिए गये। गुप्तचर विभाग (Third Section) को बहुत बढ़ा दिया गया। प्रेस की स्वतन्त्रता छीन ली गई। सर्वत्र कठोर नीति का आश्रय लिया गया। सम्पूर्ण देश में फौजी कानून लागू किया गया। पोबीडोनोस्टेव (Pobiedonostev) नामक घोर प्रतिक्रियावादी व्यक्ति को रूस की धार्मिक संस्था का अध्यक्ष (Procurator of the Holy Synod) बनाया गया। लिप्सन महोदय ने इसको रूस का राहु कहा है। अलेक्जेण्डर तृतीय पर इसका बहुत प्रभाव था। यही निकोलस द्वितीय का अध्यापक नियुक्त किया गया। अतः उस पर भी इसका बहुत प्रभाव पड़ा। वैधानिक सरकार को यह एक राजनीतिक झूठ कहता था जो कि जनता को धोखा देकर अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये बनाई जाती है। इस प्रकार पश्चिम के उदारवाद के विरोध मे वह 'एक जार, एक चर्च तथा एकरूस, की नीति का समर्थक था। इस प्रकार वह एकतन्त्रवादी था और संसद का विरोधी था। वह कहा करता था कि संसद आन्दोलन को जन्म देती है। वह राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि मानकर उसकी आज्ञा के अनुसार ही कार्य करने की नीति का समर्थक था।

उसने ग्रीक आर्थोडाक्स चर्च (Greek Orthodox Church) के अतिरिक्त अन्य धर्मों (कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेन्ट आदि) को नष्ट करने का पूरा प्रयत्न किया। एक मात्र चर्च के स्कूलों को सहायता दी जाती थी। अन्य स्कूलों को हतोत्साहित किया जाता था। अधीन प्रान्तों का रूसीकरण करने का प्रयास किया गया। इन प्रान्तों की भाषा तथा संस्कृति को पूरी तरह मिटाने का भी प्रयास किया गया। इन पर रूसी भाषा तथा रूसी कानून को लाद दिया गया। इस प्रकार का दमन-चक्र पोलैंड, फिनलैंड, श्वेत रूस (White Russia) यूक्रेन, एस्टोनिया तथा लिथुनिया आदि प्रान्तों में चल रहा था। रूस में जो जर्मन रहते थे उन पर भी इसी प्रकार का अत्याचार चल रहा था। जर्मन स्थानों तथा सड़कों आदि के नाम रूसी भाषा में परिवर्तित किये जा रहे थे। राजकीय पदों पर एकमात्र रूसी ही नियुक्त किये जा रहे थे।

सबसे अधिक अत्याचार यहूदियों के साथ हो रहा था। वे क्रान्तिकारी और धर्म तथा सम्राट् के शत्रु ख्याल किये जाते थे। उनको कुछ विशेष मुहल्लों में रहने के लिये विवश किया गया। स्कूल तथा विश्वविद्यालयों में यहूदियों के बच्चे एक तिहाई से अधिक नहीं हो सकते थे। उनको जमीन खरीदने का अधिकार न था। रूसी जनता उनके घरों में घुसकर उनका सामान लूट लेती थी तथा आग लगा देती थी। यहूदियों की सामूहिक हत्यायें (Pogrom) भी की गईं। फलतः इस घोर अत्याचार से घबरा कर यहूदी देश छोड़ कर भागने लगे। सन् १८८० तथा १९०० के मध्य लगभग १५ लाख यहूदी देश छोड़कर अमेरिका आदि में बस गये। इससे यहूदियों में राष्ट्रीय आन्दोलन का जन्म हुआ और वे अपनी मातृ-भूमि पैलेस्टाइन को पुनः प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करने लगे।

सरकार की अनुमति के बिना प्रकाशन नहीं हो सकता था। समाचार-पत्रों पर कठोर सेन्सर लगा दिया गया। व्यक्तिगत पत्रों की भी जाँच की जाती थी। जनता को संघ बनाने का अधिकार नहीं था। सरकार से पूर्व आज्ञा लिये बिना कोई अधिवेशन नहीं हो सकता था। पुलिस को यह अधिकार प्रदान किया गया कि सन्देह होने पर वह किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार कर दण्डित कर दे। गवर्नरों के अधिकारों में वृद्धि कर दी गई। नये निर्वाचनों में ऐसी व्यवस्था की गई कि जिससे सामन्तों तथा उच्चपदाधिकारियों के प्रतिनिधि ही पार्लियामेंट में पहुंच सकें। अपने जीवन के अन्तिम चरण तक उसने अपनी कठोरता में कोई शिथिलता न आने दी। इस प्रकार अलेक्जेण्डर तीय के शासन-काल में प्रतिक्रियावाद का खूब बोलबाला रहा। उसने अपनी प्रजा से भी अलग रहना प्रारम्भ कर दिया। अपने मन्त्रियों से भी मिलना बहुत सीमित कर दिया। लिप्सन महोदय के शब्दों में वह अपने विश्राम-गृह में बन्द रहता था। उसके चारों ओर पहरेदार रहते थे। पुलिस उसकी बराबर रक्षा करती थी। १३ वर्ष तक निरन्तर वह उन शत्रुओं से संघर्ष करता रहा, जिनका उसने कभी मुंह भी नहीं देखा था। अलेक्जेण्डर तृतीय के दमन के कारण देश में शान्ति स्थापित हो गई; परन्तु इसका अर्थ यह नहीं था कि आन्दोलन दब गया था। अब गुप्त रूप से आन्दोलन के लिए तैयारियां हो रही थीं।

आर्थिक विकास

किसानों की उन्नति—अलेक्जेण्डर तृतीय ने किसानों की दशा सुधारने के लिए बहुत प्रयत्न किये। इसलिए उसे 'कृषक सम्राट्' भी कहा जाता है। उसने किसानों की भू-खण्डों की किश्तें माफ कर दीं। कुछ किसानों के पास भूमि बहुत थोड़ी थी। अतः उसने बड़े-बड़े किसानों तथा जमींदारों से जमीन के टुकड़े लेकर छोटे-छोटे कर दिये गये। राज्य की ओर से किसानों को बीज तथा ऋण आदि देने की व्यवस्था की गई।

औद्योगिक उन्नति—औद्योगिक उन्नति के लिये भी अलेक्जेण्डर तृतीय ने महत्वपूर्ण कार्य किया। पहले रूस एक कृषि-प्रधान देश था। यद्यपि उसके पास प्राकृतिक साधन बहुत अच्छे थे, परन्तु उनका उपयोग करने की कोई व्यवस्था न थी। सर्वप्रथम अलेक्जेण्डर द्वितीय ने देश की औद्योगिक उन्नति की ओर ध्यान दिया था। उसने संरक्षण की नीति द्वारा व्यापारिक विकास में बहुत योग दिया था। अलेक्जेण्डर तृतीय ने अपने पिता द्वारा किये गये कार्य को और आगे बढ़ाया। १८९२ में उसने सर्जियस-डी-विट (Sergius-de-Witte) को अपना अर्थ तथा वाणिज्य मन्त्री नियुक्त किया। इसने भी संरक्षण (Protection) की नीति का आश्रय लिया। उसने बाहर के देशों से आने वाले माल पर भारी-भारी चुंगियाँ लगायीं। इससे विदेशों का माल रूस में घुसना असम्भव हो गया। उसने यूरोप के विभिन्न देशों के पूंजीपतियों को रूस में कल-कारखाने स्थापित करने के लिये निमन्त्रण दिया। उनको यह आश्वासन दिया कि उनको कोई हानि नहीं होगी। दास प्रथा का अन्त हो जाने

से कारखानों में कार्य करने के लिए मजदूरों की कमी नहीं रही। इससे देश की औद्योगिक उन्नति दिन दूनी रात चौगुनी होने लगी।

अभी तक रूस में यातायात के साधन बहुत अवनत थे। क्रीमिया युद्ध में रूस की पराजय का एक कारण यातायात के साधनों का अभाव भी था। इससे युद्ध-सामग्री तथा रसद आदि ठीक प्रकार से युद्ध-स्थल तक नहीं पहुंच पाती थी। परन्तु इस समय यातायात के साधनों की ओर भी ध्यान दिया गया। १८९३–९४ में रूस ने फ्राँस के साथ सन्धि की और फ्रांस से ऋण लिया। यह धन रेल-मार्गों के विकास में भी लगाया गया। पहले रूस में प्रति वर्ष केवल ४०० मील रेलवे लाइन बनती थी। परन्तु अब प्रति वर्ष १४०० मील रेलवे लाइन बनने लगी। इस समय सुप्रसिद्ध ट्रांस-साइबेरियन रेलवे का निर्माण हुआ। यह विश्व की सबसे बड़ी रेलवे लाइन है। यह प्रशान्त महासागर में स्थित सुप्रसिद्ध ब्लाडीवोस्टक बन्दरगाह से लेकर मास्को तक जाती है। इस विस्तृत रेलवे लाइन का निर्माण ११ वर्ष (१८९१–१९०२) में हुआ। इसके निर्माण से माल के एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने में बहुत सुविधा हो गई।

इस प्रकार इस देश का बहुत अधिक औद्योगिक विकास हुआ। इसके परिणामस्वरूप देश में अनेक औद्योगिक नगरों का विकास हुआ। देश में पूंजीपति वर्ग तथा मजदूर वर्ग का भी उदय हुआ। कालान्तर में इन दोनों वर्गों में संघर्ष उत्पन्न हुआ। मजदूर अनेक सुविधाओं की माँग करने लगे। देश में समाजवादी विचारधारा की लहरें पूरी तरह से फैल गई। इस प्रकार रूस का अशान्त वातावरण और भी अधिक अशान्त हो गया।

वैदेशिक नीति—अलेक्जेण्डर तृतीय की गृह-नीति की भाँति उसकी वैदेशिक नीति भी हस्तक्षेपपूर्ण थी। उसने फारस तथा बलगेरिया में अपना प्रभाव स्थापित किया। काकेशस प्रदेश को भी अपने अधीन कर लिया। आस्ट्रिया तथा जर्मनी के साथ तीन सम्राटों का गुट (Three Emperors League) स्थापित की। बिस्मार्क के पदत्याग करने पर १८९० में यह सन्धि भंग हो गई।

वह फ्रांस से भी मित्रता करना चाहता था। १८८६ में उसने फ्रांस से मित्रता करने का प्रस्ताव रक्खा; परन्तु फ्रांस ने उसको स्वीकार नहीं किया। १८८७ में बलगेरिया संकट के समय में भी फ्रांस ने रूस की नीति का अनुमोदन किया। बुलान्जे संकट के समय में रूस ने नैतिक सहायता (Moral Support) देने का आश्वासन किया। नवम्बर १८८८ में रूस के ग्राण्ड ड्यूक ने पेरिस की यात्रा की। वहाँ पर उसका भारी स्वागत हुआ। उसने रूस को अस्त्र-शस्त्र देने के लिए भी राजी कर लिया। १८९० में रूस का राजकुमार ग्राण्डड्यूक पुनः फ्रांस में आया। इस बार भी जनता तथा सरकार ने उसका भव्य स्वागत किया। १८९१ में रूस ने फ्रांस को युद्ध होने की अवस्था में सहायता देने का आश्वासन दिया। १८९१ में एक फ्रांसीसी जहाजी बेड़ा गर्वे के नेतृत्व में रूस में आया। जनता तथा सम्राट् दोनों ने उसका भव्य स्वागत किया। इस अवसर पर अलेक्जेण्डर तृतीय ने नतमस्तक होकर फ्रांस की क्रान्ति के गीत

को सुना । इस प्रकार दोनों देशों का आवागमन बराबर बढ़ता रहा । धीरे-धीरे उनके सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ हो गए । अन्त में १८९३–९४ में उन्होंने एक सन्धि कर ली । फ्रांस ने तीन बार रूस को भारी मात्रा में ऋण दिया । इससे रूस के औद्योगिक विकास को बहुत सहायता मिली ।

निकोलस द्वितीय (१८९४–१९१७)

अलेक्जेण्डर तृतीय की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र निकोलस द्वितीय राजा हुआ । यह एक निर्बल, अयोग्य, हठधर्मी, भाग्यवादी तथा रहस्यवादी व्यक्ति था । अतः उससे सुधारों की आशा करना व्यर्थ था । वह अपनी पत्नी तथा रासपुटिन नामक एक साधु से बहुत प्रभावित था । वह अपने पिता की ही भांति सैनिकवादी था । सिंहासनासीन होने पर उसने घोषित किया कि 'मैं अपने स्वर्गीय पिता की ही भाँति शासन करूँगा तथा निरंकुशवादी सिद्धान्तों की रक्षा करूँगा ।' विकेन्द्रीयकरण के सिद्धान्त को वह मूर्खतापूर्ण स्वप्न (A senseless dream) कहा करता था । उसने अपने पिता से भी कहीं अधिक कठोरता से शासन किया । इसके समय में भी प्रतिक्रियावाद के प्रबल समर्थक पोबीडोनोस्टेव (Pobidonostseff) तथा प्लेह्व (Plehve) नामक पदाधिकारी अपने पदों पर बने रहे । इस समय इन्होंने पहले से भी कहीं अधिक निरंकुशता का परिचय दिया । इससे जनता में बहुत असन्तोष फैला । परन्तु जार ने अपनी भ्रष्ट नौकरशाही से जनता को कठोरतापूर्वक दबा दिया । मनुष्यों को मनमाने ढंग से गिरफ्तार कर दण्ड दिए गए । विश्वविद्यालयों तथा प्रेस पर कठोर नियन्त्रण लगा दिया गया । मास्को विश्वविद्यालय के अधिकांश छात्र गिरफ्तार कर जेलों में डाल दिए गए । कुछ को साइबेरिया के जंगलों में निर्वासित कर दिया गया । अध्यापकों के साथ कठोरता का बर्ताव किया गया । इस समय रूस में नाममात्र के लिए भी उदारवाद के लिए कोई स्थान न था । इस समय रूस में सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक असन्तोष अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया था । निकोलस द्वितीय ने इस असन्तोष को दूर करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया ।

गृह-नीति

गैर रूसियों के साथ अत्याचार—निकोलस ने गैर रूसियों के साथ बहुत कठोरता का बर्ताव किया । यहूदियों के साथ बराबर कठोरता का बर्ताव होता रहा । उनकी सामूहिक हत्यायें (Pogroms) होती रहीं । जार ने बाल्टिक प्रदेशों में जर्मनी, लिथुनिया में यहूदियों और फिनलैंड में फिनों का कठोरता से दमन किया । इन प्रदेशों पर रूसी भाषा तथा रूसी चर्च को लादने का पूरा प्रयास किया गया । इससे अल्पसंख्यकों में बहुत असन्तोष फैला । इससे निहलिज्म का प्रभाव देश में बहुत अधिक हो गया । परन्तु जार ने कठोरतापूर्वक आन्दोलनों का दमन किया । जेम्सटवो नामक संस्थाओं का भी दमन किया ।

औद्योगिक उन्नति—इस समय गृह-मन्त्री विट के समय में देश में औद्योगिक उन्नति भी हुई । उसने विदेशों में अपने देश की साख स्थापित की । विदेशी पूँजी-

पतियों को अपने देश में पूँजी लगाने के लिए प्रोत्साहित किया। यातायात के साधनों का विकास किया। लोहे तथा कोयले की खानों का पता लगा कर उनकी खुदवाई की गई। तेल के कुओं का भी पता लगाया गया। ट्रांस कैस्पियन रेलवे का निर्माण भी इसी समय हुआ। देश में अनेक बड़े कारखाने स्थापित किए गए। देश की औद्योगिक उन्नति के लिये फ्रांस की सरकार से आर्थिक सहायता ली गई।

असन्तोष का विकास—रूस में जो दमन अलेक्जेण्डर तृतीय के समय में प्रारम्भ हुआ था, वह निकोलस के समय में भी बराबर चलता रहा। फलतः आन्दोलन के रूप में विस्फोट नजर आने लगा। निहलिस्ट पार्टी इस समय पुनः शक्ति प्राप्त कर रही थी। अराजकतावादी पार्टी का भी उदय हुआ। यह पार्टी कहती थी कि सरकार की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह जनता का दमन करती है। कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों का प्रचार भी इस समय तीव्र गति से हो रहा था। इसी समय सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी (Social Democratic Party) का भी उदय हुआ। इस पार्टी के सदस्य किसान तथा मजदूर थे। कालान्तर में यह पार्टी दो भागों में बंट गई—(१) बोल्शेविक—इस दल के लोग कट्टर विचारों वाले थे। इस दल के नेता लेनिन तथा ट्राटस्की थे। (२) मेन्शेविक—इस दल के सदस्य उदार थे। इन दोनों दलों ने मजदूरों को भड़काना प्रारम्भ किया। राजा के विरुद्ध षड्यन्त्र किए गये तथा सामन्तों की हत्या कर दी गई। इसी समय १९०४–१९०५ में रूसी-जापानी युद्ध हुआ। इस युद्ध में रूसी सैनिकों को वर्दियाँ तक भी न मिलीं। इस अव्यवस्था की खबर सुन कर रूसी जनता में बड़ा असन्तोष फैला। बुद्धिजीवी लोगों, विद्वानों तथा लेखकों ने जार के विरुद्ध पुस्तकें लिखकर प्रचार किया। टालसटाय, मेग्जिमगोर्की तथा दास्तावेस्की आदि साहित्यकारों ने क्रान्तिकारी विचारों के प्रचार में बहुत योग दिया। इस समय बहुत से रूसी नवयुवक विदेशों से शिक्षा प्राप्त कर आए। उन्होंने अपने देश में उदार सरकार स्थापित करने के लिए प्रयत्न प्रारम्भ किये। इन नवयुवकों ने रूस के बाहर भी क्रान्ति के अड्डे स्थापित किए। १९०२ में रूसी क्रान्तिकारियों ने जर्मनी में लिबरेशन (Liberation) नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। १९०४ में उन्होंने यूनियन ऑफ लिबरेटर्स (Union of Liberators) नामक एक संस्था की स्थापना की। अन्त में जापान जैसे छोटे से देश ने विशालकाय रूस को पराजित कर दिया। इससे असन्तोष में बहुत वृद्धि हुई। आन्दोलनकारियों ने १९०[illegible] में घोर प्रतिक्रियावादी प्लह्व की हत्या कर दी। इसने अपनी मृत्यु के पूर्व एक वर्ष में ही ४८६७ मनुष्यों को मुकदमा चलाये बिना सजायें दी थीं। तत्पश्चात् प्रिंस मिर्स्की गृह-मन्त्री बनाया गया। वह उसकी अपेक्षा उदार था। इसने जनता से यह मांग की कि वे सरकार के सम्मुख सुधारों की सूची प्रस्तुत करें। स्थानीय संस्थाओं के प्रतिनिधियों ने १९०४ में एक सम्मेलन किया और ११ माँगें प्रस्तुत कीं। प्रमुख माँगें इस प्रकार थीं —

१. प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म के पालन करने तथा भाषण करने की स्वतन्त्रता हो।

२. प्रेस को स्वतन्त्रता प्रदान की जाय तथा जनता को सार्वजनिक सभायें करने का अधिकार दिया जाय।

३. स्थानीय संस्थाओं का विकास किया जाय।

४. कानून बनाने और शासन करने के लिये एक प्रतिनिधि सभा की स्थापना की जाय।

मजदूरों के असंतोष में बहुत वृद्धि हुई। परन्तु जार ने इन सुधारों को क्रियान्वित करने में कोई रुचि नहीं दिखाई। वह बराबर दमन करता रहा।

खूनी रविवार—जार की प्रतिक्रियावादी नीति के कारण मास्को तथा विलना आदि नगरों में हड़तालें आरम्भ हो गयीं। २२ जनवरी १९०५ में रविवार के दिन मजदूरों ने सेन्टपीटर्स बर्ग में फादर गेपन (Father Gapon) नामक पादरी के नेतृत्व में एक विशाल जलूस निकाला। ये भ्रष्ट कर्मचारियों पर विश्वास नहीं करते थे। अतः ये अपनी मांगें जार के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिये राजमहल की ओर चल दिये; परन्तु मार्ग में पुलिस ने उन पर गोलियां चला दीं। इससे अनेक मजदूर मारे गये। इतिहास में यह घटना खूनी रविवार (Bloody Sunday) के नाम से प्रख्यात है। इससे देश में बहुत असंतोष फैला। समाजवादी क्रान्तिकारियों ने हिंसात्मक कार्य करने प्रारम्भ कर दिये। बहुत से स्थानों पर पुलिस के कर्मचारियों की हत्यायें कर दी गयीं। किसानों ने जमींदारों के घरों में आग लगा दीं। फोन तथा तार नष्ट कर दिये गये। जनता ने कर देना बन्द कर दिया। जल सेना तथा स्थल सेना ने भी विद्रोह कर दिये। जार के चचा सर्जियस (Sergius) की भी हत्या कर दी गई। यह भी अपने समय का बहुत बड़ा प्रतिक्रियावादी था। इसने एक बार कहा था कि रूसी जनता को डण्डे से ठीक करना चाहिये। इस प्रकार देश में घोर अराजकता छा गई।

१९०५ की रूसी क्रान्ति के कारण

१. **सामाजिक विषमता**—इस समय रूसी जनता में बहुत विषमता थी। रूसी समाज मुख्यतया दो भागों में बंटा हुआ था—

(i) अधिकार युक्त वर्ग—यह वर्ग विशेषाधिकार-सम्पन्न था। इन लोगों को राज्य में उच्च पद प्राप्त थे। ये करों से मुक्त थे। इस दल के अन्तर्गत राज-परिवार, सामन्त तथा उच्च पदाधिकारी सम्मिलित थे।

(ii) अधिकारहीन वर्ग—इस वर्ग के अन्तर्गत किसान, मजदूर तथा दास थे। इनको राज्य में किसी प्रकार के अधिकार प्राप्त न थे। उच्च वर्ग के लोग इनसे मन-चाहा बेगार लेते थे। दिन भर घोर परिश्रम करने के बाद भी इन्हें भर पेट भोजन नहीं मिलता था। इस विषमता के कारण दोनों वर्गों में बहुत शत्रुता थी।

२. **जार सम्राटों की निरंकुशता**—रूस में जार सम्राटों का शासन था। ये अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि समझते थे। वे अपने कार्यों के लिए अपने को ईश्वर के प्रति ही उत्तरदायी समझते थे। जनता के प्रति ये अपना कोई उत्तरदायित्व नहीं

समझते थे। इस समय जनता में जागृति आ गई थी। बहुत से नवयुवक विदेशों से शिक्षा प्राप्त करके आये थे। वे जार के दैवी सिद्धान्त को मानने के लिये तैयार न थे।

३. अन्ध-विश्वास—इस समय तक रूस एक पिछड़ा हुआ देश था। वहाँ शिक्षा की कोई व्यवस्था न थी। इससे रूसी समाज में अन्ध-विश्वासों का बोलबाला था। ऐसे वातावरण में राजा तथा चर्च दोनों ही अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि बतला कर, उस पर अत्याचार करते थे। जारीना पर रासपुटिन नामक एक कुविख्यात रहस्यवादी साधु का बहुत प्रभाव था। जार निकोलस द्वितीय भी इससे प्रभावित था।

४. नौकरशाही की प्रधानता—शासन के संचालन के लिये जार सम्राटों ने एक विशाल नौकरशाही नियुक्त की थी। ये लोग जार के चापलूस होते थे। इनकी नियुक्ति तथा पदोन्नति आदि उसकी इच्छा पर ही निर्भर थी। ये लोग हर समय राजा को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करते थे। इनमें स्वतन्त्र रूप से कार्य करने की क्षमता नहीं थी। ये जार की मन्त्रणा के अनुसार ही कार्य किया करते थे।

५. अनेक जातियाँ—रूसी साम्राज्य में अनेक जातियां रहती थीं। इनमें पोल, फिन तथा यहूदी आदि प्रमुख थीं। इन जातियों की भाषा, धर्म तथा परम्परायें भिन्न थीं। इस समय इन जातियों में जागृति आ गई थी। अतः ये स्वतन्त्र होने के लिए प्रयत्न करने लगी थीं। परन्तु जार सम्राट् इनका रूसीकरण करना चाहता था।

६. अल्पसंख्यकों पर अत्याचार—हम पीछे उल्लेख कर चुके हैं कि रूस में अनेक जातियां रहती थीं। जार सम्राट् इन पर घोर अत्याचार करता था। इन पर रूसी भाषा तथा चर्च को लादने का प्रयास किया गया। इनके रीति-रिवाजों की अवहेलना की गई। सबसे अधिक अत्याचार यहूदियों पर किया गया और उनकी सामूहिक हत्यायें की गयीं। फलतः ये लोग भी राजा के विरोधी हो गये और क्रान्ति-कारियों के साथ मिल गये।

७. रूसी सेना की निर्बलता—इस समय तक रूसी सेना बहुत निर्बल हो गई थी। क्रीमिया तथा जापान के युद्धों में इसको भीषण पराजय उठानी पड़ी थीं। परन्तु आन्तरिक विद्रोहों को यह कठोरतापूर्वक दबाती रही। इससे जनता सेना से भी नाराज हो गई। शक्तिशाली सेना के अभाव में निरंकुश जारों का शासन अधिक दिन चलना असम्भव था।

८. अनेक दलों का अभ्युदय—इस समय रूस में जागृति आनी आरम्भ हो गई थी। फलतः अनेक दलों का उदय हुआ। इन दलों में निहलिस्ट, अराजकतावादी तथा सोशल डेमोक्रेट के नाम उल्लेखनीय हैं। यद्यपि इन दलों के सिद्धान्त परस्पर-विरोधी थे; परन्तु उन सबका यह उद्देश्य था कि जार के शासन का अन्त कर जन-तन्त्रात्मक सरकार की स्थापना की जाय।

९. रूसी-जापानी युद्ध में रूस की पराजय—सन् १९०४–१९०५ के रूसी-

जापानी युद्ध में रूस पराजित हो गया। इससे जनता में बहुत असंतोष हुआ। जनता अयोग्य जारों को हटाने के लिए प्रयत्न करने लगी।

१०. जार निकोलस द्वितीय की नीति—अलेक्जेण्डर तृतीय की मृत्यु के पश्चात् १८९४ में निकोलस द्वितीय रूस का जार बना। जनता यह आशा करती थी कि नया जार बढ़ते हुए असंतोष को दूर करने के लिये शासन में कुछ सुधार करेगा। परन्तु उसने इसके विपरीत कार्य किया। उसने सिंहासन पर बैठने पर घोषित किया—'मैं उसी प्रकार निरंकुशतापूर्वक शासन करूंगा जिस प्रकार मेरे पूर्वज करते आये हैं।' उसके समय में भी प्रतिक्रियावादी अधिकारियों की प्रधानता बनी रही। उसने प्रेस, पुस्तकालयों तथा विश्वविद्यालयों पर भी नियन्त्रण लगा दिया। इससे सर्वत्र असंतोष की आग फैल गई।

प्रभाव

सुधारों की घोषणा—अराजकता से जार घबरा गया उसने सुधारों की घोषणा की। प्रेस तथा यहूदियों को कुछ स्वतन्त्रता दे दी। अगस्त १९०५ में सुधार के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने के लिए एक राष्ट्रीय सभा (Duma) को बुलाने के लिये भी आश्वासन दिया गया। परन्तु जनता ने इस घोषणा-पत्र की ओर ध्यान नहीं दिया, क्योंकि इसके अन्तर्गत प्रतिनिधियों को कानून बनाने का अधिकार नहीं दिया गया था। ससद के अधिवेशन गुप्त रखे जाने की व्यवस्था की गई थी और मताधिकार सीमित रखने की व्यवस्था की थी।

पुनः असंतोष—इसके पश्चात् देश में पुनः असतोष फैल गया। देश में सर्वत्र पुनः आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। कारखानों, रेलों, अस्पतालों तथा बिजली-घरों में हड़तालें हो गयीं। वकीलों, कालिजों तथा विश्वविद्यालयों ने भी हड़ताल कर दी। फलतः सम्पूर्ण देश में अव्यवस्था फैल गई। इससे जार घबरा गया और ३० अक्तूबर १९०५ को उसने एक घोषणा-पत्र प्रकाशित किया।

३० अक्तूबर १९०५ का घोषणा-पत्र—जार अराजकता से घबरा गया। उसने पोबीदोनोस्टेव तथा अन्य प्रतिक्रियावादी पदाधिकारियों को पदच्युत कर दिया। उसने उदार विट को पुनः अपना प्रधान मन्त्री बनाया। प्रस्तुत घोषणा-पत्र की प्रमुख बातें निम्नमिखित थीं—

१. प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म का पालन करने का अधिकार होगा।

२. जनता को भाषण देने, लिखने तथा सभा करने का अधिकार दे दिया गया।

३. मताधिकार व्यापक कर दिया गया।

४. प्रतिनिधि सभा (Duma) की स्थापना का आश्वासन दिया गया। पदाधिकारी वर्ग पर ड्यूमा का नियन्त्रण रहेगा।

५. फिनलेंड को स्वतन्त्र कर दिया गया।

१९०५ के घोषणा-पत्र द्वारा जार ने जनतन्त्रात्मक सरकार स्थापित करने के लिए पहला कदम उठाया। परन्तु इस प्रश्न पर कि शक्ति किसके हाथ में हो, नेताओ

में मतभेद हो गया। इससे निकोलस द्वितीय ने लाभ उठाया। उसने घोषित किया कि संसद में जनता द्वारा चुना हुआ पहला भवन होगा। इसके अतिरिक्त संसद में साम्राज्य-परिषद् (Council of the Empire) नामक एक दूसरा भवन होगा। इसकी नियुक्ति सम्राट द्वारा होगी। इसमें सम्राट अपने पक्षपाती प्रतिक्रियावादी व्यक्तियों को रखना चाहता था। यह आवश्यक था कि कोई कानून सम्राट की स्वीकृति के लिये उसी अवस्था में भेजा जायगा जबकि साम्राज्य परिषद् उसको स्वीकृत कर दे। इस प्रकार ड्यूमा प्रतिनिधि सभा होने के अधिकार से वंचित हो गई। १९०६ में (Organic Law) पास कर राजा को निषेधाधिकार भी प्रदान किया गया। इससे क्रान्तिकारी नेताओं को बहुत क्रोध आया। उन्होंने जनता से निवेदन किया कि राजा को कर मत दो। मार्च १९०६ में ड्यूमा के लिये निर्वाचन हुआ। इस निर्वाचन में वैधानिक प्रजातन्त्रीय दल (Constitutional Democrats–Cadets) को बहुमत प्राप्त हुआ। यह पार्टी बोल्शेविक तथा मेन्शेविक पार्टी की अपेक्षा नम्र थी।

यदि १९०५ में नेताओं ने मिलकर कार्य किया होता तो १९१७ की क्रान्ति न होती और राजा की तानाशाही आगे न बढ़ती। अन्त में विट ने त्याग-पत्र दे दिया और इसके स्थान पर गोरमिकिन (Goremykin) प्रधान मन्त्री बनाया गया।

प्रथम ड्यूमा (१९०६ ई०)

इस ड्यूमा का प्रथम अधिवेशन १० मई १९०६ को आरम्भ हुआ। इसने जनतन्त्रात्मक ढंग से कार्य करना प्रारम्भ किया। इसने बहुत से राजनीतिक बन्दियों को मुक्त करा दिया। इसने निम्न माँगें प्रस्तुत कीं जिससे जार के साथ इनका संघर्ष हो गया—

१. साम्राज्य परिषद् (Council of Empire) के स्वरूप में सुधार हो। लोकसभा (Duma) के बिलों को रद्द करने का अधिकार उससे छीन लिया जाय। मन्त्री राजा के स्थान पर ड्यूमा के प्रति उत्तरदायी हों।

२. फौजी कानून हटा दिया जाय। मृत्यु-दण्ड समाप्त कर दिया जाय।

३. सरकार, सामन्तों तथा मठों के पास जो भूमि है, वह किसानों को दे दी जाय।

मन्त्रियों तथा साम्राज्य परिषद् के सदस्यों ने इन माँगों का विरोध किया। फलतः २२ जुलाई १९०६ को राजा ने प्रथम ड्यूमा को भंग कर दिया। इस प्रकार प्रथम ड्यूमा को अपने उद्देश्यों में सफलता न मिली। इसका प्रमुख कारण यह था कि प्रतिक्रियावादियों का संगठन बहुत दृढ़ था। इसके विपरीत आन्दोलनकारी संगठित नहीं थे; वे कई दलों में बंटे हुए थे—

१. आक्टोब्रिस्ट—ये नरम दल के व्यक्ति थे। ये राजा की अक्तूबर की घोषणा के सुधारों से संतुष्ट थे।

२. कैडेटपार्टी—ये वैधानिक प्रजातन्त्र के समर्थक थे। ये सामन्तों की भूमि को किसानों में विभाजित करना चाहते थे।

३. कुछ सदस्यों पर समाजवाद का प्रभाव था।

इस प्रकार विचारों में मतभेद होने के कारण ये प्रतिक्रियावादियों का डटकर मुकाबला न कर सके। क्रान्तिकारियों की इस फूट से सरकार ने लाभ उठाया। ड्यूमा के कुछ सदस्यों ने जनता से यह अपील की कि वे सरकार को कर न दें। सरकार ने इन सदस्यों को कठोर दण्ड दिया और मताधिकार से वंचित कर दिया। सरकार का रुख बहुत कठोर हो गया। साधारण डकैतियों अथवा अधिकारियों का अपमान करने पर भी मृत्यु-दण्ड दिया जाने लगा। लगभग ६०० व्यक्तियों को फाँसी के तख्ते पर लटका दिया गया। एक वर्ष के अन्दर ही लगभग ३५ हजार व्यक्तियों को देश से निर्वासित कर दिया गया।

द्वितीय ड्यूमा (१९०७ ई०)

५ मार्च, १९०७ को द्वितीय ड्यूमा का अधिवेशन हुआ। परन्तु शीघ्र ही उसका मन्त्रियों से मतभेद हो गया। गोरमिकेन के स्थान पर स्टॉलिपिन नामक व्यक्ति को प्रधान मन्त्री बनाया गया। सरकार ने ड्यूमा के १८ सदस्यों को राजद्रोही घोषित कर कैद कर लिया। इससे असंतोष बहुत बढ़ गया। सरकार की कटु आलोचना की जाने लगी। जनता ने भी जार का विरोध किया। फलतः १६ जून १९०७ को जार ने द्वितीय ड्यूमा को भी भंग कर दिया। सितम्बर के महीने में नये चुनाव करने की घोषणा की गई। एक नया चुनाव कानून भी पास किया गया। इसके द्वारा मताधिकार बहुत सीमित कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप निर्वाचन का एकमात्र अधिकार सामन्तों के हाथ में पहुच गया।

तृतीय ड्यूमा (१९०७–१९१४)

तृतीय ड्यूमा का निर्वाचन संकुचित मताधिकार प्रणाली के आधार पर हुआ। इसमें जमींदारों का बहुमत रहा। इसस ड्यूमा तथा राजा में विरोध नहीं हुआ। १४ नवम्बर १९०७ को इसका प्रथम अधिवेशन हुआ। प्रतिक्रियावादियों का बहुमत होने के कारण यह राजा की आज्ञा के अनुसार कार्य करती रही। इससे कृषकों को भू-स्वामियों की पंचायतों से मुक्त कर दिया और उनको भूमि का स्वामी बना दिया।

पुनः प्रतिक्रिया की लहर—सर्वप्रथम १९०५ में मजदूरों ने संगठित रूप से जारों का विरोध किया। यद्यपि इसमें सरकार को सफलता मिली और आन्दोलन को दबा दिया गया; परन्तु इससे सरकार की प्रतिष्ठा को बहुत आघात लगा। समस्त संसार को जार की निर्बलता का आभास हो गया।

१९०५ की क्रान्ति के असफल होने पर पुनः प्रतिक्रिया आरम्भ हो गई। तृतीय ड्यूमा का निर्वाचन भी सीमित मताधिकार के आधार पर हुआ था। फलतः इसमें सामन्तों तथा प्रतिक्रियावादियों का बहुमत हो गया। इन प्रतिक्रियावादियों का नेता जार का प्रधान मन्त्री स्टॉलिपिन (Stolypin) था। यह बहुत क्रूर तथा अत्याचारी था। प्रारम्भ में यह गृह-मन्त्री था। प्रथम ड्यूमा को भंग करा कर इसने एक

प्रकार से १६०५ की क्रान्ति का ही अन्त कर दिया। निर्वाचन कानून बदलने तथा मताधिकार सीमित करने में उसका पूरा-पूरा हाथ था। उसने आन्दोलनकारियों को दबाने के लिये पुलिस को विशेषाधिकार प्रदान किये। समाजवादियों को दण्डित कर साइबेरिया के मैदानों में भेज दिया। आन्दोलनकारियों को मृत्यु-दण्ड दिया गया। ड्यूमा का शक्ति का अन्त कर उसका क्रान्तिकारी स्वरूप समाप्त कर दिया गया और उसको नाममात्र की सभा बना दिया गया। किसानों को क्रान्ति से अलग करने के लिये उन्हें मीर के अधिकार से मुक्त कर उनको भूमि का स्वामी बना दिया गया। इन कार्यों से स्टालिपिन का विरोध बहुत बढ़ गया। अन्त में एक यहूदी वकील ने उसकी हत्या कर दी। परन्तु उसकी मृत्यु के बाद भी प्रतिक्रियावाद का अन्त नहीं हुआ। इस समय क्रान्ति की स्मृति में एकमात्र निर्बल ड्यूमा ही अवशेष थी और उसके हाथ में कोई विशेष शक्ति न थी। परन्तु यह बढ़ता हुआ असंतोष आगामी क्रान्ति का सूचक था। किसी विद्वान् ने ठीक कहा है कि यदि १६०५ की क्रान्ति सफल हो जाती तो १६१७ की क्रान्ति न होती और राजा की तानाशाही आगे न बढ़ती। लिप्सन महोदय ने ठीक ही कहा है कि 'जार की अन्धी सरकार ने समय को नहीं पहचाना। उसने अवसर को हाथ से खो दिया। फलतः सुधार आन्दोलन क्रान्तिकारी हो गया तथा आगे चलकर उसने जार के अस्तित्व को ही समाप्त कर दिया। रूसी सामाजिक व्यवस्था को भी उसने एक नई दिशा में परिवर्तित कर दिया।'

विदेशी नीति

(१) सन् १८६५ में निकोलस द्वितीय ने फ्रांस से सन्धि कर ली। इस सन्धि का उद्देश्य ब्रिटेन तथा जर्मनी से रक्षा करना था। परन्तु योरप दो गुटों में विभाजित हो गया। दोनों गुट अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण में अपार धन-राशि व्यय करने लगे।

(२) **प्रथम हेग सम्मेलन**—२४ अगस्त १८६८ में निकोलस द्वितीय ने हेग में एक सम्मेलन बुलाया। इसका उद्देश्य राष्ट्रों के बढ़ते हुए मतभेद को दूर करने तथा अस्त्र-शस्त्र के निर्माण में व्यय कम करने का था। इस सम्मेलन में योरप, एशिया तथा अमेरिका के देशों के प्रतिनिधि आए। विभिन्न राष्ट्रों के प्रतिनिधियों की संख्या १०० थी। यह अधिवेशन मई १८६६ में हुआ। इस सम्मेलन ने निम्न निर्णय किए—

(i) अस्त्र-शस्त्रों की वृद्धि मानव के लिए विनाशकारी है। अतः उनकी वृद्धि पर पाबन्दी लगा दी जाय; परन्तु जर्मनी के प्रतिनिधि इससे सहमत नहीं हुए। फिर भी सब प्रतिनिधियों ने मिल कर सैनिक शक्ति के विस्तार को रोकने के लिए एक प्रस्ताव पास किया।

(ii) अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों के समाधान के लिए एक मध्यस्थ न्यायालय की स्थापना की कई।

(iii) युद्ध-अपराधों को कम करने के लिये कुछ अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का निर्माण किया गया।

(iv) इस प्रकार के सम्मेलन समय-समय पर होते रहा करेंगे ।

यद्यपि इस सम्मेलन का उद्देश्य बहुत पवित्र था, परन्तु फिर भी उसको सफलता न मिली ।

(३) **रूस-जापान युद्ध**—इस समय रूस तेजी के साथ एशिया में अपना विस्तार कर रहा था । वह चीन पर अपना प्रभाव स्थापित करना चाहता था । उधर जापान भी चीन में अपना प्रभाव स्थापित करना चाहता था । फलतः १९०५ में दोनों में युद्ध प्रारम्भ हो गया । रूस इस युद्ध में पराजित हो गया । पोर्टमाउथ की सन्धि के अनुसार रूस ने कोरिया पर जापान का प्रभाव मान लिया और मंचूरिया पर चीन का प्रभाव स्वीकार कर लिया । रूस ने पोर्टमाउथ का बन्दरगाह, लियोतुङ्ग का प्रायःद्वीप और सखालीन द्वीप का कुछ भाग जापान को दे दिया ।

(४) **इङ्गलैंड से समझौता**—सन् १९०७ में निकोलस द्वितीय ने इङ्गलैंड से समझौता कर लिया । इसके अनुसार निम्न निर्णय किये गये :—

(i) दोनों देशों ने यह स्वीकार किया कि वे तिब्बत की सीमाओं की रक्षा करेंगे तथा उसके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करेंगे । तिब्बत नाममात्र के लिये चीन के अधीन माना गया । इन दोनों देशों में से कोई भी तिब्बत के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित नहीं करेगा । आवश्यकतानुसार दोनों देश उसके नाम मात्र के स्वामी चीन के द्वारा ही उससे वार्तालाप करेंगे ।

(ii) रूस ने यह वायदा किया कि वह अफगानिस्तान को अपने प्रभाव-क्षेत्र में नहीं मानेगा । वह आवश्यकता पड़ने पर अफगानिस्तान से इङ्गलैंड के माध्यम द्वारा ही वार्ता करेगा ।

(iii) फारस को रूस तथा इंगलैंड ने अपने प्रभाव-क्षेत्र में विभाजित कर लिया ।

यह एक सुरक्षात्मक सन्धि थी; परन्तु जर्मनी में इसकी भयंकर प्रतिक्रिया हुई । जर्मन सम्राट् विलियम द्वितीय ने कहा कि हमको चारों ओर से घेरा जा रहा है ।

(५) **द्वितीय हेग सम्मेलन**—निःशस्त्रीकरण की समस्या पर विचार करने के लिये हेग में द्वितीय सम्मेलन बुलाया गया । इसमें २१ योरप के, १९ अमेरिका के तथा ४ एशिया के देशों ने भाग लिया । इंगलैंड के प्रधान मन्त्री ने निःशस्त्रीकरण का प्रस्ताव प्रस्तुत किया; परन्तु जर्मनी ने उसका घोर विरोध किया । इन सम्मेलन में यूरोप के राष्ट्रों की गुटबन्दी स्पष्ट दिखाई दे गई । एक गुट में जर्मनी तथा आस्ट्रिया थे, दूसरे गुट में इंगलैंड, रूस तथा फ्रांस थे । फलतः पारस्परिक मतभेद के कारण यह सम्मेलन भी असफल हो गया ।

(६) **युद्ध का उत्तरदायित्व**—पूर्वी प्रश्न पर रूस और आस्ट्रिया की शत्रुता बढ़ रही थी । उधर रास्ट्रिया तथा सर्विया की शत्रुता बढ़ रही थी । रूस सर्विया के प्रति सहानुभूति रखता था । फलतः जब आस्ट्रिया तथा सर्विया का युद्ध आरम्भ हुआ तो रूस ने सर्विया का साथ दिया । इस पर जर्मनी ने आस्ट्रिया का साथ दिया । इस प्रकार यूरोप में प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ हो गया । प्रारम्भ में ब्रिटेन तटस्थ रहा और

दोनों दलों को समझाने की चेष्टा करता रहा। परन्तु अन्त में बेल्जियम की तटस्थता के प्रश्न पर वह भी युद्ध में सम्मिलित हो गया।

चीन-जापान युद्ध (१८९४–९५)—चीन का राजा बहुत निर्बल था। इससे पड़ौसी देश उस पर अधिकार करना चाहते थे। कोरिया जो नाममात्र के लिए चीन के अधीन था, उस पर जापान अधिकार करना चाहता था। इससे वह प्रशान्त महासागर का भी प्रयोग कर सकता था। ब्लाडीवोस्टक में रूसी जहाजी बेड़े पर दृष्टि रखने के लिए कोरिया पर अधिकार करना आवश्यक था। रूस भी इधर अपना विस्तार कर रहा था। अतः जापान को भय था कि कहीं रूस कोरिया पर अधिकार न कर ले। यह प्रदेश लकड़ी के उत्पादन के लिए भी बहुत प्रसिद्ध था। इसलिए जापान शीघ्रतापूर्वक इस प्रदेश पर अपना अधिकार करना चाहता था। कोरिया का शासन बहुत अव्यवस्थित था। जापान ने कोरिया को शासन में सुधार करने के लिये जोर दिया, परन्तु वहाँ के राजा ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। अतः जापान को भय हुआ कि यदि इस अव्यवस्था का लाभ उठा कर रूस ने उस पर अधिकार कर दिया तो उसका देश तथा समुद्र खतरे में पड़ सकता है। फलतः उसने कोरिया पर आक्रमण कर दिया। नाममात्र के लिए कोरिया चीन के अधीन था। फलतः चीन ने भी कोरिया की सहायता करते हुए जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। जापान कोरिया और दक्षिणी मंचूरिया पर अधिकार करके पेकिंग की ओर बढ़ने लगा। राजधानी को खतरे में पड़ते देखकर १८९५ में चीन ने जापान से शिमोनोशेकी की सन्धि कर ली।

शिमोनोशेकी की सन्धि—इस सन्धि की निम्न शर्तें थीं :—

(१) कोरिया को स्वतन्त्र कर दिया गया। अतः अब चीन कोरिया में हस्तक्षेप नहीं कर सकता था। जापान ने भी वायदा किया कि वह कोरिया में हस्तक्षेप नहीं करेगा।

(२) लियातुंग का प्रायद्वीप, पोर्ट आर्थर का बन्दरगाह तथा फारमूसा का द्वीप चीन ने जापान को दे दिये।

(३) चीन ने जापानी व्यापारियों को अनेक सुविधायें प्रदान कीं।

(४) चीन ने जापान को भारी मात्रा में युद्ध का हर्जाना देने का वायदा किया।

इस प्रकार इस युद्ध से जापान को कई लाभ प्राप्त हुए। परन्तु मित्र राष्ट्रों ने हस्तक्षेप कर जापान का विरोध किया। विरोध करने वाले देशों के नाम इस प्रकार हैं–

रूस—जापान की इस विजय से रूस घबरा गया। वह यह नहीं चाहता था कि कोरिया पर जापान अधिकार कर ले, क्योंकि इससे रूस का ब्लाडीवोस्टक नामक बन्दरगाह खतरे में पड़ जाता। अतः उसने जापान के कार्य का विरोध कर पोर्ट आर्थर के बन्दरगाह तथा लियोतुंग प्रायद्वीप पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार रूस ट्रांस-साइबेरियन रेलवे के क्षेत्र में बना रहा। उसने चीन से आज्ञा लेकर चीन में एक रूसी बेंक की स्थापना की।

फ्रांस—रूस का मित्र होने के कारण फ्रांस ने भी जापान का विरोध किया। इसके बदले में उसने इन्डोचायना के आस-पास के प्रदेश पर, जो चीन के अधिकार में था, वहाँ फ्रांस ने खानों का उपयोग करने का अधिकार प्राप्त कर लिया। अनाम से चीन तक रेलवे बनाने का अधिकार भी उसको प्राप्त हो गया।

जर्मनी—जर्मनी का सम्राट् विलियम द्वितीय जापान की नवोदित शक्ति से घबराता था। इसके साथ-साथ वह रूस को अपना मित्र बनाने की भी चेष्टा कर रहा था। वह अपने व्यापार तथा नौ-सेना के विस्तार के लिए पूर्व में किसी बन्दरगाह पर अधिकार करना चाहता था। फलतः उसने भी जापान के कार्य का विरोध किया। इसलिये उसको शान्तुंग का प्रदेश दे दिया गया।

इंगलैंड—इंगलैंड को वी-हाई-वी की (Wei-hai-Wei) का द्वीप दे दिया गया।

इस प्रकार चीन को पराजित कर जापान ने जो अधिकार प्राप्त किये थे, वे मित्र राष्ट्रों ने उससे छीन लिए। इससे जापान को पूरा लाभ नहीं हुआ। अतः जापान समझ गया कि अपनी योजनाओं को सफल बनाने के लिये उसको किसी शक्तिशाली मित्र की आवश्यकता है। इस समय एकमात्र इंगलैंड ही ऐसा देश था, जिसने जापान का सबसे कम विरोध किया था। इसलिये उसने इंगलैंड से मित्रता करने का निश्चय किया। मंचूरिया तथा कोरिया पर रूस तथा जापान दोनों ही अधिकार करना चाहते थे। इससे इन दोनों देशों का युद्ध होना निश्चित था। जापान अकेले रूस को तो पराजित कर सकता था; परन्तु रूस अकेला नहीं था। उसके साथ कई अन्य देश थे। अतः इन सब देशों के सम्मिलित विरोध का सामना जापान नहीं कर सकता था। अतः उसको किसी शक्तिशाली मित्र की आवश्यकता थी। इसके लिए इंगलैंड उपयुक्त था।

१९वीं शताब्दी तक इंगलैंड शानदार पार्थक्य की नीति का पालन करता रहा। परन्तु फशोदा की घटना तथा बोअर युद्ध के समय वह भली प्रकार समझ गया था कि बिना किसी मित्र के उसका कार्य नहीं चल सकता।

रूस इंगलैंड का बहुत बड़ा शत्रु था। उसने अफगानिस्तान तक अपनी सीमाओं का विस्तार कर लिया था। इससे अफगानिस्तान, फारस तथा तिब्बत के लिए खतरा बढ़ गया था। इससे सुदूरपूर्व (Far East) में रूसी जहाजी बेड़े से प्रशान्त महासागर में खतरा उत्पन्न हो गया था। एकमात्र जापान ही प्रशान्त महासागर में इंगलैंड की रक्षा कर सकता था।

इसके अतिरिक्त इंगलैंड जर्मनी की बढ़ती हुई नौ-शक्ति से भी घबरा रहा था। जर्मनी की सामुद्रिक शक्ति का सामना करने के लिए वह अपना अधिकांश जहाजी बेड़ा उत्तरी सागर में रखना चाहता था। परन्तु जब तक उसका कोई मित्र राज्य प्रशान्त महासागर की रक्षा का भार अपने-अपने ऊपर न ले ले तब तक वह वहाँ से अपना जहाजी बेड़ा नहीं हटा सकता था। सन् १८८२ में जर्मनी ने आस्ट्रिया

तथा इटली के साथ सन्धि करके शक्ति संतुलन को भंग कर दिया था। इससे इंगलैंड भी जापान की ओर झुका।

इन सब परिस्थितियों को देख कर इंगलैंड समझ गया कि अब शानदार पृथक्त्व (Splendid Isolation) की नीति का परित्याग किये बिना कार्य नहीं चल सकता। अतः पहले उसने जर्मनी के साथ मित्रता करने के लिये हाथ बढ़ाया। परन्तु वहाँ से निराश होकर उसने १९०२ में जापान से सन्धि कर ली।

आंग्ल जापानी सन्धि (सन् १९०२)—इस सन्धि के अनुसार निम्नलिखित बातें तय की गईं:—

(१) दोनों देशों ने वायदा किया कि वे कोरिया से पूर्व स्थिति (Status Quo) बनाये रक्खेंगे।

(२) जापान ने स्वीकार किया कि चीन में अंग्रेजों के हित हैं और इंगलैंड ने चीन में जापानी हितों को स्वीकार किया। अतः दोनों देश पारस्परिक हितों की रक्षा के लिये एक दूसरे की सहायता करेंगे।

(३) वे किसी भी देश से पृथक्-पृथक् सन्धि नहीं करेंगे। वे आवश्यकतानुसार सम्मिलित रूप से ही सन्धि करेंगे।

(४) यदि दोनों देशों में से किसी एक पर कोई अन्य देश आक्रमण करेगा तो दूसरा तटस्थ रहेगा।

(५) यदि कोई दो देश मिल कर इनमें से किसी एक पर भी आक्रमण करें तो दूसरा अपने मित्र की सहायता करेगा।

(६) यह सन्धि ५ वर्ष तक रहेगी।

सन् १९०५ में इस सन्धि में निम्न संशोधन किये गये:—

(१) यदि एक भी देश इनमें से किसी भी एक देश पर आक्रमण करेगा तो दूसरा अपने मित्र की सहायता करेगा।

(२) यह सन्धि १० वर्ष तक रहेगी।

सन्धि का महत्व—इस सन्धि का इतिहास में बहुत महत्व है। दोनों देशों को इससे बहुत लाभ हुआ। ऐसा कहा जाता है कि इतिहास में कोई भी ऐसी सन्धि नहीं है, जिससे दोनों पक्षों को इतना अधिक लाभ पहुंचा हो, जितना कि इस सन्धि से। जापान अब रूस के साथ सफलतापूर्वक युद्ध कर सकता था। यदि फ्रांस रूस की सहायता करता तो इंगलैंड जापान की सहायता करता। जापान अब पोर्ट आर्थर तथा कोरिया पर अधिकार कर सकता था। जापान की गणना अब बड़ी शक्तियों में होने लगी। प्रशान्त महासागर अब सुरक्षित हो गया। वहाँ से इंगलैण्ड अपना जहाजी बेड़ा हटा कर जर्मनी के विरुद्ध उत्तरी सागर (North Sea) में रख सकता था। इस सन्धि के फलस्वरूप रूस के विस्तार पर नियन्त्रण हो गया। भारत के ऊपर यदि रूस आदि कोई देश आक्रमण करता तो जापान अंग्रेजों की सहायता करता। इस प्रकार इंगलैंड ने अपना एकाकीपन छोड़ दिया।

इस सन्धि में योरोप की गुटबन्दी में वृद्धि हुई। इससे १८९३–९४ की रूसी-फ्रांसीसी सन्धि और मजबूत हो गई। इंगलैंड ने १९०४ में फ्रांस के साथ तथा १९०७ में रूस के साथ सन्धि कर ली। इस प्रकार योरोप दो गुटों में बंट गया।

रूसी-जापानी युद्ध (१९०४–१९०५)—रूस तथा जापान के मध्य युद्ध होने के निम्न कारण थे :—

(१) इस युद्ध के होने का प्रमुख कारण १९०२ की ऐंग्लो-जापानी सन्धि थी। किसी विद्वान् ने ठीक कहा है कि यदि अंग्रेजी जापानी सन्धि न हुई होती तो रूसी जापानी युद्ध भी न हुआ होता।

(२) सन् १८९४–९५ का चीन-जापान युद्ध भी इसके लिए उत्तरदायी था। यद्यपि जापान इस युद्ध में सफल हुआ, परन्तु वह मित्र राष्ट्रों के हस्तक्षेप के कारण अपनी विजय के पूरे लाभ न उठा सका। रूस, इंगलैंड तथा फ्रांस के हस्तक्षेप के कारण लियोतुंग का प्रायद्वीप जापान से छीन लिया गया। पोर्टआर्थर का बन्दरगाह भी उससे ले लिया गया। कालान्तर में रूस ने इस पर अधिकार कर लिया। फलतः जापान रूस से बहुत अधिक नाराज हो गया।

(३) मंचूरिया भी दोनों देशों के मध्य झगड़े का एक प्रमुख कारण था। मंचूरिया में भारी मात्रा में अन्न उत्पन्न होता था। इससे वह एशिया का अन्न-भण्डार कहलाता था। वहाँ पर लकड़ी पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न होती थी। इसके अतिरिक्त वहाँ अनेक उपयोगी खानें थीं। इससे दोनों ही देश उस पर अधिकार करना चाहते थे। फलतः दोनों में संघर्ष होना अवश्यम्भावी था।

रूस की ट्रांस-साइबेरियन रेलवे इसी प्रदेश से होकर गुजरती थी। उसकी रक्षा के लिये बहुत से सैनिक तथा रूसी पदाधिकारी मँचूरिया में रहते थे। प्रशान्त महासागर के तट पर पोर्टआर्थर बन्दरगाह में रूसियों ने अपना जहाजी बेड़ा इकट्ठा कर रक्खा था। इससे जापान को बहुत खतरा था। इन कारणों से रूस तथा जापान के मध्य संघर्ष होने की काफी गुंजाइश थी।

(४) कोरिया पर रूस तथा जापान दोनों ही अपना प्रभाव स्थापित करना चाहते थे। फलतः कोरिया के सम्बन्ध में दोनों की महत्वाकांक्षायें परस्पर-विरोधी थीं।

(५) रूस के पास कोई भी ऐसा समुद्र तट न था, जहाँ वह वर्ष पर अपना व्यापार कर सके। उसका उत्तरी तथा पश्चिमी समुद्रतट जाड़ों में बर्फ से आच्छादित हो जाता था। फलतः रूस प्रशान्त महासागर पर अधिकार करना चाहता था; परन्तु जापान इसका विरोधी था।

(६) व्यापार के हेतु समुद्र-तट प्राप्त करने के लिए ही उसने क्रीमिया युद्ध (१८५४–५६) में भाग लिया था। परन्तु इसमें भी वह असफल रहा। अतः बाल्कन प्रदेश में असफल होकर वह प्रशान्त महासागर की ओर बढ़ा। परन्तु इधर बढ़ने का अर्थ था जापान से संघर्ष।

घटनायें

एक दिन कोरिया में रूस के कुछ व्यक्ति यालु नदी के समीप लकड़ी काट रहे थे। किसी साधारण सी बात पर रूसी तथा जापानी सैनिकों में कुछ झगड़ा हो गया। उस झगड़े में कुछ रूसी सिपाही मारे गये। इस पर रूस ने अपनी सेनायें भेज दीं। जापान ने इसका विरोध किया। अन्त में जापान ने भी युद्ध की घोषणा कर दी। जापान के मध्य युद्ध प्रारम्भ हो गया। रूस के यातायात के साधन बहुत खराब थे। उसका सेना का संगठन बहुत शिथिल था। परन्तु जापान युद्ध के लिये पहले से ही तैयार था। उसका जहाजी बेड़ा बहुत शक्तिशाली था। चीन से मिले हुये हर्जाने के धन से उसने सेना का खूब संगठन कर लिया था। उसके गुप्तचरों ने मंचूरिया तथा कोरिया की सारी सूचनायें जापान को दे रक्खी थीं। मुकडन के भयंकर युद्ध के बाद कोरिया पर जापान का अधिकार हो गया। रूसी जहाजी बेड़ा जिस समय बाल्टिक सागर से गुजर रहा था तो जापानी जहाजी बेड़े ने उस पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त की। इस समय तक दोनों देश युद्ध करते-करते थक गये थे। फलत: अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट की मध्यस्थता से दोनों देशों में पोर्ट्समाउथ नामक स्थान पर १९०५ में सन्धि हो गई।

पोर्ट्समाउथ की सन्धि (Treaty of Portsmouth)—इस सन्धि के अनुसार निम्न बातें निश्चित की गयीं—

१. कोरिया पर जापान का प्रभाव स्वीकार कर लिया गया।

२. रूस ने मंचूरिया को खाली करने का वायदा किया।

३. रूस से जापान को लियोतुङ्ग प्रायद्वीप, पोर्टआर्थर का बन्दरगाह तथा सखालिन द्वीप का दक्षिणी भाग प्राप्त हुआ।

युद्ध का प्रभाव—१. यह युद्ध विश्व-इतिहास के निर्णायक युद्धों में से एक था। इसके परिणामस्वरूप विश्व की महाशक्तियों में एक अन्य शक्ति की वृद्धि हो गई। जापान बहुत शक्तिशाली हो गया। साम्राज्यवादी देशों में उसकी गणना होने लगी। विश्व की महान् शक्तियों में उसको स्थान मिल गया।

२. जापान एशिया के देशों का नेता माना जाने लगा। एशिया के पिछड़े देशों के लिये वह एक आदर्श बन गया। भारत के स्वतन्त्रता-संग्राम को इससे बहुत प्रोत्साहन मिला। चीन में भी विदेशियों को निकालने के लिये आन्दोलन होने लगे। अब वह विदेशियों के बढ़ते हुए प्रभाव तथा हस्तक्षेप को सहन करने के लिये तैयार न था। कालान्तर में वहां जनतन्त्रात्मक सरकार की स्थापना हुई।

३. इस युद्ध से रूस के जारों तथा सेना का खोखलापन प्रकट हो गया। इससे वहाँ १९०५ में क्रान्ति हो गई।

४. कोरिया जापान के प्रभाव-क्षेत्र में मान लिया गया। १९१० में उसने कोरिया पर अधिकार कर लिया।

५. इस युद्ध के पश्चात् मंचूरिया की समस्या का समाधान नहीं हुआ। इसके

लिये रूस तथा जापान में बराबर झगड़ा चलता रहा। अन्त में १९३१ में जापान ने उस पर अधिकार कर लिया।

६. इस युद्ध के पश्चात् सुदूर पूर्व (Far East) में रूस का विस्तार रुक गया। अतः उसने पश्चिमी एशिया की ओर बढ़ना आरम्भ किया। इससे पूर्व अंग्रेजी साम्राज्य के लिए खतरा उत्पन्न हो गया।

७. पराजित होने के पश्चात् रूस ने मित्र की तलाश करनी प्रारम्भ की। प्रारम्भ में उसने जर्मनी की ओर हाथ बढ़ाया। निकोलस द्वितीय तथा विलियम द्वितीय ने एम गुप्त समझौता कर लिया जो इतिहास में बजारको पैक्ट (Bjorko Pact) कहलाता है। इसके अनुसार यह तय हुआ कि यदि कोई अन्य देश म से किसी एक पर भी आक्रमण करे तो दूसरा देश उसकी सहायता करेगा। परन्तु फ्रांस ने इस समझौते का विरोध किया। निकोलस द्वितीय के मन्त्री भी इससे सहमत नहीं हुए। अन्त में यह समझौता भंग कर दिया गया। रूस को मित्र की परमावश्यकता थी। अतः उसने १९०७ में इंगलैंड से समझौता कर लिया। फलतः इस युद्ध के बाद मैत्री-संघ (Entente Cordiale) की स्थापना हुई।

८. इस युद्ध के फलस्वरूप चीन को बहुत अपमान सहन करना पड़ा। वहाँ विदेशी हस्तक्षेप बहुत अधिक बढ़ गया। इससे वहाँ असंतोष की भी वृद्धि हुई। फलतः वहाँ क्रान्तिकारी दलों का आन्दोलन और तीव्र गति से होने लगा।

इस प्रकार रूस तथा जापान के युद्ध का इतिहास में बहुत महत्व है। सिबिल महोदय के शब्दों में यह विश्व-इतिहास के निर्णायक युद्धों में से था और इसके परिणामस्वरूप साम्राज्यवादी जापान का उदय हुआ और उसकी गणना विश्व की महान् शक्तियों में भी की जाने लगी।

Questions (M A.)

1. 'The reign of Alexander III was not stagnant, but highly formative and unconsciously the monarch was letting loose forces which were to destroy the existing orders'. Discuss.
2. Give a historical background of the Anglo-Japanese Alliance of 1902 and trace its influence on the course of the subsequent events in the Far East.
3. Discuss the importance of the Treaty of Portsmouth.
4. Discuss critically the causes and consequences of the Russo-Japanese War of 1905.
5. Describe briefly the origins of the Russo-Japanese War of 1904—5 and show how it affected the political situation in the Far East.

३

जर्मनी

बिस्मार्क का युग (१८७१–१८९०)

गृहनीति—नवीन युग, १८७१ का संविधान, संविधान के दोष, मूल्यांकन, बिस्मार्क की कठिनाइयाँ, कुल्चुर कैम्फ, समाजवाद से संघर्ष, बिस्मार्क के सुधार, संरक्षण औपनिवेशीकरण ।

विदेशी नीति—मूल सिद्धांत, बिस्मार्क की सन्धियाँ, तीन सम्राटों का संघ, द्विराज्य सन्धि, पुनराश्वासन की सन्धि, त्रिराज्य सन्धि, रूमानिया से सन्धि, इंगलैंड से सम्बन्ध, विदेशी नीति की समीक्षा, बिस्मार्क का पतन, मूल्यांकन ।

गृहनीति

नवीन युग—१८७१ से जर्मनी में एक नए युग का श्रीगणेश होता है। इस समय बिस्मार्क के गत आठ वर्षों के प्रयत्न के फलस्वरूप जर्मनी का एकीकरण पूर्ण हो गया था। १८७१ से १८९० तक का काल जर्मनी के इतिहास में 'बिस्मार्क के युग' के नाम से प्रख्यात है। इस काल का योरप के इतिहास में बहुत महत्व है। १८७० में नेपोलियन तृतीय के पराजित हो जाने के पश्चात् यूरोप की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में बहुत परिवर्तन हो गया था। इसके पश्चात् १८९० तक यूरोप में पेरिस के स्थान पर बर्लिन की प्रधानता रही। ऐसा कहा जाता है कि '१८७० के पश्चात् यूरोप ने अपनी मालकिन को खो दिया था और उसके स्थान पर उसका मालिक आ गया था।' इस समय तक जर्मनी का एकीकरण तो हो गया था, परन्तु बिस्मार्क को अभी उसका संगठन कर स्वामित्व प्रदान करना शेष था।

१८७१ का संविधान—जर्मनी एक संघ राज्य था। १८७१ में बिस्मार्क ने उसको एक नवीन संविधान दिया। उक्त संविधान की प्रमुख विशेषतायें निम्न प्रकार हैं :—

सम्राट्—संविधान में प्रमुख स्थान सम्राट् को दिया गया था। संविधान में सम्राट् के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया था। इस सम्बन्ध में यही अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रशा की परम्परा के अनुसार ही राजा उत्तराधिकारी होगा। संविधान में राजा की स्थिति बहुत महत्वपूर्ण थी। वह जर्मन संघ का अध्यक्ष था। अपने प्रधान मन्त्री की वह स्वयं ही नियुक्ति करता था। प्रधान मन्त्री उसी के प्रति उत्तरदायी होता था। विदेशी मामलों का निर्णय भी राजा ही करता था। विदेशी राजदूतों का भी वही स्वागत करता था। युद्ध की घोषणा करने तथा

युद्ध बन्द करने का भी उसी को अधिकार था। विधान सभा के अधिवेशन बुलाने तथा स्थगित करने का भी उसी को अधिकार था। इस प्रकार सम्राट् सर्वसत्ताधारी तथा निरंकुश था।

प्रधान मन्त्री—प्रधान मन्त्री चाँसलर कहलाता था। उसकी नियुक्ति सम्राट् द्वारा होती थी। सम्राट् के प्रति ही वह उत्तरदायी होता था। सम्राट की इच्छानुसार ही वह कार्य करता था। उसको पदच्युत करने का भी अधिकार सम्राट् को ही था। चाँसलर की शक्ति भी बहुत अधिक होती थी। उसकी सहायता के लिए सेक्रेटरी नियुक्त किए जाते थे। वह अपर हाउस का चेयरमैन होता था। वह दोनों भवनों में बैठ सकता था, भाषण दे सकता था तथा मतदान कर सकता था। प्रशा का प्रतिनिधि होने के कारण ही उसको ये विशेषाधिकार प्राप्त थे। बिस्मार्क प्रशा का प्रथम चांसलर नियुक्त किया गया था तथा १८९० तक यह अपने पद पर रहा था।

विधान सभा-विधान सभा में दो भवन थे, साम्राज्य परिषद् (Bundesrat) तथा लोकसभा (Reichstag) इन दोनों का क्रमशः वर्णन इस प्रकार है—

साम्राज्य परिषद (Bundesrat)—यह उच्च सदन था। इसमें राजाओं के प्रतिनिधि बैठते थे। विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या अलग-अलग थी। प्रतिनिधियों की संख्या इस प्रकार थी—

प्रशा	१७
बवेरिया	६
सेक्सनी	४
बर्टेमबर्ग	४
बाडेन	३
हेस	३

अन्य छोटे-छोटे राज्यों का एक-एक प्रतिनिधि होता था। इसके अधिवेशन गुप्त होते थे। इसके प्रतिनिधि अपने राजा की इच्छानुसार ही मतदान किया करते थे। इसमें प्रशा की स्थिति बहुत दृढ़ थी। इस भवन की स्थिति प्रजातन्त्र के सिद्धांतों के विरुद्ध थी। संविधान के संशोधन का भी इसी सभा को अधिकार था। संशोधन के विरोध में १४ मत होने पर भी संशोधन नहीं हो सकता था। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि १७ मत तो सदैव प्रशा के हाथ में थे ही। संघ के बजट को निश्चित करने का भी इसी को अधिकार था। आँडिट का कार्य भी इसी के द्वारा होता था। विभिन्न राज्यों से चुंगियों को यही इकट्ठा कराती थी। इसकी आज्ञा बिना सम्राट् युद्ध की घोषणा नहीं कर सकता था। इसकी आज्ञा लेकर ही सम्राट् निम्न सदन (Reichstag) को भंग कर सकता था। सन्धि के समय भी इसकी सलाह ली जाती थी। जज, राजदूत तथा सेना के उच्च-पदाधिकारियों की नियुक्ति भी इसी की सलाह से होती थी। यह अपील की अन्तिम अदालत थी। केन्द्र तथा संघ सरकारों के झगड़ों का निर्णय भी इसी के द्वारा होता था। कानूनों का प्रस्ताव

यही रखती थी। इसी की स्वीकृति से बिल कानून बनते थे। कानूनों में संशोधन करने का भी कार्य इसी का था। इसको अध्यादेश जारी करने का भी अधिकार था।

लोकसभा (Reichstag)—यह निम्न सदन था। यह जनता के प्रतिनिधियों की सभा थी। इसके सदस्यों की संख्या ३६७ तथा कार्यावधि ३ वर्ष थी। इसका निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होता था। बिल इसी सभा में प्रारम्भ होते थे तथा बाद में साम्राज्य-परिषद् में जाते थे। परन्तु कानून पास करने का अधिकार लोकसभा को नहीं था। यह अधिकार एकमात्र साम्राज्य-परिषद् को था। बजट पर भी लोकसभा में विचार होता था। परन्तु सेना-सम्बन्धी बजट कई वर्ष के लिए एक बार निश्चित कर दिया जाता था और उस पर प्रतिवर्ष मत नहीं लिया जाता था। नये कर लगाने के लिए लोकसभा का मत लिया जाता था; परन्तु पुराने करों की वसूली के सम्बन्ध में उनका कोई मत नहीं लिया जाता था। इस प्रकार धन सम्बन्धी मामलों में भी लोकसभा को पूर्ण अधिकार प्राप्त न थे। उसको सेना, रेल, डाक, तार तथा वाणिज्य आदि के सम्बन्ध में भी कानून बनाने का अधिकार था। परन्तु जनता की प्रतिनिधि सभा होने पर भी उसकी शक्ति नगण्य थी। उसको ब्रिटेन तथा फ्रांस की लोक सभाओं की भाँति अधिक शक्ति प्राप्त न थी।

न्यायपालिका—साम्राज्य की प्रधान न्यायपालिका संघीय सर्वोच्च न्यायपालिका (Supreme Court) था। देशद्रोह के मुकदमे सीधे सुप्रीम कोर्ट में जाते थे। राज्यों की अपील भी सुप्रीम कोर्ट में सुनी जाती थी। परन्तु यह न्यायालय सच्चे अर्थों में एक संघीय न्यायालय नहीं था। इसको कानूनों की व्याख्या करने का अधिकार प्राप्त न था।

संविधान के दोष—इस संविधान में निम्न दोष थे—

१. इसके अन्तर्गत केन्द्र को कानून बनाने की बहुत अधिक शक्ति दी गई थी। इससे केन्द्र बहुत अधिक शक्तिशाली हो गया था तथा राज्यों की स्थिति बहुत निर्बल थी।

२. कानून बनाने का कार्य बहुत दृढ़ था। परन्तु प्रशासन का कार्य शिथिल था, क्योंकि प्रशासन के लिए पदाधिकारी वर्ग का अभाव था। चांसलर के अतिरक्त सब पदाधिकारी स्टेट के थे।

३. राज्यों में समानता नहीं थी। उनके प्रतिनिधियों की संख्या में भी विभिन्नता थी।

४. संघ में प्रशा को सबसे अधिक शक्ति प्राप्त थी। एक प्रकार से समस्त जर्मनी को उसके अधीन कर दिया गया था।

५. चांसलर भी बहुत अधिक शक्तिशाली था; परन्तु सेना पर उसका अधिकार न था।

संविधान का मूल्यांकन—इस संविधान में अनेक दोष थे। कतिपय प्रमुख दोषों का हम ऊपर उल्लेख कर आए हैं; परन्तु इस सम्बन्ध में हमको इस बात का

ध्यान रखना चाहिये कि इस विधान का निर्माण बिस्मार्क ने किया था। उसका उद्देश्य जनता को उत्तरदायी शासन देना नहीं था। उसका उद्देश्य प्रशा को प्रधानता देना था। वह सम्पूर्ण जर्मनी को प्रशा में विलीन करना चाहता था।[1] साम्राज्य-परिषद् में प्रशा की प्रधानता थी। उसी के सदस्यों की संख्या सबसे अधिक थी। उसके सदस्यों की इच्छा के बिना संविधान में संशोधन नहीं हो सकता था। प्रशा का सम्राट् ही जर्मन संघ का सम्राट् था। प्रशा का प्रधान मन्त्री भी जर्मन संघ का प्रधान मन्त्री था। प्रधान मन्त्री साम्राज्य परिषद् का चेयरमैन भी होता था। कानून निर्माण में भी प्रशा की ही प्रधानता रहती थी। वास्तव में बिस्मार्क प्रशा का कट्टर पक्षपाती था। प्रशा के आधार पर ही उसने जर्मनी के एकीकरण को सम्भव बनाया था। दूसरे प्रशा क्षेत्रफल, जनसंख्या तथा आर्थिक आदि दृष्टिकोणों से भी अन्य राज्यों से बड़ा था। अतः प्रशा की प्रमुखता रहनी स्वाभाविक भी थी। इसके साथ-साथ बिस्मार्क ने जनता को प्रसन्न करने के लिए उनको वयस्क मताधिकार भी प्रदान कर दिया था और राज्यों को स्वशासन का अधिकार दे दिया था।

बिस्मार्क की कठिनाइयाँ—बिस्मार्क ने अपने प्रयास से जर्मनी का एकीकरण तो कर दिया था; परन्तु अभी उसके सम्मुख अनेक कठिनाइयाँ थीं। संक्षेप में बिस्मार्क की कठिनाइयों का निम्न प्रकार से वर्णन किया जा सकता है—

(१) यद्यपि फ्रांस को पराजित कर दिया गया था; परन्तु फिर भी बिस्मार्क को यह भय था कि अवसर मिलते ही फ्रांस प्रतिशोधात्मक युद्ध करेगा। अतः उसको फ्रांस के आक्रमण से देश की रक्षा करना था। इसके लिये उसने सन्धियों का जाल फैलाया। इसका विस्तारपूर्वक वर्णन बिस्मार्क की विदेश नीति के अन्तर्गत किया जायगा। इसके साथ-साथ उसने सेना के संगठन की ओर भी ध्यान दिया। समस्त राज्य में सैनिक सेवा अनिवार्य कर दी गई। सेना की संख्या ४ लाख निश्चित की गई। बिस्मार्क यह चाहता था कि सेना का व्यय भी एक ही बार निश्चित कर दिया जाय; परन्तु इसमें उसको सफलता न मिली। परन्तु फिर भी उसने यह धन-राशि सात वर्ष के लिए निश्चित करा दी। जिस समय बिस्मार्क को सेना के लिए धन की आवश्यकता होती थी तो वह युद्ध का भय दिखा कर धन-राशि स्वीकृत करा लिया करता था। वास्तव में इस समय जर्मन साम्राज्य सेना के ऊपर आधारित था। १८७५ में लोक सभा में भाषण देते हुए मोल्टके ने ठीक ही कहा था—'हमने छः महीने में जो कुछ प्राप्त किया है, उसकी रक्षा ५० वर्ष तक सशस्त्र रहने से ही हो सकती है।'

(२) जर्मनी में कुछ अल्पसंख्यक जातियाँ भी रहती थीं। इनकी सहानुभूति जर्मन साम्राज्य के साथ न थी। ये स्वतन्त्र होना चाहती थीं। इनकी संख्या इस प्रकार थी—पोल ३५० लाख, डेन १½ लाख तथा अल्सेस-लोरेन्स निवासी १८ लाख।

1. 'To consolidate Prussia in Germany and to consolidate the position of Germany in Europe.'

इन लोगों की सभ्यता तथा संस्कृति को नष्ट करने का पूर्ण प्रयत्न किया गया; परन्तु फिर भी ये बराबर जर्मन साम्राज्य का विरोध करते रहे। अल्पसंख्या में होने के कारण ये जातियाँ जर्मनी के लिए किसी प्रकार का खतरा नहीं बन सकीं। परन्तु फिर भी जर्मनी के लिए इनका विरोध एक समस्या बनी रही।

(३) जर्मन साम्राज्य में अनेक विभिन्नतायें थीं। देश में अनेक कानून थे। रेल तथा तार आदि की व्यवस्थायें भी एक न थीं। देश आर्थिक दृष्टिकोण से भी एक न था। अतः बिस्मार्क ने नेपोलियन कोड के अनुकरण पर समस्त देश में एक रेलवे प्रणाली, एक सिक्का तथा एक सैनिक व्यवस्था स्थापित की। समस्त देश में मार्क नाम का एक नया सिक्का चलाया गया। समस्त देश के लिए एक रीख बैंक (Reich Bank) की स्थापना की गई।

(४) बिस्मार्क का विरोध करने वाले अनेक दल लोक सभा में थे। समाजवादी दल बिस्मार्क का कट्टर विरोधी था। कालान्तर में बिस्मार्क को इससे भारी संघर्ष करना पड़ा था। यद्यपि प्रशा का जमींदार वर्ग सदैव बिस्मार्क का समर्थक रहा; परन्तु बिस्मार्क की चर्च के प्रति नीति से असन्तुष्ट होकर इन्होंने भी उसका विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। उदारवादी भी बिस्मार्क के सैनिकवाद के विरोधी थे। कैथोलिक लोग भी बिस्मार्क के घोर विरोधी थे। बिस्मार्क को इनसे भी संघर्ष करना पड़ा; परन्तु उसको इनके विरोध में सफलता नहीं मिली।

(५) **कुल्चुर कैम्फ**—बिस्मार्क का चर्च के साथ संघर्ष हुआ। इस संघर्ष को कुल्चुर कैम्फ (Battle for Civilisation) के नाम से पुकारा जाता है। इसे 'ब्लैक इण्टरनेशनल के विरुद्ध संघर्ष' का नाम भी दिया जाता है। निम्नलिखित कारणों से यह संघर्ष प्रारम्भ हुआ था :—

(१) प्रशा का राजवंश प्रोटेस्टेण्ट था। रोमन कैथोलिक चर्च इसका विरोधी था।

(२) प्रशा और आस्ट्रिया के संघर्ष में पोप तथा कैथोलिकों ने सदैव आस्ट्रिया का साथ दिया। १८६६ में जब प्रशा और आस्ट्रिया का युद्ध प्रारम्भ हुआ तो पोप ने आस्ट्रिया की विजय के लिए प्रार्थना की।

(३) पोप अपने को जर्मन राज्य से भी अधिक शक्तिशाली मानता था। उसने १८७० में Papal Infallibility के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। इसके अनुसार यदि कभी पोप और जर्मन राज्य में विरोध हो तो जर्मन नागरिकों को पोप का आदेश मानना चाहिये। कट्टर एकतन्त्रवादी बिस्मार्क को यह सिद्धान्त कभी भी स्वीकार न था। वह पोप को अपने नये जर्मन राज्य के लिये भारी खतरा समझता था। वह पोप को विदेशी समझता समझता था और अपनी राजनीति से बाहर रखना चाहता था। उसने कहा था—'It is the infallibility of the Pope which threatens the state. He arrogates to himself whatever secular rights he pleases...declares our laws null and void levies taxes...In a word.

no one in Prussia is so powerful as this foreigner' वह चर्च का अधिकार एकमात्र धार्मिक क्षेत्र में रखना चाहता था, राजनीतिक क्षेत्र में नहीं। उसने कहा था—'There is only one stand point for Prussia, constitutionally as well as politically, that of the Church's absolute liberty in matters ecclesiastical, and of determined resistance to her every encroachment upon state rights.'

(४) जर्मनी का कैथोलिक दल बड़ा शक्तिशाली था। वह पोप से प्रेरणा प्राप्त करता था और बिस्मार्क की नीति का सदैव विरोध करता था।

इन कारणों से बिस्मार्क ने कैथोलिक चर्च का दमन करने का निश्चय किया। उसकी चर्च-विरोधी नीति में निम्नलिखित कार्य उल्लेखनीय हैं—

(१) उसने Papal Infallability के सिद्धान्त का विरोध किया।

(२) उसने जर्मनी और पोप-राज्य के बीच विद्यमान कूटनीतिक सम्बन्ध को भंग कर दिया।

(३) पोप के कट्टर समर्थक जेसूट जर्मनी से बाहर निकाल दिये गये।

(४) उसने शिक्षा-संस्थाओं से कैथोलिक प्रभाव को नष्ट करने के लिये मई कानून (May Laws) पास कराये। इन्हें फाक कानून (Falk Laws) भी कहते हैं। फाक जर्मनी का शिक्षा-मन्त्री था। इसके अनुसार—

(अ) रोमन कैथोलिक चर्च द्वारा संचालित सभी स्कूल राज्य के नियन्त्रण में कर दिये गये।

(ब) अब धार्मिक शिक्षा एकमात्र जर्मन भाषा में दी जा सकती थी।

(स) पादरी-जीवन के लिये तैयारी कराने वाले सभी स्कूल बन्द कर दिये गये।

(द) जर्मन नागरिक तथा जर्मन स्कूल अथवा विश्वविद्यालय का ग्रेजुएट ही कैथोलिक चर्च का पदाधिकारी हो सकता था।

क) चर्च के प्रत्येक पदाधिकारी के लिये राज्य की मान्यता प्राप्त करना आवश्यक था।

(ख) अमान्य पदाधिकारी कोई भी धार्मिक कृत्य सम्पादित न कर सकते थे।

(ग) चर्च द्वारा धार्मिक बहिष्कार नहीं किया जा सकता था।

(घ) धार्मिक दण्ड के विरुद्ध राज्य के न्यायालयों में अपील की जा सकती थी।

(ङ) विरोध करने पर किसी भी स्थानीय चर्च की आर्थिक सहायता बन्द की जा सकती थी।

(च) विरोधी चर्च-पदाधिकारी राज्य द्वारा दण्डित किए जा सकते थे।

(छ) राज्य को चर्च के पदाधिकारियों को नियुक्त करने और पदच्युत करने का अधिकार था।

(ज) १८७५ में बिस्मार्क ने सभी मठों का दमन कर दिया।

पोप ने बिस्मार्क के इन कानूनों को अवैध घोषित किया और जर्मन कैथोलिकों को आदेश दिया कि वे उनका विरोध करें। इस प्रकार बिस्मार्क और पोप का संघर्ष तीव्र हो गया। बिस्मार्क ने घोषित किया कि मैं कैनोसा नहीं जाऊंगा, न तन से और न मन से।[1] वह एक ऐतिहासिक घटना की ओर उल्लेख कर रहा था। १०७७ में फ्रांस के सम्राट् हेनरी चतुर्थ और तत्कालीन पोप ग्रिगोरी सप्तम के बीच झगड़ा हुआ था। इस झगड़े में हेनरी को नीचा देखना पड़ा था और उसे क्षमा-याचना के लिए इटली के नगर कैनोसा में पोप के सामने आत्म-समर्पण करना पड़ा था। परन्तु बिस्मार्क ने घोषित किया कि मैं कभी भी पोप के सामने न झुकूंगा।

बिस्मार्क ने चर्च-विरोधी नियमों को बड़ी कठोरता से लागू किया। बहु-संख्यक बिशप और पादरी आदि पदच्युत कर दिये गये अथवा बन्दी बना लिये गये।

यह महत्व की बात है कि जर्मनी में ऐसे भी उदार कैथोलिक थे जो पोप के आत्यान्तिक विशेषाधिकारों, विशेषतया Papal Infallibility के सिद्धान्त, के विरोधी थे। इनका नेता डाक्टर डालिङ्गर था। इन लोगों ने इस संघर्ष में बिस्मार्क का साथ दिया।

परन्तु कट्टर कैथोलिकों ने बिस्मार्क के विरुद्ध मोर्चा संगठित किया। इनका नेता विण्डथार्स्ट था। यह कैथोलिक दल Centre Party के नाम से भी प्रख्यात है।

बिस्मार्क-विरोधी अन्यान्य दलों ने इस संघर्ष से लाभ उठाने का निश्चय किया। वे सब कट्टर कैथोलिक दल का समर्थन करने लगे। सम्राज्ञी भी बिस्मार्क की नीति की विरोधी थी। स्वयं सम्राट् भी इस धार्मिक गृह-युद्ध को देखकर भयभीत हो गया था। अनुदार दल कैथोलिकों के साथ मिल गया। अनेक प्रोटेस्टेन्ट भी कई कानूनों को अतिवादी समझने लगे। निर्वाचनों में कट्टर कैथोलिकों और उनके समर्थकों को अधिकाधिक सफलता मिलने लगी। १८७४ के निर्वाचन में उनकी संख्या ६३ से ६१ हो गई।

इसी समय जर्मनी में समाजवादियों ने अपना आन्दोलन प्रबल कर दिया। समाजवादी बिस्मार्क के घोर विरोधी थे। वे उसके एकतन्त्रवाद और सैनिकवाद की कटु आलोचना करते थे। उनमें न देशभक्ति थी और न जर्मन परम्पराओं के प्रति अनुराग। बिस्मार्क उन्हें कैथोलिकों से भी अधिक खतरनाक समझता था। अतः उसने कैथोलिकों को छोड़कर समाजवादियों का दमन करना प्रारम्भ किया। उसने अब कैथोलिकों के प्रति उदारता दिखाना प्रारम्भ कर दिया। उसके भाग्य से १८७८ में कट्टर पोप पायस नवें की मृत्यु हो गई थी। उसका उत्तराधिकारी लियो तेरहवां

1. 'I will not go to Canossa, either in body or in spirit.'

अधिक उदार था। उसने १८८० में बिस्मार्क के साथ समझौता कर लिया। जर्मनी और पोप-राज्य के बीच पुनः कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित हो गये। नये कानूनों का लागू करना बन्द कर दिया गया। कालान्तर में अनेक कानून रद्द भी कर दिये गये। इस संघर्ष के अन्त पर टिप्पणी करते हुए मैरियट महोदय ने लिखा है कि—'So Bismark went to Canossa, though by a slow and circuitous route, but he went there, and then described his journey as a compromise.'

समाजवाद से संघर्ष—यह संघर्ष 'रेड इण्टरनेशनल' के विरुद्ध संघर्ष भी कहलाता है। जर्मनी में काफी औद्योगिक उन्नति हो चुकी थी। औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप देश में पूंजीवाद का उदय हुआ था। परन्तु मजदूरों की दशा काफी असंतोषजनक थी। इस परिस्थिति में वहाँ समाजवाद का प्रचार प्रारम्भ हो गया था। १८७५ में जर्मनी में सोशल डेमाक्रैटिक पार्टी की स्थापना की गई। समाजवादी बिस्मार्क की तानाशाही के घोर विरोधी थे। उन्होंने भारी सैनिक व्यय की भी आलोचना की थी। वे अन्तर्राष्ट्रीयता में विश्वास करते थे। अतः प्रशा की उग्र राष्ट्रीयता ने उन्हें कभी भी आकृष्ट न किया था। वे अनेकनिक सामाजिक परम्पराओं को भी स्वीकार न करते थे। अतः बिस्मार्क उन्हें देश, समाज और सभ्यता का घोर शत्रु समझता था। उनकी बढ़ती हुई संख्या को देखकर उसने उनके दमन का निश्चय किया। १८७८ में सम्राट् विलियम प्रथम की हत्या का प्रयत्न किया गया। बिस्मार्क का विश्वास था कि इस प्रयत्न के पीछे समाजवादियों का हाथ है। अतः उसने उनके दमन के लिये अनेक कानून बनाये—

(१) समाजवादियों के दमन के लिए पुलिस को विशेष अधिकार दिये गये।

(२) समाजवादियों की सभाओं को पुलिस भंग कर सकती थी।

(३) समाजवादियों की पुस्तकों, समाचार-पत्रों आदि का दमन कर दिया गया।

(४) समाजवादी अपने सगठन नहीं बना सकते थे।

(५) समाजवादियों के मुकदमे पुलिस की अदालतों के द्वारा तय होने लगे।

परन्तु दमन-नीति सफल न हुई। समाजवादियों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती रही। १८७२ में संसद् में उनके २ प्रतिनिधि थे। १८८१ में उनकी संख्या १२ हो गई। १८८७ में वह बढ़कर ३५ हो गई।

सुधार—समाजवादियों के प्रभाव को कम करने के लिए मजदूरों की दशा को सुधारना आवश्यक था। अतः एक ओर तो बिस्मार्क ने समाजवादियों का दमन किया और दूसरी ओर मजदूरों की दशा को सुधारने के लिए अनेक कानून बनाये। १८८३ में एक कानून के द्वारा बीमारी के विरुद्ध अनिवार्य बीमा-योजना लागू की गई। १८८४ में नौकरी के मध्य हुई दुर्घटनाओं के विरुद्ध बीमा-योजना चलाई गई।

१८८७ में मजदूरों के काम के घण्टे निश्चित किये गये, बच्चों तथा स्त्रियों की नियुक्ति को नियन्त्रित किया गया तथा सरकारी पदाधिकारियों द्वारा मिलों, फैक्टरियों और खानों के निरीक्षण की व्यवस्था की गई। रविवार की छुट्टी घोषित की गई। १८८६ में Old Age Pension Act पास किया गया।

संरक्षण (Protection)—१८७० के पश्चात् कुछ समय तक जर्मनी की आर्थिक अवस्था ठीक न थी। वहां के कृषकों की दशा सस्ते विदेशी अन्न के आयात के कारण खराब हो रही थी। जर्मनी ने फ्रांस से भारी युद्ध-क्षति प्राप्त की थी। परन्तु उससे जर्मनी को हानि भी हुई। उसके सिक्के का मूल्य गिर गया और वस्तुओं की कीमतें बढ़ गई थीं।

इस परिस्थिति को ठीक करने के लिए बिस्मार्क ने राज्य-संचालित समाजवाद (State Socialism) का अनुसरण किया। उसने देश के उद्योग-धन्धों को संरक्षण (Protection) दिया। उसने अनाज और कच्चे माल पर हल्की चुंगियाँ लगायीं और अन्य वस्तुओं पर भारी चुंगियां। इससे उद्योग-धन्धों में विकास हुआ। परन्तु अनाज की स्थिति ठीक न हुई। अतः बिस्मार्क ने अनाज पर भी भारी चुंगियाँ लगानी प्रारम्भ कर दीं।

यह महत्वपूर्ण बात है कि जिस समय योरप के अन्य देश स्वतन्त्र व्यापार (Free Trade) का अनुसरण कर रहे थे उस समय बिस्मार्क ने संरक्षण नीति का अवलम्ब लिया और उसकी नीति सफल रही।

औपनिवेशीकरण—बिस्मार्क समझता था कि औपनिवेशिक दौड़ में भाग लेने से जर्मनी और ब्रिटेन के बीच कटुता बढ़ेगी और इस प्रकार ब्रिटेन जर्मनी के सबसे बड़े शत्रु फ्रांस के पक्ष में हो सकता है। अतः बिस्मार्क प्रारम्भ में उपनिवेश-स्थापना से दूर रहा। १८७० की पराजय के पश्चात् जब फ्रांस ने जर्मनी के सामने यह प्रस्ताव रक्खा कि अल्सेस और लोरेन के प्रदेशों के स्थान पर जर्मनी कोई फ्रांसीसी उपनिवेश ले ले तो बिस्मार्क ने इस प्रस्ताव को तत्काल अस्वीकार कर दिया।

परन्तु धीरे धीरे परिस्थिति बदलने लगी।

(१) उस समय उपनिवेश-स्थापना राष्ट्रीय गौरव की प्रतीक थी। अतः जर्मन राष्ट्रवादी भी उपनिवेश-स्थापना की माँग कर रहे थे।

(२) जर्मनी की व्यावसायिक स्थिति अच्छी हो रही थी। उसे अपनी फैक्टरियों और मिलों के लिए कच्चे माल की आवश्यकता थी। साथ ही साथ उसके तैयार किये गये माल की खपत के लिए नये बाजारों की भी आवश्यकता थी। इन आवश्यकताओं की पूर्ति उपनिवेशों से हो सकती थी।

(३) जर्मनी की बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये भी नये प्रदेशों की आवश्यकता थी।

(४) जर्मनी के धर्म-प्रचारक (Missionaries) भी अपने धर्म-प्रचार के लिए नये प्रदेशों को प्राप्त करना चाहते थे।

अतः बिस्मार्क अधिक समय तक लोक-मत की अवहेलना न कर सका और उसने सर्वप्रथम १८७६ में एक जर्मन कम्पनी को समोआ द्वीप में कुछ विशेषाधिकार प्रदान किए। १८८२ में जर्मन औपनिवेशिक संघ (German Colonial Union) की स्थापना हुई। अन्य कम्पनियों ने भी राजकीय सहायता से पूर्वी अफ्रीका, दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका, कैमरून, तोगोलैण्ड, न्यूगाइना आदि में प्रवेश किया। १८८६ में बिस्मार्क ने जर्मनी और उपनिवेशों के बीच आने-जाने वाले स्टीमरों को आर्थिक सहायता देना प्रारम्भ किया। उपनिवेशों में जर्मन पदाधिकारियों और पुलिस की भी नियुक्ति की गई। इस प्रकार बिस्मार्क की कार्यावधि में ही जर्मनी में उपनिवेश-स्थापना का सूत्रपात हो गया था।

विदेश-नीति

मूल सिद्धान्त—बिस्मार्क अपनी विदेश-नीति के लिए बड़ा प्रसिद्ध है। उसकी नीति औचित्यपूर्ण हो अथवा अनौचित्यपूर्ण, परन्तु इतना निश्चित है कि उसने देश की आवश्यकताओं की पूर्ति की। बिस्मार्क ने अपनी इस नीति का निर्धारण बड़ी दूरदर्शिता, सूझ-बूझ और धैर्य के साथ किया था। उसमें कभी-कभी अनैतिकता और परस्पर-विरोधी तत्व भी दृष्टिगत होते हैं। उसकी रूपरेखा देख कर कोई भी व्यक्ति समझ सकता था कि वह दीर्घकालीन नहीं हो सकती थी। अनेक अंशों में वह अस्वाभाविकता और असम्भावना से परिपूर्ण थी। परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि बिस्मार्क जब तक सत्ताधारी रहा तब तक उसने अपनी विदेशी नीति का ढाँचा गिरने नहीं दिया।

इस नीति के कुछ मूल सिद्धान्त थे—

(१) **सीमा-विस्तार का परित्याग**—१८७० तक बिस्मार्क ने जर्मनी का एकीकरण कर लिया। इसके लिए उसे अनेक राज्यों को प्रशा में मिलाना पड़ा। इस पृष्ठ-भूमि पर वह योरप का विस्तारवादी कूटनीतिज्ञ समझा जाने लगा था। परन्तु १८७० के पश्चात् बिस्मार्क ने अपने सभी विरोधियों को आश्वासन देते हुये अपनी विस्तारवादी नीति के परित्याग की घोषणा की। उसने घोषित किया कि—'Germany is a saturated country.'

(२) **पूर्वस्थिति की रक्षा**—उसने योरप में पूर्व स्थिति (Status Quo) बनाये रखने का सिद्धान्त अपनाया। दूसरे शब्दों में वह युद्ध के स्थान पर शान्ति का पक्षपाती हो गया।

(३) **महाद्वीपीय हित**—उसने घोषित किया कि जर्मनी एक महाद्वीपीय (Continental) देश है, साम्राज्यवादी (Imperialist) देश नहीं। अतः उसकी कूटनीति योरप तक ही सीमित रहती थी। उसने समुद्र पार दूसरे महाद्वीपों में उपनिवेश-स्थापना की ओर विशेष ध्यान न दिया।

(४) **स्थलीय हित**—इसी प्रकार उसकी कूटनीति के उद्देश्य स्थलीय थे। वह जर्मनी को Land Rat के नाम से पुकारता था। उसने अपने देश की सामुद्रिक

शक्ति के विकास के लिए कभी प्रयत्न न किया, उसने कभी भी जहाजी बेड़े का संगठन न किया।

(५) **फ्रांस की एकाकिता**—बिस्मार्क ने फ्राँस को पराजित करके उससे अल्सेस और लोरेन के प्रदेश छीन लिए थे। ये प्रदेश अपनी खानों एवं कल-कारखानों के लिए प्रसिद्ध थे। वह जानता था कि फ्राँस इन्हें पुनः हस्तगत करने की चेष्टा करेगा। अतः जर्मनी और फ्राँस की शत्रुता अनिवार्य हो गई। इसी से बिस्मार्क ने फ्राँस को सदैव अपना सर्वप्रमुख शत्रु समझा और उसे निर्बल रखने के लिए उसने उसे योरप में सर्वदा मित्रहीन, एकाकी रखने की सफल चेष्टा की। वस्तुतः फ्राँस को एकाकी रखना (Isolation of France) बिस्मार्क की कूटनीति की आधार-शिला था।

(६) **रूस की ओर विशेष ध्यान**—योरप में रूस एक ऐसा देश था जो थोड़ी सी असावधानी से जर्मनी का साथ छोड़ कर फ्राँस के साथ मिल सकता था। इसलिए बिस्मार्क ने रूस को अपना मित्र बनाए रखने का निरन्तर प्रयास किया। रूस बिस्मार्क की विदेशी नीति की धुरी (Pivot) था।[1]

(७) **आस्ट्रिया के साथ घनिष्ठता**—बिस्मार्क ने १८६६ से ही यह अनुभव कर लिया था कि आगामी योरोपीय कूटनीति में आस्ट्रिया जर्मन का सबसे बड़ा सहायक हो सकता था। आस्ट्रिया और प्रशा में प्राचीन राजतन्त्र था। दोनों राजवंश एक दूसरे से सम्बन्धित थे। दोनों के इतिहास और परम्परायें मिली-जुली थीं। अतः सैडोवा के युद्ध के पश्चात् ही बिस्मार्क ने आट्रिया को अपना मित्र बनाने का प्रबल प्रयास किया। इस कार्य में उसे महान् सफलता मिली। १८७६ से लेकर १६१४ तक आस्ट्रिया जर्मनी का सबसे घनिष्ठ मित्र बना रहा।

(८) **इङ्गलैंड से सद्भाव**—बिस्मार्क जानता था कि इंगलैंड योरोपीय मामलों से अलग रहने की नीति (Policy of Splendid Isolation) का अनुसरण कर रहा है। वह वस्तुतः योरोपीय देश न होकर साम्राज्यवादी और सामुद्रिक देश है। उसकी मित्रता भी बड़ी सुगम है, बशर्ते कि कोई देश उपनिवेश-स्थापना और जहाजी बेड़े के निर्माण में उससे प्रतिस्पर्धा न करे। उसकी शत्रुता भयंकर हो सकती थी। वह बड़ी सुगमता से फ्रांस का साथ दे सकता था। अतः फ्रांस की एकाकिता (Isolation) को कायम रखने के लिये इंगलैंड के साथ सद्भावना रखना परमावश्यक था। इसलिये बिस्मार्क ने इंगलैंड के साथ अपने सम्बन्ध सदैव अच्छे रक्खे।

(९) **इटली के प्रति अविश्वास**—बिस्मार्क जानता था कि इटली जन, धन और साधनों की दृष्टि से एक छोटा देश है। परन्तु वह है बड़ा महत्वाकांक्षी। वह अपने उद्देश्यों की पूर्ति शक्ति से नहीं कर सकता। अतः वह उनकी पूर्ति कूटनीति से करेगा। बिस्मार्क का विचार था कि इटली की कूटनीति स्वार्थपूर्ण, लचर, अवसरवादी

1. 'The foreign policy of the German Empire since 1871 has been the maintenance of peace and the prevention of anti-German coalitions, and the pivot of this policy is Russia.' —Bismarck.

और विश्वासघातपूर्ण है। वह इटली को 'शृगाल' कहा करता था और कभी भी उसका विश्वास न करता था। उसके साथ मित्रता करने के पश्चात् भी उसने उसे कभी भी अपना अन्तरंग मित्र नहीं समझा।

(१०) **पूर्वी समस्या के प्रति उदासीनता**—बिस्मार्क पूर्वी समस्या को व्यर्थ की समस्या समझता था। वह कहा करता था कि कुस्तुन्तुनिया से आने वाली डाक को मैं खोलता ही नहीं। वह जब तक सत्ताधारी रहा तब तक उसने पूर्वी समस्या में विशेष रुचि न दिखाई।

(११) **त्रिगुट की चिन्ता**—बिस्मार्क योरप में ५ देशों को शक्तिशाली मानता था—जर्मनी, आस्ट्रिया, रूस, फ्रांस और इटली। ब्रिटेन को वह योरोपीय राजनीति से पृथक् समझता था। पांच राज्यों में वह तीन का गुट बना कर योरपीय राजनीति में अपना बहुमत रखना चाहता था। उसने अपना यह उद्देश्य रूसी राजदूत के सम्मुख प्रकट किया था।[1] यद्यपि वह कहा करता था कि मैं गुटबन्दी से डरता हूं,[2] तथापि योरप में गुटबन्दी का प्रारम्भ उसी ने किया था।

बिस्मार्क की सन्धियां

इन्हीं मूल सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए बिस्मार्क ने योरप में अनेक राज्यों के साथ सन्धियां अथवा सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये। इनका निम्नलिखित रूप में उल्लेख किया जा सकता है:—

तीन सम्राटों का संघ (Three Emperors' League)—१८७३—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, बिस्मार्क रूस को मित्र बनाने के लिए विशेष रूप से इच्छुक था। आस्ट्रिया के साथ उसके सम्बन्ध अच्छे थे। परन्तु उसकी कठिनाई यह थी कि आस्ट्रिया और रूस के सम्बन्ध पूर्वी समस्या के कारण बहुधा तनावपूर्ण रहते थे। अतः बिस्मार्क ने १८७३ में जर्मनी, रूस और आस्ट्रिया तीनों देशों के बीच एक सौहार्दपूर्ण समझौता किया। इसका उद्देश्य न केवल रूस की मित्रता प्राप्त करना था वरन् रूस और आस्ट्रिया के पारस्परिक सम्बन्धों को भी सुधारना था।

यह संघ तीन सम्राटों का संघ कहलाता है। इसे Dreikaiserbund भी कहते हैं। यह सन्धि न थी वरन् एकमात्र सौहार्दपूर्ण समझौता था। इसके द्वारा तीनों देशों के सम्राटों ने शान्ति-रक्षा के लिए पारस्परिक सहयोग की इच्छा प्रकट की थी। उन्होंने एक दूसरे को यह भी आश्वासन दिया था कि यदि कभी युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो तो तीनों देश पारस्परिक हितों के लिये आपस में विचार-विमर्श करेंगे।

१८७३ से लेकर १८७८ तक यह संघ चलता रहा।

---

1. 'You forget the importance of being a party of three on the European chess-board...Nobody wishes to be in a minority. All politics reduce themselves to this formula: try to be a trois in a world governed by fivepowers.' —Bismarck.

2. 'Coalitions are my nightmare.'

१८७८ की बर्लिन की सन्धि में जर्मनी ने रूस का साथ न देकर आस्ट्रिया का साथ दिया। अतः रूस जर्मनी से नाराज हो गया।

१८७६ से लेकर १८८१ तक जर्मनी और रूस में बड़ी कटुता रही।

परन्तु बिस्मार्क सरलतापूर्वक रूस का साथ छोड़ने के लिए तैयार न था। रूसी-फ्रांसीसी गुटबन्दी की सम्भावना को दूर करने के लिए वह रूस को अपने साथ रखना चाहता था।

अतः १८८१ में उसने पुनः तीन सम्राटों के संघ का पुनरुद्धार किया। इस बार यह तय किया गया कि यदि कोई चौथा देश इन तीनों में से किसी पर भी आक्रमण करे तो उसके शेष दोनों मित्र तटस्थ रहेंगे। यह समझौता तीन वर्ष के लिए था।

१८८४ में इसकी पुनरावृत्ति की गई। यह १८८७ तक के लिए किया गया।

द्विराज्य सन्धि (Dual Alliance)–१८७६—१८७८ की बर्लिन सन्धि से जर्मनी और रूस के सम्बन्ध खराब हो गये। बात यह थी कि पूर्वी समस्या के प्रश्न पर जर्मनी ने आस्ट्रिया का साथ दिया था और उसे प्रशासन के लिए बोस्निआ और हर्जेगोविना के प्रदेश दे दिये थे। इससे रूस जर्मनी से नाराज हो गया। रूस के असंतोष के दो अन्य कारण भी थे––

(१) बिस्मार्क ने संरक्षण की नीति अपनाई थी। इससे रूसी अनाज का जर्मनी में बिकना प्रायः बन्द हो गया था।

(२) रूस और आस्ट्रिया के सीमा-सम्बन्धी झगड़े को हल करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय आयोग (International Commission) बनाया गया था। इसमें जर्मनी के प्रतिनिधि ने आस्ट्रिया का पक्ष लिया।

रूस और जर्मनी के बीच इतनी अधिक कटुता बढ़ी कि दोनों के बीच युद्ध की सम्भावना प्रतीत होने लगी। फ्रांस जर्मनी का पहले ही शत्रु था। अतः रूस की इस नवीन शत्रुता ने जर्मनी के लिये एक नया संकट उपस्थित कर दिया। इसका सामना करने के लिये बिस्मार्क ने १८७६ में जर्मनी और आस्ट्रिया के बीच एक सन्धि की जो द्विराज्य सन्धि (Dual Alliance) के नाम से प्रख्यात है। इसकी निम्नलिखित शर्तें थीं—

(१) यदि रूस किसी एक पर आक्रमण करे तो दूसरा अपने मित्र की सहायता करेगा।

(४) यदि कोई अन्य देश रूस की सहायता से किसी एक पर आक्रमण करे तो भी दूसरा अपने मित्र की सहायता करेगा।

(३) यदि कोई अन्य देश किसी एक पर आक्रमण करे और रूस आक्रमणकारी की सहायता न करे तो दूसरा मित्र तटस्थ रहेगा।

(४) यह सन्धि ५ वर्ष के लिए होगी। परन्तु दोनों की इच्छा से ३-३ वर्ष के लिये पुनः बढ़ाई जा सकती थी।

(५) यह सन्धि गुप्त रहेगी।

इस सन्धि से बिस्मार्क ने जर्मनी की स्थिति बड़ी दृढ़ कर दी। उसके दो प्रमुख शत्रु थे—रूस और आस्ट्रिया। इस सन्धि के पश्चात् यदि रूस जर्मनी पर आक्रमण करता तो जर्मनी को आस्ट्रिया से सैनिक सहायता मिलती और यदि उस पर फ्रांस का आक्रमण होता तो वह आस्ट्रिया की तटस्थता के विषय में निश्चित था। इसीलिए इस सन्धि को बिस्मार्क की महान् सफलता माना जाता है।[1]

परन्तु इससे पूर्वक्त तीन सम्राटों की सन्धि निरर्थक हो गई। यद्यपि जर्मनी, आस्ट्रिया और रूस के सम्राटों ने १८८१, १८८४ और १८८५ में सम्मेलन किये, परन्तु वे दिखावा-मात्र थे। १८७९ के पश्चात् जर्मनी की कूटनीति का केन्द्र-बिन्दु आस्ट्रिया की मित्रता हो गया और वह १९१४ तक बना रहा।

पुनराश्वासन सन्धि (Re-Insurance Treaty)—१८[illegible]—१८७९ में द्विराज्य सन्धि करने के पश्चात् भी बिस्मार्क ने खुले तौर पर रूस का साथ न छोड़ा। उसने १८८७ तक तीन सम्राटों के संघ को भी जारी रक्खा। परन्तु १८८७ मे रूस और आस्ट्रिया के बीच बल्गेरिया के प्रश्न पर झगड़ा हो गया। अतः तीन सम्राटों के संघ का चलना असम्भव हो गया। अब बिस्मार्क के सम्मुख दो समस्यायें थीं—

(१) कहीं रूस फ्रांस के साथ न मिल जाय या

(२) रूस और आस्ट्रिया के बीच युद्ध न छिड़ जाय।

इस परिस्थिति में बिस्मार्क के लिये अत्यन्त आवश्यक था कि वह रूस को अपनी ओर मिलाये रक्खे। इस ध्येय की पूर्ति के लिए उसने १८८७ में रूस के साथ एक अन्य सन्धि की जो पुनराश्वासन की सन्धि (Re-Insurance Treaty) कहलाती है। इस सन्धि की प्रमुख शर्तें निम्नलिखित थीं—

(१) यदि कोई चौथा देश रूस, जर्मनी अथवा आस्ट्रिया पर आक्रमण करे तो अन्य देश तटस्थ रहेंगे।

(२) दोनों देश उस युद्ध को सीमित (Localise) रखने की चेष्टा करेंगे।

(३) बर्लिन सन्धि में आस्ट्रिया के जो हित थे उन्हें रूस ने स्वीकार कर लिया।

(४) यदि तुर्की साम्राज्य की स्थिति में कोई परिवर्तन हो जाय तो वह सबकी सहायता से हो।

(५) टर्की किसी देश को कोई विशेषाधिकार नहीं देगा। यदि उसने ऐसा किया तो रूस, जर्मनी और आस्ट्रिया टर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर सकते थे।

इस सन्धि ने दो महत्वपूर्ण परिणाम उत्पन्न किये—

(१) इसने आस्ट्रिया और रूस के युद्ध को बचा दिया।

---

1. 'Contemporary opinion regarded Bismarck's establishment of this alliance as a master-stroke'. —Fay

(२) इसने रूस को फ्राँस के साथ न मिलने दिया ।[1]

त्रिराज्य सन्धि (Triple Alliance) १८८२—इटली अपनी स्थिति कि फ्रांस के लिए जर्मनी के साथ सन्धि करना चाहता था । परन्तु प्रारम्भ में बिस्मार्क ने इसके प्रस्ताव को स्वीकार न किया, क्योंकि वह इटली को नितान्त स्वार्थी, अवसरवादी और अविश्वसनीय समझता था । परन्तु दो कारणों से बिस्मार्क ने अपना दृष्टिकोण बदल दिया—

(१) उसे भय हुआ कि कहीं इटली फ्राँस के साथ मित्रता न कर ले ।

(२) इस समय इटली और आस्ट्रिया की शत्रुता चल रही थी । अतः आस्ट्रिया को दो दिशाओं से भय था—रूस से और इटली से । यदि बिस्मार्क इटली और आस्ट्रिया के बीच मित्रता करा दे तो आस्ट्रिया इटली की ओर से निश्चिन्त हो जायगा ।

इसलिए अब बिस्मार्क ने इटली की ओर मित्रता का हाथ बढ़ाना प्रारम्भ किया । इस समय इटली और फ्रांस दोनों ही ट्यूनिस पर अधिकार करना चाहते थे । सबको यह आशा थी कि बिस्मार्क अपने प्रमुख शत्रु फ्राँस को तो सहायता दे ही नहीं सकता । वह ट्यूनिस के प्रश्न पर इटली की ही सहायता करेगा । परन्तु बिस्मार्क ने ऐसा न किया । उसने ट्यूनिस पर अधिकार करने के लिए फ्रांस को प्रोत्साहित किया । फ्रांस ने १८८१ में ट्यूनिस पर अधिकार कर लिया । इस घटना से फ्रांस और इटली की भयंकर शत्रुता हो गई । दोनों के बीच युद्ध की सम्भावना उत्पन्न हो गई और इटली ने आस्ट्रिया तथा जर्मनी के साथ सन्धि की इच्छा प्रकट की । बिस्मार्क यही चाहता था । फलतः तीनों देशों में १८८२ में त्रिराज्य सन्धि (Triple Alliance) हुई । इसकी प्रमुख शर्तें इस प्रकार थीं—

(१) यदि इटली के ऊपर फ्रांस आक्रमण करे तो आस्ट्रिया और जर्मनी अपने मित्र इटली की पूरी सहायता करेंगे ।

(२) यदि जर्मनी के ऊपर फ्रांस आक्रमण करे तो इटली जर्मनी की पूरी सहायता करेगा ।

(३) यदि रूस जर्मनी अथवा आस्ट्रिया पर आक्रमण करे तो इटली तटस्थ रहेगा ।

(४) यदि रूस किसी अन्य देश (सम्भवतः फ्राँस) की सहायता से जर्मनी अथवा आस्ट्रिया पर आक्रमण करे तो इटली अपने मित्र की सहायता करेगा ।

(५) यह सन्धि ५ वर्ष के लिए थी ।

(६) यह सन्धि गुप्त रक्खी गई ।

इटली चाहता था कि इस सन्धि में इंगलैंड को भी सम्मिलित कर लिया जाय, परन्तु बिस्मार्क ने इस प्रस्ताव का विरोध किया, फिर भी इटली के आग्रह से सन्धि-

---

1. 'The new friendship of Germany and Russia prevented an Austro-Russian war and a Franco-Russian coalition.'

घोषित किया कि यह सन्धि किसी भी स्थिति में इंगलैंड के विरुद्ध न जाय।

बिस्मार्क इस सन्धि को 'League of Peace' कहता था। उसकी दृष्टि में यह आक्रमणात्मक (Aggressive) सन्धि नहीं थी। यह एकमात्र सुरक्षात्मक (Defensive) सन्धि थी। परन्तु कालान्तर में इसी सन्धि का सहारा लेकर आस्ट्रिया और इटली ने उग्र नीति का अनुसरण करना प्रारम्भ कर दिया था।

पुनरावृत्ति—१८८७ में इस सन्धि की पुनरावृत्ति की गई। इस समय जर्मनी और आस्ट्रिया दोनों सकटपूर्ण स्थिति में थे। जर्मनी को फ्रांस के आक्रमण का भय था और आस्ट्रिया को रूस के आक्रमण का। अतः दोनों ने इस बार इटली को अपना मित्र बनाये रखने का विशेष प्रयास किया और त्रिराज्य सन्धि में उसे नवीन सुविधायें प्रदान कीं—

(१) आस्ट्रिया और जर्मनी दोनों ने स्वीकार किया कि बाल्कन प्रदेश में इटली के भी हित हैं।

(२) यह भी स्वीकार किया कि यदि टर्की साम्राज्य का विभाजन हुआ तो इटली की क्षति-पूर्ति की जायेगी।

(३) उत्तरी अफ्रीका में इटली के हित के विस्तार के लिए जर्मनी ने उसे युद्ध में सैनिक सहायता देने का वचन दिया।

(४) आस्ट्रिया ने यह अनुमति दे दी कि यदि आवश्यकता हो तो इटली उसके प्रदेशों से होकर अपनी सेनायें भेज सकता है।

पूर्वी समस्या और 'परतन्त्र इटली' के प्रश्नों पर आस्ट्रिया और इटली के सम्बन्ध न अच्छे थे। बिस्मार्क स्वय भी इटली का विश्वास न करता था। एक बार उसने इटली के विषय में कहा था—'Insatiable Italy with furtive glances, roves restlessly hither and thither, instinctively drawn on by ordour of corruption and calamity and always ready to attack any one from the rear and make off with a bit of plunder.'

परन्तु यह महत्व की बात है कि जब तक बिस्मार्क सत्ताधारी रहा, उसने इटली को अपने गुट से निकलने न दिया।

रूमानिया के साथ सन्धि—१८८३—१८८३ में रूमानिया का राजा करोल जर्मनी आया। इस अवसर पर बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के सामने यह प्रस्ताव रखा कि रूमानिया के साथ भी सन्धि कर ली जाय। आस्ट्रिया ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। फलतः १८८३ में तीनों देशों में एक सन्धि हो गई। यह पांच वर्ष के लिए की गई थी। परन्तु तीनों सदस्यों की सहमति से पांच वर्ष के पश्चात् ३-३ वर्ष के लिये उसकी पुनरावृत्ति भी हो सकती थी। अन्य सन्धियों की भाँति यह सन्धि भी गुप्त रखी गई।

इङ्गलैण्ड के साथ सम्बन्ध—बिस्मार्क यह कभी नहीं चाहता था कि फ्रांस इंगलैण्ड के साथ सन्धि अथवा मित्रता कर सके। अतः उसने यथासम्भव उपायों से इंगलैण्ड को सन्तुष्ट रखने की चेष्टा की।

(१) बिस्मार्क ने यह घोषित किया कि जर्मनी विस्तारवादी देश नहीं है।[1] अतः साम्राज्यवादी इंगलैण्ड के साथ जर्मनी की प्रतियोगिता का कोई प्रश्न नहीं उठा।

(२) बिस्मार्क ने उपनिवेश-स्थापना की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। अतः वह औपनिवेशिक प्रतिद्वन्द्विता से भी दूर रहा।

(३) बिस्मार्क ने जर्मनी के जहाजी बेड़े का निर्माण नहीं किया, क्योंकि ऐसा करने से वह इंगलैण्ड को सशंकित कर देता। इस प्रकार 'Land Rat' और 'Water Rat' के बीच संघर्ष की कोई सम्भावना न रही।

(४) इंगलेंड पूर्वी समस्या में सदैव सावधान रहता था। परन्तु बिस्मार्क ने पूर्वी समस्या में कोई रुचि न दिखाई। परिणामस्वरूप इस प्रश्न पर भी इंगलैण्ड और जर्मनी के बीच कटुता की सम्भावना जाती रही।

(५) बिस्मार्क ने इंगलैण्ड के साथ मैत्री-सम्बन्ध बनाये रखने के अभिप्राय से वहाँ अपने पुत्र को राजदूत नियुक्त किया।

(६) बिस्मार्क ने यह भी घोषित किया कि जब तक इंगलैण्ड में नितान्त अवांच्छनीय और जर्मन-विरोधी मन्त्रि-मण्डल की नियुक्ति नहीं होती[2] तब तक जर्मनी और इंगलैण्ड के बीच शत्रुता का कोई कारण नहीं हो सकता।

(७) बिस्मार्क ने दो बार इंगलैण्ड के साथ सन्धि करने का प्रस्ताव भी रक्खा। परन्तु इंगलेंड अभी योरोपीय गुटबन्दी में न पड़ना चाहता था। उसने विनम्रतापूर्वक बिस्मार्क के सन्धि-प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

बिस्मार्क के भाग्य से कुछ ऐसे कारण भी विद्यमान थे जिन्होंने इंगलैण्ड और जर्मनी के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने में बड़ा योग दिया—

(१) १९वीं शताब्दी के अन्त तक इंगलैण्ड पृथक् रहने की नीति (Policy of Splendid Isolation) का अनुसरण करता रहा। अतः उसके साथ मैत्री-सम्बन्ध बनाए रखना सरल था।

(२) इंगलैण्ड अपने को योरोपीय (Centinental Power) न मान कर साम्राज्यवादी (Imperialist Power) मानता था। उसके हित सामुद्रिक थे। उधर बिस्मार्क एकमात्र योरोपीय राजनीतिज्ञ (Continentalist) था। अतः इंगलैण्ड के साथ वह सुगमतापूर्वक मित्रता बनाये रख सका।

---

1. 'Germany is a saturated country.'

2. Unless a Cabinet of inconceivable character should be in power in England, a Cabinet which neither exists, nor which is ever likely to exist, and which criminally attacks us.'

(३) बिस्मार्क के भाग्य से इंगलैण्ड और फ्रांस की औपनिवेशिक प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी। विशेष रूप से अफ्रीका के प्रदेशों को लेकर उनमें बड़ी शत्रुता थी। अतः इंगलैंड और फाँस का आपस में सन्धि करना कठिन था। बिस्मार्क उनकी शत्रुता को और बढ़ाता रहा तथा उससे लाभ उठाता रहा।

(४) इसी प्रकार रूस एशिया में अपना विस्तार कर रहा। यह विस्तार अंग्रेजों के पूर्वी साम्राज्य के लिए खतरनाक था। अतः अंग्रेजों और रूसियों में बड़ी शत्रुता थी और उन दोनों के बीच भी सन्धि की सम्भावना अत्यल्प थी। बिस्मार्क ने इस शत्रुता को बढ़ाने का प्रयत्न किया और उससे पूरा लाभ उठाया।

बिस्मार्क की विदेश-नीति की समीक्षा—इस प्रकार बिस्मार्क ने अपनी विदेशी नीति के प्रमुख उद्देश्य—फाँस को अकेले एवं मित्रहीन रखना—को प्राप्त करने के लिए सन्धियों का एक महान् व्यूह तैयार किया। जिन देशों के साथ वह सन्धि न कर सका उन्हें भी उसने अपना मित्र बनाये रक्खा। उसकी विदेशी नीति ने न केवल फ्रांस को नितान्त निर्बल और असहाय बनाये रक्खा वरन् अन्य देशों के विरुद्ध भी जर्मनी की सीमाओं को अनुल्लंघनीय रक्खा। सारांश में उसने—

(१) आस्ट्रिया के आक्रमण के विरुद्ध रूस की तटस्थता निश्चित कर ली।
(२) रूस के आक्रमण के विरुद्ध आस्ट्रिया की तटस्थता निश्चित कर ली।
(३) फ्रांस के आक्रमण के विरुद्ध इटली की सहायता निश्चित कर ली।
(४) रूस और फ्राँस के सम्मिलित आक्रमण के विरुद्ध आस्ट्रिया और इटली दोनों की सहायता निश्चित कर ली।[1]

यह स्मरणीय है कि बिस्मार्क के अधिकांश साथियों के पारस्परिक सम्बन्ध अच्छे न थे। उदाहरण के लिये—

(१) आस्ट्रिया और रूस पूर्वी समस्या को लेकर सदैव लड़ते रहते थे।
(२) बाल्कन प्रदेश और 'परतन्त्र इटली' (Unredeemed Italy) के प्रश्नों पर आस्ट्रिया और इटली में भारी कटुता थी।
(३) इसी प्रकार पूर्वी समस्या और एशियाई प्रश्नों पर रूस और इंगलैण्ड के सम्बन्ध तनावपूर्ण थे।

परन्तु फिर भी बिस्मार्क ने अपनी कूटनीति से इन परस्पर-विरोधी राज्यों को अपने साथ रक्खा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कभी-कभी उसे बड़ी कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ता था। उदाहरण के लिए बर्लिन के सम्मेलन (१८७८) में रूस और आस्ट्रिया के हित आपस में टकराये। उस समय बिस्मार्क के सामने यह समस्या थी कि वह किस मित्र का साथ दे। अन्त में उसने आस्ट्रिया का साथ दिया। परन्तु

1. 'Had secured Russian neutrality in case of an Austrian attack upon Germany, Austrian neutrality in case of Russian attack, Italian support against a French attack and Austro-Italian assistance against a combined Russian and French attack.

१८८६–८७ में जब बल्गेरिया के प्रश्न पर रूस और आस्ट्रिया का पुनः झगड़ा खड़ा हुआ तो बिस्मार्क ने रूस का साथ दिया और घोषित किया कि 'बल्गेरिया में मैं रूसी हूं।[1]'' पूर्वी समस्या पर इंगलैंड और रूस के दृष्टिकोण प्रायः परस्पर-विरोधी रहते थे। फिर भी बिस्मार्क अपनी कूटनीति से दोनों की की मित्रता का निर्वाह करता रहा। उसके विषय में यह कथन यथार्थ है कि वह एक ही समय पाँच गेंदे हवा में उछालता था और किसी को भी जमीन पर न गिरने देता था।

परन्तु अनेक दृष्टिकोणों से बिस्मार्क की कूटनीति दोषपूर्ण भी थी––

(१) यद्यपि उसने तीन सम्राटों के संघ एवं पुनराश्वासन सन्धि के द्वारा रूस को अपने गुट में रक्खा था परन्तु उसके साथ उसकी मित्रता सच्ची न थी। बर्लिन सन्धि के पश्चात् रूस ने हृदय से बिस्मार्क का विश्वास न किया।

(२) रूस और आस्ट्रिया के सम्बन्ध पूर्वी समस्या को लेकर इतने कटुतापूर्ण थे कि उन दोनों का एक गुट में रहना नितान्त अस्वाभाविक था।

(३) यही बात इटली के विषय में भी कही जा सकती है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इटली और आस्ट्रिया बाल्कन प्रदेश और 'परतन्त्र इटली' के प्रश्नों पर परस्पर शत्रु थे।

इस प्रकार बिस्मार्क की कुछ सन्धियां खोखली थीं। कुछ समय तक वे चलतीं रहीं। अन्त में रूस और इटली दोनों ने जर्मनी का साथ छोड़ दिया और वे दोनों मित्रराष्ट्रों के साथ मिल गये।

(४) जब तक बिस्मार्क ने फ्रांस को ही अपना शत्रु समझा और उसके विरुद्ध सन्धियां करता रहा तब तक उसकी कूटनीति पूर्ण सफल रही। परन्तु जब उसने रूस को भी अपना शत्रु बना लिया और उसके विरुद्ध भी गुटबन्दी प्रारम्भ कर दी तो उसकी कूटनीति के सामने कठिनाइयां उत्पन्न होने लगी। परिणाम यह हुआ कि फ्राँस और रूस दोनों ने अपने उभयनिष्ठ शत्रु जर्मनी के विरुद्ध मित्रता कर ली और दोनों ने ही अपना एकाकीपन समाप्त कर दिया।

(५) यद्यपि बिस्मार्क ने इंगलैंड को अपना मित्र बनाये रक्खा, परन्तु वह उसके साथ कोई निश्चित सन्धि न कर सका। यह उसकी कूटनीति की असफलता थी। इंगलैंड के बिना उसकी सारी सन्धियां निर्बल रहीं।

(६) गुप्त कूटनीति (Secret Diplomacy) और गुप्त सन्धियों (Secret Treaties) के द्वारा उसने योरप के राजनीतिक वातावरण को सन्देहपूर्ण कर दिया। उसकी की गई सन्धियों के विषय में भिन्न-भिन्न देशों में अनेक प्रकार की अफवाहें फैलने लगीं। इनसे उनमें भय और शंका की भावनायें उत्पन्न हुईं।

(७) बिस्मार्क कहा करता था कि गुटबन्दी मेरे लिये दुःस्वप्न है।[2] परन्तु योरप में उसी ने गुटबन्दी प्रारम्भ की। परिणाम यह हुआ कि उसके विरोधियों ने भी उसकी सन्धियों (Alliances) के विरुद्ध प्रतिसन्धियां (Counter Alliances)

1. 'In Bulgaria I am Russian'.
2. 'Coalitious are my nightmare'.

बना लीं। इस प्रकार योरप दो परस्पर-विरोधी शिविरों में बंट गया। यह गुटबन्दी प्रथम महायुद्ध का कारण बनी।

(८) बिस्मार्क ने फ्रांस के साथ व्यवहार करने में अदूरदर्शिता से कार्य किया था। यदि उसने आस्ट्रिया की भांति फ्रांस के साथ भी उदारता का बर्ताव किया होता तो सम्भवतः फ्रांस सेडन की पराजय को भूल जाता। परन्तु बिस्मार्क ने फ्रांस से अल्सेस और लोरेन प्रदेशों को छीनकर फ्रांस को सदैव के लिये शत्रु बना दिया। १८७० के पश्चात् फ्रांस इन प्रदेशों को वापस लेने के लिये प्रतिशोधात्मक युद्ध की तैयारी करने लगा। इसी से कहा जाता है कि सेडन के युद्ध के पश्चात् मार्न का युद्ध अनिवार्य था।[1] इस प्रकार बिस्मार्क की फ्रांसविषयक अदूरदर्शिता प्रथम महायुद्ध के लिए उत्तरदायी हुई।

(९) बिस्मार्क कहा करता था कि उसकी सन्धियां सुरक्षात्मक (Defensive) थीं। उसके विरोधियों ने भी सुरक्षात्मक सन्धियाँ ही की थीं। परन्तु कटुतापूर्ण और विस्फोटक वातावरण में सुरक्षात्मक सन्धियों का आक्रमणात्मक (Aggressive) सन्धियों में परिवर्तित होना नितान्त स्वाभाविक था।

बिस्मार्क का पतन—१८७१ से लेकर १८९० तक बिस्मार्क जर्मनी का ही नहीं वरन् सम्पूर्ण योरप का सर्वप्रमुख राजनीतिज्ञ बना रहा। परन्तु इस बीच विविध कारणों से अपने देश में उसके अनेक विरोधी भी उत्पन्न हो गये। वे उसे पदच्युत करने का निरन्तर प्रयास करने लगे। अन्त में उनके प्रयत्न सफल हुए और बिस्मार्क ने १८९० में इस्तीफा दे दिया।

बिस्मार्क के पतन के निम्नलिखित कारण बताये जा सकते हैं—

(१) जब तक विलियम प्रथम जर्मनी का सम्राट् रहा तब तक उसने बिस्मार्क के कार्य में हस्तक्षेप नहीं किया। बिस्मार्क स्वेच्छानुसार राजनीति का संचालन करता रहा। परन्तु १८८८ में विलियम द्वितीय के सत्तारूढ़ होते ही परिस्थिति बदल गई। नया सम्राट् महत्वाकांक्षी, परिश्रमी और कार्यशील था। वह प्रशासन के सारे सूत्र अपने हाथ में रखना चाहता था। वह नहीं चाहता था कि उसका प्रधान-मन्त्री बिना उसके आदेश के कोई कार्य करे। वह कहा करता था कि देश का एक ही स्वामी है और वह स्वामी मैं हूं।[2] वह सहयोग का आदर करता था, परन्तु अपना विरोध उसे असह्य था।[3]

विलियम द्वितीय ने विभिन्न देशों से स्वयं सम्पर्क रखने के लिए सेण्टपीटर्सबर्ग वियना, लन्दन, एथेन्स और कुस्तुन्तुनिया का दौरा किया। बिस्मार्क ने इस का विरोध किया, परन्तु सम्राट् ने उसकी परवाह न की।

---

1. 'After the battle of Sedan, the battle of Marne lay in the logic of history.'

2. 'There is only one master in this country and I am he.'

3. 'Those who will help me, I heartily welcome; those who oppose me I shall dash to pieces.'

(२) बिस्मार्क और विलियम द्वितीय के राजनीतिक विचारों में भी भारी अन्तर था। बिस्मार्क समाजवादियों के प्रति दमन-नीति का अनुसरण करना चाहता था। इसके विरुद्ध विलियम उनके प्रति उदार नीति बरतना चाहता था। बिस्मार्क महाद्वीपीय राजनीतिज्ञ (Continentalist) था और विलियम साम्राज्यवादी। बिस्मार्क के विचारों के नितान्त प्रतिकूल विलियम ने जहाजी बेड़े के निर्माण और उपनिवेश–स्थापना को अपना प्रमुख ध्येय बनाया। विदेशी नीति में बिस्मार्क का लक्ष्य फ्रांस को एकाकी रखना था। इसके लिए उसने अन्य देशों को, विशेषतया रूस और इंगलैंड को, अपना मित्र बनाये रक्खा था। परन्तु विलियम ने इस ओर कोई ध्यान न दिया। उसने रूस और इंगलैंड दोनों को ही अपना शत्रु बना लिया। परिणामतया फ्राँस ने उनके साथ मित्रता कर ली और और अपना एकाकीपन (Isolation) तोड़ दिया।

(३) अपने शासन-काल में बिस्मार्क ने अनेक दलों और वर्गों को किसी न किसी कारण से असन्तुष्ट कर रक्खा था। कैथोलिक दल, समाजवादी दल, जनतन्त्र-वादी दल, अनुदार दल, पूंजीवादी, उद्योगपति आदि निरन्तर उसके विरुद्ध आन्दोलन कर रहे थे।

(४) १८८८ और १८८९ के बीच बिस्मार्क राजधानी में रह कर काम न करता था। वह अपने गाँव चला गया था। वहीं से वह प्रशासन के प्रमुख कार्यों को करता रहता था। उसकी अनुपस्थिति से उसके विरोधियों ने पूरा लाभ उठाया और सम्राट् को पूर्णतया उसके विरुद्ध कर दिया।

(५) बिस्मार्क का पुत्र हर्बर्ट बिस्मार्क था। बिस्मार्क चाहता था कि उसके पश्चात् उसका पुत्र प्रधान-मन्त्री बने। इसके लिये उसने अपने पुत्र को प्रशिक्षित भी किया था। १८८६ से वह विदेश-सचिव (Foreign Secratary) के पद पर कार्य कर रहा था। हर्बर्ट बड़े रूखे स्वभाव का था। उसके व्यवहार से प्रायः सभी नाराज थे। हर्बर्ट के कार्यों से बिस्मार्क भी बदनाम हो रहा था।

धीरे-धीरे सम्राट् और बिस्मार्क के बीच मतभेद बहुत अधिक बढ़ गया और सम्राट् ने बिस्मार्क के इस्तीफे की माँग करना प्रारम्भ कर दिया। अन्त में २० मार्च, १८९० को बिस्मार्क ने इस्तीफा दे दिया। सम्राट् ने इस्तीफा तो स्वीकार कर लिया, परन्तु बिस्मार्क की सेवाओं की बड़ी प्रशंसा की और उसे ड्यूक तथा फील्ड मार्शल की उपाधियाँ प्रदान कीं।

बिस्मार्क के पतन से एक युग की समाप्ति हुई। उसके पतन पर पंच (Punch) के निम्नलिखित शब्द ऐतिहासिक हो गये हैं :—

'The Pilot who had steered the ship through so many storms and so many shoals was dropped.'

बिस्मार्क का मूल्यांकन—उन्नीसवीं शताब्दी के राजनीतिज्ञों में बिस्मार्क का बड़ा ऊँचा स्थान है। १८७० से लेकर १८९० तक वह जर्मनी की ही नहीं वरन् सम्पूर्ण योरप की राजनीति का केन्द्र-बिन्दु बना रहा।[1] वह व्यापक दृष्टिकोण,

1. 'Germany under Bismarck's guidance was the pivot of European politics.'

स्वतन्त्र विचारों, महान् शक्ति और साहसपूर्ण निर्णयों का व्यक्ति था।[1] मैरियट महोदय ने उसके विषय में निम्नलिखित उक्ति की है :—

'In the history of the nineteenth century, Bismarck will always claim a foremost place; in the sphere of displomacy no one except Cavour could dispute his claim to the first place. That he was a great patriot will be denied only by those to whom patriotism is an exploded superstition.'

उसका एक ही उद्देश्य था—जर्मनी को संगठित, सुरक्षित और शक्तिशाली बनाना। जर्मनी के एकीकरण का इतिहास बिस्मार्क की व्यक्तिगत कूटनीति की सफलता का इतिहास है। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने जनतन्त्रात्मक उपायों से कार्य नहीं किया। वह जनतन्त्रवादी पद्धति को नितान्त अनुपयोगी समझता था। वह एकतन्त्रवादी था। वह कहा करता था—'The Prussian Crown must not allow itself to be thrust into the powerless position of the English crown, which seems more like a smartly decorative cupola on the state edifice, than its central pillar of support, as I consider ours' वह 'रक्त और लौह' के सिद्धान्त का अनुयायी था। परन्तु वह सैनिकवादी होने के साथ-साथ चतुर कूटनीतिज्ञ भी था। अपने शत्रु पर आक्रमण करने के पूर्व वह उसे नितान्त मित्रहीन बना देता था और जिस युद्ध को वह स्वयं प्रारम्भ करना चाहता था उसे अपने शत्रु से ही प्रारम्भ कराता था। उसकी कूटनीति के पीछे छल और शक्ति दोनों रहते थे।[2]

बिस्मार्क प्रशन पहले था और जर्मन बाद को। वह जर्मनी के एकीकरण में प्रशा के अस्तित्व को नष्ट न करना चाहता था। वह सम्पूर्ण जर्मनी को प्रशा के राज्य में मिलाना चाहता था। उसने जर्मन एकीकरण की उन योजनाओं का विरोध किया था जिनसे प्रशा की प्रधानता को हानि पहुंचती थी।[3] इसी स्थिति को दृष्टि में रखते हुये सीमन महोदय ने लिखा है कि—'From 1871 to 1914 all the world's atlases solemnly described as 'The German Empire' what was in reality a Prussian Empire, and all the world's history books

---

1. 'man of large vision, independent views, immense power, and bold decisions.'

2. 'The end was reached by methods which no plain man can approve : by diplomacy, which was a masterpiece of bluff duplicity, and by overwhelming force unscrupulously applied.' –Marriot.

3. 'The scheme for a union annihilates the integrity of the Prussian Kingdom...Prussians we are and Prussians we will remain'.
Bismarck.

have gone on gravely describing as the 'unification' of Germany what was in reality the division of it.'

बिस्मार्क नितान्त व्यावहारिक बुद्धि का राजनीतिज्ञ था। इसी से उसने उपनिवेश-स्थापना में कोई रुचि न दिखाई। उसकी राजनीति जर्मनी और योरप के लिये थी।[1]

उसकी विदेशी नीति दो शब्दों में बताई जा सकती है—फूट डालना और शासन करना (Divide and rule)। इसी नीति का अनुसरण कर वह अपने प्रत्येक शत्रु को नीचा दिखाता रहा।

फ्रांस को वह प्रमुख शक्ति मानता था और उसने उसे अपनी कूटनीति से अपने शासन-काल में सदैव मित्रहीन रक्खा।

परन्तु बिस्मार्क की कूटनीति ने योरप में गुटबन्दी प्रारम्भ की जिसका परिणाम अच्छा न हुआ। बिस्मार्क प्रथम युद्ध के लिए बहुत कुछ उत्तरदायी था।

बिस्मार्क की सैनिकवादी नीति ने जर्मनी को भी सैनिकवादी बना दिया। कालान्तर मे जर्मनी के लिए इसका विनाशकारी परिणाम हुआ।[2]

प्रश्न (बी० ए०)

१ सन् १८७० के उपरान्त बिस्मार्क की विदेशी-नीति के क्या उद्देश्य थे? वह उन्हें कहां तक प्राप्त कर सका?

२ 'वह अकेला आदमी था जो कि पाँच गेंदों से खेल सका, जिनमें से दो सदा आसमान में रहीं।'
उपर्युक्त कथन की बिस्मार्क के दूसरी शक्तियों के साथ सम्बन्ध के विषय में व्याख्या कीजिये।

३ बिस्मार्क ने यूरोप की राजनीति से फ्रांस को पृथक् रखने के हेतु क्या प्रयत्न किए? उनमें वह कहाँ तक सफल रहा?

४ 'एक व्यक्ति जो इतिहास में बड़ा भारी राजनीतिज्ञ तथा कूटनीतिज्ञ माना जायेगा।'

---

1. 'Bismark was a realist and a materialist. He did not indulge like Talleyrand in visions of a distant future, in dreams of a German Ocean ...Bismark's ambition was to control the continent, to establist a Napoleanic Empire in Europe.' —Sarolea.

2. 'In the long run, the Germans would break the bounds which he had imposed and would seek to conquer all Europe and God too. The Bismarckian system aimed at security and peace, but it left the ruling classes of Germany no alternative—to preserve themselves they had to enter on a path of conquest which would be their ruin. Bismarck, the greatest of political Germans, was for Germany the greatest of disasters.' —Taylor.

उपर्युक्त उक्ति को विस्मार्क के संदर्भ में समझाइये ।

Questions (M. A.)

1 'The year 1879 forms a dividing line in the foreign policy of the Chancellor.' Discuss critically the circumstances which led to a change in the foreign policy of Bismarck after 1879.

2 'The governing principle of Bismarck's policy since 1871 was to safeguard his conquests and to preserve the peace of Europe by keeping Franch in quarantine.........' (Gooch) Discuss.

3 What were the main principles of Bismarck's foreign policy from 1871 to 1890 ? How far did he succeed in realizing the objects he had in view ?

———

४

जर्मनी

विलियम द्वितीय (१८८८-१९१८)

विलियम द्वितीय, चरित्र, गृहनीति, अन्य चांसलर, व्यावसायिक विकास, समाजवाद, सेना का विस्तार, जल-सेना का विस्तार, हैलिगोलैण्ड की प्राप्ति, कील नहर का निर्माण, जनता के नाम सन्देश, विदेश नीति, जर्मनी विश्व-शक्ति के रूप में, विश्व नीति के उद्देश्य, बिस्मार्क के कार्य की समाप्ति, इंगलैंड, टर्की, रूस, फ्रांस के साथ सम्बन्ध, मोरक्को के संकट, प्रथम महायुद्ध।

गृह-नीति

विलियम द्वितीय—९ मार्च १८८८ को ९१ वर्ष की अवस्था में विलियम प्रथम की मृत्यु हो गई। इसके पश्चात् उसका पुत्र फ्रेडरिक तृतीय सिंहासन पर बैठा उस समय उसकी आयु ५७ वर्ष थी। उसके गले में कैंसर था। ९९ दिन तक शासन करने के पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई। कुछ विद्वानों का मत है कि फ्रेडरिक की पत्नी तथा महारानी विक्टोरिया ने मिलकर उसकी हत्या करा दी थी। उन्होंने जर्मन डाक्टरों का इलाज बन्द कराकर अंग्रेज डाक्टरों का इलाज प्रारम्भ कराया था। इसी मध्य उसकी मृत्यु हो गई। परन्तु अधिकांश विद्वान् इस मत से सहमत नहीं हैं। इसके पश्चात् उसका पुत्र विलियम द्वितीय २९ वर्ष की अवस्था में १५ जून १९८८ को सिंहासन पर बैठा। उसने बान विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की थी। पुस्तकीय शिक्षा के साथ-साथ उसने सैनिक शिक्षा भी प्राप्त की थी। १८८६ में फ्रेडरिक ने यह इच्छा प्रकट की थी कि वह विदेशी विभाग से सम्बन्ध स्थापित न करे। जिस समय उसका सिंहासन प्राप्त करने का समय आया तो उसने अपने सैनिकों तथा प्रजा के संतोष के लिए कहा—'मेरे विषय में आम जनता तथा विदेशियों की यह धारणा है कि मैं युद्ध का भारी समर्थक हूं; परन्तु मैं इस धारणा का खण्डन करता हूं और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह मुझको इस गलती से बचाए।' जिस समय वह सिंहासन का अधिकारी मान लिया गया तो उसने बिस्मार्क के सम्बन्ध में बहुत महत्वपूर्ण शब्द कहे 'साम्राज्य एक ऐसी सेना के समान है, जिसका सेनापति युद्ध-क्षेत्र में मारा जा चुका है तथा जिसका वह अधिकारी है, जिसका स्थान सेनापति के बाद का है; बुरी तरह से घायल होकर पड़ा हुआ है। परन्तु हमारे झण्डे को आगे लेकर चलने वाला व्यक्ति, हमारा सुप्रसिद्ध नेता, हमारा महान् चांसलर है। वह हमारा नेतृत्व करे तथा हम उसके पीछे-पीछे चलेंगे।'

विलियम द्वितीय का चरित्र—फिशर महोदय ने विलियम द्वितीय के चरित्र को जर्मनी के लिए एक दुर्भाग्य कहा है। उसके भाषणों की भाषा बहुत ही कटु तथा अव्यावहारिक होती थी। वह बहुत गर्म दिमाग का मनुष्य था। उसके भाषण पागल का प्रलाप सा प्रतीत होते थे। १९०० में चीन में जाने वाली एक जहाजी टुकड़ी को उसने जो संदेश दिया था, वह एक पागल का ही उद्गार हो सकता था। आस्ट्रिया को खुली छूट देकर उसने महायुद्ध को अनिवार्य बना दिया। उसने एक बार कहा था कि मैं आस्ट्रिया के पास हर हालत में चमकदार कवच पहनकर उपस्थित रहूंगा। उसके परामर्शदाता भी उसी की भाँति उग्र विचार वाले थे। उस पर अपने परामर्शदाता होल्सटीन का बहुत अधिक प्रभाव था। बिस्मार्क ने प्रारम्भ में ही विलियम को उससे सतर्क रहने की चेतावनी दी थी; परन्तु बिस्मार्क के पतन के पश्चात् उसका प्रभाव बहुत अधिक हो गया था। १५–१६ वर्ष (१८९०–१९०६) तक उसने जर्मनी की विदेश नीति पर भारी प्रभाव डाला। विद्वानों ने उसको राष्ट्रीय दुर्भाग्य तथा विश्व-युद्ध का वास्तविक कारण माना है।[1] विलियम द्वितीय के व्यक्तित्व का उल्लेख करते हुए टेलर महोदय लिखते हैं—

'He had been formed in the shadow of Germany's expanding and seemingly limitless might. His character reinforced the effect of his environment. He had none of the modest caution and modest cunning of the usual Hohenzollern......William II repudiated the precautions which were the essence of Bismark's system; he thought that the Hohenzollern monarchy was strong enough to stand in Germany, and Germany strong enough to stand in the world, without the support of checks and balances'.

विलियम द्वितीय के समय के चांसलर

१. **कैप्रिवी** (Caprivi)—बिस्मार्क के पतन के पश्चात् कैप्रिवी चांसलर हुआ। वह अपने पद पर १८९० से १८९४ तक रहा। वह एक कुशल सैनिक था; परन्तु उसको कूटनीति तथा राजनीति का अच्छा ज्ञान प्राप्त नहीं था। वह एक सच्चे सैनिक की भाँति अपने सम्राट् की प्रत्येक आज्ञा का पालन करना अपना कर्तव्य समझता था। राजनीति से दूर रहने के कारण उसका कोई शत्रु नहीं था। बिस्मार्क भी उसकी योग्यता से प्रभावित था और वह उसको उच्च सैनिक पद पर देखना चाहता था। बिस्मार्क ने पद-त्याग करते समय कैप्रिवी को अपना उत्तराधिकारी बनाने का सुझाव दिया था।

२. **प्रिंस होहेनलोह** (Prince Hohenlohe)—यह रूस के राज-परिवार से सम्बन्धित था। उसका उद्देश्य रूस के हितों की रक्षा करना था। यह १८९४ से

1. 'A national misfortune, the real father of the world war.'

१९०० तक कार्य करता रहा। यह एक अनुभवी राजनीतिज्ञ था। इससे पूर्व वह बबेरिया में प्रधान मन्त्री, पेरिस में राजदूत तथा अल्सेस-लोरेन में गवर्नर रह चुका था। बिस्मार्क के पश्चात् राजनीतिक अनुभव में वह सबसे आगे था। इसी से १८९० में ही वह इस पद को प्राप्त करना चाहता था। सत्ता की उसको कोई चिन्ता नहीं थी। अतः उसका प्रभाव सबसे कम रहा। इसके कार्यकाल में विदेशी मामलों में विलियन द्वितीय को सबसे अधिक स्वतन्त्रता रही। इस सम्बन्ध में गूच महोदय ने लिखा है—'अपने शासन-काल में कैसर कभी भी इतना अधिक स्वतन्त्र तथा स्वय ही अपना विदेश मन्त्री नहीं रहा, जितना कि वह इन तीन वर्षों में—कैप्रिवी के पतन तथा ब्यूलो के चांसलर नियुक्त होने के मध्य रहा। यही वह युग था जिसमें जर्मनी की नीति ने एक नवीन तथा खतरनाक मोड़ लिया। बिस्मार्क की नीति का पूर्ण परित्याग तथा अग्रगामी नीति पर चलने का प्रारम्भ, बिस्मार्क के पतन के पश्चात् नहीं, अपितु उसके उत्तराधिकारी के पतन के पश्चात् हुआ।'

३. फान ब्यूलो (Von Bulow)—होहेनलोह की मृत्यु के पश्चात् फान ब्यूलो चांसलर बना। यह अपने पद पर १९०० से १९०९ तक कार्य करता रहा। वह एक सुयोग्य तथा कूटनीतिज्ञ चांसलर था। उसने पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली थी। वह सबसे योग्य तथा सबसे हानिकर चांसलर ख्याल किया जाता है। कुछ अंशों में तो वह बिस्मार्क से भी अधिक योग्य ख्याल किया जाता है।[1] इसके साथ-साथ उसमें कुछ दुर्गुण भी थे। वह घमण्डी था। वह जर्मनी को संसार का एक परम शक्तिशाली देश बनाना चाहता था। वह सैनिकवादी तथा साम्राज्यवादी था। उसकी नीति के कारण ही अन्त में जर्मनी अकेला रह गया। गूच महोदय ने लिखा है—'अगले १२ वर्षों में कैसर, ब्यूलो तथा टिर्पिज ने पारस्परिक सहयोग से कार्य किया तथा इन तीनों ही मनुष्यों को सामूहिक रूप से उस नीति के लिए उत्तरदायी ठहराना चाहिये, जिसने कि विश्व के नक्शे में भारी परिवर्तन कर दिये।'

(४) **बेथमैन हालवेग** (Bethmann Hollweg)—इसने १९०९ से १९१७ तक कार्य किया। वह एक ईमानदार व्यक्ति था। परन्तु वह एक कुशल कूटनीतिज्ञ नहीं था। अपने समय की जटिल अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति को समझने की उसमें क्षमता नहीं थी। सम्राट् तथा सेना के उच्च पदाधिकारियों पर उसका कोई प्रभाव नहीं था।

अन्य चांसलर—मिकेलिस (Michaelis), काउण्ट-हर्टलिंग (Count Hertling) तथा प्रिंस मेक्सिमिलियन (Prince Maximilian) नामक तीन चांसलर एक वर्ष के अल्पकाल में ही नियुक्त किए गए। वास्तविकता यह थी कि बिस्मार्क के त्याग-पत्र के पश्चात् किसी भी चांसलर का सम्राट् पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अपना चांसलर वह स्वयं ही था। उसको किसी की भी सलाह की आवश्यकता नहीं थी।

---

1. 'The most briiliant and perhaps the most baneful figure of Imperial Germany under the last of her Hohenzollerns'.

—Times

शासन की सम्पूर्ण नीति वही निर्धारित करता था। वास्तव में सम्राट् ही सम्पूर्ण देश का एकमात्र भाग्य-विधाता बना हुआ था।

व्यावसायिक विकास—विलियम द्वितीय के शासन-काल में जर्मनी का व्यावसायिक विकास अपनी उन्नति की चरम सीमा को पहुंच गया था। १८७० की सन्धि के अनुसार जर्मनी को फ्रांस से पर्याप्त मात्रा में धन तथा अल्सेस और लोरेन के प्रदेश प्राप्त हुए थे। इस धन से जर्मनी को अपना औद्योगिक विकास करने का अच्छा अवसर मिल गया। आधुनिक काल में औद्योगिक विकास के लिए लोहे तथा कोयले की बहुत आवश्यकता है। जर्मनी में इन वस्तुओं की कोई कमी नहीं थी। लोरेन में लोहा भारी मात्रा में था। इसी से जर्मनी का लोहे का उद्योग इंगलैण्ड से भी उन्नत हो गया और वह अमेरिका की बराबरी करने लगा। सार, रूर, सैक्सनी तथा साइलेशिया में भारी मात्रा में कोयला था। इसी से १९१४ तक कोयला उत्पादन करने में संसार के देशों में उसे तृतीय स्थान प्राप्त हो गया। बिस्मार्क संरक्षण की नीति का समर्थक था। विलियम द्वितीय ने भी इसी नीति को जारी रक्खा। इससे जर्मनी का औद्योगिक विकास बहुत अधिक हुआ तथा उसके विदेशी व्यापार में बहुत वृद्धि हो गई। जर्मनी संसार में सबसे अधिक मात्रा में रंग तैयार करने लगा। बिजली, शीशे का सामान तथा औषधियों के निर्माण में जर्मनी ने विशेष उन्नति कर ली। जहाज, अस्त्र-शस्त्र तथा विभिन्न प्रकार की मशीनों का जर्मनी में तेजी से निर्माण होने लगा। वैज्ञानिक तरीकों से कृषि के उत्पादन बढ़ाने का भी प्रयास किया गया। इससे जर्मनी संसार का एक प्रमुख औद्योगिक देश हो गया। वहाँ सड़कों तथा रेलों का बहुत विकास हो गया। अनेक नवीन बन्दरगाहों का निर्माण किया गया। उनमें हैम्बर्ग तथा ब्रेमेन समस्त विश्व में प्रसिद्ध हो गए। उनमें देश-विदेश के जहाजों का आगमन बहुत अधिक बढ़ गया। १८७१ तथा १९१४ के मध्य जर्मनी की जन-संख्या पहले से डेढ़ गुनी बढ़ गई तथा उसका विदेशी व्यापार ५०० गुना बढ़ गया था। इस प्रकार विलियम द्वितीय के शासन-काल में जर्मनी का औद्योगिक विकास इंगलैण्ड से भी अधिक हो गया और वह अमेरिका से प्रतिस्पर्धा करने लगा।

समाजवाद का विकास—व्यावसायिक विकास के साथ-साथ जर्मनी में समाजवाद का भी विकास हुआ। बिस्मार्क समाजवाद का घोर विरोधी था। वह एक ओर तो सुविधाओं द्वारा मजदूरों को सन्तुष्ट करने का प्रयास करता था तथा दूसरी ओर कानूनों द्वारा समाजवादियों का दमन करने का प्रयास करता था। विलियम द्वितीय ने समाजवादियों के साथ उदारता का बर्ताव किया। उसने उनके विरुद्ध पिछले कानूनों को क्रियान्वित नहीं किया। उसका यह अनुमान था कि मजदूरों की दशा सुधारने से समाजवादियों का प्रभाव स्वतः ही समाप्त हो जायगा। इससे उनका उत्साह बहुत बढ़ गया और वे दुगुने उत्साह से अपना संगठन तथा प्रचार करने लगे। उनका प्रचार राष्ट्र-विरोधी नहीं था। अतः वे देश में बहुत लोकप्रिय हो गए। उन्होंने सम्राट् की निरंकुशता का भी विरोध करना प्रारम्भ किया। इससे विलियम द्वितीय घबरा गया। उसने १८९१ में सैनिकों की एक सभा में भाषण देते हुए कहा—'यदि

समाजवादियों का आन्दोलन इसी प्रकार प्रगति करता चला गया तो मुझे उन पर गोली चलाने का आदेश देना होगा तथा सैनिकों को उसका पालन करना होगा।' उसके इस भाषण का बहुत विरोध हुआ। प्रत्येक निर्वाचन में समाजवादियों को अधिकाधिक स्थान प्राप्त होने लगे। उनकी शक्ति में बहुत वृद्धि हो गई। वे स्वेच्छाचारी शासन के स्थान पर जनतन्त्रात्मक शासन की माँग करने लगे। इससे विलियम द्वितीय उनसे बहुत भयभीत हो गया। उसने १८६५ में उनके दमन के लिए एक कानून पास करना चाहा; परन्तु संसद ने उसको अस्वीकार कर दिया। इस पर विलियम द्वितीय समाजवादियों का घोर शत्रु हो गया। समाजवादियों की शक्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली गई; परन्तु फिर भी उनको कभी भी अपना मन्त्रि-मण्डल बनाने में सफलता प्राप्त न हुई।

जर्मन सेना का विस्तार—विलियम द्वितीय एक बहुत बड़ा सैनिकवादी था। वह यह भली प्रकार जानता था कि जर्मनी की इतनी उन्नति सेना के बल पर ही हुई है और सेना के बल पर ही इसको स्थिर रक्खा जा सकता है। अतः वह सेना का अधिक से अधिक विस्तार करना आवश्यक समझता था। सिंहासन प्राप्त करने पर उसने अपना सबसे पहला संदेश सेना के नाम ही भेजा। उस संदेश में उसने कहा था—'हम तथा आपको एक दूसरे के लिए बनाया गया है। हमें एक दूसरे से संगठित रहना चाहिए। भगवान् हमको शान्ति प्रदान करे।' विलियम द्वितीय ने रक्षा के साधनों की वृद्धि पर बहुत जोर दिया। कैप्रिवी ने चांसलर होते ही शान्ति-कालीन सेना में अठारह हजार की वृद्धि का प्रस्ताव रक्खा। १३ नवम्बर १८९२ को उसने ७० हजार की वृद्धि का प्रस्ताव रक्खा। इससे जर्मन सेना की संख्या ४ लाख ८६ हजार हो गई। ७७ हजार पदाधिकारी इससे अलग थे। जर्मनी की सैनिक शक्ति में इसी प्रकार निरन्तर विस्तार होता रहा और १९१४ तक उसके सैनिकों की संख्या सत्रह लाख पहुंच गई। अनिवार्य सैनिक सेवा की अवधि तीन वर्ष से घटा कर दो वर्ष कर दी गई।

जल-सेना का विस्तार—स्थल-सेना के विस्तार की भांति जल-सेना के विस्तार के लिये भी विलियम द्वितीय बहुत प्रयत्नशील था। अब तक जल-सेना का जर्मनी के लिए कोई महत्व नहीं था, क्योंकि बिस्मार्क जल-सेना का विस्तार कर इंगलैण्ड से शत्रुता नहीं करना चाहता था। परन्तु विलियम द्वितीय ने जल-सेना को बहुत महत्व दिया। अब तक किसी भी जर्मन सम्राट् ने जल-सेना के नाम संदेश नहीं दिया था; परन्तु विलियम द्वितीय ने जल-सेना के नाम संदेश भेज कर उसकी महत्ता को स्पष्ट स्वीकार किया। उसने अपने संदेश में कहा था कि 'बचपन से ही मैंने जल-सेना के कार्य तथा हितों में दिलचस्पी ली है।' वह साम्राज्य की सुरक्षा तथा प्रतिष्ठा के लिए एक शक्तिशाली जहाजी बेड़ा आवश्यक समझता था। इसी से उसने कहा था—'सामुद्रिक शक्ति ही विश्व-शक्ति है।'[1] प्रथम जनवरी १९०० को भाषण देते हुए

1. 'Sea power is the world power.'

उसने कहा—'मेरे पितामह ने स्थल-सेना के विकास के लिए जो किया वही मैं जल सेना के विकास के लिए करूँगा।'[1] एक दूसरे स्थान पर उसने इसी प्रकार कहा था—'मैं तब तक विश्राम नहीं करूँगा जब तक मैं अपने जहाजी बेड़े को उसी स्तर पर न पहुंचा दूं, जिस पर कि मेरी सेना है।[2]

नौ-सेना के विस्तार का कार्य टिर्पिज (Tirpitz) नामक एक योग्य अधिकारी को सौंपा गया। टिर्पिट्ज एक साधारण व्यक्ति था; परन्तु अपनी योग्यता के बल पर वह नौ सेना के अध्यक्ष-पद पर पहुंच गया। अपने पद का कार्य भार संभालते ही उसने नौ सेना के विस्तार के लिए एक विधेयक तैयार किया। उसके पूर्ण होने की अवधि सात वर्ष थी। कुछ सदस्यों ने इस विधेयक का विरोध किया। परन्तु अन्त में अप्रैल १८९८ में वह पास हो गया और उसके अनुसार १२ युद्ध-पोत, समुद्र-तट की रक्षा करने के लिए ८ सशस्त्र जहाज, १० बड़े तथा २३ छोटे क्रूजर बनाने का निश्चय किया गया। नैवी लीग नामक एक नवीन संस्था का निर्माण किया गया। उसका उद्देश्य जनता में नौ सेना के महत्व तथा आवश्यकता का प्रचार करना था। २३ सितम्बर १८९८ को डैन्जिग में भाषण देते हुए विलियम द्वितीय ने कहा था—'हमारा भविष्य समुद्र पर है'।[3] इस समय जर्मनी की नौ सेना १८७१ की अपेक्षा तीन गुनी हो गई थी। इस प्रबल महत्वाकांक्षा के फलस्वरूप अब इङ्गलैण्ड के पश्चात् जर्मनी का नौ सेना की दृष्टि से दूसरा स्थान हो गया था।[4] जर्मनी के इस नौ-सैनिक-विस्तार के परिणाम-स्वरूप उसका इङ्गलैंड से संघर्ष होना अनिवार्य था।

हेलीगोलैण्ड की प्राप्ति—विलियम द्वितीय नौ सेना के विस्तार के लिये बहुत प्रयत्नशील था। अतः वह नौ सेना को सुदृढ़ करने के लिए हेलीगोलैण्ड पर अधिकार करना चाहता था। फलतः १८९० में उसने इङ्गलैण्ड को उत्तरी अफ्रीका में जन्जीबार टापू देकर उत्तरी सागर में जर्मन तट से कुछ दूर पर स्थित हेलीगोलैण्ड नामक द्वीप प्राप्त कर लिया तथा इसको उच्च कोटि का एक नाविक अड्डा बना लिया। इस द्वीप को प्राप्त कर कैसर अत्यधिक प्रसन्न हुआ।

नील नहर का निर्माण—उत्तरी सागर तथा बाल्टिक सागर को मिलाने के लिए १८९५ में नील नहर का निर्माण किया गया। इससे उत्तरी सागर से बाल्टिक सागर तक पहुंचने के लिए डेन्मार्क का चक्कर लगाने की आवश्यकता न रही। इस

1. 'What my grand-father did for the army on the land that is what I shall do for navy.,

2. 'I will never rest until I have raised my navy to a position similar to that occupied by my army'

3. 'The future of Germany lies on sea.'

4. 'Under such aggressive and ambitious leadership as this Germany supplied herself with powerful and modern fleet,second [illegible]ly to that of England.'

- Hazen.

नहर के निर्माण के फलस्वरूप जर्मनी की नौ-सेना की उपयोगिता में बहुत वृद्धि हो गई। नहर के उद्घाटन-भाषण के समय विलियम द्वितीय ने नहर के व्यापारिक महत्व पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला और विश्व-शान्ति के लिए कामना की क्योंकि शान्ति के समय ही व्यापार का विकास सम्भव है।

जनत के नाम संदेश—विलियम द्वितीय ने अपना तीसरा संदेश जनता के नाम दिया। उसमें उसने कहा कि राज्य करना हमारा दैवी अधिकार है। जनता को हमारे विरुद्ध विद्रोह करने का अधिकार नहीं है। इसके साथ-साथ उसने प्रजा का संरक्षण करने तथा उसके साथ अच्छा बर्ताव करने का आश्वासन दिया। इसके एक सप्ताह पश्चात् लोक-सभा में भाषण देते हुए उसने कहा—'सेना के प्रतिमेरा अत्यधिक प्रेम है। परन्तु मैं शान्ति को भंग करने वाला कोई कार्य करना नहीं चाहता। दूसरे देशों के साथ शान्ति तथा प्रेम का व्यवहार करना मेरी विदेश नीति का प्रमुख उद्देश्य है। देशों को जीतना मेरा उद्देश्य नहीं है। आस्ट्रिया तथा इटली के मैत्री-संगठन को बनाए रक्खा जायगा। जार के साथ मित्रता का व्यवहार किया जायगा। बिस्मार्क के साथ अच्छे सम्बन्ध रक्खे जायंगे।'

विदेशी नीति

बिस्मार्क के पतन के पश्चात् जर्मनी की विदेशी नीति विलियम द्वितीय के हाथ में आ गई। विलियम द्वितीय एक महान् शासक होते हुए भी एक कुशल राजनीतिज्ञ नहीं था। वह घमण्डी था। वह कहा करता था—'मैं बड़े आदमी का पुत्र ही नहीं, अपितु स्वयं भी बड़ा हूँ। मैं दूसरा बिस्मार्क हूं।' मनुष्यों को पहिचानने की उसमें योग्यता नहीं थी। बिस्मार्क जैसी कूटनीतिज्ञता का उसमें सर्वथा अभाव था। उसकी विदेश-नीति का आधार विश्व-राजनीति (world politics) थी। विश्व में कहीं पर भी कोई ऐसा कार्य नहीं होना चाहिये, जिसमें कि जर्मनी की सम्मति न ली जाय।[1] उसका उद्देश्य विश्व-शक्ति प्राप्त करना अथवा पतन के लिये तैयार रहना था।[2] वह जर्मन जाति को सर्वश्रेष्ठ मानता था। उसका कहना था कि समस्त विश्व को सभ्य बनाने के लिए ही ईश्वर ने उसको जन्म दिया है।[3] इसी उग्र राष्ट्रीय भावना के आधार पर पान जर्मन लीग (Pan German League) की स्थापना की गई थी। जर्मन निवासी आस्ट्रिया, स्विट्जरलैण्ड, बेल्जियम, हालैण्ड तथा लेम्जेमबर्ग आदि अनेक प्रदेशों में रहते थे। अतः वह इन सब पर अधिकार करना चाहता था।

बिस्मार्क जर्मनी को एक संतुष्ट राष्ट्र कहता था। बाल्कन प्रदेश में भी उसकी कोई रुचि न थी। वह एक साधारण सैनिक की हड्डियों का मूल्य भी उससे अधिक समझता था। यूरोप से बाहर के मामलों में उसकी कोई दिलचस्पी नहीं थी; परन्तु

1. 'Nothing must go on anywhere in the world in which Germany does not play a part.'
2. World power or downfall.'
3. 'God has called us to civilized the world.'

विलियम द्वितीय जर्मनी को एक 'विश्व शक्ति' बनाना चाहता था। अतः उसका उद्देश्य समस्त विश्व के मामलों में सक्रिय भाग लेना था। अपने बढ़ते हुए उत्पादन की खपत के लिए वह विश्व भर में बाजार चाहता था। उसका कहना था कि संसार में कोई भी घटना जर्मनी और जर्मन सम्राट की इच्छा के विरुद्ध नहीं होनी चाहिए। इस प्रकार विलियम द्वितीय ने बिस्मार्क की महाद्वीपीय नीति का परित्याग कर विश्व नीति का आश्रय लिया।

जर्मनी विश्व-शक्ति के रूप—अफ्रीका की लूट में जर्मनी बहुत देरी से पहुंचा था। इसका उत्तरदायित्व बिस्मार्क का था, क्योंकि वह उपनिवेश-स्थापना का विरोधी था। फिर भी जर्मनी ने दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका, तोजोलैंड, केमरून, न्यूगिनी तथा प्रशान्त महासागर के कुछ टापुओं पर अधिकार कर लिया। लेकिन बिस्मार्क के लिए उनका कोई विशेष महत्व नहीं था। परन्तु विलियम द्वितीय के लिए उनका महत्व बहुत अधिक था। औपनिवेशिक साम्राज्य-स्थापना उसका परम लक्ष्य था। अतः इसके लिए वह बराबर प्रयत्नशील रहा। नवम्बर १८९७ में चीन में दो जर्मन पादरियों की हत्या कर दी गई। उसका लाभ उठाकर उसने चीन में एक जंगी जहाज भेज दिया तथा कियाओचाओ पर अधिकार कर लिया। मार्च १८९८ में उसने कियाओचाओ तथा शान्टुंग के कुछ भाग का ९९ वर्ष के लिए पट्टा लिखा लिया। १९०० में चीन में बॉक्सर आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। उसका उद्देश्य विदेशियों को देश से भगाना था। फलतः यूरोप के राष्ट्रों ने चीन के विरोध के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय सेना भेजी। उसका सेनापति एक जर्मन बनाया गया। १८९९ में स्पेन से कैरोलिन द्वीप खरीद लिया गया। १९०० में अमेरिका तथा ब्रिटेन से समझौता कर समोआ द्वीप का कुछ भाग प्राप्त कर लिया गया।

विश्व-नीति के उद्देश्य:—जर्मनी की विश्व-नीति के निम्नलिखित उद्देश्य थे—

(१) **पूर्व की ओर बढ़ना** (Drang Nach Osten)—जर्मनी के पास जो उपनिवेश थे उनसे उसको कोई विशेष लाभ नहीं हो रहा था। विश्व के अच्छे प्रदेशों पर यूरोप की शक्तियों ने अधिकार कर लिया था। बिस्मार्क के लिए बाल्कन प्रदेश तथा भूमध्यसागर का कोई महत्व था नहीं, परन्तु विलियम द्वितीय उनको लालच भरी दृष्टि से देखता था। अतः उसका उद्देश्य बालकान प्रदेश में होकर पूर्व की ओर बढ़ना था। वह बर्लिन से बगदाद तक रेलवे लाइन बनाना चाहता था। आस्ट्रिया भी इसी ओर अपना विस्तार करना चाहता था। अतः उसने उसके साथ भी घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किए। आस्ट्रिया तथा रूस के हित परस्पर-विरोधी थे। अतः रूस तथा जर्मनी के सम्बन्ध भी बिगड़ गए।

(२) **अफ्रीका में साम्राज्य-विस्तार करना**—बिस्मार्क उपनिवेश-स्थापना का विरोधी था। अतः अफ्रीका की लूट में जर्मनी ने बहुत पीछे प्रवेश किया; परन्तु विलियम द्वितीय अफ्रीका में उपनिवेश-स्थापना को बहुत महत्व दे रहा था। इसी से मोरक्को के प्रश्न पर उसको फ्रांस से संघर्ष करना पड़ा।

(३) **सुदृढ़ नौ सेना का निर्माण**—जर्मनी का निर्माण युद्ध से हुआ था। अतः वह युद्ध को बहुत महत्व दे रहा था। उपनिवेश-स्थापना के लिए नौ सेना का विस्तार करना आवश्यक था। अत: विलियम द्वितीय ने नौ-सेना के विस्तार को बहुत महत्व दिया। वास्तव में उसका उद्देश्य इङ्गलैंड की नौ-सेना का मुकाबला करना था। इङ्गलैंड की यह नीति थी कि उसकी नौ-सेना यूरोप के किन्हीं दो देशों के बराबर रहे। अतः इस सम्बन्ध में जर्मनी से उसका संघर्ष होना अनिवार्य है।

बिस्मार्क के कार्य की समाप्ति—विलियम द्वितीय की उपर्युक्त विदेश नीति ने बिस्मार्क के कार्य का अन्त कर दिया। बिस्मार्क की परराष्ट्र नीति के निम्नलिखित उद्देश्य थे—

१. यूरोप की राजनीति में फ्रांस को अकेला रखना जिससे कि जर्मनी के विरोध में वह किसी गुट का निर्माण न कर सके।

२. फ्राँस का ध्यान उपनिवेश-स्थापना की ओर लगाना, जिससे कि वह अलसेस-लोरेन के प्रदेशों को भूल जाय।

३. आस्ट्रिया तथा रूस के साथ मित्रता के सम्बन्ध रक्खे जायें।

४. इङ्गलैंड से अच्छे सम्बन्ध रक्खे जायें। इसलिए उसने उपनिवेश-स्थापना की ओर ध्यान नहीं दिया तथा नौ-सेना का विस्तार नहीं किया। इङ्गलैंड का उन्हीं देशों से संघर्ष होता है जो कि इन दो बातों में उसको चुनौती देता है।

विलियम द्वितीय की विश्व-नीति के कारण बिस्मार्क के कार्य का विनाश हो गया। नौ-सेना के विस्तार तथा उपनिवेश-स्थापना के प्रश्न पर इङ्गलैंड से उसके सम्बन्ध बिगड़ गये। मोरक्को के प्रश्न पर फ्राँस से भी कटुता उत्पन्न हो गई। रूस ने भी उससे नाराज होकर फ्राँस से मित्रता कर ली। फलत: फ्रांस के एकाकीपन का अन्त हो गया। १६०७ में जर्मनी, आस्ट्रिया तथा इटली की त्रिराष्ट्र-सन्धि के विरोध में फ्राँस, रूस तथा इङ्गलैंड ने हार्दिक मैत्री-सम्बन्ध स्थापित कर लिए। इस प्रकार यूरोप दो सैनिक शिविरों में विभक्त हो गया। उधर इटली भी त्रिराष्ट्र-सन्धि से निकलने के लिये प्रयत्न करने लगा। इस प्रकार आस्ट्रिया ही उसका मित्र रह गया। टर्की से भी उसने मित्रता स्थापित कर ली थी। इस प्रकार इङ्गलैंड जैसे शक्तिशाली राष्ट्र से शत्रुता कर टर्की जैसे निर्बल राष्ट्र से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करना कूटनीतिज्ञता तथा बुद्धिमानी का कार्य नहीं कहा जा सकता।

इङ्गलैंड और जर्मनी—इङ्गलैंड शानदार पृथक्त्व की नीति का पालन करते हुए भी जर्मनी से मैत्री-सम्बन्ध बनाए रहा। उधर बिस्मार्क भी इंगलेंड को संतुष्ट करने का प्रयास करता रहा। इस प्रकार बिस्मार्क के समय में इंगलैंड तथा जर्मनी के सम्बन्ध अच्छे बने रहे। निम्नलिखित अवसरों पर इस मैत्री-सम्बन्ध की परीक्षा भी हो चुकी थी—

१. सन् १८६० में इंगलैंड ने जन्जीबार के बदले में हेलिगोलैंड का द्वीप जर्मनी को दे दिया था।

२. सन् १८९० के बर्लिन-सम्मेलन में दोनों देशों ने शान्तिपूर्वक अपनी समस्याओं का समाधान कर लिया था।

३. सन् १८९३ में दोनों देशों ने पश्चिमी अफ्रीका के झगड़ों का शान्तिपूर्वक समाधान कर लिया था।

विलियम द्वितीय के सम्बन्ध भी प्रारम्भ में इंगलैंड से अच्छे रहे। वह प्रायः प्रतिवर्ष इंगलैंड जाया करता था। महारानी विक्टोरिया के प्रति वह अपार श्रद्धा रखता था। मार्च १८९० में 'प्रिंस ऑफ वेल्स' ने बर्लिन की यात्रा की थी। इस अवसर पर विलियम द्वितीय ने कहा था कि वाटरलू के मैदान में दोनों देशों ने एक उद्देश्य के लिए अपना रक्त बहाया था। भविष्य में भी उसने इसी प्रकार के सम्बन्ध बनाये रखने की कामना की। जिस समय १८९१ में विलियम द्वितीय ने इंगलैंड की यात्रा की तो वहाँ उसका भारी स्वागत हुआ। मैनशन हाउस की स्पीच में उसने कहा था—'मैं सदैव से इस सुन्दर देश को अपना घर अनुभव करता रहा हूं, क्योंकि मैं एक उच्च चरित्र वाली महारानी का दौहित्र हूँ। इसके साथ-साथ इन दोनों देशों के नागरिकों की नसों में एक ही रक्त बहता है। मैं यथा शक्ति इन दोनों देशों की मित्रता बनाए रखने का प्रयास करूंगा। मेरा उद्देश्यशान्ति स्थापित करना है, जिससे कि हम गम्भीर समस्याओं का समाधान कर सकें।' महारानी विक्टोरिया की मृत्यु के समय भी वह इंगलैंड गया था। उस समय भी उसने दोनों देशों की मित्रता पर जोर दिया था।

वास्तव में इस समय इंगलैंड ही जर्मनी की ओर झुका हुआ था, क्योंकि इस समय रूस तथा फ्रांस से उसके सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। जर्मनी की इंगलैंड के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी। वह इंगलैंड से शत्रुता रखता था। जेमसन के आक्रमण की असफलता पर जनवरी १८९६ में विलियम द्वितीय ने ट्रांसवाल के प्रेसीडेन्ट क्रूगर को बधाई का तार भेजा था। इससे इंगलैंड में जर्मनी के प्रति भारी क्रोध प्रकट किया गया। महारानी विक्टोरिया ने अपने दौहित्र की निन्दा की। सैलिसबरी ने कहा था 'आक्रमण एक मूर्खता थी; परन्तु तार उससे भी बड़ी मूर्खता थी।' १८९८ में विलियम द्वितीय ने घोषित किया था कि 'जर्मनी का भविष्य समुद्र पर निर्भर है।' इस घोषणा को भी इंगलैंड में चिन्ता की दृष्टि से देखा गया; परन्तु इंगलैंड के कूटनीतिज्ञ यह भली प्रकार जानते थे कि यह भविष्य बहुत दूर था। इससे दोनों देशों ने पुनः अपने मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर लिये। जर्मनी ने अंग्रेजों द्वारा सूडान की पुनः विजय की प्रशंसा की तथा समोआ के सम्बन्ध में दोनों देशों ने समझौता कर लिया। फिर भी दोनों देशों में मन-मुटाव चलता रहा। इंगलैंड के कूटनीतिज्ञ तथा जनता जर्मन सम्राट् की गत धृष्टता को न भूले। सम्राट् विलियम द्वितीय भी अपने पत्रों में अंग्रेजों की निन्दा करता रहा। १८९९ में इंगलैंड के उपनिवेश-मन्त्री चैम्बरलेन ने जर्मनी तथा अमेरिका के साथ मिलकर एक त्रि-राष्ट्र सन्धि करने का प्रस्ताव रक्खा था। परन्तु जर्मन चांसलर ब्यूलो ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। वह यह नहीं चाहता था कि

जर्मनी इंगलैंड से मित्रता कर उसको अफ्रीका तथा एशिया में अपना विस्तार करने का अवसर दे। उसने स्पष्ट शब्दों में आगामी युद्ध में इंगलैंड का विरोध करने का निश्चय प्रकट किया। फलतः इंगलैंड को अपनी शानदार पृथक्त्व की नीति का परित्याग करने के लिये विवश होना पड़ा। १९०२ में उसने जापान से सन्धि कर ली। १९०४ में उसने फ्राँस से सन्धि कर ली। फ्रांस तथा रूस में १८९३ में ही एक सन्धि हो गई थी। इससे रूस तथा इंगलैंड के मध्य की शत्रुता बहुत कुछ कम हो गई। एक अवसर पर रूस के पेरिस स्थित राजदूत ने कहा था—'हमारे मित्रों के मित्र हमारे भी मित्र हैं।' उसकी यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई और १९०७ में इंगलैंड ने रूस के साथ सन्धि कर ली। इस प्रकार जर्मनी, आस्ट्रिया तथा इटली की त्रिराष्ट्र सन्धि के विरोध में फ्राँस, रूस तथा इंगलैंड के हार्दिक मैत्री-सम्बन्ध की स्थापना हो गई।

वास्तव में विलियम द्वितीय के लिये इंगलैंड की मित्रता की कोई चिन्ता नहीं थी। विलियम द्वितीय ने अंग्रेजों के मित्रता के समझौते की अवहेलना करते हुए कहा था कि बर्लिन का रास्ता विएना होकर आता है।[1] इसका अर्थ था कि इंगलैंड को पहले आस्ट्रिया से मित्रता करनी चाहिये। तत्पश्चात् जर्मनी से उसकी मित्रता सम्भव हो सकेगी; परन्तु इंगलैंड आस्ट्रिया से मित्रता करना नहीं चाहता था, क्योंकि पूर्वी समस्या के सम्बन्ध में दोनों देशों के हित परस्पर-विरोधी थे।

विलियम द्वितीय की घबराहट—इंगलैंड तथा फ्रांस का समझौता दोनों देशों के पारस्परिक मतभेदों को दूर करने के लिए किया गया था। यह किसी भी देश के विरोध में नहीं था। परन्तु फिर भी इससे जर्मनी की शक्ति को बहुत धक्का लगा और सदैव के लिये उसका प्रभाव समाप्त हो गया। विलियम द्वितीय को इससे बहुत घबराहट हुई। उधर इटली भी फ्रांस की ओर झुकने लगा था। इससे जर्मनी मित्र-हीन होता जा रहा था। अतः उसने घोषित किया कि जर्मनी को चारों ओर से घेरे जाने (Encirclement) का प्रयास किया जा रहा है। अपनी स्थिति को सुरक्षित करने के लिये जर्मनी ने यह प्रयास किया कि फ्रांस तथा इंगलैंड के मध्य का यह समझौता भंग हो जाय। परन्तु इसमें जर्मनी को सफलता न मिली। अतः उसने रूस के सम्राट् को अपनी ओर मिलाने का प्रयास प्रारम्भ कर दिया। परन्तु जर्मनी को अपने इस उद्देश्य में भी सफलता न मिली। फलतः वह इंगलैंड को अपना परम शत्रु मानने लगा।

टर्की तथा जर्मनी—टर्की का जर्मनी के लिए बहुत अधिक महत्व था, क्योंकि टर्की से होकर पश्चिमी एशिया को स्थल-मार्ग था। इसके द्वारा जर्मनी सुदूर पूर्व में अपना प्रभाव स्थापित कर सकता था। टर्की से जर्मनी को पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल मिल सकता था। वहाँ से उसको वीर योद्धा भी मिल सकते थे। बढ़ती हुई जर्मन जन-संख्या को भी वहाँ बसाया जा सकता था। बर्लिन काँग्रेस के पश्चात् टर्की तथा

1. 'The way to Berlin lies through Viennas'.

इङ्गलैण्ड के सम्बन्ध बिगड़ने आरम्भ हो गये थे । अतः इस सुअवसर का लाभ उठाकर विलियम द्वितीय ने टर्की में अपना प्रभाव स्थापित करना प्रारम्भ किया । उसने दो बार टर्की की यात्रा की । अपनी दूसरी यात्रा के दौरान में उसने दमिश्क में भाषण देते हुए कहा—'सुल्तान अब्दुल हमीद तथा संसार के विभिन्न प्रदेशों में बसे हुए तीस करोड़ मुसलमान यह विश्वास रक्खें कि मैं उनका सच्चा मित्र हूं ।' इस समय जर्मन पदाधिकारियों द्वारा प्रशिक्षित सुल्तान अब्दुल हमीद की सेनायें आर्मिनिया में भयंकर रक्तपात कर रही थी । इससे समस्त ईसाई-जगत् उससे नाराज था । विलियम द्वितीय की उक्त घोषणा से इङ्गलैंड तथा फ्रांस में बहुत असंतोष हुआ, क्योंकि इन दोनों देशों के साम्राज्य में बहुत अधिक संख्या में मुसलमान रहते थे । १६०२ में एक समझौते द्वारा विलियम द्वितीय ने बर्लिन से बगदाद तक एक रेलवे लाइन बनाने का अधिकार प्राप्त कर लिया । इङ्गलैंड इससे बहुत भयभीत हुआ, क्योंकि इससे पूर्व में स्थित उसके साम्राज्य भारतवर्ष के लिए भारी खतरा उत्पन्न हो गया था । इस रेलवे लाइन की योजना से इङ्गलैंड तथा जर्मनी के सम्बन्ध बहुत अधिक बिगड़ गए । इस प्रकार अपनी मूर्खता तथा अदूरदर्शिता के कारण विलियम द्वितीय ने इङ्गलैंड जैसे शक्तिशाली देश की मित्रता का परित्याग कर टर्की जैसे निर्बल राष्ट्र से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित किये ।

रूस तथा जर्मनी—मरते समय वृद्ध सम्राट् ने अपने पौत्र को यह उपदेश दिया था कि रूस से मैत्री-सम्बन्ध बनाये रखना । अतः सिंहासन पर बैठने के एक महीने पश्चात् ही उसने रूस की यात्रा की । इस यात्रा में उसका भाई तथा बिस्मार्क भी उसके साथ गये । इस यात्रा के अवसर पर विलियम द्वितीय ने कहा था कि हम किसी भी ऐसे कार्य में जो आस्ट्रिया के हित की दृष्टि से बहुत अधिक महत्वपूर्ण न हो, रूस के कार्य में बाधा नहीं डालना चाहते हैं । जार तथा जारीना को इस यात्रा से बहुत प्रसन्नता हुई । इस प्रकार विलियम द्वितीय की यह यात्रा सफल रही ।

बिस्मार्क के पतन के पश्चात् विदेश-नीति का सारा कार्य विलियम द्वितीय ने अपने हाथ में ले लिया था । उसने रूस का मित्रता का परित्याग कर आस्ट्रिया तथा टर्की से निकट सम्बन्ध स्थापित करने प्रारम्भ किये । १८८७ की सुरक्षा संधि १८६० में दोहराई जानी थी; परन्तु विलियम द्वितीय ने उसको दोहराने से इंकार कर दिया । गूच ने लिखा है कि इस पर जार को आश्चर्य हुआ; परन्तु क्रोध नहीं आया । उसने गियर्स को लिखा कि मुझे इस बात से संतोष है कि सन्धि की पुनरावृत्ति के लिये इन्कार पहले जर्मनी की ओर से किया गया है तथा मुझको इस बात का भी कोई दुःख नहीं है कि उस सहयोग का अन्त हो गया है । इस प्रकार रूस अकेला होने पर फ्रांस की ओर झुकने लगा । अन्त में १८६३–६४ में उन्होंने द्विवर्गी सन्धि (Dual Alliance) कर ली । इससे फ्रांस का एकाकीपन नष्ट हो गया । विलियम द्वितीय को कभी भी यह आशा नहीं थी कि परस्पर-विरोधी फ्रांस तथा रूस में संन्धि सम्भव है । अतः इससे उसको बहुत चिन्ता हुई । उसने जार को लिखा था—'मैं

इस संधि से नहीं घबराता; परन्तु प्रजातन्त्रवादी फ्रांस के साथ यह संधि होने से विश्व के राजतन्त्रवाद को भारी धक्का लगेगा।' वास्तव में इस सन्धि से फ्रांस की शक्ति में बहुत वृद्धि हुई तथा जर्मनी के लिए खतरा उत्पन्न हो गया। अब यूरोप की राजनीति से जर्मनी की प्रधानता समाप्त हो गई। इस सन्धि द्वारा यूरोप दो गुटों में बट गया। एक गुट में जर्मनी, आस्ट्रिया तथा इटली थे। दूसरे गुट में फ्राँस तथा रूस थे। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि ये दोनों गुट परस्पर-विरोधी थे। यह सन्धि सुरक्षात्मक थी। इससे यूरोप में शक्ति-संतुलन स्थापित हो गया। १६०४ तक यह शक्ति-संतुलन भली प्रकार चलता रहा; परन्तु इसके पश्चात् यह बिगड़ना प्रारम्भ हो गया, क्योंकि १६०४ में इङ्गलैंड ने फ्राँस से सन्धि करली। दूसरे इटली जर्मनी तथा आस्ट्रिया का साथ छोड़कर फ्राँस तथा इङ्गलैंड की ओर झुकने लगा।

रूस को मिलाने का प्रयास—हम पीछे उल्लेख कर आये हैं कि फ्रांस तथा इङ्गलैंड की सन्धि से विलियम द्वितीय को बहुत चिन्ता हुई थी। अतः उसने यह प्रयास किया था कि दोनों देशों के मध्य का वह समझौता भंग हो जाय। परन्तु इस कार्य में उसको सफलता न मिली। अतः उसने रूस के जार निकोलस को अपनी ओर मिलाने का प्रयास किया। इसके लिए वह उसे १६०४ से १६०६ तक पत्र व्यवहार करता रहा। यह पत्र-व्यवहार इतिहास में विली-निकी पत्र-व्यवहार (Willy Nicky Correspondence) के नाम से प्रख्यात है। इसके द्वारा वह रूस को अपनी ओर मिला कर एँग्लो-जापानी गुट के विरोध में अपने गुट का निर्माण करना चाहता था। अन्त में जुलाई १६०५ में दोनों देशों के सम्राटों ने फिनलैंड के ब्योर्को (Biorko) नामक स्थान पर मिलकर एक गुप्त समझौता कर लिया। इस गुप्त समझौते के अनुसार निम्नलिखित निर्णय किये गये—

१. यदि दोनों देशों में से किसी भी एक देश की सीमा पर कोई देश आक्रमण करेगा तो दूसरा अपने मित्र को पूरी सैनिक सहायता देगा।

२. दोनों देशों में से कोई भी देश अलग सन्धि नहीं करेगा।

३. रूस फ्राँस को भी इस सन्धि में सम्मिलित करने का प्रयास करेगा।

परन्तु रूस में इस सन्धि का बहुत विरोध हुआ। फ्रांस ने भी इसमें सम्मिलित होना स्वीकार नहीं किया। अतः रूस के जार सम्राट् निकोलस ने जर्मनी के सम्राट् विलियम द्वितीय को लिख दिया कि हम इस सन्धि के मानने के लिये बाध्य नहीं हैं। फलतः यह सन्धि टूट गई। इस प्रकार विलियम द्वितीय को रूस को अपने साथ मिलाने में सफलता प्राप्त नहीं हुई।

जर्मनी और फ्रांस—फ्राँस भी जर्मनी का शत्रु था। बिस्मार्क बराबर यह प्रयास करता रहा कि वह यूरोप की राजनीति में अकेला रहे। इससे बिस्मार्क यूरोप के अन्य देशों से अच्छे सम्बन्ध बनाये रहा। रूस को अपने साथ रखना उसकी नीति का केन्द्र-बिन्दु था। परन्तु विलियम द्वितीय को रूस को अपने साथ रखने की चिन्ता नहीं थी। अतः उसने रूस के साथ की हुई १८८७ की सन्धि की १८९० में पुनरावृत्ति

न की। फलतः रूस जर्मनी से अलग हो गया और उसने १८९३–९४ में फ्रांस के साथ सन्धि कर ली। इस प्रकार फ्रांस के एकाकीपन का अन्त हो गया। इस सन्धि के होने पर विलियम द्वितीय को बहुत चिन्ता हुई और उसने रूस के सम्राट् को लिखा–'फ्राँस के साथ सन्धि करने से आपको चाहे हानि हो या लाभ, परन्तु आप इन बदमाशों को अनुशासन में शान्तिपूर्वक रक्खें।'[1] अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इस प्रकार की भाषा का प्रयोग करना बहुत भयंकर है।

मोरक्को का प्रथम संकट (१९०५)— १९वीं शताब्दी में फ्राँस भी अपना औपनिवेशिक विस्तार कर रहा था। इसके लिए उसने मोरक्को को चुना। मोरक्को की राजधानी फेज थी तथा वहाँ राजतन्त्र था। फ्राँस ने मोरक्को के पास के प्रदेश अलजीरिया पर पहले ही अधिकार कर लिया था। अतः अब वह इन दोनों को मिलाना चाहता था। इससे फ्रांस वहाँ अपना प्रभाव स्थापित करने का प्रयास कर रहा था। १९०१ में मोरक्को के सुल्तान ने वहाँ पर संरक्षण स्थापित करने के लिये कहा; परन्तु इङ्गलैंड ने मना कर दिया, क्योंकि वह उस समय मिस्र आदि में उलझा हुआ था। १९०२ में मोरक्को ने फ्राँस से समझौता कर लिया। इसके अनुसार फ्रांस ने मोरक्को को जन-धन की पूरी सहायता देने का आश्वासन दिया, जिससे कि वह देश का आन्तरिक विकास कर सके। यूरोप के प्रायः समस्त देशों ने भी मोरक्को में फ्रांस के हितों को मान लिया। अभी तक जर्मनी ने भी उसके इन हितों का कोई विरोध नहीं किया।

१९०४ में फ्रांस ने मोरक्को के सम्बन्ध में इङ्गलैंड से भी समझौता कर लिया था। इससे विलियम द्वितीय बहुत चिन्तित हुआ और उसने इन दोनों देशों के समझौते को भंग कराने के लिए प्रथम मोरक्को संकट उपस्थित किया। इसके अतिरिक्त जर्मनी के अन्य कई स्वार्थ भी मोरक्को में निहित थे। जर्मनी वहाँ अपना व्यापार बढ़ा सकता था। वह जिब्राल्टर जलडमरूमध्य के समीप होने के कारण एटलाण्टिक महासागर तथा भूमध्य सागर का प्रवेश-द्वार था। वह एक मुसलमानी देश था। दमिश्क में विलियम द्वितीय ने अपने को समस्त विश्व में बसे हुए मुसलमानों का संरक्षक बताया था। यदि वह उस अवसर पर वहाँ हस्तक्षेप नहीं करता तो टर्की में उसकी प्रतिष्ठा को आघात लगता। इसी समय मार्च १९०५ में फ्राँस का मित्र रूस जापान द्वारा पराजित हो चुका था। इस अवसर पर फ्रांस को दबाया जा सकता था। अतः ३१ मार्च को जर्मन सम्राट् विलियम द्वितीय टेन्जियर पहुंचा। वहाँ उसने घोषणा की, मोरक्को एक स्वतन्त्र देश है। वहाँ जर्मनी के भी हित हैं। जर्मनी का कार्य भी उपनिवेशों के बिना नहीं चल सकता। पश्चिम के राष्ट्र परस्पर मिलकर मोरक्को के भाग्य का निर्णय नहीं कर सकते। उसमें जर्मनी का भी हस्तक्षेप होना चाहिए।

---

1. 'If you are allied for better or for worse with the French, well then, keep those damned rascals in order and make them still.'

अतः वह भी मोरक्को को पूरी सहायता देगा। उसने फ्राँस से माँग की कि वह मोरक्को की समस्या के समाधान के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाए तथा अपने विदेश-मन्त्री देलकाजे को पदच्युत कर दे, क्योंकि इस समस्त कार्य के लिए देलकाजे दोषी है। फ्राँस ने जर्मनी के हस्तक्षेप का भारी विरोध किया। परन्तु जर्मनी की भारी हठ पर उसने उसकी पहली माँग को स्वीकार कर लिया तथा दूसरी माँग को अस्वीकार कर दिया। इस पर सम्राट् विलियम द्वितीय तथा चाँसलर ब्यूलो ने फ्राँस को युद्ध की धमकी दी। जर्मन जनता ने भी उनका समर्थन किया। उधर देलकाजे भी अपने व्यक्तिगत सम्मान के हेतु युद्ध के लिए तैयार था। इङ्गलैंड की सहानुभूति भी उसे प्राप्त थी। परन्तु फ्रांस का प्रधान मन्त्री रूवियै (Rouvier) तथा उसके अन्य साथी युद्ध के लिए तैयार न थे, क्योंकि इङ्गलैंड की सरकार ने फ्रांस की सरकार को सैनिक सहायता देने का लिखित आश्वासन नहीं दिया था। उसका मित्र रूस भी जापान से पराजित होने के कारण उसकी सहायता नहीं कर सकता था। फलतः देलकाजे ने त्यागपत्र दे दिया और १६ जनवरी १९०६ को एल्जेसिराज (Algeciras) में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया गया। इसमें जर्मनी, फ्राँस, इंगलैंड, मोरक्को, इटली, पुर्तगाल, बेल्जियम, हालैंड, स्वीडन, रूस, स्पेन तथा अमेरिका आदि देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सम्मेलन में भारी वाद-विवाद हुआ। कई अवसरों पर युद्ध की सम्भावना बहुत बढ़ गई। अन्त में तीन महीने के लम्बे वाद-विवाद के पश्चात् ७ अप्रैल १९०६ को कन्वेन्शन ऑफ एल्जेसिरास पास किया। इसके अनुसार निम्नलिखित निर्णय किए गए—

(१) मोरक्को की स्वतन्त्रता को स्वीकार कर लिया गया। वहाँ के सुल्तान को औपचारिक शासक मान लिया गया।

(२) मोरक्को में सभी देशों के आर्थिक हितों को स्वीकार कर लिया गया। फ्राँस शान्तिपूर्वक वहाँ अपना विस्तार कर सकता था।

(३) मोरक्को में एक अन्तर्राष्ट्रीय बैंक की स्थापना की गई।

(४) मोरक्को में शान्ति तथा सुव्यवस्था की स्थापना के लिए फ्रांस तथा स्पेन की सम्मिलित पुलिस की व्यवस्था की गई। इनके निरीक्षण के लिए एक स्विटजरलैंड-निवासी नियुक्त किया गया। आठ बन्दरगाहों में शान्ति तथा सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए इस पुलिस की नियुक्ति की गई।

इस घटना का ऐतिहासिक महत्व बहुत अधिक है। इस समय जर्मनी की दोनों मांगें स्वीकार कर लीं गईं। अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन की भी व्यवस्था हो गई तथा देलकाजे को भी पदच्युत कर दिया गया। यह फ्रांस की कूटनीतिक पराजय थी; परन्तु जर्मनी के कठोर रुख के कारण सब देशों की सहानुभूति फ्रांस के साथ हो गई। इस अवसर पर इटली ने भी अपने मित्र जर्मनी का साथ नहीं दिया। उसने फ्राँस तथा इङ्गलैंड का साथ दिया। एकमात्र आस्ट्रिया ने ही जर्मनी का साथ दिया। जर्मन चांसलर ब्यूलो ने कहा था—'न हम जीते हैं और न हम हारे हैं।' जर्मन चांसलर

ने इस बात को बहुत महत्व दिया था कि उसने इस समस्या को एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न बना दिया था। इससे फ्रांस मोरक्को पर उस प्रकार अधिकार न कर सकेगा, जिस प्रकार कि उसने ट्यूनिस पर कर लिया था। वास्तव में इससे फ्राँस को ही लाभ रहा। इस घटना द्वारा जर्मन सम्राट् विलियम द्वितीय ने फ्राँस तथा इंगलैंड में मन-मुटाव उत्पन्न करने का प्रयास किया था; परन्तु इसमें उसको सफलता न मिली। इससे दोनों देशों की मित्रता और दृढ़ हो गई। अमेरिका के प्रतिनिधि व्हाइट (White) ने कहा था—'इस सम्मेलन में इंगलैंड विजयी हुआ है।'[1] साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया कि विलियम द्वारा दिया हुआ मुसलमानों की सुरक्षा का आश्वासन खोखला है। इससे यह भी सिद्ध हो गया कि त्रिराष्ट्र सन्धि से इटली को तोड़ा जा सकता है। अतः जर्मनी ने आँख बन्द कर आस्ट्रिया को पूरा-पूरा साथ देने का निर्णय किया। वास्तव में जर्मनी का उद्देश्य फ्राँस को अपमानित करने का था; परन्तु इसमें उसको सफलता न मिली।

मोरक्को का द्वितीय संकट (१९०८)—एलजेसिरास सम्मेलन द्वारा मोरक्को के प्रथम संकट का समाधान हो गया था; परन्तु १९०८ में मोरक्को में द्वितीय संकट उत्पन्न हो गया। वहाँ आन्तरिक अव्यवस्था उत्पन्न हो गई। फ्राँस ने वहाँ कुछ सेनाएँ भेज दीं। जर्मनी ने इसका विरोध किया। समस्त मामले की जाँच के लिए एक पंच न्यायालय की स्थापना की गई। ८ फरवरी १९०८ को दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया गया। इसमें फ्रांस ने यह स्वीकार किया कि वह मोरक्को की सार्वभौमिकता तथा अखण्डता का सम्मान करेगा। जर्मनी ने मोरक्को में फ्राँस के हितों को स्वीकार कर लिया। फ्रांस को वहाँ सुव्यवस्था करने तथा शक्ति प्राप्त करने के अधिकार को मान्यता मिल गई।

मोरक्को का तीसरा संकट (१९११)—मोरक्को के सम्बन्ध में किया हुआ दूसरा समझौता भी अस्थायी सिद्ध हुआ तथा १९११ में मोरक्को में तृतीय बार संकट उत्पन्न हो गया। मोरक्को का शासन-प्रबन्ध बहुत खराब था। वहाँ का सुल्तान मोले हामिद अयोग्य था। सामन्तों तथा सरदारों पर उसका नियन्त्रण न था। देश की आर्थिक अवस्था खराब थी। यातायात का समुचित प्रबन्ध न था। सुल्तान फ्राँस से ऋण लेकर अपना कार्य चला रहा था। इससे मोरक्को में फ्राँस का प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया। १९११ में वहाँ के सरदारों ने विद्रोह कर दिया। देश में गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया। फ्राँस के एक उच्च पदाधिकारी मार्शा की हत्या कर दी गई। अप्रैल १९११ में फ्रांस ने वहाँ शान्ति तथा सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए एक सेना भेजी। २१ मई १९११ को फ्राँसीसी सेना के दस्तों ने मोरक्को की राजधानी फेज में प्रवेश किया। फ्रांस को वहाँ सेना भेजने का अधिकार नहीं था। अतः जर्मनी के विदेश-मन्त्री ने घोषित किया—'यदि फेज से फ्राँसीसी सेनाएँ नहीं हटीं तो मोरक्को का संकट पुनः खड़ा हो जायगा और एलजेसिरास सम्मेलन पर हस्ताक्षर करने वाला प्रत्येक राष्ट्र अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतन्त्र हो जायगा।'

1. 'The Victor at the Conference is England.'

जर्मनी का उद्देश्य फ्राँस को अपमानित कर मोरक्को में अपने प्रभाव की पुनः स्थापना करना था। इस समय जर्मनी के हितों की पूर्ति के लिए अवसर भी बहुत उपयुक्त था। फ्राँस में दलगत झगड़े चल रहे थे तथा मन्त्रि-मण्डल निरन्तर बदल रहे थे। साम्यवादियों का प्रभाव बहुत अधिक बढ़ रहा था। हड़तालों ने स्थिति गम्भीर कर रक्खी थी। फ्राँस की सैनिक तैयारियाँ भी अधूरी थीं। इंगलैंड में अर्थ-बिल के ऊपर हाउस ऑफ कॉमन्स (House of Commons) तथा हाउस ऑफ लॉर्ड्स (House of Lords) में संघर्ष चल रहा था। विलियम द्वितीय इस स्थिति का लाभ उठाना चाहता था। अतः उसने प्रथम जुलाई १९११ को पैंथर (Panther) नामक एक जंगी जहाज एगेडिर (Agadir) भेज दिया। इस जंगी जहाज को भेजने का उसने अपना उद्देश्य जर्मन हितों को रक्षा बतलाया। वास्तव में उसका उद्देश्य था कि फ्रांस, जर्मनी तथा स्पेन के मध्य मोरक्को का विभाजन कर दिया जाय। फ्राँस ने इसका घोर विरोध किया। उसने कहा कि मोरक्को में फ्राँस की सत्ता को सर्वोच्च मान लिया गया है। अब उसके विरोध में कोई भी कार्य करना फ्राँस के लिए अपमानजनक होगा। यह संकट फ्राँस तथा इंगलैंड की मित्रता का परीक्षा-काल था। अतः इंगलैण्ड ने फ्राँस का पूर्ण समर्थन किया। इंगलैण्ड के प्रधान मन्त्री ग्रे ने घोषित किया—'जर्मनी द्वारा गन बोट भेजने पर इंगलैण्ड के हितों को खतरा हो गया है। अतः अब वह खामोश नहीं रह सकता।' एक्सचेकर के चांसलर लॉयड जार्ज ने मेन्शन हाउस स्पीच (Mansion House Speech) में कहा था—'यदि कोई देश एकपक्षीय कार्य के लिए हमारे अधिकारों को छीनना चाहे तो ऐसा नहीं हो सकता। हम अपमान के लिए युद्ध करने को तैयार हैं।' विरोधी दल के नेता बाल्फोर ने घोषित किया—'यदि कोई इंगलैण्ड के घरेलू झगड़ों से लाभ उठाना चाहे तो यह उसकी गलती है। राष्ट्रीय हितों के प्रश्न पर हम एक हैं। अतः हमारे विरोधी हमारी नीति को समझने में गलत हैं।' इंगलैंड ने अपनी नौ सेना को समुद्र-तट की सुरक्षा के लिए सावधान कर दिया। युद्ध की सम्भावना बहुत बढ़ गई। जर्मनी की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी। अतः वह खामोश हो गया। लिप्सन महोदय का मत है कि 'जर्मनी मोरक्को के प्रश्न को लेकर युद्ध नहीं करना चाहता था। वह पूर्वी समस्या को लेकर युद्ध करने के लिए तैयार था। अफ्रीका के मामले में वह समझौता करने को तैयार था।' फलतः ४ नवम्बर १९११ को फ्राँस तथा जर्मनी में समझौता हो गया। जर्मनी ने मोरक्को के ऊपर फ्रांस का संरक्षण स्वीकार कर लिया। इसके बदले में फ्राँस ने फ्रेंच कांगो का उत्तरी-पश्चिमी भाग जर्मनी को दे दिया। फ्राँस ने सब देशों को मोरक्को से व्यापार करने का अधिकार प्रदान कर दिया।

इस संकट की आलोचना करते हुए ग्रे ने कहा था कि जर्मनी का उद्देश्य फ्रांस को हमसे तोड़ना था। परन्तु इसमें उसको सफलता नहीं मिली। इस घटना से सौहार्द मित्रभाव (Extente Cordiale) को पहले से भी अधिक बल मिला। जर्मनी ने १९०५ की घटना का बदला १९०८ में लेना चाहा था। इसी प्रकार

उसने १९११ की घटना का बदला १९१४ के महायुद्ध में लेना चाहा; परन्तु इसमें उसको सफलता न मिली।

प्रथम महायुद्ध (१९१४–१८)—एगेडिर की घटना के पश्चात् जर्मनी इंगलैंड का घोर शत्रु हो गया। जर्मनी के उग्र राष्ट्रवादी यह कहने लगे कि हमने फ्रांस तथा आस्ट्रिया से तो हिसाब कर लिया है। अब तो एकमात्र इंगलैण्ड से ही हिसाब करना शेष है। परन्तु इङ्गलैण्ड ने जर्मनी से अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने के लिए बहुत प्रयास किया। इङ्गलैण्ड के प्रधान मन्त्री ने यह घोषित किया कि हमने किसी भी देश के विरुद्ध किसी देश से सन्धि नहीं की है। हमारा यह उद्देश्य नहीं है कि हम किसी भी ऐसे राष्ट्र के मार्ग में रोड़े अटकावें जो पृथ्वी पर तथा आकाश के नीचे स्थान ढूंढना चाहता है। हम विश्व में स्थायी शान्ति स्थापित करना चाहते हैं। हम किसी भी ऐसे राष्ट्र का साथ देने को तैयार नहीं हैं जो कि जर्मनी से युद्ध करने को तैयार है। परन्तु इससे जर्मनी को संतोष नहीं हुआ। वह इङ्गलैंड से आगामी युद्ध में पूर्णतया तटस्थ रहने का आश्वासन प्राप्त करना चाहता था, परन्तु इङ्गलैंड ऐसा आश्वासन नहीं दे सकता था, क्योंकि उस समय जर्मनी अपनी नौ सेना का तेजी के साथ विस्तार कर रहा था तथा वह युद्ध की भारी तैयारी में लगा हुआ था। इस प्रकार इंगलैण्ड तथा जर्मनी के मध्य भारी कटुता बनी रही।

उधर बाल्कन क्षेत्र में जर्मनी युद्ध करने को तैयार था। वह इङ्गलैंड, फ्राँस तथा रूस के रक्षात्मक गुट को भी शंका की दृष्टि से देखता था। जुलाई १९०८ में टर्की में यंग तुर्क आन्दोलन हो गया। उसका लाभ उठाकर आस्ट्रिया ने बोस्निया तथा हर्जेगोविना पर अधिकार कर लिया। ये प्रदेश उसको १८७८ की बर्लिन सन्धि के अनुसार शासन करने के लिए प्राप्त हुए थे, परन्तु वह उनको अपने राज्य में नहीं मिला सकता था। सर्विया भी इन प्रदेशों पर अधिकार करना चाहता था। अतः उसको बहुत क्रोध आया। वह इङ्गलैंड तथा रूस से सहायता प्राप्त कर युद्ध करने के लिए तैयार था; परन्तु रूस अभी तक पूरी तरह तैयार नहीं था। अतः वह सर्विया की सहायता करने में असमर्थ था। इस अवसर पर जर्मनी ने पूरी तरह आस्ट्रिया का साथ दिया। जर्मन सम्राट् विलियम द्वितीय ने घोषित किया कि मैं प्रत्येक समय चमकदार कवच (Shining armour) पहनकर आस्ट्रिया का समर्थन करूँगा। उसने मार्च १९०९ में रूस से स्पष्ट कह दिया कि यदि उसने सर्विया की सहायता की तो उसे आस्ट्रिया के साथ-साथ जर्मनी से भी युद्ध करना पड़ेगा।

रूस का समर्थन प्राप्त कर सर्विया, बलगेरिया, यूनान तथा मान्टेनीग्रो आदि ने बाल्कन संघ का निर्माण किया। इस संघ का उद्देश्य टर्की के साम्राज्य का बंटवारा करना था। अतः इन्होंने टर्की के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ कर दिया। प्रथम बाल्कन युद्ध में टर्की पराजित हो गया और विजेताओं ने उसके साम्राज्य पर अधिकार कर लिया। परन्तु बंटवारे के प्रश्न पर विजेता राष्ट्रों में परस्पर ही संघर्ष हो गया। इसका लाभ उठाकर टर्की ने अपने कुछ प्रदेशों को पुनः प्राप्त कर लिया। दोनों बाल्कन युद्धों में सर्विया की विजय हुई। दूसरे बाल्कन युद्ध में आस्ट्रिया के मित्र

बलगेरिया को भारी हानि उठानी पड़ी। इससे रूस तथा आस्ट्रिया की कटुता बहुत अधिक बढ़ गई। दूसरी तरफ आस्ट्रिया तथा सर्विया की शत्रुता बहुत अधिक बढ़ गई। रूस की सहानुभूति सर्विया के साथ थी तथा जर्मनी की सहानुभूति आस्ट्रिया के साथ थी। आस्ट्रिया तथा सर्विया के मध्य युद्ध प्रारम्भ होना अनिवार्य था। ऐसा अवसर आने पर यह स्पष्ट था कि सर्विया की सहायता जर्मनी करेगा। इस प्रकार यूरोप में महायुद्ध के बादल छाए हुए थे।

२८ जून १९१४ को बोस्निया की राजधानी सेराजेवो में आस्ट्रिया के राजकुमार आर्कड्यूक फ्रांन्सिस फर्डिलैण्ड तथा उसकी पत्नी की हत्या कर दी गई। आस्ट्रिया ने इसके लिए सर्विया को दोषी ठहराया। अतः उसने सर्विया को कठोर शर्तों वाला एक अल्टीमेटम दिया तथा ४८ घण्टे के अन्दर-अन्दर इसका उत्तर माँगा। सर्विया ने उसकी अधिकांश शर्तों को स्वीकार कर लिया; इससे आस्ट्रिया को संतोष नहीं हुआ और उसने सर्विया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। रूस ने सर्विया का पक्ष लिया तथा जर्मनी ने आस्ट्रिया का साथ दिया। इस प्रकार प्रथम महायुद्ध का प्रारम्भ हो गया। कालान्तर में फ्रांस तथा इङ्गलैण्ड भी रूस का पक्ष लेकर युद्ध में सम्मिलित हो गए। आस्ट्रिया, हंगरी, बलगेरिया तथा टर्की आदि ने जर्मनी का साथ दिया। इस प्रकार विलियम द्वितीय की उग्र नीति के कारण प्रथम महायुद्ध हुआ।

प्रश्न (बी० ए०)

१ विलियम द्वितीय की गृह तथा वैदेशिक नीति की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

२ विलियम द्वितीय प्रथम महायुद्ध के लिये कहाँ तक उत्तरदायी था ?

३ विलियम द्वितीय की नीति बिस्मार्क की नीति का निराकरण थी। क्या आप इस कथन से सहमत हैं ?

Questions (M. A.)

1 How for was the naval and colonial policy of Germany under Kaiser William II responsible for her rupture with England during the early years of the twentieth century ?

2 Explain the significance of Kaiser William II's 'welt politik'. How did it affect the principal European powers ?

3 What were the principal causes of estrangement between British and Germany during the reign of Kaiser William II ? What were the efforts made for a rapprochment between the two ?

4 Write a short essay on the colonial policy of Germany after the retirement of Bismarck.

5 In his autobiography, Kaiser William II accuses Britain of pursuing a policy of 'encirclement' towards Germany. Do you think the charge is justified ? Give reasons for your answer.

५

इटली

(१८७१-१९१४)

कठिनाइयाँ, हल, गृह-नीति, विदेशी नीति, पोप; त्रिराज्य सन्धि, ब्रिटेन, रूस, ट्रिपोली, प्रथम महायुद्ध।

कठिनाइयां—१८७० में इटली का एकीकरण अवश्य हो गया, परन्तु उसकी कठिनाइयों का अन्त नहीं हुआ। जिस समय उसका स्वतन्त्रता-संग्राम चल रहा था उस समय उसके नेताओं को इन कठिनाइयों का स्पष्ट ज्ञान न था, परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्त होते ही ये कठिनाइयां निश्चित रूप से अनेक रूपों में चारों ओर दिखाई देने लगीं।[1] वस्तुत: इटली का एकीकरण इतनी जल्दी हुआ था कि समस्त इटली-निवासियों ने स्वतन्त्रता, एकता, राष्ट्रीयता आदि के वास्तविक महत्व को समझा ही न था।[2]

इटली की प्रमुख समस्याओं का निम्नलिखित रूप में उल्लेख किया जा सकता है —

(१) इटली शताब्दियों से अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। इन राज्यों की भिन्न-भिन्न शासन-पद्धतियाँ, कानून, आर्थिक व्यवस्थायें, सामाजिक परम्परायें, मुद्रा-प्रणालियां आदि थीं। १८७० में इटली में विभिन्न राज्यों के स्थान पर एकात्मक शासनतन्त्र (Unitary government) की स्थापना हुई। परन्तु इटली में प्रान्तीयता, स्थानीयता की भावनायें फिर भी कायम रहीं।

---

1. 'The new kingdom had to face problems of the gravest and most varied character, problems which the struggle for unity, so absorbing, had obscured, but which now appeared in all their saliency.'

—Hazen.

2. 'Italian unity was obtained too suddenly by a people for centuries divided and heterogeneous. Liberty, preserved as a torch in the little country of Piedmont, was rather given as a gift than won by the efforts of the people; and nationality, affirmed as self-determination and self-government by an elite, did not find an equal echo in the popular consciousness.'

—Luigi Sturzo.

(२) उत्तरी इटली और दक्षिणी इटली में भारी भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक और बौद्धिक अन्तर थे। उत्तरी इटली में तो थोड़ी-बहुत प्रगति हुई भी थी, परन्तु दक्षिणी इटली बिल्कुल पिछड़ा हुआ था। उसकी जनता एकमात्र कृषि-कर्म पर अवलम्बित थी। वहाँ समय-समय पर बाढ़ या अकाल आते रहते थे। बहुधा ज्वालामुखी पर्वतों के फूटने से भी भारी विनाश होता रहता था। आये दिन मलेरिया का प्रकोप रहता था। जनता में शिक्षा का अभाव था। उनकी आर्थिक दशा दयनीय थी। कैवूर कहा करता था कि 'To harmonise North and South is harder than fighting with Austria or struggling with Rome.'

(३) यद्यपि स्वतन्त्र इटली में जनतन्त्रात्मक शासन-पद्धति की स्थापना की गई थी, परन्तु सार्डिनिया-पीडमाण्ट को छोड़ कर प्राय: किसी भी राज्य को इस प्रकार की शासन-पद्धति का अनुभव न था। परतन्त्र इटली के सभी राज्य एकतन्त्र-वादी थे। फलत: १८७० के पश्चात् काफी वर्षों तक इटली में स्वस्थ और अनुशासन-शील राजनीतिक जीवन का विकास न हो सका। उसके राजनीतिक जीवन में भ्रष्टाचार का बहुत दिनों तक बोलबाला रहा।

(४) इटली में साक्षरता बहुत कम थी। उसकी २५ प्रतिशत जनता ही साक्षर थी। सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं को सुचारू रूप से समझ न पाती थी। सबसे पहले मैज़िनी ने राष्ट्रीय जीवन में शिक्षा के महत्व को समझा था। उसका तो कथन था कि राष्ट्रीय शिक्षा के अभाव में कोई राष्ट्र हो ही नहीं सकता।[1] परन्तु उसके तथा अन्यान्य नेताओं के प्रचार के बावजूद भी १८७० तक इटली में शिक्षा-प्रसार बहुत कम हुआ था।

(५) इटली में अनेक गुप्त संस्थायें कार्य कर रही थीं। ये देश में आतंक और भ्रम उत्पन्न कर रही थीं। इनसे इटली के स्वस्थ और जनतन्त्रवादी राजनीतिक जीवन के विकास में बड़ी बाधा पड़ रही थी।

(६) देश में भारी निर्धनता थी। बहुधा अकाल, बाढ़ और बीमारियों के कारण जनता की आर्थिक अवस्था और भी अधिक दयनीय हो जाती थी। इटली की नवीन सरकार ने जनता पर जो कर लगाये थे, उन्हें देने में अधिकांश जनता को बड़ी कठिनाई हो रही थी।

(७) निर्धनता के कारण मजदूरों और किसानों में भारी असन्तोष था। अराजकतावादी और समाजवादी इस असन्तोष को भड़का कर जनता को हिंसात्मक विद्रोहों के लिये प्रोत्साहित कर रहे थे। इटली में आये दिन दंगे-फसाद हो रहे थे।

(८) इटली एक छोटा सा देश था। उसमें जन-धन के साधन वैसे ही सीमित थे। १८७० तक पुन सीमित साधनों का उपयुक्त विकास और प्रयोग भी न हुआ था।

(९) इटली में शताब्दियों से विदेशों के हित थे। वह उनकी राजनीति का क्रीडा-स्थल बन गया था। उनके अधिकार, प्रभाव और हस्तक्षेप के कारण अभी तक

1. 'Without national education there exists morally no nation.'

इटली किसी निश्चित विदेशी नीति का विकास न कर सका था। उसका कोई भी निश्चित मित्र न था। सभी उसे सन्देह की दृष्टि से देखते थे।

(१) इटली ने अपने एकीकरण के लिये पोप के रोम-राज्य को भी छीन लिया था। तभी से पोप इटली के राज्य का घोर विरोधी था। उसने अपने कैथोलिक अनुयायियों को आदेश दिया था कि वे इटली के राज्य के साथ किसी प्रकार का सहयोग न करें। पोप की इस आज्ञा के परिणामस्वरूप इटली बहुसंख्यक योग्य कैथोलिकों की सेवाओं से वंचित रह गया था। यही नहीं, इटली को यह भी भय रहता था कि कहीं पोप के पक्ष को लेकर योरप के अन्य कैथोलिक राज्य उसकी आन्तरिक नीति में हस्तक्षेप न करें।

(१२) इटली की जनसंख्या बढ़ रही थी। उसे अपने औद्योगिक विकास के लिये कच्चे माल की आवश्यकता थी। इनकी पूर्ति के लिये इटली को उपनिवेशों की आवश्यकता थी। परन्तु योरप के प्रमुख देशों में वही एक ऐसा देश था जिसके पास कोई उपनिवेश न था।

(१२) इटली की सरकार के सामने महान् आर्थिक संकट था। एकीकरण के समय केन्द्रीय सरकार ने सभी विभिन्न भूतपूर्व इकाई राज्यों के कर्जों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया था। तत्पश्चात् उसे सैनिक संगठन और निर्माण-कार्यों में भारी धन-राशि खर्च करनी पड़ी। इससे उसकी आर्थिक अवस्था बड़ी खराब हो गई। अनेक वर्षों तक उसका बजट घाटे में चलता रहा।

इस परिस्थिति को समझते हुये इटली के सम्राट् विक्टर एमानुएल ने १८७० में ठीक ही कहा था कि यद्यपि इटली एक ओर स्वतन्त्र हो गया है, परन्तु उसे महान् और सुखी बनाना अभी बाकी है।[1] इटली की नवीन समस्याओं को दृष्टि में रख कर इटली के एक अन्य प्रतिनिधि ने घोषित किया था कि हमने इटली का तो निर्माण कर लिया है, परन्तु इटली-निवासियों का निर्माण करना शेष है।[2]

कठिनाइयों का हल
इटली की गृह-नीति
(१८७१–१९१४)

राजनीतिक संगठन—स्वतन्त्र इटली ने संसदीय शासन-प्रणाली अपनाई। उसकी संसद में दो भवन थे-सीनेट (Senate) और प्रतिनिधि सभा (Chamber of Deputies)। प्रतिनिधि सभा में बहुमत दल का नेता प्रधानमन्त्री होता था। वह और उसके मन्त्री अपने समस्त कार्यों के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी होते थे।

---

1. 'Italy is united and free; it remains for us henceforth to make her great and happy.'
2. 'We have made Italy, we still have to make Italians.'
D, Azeglio.

सम्पूर्ण इटली राज्य ६९ जिलों में विभक्त था। प्रत्येक जिले के प्रिफेक्ट और मेयर केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त होते थे।

सम्पूर्ण इटली की राजधानी रोम थी।

अभी तक इटली में मताधिकार सीमित था। मताधिकार केवल उन्हीं को प्राप्त था जो कम से कम २५ वर्ष के हों और जो कम से कम ४० लायर (lire) वार्षिक कर देते हों। फलस्वरूप मताधिकार केवल २½ प्रतिशत मनुष्यों को प्राप्त था।

१८८२ में एक कानून पास किया गया। इसने मताधिकार को व्यापक कर दिया जो—

(१) कम से कम २१ वर्ष के हों

(२) १९ लायर से कुछ अधिक कर देते हों या

(३) जिन्हें प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त हो।

इस नये कानून ने मतदाताओं की संख्या तिगुनी कर दी।

१९१२ में इटली ने एक अन्य कानून बनाया। इसके अनुसार उन सभी निरक्षर और निर्धन पुरुषो को भी मताधिकार दे दिया गया जो कम से कम २१ वर्ष के हों और जिन्होंने सैनिक सेवा की हो। इस प्रकार इटली में सार्वजनिक वयस्क मताधिकार (Univseral manhood Suffrage) की स्थापना हो गयी।

१८७८ में सम्राट् विक्टर एमानुएल द्वितीय की मृत्यु हो गई। इटली के एकीकरण में उसका विशेष योग था। इसी से इटली-निवासी उसे देश-पिता (Father of the Country) के नाम से पुकारते हैं।

उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र हम्बर्ट सम्राट् हुआ। इसने १९०० तक शासन किया। परन्तु देश के बढ़ते हुये आर्थिक असन्तोष के परिणामस्वरुप एक अराजकतावादी के द्वारा उसी वर्ष उसकी हत्या कर दी गई। तत्पश्चात् विक्टर एमानुएल तृतीय नया सम्राट् हुआ। सिंहासन पर बैठने के समय उसकी अवस्था ३५ वर्ष की थी। वह बड़ा सरल स्वभाव, परिश्रमी, जनतन्त्रवादी और सच्चा प्रजापालक था।

उसकी विवेकपूर्ण नीति के परिणामस्वरूप इटली की अवस्था में भारी सुधार होने लगा। इस विषय में हेजेन ने लिखा है। कि 'The opening decade of the twentieth century was characterised by a new spirit which, in a way, reflected the buoyancy, and hopefulness, and courage of the young King.

इटली में दो प्रधानमन्त्रियों के नाम उल्लेखनीय हैं—

(१) डेप्रेटिस—यह १८७६ से १८८७ तक सत्ताधारी रहा। अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिए इसने भ्रष्टाचार का सहारा लिया था। फिर भी इसके शासन-काल में, अनेक महत्वपूर्ण घटनायें घटित हुई। इसने प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य कर दी, मताधिकार को व्यापक बनाया तथा रेलवे का विस्तार किया। इसी ने १८८२

में जर्मनी और आस्ट्रिया के साथ त्रिराज्य सन्धि (Triple Alliance) की । यह उपनिवेशवादी था । परन्तु इसे ट्यूनिस में सफलता न मिली । उस पर १८८१ में फ्रांस ने अधिकार कर लिया । अतः इसने लाल सागर के प्रदेश और अबीसीनिया में उपनिवेश-स्थापना की योजना बनाई । इसने लाल सागर पर मसावा के बन्दरगाह पर अधिकार कर लिया । तत्पश्चात् इसने अबीसीनिया में प्रवेश किया । परन्तु इसी बीच १८८७ में इसकी मृत्यु हो गई ।

क्रिस्पी—डेप्रेटिस की मृत्यु के पश्चात् १८८७ मे क्रिस्पी प्रधानमन्त्री बना। कैवूर के पश्चात् इटली का यह सबसे महत्वपूर्ण प्रधानमन्त्री सिद्ध हुआ । यह उपनिवेशवादी था । इसने लाल सागर के किनारे के उपनिवेश को संगठित करके उसका नाम इरिट्रिया रक्खा । इसने पूर्वी अमाका में सोमालीलैन्ड में नया उपनिवेश स्थापित किया । इसने अबीसीनिया के ऊपर भी अधिकार करना चाहा परन्तु १८९६ में एडोवा के युद्ध में अबासीनिया-नरेश मेनेलेक ने इटली की सेनाओं को बुरी तरह परास्त कर दिया । इस असफलता से क्रिस्पी की बड़ी बदनामी हुई और १८९६ में उसे इस्तीफा देना पड़ा ।

लगभग २ वर्ष के अन्तराल के अतिरिक्त क्रिस्पी १८८७ से १८९६ तक इटली का प्रधानमन्त्री रहा । इसकी उग्र और विस्तारवादी नीति के कारण इटली की आर्थिक अवस्था खराब हो गई । उसे सुधारने के लिए इसने नये कर लगाये । निर्धन जनता के लिये करों का भार दुर्भर था । अतः उसने विरोध-प्रदर्शन किया । ट्यूरिन, मिलान, रोम आदि में भयंकर विद्रोह हुये । कुछ विद्रोहों में 'रोटी-रोटी' के नारे लगाये गये । इन्हें 'Bread riots' के नाम से पुकारा जाता है । क्रिस्पी ने दमन-नीति से कार्य किया । परन्तु असन्तोष बराबर बढ़ता रहा । इसी असन्तोष के परिणाम स्वरूप १९०० में सम्राट् हम्बर्ट की हत्या की गई थी ।

अन्य कार्य—स्वतन्त्र इटली ने अनेकानेक निर्माण-कार्य किये । देश में नवीन सड़कों, बन्दरगाहों, नहरों, रेलवे आदि का अधिकाधिक निर्माण किया गया । इनसे यातायात अधिक, सुविधाजनक और मितव्ययात्मक हो गया ।

देश की सेना और नौ सेना का विस्तार किया गया । स्थान-स्थान पर दुर्गीकरण किया गया । इन कार्यों से देश की सैनिक क्षमता उत्तरोत्तर बढ़ती गई ।

निरक्षरता को दूर करने के लिये १८७७ मेंएक कानून पास किया गया । इसने प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य कर दी । १९०४ में शिक्षा प्रसार के लिए एक नवीन कानून पास किया गया ।

देश की आर्थिक अवस्था को सुधारने के लिये प्रत्येक मन्त्रिमन्डल ने निरन्तर प्रयत्न किया । बचत, मितव्यय, नये करो, कर्जों और चर्च की सम्पत्ति के अपहरण से इटली की आर्थिक अवस्था में सुधार के प्रयत्न किये गये ।

औपनिवेशिक नीति—इटली को अनेक कारणों से उपनिवेश-स्थापना की ओर ध्यान देना पड़ा—

(१) इटली की जनसंख्या बढ़ रही थी ।

(२) औद्योगिक विकास के लिये उसे कच्चे माल और नये बाजारों की आवश्यकता थी।

(३) वह उपनिवेश-स्थापना को राष्ट्रीय गौरव के लिये आवश्यक समझता था।

परन्तु प्रारम्भ में उसे असफलता मिली। उसने चीन में उपनिवेश बसाने चाहे, परन्तु यह सम्भव न हो सका। तत्पश्चात् उसने ट्यूनिस पर अधिकार करना चाहा, परन्तु वह फ्रान्स के हाथ में चला गया।

१८८५ में इटली ने लाल सागर के किनारे मसोवा बन्दरगाह पर अधिकार कर लिया।

लाल सागर के समीपवर्ती प्रदेश को अधिकार में करके इटली ने उसका नाम इरीट्रिया दिया।

क्रिस्पी ने सोमालीलैण्ड में भी उपनिवेश-स्थापना की।

अब उसने अबीसीनिया पर भी अधिकार करना चाहा। परन्तु १८९६ में ऐडोवा के युद्ध में अबीसीनिया ने इटली को पराजित कर दिया।

इटली की विदेशी नीति
(१८७०—१९१४)

पोप से सम्बन्ध—१८७० के फ्राँस और प्रशा के युद्ध के समय इटली को वह अवसर मिला जिसमें उसने अपने एकमात्र प्रदेश रोम का संयोजन कर लिया, क्योंकि उस समय फ्राँस ने अपनी फौजें वहां से हटा ली थीं। रोमवासियों की इच्छा १८७० में पूर्ण हुई और छिन्न-भिन्न इटली एक सूत्र में बँध गया जिसका कि रोम के पोप ने घोर विरोध किया और विक्टर इमानुअल को सत्ता छीनने वाला और अवैध घोषित किया। सम्राट् ने उससे समझौता करना चाहा, परन्तु उसकी हर कोशिश व्यर्थ गयी। सम्राट् ने एक कानून भी बनाया जिसमें पोप को वैटिकन और लेटरन के महल, उसके पास की धरती केसल गैन्डोलफी की सरकार को देने का निश्चय किया और पोप को एक स्वतन्त्र शासक के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। लेकिन पोप ने इसका विरोध किया और अपने को एक 'बन्दी' के रूप में कहा और उसने धार्मिक दुहाई देकर कैथोलिको को राज्य के हर कार्य से अलग रहने का आदेश दिया।

१८७८ में उसकी मृत्यु के बाद भी उसके उत्तराधिकारी लियो तेरहवें ने भी उस बात की हठ न छोड़ी, परन्तु पोप दशम् द्वारा जो १९०५ में पोप बना था आँशिक रूप में 'निषेधाज्ञाओं' को वापिस ले लिया गया था।

आस्ट्रिया से सम्बन्ध—इटली का स्वतन्त्रता-संग्राम प्रमुखतया आस्ट्रिया के विरुद्ध चला था। आस्ट्रिया और उसके समर्थक राजाओं को निकालकर ही इटली-निवासियों ने अपने देश का एकीकरण किया था। अतः इटली और आस्ट्रिया के सम्बन्ध कटुतापूर्ण हो गये थे।

स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् भी इटली की आस्ट्रिया से कटुता

रही। इसका एक प्रमुख कारण 'परतन्त्र इटली' (Unredeemed Italy) का प्रश्न था। इटली के उत्तर-पूर्व में एड्रिआटिक सागर के समीप कुछ ऐसे प्रदेश थे जहाँ इटैलियन रहते थे, परन्तु जो अभी तक आस्ट्रिया के ही अधीन थे। इनमें ट्रेण्टिनो, ट्रीस्ट, इस्ट्रिआ, डालमेशिआ एवं गोर्ज उल्लेखनीय थे। इटली-निवासी इन प्रदेशों को 'परतन्त्र इटली' कहते थे। उनकी दृष्टि में उनकी स्वतन्त्रता अपूर्ण थी जब तक कि ये प्रदेश भी स्वतन्त्र होकर इटली में न मिल जायें। परन्तु आस्ट्रिया इन्हें छोड़ने के लिये तैयार न था। अतः इस प्रश्न को लेकर दोनों देशों में बराबर शत्रुता चलती रही। इटली एवं 'परतन्त्र इटली' में अनेक ऐसी गुप्त संस्थायें थीं जिनका उद्देश्य इन प्रदेशों में अशान्ति और असन्तोष को भड़काकर क्रान्ति कराना था।

इटली और आस्ट्रिया के बीच कटुता का एक अन्यतर कारण भी था। आस्ट्रिया समुद्रतट की खोज में दक्षिण में भूमध्यसागर की ओर विस्तार करना चाहता था। इटली भूमध्य सागरीय प्रदेश पर अपना प्रभाव रखना चाहता था। अतः पूर्वी समस्या में जब कभी आस्ट्रिया ने दक्षिण की ओर बढ़ने का प्रयास किया तो इटली ने उसका विरोध किया।

प्रशा से सम्बन्ध—इटली का एकीकरण बिस्मार्क की सहायता से हुआ था। परन्तु फिर भी बिस्मार्क हृदय से इटली का विश्वास न करता था। वह इटली को अवसरवादी और अविश्वसनीय समझता था। उसका कथन था कि—'Insatiable Italy with furtive glance, roves restlessly hither and thither instinctively drawn on by the ordour of corruption and calamity–always ready to attack any one from the rear and make off with a bit of plunder......On the one hand the Irredenta, on the other machinations in Albania, Montenegro, and the Balkan territories.'

फ्रांस से सम्बन्ध—इटली-निवासी नेपोलियन तृतीय के विलाफ्रन्का के विश्वासघात को नहीं भूले थे। नेपोलियन तृतीय को नाइस और सेवाय के प्रदेश दिये जाना भी उन्हें खला था। पुनः नेपोलियन तृतीय की सेनाओं ने बहुत दिनों तक पोप-राज्य की रक्षा करके इटली की स्वतन्त्रता को अपूर्ण रक्खा था। इन कारणों से इटली और फ्रांस के सम्बन्ध १८७१ में अच्छे न थे।

दोनों देशों के सम्बन्धों के खराब होने का एक अन्य कारण भी था। दोनों ही ट्यूनिस पर अधिकार करने का प्रयत्न कर रहे थे। अन्त में १८८१ में फ्रांस ने ट्यूनिस पर अधिकार कर लिया। इस घटना को लेकर इटली और फ्राँस की कटुता अपनी चरम सीमा पर पहुंच गई और दोनों के बीच युद्ध की सम्भावना उत्पन्न हो गई।

त्रिराज्य सन्धि—बिस्मार्क हृदय से इटली का अविश्वास करता था। परन्तु फ्रांस को एकाकी रखने के लिये उसे इटली को अपनी ओर मिलाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। इसलिये उसने इटली के लिये ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी कि विवश होकर इटली को जर्मनी से सन्धि की प्रार्थना करनी पड़े। ट्यूनिस के प्रश्न पर

बिस्मार्क ने फ्रांस को नैतिक सहायता दी और १८८१ में फ्रांस ने उस पर अधिकार कर लिया। इस कटुतापूर्ण वातावरण में इटली को अपनी सुरक्षा की चिन्ता हुई और वह आस्ट्रिया तथा जर्मनी की ओर झुका। इटली के सम्राट् विक्टर एमानुएल ने वियना और बर्लिन की यात्रायें कीं। इसके बदले में आस्ट्रिया का सम्राट् फ्रांसिस जासेफ और जर्मनी का सम्राट् विलियम भी रोम गये। दोनों पक्षों के सम्बन्ध सुधरे और अन्त में १८८२ में इटली ने जर्मनी और आस्ट्रिया के साथ त्रिराज्य सन्धि कर ली। परन्तु यह महत्वपूर्ण बात है कि जर्मनी और आस्ट्रिया ने इटली को अपनी पूर्वकृत द्विराज्य सन्धि (Dual Alliance) के विषय में कोई सूचना न दी।

ब्रिटेन के साथ सम्बन्ध—इटली के स्वतन्त्रता-संग्राम के प्रति ब्रिटेन की पूरी सहानुभूति थी। अतः इटली-निवासी ब्रिटेन के साथ अच्छे सम्बन्ध रखना चाहते थे। त्रिराज्य सन्धि करते समय इटली ने यह आग्रह किया था कि इस सन्धि में ब्रिटेन को भी सम्मिलित कर लिया जाय। परन्तु बिस्मार्क के विरोध के कारण यह सम्भव न हो सका। फिर भी इटली ने आग्रह करके त्रिराज्य सन्धि में यह धारा जुड़वा दी कि उसका प्रयोग कभी भी ब्रिटेन के विरुद्ध न किया जायेगा।[1]

कालान्तर में इटली ने ब्रिटेन के साथ अपने सम्बन्ध और अच्छे कर लिये। १८८७ में उसने ब्रिटेन के साथ एक समझौता किया। इसके अनुसार दोनों देश भूमध्यसागर, एड्रिआटिक सागर, ईजिअन सागर और काले सागर में यथा-स्थिति (Status Quo) बनाये रक्खेंगे। यदि कोई अन्य देश भूमध्यसागर में उनमें से किसी पर आक्रमण करे तो दूसरा देश अपने मित्र की सहायता करेगा। इटली ने ब्रिटेन को मिस्र में अपना समर्थन दिया और ब्रिटेन ने यह वचन दिया कि वह ट्रिपोली में इटली के अधिकार का समर्थन करेगा।

इटली, आस्ट्रिया और जर्मनी—त्रिराज्य सन्धि में इटली, आस्ट्रिया और जर्मनी मित्र थे। परन्तु उनके भीतरी सम्बन्ध अच्छे न थे। इसके अनेक कारण थे—

(१) परतन्त्र इटली को छोड़ने के लिये आस्ट्रिया तैयार न था।

(२) पूर्वी समस्या में इटली आस्ट्रिया के दक्षिणी विस्तार को शंका की दृष्टि से देखता था।

(३) १९०८ में बोस्निआ और हर्जेगोविना के ऊपर अधिकार करके आस्ट्रिया ने इटली को और भी अधिक नाराज कर दिया।

(४) इटली अल्बानिया में आस्ट्रिया के प्रभाव का विरोधी था।

(५) इटली टर्की से ट्रिपोली छीनना चाहता था। परन्तु जर्मनी टर्की का परम मित्र और संरक्षक था।

(६) इटली का विश्वास था कि जर्मनी इटली के विरुद्ध सदैव आस्ट्रिया का समर्थन करता है।

---

1. 'Treaty was not 'in any case to be regarded as directed against England.'

(७) रूस, फ्रांस और कालान्तर में इंगलैंड जर्मनी तथा आस्ट्रिया के शत्रु थे। परन्तु इटली निरन्तर इन देशों के अधिक निकट आ रहा था। अतः जर्मनी और आस्ट्रिया इटली पर अविश्वास करते थे।

त्रिराज्य सन्धि की पुनरावृत्ति—सन्देहपूर्ण सम्बन्धों के बावजूद भी बिस्मार्क ने इटली को निरन्तर अपने गुट में रक्खा। उसने १८८७ में त्रिराज्य सन्धि की आगामी ५ वर्षों के लिये पुनरावृत्ति की।

बिस्मार्क के पतन के पश्चात् १८९१ में विलियम द्वितीय ने उस सन्धि की आगामी ६ वर्षों के लिये पुनरावृत्ति की। परन्तु इस समय तक स्पष्ट हो गया था कि इटली हृदय से जर्मनी और आस्ट्रिया के साथ नहीं है।

इटली और फ्रांस का समझौता—बिस्मार्क के पतन के पश्चात् इटली और फ्रांस एक दूसरे के और अधिक निकट आने लगे—

(१) १८९६ में इटली ने ट्यूनिस पर फ्रांस के अधिकार को मान्यता दे दी।

(२) १८९८ में दोनों देशों के बीच एक व्यापारिक समझौता हो गया।

(३) १९०१ में दोनों देशों ने भूमध्यसागर में पारस्परिक हितों को स्वीकार किया।

(४) उसी वर्ष फ्रांस ने यह भी आश्वासन दिया कि वह ट्रिपोली पर इटली के अधिकार का समर्थन करेगा।

(५) १९०२ में इटली ने फ्रांस को आश्वासन दिया कि वह उसके विरुद्ध किसी भी सैनिक कार्यवाही में भाग न लेगा।

(६) उसी वर्ष दोनों देशों ने एक-दूसरे को वचन दिया कि यदि कोई अन्य देश उनमें से किसी पर आक्रमण करे तो दूसरा देश तटस्थ रहेगा।

(७) १९०३ में इटली का सम्राट् विक्टर एमानुएल पेरिस गया। वहाँ उसका खूब स्वागत किया गया।

(८) १९०४ में फ्रांसीसी राष्ट्रपति लूबे रोम गया। वहां उसका भव्य स्वागत हुआ।

(९) १९०६ की एलिजसिरस सम्मेलन में इटली ने जर्मनी का साथ न दिया।

इटली और रूस के सम्बन्ध—१९०८ में जब बर्लिन सन्धि की धारा का उल्लंघन करते हुये आस्ट्रिया ने बोस्निआ और हर्जेगोविना पर अधिकार कर लिया और जर्मनी ने उसके इस दुष्कर्म का विरोध न किया तो इटली में बड़ा भारी असन्तोष फैला। उसके एक प्रतिनिधि ने अपनी संसद में घोषित किया हमें अपने मित्र (आस्ट्रिया) से ही सबसे बड़ा खतरा है।[1]

इस घटना से इटली समझ गया था कि त्रिराज्य सन्धि के द्वारा उसके हित सुरक्षित नहीं हैं। दूसरे ही वर्ष १९०९ में वह रूस की ओर और अधिक झुका। उसी वर्ष इटली का सम्राट् विक्टर एमानुएल रूसी सम्राट् निकोलस द्वितीय से

1. 'The only state which really threatens us with war is in alliance with us.'

रैकोनिगी (Racconigi) में मिला। वहाँ दोनों में एक समझौता हो गया। इसमें यह तय हुआ कि दोनों देश बाल्कन-प्रदेश मे यथा-स्थिति (Status Quo) बनाये रखने की पूरी चेष्टा करेंगे। इटली ने बास्फोरस और डार्डेनेलीज पर प्रभाव स्थापित करने की रूसी इच्छा के प्रति सहानुभूति प्रकट की। बदले में रूस ने यह आश्वासन दिया कि यदि इटली ने ट्रिपोली पर अधिकार करने का प्रयत्न किया तो वह उसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करेगा।

यह महत्व की बात है कि इंगलैंड और फ्रांस ने भी रैकोनिगी समझौते की धाराओं को मान्यता दी। इस समझौते से स्पष्ट हो गया कि इटली धुरी राष्ट्रों की ओर से हट कर मित्र राष्ट्रों के निकट आ रहा था।[1]

ट्रिपोली पर अधिकार—१६११ में टर्की और जर्मनी की घनिष्ठ मित्रता की परवाह न करते हुये इटली ने टर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और ट्रिपोली पर अधिकार कर लिया। जर्मनी इटली के इस कार्य से बड़ा रुष्ट हुआ। परन्तु पूर्व आश्वासनों के अनुसार अधिकांश बड़े राज्यों ने इटली का कोई विरोध न किया।

प्रथम महायुद्ध—१६१४ में प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ हुआ। परन्तु त्रिराज्य सन्धि में रहते हुये भी इटली ने जर्मनी और आस्ट्रिया का पक्ष लेकर मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध घोषित न किया। यही नहीं, उसने इसी समय आस्ट्रिया से माँग की कि परतन्त्र इटली को स्वतन्त्र कर दे। इटली की सहायता प्राप्त करने के लिये जर्मनी चाहता था कि आस्ट्रिया इटली की माँग को स्वीकार कर ले। परन्तु आस्ट्रिया ने इन्कार कर दिया।

इस मतभेद से मित्र राष्ट्रों ने लाभ उठाया। उन्होंने इटली के साथ १६१५ में लन्दन की सन्धि कर ली और युद्ध के पश्चात् उसे अनेक प्रदेश देने का वायदा किया।

परिणामस्वरूप ३ मई, १६१६ को इटली ने त्रिराष्ट्र सन्धि छोड़ने की घोषणा की। २३ मई को उसने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। तत्पश्चात् २७ अगस्त को उसने जर्मनी के विरुद्ध भी युद्ध घोषित कर दिया।

Questions

1 What were the difficulities which Italy encountered in 1871 and how did she solve them ?

2 Write a critical note on the foreign policy of Italy from 1871 to 1914.

---

1. '...it marked the further progress of Italy from the Triple Alliance towards the Triple Entente.' —Marriot.

६

पूर्वी समस्या

(१८७८ से १९१४ तक)

बल्गेरिया, यूनान, आर्मीनिया, रूमानिया, सर्विया, माण्टेनीग्रो, १९०३ की क्रान्ति, तुर्क और जर्मनी, युवा तुर्क क्रान्ति, तुर्की और इटली का युद्ध, बोस्निया का झगड़ा, बाल्कन के युद्ध, कारण और परिणाम।

१८७८ से १९१४ के काल में बाल्कन में कुछ घटनायें घटीं। ये घटनायें विशेष रूप से बल्गेरिया, रूमानिया, ग्रीस, मोन्टीनीग्रो, जर्मनी, तुर्की और सर्विया में हुई।

बल्गेरिया—सैन स्टिफानो (San Stefano) की सन्धि के अनुसार बल्गेरिया को बड़ा बना दिया गया था, परन्तु बर्लिन की सन्धि ने इस शर्त को रद्द कर दिया तथा बल्गेरिया को विभाजित कर दिया गया था। इसका दूसरा भाग पूर्वी रूमेलिया बना कर बर्लिन की सन्धि ने भावी संघर्ष के लिये आधार तैयार किये थे।

राजकुमार बैटनबर्ग को बल्गेरिया का राजा चुना गया। उसने इस पद को बड़ी बुद्धिमानी से सम्हाला। १८७९ से १८८६ तक वह इस पद पर बना रहा। वह रूस का समर्थक था, क्योंकि उसको जार ने चुना था। जार ने बल्गेरिया के शिष्ट-मण्डल से कहा था कि "आप लोग अपना राजा मेरे हाथों से लीजिये और उससे उसी प्रकार प्रेम कीजिये जैसा कि मैं प्रेम करता हूं।"

रूस और राजकुमार बैटनबर्ग के सम्बन्ध अच्छे अवश्य थे; परन्तु जब रूस का हस्तक्षेप बल्गेरिया के मामलों में बढ़ने लगा तो दोनों में कटुता आनी आवश्यक थी। राजकुमार नहीं चाहता था कि रूस उसके मामलों में हस्तक्षेप करे। इसलिए रूसी उससे घृणा करने लगे। १८८५ तक यह तनाव की स्थिति कायम रही। आरम्भ में रूस चाहता था कि पूर्वी रूमेलिया और बल्गेरिया एक हो जाँय। इसके लिए जार ने पूर्वी रूमेलिया की जनता को आश्वासन भी दिया था, परन्तु यह सहानुभूति अधिक समय तक न रह सकी। १८८५ के बाद जार ने अपना रुख बदल डाला था।

आस्ट्रिया के विदेश-मन्त्री ने राजकुमार को १८८५ में सेना का प्रदर्शन देखने के लिये बुलाया। इसी अवसर पर राजकुमार ने रूसी विदेश मन्त्री से वायदा किया था कि पूर्वी रूमेलिया के विषय में कोई झगड़ा नहीं होगा और यथा स्थिति रक्खी

जायेगी। परन्तु पूर्वी रूमेलिया के देशभक्त राजकुमार की सलाह लिये बिना ही निर्णय कर चुके थे कि बल्गेरिया और पूर्वी रूमेलिया का एकीकरण कर दिया जायेगा। राजकुमार वापस लौटा और उसे निर्णय से अवगत कराया गया, परन्तु राजकुमार उस निर्णय से हटना नहीं चाहता था जिसे वह रूसी विदेश मन्त्री साथ कर चुका था। फलतः गतिरोध पैदा हो गया। पूर्वी रूमेलिया की राजधानी में विद्रोह हुआ। जनता ने उपद्रव किया। राजमुकुट राजकुमार अलेक्जैण्डर को देने का प्रस्ताव रक्खा। संकोच करते हुए भी उसने इसे स्वीकार कर लिया। इंगलैंड का दृष्टिकोण राजकुमार के प्रति सहानुभूतिपूर्ण था। आस्ट्रिया का रुख भी राजकुमार के पक्ष में था, किन्तु बिस्मार्क का रुख अच्छा नहीं था। वह इस मामले में रूस का पक्ष ले रहा था। उसने कहा "बल्गेरिया में मैं रूसी हूं।"

फरवरी १८८६ में राजकुमार को पूर्वी रूमेलिया का राज्यपाल मान लिया तथा यह भी तय किया गया कि यह राज्यपाल ५ वर्ष के लिये होगा। 'किन्तु रूस और बिस्मार्क ने इसका विरोध किया। रूस के गुप्तचरों ने षडयन्त्र किया और कुछ असन्तुष्ट अफसरों ने राजमहल में घुसकर राजकुमार को उड़ा लिया। इस घटना से रानी विक्टोरिया ने बहुत क्रोध प्रगट किया। उसके भाषणों की शैली बदल कर तेज हो गई। एक अस्थायी सरकार सोफिया में बनायी गयी, परन्तु वह तीन दिन से अधिक न चल सकी। राजकुमार को पुनः वापस बुलाने का आमन्त्रण दिया गया जिसे उसने स्वीकार कर लिया। उसके देश पहुंचते ही रूस के राजदूत ने उस पर दबाव दिया कि वह रूस से सन्धि कर ले। राजकुमार धमकियों से झुक गया और उसने कहा कि "रूस ने मुझे मुकुट दिया था और मैं इस मुकुट को लौटाने को तैयार हूं।' इस बात से रूस और जर्मनी बड़े प्रसन्न हुए, परन्तु बल्गेरिया की जनता और महारानी विक्टोरिया को बड़ा दुःख हुआ। १८८६ में राजकुमार को पद-त्याग करना पड़ा।"

विदेशी शक्तियाँ इस विवाद में हस्तक्षेप करने लगी थीं। अतः समस्या कठिन हो गई। १८७९ की जर्मनी और आस्ट्रिया की सन्धि होने के कारण आस्ट्रिया को विश्वास था कि जर्मनी उसका साथ देगा। बिस्मार्क उलझन में पड़ चुका था, क्योंकि वह रूस की भी मित्रता नहीं खोना चाहता था। आस्ट्रिया को बिस्मार्क द्वारा रूस को अधिक अधिकार देने की बात अच्छी न लगी और अब उसने इस मामले में दृढ़ता के साथ कदम उठाये। आस्ट्रिया के विदेश-मन्त्री एन्ड्रैसी का विचार था कि रूस को बर्लिन की सन्धि के द्वारा बल्गेरिया से हटा दिया गया था। उसके विचार से १८७९ की आस्ट्रियन और जर्मन सन्धि पर्याप्त थी और वह १८८१ की तीन सम्राटों की सभा के पक्ष में नहीं था।

बल्गेरिया राजपद अनेक राजकुमारों को देने का प्रस्ताव रक्खा गया, परन्तु बड़ी कठिनाइयों के बाद राजकुमार फर्डिनेन्ड ने इसे ग्रहण किया। यह सैक्सकोबर्ग गोथा का रहने वाला था जो १९१८ तक शक्ति में रहा। जार ने यह

प्रस्ताव किया कि बल्गेरिया में रूसी सेनापति नियुक्त कर दिया जाय, परन्तु ब्रिटेन ने इसका विरोध किया। इटली की सरकार का रुख बल्गेरिया के प्रति सहानुभूतिपूर्ण था। आस्ट्रिया इस प्रश्न पर युद्ध तक करने को तैयार था और दोनों देशों में शत्रुता के भाव उत्तेजित होते रहे। अन्त में जार ने अपने ढंग से समस्या सुलझानी चाही। उसने यह शर्त रखी कि अगर फर्डिनेन्ड को पद-च्युत कर दिया जाय और उसके स्थान पर कोई और राजकुमार रख लिया जाय तो वह कोई विरोध न करेगा। आस्ट्रिया और अन्य शक्तियों ने उसका विरोध किया तथा जर्मनी और फ्रांस ने रूस का साथ दिया। इसी समय तुर्की ने फर्डिनेन्ड के पद को गैर-कानूनी घोषित कर दिया। तो भी रूस और तुर्की ने सक्रिय कार्यवाही न की।

इसी सम्बन्ध में एक अन्य घटना हुई। राजकुमार अलेक्जैण्डर का विवाह महारानी विक्टोरिया की नातिन और विलियम द्वितीय की पौत्री से तय हो चुका था। परन्तु बिस्मार्क के विरोध के कारण यह विवाह न हो सका।

राजकुमार फर्डिनेन्ड शासन-कार्य में भाग न लेता था, क्योंकि उसके स्थान पर स्टैम्बोलोव-कार्य भार को सम्भाल रहा था। १८६४ में स्टैम्बोलोव को पदच्युत कर दिया गया और फर्डिनेन्ड निरंकुश शासक बना। कालान्तर में रूस के साथ उसके सम्बन्ध अच्छे हो गये।

यूनान—१८२९ में यूनान को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। विदेशी शक्तियों ने उसे मान्यता दी और १८३३ में आटोग्रीस का शासक बना जो बवेरिया का राजकुमार था। उसने देश की चहुंमुखी उन्नति की परन्तु १८६२ के विद्रोह में उसे पद-त्याग करना पड़ा।

कालान्तर में राजकुमार जार्ज ने, जो डेन्मार्क का रहने वाला था कार्य-भार सम्भाला और वह जार्ज प्रथम के नाम पर १९१३ तक शासन-कार्य चलाता रहा। १८६४ में एक नवीन प्रजातन्त्र-प्रणाली का संविधान बनाया गया जिसने देश में आर्थिक शान्ति और सुख को बढ़ावा दिया। मार्ग बनाये गये और अन्ध महासागर में व्यापार के बड़े भाग पर कब्जा कर लिया। ग्रीस की स्वतन्त्रता के बाद भी ग्रीकों की बड़ी जनसंख्या विदेश में निवास कर रही थी।

तुर्की के थेसले और एपिरस प्रदेश पर ग्रीस दाँत जमाये बैठा था और क्रीमिया युद्ध के समय उसने थेसले पर आक्रमण किया था परन्तु, विदेशी शक्तियों ने उसे तटस्थ रहने और लौट जाने को विवश कर दिया १८५६ में पेरिस सम्मेलन हुआ जिसमें ग्रीस को कोई प्रदेश प्राप्त न हो सका। १८७७–७८ में रूस और तुर्की के युद्ध के समय उसने थेसले पर अधिकार करने के प्रयत्न किये परन्तु वह विफल रहा और उसे सैन स्टीफनो (San Stefano) और बर्लिन की संधि में कुछ भी नहीं दिया गया। १८८१ के ग्लैडटोन ने दबाव देकर ग्रीस को इन दोनों प्रदेशों में से बहुत सा भाग दिला दिया और आयोनियन द्वीप समूह जिस की जनता ग्रीस से मिलना चाहती थी उसे दे दिया गया।

सर्वश्रेष्ठ द्वीप क्रीट के निवासी तुर्कों के अधीन थे और तुर्की उस पर मनमाने अत्याचार कर रहा था। उसमें १८३० और १९१० के बीच १४ विद्रोह हुए जिनका तुर्की ने दमन किया। बल्गारिया और रुमेलिया के संगठन ने इसमें और तीव्रता ला दी और १८९७ में क्रीटवासियों की मदद से ग्रीस ने युद्ध छेड़ दिया। ग्रीस की हार हुई और उसे बहुत सी धनराशि हर्जाने के रूप में तो देनी पड़ी, परन्तु तुर्की का शासन उस पर से पूर्णतया समाप्त हो गया। विदेशी शासकों ने जिनमें रूस, फ्रांस, ब्रिटेन और इटली थे, एक ग्रीस के राजकुमार को वहाँ का शासक नियुक्त किया। परन्तु १९०५ में एक विद्रोह हुआ जिसमें वहाँ के निवासियों ने ग्रीस से मिलने की पूर्ण इच्छा प्रगट की। विदेशी शक्तियों ने तुर्की के सुल्तान के नाममात्र आधिपत्य को मान लिया और क्रीट-निवासियों को अपना राज्यपाल चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता दी गयी। ग्रीक सैन्य-अधिकारियों के नियन्त्रण में क्रीट की सेना को संगठित किया गया। १९१० में वेनिजेलोस को ग्रीस का प्रधान-मन्त्रित्व सौंपा गया। उसने हर क्षेत्र में बहुत सुधार किये और १९१२ में Balkan League की स्थापना में पूर्ण सहयोग दिया। बाल्कन युद्ध के पश्चात् ग्रीस को १९१३ में क्रीट द्वीप मिल गया।

आर्मीनिया—तुर्की के अत्याचार-पूर्ण व्यवहार से आर्मीनिया-निवासियों की दशा शोचनीय हो रही थी। तुर्की ने बर्लिन सम्मेलन और साइप्रस गोष्ठी के समय अच्छा व्यवहार करने का बचन दिया। परन्तु उसने उसका कभी भी अनुसरण नहीं किया। आर्मीनिया की हालत शोचनीय हो गयी। विदेशी शक्तियों की सहायता के कारण उसके निवासियों में जोश उत्पन्न हो गया। परिणामतः तुर्की के सुल्तान ने उसे दबाने की कोशिश की। वह अच्छी तरह जानता था कि यूरोपियन शक्तियाँ अपनी फूट के कारण कोई सक्रिय कदम नहीं उठायेंगी। एक तुर्क राजनीतिज्ञ ने कहा था कि "आर्मीनिया के प्रश्न से पीछा छुड़ाने का एकमात्र उपाय आर्मीनिया-निवासियों से पीछा छुड़ाना है।" आर्मीनिया निवासियों ने १८९३ में तुर्क अधिकारियों का विरोध किया और १८९४ में टर्की सुलतान ने उनसे बदला लेना आरम्भ कर दिया। सैनिकों को अत्याचार करने की खुली छूट दी गयी। अगस्त १८९६ में कुस्तुनतुनिया के निावसियों ने विद्रोह करके गलाटा के तुर्की बैंक को हानि पहुंचाई जिसके परिणाम-स्वरूप वहां पर २४ घण्टे की अवधि में ६ हजार आर्मीनिअनों को मौत के घाट उतार दिया गया। विदेशी शक्तियों ने कोई सहायता न दी। विलियम द्वितीय तुर्की से मैत्री चाहता था। इसलिए उसने आर्मीनिया-निवासियों को कोई सहायता न दी। सुल्तान अब्दुल हमीद की बहुत आलोचना हुई। इङ्गलैंड की जनता आर्मीनिया के अत्याचार से अत्यन्त क्षुब्ध थी। परन्तु लार्ड सैलिसबरी इस प्रश्न पर योरोपीय युद्ध नहीं देखना चाहता था। लार्ड सैलिसबरी ने यह मत प्रगट किया कि इङ्गलैंड ने तुर्की की सहायता करके गलत घोड़े पर दाँव लगाया है।

रूमानिया—पेरिस की सन्धि में मोल्डेविया और वलाचिया को सुशासन मिला और १८६२ में दोनों एक हो गये और इस प्रकार रूमानिया के राज्य का निर्माण

हुआ। १८६६ में जर्मनी के राजकुमार चार्ल्स प्रथम को वहाँ के देशीय राजा को हटाकर उसका राजा बनाया गया। बर्लिन सम्मेलन के द्वारा उसे पूर्ण स्वतन्त्रता तथा १८८१ में एक राज्य के रूप में पूर्ण मान्यता मिल गयी। यहाँ के निवासी रूस के आधिपत्य में बेसेरेबिया में रहते थे और आस्ट्रिया के अधीन बुकोविना में बसे हुये थे। इस प्रकार रूमानिया को कई विदेशी शक्तियों का सामना करना था।

वहां के राजनीतिज्ञ भी एकीकरण के प्रश्न पर एक मत नहीं थे। पहला मत था कि बेसेरेबिया को प्राप्त करने का विचार छोड़ कर रूस के साथ मिलकर बुकोविना और ट्रांसिलवेनिया आस्ट्रिया और हंगरी से छीन लेने चाहियें। दूसरा मत था कि उसे रूस से बेसेरेबिया प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिये। चार्ल्स प्रथम आस्ट्रिया से सहानुभूति रखता था। इससे उसने बेसेरेबिया पाने का कार्य आरम्भ कर दिया। १८८३ में रूमानिया ने आस्ट्रिया से सन्धि की।

इसी बीच वहाँ पर कृषि, व्यापार, वैज्ञानिक प्रसाधनों में बहुत प्रगति हुई। वहां की अच्छी मिट्टी के कारण रूमानिया गेहूं के क्षेत्र में सबसे आगे बढ़ गया। परन्तु फिर भी वहां पर कृषकों की अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी। इससे १९०७ में विद्रोह हुआ जिस पर वहाँ की सेना ने बड़ी कठिनाई से विजय प्राप्त की।

सर्बिया—सर्बिया की स्वतन्त्रता बर्लिन सम्मेलन में प्राप्त हुई। परन्तु वहाँ के दो वंशों के पारस्परिक वैमनस्य के कारण देश में फूट फैली हुई थी। कारा जार्ज तुर्की के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा करने वाला पहला आदमी था और ओब्रेनोविक ने वहाँ पर वास्तव में स्वराज्य प्राप्त किया था जो १८१७ से ४२ तथा १८५९ से १९०३ तक शक्तिशाली रहा। काराजार्ज वंश ने अनेक विद्रोह इस समय किये जिसके कारण सर्बिया विदेशी शक्तियों के हस्तक्षेप का केन्द्र बन गया। १८७७–७८ के रूस-तुर्की युद्ध के समय मिलान ओब्रेनोविक वहाँ पर राज्य कर रहा था। वह रूस के विपरीत आस्ट्रिया से निकट सम्बन्ध रखता था। उसने आस्ट्रिया-हंगरी से १८७१ में गुप्त समझौता किया और १८८२ में उसने अपनी जागीर को राज्य का रूप दे दिया। पूर्वी रूमेलिया और बलगारिया के संगठन के समय उसने बलगारिया से युद्ध छेड़ दिया। परिमाणतः वह हार गया, परन्तु आस्ट्रिया-हँगरी के हस्तक्षेप के कारण कुचलने से बच गया जिसका परिणाम यह हुआ कि सर्बिया पर आस्ट्रिया का प्रभाव छा गया जो १९०३ तक बना रहा। १८८९ में मिलान ओब्रेनोविक ने एक प्रजातन्त्रीय संविधान अपने देश को देकर दो महीने की अवधि के पश्चात् राज्य त्याग दिया। इसके पश्चात् उसका पुत्र अलैग्जैण्डर द्वितीय सर्बिया का राजा बना।

मोन्टीनीग्रो—मोन्टीनीग्रो और सर्बिया सर्ब जाति के दो स्वतन्त्र राज्य थे। मोन्टीनीग्रो एड्रियाटिक समुद्र के पास एक छोटा सा प्रदेश था। बर्लिन सम्मेलन में इसे भी स्वतन्त्रता दे दी गयी। निकोलस प्रथम जो रूस का प्रशंसक था १८६० से

१९१८ तक राज्य करना रहा । इससे दोनों देशों में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहे । निकोलस प्रथम स्वेच्छाचारी और युद्ध-प्रेमी शासक था। उसकी इच्छा सर्व प्रदेशों को अपने नियन्त्रण में करने की थी । इसकी पूर्ति के लिये कभी वह सर्विया के साथ और कभी इसके विरुद्ध दाँव-पेंच चलाता रहा। १९०५ में उसने एक संविधान प्रदान किया। १९१० मे उसने मोन्टीनीग्रो के बादशाह का खिताब ग्रहण किया। १९१२–१३ की बाल्कन की लड़ाई में वहां के निवासियों की युद्ध-कुशलता के कारण उन्हें बहुत बड़ा हिस्सा मिला।

१९०३ की क्रांति—सर्विया में १९०३ में क्रान्ति हुई । विद्रोहियों ने अलैक्जैंडर द्वितीय, उसकी रानी और सेवकों की हत्या कर दी और कराजार्ज वर्थ का पीटर प्रथम सिंहासनासीन हुआ, जिसने रूस से सहयोग लेना शुरू कर दिया। वह प्रजा-वत्सल और युद्ध-प्रिय शासक था। उसने १८८९ का संविधान फिर लागू कर दिया। निकलस पेसिक की अध्यक्षता में देश की वित्त-अवस्था को सुगठित कर दिया विदेशों से सन्धि-वार्ता की, आस्ट्रिया-अधीन देशवासियों को अपने नियन्त्रण में लाने की कोशिश की। बोसनिया और हर्जेगोविना को आस्ट्रिया में १९०८ में मिलाने के परिमाणस्वरूप सर्विया और आस्ट्रिया के रूख में तनाव उत्पन्न हो गया जिसका विस्फोट १९१४ में विश्व युद्ध के रूप में प्रज्वलित हुआ।

तुर्की और जर्मनी के पारस्परिक सम्बन्ध

बर्लिन सम्मेलन के बाद तुर्की के पक्के समर्थक ब्रिटेन ने तुर्की के मामलों से अपना हाथ खींच लिया जिसकी पूर्ति जर्मनी ने की। विलियम द्वितीय ने १८८९ में तुर्की की यात्रा और १८९९ में पवित्र देश की तीर्थ-यात्रा की। दमिश्क में उसने कहा था कि "सम्राट सुल्तान अब्दुल हमीद और तीन करोड़ मुसलमान जो उसकी खलीफा की तरह पूजा करते हैं विश्वास रखें कि जर्मनी का सम्राट् सदैव उनका मित्र रहेगा।'

बर्लिन के डयूश बैंक (Deutsche Bank) की शाखा कुस्तुनतुनिया में खोली गई। बर्लिन-बगदाद रेलवे योजना बनाई गयी जिसका आधार अनातोलिया रेलवे के लिए तुर्की द्वारा १८९९ में जर्मन कम्पनी को प्राप्त सुविधायें थीं। तुर्की की सेना का पुनर्गठन जर्मन सेना-विशेषज्ञों द्वारा सम्पन्न हुआ। बर्लिन बगदाद रेलवे की योजना का विदेशी शक्तियों ने घोर विरोध किया; क्योंकि इसके द्वारा फ्रान्स के सीरिया और इंग्लैंड के अधीन राज्य भारत को खतरा बढ़ गया था। रूस ने फ्रांस का मित्र और सहयोगी होने के कारण इसका विरोध किया। जर्मनी लगातार पूर्व में अपना प्रभाव बढ़ा रहा था। इसके लिए उसने १८७९ में आस्ट्रिया-हंगेरी से सन्धि की जो १८८३ में त्रिमुखी सन्धि के रूप में परिवर्तित हो गयी।

तुर्की—१८७३ में तुर्की के सिंहासन पर अब्दुल हमीद द्वितीय सिंहासन पर बैठा। १८७६ में उसने उदार संविधान देश को दिया। फिर भी प्रतिक्रिया-वादी क्षेत्रों में विरोध होने के कारण उसने संविधान को ३० वर्ष से ज्यादा के समय के लिये

हटा दिया। बर्लिन की सन्धि में तुर्की को अपने बहुत से प्रदेशों से हाथ धोना पड़ा। विदेशी हस्तक्षेप के कारण देश में अव्यवस्था फैल गयी और तुर्की पर विदेशी नियंत्रण बढ़ गया। बाल्कन की जनता उसके लिये दूसरा भय का कारण थी। दूसरा भय एशिया के प्रजाजनों में राष्ट्रीयता की जागृति का होना था। अब्दुल हमीद बड़ी सख्ती से बाल्कन राज्यों को आपस में भिड़ाता रहा और स्वयं लाभ उठाता रहा। १८८९ और १८९९ में विलियम द्वितीय की यात्रा का उसने हृदय से स्वागत किया, परन्तु उसने कभी अपना सर्वस्व एक भी शक्ति के हाथ में नहीं सौंपा।

१९०८ की युवा तुर्क क्रान्ति—हेजेन महोदय के कथनानुसार १९०८ की ग्रीष्म में पूर्वी समस्या ने एक नया और विस्मयकारी रूप धारण किया।[1] यह था युवा तुर्कों का अपने सुल्तान के विरुद्ध विद्रोह। तुर्की के शिक्षित मुसलमान युवकों में भी तत्कालीन राष्ट्रीयता और उदारवाद की भावनायें उन्नीसवी शताब्दी के अन्त से ही उदय हो रही थीं। १८९१ में जेनेवा में युवा तुर्क (Young Turk) नामक एक संस्था की स्थापना की गई थी। बाद को यह सालोनिका में स्थापित की गई। युवा तुर्कों को अपने राज्य का पतन सहन न था। वे उसे सर्वथा अब्दुल हमीद के क्रूर एवं भ्रष्ट शासन का परिणाम मानते थे और अपने देश में भी पाश्चात्य योरुप की भांति संसदीय उदार शासन स्थापित करना चाहते थे। इन शिक्षित युवा मुसलमानों को युवा तुर्क (Young Turk) कहा जाता है। उनकी गुप्त संस्थायें देश में विद्रोह की आग भड़का रही थीं। इनमें एक थी Commitee of Union and Progress. इसके सदस्य विदेशी सहायता के विरुद्ध थे। उन्होंने विद्रोह के लिये मेसीडोनिया में स्थित तृतीय पैदल सेना (Third Army Corps) को चुना। १९०८ में एक आयोग इन तथ्यों की जाँच के लिये नियुक्त किया गया। समिति (Committee of Union and Progress) ने भेद खुलने से पहिले ही १९०८ में विद्रोह करने का निर्णय किया। नियाजीब्रे की अध्यक्षता में जुलाई १९०८ में विद्रोह किया गया। सहायता के लिये अनवर बे तथा बहुत से स्वयंसेवक आ मिले। नियाजीबे ने मुनास्तर में पहुंच कर १८७६ के संविधान की घोषणा कर दी। नेताओं ने सुल्तान को चुनौती दी कि वह आत्म-समर्पण करदे, नहीं तो वे स्ताम्बूल पर आक्रमण करेंगे। अब्दुल हमीद ने समर्पण करके संविधान के सुधार को मान लिया और किआ-मिल पाशा को महामन्त्री बनाया गया।

इस प्रकार तुर्की के सुल्तानों की दीर्घकालीन निरंकुशवादिता का अन्त हो गया।

इस विद्रोह की कुछ प्रमुख विशेषतायें थीं—

(१) यह विद्रोह पाश्चात्य विचारों से प्रभावित था।

(२) यह सैनिक क्रान्ति थी।

(३) यह प्रायः रक्तहीन क्रान्ति थी।

---

1 'The Fastern Question entered upon a new and startling phase in the summer of 1908.' —Hazen

(३) इसका प्रमुख उद्देश्य निरंकुश शासन का अन्त करके उत्तरदायी शासन की स्थापना का था।

(५) तुर्की साम्राज्य में रहने वाली प्रायः सभी जातियों—मुसलमानों, यूनानियों, सर्वों, बल्गेरिअनों, आर्मीनिअनों, अल्बानिअनों, ईसाईयों आदि ने इसका स्वागत किया। इसी से हेजेन महोदय इस क्रान्ति को 'आधुनिक इतिहास का सर्वाधिक बन्धुत्वपूर्ण आन्दोलन' कहते हैं।[1]

दिसम्बर, १६०८ को नई तुर्की पार्लियामेन्ट का अधिवेशन हुआ। इसके निम्नतर भवन (Chamber of Deputies) के सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित थे और उच्चतर भवन (Senate) के सदस्य सुल्तान द्वारा मनोनीत थे।

ऐसा प्रतीत होता था कि संसदीय शासन शीघ्र ही टर्की की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं को सुलझायेगा। परन्तु तभी १३ अप्रैल, १६०६ में टर्की में एक प्रति क्रान्ति (Counter Revolution) हो गई। इस प्रतिक्रान्ति के पीछे सुल्तान हमीद द्वितीय का हाथ था। वह प्रतिक्रियावादी वर्गों की सहायता से पुनः अपने निरंकुश शासन की स्थापना करना चाहता था। फलतः उसके प्रोत्साहन से कुस्तुन्तुनिया में हजारों सैनिकों ने युवा तुर्कों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और नवीन संविधान के भंग करने की मांग की। इसी अवसर पर सुल्तान ने किआमिल पाशा को प्रधान मन्त्री के पद से हटा दिया।

इस परिस्थिति में युवा तुर्कों को पुनः सैनिक कार्यवाही करनी पड़ी। उन्होंने सालोनिका और एड्रिआनोपुल से सेनायें भेजकर विद्रोहियों का दमन करा दिया। तत्पश्चात् उन्होंने सुल्तान अब्दुल हमीद को पदच्युत कर दिया और उसके स्थान पर उसके भाई मुहम्मद पंचम को सुल्तान बनाया।

युवा तुर्क आन्दोलन की असफलता—युवा तुर्क आन्दोलन जिन उद्देश्यों को लेकर चला था उनकी पूर्ति न कर सका। अन्त में वह असफल रहा। उसकी असफलता के निम्नलिखित कारण बताये जा सकते हैं—

(१) यह आन्दोलन जनतन्त्रवादी सिद्धान्तों को लेकर चला था, परन्तु शीघ्र ही यह एकतन्त्रवादी हो गया। युवा तुर्कों का प्रशासन हमीद द्वितीय के प्रशासन से कम कठोर, निर्दय और निरंकुश न था।

(२) शासन का आधार न्याय न होकर जातीयता था। तुर्क अपने आप को विजेता और शासक मानते हुये अधीन जातियों की अपेक्षा उच्चतर और महत्वपूर्ण मानते थे। उनके हाथ में विशेष अधिकार और सुविधायें थीं। अन्य जातियाँ इस असमानता को अन्यायपूर्ण समझती थीं।

(३) तुर्की साम्राज्य विभिन्न जातियों, भाषाओं, धर्मों और संस्कृतियों का समूह था। ऐसी परिस्थिति में आवश्यक था कि वह साम्राज्य केन्द्रीयकरण के सिद्धांत

---

[1] 'The revolution proved to be the most fraternal movement in modern history.'

—Hazen

को छोड़कर विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर शिथिल संघ-शासन की स्थापना करे। परन्तु युवा तुर्कों ने ऐसा न किया।

(४) युवा तुर्कों ने अपने साम्राज्य में कोई भी सुधार-योजना लागू न की, जबकि तुर्की साम्राज्य को राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक सुधारों की अत्यधिक आवश्यकता थी।

(५) युवा तुर्कों की नीति 'तुर्कीकरण' (Turkification) के ऊपर आधारित थी। उन्होंने दूसरी जातियों के धर्म, भाषा और संस्कृति को नष्ट करके तुर्की धर्म, भाषा और संस्कृति को लादने का प्रयास किया। उन्होंने मेसीडोनिया में भारी संख्या में तुर्क बसाये जिससे मेसीडोनिया तुर्क-प्रधान हो जाय। उन्होंने अल्बानिया के स्वायत्त शासन को नष्ट करने का प्रयास किया। आर्मीनियन का भयंकर हत्या काण्ड किया गया। यूनानियों के चर्च (Greek Orthodox Church) को नष्ट करके उन पर इस्लाम लादने की प्रबल चेष्टा की गई। यूनानियों ने जब इसका विरोध किया तो उनका व्यापारिक बहिष्कार किया गया।

(६) युवा तुर्कों की उग्र राष्ट्रीयता एवं दमन-नीति से परेशान होकर बहुसंख्यक यूनानी, सर्व, बल्गेरियन आदि देश छोड़-छोड़ कर विदेश भाग गये। परिणाम-स्वरूप टर्की अनेक योग्य नागरिकों की सेवाओं से वंचित हो गया। यही नहीं, इन नागरिकों ने विदेशों में जाकर टर्की के विरुद्ध प्रचार-कार्य भी किये।

युवा तुर्क आन्दोलन के प्रभाव—युवा तुर्क आन्दोलन योरपीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। इसने अनेक उल्लेखनीय प्रभाव उत्पन्न किये —

(१) प्रारम्भ में इसने तुर्की के परम्परागत शताब्दियों पुराने एकतन्त्रवादी निरंकुश शासन का अन्त कर दिया और जनतन्त्रात्मक शासन-पद्धति का श्री गणेश किया। युवा तुर्क आन्दोलन ने ही १६०८ में सर्वप्रथम तुर्की में संसदीय शासन की स्थापना की थी।

(२) इस आन्दोलन ने तुर्की में अन्तर्जातीय सहयोग को सम्भव किया। जिस समय सुलतान हमीद द्वितीय ने युवा तुर्क आन्दोलन के सिद्धान्तों को स्वीकार करते हुये संसदीय शासन अंगीकार किया तो गैर-तुर्क जातियों ने भी हर्ष और उत्साह का प्रदर्शन किया।

(३) इस आन्दोलन ने सिद्ध कर दिया कि सुलतान एकमात्र परम्परा और पैतृक उत्तराधिकार के बल पर शासन नहीं कर सकता। उसकी राजता केवल जनमत पर अवलम्बित है। तुर्की इतिहास में यह अभूतपूर्व प्रयोग था।

(४) युवा तुर्क आन्दोलन ने सेना में भी सुधारवादी प्रवृत्ति को जन्म दिया। अभी तक सेना सुलतान के प्रति अंध-भक्ति रखती थी। परन्तु इस आन्दोलन ने दिखा दिया कि भविष्य में सेना भी जनवादी सुधार-आन्दोलनों के साथ हो सकती है।

(५) युवा तुर्क आन्दोलन कालान्तर में उग्र राष्ट्रीयतावादी हो गया। आत्यान्तिक राष्ट्रीयता की भावना में बहकर युवा तुर्क गैर-तुर्कों के प्रति अनुदार

और असहिष्णु बन गये। उन्होंने तुर्कीकरण की नीति अपनाई और गैर-तुर्कों की जाति, भाषा, संस्कृति और धर्म को नष्ट करने का प्रयत्न किया। परिणामस्वरूप तुर्की में अन्तर्जातीय सहयोग के स्थान पर अन्तर्जातीय वैमनस्य का उदय हुआ।

(६) युवा तुर्क आन्दोलन की उग्रता को देख कर बहुसंख्यक गैर-तुर्क विदेशों में भाग गये। परिणामस्वरूप तुर्की अनेकानेक योग्य गैर-तुर्की के सहयोग और सहानुभूति से वंचित हो गया।

(७) तुर्की के विरुद्ध ५ अक्टूबर, १९०८ को बल्गेरिया के प्रिंस फर्डीनेन्ड ने अपने राज्य की पूर्ण स्वतन्त्रता घोषित कर दी।

(८) ७ अक्टूबर, १९०८ को क्रीट ने तुर्की से सम्बन्ध-विच्छेद कर यूनान से मिलने की घोषणा की।

(९) युवा तुर्क आन्दोलन के परिणामस्वरूप तुर्की संगठित और शक्तिशाली हो सकता था। अतः आस्ट्रिया ने तत्काल कार्य किया और ७ अक्टूबर, १९०८ को तुर्की के बोस्निया और हर्जेगोविना के प्रदेशों को अपने राज्य में मिला लिया।

(१०) उपर्युक्त तीनों घटनायें १८७८ की बर्लिन की सन्धि का उल्लंघन करके हुई थीं। अतः ब्रिटेन, फ्रांस और रूस ने उनका विरोध किया। बोस्निआ और हर्जेगोविना के प्रश्न पर सर्विया ने तो युद्ध की भी धमकी दी। परन्तु जर्मनी और आस्ट्रिया के दुराग्रह और ब्रिटेन, फ्रांस तथा रूस की युद्ध के लिये अनिच्छा के परिणामस्वरूप युद्ध न हुआ। परन्तु इन घटनाओं ने अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण को और अधिक तनावपूर्ण बना दिया।

(११) बोस्निआ और हर्जेगोविना की जनता सर्ब थी। अतः इन प्रदेशों को सर्विया अपने राज्य में मिलाना चाहता था। परन्तु अब वह सम्भव न रहा। उधर, इन प्रदेशों पर अधिकार करके आस्ट्रिया ने सर्विया का समुद्र की ओर विस्तार भी रोक दिया। परिणामस्वरूप युवा तुर्क आन्दोलन ने परोक्ष रूप से सर्विया और आस्ट्रिया में घोर शत्रुता उत्पन्न कर दी। इसी शत्रुता के कारण कालान्तर में प्रथम महायुद्ध हुआ।

(१२) यदि युवा तुर्कों ने दूरदर्शिता से काम किया होता और अन्तर्जातीय सहयोग और सद्भावना को प्रोत्साहित किया होता तो न तो बाल्कन युद्ध होते और न प्रथम महा-युद्ध[1]। तुर्कों की गैर-तुर्क-विरोधी नीति ने गैर तुर्कों को संगठित किया। कालान्तर में चार गैर-तुर्क देशों—माण्टेनीग्रो, सर्विया, बल्गेरिया और यूनान ने १९१२ में तुर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस प्रकार बाल्कन युद्ध का प्रारम्भ हुआ।

(१३) इटली बहुत दिनों से टर्की से ट्रिपोली छीनना चाहता था। उसने सोचा कि यदि कुछ काल पश्चात् युवा तुर्कों के नेतृत्व में टर्की शक्तिशाली हो गया तो

1 'Their failure led to war in the Balkans and the war in the Balkans led to the European War.' —Hazen.

वह उसने ट्रिपोली न छीन सकेगा। अतः उसने तत्काल कार्यवाही की और १९११ में इटली के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करके ट्रिपोली छीन लिया।

इस प्रकार युवा तुर्क आन्दोलन ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से टर्की एवं अन्य योरोपीय देशों में तनिक महत्वपूर्ण प्रभाव उत्पन्न किये।

बोसनिया का झगड़ा—आस्ट्रिया-हंगरी ने १८७८ की बर्लिन काँग्रेस में बोसनिया, हर्जेगोविना और नोवीबाजार के प्रदेशों पर शासन का अधिकार प्राप्त कर लिया था। ३० वर्ष उसने उन्हें अपने राज्य में नहीं मिलाया। रूस के विदेश-मन्त्री इजवोलास्की और आस्ट्रिया के विदेश-मन्त्री अहरेन्थल ने समझौता करके आस्ट्रिया के राज्य में बोसनिया और हर्जेगोविना के प्रदेश मिलाने की और रूस को बाल्कन की खाड़ी में जहाजों के लिये मार्ग देने की योजनाओं को स्वीकार कर लिया। आस्ट्रिया ने अपना प्रभाव संजक रेलवे की योजना से हटाने और रूस ने नोवी बाजार से अपनी सेना हटाने का वायदा किया।

जर्मनी को बिना सूचित किये ही आस्ट्रिया के विदेश-मन्त्री ने, अक्टूबर १९०८ में इन प्रदेशों को साम्राज्य में मिला लिया। परन्तु रूस का स्वार्थ पूरा न हो सका, क्योंकि इङ्गलेंड और फ्राँस ने उसका विरोध किया। इन प्रदेशों के मिलाने से सर्विया में आस्ट्रिया के विरुद्ध बड़ा रोष फैला। ऐसा प्रतीत होता था कि युद्ध अवश्य हो जायेगा। दोनों देशों के समाचार-पत्र एक दूसरे पर कीचड़ उछाल रहे थे। सर्विया के राजकुमार ने रूसी सहायता लेने की कोशिश की। परन्तु इजवोलास्की दुविधा के कारण रूस सर्विया का साथ खुले रूप में न दे सका। इजवोलास्की कई महीने तक इस बात में उलझा रहा कि इस समस्या पर पुनः विचार के लिये सम्मेलन बुलाया जाय या न बुलाया जाय। बोसनिया और क्रोशिया में आस्ट्रिया के विरुद्ध विद्रोह की आग भड़क उठी। आस्ट्रिया की सरकार ने जैसे-तैसे करके विद्रोहियों को दबाना शुरु किया। यहाँ तक कि उसने सर्विया के सीमान्त प्रदेश पर भी अपनी फौजें लगा दीं। दोनों में युद्ध की सम्भावना बढ़ गयी। किन्तु युद्ध में रूस नहीं पड़ना चाहता था, क्योंकि उसे फ्रांस पर पूर्ण भरोसा नहीं था। रूस के जार ने सर्विया को बहुत सान्त्वना दी थी।

कहा जाता है कि जर्मनी ने अपने स्वार्थ की रक्षा के लिये अहरेन्थल को इन प्रदेशों को मिलाने के लिये उकसाया था, परन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि जर्मनी को उस समय तक कोई पता नहीं दिया गया जब तक कि उनका संयोजन आस्ट्रिया से किया गया। कैसर ने कहा कि 'विअना पर दाँवबाजी का आरोप लगाया जायेगा और यह असत्य भी नहीं होगा। उसने विचित्र तरीके से हमें धोखा दिया है। एक व्यक्तिगत मित्र होने के नाते उसने मेरी भावनाओं को ठेस पहुंचायी है।" जर्मनी का चाँसलर ब्यूलो त्रिमुखी सन्धि के प्रभाव में कमी न करने के कारण आस्ट्रिया की हर कार्यवाही का समर्थन करने के लिये तैयार था। परिणामस्वरूप कैसर को भी निम्न शब्द कहने पड़े— "कठिनाइयों और जटिल परिस्थितयों में हमारा मित्र हम पर

निर्भर रह सकता है ।" तुर्की को आस्ट्रिया ने धन का लालच देकर अपनी तरफ मिला दिया ।

सर्विया का क्रोध और बढ़ गया। जर्मनी ने संघर्ष को मिटाने के लिये एक सम्मेलन बुलाने की योजना प्रस्तुत की। रूस ने इस माँग को कठिनाइयों में फंसे होने के कारण मान लिया। आस्ट्रिया का विदेश-मन्त्री अहरेन्थल इस बात से सहमत था। जर्मनी ने सर्विया और आस्ट्रिया के युद्ध को टाल दिया ।

तुर्की और इटली का युद्ध

ट्रिपोली और सिरेनिका के प्रदेश पर इटली बहुत समय से आँख गड़ाये बैठा था। तुर्की की क्रान्ति के बाद उसने सोचा कि वह कभी इन प्रदेशों को न ले सकेगा। तुर्की के प्रयत्नों के फलस्वरूप भी इटली अपनी चाल में सफल रहा। युद्ध के बीच में ही बाल्कन लीग (Balkan League) की स्थापना हुई। इस लीग के भय के कारण तुर्की ने इटली से सन्धि करके उसे ट्रिपोली दे दिया। हेजन के मतानुसार इटली का ट्रिपोली पर आक्रमण अत्यन्त महत्वपूर्ण और सामयिक था ।

बाल्कन युद्ध (Balkan Wars)
(१९१२—१३)

बाल्कन लीग—युवा तुर्कों की गैर-तुर्क-विरोधी दमन-नीति ने बाल्कन प्रदेश में रहने वाली अन्यान्य जातियों में बड़ा असन्तोष उत्पन्न किया। अपने हितों की रक्षा एवं तुर्कों के विरोध के लिए उन्होंने आपस में संगठन करना प्रारम्भ कर दिया। संगठन का कार्य वास्तव में बड़ा कठिन था, क्योंकि बाल्कन प्रदेश में रहने वाली अनेक जातियों—यूनानियों, सर्व और बल्गेरिअन आदि—के पारस्परिक सम्बन्ध अच्छे न थे। परन्तु युवा तुर्कों ने आर्मीनिया, मेसीडोनिया आदि में जो भयंकर हत्याकाण्ड किये थे उनकी दुःखद स्मृति बाल्कन राज्यों में ताजी थी। अपने पूर्ण विनाश से बचने के लिये उन्होंने अपने पारस्परिक मतभेद भुलाकर १९१२ में अपना एक संघ बनाया जो इतिहास में 'बाल्कन लीग' (Balkan League) के नाम से प्रख्यात हुआ ।

युद्ध के कारण

तत्पश्चात् अक्टूबर, १९१२ में लीग के सदस्यों—माण्टेनीग्रो, सर्विया, बल्गेरिया और यूनान—ने टर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। सारांश में इस युद्ध के निम्नलिखित कारण बताये जा सकते हैं—

(१) टर्की-साम्राज्य भिन्न-भिन्न जातियों, भाषाओं, धर्मों और संस्कृतियों का जमघट था। तुर्क शासक अवश्य थे, परन्तु उनकी संख्या अल्प थी। शासित गैर-तुर्कों की संख्या कहीं अधिक थी। उनमें राष्ट्रीयता की भावना फैल चुकी थी। अब वे अपने स्वतन्त्र राज्यों का निर्माण करना चाहते थे। वे टर्की के अधीन नहीं रहना चाहते थे ।

(२) युवा तुर्क आन्दोलन गैर-तुर्क-विरोधी सिद्ध हुआ। उग्र राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत होकर तुर्कों ने अन्य जातियों के प्रति अत्यन्त असहिष्णुता और अनुदारता

का व्यवहार किया, उनका तुर्कीकरण करना चाहा। उनकी इस उग्र नीति ने अन्य जातियों में भी उग्र राष्ट्रीयता को जन्म दिया। इन जातियों की राष्ट्रीयता तुर्क-विरोधी थी। 'गैर-तुर्क-विरोधी राष्ट्रीयता और तुर्क-विरोधी राष्ट्रीयता के पारस्परिक संघर्ष ने बाल्कन-युद्ध को जन्म दिया।

(३) युवा तुर्क आन्दोलन के दौरान में गैर-तुर्कों को भारी क्षति उठानी पड़ी थी। हजारों आर्मीनियनों की हत्या कर दी गई। मैसीडोनिया और क्रीट के यूनानियों का भीषण दमन किया गया। अल्बानिया के मुसलमानों को भी न छोड़ा गया। युवा तुर्कों ने उनकी स्वतन्त्रता का भी अपहरण करने की चेष्टा की। तुर्कों के इन कार्यों ने गैर-तुर्कों पर बड़ा दुष्प्रभाव उत्पन्न किया। उनमें भयंकर प्रतिशोध की भावना उत्पन्न हुई।

(४) तुर्की साम्राज्य में सहधार्मिकता और सहजातीयता की भावनाओं ने भी विचित्र परिस्थिति उत्पन्न कर दी थी। भिन्न-भिन्न प्रदेशों में रहने वाले मनुष्य समान धर्म और जाति के आधार पर एक राज्य में संगठित होना चाहते थे। उदाहरण के लिये सर्विया, माण्टेनीग्रो, बोस्निया और हर्जेगोविना की जनता एक ही मूल की थी। अतः वह एक ही राज्य में संगठित होना चाहती थी। इसी प्रकार यूनान मेसीडोनिया, क्रीट तथा अन्य टापुओं पर अधिकार करना चाहता था। इन प्रदेशों में यूनानी रहते थे। इन सहजातीय और सहधार्मिक आन्दोलनों ने बाल्कन प्रदेश में बड़ी अनिश्चितता उत्पन्न कर दी थी।

(५) टर्की के साम्राज्य में विदेशों के हित थे। कभी-कभी वे परस्पर-विरोधी थे। रूस और सर्विया सहधर्म और सहजाति के आधार पर मित्र थे। इसी प्रकार जर्मनी और आस्ट्रिया, टर्की की समस्याओं में एक दूसरे के समर्थक थे। इटली दक्षिण में आस्ट्रिया के विस्तार का विरोधी था। इंगलेंड टर्की साम्राज्य को रूसी प्रभाव से मुक्त रखना चाहता था। इस प्रकार टर्की साम्राज्य की छोटी से छोटी घटना विदेशी हितों के कारण जटिल हो जाती थी।

(६) टर्की के गैर-तुर्क देश भी आपस में एक दूसरे के शत्रु थे। उदाहरण के लिये बल्गेरिया, सर्विया और यूनान में शताब्दियों से जातीय वैमनस्य चल रहा था। द्वितीय बाल्कन युद्ध तो प्रमुखतया गैर-तुर्क जातियों के पारस्परिक वैमनस्य के कारण ही हुआ था।

(७) टर्की साम्राज्य के विरुद्ध जिन देशों ने स्वतन्त्रता अथवा आँशिक सफलता प्राप्त की थी, उन्होंने उस साम्राज्य की निर्बलता प्रकट कर दी थी और दूसरे अधीन देशों को भी विद्रोह के लिये प्रोत्साहित किया था।

प्रथम बाल्कन युद्ध की घटनायें

१५ अक्टूबर, १९१२ को माण्टेनीग्रो, सर्विया, बल्गेरिया और यूनान ने टर्की से युद्ध प्रारम्भ कर दिया। १८ अक्टूबर को दोनों पक्षों में युद्ध की घोषणा भी हो गई। तीन सप्ताह के भीतर यूनानियों ने मैसीडोनिआ में विस्तृत प्रदेश पर अधिकार

करते हुए सालोनिका के बन्दरगाह पर अधिकार कर लिया। उधर सर्वों ने कुमानोवो में तुर्कों को बुरी तरह पराजित किया और मोनास्टीर पर अधिकार कर लिया। इसी प्रकार बल्गेरियनों ने तुर्कों को किर्क किलिसी और लूली बर्गस के युद्धों में हराया। बल्गेरियन बराबर प्रगति करते गये और शीघ्र ही वे कुस्तुन्तुनिया के समीप पहुंच गये। इन पराजयों के परिणामस्वरूप टर्की का योरपीय साम्राज्य प्रायः समाप्त हो गया। उसके पास योरप में केवल कुस्तुन्तुनिया, एड्रियानोपल, जैनिना और स्कुटारी रह गये।

मित्रराष्ट्रों की तात्कालिक सफलता के विषय में ग्यूशाफ (Gueshoff) ने लिखा है—

"A miracle took place......Within the brief space of one month the Balkan Alliance demolished the Ottoman Empire, four tiny countries with a population of some 10,000,000 souls defeating a great Power whose inhabitants numbered 25,000,000."

अब टर्की ने सन्धि की इच्छा प्रकट की। दिसम्बर १९१२ को लन्दन में एक सम्मेलन हुआ। परन्तु वह सफल न हो सका; इसका विशेष कारण यह था कि बल्गेरिया ऐड्रियानोपुल चाहता था। परन्तु तुर्क उसे देने के लिए बिल्कुल तैयार न थे।

अतः मार्च, १९१३ में पुनः युद्ध प्रारम्भ हो गया। ६ मार्च, १९१३ को जैनिना तुर्कों के हाथ से निकल गया। २६ मार्च को एड्रिआनोपुल पर मित्रराष्ट्रों ने अधिकार कर लिया। २३ अप्रैल को स्कुटारी का भी पतन हो गया। इस दुरवस्था में टर्की को पुनः सन्धि की प्रार्थना करनी पड़ी। परिणामस्वरूप ३० मई १९१३ को लन्दन की सन्धि हो गई।

लन्दन की सन्धि

इस सन्धि की निम्नलिखित प्रमुख शर्तें थीं—

(१) ईजिअन सागर पर स्थित एनोज से काले सागर पर स्थित मीडिआ तक एक रेखा खींची गई। इस रेखा के पश्चिम का प्रायः सम्पूर्ण तुर्की प्रदेश मित्रराष्ट्रों को दे दिया गया।

(२) अल्बानिआ की सीमाओं और भविष्य के विषय में महान् शक्तियाँ (Great Powers) निर्णय करेंगी।

(३) क्रीट यूनान को दे दिया गया।

(४) यूनान ने ईजिअन सागर में जिन टापुओं पर अधिकार कर लिया था उनके भविष्य का प्रश्न भी महान् शक्तियों के हाथ में छोड़ दिया गया।

लन्दन की सन्धि ने योरप के टर्की राज्य को प्रायः समाप्त कर दिया।[1] इस

---

1. 'The Sultan's dominions in Europe had shrunk nearby to the vanishing point. After five centuries of proud possession he found himself almost expelled from Europe, retaining still Constantinople and only enough territory round about to protect it.'

—Hazen.

सन्धि की आलोचना करते हुए मैरियट महोदय लिखते हैं—

"The European concert Congratulated itself upon a remarkable achievement : the problem which for centuries had confronted Europe had been solved; the clouds which had threatened the peace of Europe had been dissipated: the end of the Ottoman Empire, long foreseen and long dreaded as the certain prelude to Armageddon, had come, and come in the best possible way, young nations of high promise had been brought to the birth, the older nations were united, as never before, in bonds of amity and mutual good-will.'

मित्रराष्ट्रों में मतभेद—लन्दन की सन्धि ने टर्की साम्राज्य का विघटन तो कर दिया था, परन्तु यह निश्चित न किया था कि किस देश को कौन सा प्रदेश दिया जाय। अतः युद्ध समाप्त होने पर विजेताओं में प्रदेश-विभाजन के लिये झगड़ा प्रारम्भ हो गया। मित्रराष्ट्र, विशेषतया बल्गेरिया, यूनान और सर्विया, अपनी महान् विजयों को देखकर अभिमान से फूल रहे थे। वे उदारतापूर्वक अपने पारस्परिक मतभेदों को दूर करने के लिये तैयार न थे।

(१) बल्गेरिया और यूनान ने मैसीडोनिया में अपनी सीमायें निश्चित करने के लिये ७ अप्रैल, १९१३ को एक कमीशन नियुक्त किया था। परन्तु वह कमीशन अपने कार्य में असफल रहा। दोनो देश सीमा-सम्बन्धी मतभेदों को दूर न कर सके। यूनान सालोनिका चाहता था। परन्तु बल्गेरिया उसे देने के लिये तैयार न था।

(२) ७ मई को बल्गेरिया ने रूमानिया से वायदा किया कि वह रूमानिया को सिलिस्ट्रिआ और डोबूजा का कुछ प्रदेश दे देगा। परन्तु इस पर भी रूमानिया ने सर्विया और यूनान के साथ मिल कर एक सैनिक कन्वेंशन किया।

(३) २८ मई को सर्विया ने माँग की कि अल्बानिया राज्य के निर्माण से हमारा विस्तार समुद्र की ओर न हो सकेगा। अतः बल्गेरिया हमें अन्यत्र हर्जाना दे। बल्गेरिया ने यह माँग अस्वीकार कर दी। सर्विया और बल्गेरिया के झगड़े को सुलझाने के लिये रूस ने मध्यस्थता करने का प्रस्ताव रक्खा। सर्विया ने तो इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया, परन्तु बल्गेरिया ने उसमें अनेक शर्तें लगा दीं। इस स्थिति में सर्विया बल्गेरिया से और भी अधिक रूष्ट हुआ। उसका कथन था कि बल्गेरिया के दो ओर समुद्र हैं, परन्तु वह सर्विया को एक बन्दरगाह भी नहीं देना चाहता।'[1]

इस प्रकार प्रमुख झगड़ा बल्गेरिया के साथ था। बल्गेरिया का मत था कि प्रथम बालकन युद्ध में सबसे अधिक बलिदान उसने किये थे और सबसे अधिक विजयें भी उसी ने की थीं। अतः विजित प्रदेशों के अधिकाँश भाग

1. 'Bulgaria is washed by two seas and grudges Servia a single port.'

उसी को मिलने चाहियें। उसके अन्य साथियों का कथन था कि प्रथम बाल्कन युद्ध की विजय सबके सम्मिलित योग से हुई है। अतः प्रदेश-विभाजन में सभी के हितों का समान रूप से ध्यान रखना चाहिए। इस प्रकार बल्गेरिया अकेला रह गया और सर्विया और यूनान उसके विरोधी हो गये। उधर रूमानिया भी बल्गेरिया के विरुद्ध हो गया।

द्वितीय बाल्कन युद्ध

इस समय बल्गेरिया ने बड़ी अदूरदर्शिता से कार्य किया। उसने अपने विजयाभिमान में यह न सोचा कि अपने चारों ओर शत्रु बनाना कालान्तर में उसके लिए घातक हो सकता है। यही नहीं, उसने २६ जून, १६१३ को सर्विया पर आक्रमण कर दिया। इसी घटना से द्वितीय बाल्कन युद्ध प्रारम्भ हो गया। इसमें यूनान और रूमानिया ने भी सर्विया का साथ दिया। उधर टर्की ने भी इस पारस्परिक झगड़े से लाभ उठाने के लिये बल्गेरिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस प्रकार बल्गेरिया को सर्विया, यूनान, रूमानिया और टर्की की सम्मिलित शक्ति के विरुद्ध युद्ध करना पड़ा।

युद्ध की घटनायें

सर्वों और यूनानियों ने मेसीडोनिया में बल्गेरिअनों पर आक्रमण किया और उन्हें अनेक प्रदेशों से खदेड़ दिया। वापस जाते-जाते बल्गेरिअनों ने मेसोडोनिया की यूनानी जनता की सामूहिक हत्यायें कीं। इसके बदले में यूनानियों ने बल्गेरिअन जनता का सामूहिक बध करना प्रारम्भ किया।

६ जुलाई १६१३ को रूमानिअनों ने बल्गेरिया से सिलिस्ट्रिआ छीन लिया और तत्पश्चात् सोफिआ।

२० जुलाई को तुर्कों ने बल्गेरिअनों से ऐड्रिआनोपल छीन लिया

चतुर्दिक पराजयों से विवश होकर बल्गेरिया ने हथियार डाल दिये। अन्त में १० अगस्त को बुखारेस्ट की सन्धि से द्वितीय बाल्कन युद्ध का अन्त हुआ।

बुखारेस्ट की सन्धि

इस सन्धि की निम्नलिखित प्रमुख शर्तें थीं—

(१) बल्गेरिया ने रूमानिया को सिश्रिस्ट्रिआ का दुर्ग एवं डोबुजा की एक पट्टी दी।

(२) बल्गेरिया के हाथ से मेसीडोनिआ भी निकल गया। वह मित्रराष्ट्रों में बाँट दिया गया।

(३) सर्विया को मध्य मेसीडोनिआ मिला।

(४) माण्टेनीग्रो को पश्चिमी मेसीडोनिया के प्रदेश मिले।

(५) यूनान को दक्षिणी मेसीडोनिया, सालोनिका, एपिरस और पूर्व में मेस्टा तक का समुद्र तट मिला।

(६) टर्की को एड्रिआनोपुल, डेमोटिका और किर्क किलिसी पुनः प्राप्त हो गये।

(७) बल्गेरिया को ईजिअन सागर तक पहुंचने के लिये डेडीगैच (Dedeagatch) के बन्दरगाह के समीप की एक संकरी पट्टी दे दी गई।

इस प्रकार बल्गेरिया को अपने अभिमान का बड़ा कठोर दण्ड भुगतना पड़ा। प्रथम बाल्कन युद्ध में उसने जो लाभ और गौरव प्राप्त किया जा वह सब जाता रहा।

दोनों बाल्कन युद्धों के परिणाम

प्रथम और द्वितीय बाल्कन युद्धों ने अनेक महत्वपूर्ण प्रभाव उत्पन्न किये—

बल्गेरिया—लन्दन की सन्धि के समय बल्गेरिया की स्थिति बड़ी अच्छी थी। वह बाल्कन प्रदेश का सबसे महत्वपूर्ण देश बन गया था। परन्तु अपनी अदूरदर्शिता के कारण उसने शीघ्र ही अपनी अवनति कर डाली। बुखारेस्ट की सन्धि से उसके हाथ से प्रायः सभी प्रदेश जाते रहे। उसे 'ईजिअन' सागर के ऊपर एकमात्र संकरा समुद्र-तट मिला। उसके हाथ से सम्पूर्ण मेसीडोनिया निकल गया। औच्रीडा और मोनास्टीर पर सर्बिया का अधिकार हो गया। बल्गेरिया कवाला का बन्दरगाह चाहता था। परन्तु वह भी उसे न मिल सका। वह यूनान को दे दिया गया। इसी प्रकार रूमानिया और टर्की ने भी उससे अनेक महत्वपूर्ण प्रदेश ले लिये। मेसीडोनिया के साथ-साथ उसके हाथ से थ्रेस भी निकल गया।

यूनान—बुखारेस्ट की सन्धि से यूनान को सबसे अधिक लाभ हुआ। उसे सालोनिका, एपिरस, क्रीट, तथा अनेक टापू मिले। परन्तु यूनान इन लाभों से पूर्णतया सन्तुष्ट न हुआ। वह अल्बानिया का दक्षिणी प्रदेश चाहता था। परन्तु उसकी यह माँग स्वीकार न की गई। उसने इम्बोज़ और टेनीडोज़ द्वीपों की माँग की। यहाँ यूनानी रहते थे। परन्तु डार्डेनेलीज के जल-मार्ग की सुरक्षा के लिए ये द्वीप टर्की के लिये महत्वपूर्ण समझे गये। अतः वे टर्की को दे दिये गये। सन्धि के पश्चात् भी थ्रेस, पूर्वी मेसीडोनिया और टर्की के प्रदेशों में लाखों यूनानी छोड़ दिये गये थे। इन प्रदेशों को जातीय आधार पर यूनान अपने राज्य में मिलाना चाहता था। परन्तु उसकी माँग पूरी न हो सकी।

सर्बिया—सर्बिया को भी काफी लाभ हुआ। उसे आधा नोवी-बाजार, पुराना सर्बिया और मध्य मेसीडोनिआ प्राप्त हुआ। परन्तु आस्ट्रिया और जर्मनी के विरोध के कारण उसे समुद्र-तट प्राप्त न हो गया। अतः उसे बुखारेस्ट की सन्धि से घोर असन्तोष रहा।

अल्बानिया—अल्बानिआ का कोई न कोई भाग आस्ट्रिया, सर्बिया, इटली और यूनान चाहते थे। परन्तु महान् शक्तियों (Great Powers) ने बुखारेस्ट की सन्धि में अल्बानिआ को एक स्वायत्तपूर्ण राज्य के रूप में निर्मित किया। अल्बानिआ के निर्माण में महान् शक्तियों के उद्देश्यों की चर्चा करते हुए मैरियट महोदय लिखते हैं—

"The Powers were determined to secure autonomy to Albania. Such a solution offered obvious advantages. It might stifle the incipient pretentions of Italy and Austria-Hungary, it might arrest the inconvenient claims of Greece upon Northern Epirus, it might interpose a powerful barrier between the Souther Slaves and the Adriatic; it might, above all, repair the havoc which the formation of the Balkan alliance had wrought in German plans in regard to Near East-"

माण्टेनीग्रो—माण्टेनीग्रो को नोवी-बाजार का पश्चिमी भाग मिला। परन्तु उसे स्कुटारी प्राप्त न हो सका। माण्टेनीग्रो समुद्र-तट की ओर अपना विस्तार करना चाहता था। उसकी यह अभिलाषा पूरी न हुई।

रूमानिआ—रूमानिआ को सिलिस्ट्रिआ और डोबुजा की पट्टी अवश्य प्राप्त हुआ, परन्तु इन लाभों से उसे पूर्ण सन्तोष न हुआ। वह ट्रांसिलवेनिआ, बसेराबिआ और बुकोविना चाहता था। ये प्रदेश उसे प्राप्त न हो सके। उसकी जाति के बहुसंख्यक मनुष्य अब भी आस्ट्रिया और रूस में रहते थे। उनका उद्धार न हो सका।

टर्की—प्रथम बाल्कन युद्ध के परिणामस्वरूप योरपीय टर्की समाप्त-प्राय हो गया था। परन्तु द्वितीय महायुद्ध के परिणामस्वरूप टर्की को पुनः कुछ प्रदेश प्राप्त हो गये। प्राप्त प्रदेशों में सबसे अधिक उल्लेखनीय ऐड्रिआनोपुल है।

अन्यान्य परिणाम

बाल्कन युद्धों ने प्रादेशिक परिवर्तनों के अतिरिक्त कुछ महत्वपूर्ण राजनीतिक प्रभाव भी उत्पन्न किये—

(१) सर्विया समुद्र-तट प्राप्त करना चाहता था। परन्तु उसके और समुद्र-तट के बीच स्वतन्त्र अलबानिआ के निर्माण ने उसकी यह उत्कट इच्छा पूरी न होने दी। इसके लिये उसने आस्ट्रिया और जर्मनी को दोषी ठहराया। इस घटना के पश्चात् सर्विया इन दोनों देशों को अपना घोर शत्रु समझने लगा।

उधर आस्ट्रिया और उसका मित्र जर्मनी भी सर्विया को अपना शत्रु मानते थे। सर्विया स्लाव आन्दोलन का नेता था। यह आन्दोलन आस्ट्रिया की सुरक्षा के लिये हानिकर था, क्योंकि स्लाव जाति आस्ट्रिया में भी रहती थी। सर्विया आस्ट्रिया से बोस्निआ और हर्जेगोविना छीनना चाहता था। सर्विया के रहते हुये आस्ट्रिया सालोनिका की ओर अपना विस्तार न कर सकता था। सर्विया, यूनान और रूमानिआ मित्र थे। जर्मनी और आस्ट्रिया टर्की साम्राज्य में अपना प्रभाव अथवा अधिकार स्थापित करना चाहते थे। परन्तु बाल्कन प्रदेश के इन देशों ने उनकी योजनाओं में बाधा डालना प्रारम्भ कर दिया था।

सर्विया और आस्ट्रिया की शत्रुता ने ही कालान्तर में प्रथम महायुद्ध को जन्म दिया।

(२) रूमानिश्रा बृहत्तर रूमानिश्रा का निर्माण करना चाहता था। उसकी जाति के बहुसंख्यक मनुष्य श्रास्ट्रिया-साम्राज्य में रहते थे। अतः रूमानिश्रा के जातीय प्रचार ने श्रास्ट्रिया के साम्राज्य के लिये एक खतरा पैदा कर दिया था। श्रास्ट्रिया जिस प्रकार सर्विया से नाराज था उसी प्रकार रूमानिश्रा से भी।

(३) श्रास्ट्रिया सालोनिका की श्रोर बढ़ना चाहता था। परन्तु सालोनिका में यूनान का अधिकार था। अतः श्रास्ट्रिया श्रौर यूनान में भी कटुता हो गई।

(४) द्वितीय बाल्कान युद्ध में बल्गेरिया बड़ी बुरी तरह से पराजित हुश्रा था। बुखारेस्ट की सन्धि उसके लिये घोर अपमानजनक थी। अतः वह इसे तोड़ने के लिये अवसर की परीक्षा करने लगा।

(५) बुखारेस्ट की सन्धि ने किसी को भी पूर्ण रूप से सन्तुष्ट न किया। टर्की, रूमानिश्रा, यूनान, माण्टेनीग्रो श्रौर सर्विया को वे समस्त प्रदेश न मिले जिनका उन्होंने दावा किया था।

(६) इन युद्धों में जन-धन की भारी हानि हुई। बल्गेरिया के १ लाख ५० हजार श्रादमी हताहत हुये। इतनी ही क्षति टर्की की हुई। यूनान श्रौर सर्विया प्रत्येक के ७० हजार श्रादमी हताहत हुये। माण्टेनीग्रो के हताहतों की संख्या १० हजार थी। युद्धों के पश्चात् रोगों, अन्नाभाव श्रादि से भी बहुसंख्यक जनता ने प्राण खोये।

(७) बाल्कन के युद्ध प्रथम महायुद्ध के कारण बने। इन युद्धों ने जिस पारस्परिक कटुता को जन्म दिया वह बराबर बढ़ती गई श्रौर उसी के कारण १९१४ में भयंकर महायुद्ध हुश्रा। इस विषय में हेजेन महोदय ने लिखा है—

'For the Balkan wars of 1912 and 1913 were a prelude to the European war of 1914. The sequence of events from the Turkish Revolution of July, 1908, to the Austrian declaration of war upon Servia in July, 1914, is direct, unmistakable, disastrous. Each year added a link to the lengthening chain of iron.'

ग्राण्ट श्रौर टेम्परले ने लिखा है कि १९१४ के महायुद्ध के लिये कोई भी घटना इतनी अधिक उत्तरदायी नहीं है जितना कि बाल्कन युद्ध। इस युद्ध ने तुर्कों का पतन करके शक्ति-संतुलन को प्रभावित किया। सर्विया ने बोस्निया के अपमान का बदला ले लिया। सर्विया के राष्ट्रीय श्रान्दोलन के परिणामस्वरूप कालान्तर में यूगोस्लाविश्रा का जन्म हुश्रा। यूनान बृहत्तर यूनान, रूमानिश्रा बृहत्तर रूमानिया श्रौर सर्विया बृहत्तर सर्विया की स्थापना के स्वप्न देखने लगे। श्रास-पास के देशों में रहने वाले यूनानी, रूमानिश्रन श्रौर सर्व अपने उद्धार के लिये इन देशों की श्रोर देखने

लगे। बाल्कन युद्ध के पश्चात् आस्ट्रिया और टर्की के अधीन अन्य जातियाँ अपनी स्वतन्त्रता के लिये राष्ट्रीय आन्दोलन चलाने लगीं।[1]

Questions

1 Discuss the main events in the history of the Eastern Question from 1878 to 1914.

2 What effcets did the growth of nationalism produce on the Eastern Question ?

3 'The Eastern Question entered upon a new and startling phase in the Summer of 1948.' (Hazen) Discuss.

4 What do you understand by the Young Turk Movement ? What results did it produce ?

5 Discuss the causes and results of the Balkan wars. How far were the Balkan wars reponsible for the outbreak of the First wrold war of 1914 ?

---

1. 'No single event influenced the outbreak of war in 1914 more than the Balkan war of 1912-13.........the overthrow of the Turk caused an immediate danger, for it affected the Balance of Power in the present.........Servia added a million to its population, erased the humiliations of the Bosnian annexation and triumphantly asserted her prestige in an out burst of Pan-Serv and Yugo-Slav enthusiasm, which swept Dalmatia and Bosnia like a prairie-fire.........As Italy had risen from Piedmont, so a united Yugoslavia was to arise form Servia. The prestige gained by Greece and Rumania was only second to that of Servia. All three states now looked forward to a time when each flag would cover all their kinsmen in the Balkans, a greater Greece, a greater Rumania, a greater Servia......A perpetually increasing nationalistic agitation in Austria-Hungary and Turkey, where such agitation was so dangerous, was the direct result of the Balkan war'.

—Grant and Temperley.

७

अफ्रीका का विभाजन

अन्ध महाद्वीप; कारण; झुकाव के कारण; अफ्रीका की खोज और वंटवारा; बर्लिन सम्मेलन; इंगलैंड का विस्तार; फ्रांस, का विस्तार; बेलजियम का विस्तार; पुर्तगाल।

अन्ध महाद्वीप—अफ्रीका एक विस्तृत महाद्वीप है। १९वीं शताब्दी के पूर्व यह विश्व में 'अन्ध महाद्वीप' के नाम से प्रख्यात था। यूरोप के निकट होते हुए भी यूरोप-निवासियों को उसका भौगोलिक ज्ञान नहीं था। यदि कुछ देशों को उसके सम्बन्ध में कुछ ज्ञान था भी तो एकमात्र तटीय प्रदेशों का। उस समय अफ्रीका की आन्तरिक सम्पत्ति का लोगों को कुछ ज्ञान नहीं था। व्यापारियों के लिए उसका इतना ही महत्व था कि वे वहाँ से हब्शियों को पकड़ लाते थे और उनको दास बना कर अमेरिका के किसानों को बेच देते थे। यूरोप के निवासियों का अफ्रीका के अन्दर न पहुंचने के सम्बन्ध में निम्नलिखित कारण बताये जा सकते हैं :—

(१) अफ्रीका का समुद्र-तट बहुत खराब था तथा वहाँ उत्तम बन्दरगाहों का अभाव था।

(२) अफ्रीका की जलवायु अच्छी नहीं थी। वहाँ की भौगोलिक स्थिति बहुत खराब थी। मिस्र, ट्यूनिस, अलजीरिया तथा मोरक्को आदि प्रदेशों के अतिरिक्त अफ्रीका के अन्य प्रदेश उपजाऊ नहीं थे। दक्षिण में सहारा का विशाल रेगिस्तान था। वहाँ बहुत अधिक गर्मी पड़ती थी। वनस्पति तथा जल का वहाँ सर्वथा अभाव था। सहारा के दक्षिण में वन थे। उनमें अनेक हिंसक पशु तथा जहरीले जानवर रहते थे। उनमें मानव का प्रवेश असम्भव था।

(३) अफ्रीका में अनेक पठार तथा दलदल थे। स्थान-स्थान पर झरने थे। इससे आवागमन के मार्गों का सर्वथा अभाव था।

(४) अफ्रीका के आदिम निवासी विदेशियों को घृणा की दृष्टि से देखते थे। वे पिछड़े हुये थे। उनसे किसी प्रकार का व्यापार नहीं किया जा सकता था।

अफ्रीका की ओर झुकाव के कारण—धीरे-धीरे इस स्थिति में परिवर्तन होने लगा और यूरोप के लोग अधिकाधिक अफ्रीका की ओर आकृष्ट होने लगे। इसके निम्नलिखित कारण बतलाये जा सकते हैं :—

(१) सर्वप्रथम नेपोलियन महान् ने अफ्रीका के महत्व को समझा। इसी से उसने मिस्र पर आक्रमण किया। इससे अंग्रेजों का पूर्वी साम्राज्य खतरे में पड़ गया।

इसीलिये अंग्रेजों तथा नेपोलियन में बहुत संघर्ष हुआ। इस संघर्ष से यूरोप के अधिकांश देश इस ओर आकर्षित हुये।

(२) अपने औद्योगिक विकास के लिए यूरोप के विभिन्न देश उपनिवेश-स्थापना के लिए बहुत अधिक प्रयत्नशील थे। परन्तु इस समय तक एशिया के अधिकांश प्रदेशों पर विभिन्न देशों ने अधिकार कर लिया था। अमेरिका में 'मुनरो-सिद्धान्त' के भय से बाहरी देश प्रवेश नहीं कर सकते थे। अतः १९वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में यूरोप के विभिन्न देशों का ध्यान अफ्रीका की ओर आकर्षित हुआ।

(३) अफ्रीका में हीरे आदि अनेक अमूल्य रत्नों की खानें थीं। अतः अफ्रीका के विभिन्न प्रदेशों पर अधिकार कर यूरोप-निवासी वहाँ की सम्पत्ति का उपभोग करना चाहते थे।

(४) उस समय यूरोप में उग्र राष्ट्रीयता की भावना जोर पकड़ रही थी। इंगलैंड तथा हालैण्ड आदि देशों के अनुकरण पर जर्मनी, इटली तथा फ्राँस आदि देश भी उपनिवेश-स्थापना आवश्यक समझते थे। इस प्रकार अपने गौरव की वृद्धि के लिए प्रत्येक देश उपनिवेश-स्थापना को बहुत अधिक महत्व दे रहा था।

(५) यूरोप के कुछ राष्ट्र अफ्रीका के पिछड़े प्रदेशों में अपने धर्म तथा संस्कृति का प्रचार करना चाहते थे। इसी से बहुत से पादरी भी अनेक कष्ट उठा कर अफ्रीका के दुर्गम प्रदेशों में पहुंचे।

(६) उपनिवेश-स्थापना के संघर्ष में भाग लेकर प्रत्येक देश अपनी सैन्य-शक्ति का चमत्कार दिखलाना चाहता था। इंगलैंड को अपनी भारतीय सेना का बहुत गर्व था। जर्मनी ने भी अपनी सेना का बहुत अधिक विकास कर लिया था।

(७) १८३३ के एक अधिनियम के द्वारा ब्रिटेन ने अपने साम्राज्य में दास-व्यापार अवैध घोषित कर दिया था। इससे यह व्यापार गुप्त रूप से चलने लगा। अतः अंग्रेजों ने इसकी देख-भाल के लिए अफ्रीका के पश्चिमी तट पर एक जल-सेना की व्यवस्था की। अफ्रीका के अन्दर की गतिविधियों की जानकारी प्राप्त करने तथा दासों की मण्डियों का पता लगाने के लिये देश में अन्दर पर्यटन पर अधिकाधिक जोर दिया।

अफ्रीका की खोज—अफ्रीका की खोज में मिशनरियों तथा अन्वेषकों ने महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने अपने जीवन को जोखिम में डाल कर दुर्गम प्रदेशों का पता लगाया। इस सम्बन्ध में लिविंग्स्टन, स्टेनली, बेकर, स्पीक तथा ग्राण्ट आदि के नाम प्रमुख हैं। लिविंग्स्टन ने जाम्बेजी नदी के मार्ग द्वारा यात्रा कर विक्टोरिया तथा न्यांजा झीलों का पता लगाया। उसने १८४० तथा १८७३ के बीच मध्य अफ्रीका के समस्त प्रदेशों को छान डाला। एक बार वह मार्ग भूल कर सघन वनों में खो गया। अतः उसकी खोज के लिए १८७४ में स्टेनली भेजा गया। १८८८ में एक अंग्रेज अन्वेषक स्पीक ने एक झील का पता लगाया। १८६४ में अंग्रेज अन्वेषक बेकर ने भी एक झील का पता लगाया था। इन भ्रमणों से विभिन्न देशों के लोगों को अफ्रीका

के अन्दर की दलदलों, जंगलों, झीलों, नदियों तथा निवासियों आदि के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण बातें ज्ञात हो गईं। इस पर प्रत्येक देश अफ्रीका में उपनिवेश-स्थापना के लिये प्रयास करने लगा।

अफ्रीका का बंटवारा—अफ्रीका का बंटवारा यूरोपीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है। यह बंटवारा बहुत शीघ्रता से हुआ तथा विभिन्न देशों में पारस्परिक मतभेद होते हुये भी इस सम्बन्ध में कोई महत्वपूर्ण युद्ध नहीं हुआ। सर्वप्रथम १८७६ में बेलजियम के राजा लियोपोल्ड द्वितीय ने ब्रूसेल्स में यूरोप के राष्ट्रों की एक सभा बुलाई। उसका उद्देश्य अफ्रीका के महत्व पर विचार करना तथा प्रत्येक देश में 'अफ्रीकन सभाओं' का आयोजन करना था। परन्तु इस सभा का उच्चादर्श अधिक समय तक न टिक सका और यूरोप का प्रत्येक राष्ट्र अपने हित की दृष्टि से अफ्रीका में कार्य करने का प्रयास करने लगा। लियोपोल्ड ने स्टेनली के सहयोग से अफ्रीका में कांगो के विशाल राज्य का संगठन किया। इसके अनुकरण पर यूरोप के विभिन्न राज्य मध्य अफ्रीका में अपने लिए उपनिवेश-स्थापना का प्रयास करने लगे। इस सम्बन्ध में इंगलैंड, फ्रांस, जर्मनी तथा इटली आदि देशों के नाम उल्लेखनीय हैं। कुछ देशों ने अपनी आकांक्षा की पूर्ति के लिए अफ्रीका के पिछड़े आदिम निवासियों को सभ्य बनाने तथा वहाँ ईसाई धर्म के प्रचार का ढोंग रचा। इस प्रकार अफ्रीका की लूट प्रारम्भ हो गई।

१८८४ का बर्लिन सम्मेलन—यूरोप का प्रत्येक राष्ट्र अफ्रीका में अपना उपनिवेश स्थापित करने का प्रयास कर रहा था। इससे उनमें पारस्परिक मतभेद खड़े हो गये। अन्त में उसके निराकरण के लिए बर्लिन में एक अन्तर्राष्ट्रीय-सम्मेलन बुलाया गया। इसमें इंगलैंड, जर्मनी तथा फ्रांस के उपनिवेशों की सीमाओं का निर्धारण किया गया। १८९० में उक्त देशों ने इस सम्बन्ध में एक और सन्धि की। बर्लिन सम्मेलन में अफ्रीका के निवासियों की सांस्कृतिक उन्नति के लिए भी विचार हुआ। हथियारों तथा शराब के व्यापार पर भी रोक लगाई गई। परन्तु कालान्तर में कांगो में अफ्रीकनों का बुरी तरह शोषण होने लगा। इस सम्मेलन में व्यापार की स्वतन्त्रता, कांगो तथा नाइजर में यातायात की स्वतन्त्रता तथा उनके समीप के प्रदेशों पर विभिन्न देशों के अधिकारों को प्रभावपूर्ण बनाने के उपायों पर विचार किया गया था। यह सम्मेलन नवम्बर १८८४ को प्रारम्भ हुआ था तथा फरवरी १८८५ में यह समाप्त हो गया। इस सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका भी सम्मिलित हुआ था। स्विट्जरलैंड के अतिरिक्त यूरोप के समस्त राष्ट्रों ने इसमें भाग लिया था।

अफ्रीका की लूट

इङ्गलैंड—अफ्रीका की लूट में सबसे अधिक भाग इंगलैंड को मिला। उसके विस्तृत साम्राज्य के अन्तर्गत गुडहोप, नेटाल, ट्रांसवाल, औरेन्ज नदी का समीपवर्ती प्रदेश, रोडेशिया, मिस्र, सूडान का कुछ भाग, ब्रिटिश सुमालीलेंड, नाइजीरिया, गोम्बिया, गोल्डकोस्ट तथा सियरा-लियोन आदि सम्मिलित थे।

मिस्र और इङ्गलैंड—अंग्रेजों के लिये मिस्र का बहुत अधिक महत्व था। मिस्र पर किसी विदेशी का अधिकार होना अंग्रेजों के भारतीय उपनिवेश के लिए खतरनाक सिद्ध हो सकता था। पहले मिस्र तुर्की साम्राज्य का एक अंग था और वहाँ टर्की के सुलतान का एक वाइसराय शासन करता था। उसकी उपाधि खदीव थी। १८११ में वहाँ के शासक मुहम्मद अली ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी। १८६३ में उसका नाती इस्माइल पाशा सिंहासन पर बैठा। वह एक अपव्ययी शासक था। उसने अपनी तड़क-भड़क के अतिरिक्त सुधारों में भी बहुत धन व्यय किया। इससे उस पर इंगलैंड तथा फ्रांस का बहुत ऋण हो गया। इस समय मिस्र की अवस्था बहुत खराब थी। इससे देश में नये कर नहीं लगाये जा सकते थे तथा ऐसे दिवालिया देश को कोई भी देश अब ऋण देने के लिये तैयार नहीं था। अतः उसने १८७५ में अपने स्वेज नहर के हिस्से इंगलैंड को बेच दिये। १८७६ में एक संस्था का निर्माण किया गया, जिसके अनुसार मिस्र के आय-व्यय पर इंगलैंड तथा फ्रांस आदि देशों का प्रभाव स्थापित हो गया। इस प्रकार मिस्र के द्वैध-शासन की स्थापना हो गई। अन्त में इस्माइल को पदच्युत कर उसके पुत्र तौफ़ीक को मिस्र का खदीव बनाया गया। इस्माइल बिना किसी खेद तथा पश्चाताप के इटली चला गया।

अरबी पाशा का राष्ट्रीय आन्दोलन—द्वैध शासन से मिस्र की अवस्था बहुत खराब हो गई। धनियों पर टैक्स बहुत अधिक बढ़ गया। सैनिकों को कई महीने तक वेतन नहीं मिला। इससे देश में बहुत असंतोष फैल गया। जनता यह मांग करने लगी कि मिस्र मिस्र वालों के लिए है। अन्त में वहाँ ९ सितम्बर १८८१ को अरबी पाशा नामक नेता के नेतृत्व में एक विद्रोह हो गया। सेना ने भी उसका साथ दिया। पाँच हजार सैनिकों ने राजमहल को घेर लिया। विद्रोहियों की मांग थी कि—सैनिकों की संख्या में वृद्धि की जाय, विदेशी सचिवों को निकाल दिया जाय तथा राष्ट्रीय महासभा की स्थापना की जाय। खेदीव ने अरबी पाशा को युद्ध-मंत्री बना लिया।

विद्रोहियों ने अलेक्जेण्डरिया का दुर्गीकरण करना प्रारम्भ कर दिया। इंगलैंड तथा फ्रांस ने मिलकर इस विद्रोह का दमन करना चाहा। इससे वहाँ ११ जून को एक भारी उपद्रव हो गया और उसमें ५० यूरोपियन मारे गए तथा बहुत अधिक घायल हो गए। इस पर अंग्रेजों ने बम द्वारा अलेक्जेन्ड्रिया नगर को नष्ट करने की योजना बनाई। परन्तु फ्रांस वाले इससे सहमत नहीं हुए। अतः अंग्रेजों ने अकेले ही ११ जुलाई को अलेक्जेन्ड्रिया पर बमबारी की। परन्तु इस पर भी अराबियों ने हिम्मत नहीं हारी। उन्होंने कभी भी समाप्त न होने वाले युद्ध की घोषणा की। अन्त में तेल-एल-कबीर में अराबी पराजित हो गए तथा मिस्र पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। तेल-एल-कबीर की घटना की सूचना पाकर बिस्मार्क बहुत प्रसन्न हुआ। उसने इस पर कहा था—'मिस्र के भाग्य की अपेक्षा ब्रिटिश साम्राज्य की मित्रता हमारे लिए कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। ...... मैं मिस्र के ब्रिटिश साम्राज्य

में सम्मिलित होने का विरोधी नहीं हूं। परन्तु इसके लिए मैं सलाह नहीं दूंगा।" अंग्रेजों को इस घोषणा से बहुत प्रसन्नता हुई। अंग्रेजों ने मिस्र में एक सेना रख दी और एक प्रकार से मिस्र उनका उपनिवेश बन गया। फ्रांस को इससे बहुत दुःख हुआ। अन्त में १९०४ के समझौते के द्वारा उसने मिस्र पर इंगलैंड का अधिकार स्वीकार कर लिया।

सूडान की समस्या—सूडान मिस्र के अधीन था। मिस्र पर अधिकार करने पर सूडान का इंगलैंड के अधीन होना स्वाभाविक था। परन्तु वहाँ १८८१ में मुहम्मद अहमद नामक एक व्यक्ति ने विद्रोह कर दिया। वह अपने को मेहदी (देव-दूत) कहता था। उसके अनुयायी दरवेश कहलाते थे। उन्होंने काफिरों के विरोध में जेहाद प्रारम्भ कर दिया। विद्रोह के दबाने के लिए कर्नल हिक्स भेजा गया। परन्तु वह पराजित हो गया। इस पर इंगलैंड के शान्तिवादी प्रधान मन्त्री ग्लैडस्टन ने मिस्र से सेनाएं हटाने का कार्य गार्डन को सौंपा। परन्तु इस कार्य के लिए गार्डन की नियुक्ति करना एक भारी भूल थी। वह इस्माइल के शासन-काल के अन्तिम चरण में सूडान का गवर्नर रह चुका था। वह एक लड़ाकू सिपाही था। वह मेहदी के सम्मुख पीछे हटने का कभी भी विचार नहीं कर सकता था। १८८४ में गार्डन खारतूम जा पहुंचा। वहाँ उसने सेना को पीछे हटाने के स्थान पर उसकी संख्या में वृद्धि करनी प्रारम्भ कर दी। इस पर मेहदी ने खारतूम में गार्डन को घेर लिया। ब्रिटिश सरकार ने इस समय बहुत लापरवाही का परिचय दिया। गार्डन की रक्षा के लिए कई महीने पश्चात् एक सेना भेजी गई; परन्तु तब तक (फरवरी १८८५) मेहदी ने गार्डन की हत्या कर सूडान पर अधिकार कर लिया था। इस पर ब्रिटिश सरकार ने सूडान की पुनर्विजय का कार्य कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया।

सूडान का अंग्रेजों के लिए बहुत महत्व था। अतः वह पुनः उसकी विजय के लिए सोचने लगे। इस समय वहाँ का सुयोग्य शासक मेहदी मर गया था। उसका उत्तराधिकारी निर्बल था। इससे वहाँ बहुत अव्यवस्था फैल गई। यदि अंग्रेज सूडान पर अधिकार करने की चेष्टा न करते तो फ्रांस वाले उसको जीत सकते थे। इससे मिस्र खतरे में पड़ सकता था। इसके साथ-साथ अंग्रेज अपनी पराजय का बदला लेना चाहते थे। अतः अंग्रेजों ने १८९८ में अपनी पूर्ण तैयारी के साथ सूडान पर आक्रमण किया। इस समय मेहदी तथा उसके अनुयायी दरवेश बुरी तरह पराजित हुए तथा सूडान पर अंग्रेजों का अधिकार स्थापित हो गया।

फेशोदा की घटना—अंग्रेजों की इस सफलता से फ्रांस वालों को बहुत दुःख हुआ। फेशोदा के सम्बन्ध में दोनों में भारी संघर्ष था। बात यह थी कि यह स्थान अंग्रेजों के साम्राज्य के उत्तरी तथा दक्षिणी भाग और फ्रांस वालों के साम्राज्य के पूर्वी तथा पश्चिमी भाग का केन्द्र बिन्दु था। इसीसे १८९८ में अंग्रेजी सेनापति किचनर तथा फ्रांसीसी सेनापति मार्शां में फेशोदा नामक स्थान पर झंडा गाड़ने के सम्बन्ध में भारी मतभेद हो गया। युद्ध की सम्भावना बहुत अधिक बढ़ गई। अन्त में फ्रांस वाले

अपनी निर्बलता को समझकर दब गए और उन्होंने अंग्रेजों से समझौता कर लिया। सूडान में ब्रिटेन तथा मिस्र के द्वैध शासन की स्थापना कर दी गई।

दक्षिणी अफ्रीका—१६५२ में डचों ने केपकालोनी में अपने उपनिवेश की स्थापना की थी। डच बोअर (Boer) कहलाते थे। धार्मिक मामलों में वे बहुत कट्टर थे तथा अंग्रेजों को घृणा की दृष्टि से देखते थे। १८१५ के लगभग से अंग्रेजों ने भी केपकालोनी में बसना प्रारम्भ कर दिया था। धीरे-धीरे यहाँ अंग्रेज तथा डच जातियों की पर्याप्त संख्या हो गई। प्रारम्भ में दोनों जातियों में कोई संघर्ष नहीं हुआ; परन्तु वहाँ अंग्रेजों की संख्या बढ़ने पर डच सशंकित हो गए और दोनों जातियों में कटुता बढ़ने लगी। अन्त में १८३६ में डचों ने केपकालोनी को छोड़ दिया और वे औरेंज फ्री स्टेट, ट्रान्सवाल तथा नेटाल आदि में जा बसे। परन्तु १८७९ में अंग्रेजों ने ट्रान्सवाल को जीत लिया। इस पर १८८१ में अंग्रेजों तथा बोअरों में युद्ध प्रारम्भ हो गया। मजुबा पहाड़ी के युद्ध में अंग्रेज हार गए। अन्त में उन्होंने बोअरों की स्वतंत्रता स्वीकार कर ली तथा ट्रान्सवाल को स्वतन्त्र कर दिया।

१८८१ में ट्राँसवाल के रेण्ड प्रदेश में कुछ सोने की खानों का पता लगा। इससे भारी संख्या में अंग्रेज वहां जाकर बसने लगे। बहुत से स्थानों पर अंग्रेजों की संख्या बोअरों से भी अधिक हो गई। इससे बोअरों की सुरक्षा खतरे में पड़ गई। बोअर उनको घृणा की दृष्टि से देखते थे और उनको विदेशी (Outlanders) नाम से सम्बोधित करते थे। विदेशियों का प्रमुख नेता सेसिल रोड्स (Cecil Rhodes) था। उसका जन्म एक अंग्रेज पादरी के घर हुआ था। उसकी शिक्षा आक्सफोर्ड की यूनिवर्सिटी में हुई थी। उसने अफ्रीका में सोने की खानों में कार्य कर अपार सम्पत्ति इकट्ठी कर ली थी। वह दक्षिणी अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना को बहुत महत्व दे रहा था। अल्प काल में ही उसने अफ्रीका के विस्तृत क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। उसी के नाम पर वह प्रदेश रोडेशिया कहलाया। १८९० में वह केपकालोनी का प्रधान मन्त्री चुना गया। १८९६ तक वह इस पद पर कार्य करता रहा। वह यह चाहता था कि अंग्रेज ट्रांसवाल तथा औरेन्ज फ्रीस्टेट पर अधिकार कर लें। उसकी प्रेरणा से डा० जेम्सन ने ट्राँसवाल पर आक्रमण कर दिया; परन्तु बोअरों ने उसको बुरी तरह पराजित कर दिया। इससे अंग्रेजों तथा ट्राँसवाल की कटुता बहुत अधिक बढ़ गई। जर्मनी से भी अंग्रेजों के सम्बन्ध खराब हो गये, क्योंकि बोअरों की सफलता पर जर्मनी के सम्राट् कैसर विलियम ने ट्राँसवाल के राष्ट्रपति क्रूगर (Krugger) को बधाई का तार दिया था। अन्त में १८९९ में अंग्रेजों का ट्रांसवाल तथा औरेंज फ्री स्टेट से युद्ध प्रारम्भ हो गया। प्रारम्भ में बोअरों अपने सुयोग्य नेताओं—बोथा, वेट तथा स्टीन आदि के नेतृत्व में पर्याप्त सफलता मिली; परन्तु अधिक समय तक अंग्रेजों की भारी शक्ति से टक्कर लेना उनके लिये कठिन था। अंत में बोअर पराजित हो गये। मई १९०२ में दोनों ने विरीनिंग की सन्धि कर ली। उसके अनुसार निम्नलिखित निर्णय किये गये—

१. ट्रांसवाल तथा ओरेंज फ्री स्टेट अंग्रेजी साम्राज्य के अंग बना लिये गये।

२. डच भाषा को सरकारी भाषा स्वीकार कर लिया गया।

३. कालान्तर में उनको स्वायत्त शासन देने का भी वादा किया गया।

इसके बाद अंग्रेजों ने बोअरों को अनेक सुविधायें दीं। परन्तु उनके असंतोष का अन्त नहीं हुआ। अन्त में ब्रिटेन की उदारवादी सरकार ने १९०६ में ट्रांसवाल को तथा १९०७ में ओरेंज फ्री स्टेट को उत्तरदायी स्वशासन प्रदान कर दिया। १९०९ में ब्रिटिश सरकार के ट्रांसवाल, ओरेंज फ्री स्टेट, केप कालोनी तथा नेटाल को यूनियन आफ साउथ अफ्रीका (Union of South Africa) के नाम से एक राज्य के अन्तर्गत संगठित कर दिया।

फ्रांस—अफ्रीका में फ्रांस मिस्र, अलजीरिया, ट्यूनिस तथा मोरक्को आदि महत्वपूर्ण प्रदेशों पर अधिकार करना चाहता था। परन्तु इङ्गलैंड ने फाँस का मिस्र पर अधिकार नहीं होने दिया, क्योंकि अंग्रेजों के लिए उसका बहुत अधिक महत्व था। यदि मिस्र पर किसी विदेशी सत्ता का अधिकार हो जाता तो अंग्रेजों के भारतीय साम्राज्य को खतरा हो सकता था। धीरे-धीरे फ्रांस ने अफ्रीका के कई महत्वपूर्ण प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। १८४७ में उसने अलजीरिया पर अधिकार कर लिया। अलजीरिया के पूर्व में ट्यूनिस का प्रदेश था। फ्रांस उस पर अधिकर कर उसको अलजीरिया के साथ मिलाना चाहता था। इटली भी ट्यूनिस को लालच की दृष्टि से देख रहा था। अन्त में बिस्मार्क के प्रोत्साहन से १८८१ में फाँस ने उस पर अधिकार कर लिया। पश्चिमी अफ्रीका में उसने सेनेगल तथा नाइजर नदियों की घाटी में अपना विस्तार किया। फाँस ने गायना, आइवरीकोस्ट, फ्रेंचकाँगो तथा सहारा के नखलिस्तान पर भी अपना संरक्षण स्थापित कर लिया। सूडान के सम्बन्ध में फ्रेंच सेनापति मार्शा का ब्रिटिश सेनापति किचनर से फेशोदा नामक स्थान पर मतभेद हो गया। दोनों ओर से युद्ध की सम्भावना बहुत अधिक बढ़ गई। परन्तु फ्रांस अपनी निर्बलता को समझकर झुक गया और दोनों ने शान्तिपूर्वक समस्या का समाधान कर लिया। १९०४ में फाँस ने ब्रिटेन से मिस्र तथा मोरक्को के सम्बन्ध में भी समझौता कर लिया। इस प्रकार अफ्रीका के उत्तरी पश्चिमी प्रदेश में फाँस ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना कर ली। पूर्व में उसने १८९६ में मेडागास्कर पर अधिकार कर लिया।

जर्मनी—प्रारम्भ में जर्मनी का चाँसलर बिस्मार्क उपनिवेश-स्थापना का घोर विरोधी था। वह उपनिवेश स्थापना की दौड़ में भाग लेकर इङ्गलैंड से शत्रुता नहीं करना चाहता था। वह अपने को संतुष्ट राष्ट्र कहता था। १८८० में उसने कहा था—मैं उपनिवेश-स्थापना की बात सुनने के लिये बिल्कुल तैयार नहीं हूं। उनकी रक्षा के लिए हमारे पास अभी जहाजी बेड़ा नहीं है तथा उन पर शासन करने के लिये हमारे पास नौकरशाही का भी अभाव है। यदि फाँस चाहे तो मोरक्को पर अधिकार कर सकता है। उस स्थिति में फाँस का उत्तरदायित्व बहुत अधिक बढ़

जायेगा तथा उसके अलसेस और लोरेन के प्रदेशों की क्षति-पूर्ति भी हो जायेगी। अन्त में जर्मनी के औद्योगिक विकास, बढ़ती हुई जनसंख्या के निवास तथा राष्ट्रीय गौरव की वृद्धि के लिये बिस्मार्क को भी उपनिवेश-स्थापना की ओर ध्यान देना पड़ा। गूच महोदय ने लिखा है कि विभिन्न राष्ट्रों द्वारा अफ्रीका के टुकड़े-टुकड़े किये जाने की प्रक्रिया ने जर्मनी की भूख को बढ़ाया और अन्त में बिस्मार्क को उपनिवेश स्थापित कर अपनी भूख को शान्त करना पड़ा। इस प्रकार उपनिवेश-विरोधी होने के कारण बिस्मार्क अफ्रीका भी लूट के समय अखाड़े में कुछ देर से पहुंचा। परन्तु फिर भी १८८४ तथा १८९० के मध्य उसने अफ्रीका में तोगोलैंड (Togoland), कैमरून (Cameroon), पूर्वी अफ्रीका (East Africa) तथा दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका (South–west Africa) पर अधिकार कर लिया। यद्यपि अफ्रीका में जर्मनी सब देशों के बाद में आया था, फिर भी उसने वहाँ एक विशाल साम्राज्य की स्थापना करली तथा उसके लिये उसको कोई युद्ध भी न करना पड़ा।

इटली—इटली ट्यूनिस पर अधिकार करना चाहता था; परन्तु उसको इसमें सफलता नहीं मिली और १८८१ में बिस्मार्क के प्रोत्साहन से फ्रांस ने उस पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् १८८३ में उसने लालसागर के किनारे के प्रदेश में इरीट्रिया नामक उपनिवेश की स्थापना की। इसके पश्चात् वह पूर्वी सुमालीलैंड के कुछ भाग को अपने साम्राज्य में मिलाना चाहता था। परन्तु उसके मध्य में एबीसीनिया का स्वतन्त्र राज्य था। अतः इटली ने अबीसीनिया पर आक्रमण कर दिया; परन्तु १८९६ के एडोवा के युद्ध में अबीसीनिया की सेना ने इटालियन सेना को बुरी तरह पराजित कर दिया। इसके पश्चात् इटली ने ट्रिपोली तथा उसके आस-पास के प्रदेश पर अधिकार कर लिया। कालान्तर में उसने इस प्रदेश का नाम लिबिया रक्खा।

बेलजियम—हम इस अध्याय के प्रारम्भ में उल्लेख कर चुके हैं कि अफ्रीका की लूट की योजना बनाने में बेलजियम के राजा लियोपोल्ड द्वितीय ने सर्वप्रथम भाग लिया था। वह व्यावसायिक मामलों में बहुत निपुण था और अफ्रीका की खोजों के आधार पर लाभ उठाना चाहता था। इस सम्बन्ध में गूच महोदय ने लिखा है—'अफ्रीका का विभाजन एकमात्र बड़े राष्ट्रों द्वारा ही परस्पर नहीं किया गया, परन्तु उसमें एक ऐसा शासक भी सम्मिलित था जिसका देश उसकी अदम्य आकाँक्षाओं को संतुष्ट करने के लिए बहुत छोटा था।'

लियोपोल्ड द्वितीय ने ब्रूसेल्स में विश्व के भूगोल-विशेषज्ञों का एक सम्मेलन बुलाया तथा एक अन्तर्राष्ट्रीय अफ्रीकन सभा (International African Association) की स्थापना की। लियोपोल्ड स्वयं इस सभा का अध्यक्ष बना। प्रत्येक देश में इस सभा की शाखाओं की स्थापना की योजना बनाई गई। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य अफ्रीका के प्रदेशों की खोज करना तथा यूरोपीय सभ्यता और संस्कृति का प्रचार करना था। स्टेनली की १८७५–७७ की यात्रा के फलस्वरूप लियोपोल्ड का ध्यान कांगो की ओर आकर्षित हुआ। अतः १८७८ में उसने स्टेनली को ब्रूसेल्स में

बुला लिया और उसको १८७९ में कांगो के अनेक सरदारों से सन्धि करने के लिए भेजा। उसने १८८०-८४ के मध्य लगभग चार सौ सन्धियाँ कर एक विशाल काँगो राज्य की स्थापना की। इस राज्य का नाम कांगो फ्री स्टेट (Congo Free State) रक्खा। यह राज्य नाम-मात्र के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय राज्य था, परन्तु १९०८ तक लियोपोल्ड इसका राजा मान लिया गया। कांगो का यह राज्य विस्तार में बेलजियम के क्षेत्रफल से १० गुना बड़ा था। यह प्रदेश रबड़ के लिए बहुत प्रसिद्ध था। अतः वहाँ रबड़ के अनेक कारखानों की स्थापना की गई।

पुर्तगाल—पुर्तगाल ने गिनी तट, पुर्तगीज पश्चिमी अफ्रीका तथा पुर्तगीज पूर्वी अफ्रीका के प्रदेशों पर अधिकार कर लिया।

प्रश्न (बी० ए०)

१ उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोपियन शक्तियों में अफ्रीका के विभाजन का वर्णन कीजिये।

२ १८७० के बाद अफ्रीका के बंटवारे की व्याख्या कीजिए।

Questions (M. A.)

1 Trace the growth of European Imperialism in Africa in the last quarter of the nineteenth century and indicate its effect on international relations.

2 Account for the rapid partition of Africa in the closing years of the nineteenth century. What complications did it introduce in Anglo-French relations from 1882 to 1904?

3 What circumstances led to the partition of Africa in the last-half of the nineteenth century? How far was this partition responsible for the out-break of the First World-war?

८ प्रथम महायुद्ध के पूर्व अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति

तीन सम्राटों का गुट, पुनराश्वासन सन्धि, द्विराज्य सन्धि, त्रिराज्य सन्धि, फ्राँस और रूस की सन्धि, हार्दिक मैत्री-सम्बन्ध, आँग्ल रूसी सन्धि, इटली की त्रिराज्य सन्धि छोड़ना।

प्रथम महायुद्ध से यूरोप ही नहीं अपितु विश्व के प्रायः सभी देश किसी न किसी रूप में प्रभावित हुए। यह विश्व युद्ध इतिहास की एक बहुत बड़ी घटना है। इस युद्ध के प्रारम्भ होने की पृष्ठ-भूमि में यूरोपीय देशों के कूटनीतिक सम्बन्धों ने बहुत योग दिया। प्रस्तुत अध्याय में हम यूरोपीय देशों के कूटनीतिक सम्बन्धों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे—

तीन सम्राटों का गुट (Three Emperors' League or Dreikaiser-bund)—१८७० में बिस्मार्क के नेतृत्व में जर्मनी ने फ्राँस को सेडन के युद्ध में पराजित किया। फ्राँस के ऊपर भारी क्षति-पूर्ति लाद दी गई तथा उससे अल्सेस एवं लोरेन के प्रदेश छीन लिए। ये प्रदेश अपनी लोहे एवं कोयले की खानों के लिए प्रसिद्ध थे। इससे फ्रांस जर्मनी से बहुत अधिक नाराज हो गया था। जर्मनी भी यह भली प्रकार जानता था कि फ्राँस कभी भी हमारे विरुद्ध प्रतिशोध का युद्ध (War of Revenge) आरम्भ कर सकता है। अतः १८७० के पश्चात् जर्मनी का प्रमुख उद्देश्य फ्रांस को यूरोप की राजनीति में एकाकी करना हो गया। इसलिए १८७२ में उसने रूस एवं आस्ट्रिया के साथ एक समझौता कर लिया यद्यपि यह कोई विधि-पूर्वक की हुई सन्धि न थी, फिर भी तीनों देशों (जर्मनी, आस्ट्रिया तथा रूस) ने इसको एक सन्धि की भाँति ही पवित्र समझा।

१८७० से १८९० ई० तक बिस्मार्क की यही नीति रही कि फ्रांस यूरोप की राजनीति में असहाय रहे। इसलिए बिस्मार्क का उद्देश्य अन्य देशों से मित्रता स्थापित करना था। वह यूरोप के अन्य देशों को फ्रांस का मित्र न होने देना चाहता था। बिस्मार्क को सबसे अधिक भय इंगलैण्ड एवं रूस का था। अतः वह इनको बराबर अपनी ओर मिलाये रखना चाहता था। इंगलैंड को सन्तुष्ट रखने के उद्देश्य से उसने कभी भी अपनी नौ सेना का संगठन नहीं किया और उपनिवेश-स्थापना की ओर ध्यान दिया। यूरोप में जर्मनी की स्थल-सेना सम्भवतः सबसे अधिक शक्तिशाली थी; परन्तु उसकी जल सेना नगण्य थी। बिस्मार्क भली प्रकार जानता था कि यदि वह नौ सेना के विस्तार तथा उपनिवेश-स्थापना की ओर ध्यान देगा तो उसका निश्चित रूप से इङ्गलैंड से झगड़ा हो जायगा और इङ्गलैण्ड से झगड़ा करना बहुत भयंकर सिद्ध

होगा। इसलिए बिस्मार्क कहा करता था कि हम पृथ्वी के चूहे (जर्मनी) तथा जल के चूहे (इंगलैंड) के मध्य युद्ध होने की कोई सम्भावना उत्पन्न होने देना नहीं चाहते। बिस्मार्क ने उपनिवेश स्थापना की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। वह जर्मनी को एक सन्तुष्ट राष्ट्र कहता था।

बिस्मार्क आस्ट्रिया, जर्मनी, रूस, फ्राँस तथा इंगलैंड को महाशक्ति मानता था। वह इनमें से किन्हीं तीन को सदैव एक गुट में देखना चाहता था। यदि उक्त गुट में दो देश रह जाय तो उसे अपने पक्ष के निर्बल होने की सम्भावना थी। इसी सम्बन्ध में एक बार उसने सेब्रोक नामक राजदूत से कहा था—'यूरोप की राजनीति में आप तीन के महत्व को नहीं समझते।.........कोई भी अल्प संख्या में रहना नहीं चाहता।......तीन शक्तियों को अपनी ओर मिलाने की चेष्टा कीजिये, क्योंकि संसार में पाँच शक्तियाँ शासन करती हैं।'[1] बिस्मार्क इटली की गणना महाशक्तियों में नहीं करता था। जब उससे इटली के सम्बन्ध में पूछा गया तो उसने कहा था कि इटली महाशक्ति नहीं है, उसको तो हम केवल सम्मान प्रदर्शित करने के हेतु ही अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में बुला लेते हैं। एक बार सम्राट् विलियम ने बिस्मार्क के सम्बन्ध में कहा था कि 'वह एक जादूगर है जो पाँच गेंदों से खेला करता है और उनमें किसी को भी वह नीचे गिरने नहीं देता।' सारांश में उसकी नीति तोड़-फोड़ (Divide and Rule) की थी।

तीन सम्राटों के संघ के उद्देश्य—(१) १८७१ में फ्राँस को जो प्रादेशिक सीमायें दी गई हैं, उनकी रक्षा की जाय। यदि उनमें कोई परिवर्तन होता है तो हम सब मिलकर उसको रोकने का प्रयत्न करेंगे।

(२) पूर्वी समस्या से सम्बन्धित प्रश्नों पर तीनों देश मिल कर कदम उठायेंगे।

(३) जर्मनी, आस्ट्रिया तथा रूस तीनों ही राजतन्त्रवादी देश थे। अतः इनका उद्देश्य राजतन्त्र की प्रतिष्ठा को बनाये रखना था। इन राज्यों को क्रान्तिकारी समाजवाद से भय था। अतः इनका उद्देश्य समाजवादी विचारधारा का दमन करना था।

(४) अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने के लिये समय-समय पर सभायें करते रहेंगे।

तीन सम्राटों का गुट १८७२ से १८७८ तक भली प्रकार चलता रहा। परन्तु १८७८ की बर्लिन सन्धि के समय इसको एक भारी धक्का लगा। बर्लिन अधिवेशन में बिस्मार्क ने रूस का साथ न देकर आस्ट्रिया का साथ दिया। इसलिए रूस जर्मनी से नाराज हो गया। इस अवसर पर रूस ने कहा था—'यदि जर्मनी सौ वर्ष की

---

1. 'You forget the importance of being a party of three on the Europeam chess-board............nobody wishes to be in minority......try to be a trois in a world governed by five powers.'

मित्रता को बनाए रखना चाहता है तो उसको अपनी नीति बदलनी होगी।'[1] इस घटना के तीन वर्ष पश्चात् तक (१८७८-८१) रूस जर्मनी का विरोध करता रहा। परन्तु इस काल में प्रत्येक अवसर पर बिस्मार्क ने आँख बन्द करके रूस की सहायता की। जब बल्गेरिया का संकट अपनी चरम सीमा पर था तो उसने आस्ट्रिया का साथ न देकर रूस का साथ दिया। बिस्मार्क ने कहा था—'बल्गेरिया में मैंने एक रूसी की भाँति कार्य किया है।'[2] बिस्मार्क ने कहा कि बर्लिन सन्धि में वास्तव में हमने रूस का कोई विरोध नहीं किया। हमारा उद्देश्य तो एक मात्र दलाल के रूप में कार्य करना था। यह बिस्मार्क की बहुत बड़ी कूटनीतिक सफलता थी कि उसने परस्पर-विरोधी आस्ट्रिया एवं रूस के साथ सन्धि कर रक्खी थी।

१८८४ में इस सन्धि को पुनः दोहराया गया। परन्तु १८८७ में यह टूट गई। इसके टूटने के निम्न कारण थे—

(१) **पूर्वी समस्या**—इस समय जर्मनी भी पूर्वी समस्या में कुछ दिलचस्पी लेने लगा था इसका कारण आस्ट्रिया था। कारण यह था कि पूर्वी समस्या में आस्ट्रिया के हित थे। जर्मनी आस्ट्रिया का मित्र था। अतः उसको भी इसमें भाग लेना आवश्यक हो गया। परन्तु उसके दूसरे मित्र रूस के हित पूर्वी समस्या में आस्ट्रिया से टकराते थे। जर्मनी हर समय आस्ट्रिया की सहायता करता था। इससे रूस जर्मनी की ओर से खिचने लगा।

(२) बिस्मार्क संरक्षण की नीति का समर्थक था। वह बाहर से आने वाले माल पर भारी-भारी टैक्स लगा देता था। इससे बाहर से आने वाला माल बहुत महंगा हो जाता था और वह जर्मनी के अन्दर नहीं बिक सकता था। इस समय तक रूस एक कृषि-प्रधान देश था। वहाँ से जर्मनी में अधिकांशतः अन्न आता था; परन्तु संरक्षण की नीति के कारण रूस का अनाज जर्मनी में बिकना बन्द हो गया। इससे भी रूस बहुत नाराज हो गया। वह समझ गया कि जर्मनी राजनीतिक ही नहीं अपितु आर्थिक दृष्टि से भी रूस का विरोधी है।

(३) इस समय रूस का पान स्लाव आन्दोलन चल रहा था। उसका उद्देश्य समस्त स्लाव जाति को एक राष्ट्र के अन्तर्गत संगठित करना था। इधर जर्मनी में पान जर्मन आन्दोलन चल रहा था। इसका उद्देश्य जर्मन जाति का संगठन करना था। इसका नेता बिस्मार्क था। इससे दोनों के हित परस्पर टकराने लगे। रूस समझने लगा कि जर्मनी हमारा विरोधी है।

(४) इसी बीच फ्रांस में बुलान्जे (Boulanger) का उदय हुआ। उसका प्रमुख नारा था कि जर्मनी से प्रतिशोध का युद्ध किया जाय। इससे बुलांजे फ्रांस में बहुत लोकप्रिय हो गया। फ्रांस और जर्मनी में युद्ध अवश्यम्भावी दिखायी देने लगा। अब बिस्मार्क ने रूस का रुख देखना चाहा। उसने रूस से पूछा कि यदि भविष्य में

---

1. "If Germany wished the friendship of a hundred years to continue, she must alter her ways.'
2. 'In Bulgaria I am a Russian.'

फ्रांस तथा जर्मनी का युद्ध छिड़ जाय तो रूस का क्या दृष्टिकोण होगा । रूस ने उत्तर दिया कि हम पिछले तीन युद्धों में तटस्थ रहे थे; परन्तु इस बार हम अपना लाभ देखेंगे, क्योंकि आपकी मित्रता आस्ट्रिया के सम्राट् फ्रांसिस जोसेफ से है ।[1]

इस प्रकार अत्यधिक मतभेद हो जाने पर तीन सम्राटों का गुट (Three Emperors League) समाप्त हो गया । परन्तु बिस्मार्क ने फिर भी रूस का साथ न छोड़ा । उसने आश्वासन दिया कि हम आस्ट्रिया के मित्र होते हुए भी रूस के विरोधी नहीं हैं । उसने अपने भाषण में कहा कि मैंने तो बर्लिन सम्मेलन में एक ईमानदार दलाल के रूप में कार्य किया था । बोस्निआ तथा हर्जेगोविना तो आस्ट्रिया को देने ही थे, क्योंकि रूस बेसराविया, कार्स तथा बातूम पर अधिकार कर चुका था । परन्तु फिर भी आस्ट्रिया को ये प्रदेश हमने केवल शासन करने के लिये दिये थे । सम्मेलन में मैंने रूसी प्रतिनिधि के रूप में कार्य किया था । मुझे आशा थी कि रूस मेरा सम्मान करेगा; परन्तु रूस के रुख को देखकर मुझको आश्चर्य हुआ ।

पुनः आश्वासन सन्धि (Re-Insurance Treaty)—१८८७ में बिस्मार्क ने रूस से पुनः सन्धि कर ली । इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि यह पुरानी शराब थी, जो नई बोतलों में रक्खी गई थी । इसके अनुसार निम्न निर्णय किये गये थे—

(१) यह सन्धि तीन वर्ष तक रहेगी ।

(२) इन राज्यों के साथ किसी अन्य (चौथे राज्य) का युद्ध हो, तो शेष राज्य तटस्थ रहेंगे । एक राष्ट्र दूसरे के हित को ध्यान में रखते हुए तटस्थता की नीति का पालन करेगा ।

(३) बर्लिन की सन्धि में जो अधिकार आस्ट्रिया को दिये गये थे, उनको रूस ने मान्यता प्रदान कर दी ।

(४) टर्की के साम्राज्य में कोई भी ऐसा परिवर्तन न होगा, जिस पर कि ये तीनों राष्ट्र एकमत न हों ।

(५) बास्फोरस तथा डार्डेनेलीज के जल अंतरीप युद्ध-काल में बन्द रहेंगे । यदि टर्की इनको किसी राज्य के लिए खोलता है, तो ये तीनों राष्ट्र मिलकर उसका विरोध करेंगे ।

ऐसा कहा जाता है कि इस सन्धि के फलस्वरूप आस्ट्रिया तथा रूस का युद्ध नहीं हुआ तथा फ्रांस एवं रूस का गुट न बना ।[2]

---

1. 'Russia was neutral in the three wars, though it would have been plain interests to abandon neurality. Today Russia must consult her own interests in a greater degree and cannot certainly aid Prussia, who is, besides, the ally of the emperor Francis Joseph.'

2. 'The new friendship of Germany and Russia prevented Austro Russian war and a Franco-Russian coalition.'

द्विराष्ट्र सन्धि (Dual Alliance)—धीरे धीरे रूस और जर्मनी के सम्बन्ध बहुत खराब हो गए। इसकी सर्वप्रथम सूचना १८७३ में मिलती है। इस समय फ्रांस का दमन करने के लिए जर्मनी ने रूस के रुख के सम्बन्ध मे पूछा। इस पर रूस ने उत्तर दिया कि हम यह नहीं चाहते कि जर्मनी फ्रांस पर आक्रमण करे। यदि वह ऐसा करेगा तो हम तटस्थता की नीति का पालन नहीं करेंगे। बिस्मार्क समझ गया कि अवसर पड़ने पर रूस जर्मनी का साथ नहीं देगा। १८७८ में बर्लिन कांग्रेस हुई। इस समय रूस तथा आस्ट्रिया के हित परस्पर टकराए। जर्मनी पर रूस के ऋण अधिक थे। क्योंकि जर्मनी का एकीकरण रूस की तटस्थता के परिणामस्वरूप हुआ था। परन्तु फिर भी जर्मनी ने रूस का साथ न देकर आस्ट्रिया का साथ दिया। इसका कारण यह था कि आस्ट्रिया में बहुसंख्यक जर्मन रहते थे। बिस्मार्क इनकी सहानुभूति प्राप्त करना चाहता था। बिस्मार्क के इस कार्य से रूस बहुत नाराज हुआ। गूच के शब्दों में बर्लिन कांग्रेस का प्रमुख परिणाम रूस का जर्मनी की ओर से खिचना था। बर्लिन सम्मेलन के अगले वर्ष १८७९ में आस्ट्रिया तथा रूस के मध्य के सीमा-सम्बन्धी झगड़े को दूर करने के लिये एक कमीशन बैठा। इस कमीशन में जर्मनी, इङ्गलैण्ड तथा इटली के देश थे। इस कमीशन ने रूस के बिरोध में अपना मत दिया। रूस ने समझा कि हमारे विरोध का कारण जर्मनी है। परन्तु वास्तव में उसका यह मत गलत था। जर्मनी ने अपने प्रतिनिधि को यह कह दिया था कि तुम सम्मेलन के समय चुप रहना और अन्त में जिधर बहुमत देखो उधर ही अपना मत देना। जर्मनी के प्रतिनिधि ने यही किया। अन्त में उसने देखा कि इटली तथा इङ्गलैण्ड आस्ट्रिया के पक्ष में मत दे रहे हैं। फलतः जर्मनी ने भी आस्ट्रिया के पक्ष में अपना मत दे दिया। इससे भी रूस बहुत नाराज हुआ। इधर जर्मनी भी रूस से सशंकित हो गया। उसने अपनी सुरक्षा के लिये १८७९ में आस्ट्रिया के साथ एक सन्धि कर ली।

आस्ट्रिया के साथ सन्धि करने के लिये बिस्मार्क ने बहुत जल्दी की। इसका कारण यह था कि आस्ट्रिया का प्रधान मन्त्री एन्ड्रेसी त्याग पत्र दे रहा था। यह बिस्मार्क का मित्र था। अतः बिस्मार्क के लिए यह आवश्यक था कि वह अपने मित्र एन्ड्रेसी के त्याग-पत्र देने से पूर्व ही आस्ट्रिया तथा जर्मनी की मित्रता की सन्धि करा दे। उसने एन्ड्रेसी से कहा था—'यदि आप मेरी शर्तों को स्वीकार नहीं करते तो मैं आपकी शर्तों को स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत हूं।' इस प्रकार लौह-चांसलर बिस्मार्क को झुकना पड़ा। सन्धि की शर्तें तय करने के लिए दोनों देशों के प्रधान मन्त्री गैस्टीन में मिले। दोनों ने मिलकर सन्धि की शर्तों को तय कर लिया। दोनों कूटनीतिज्ञों ने यह निश्चय किया कि वे अपने सम्राटों से मन्त्रणा कर लेने के पश्चात् विएना में फिर मिलेंगे। आस्ट्रिया के सम्राट् जोसेफ ने सरलतापूर्वक एन्ड्रेसी की मन्त्रणा को स्वीकार कर लिया। उसने कहा कि 'मैं अपने त्याग-पत्र देने के पहले ही इस सन्धि को पूर्ण हुआ देखना चाहता हूं। मेरा उत्तराधिकारी भी इससे सहमत है। यह प्रत्येक समय सिर पर लटके रहने वाले संकट को दूर करने का एकमात्र उपाय है। मुझे

उस समय तक आत्मिक शान्ति नही मिलेगी, जब तक कि मैं उस मशाल को बुझते हुए न देख लूं, जिसको कि जार यूरोप की बारूद के ऊपर घुमा रहा है।' परन्तु बिस्मार्क को अपने सम्राट् कैसर-विलियम प्रथम के घोर विरोध का सामना करना पड़ा। कैसर के सम्मुख बहुत बड़ी समस्या थी। अभी पिछले दिनों वह रूस के सम्राट् अलेक्जेण्डर से पौलेण्ड में मिल चुका था। उस समय अलेक्जेण्डर ने कैसर से अपने पूर्व भेजे गये कटु विरोध-पत्र के सम्बन्ध में क्षमा मांगी थी और कहा था कि आप उस बात को बिल्कुल भूल जांय। भूतकाल की भांति भविष्य में भी यूरोप में शान्ति जर्मनी तथा रूस के अच्छे सम्बन्धों पर आधारित है। इस प्रकार कैसर पूर्ण तथा निश्चित होकर लौटा था कि जर्मनी के ऊपर रूस के आक्रमण की कोई सम्भावना नही है। इस लिए कैसर ने बिस्मार्क से कहा कि हमारे देश के ऊपर रूस का बहुत ऋण है। उसकी उदारता तथा सहानुभूति के कारण ही देश का एकीकरण सम्भव हो सका। अतः हमें उसके शत्रु आस्ट्रिया के साथ कोई सन्धि नहीं करनी चाहिए। परन्तु इसका विरोध करते हुए बिस्मार्क ने कहा कि आपकी यह बात हम मानते हैं कि रूस हमारे ऊपर आक्रमण नहीं करेगा। परन्तु वह हमारे मित्र आस्ट्रिया के ऊपर आक्रमण कर सकता है। उस समय आपको निश्चित रूप से उनमें से किसी एक की सहायता करनी पड़ेगी। उस समय आप किस को चुनेंगे। मुझे रूस पर विश्वास नहीं है। आपने देखा नहीं कि उसने अभी हाल में इटली तथा फ्रांस से सैनिक सन्धि करने के लिए बातचीत की थी; परन्तु यह हमारा सौभाग्य था कि उनमें से किसी भी देश ने उससे सन्धि न की। इस समय आप अनिश्चित मित्रता के लिए निश्चित मित्रता को खो रहे हैं। बिस्मार्क का विरोध करते हुए कैसर ने कहा कि रूस का जार मेरा मित्र, निकट सम्बन्धी तथा सहायक है।[1] उससे हमें कोई खतरा नही है। परन्तु बिस्मार्क अपनी हठ पर अड़ा रहा और उसने त्याग पत्र देने की धमकी दी। कैसर ने कहा कि जर्मनी के प्रति आपकी बहुत सेवायें हैं। आपके परिश्रम के परिणामस्वरूप ही जर्मनी का एकीकरण हुआ। इसीलिए हमने कभी भी आपकी बात का विरोध नहीं किया। परन्तु आज आपकी बात का विरोध करते हुए हमको बहुत दुःख हो रहा है। यह कहते हुए कैसर ने भी गद्दी परित्याग की धमकी दी। बिस्मार्क ने कैसर के उत्तराधिकारी विलियम द्वितीय को भी अपनी ओर मिला लिया और उसके द्वारा भी कैसर पर उक्त सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिए दबाव डाला गया। अन्त में विवश होकर ५ अक्तूबर १८७९ को कैसर ने अपना आग्रह छोड़ दिया और ७ अक्तूबर १८७९ को सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिये। इस सन्धि की धारायें निम्न प्रकार से थीं—

(१) सन्धि पत्र के प्रारम्भ में एक प्रस्तावना थी, जिसमें शान्ति बनाये रखने के सम्बन्ध में कहा था।

---

1. 'I am in the presence of a personal friend, a near relative and an ally ....I am utterly unable to see that there is imminent danger.'

(२) यह सन्धि गुप्त रहेगी।

(३) यह सन्धि पाँच वर्ष के लिये रहेगी तथा यह मान लिया गया कि यदि उसकी समाप्ति के एक वर्ष पूर्व दोनों देशों में से कोई एक देश इस सन्धि के सम्बन्ध में वार्ता करना आवश्यक न समझे तो स्वय ही ३ वर्ष और उसकी अवधि बढ़ जायेगी।

(४) यदि इन देशों में से किसी एक पर भी रूस आक्रमण करे तो एक देश अपने दूसरे मित्र की सहायता करेगा।

(५) यदि इन देशों में से किसी एक पर कोई दूसरा देश आक्रमण करे तथा रूस तटस्थ रहे तो इनमें से भी दूसरा देश तटस्थ रहेगा।

(६) अगर कोई देश रूस की सहायता से इन दोनों में से किसी एक पर आक्रमण करे तो दूसरा देश अपने मित्र की सहायता करेगा।

उपर्युक्त धाराओं से विदित होता है कि यह सन्धि रूस के विरोध में हुई थी, क्योंकि बिस्मार्क की दृष्टि से एकमात्र विशेष झगड़ा रूस का ही था। रूस से आस्ट्रिया तथा जर्मनी दोनों का झगड़ा था। अतः दोनों देशों ने अपने शत्रु रूस के विरुद्ध यह सन्धि कर ली। एक सामान्य सन्धि होने के कारण ही इसमें जर्मनी के शत्रु फ्रांस तथा आस्ट्रिया के शत्रु इटली के सम्बन्ध में कोई धारा नहीं रक्खी गई थी।

प्रभाव—(१) यह सन्धि १८८८ तक एकदम गुप्त रही। तीन वर्ष बाद इटली भी इसमें सम्मिलित हुआ, परन्तु उसको भी पूरी तरह से इस सन्धि की बातों का पता नहीं था। यूरोप के अन्य देशों को भी इस सन्धि का केवल अनुमान के रूप में ही कुछ आभास था। इससे यूरोप के देश जर्मनी के प्रति सशंकित हो गए।

(२) इस सन्धि के फलस्वरूप जर्मनी बहुत शक्तिशाली हो गया। यूरोप का पुराना शक्ति सन्तुलन भंग हो गया। पहले रूस तथा फ्रांस शक्ति-संतुलन के केन्द्र-बिन्दु थे। परन्तु इस सन्धि के फलस्वरूप वे नगण्य हो गये। बिस्मार्क को फ्रांस को दबाने का अच्छा अवसर मिल गया। इस सन्धि के फलस्वरूप युद्ध के लिये आग उगलने वाले रूस को भी चुप हो जाना पड़ा।[1]

(३) प्रारम्भ में रूस को सबसे अधिक हानि दिखाई देने लगी। यूरोप में वह अकेला रह गया। गूच के शब्दों में सेनस्टेफेनो की सन्धि के समय रूस ने आस्ट्रिया को खो दिया और इस समय उसने जर्मनी को खो दिया।[2]

(४) यद्यपि बिस्मार्क यह कहता था कि गुटबन्दी मेरे लिये हौआ है; परन्तु फिर भी इससे यूरोप में गुटबन्दी आरम्भ हुई और सन्धि-प्रतिसन्धि की प्रक्रिया आरम्भ हुई। कालान्तर में इटली भी द्विराष्ट्र सन्धि में सम्मिलित हो गया। उधर रूस ने फ्रांस और इंगलैंड के साथ सन्धि कर ली। इस प्रकार यूरोप दो सैनिक कैम्पों

---

1. 'Six weeks ago Russia was dreaming of fire and flame. My deal with Austria has brought her to reason.'

2. 'Russia lost Austria after San-Stefano and now she has lost Germany.'

में विभक्त हो गया और अन्त में यह प्रथम महायुद्ध का प्रमुख कारण बना। इससे बहुत से इतिहासकार प्रथम महायुद्ध का उत्तरदायित्व बिस्मार्क के ऊपर डालते हैं; परन्तु कुछ अन्य विद्वान् इसके विरोधी हैं। वे प्रथम महायुद्ध के लिये बिस्मार्क को उत्तरदायी नहीं बतलाते। उनका कथन है कि बिस्मार्क की यह सन्धि सुरक्षात्मक थी। इसमें कहा गया था कि हम रूस के विरुद्ध उसी समय हथियार उठावेंगे जबकि वह जर्मनी अथवा उसके मित्र आस्ट्रिया के ऊपर आक्रमण करेगा। जब तक बिस्मार्क रहा तब तक यह सुरक्षात्मक सन्धि रही।[1] बिस्मार्क ने रूस के विरुद्ध युद्ध की कोई योजना नहीं बनाई थी। इसी से फ्रांस तथा इटली के सम्बन्ध में इस सन्धि में कुछ नहीं कहा गया था।

(५) १८६६ में बिस्मार्क ने आस्ट्रिया को पराजित किया था; परन्तु उसने उसको पराजित करने के पश्चात् भी अपमानित नहीं किया था। युद्ध के दौरान में प्रशा के सम्राट् विलियम का यह विचार था कि प्रशा की सेनायें आस्ट्रिया के भीतर तक घुसती चली जायें तथा आस्ट्रिया पर युद्ध का भारी हर्जाना लाद दिया जाय। परन्तु बिस्मार्क ने यह उचित न समझा। कारण यह था कि बिस्मार्क आस्ट्रिया की मित्रता प्राप्त करना चाहता था। १८७० में सेडन के युद्ध में बिस्मार्क ने फ्राँस को भी पराजित किया था; परन्तु आस्ट्रिया की भाँति उसने फ्रांस के साथ उदारता का बर्ताव नहीं किया। इससे फ्राँस की मित्रता की आशा करना बिस्मार्क के लिये व्यर्थ था। अतः १८६६ से ही उसने आस्ट्रिया के साथ सहानुभूति की नीति का आश्रय लिया और अन्त में ७ अक्तूबर १८७९ को उसने आस्ट्रिया के साथ सन्धि कर ली। इससे बिस्मार्क बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा था 'यह मेरे १८६६ के कार्य की पूर्ति है।[2]' यह बिस्मार्क की कूटनीतिज्ञता का प्रतीक है। १८६६ में उसने जिस देश को हराया था, १८७९ में उसको अपना प्रमुख समर्थक बना लिया।

(६) कालान्तर में इस सन्धि के फलस्वरूप बिस्मार्क की कूटनीति का मुख्य सिद्धान्त ही असफल हो गया। उसका सिद्धान्त था कि सदैव पांच राष्ट्रों में से किसी तीन के साथ अवश्य मित्रता रक्खी जाय। यदि मित्रता किन्हीं दो देशों से रह जायगी तो हम अल्प संख्या में रह जायेंगे; परन्तु द्विराष्ट्र सन्धि करके वह अल्प-संख्यक की कोटि में आ गया। इसी से उसने इटली, रोमानिया तथा टर्की के साथ मित्रता की। परन्तु इन देशों की मित्रता जर्मनी के साथ केवल स्वार्थवश थी। इटली की नीति को तो बिस्मार्क शृगाल-नीति कहता था। इसके पश्चात् यूरोप में कभी भी बिस्मार्क का बहुमत नहीं हुआ। यह अच्छा हुआ कि १८९० में बिस्मार्क ने त्याग-पत्र दे दिया। यदि वह त्याग-पत्र न देता तो कभी न कभी उसे अपनी नीति में अवश्य असफलता उठानी पड़ती।

---

1. 'In its origin and as long as Bismarck remained at the helm, it was essentially defencive in purpose and fact.'

2. 'It is the completion of my work of 1866.'

(७) आस्ट्रिया को इस सन्धि से निश्चित रूप से लाभ हुआ। पूर्वी समस्या के सम्बन्ध में वह स्वेच्छा से कार्य करने लगा। आस्ट्रिया यह जानता था कि प्रशा को हमारी मित्रता की आवश्यकता है, क्योंकि हमारे अतिरिक्त उसका अब कोई मित्र नहीं है। अतः हमारी मित्रता बनाये रखने के लिए आवश्यकता पड़ने पर वह अवश्य ही हमारा साथ देगा। इस परिस्थिति का आस्ट्रिया ने पूरा लाभ उठाया।

(८) इस सन्धि का तीन सम्राटों के गुट (Three Emperors League) पर भी बुरा प्रभाव पड़ा। इससे वह शिथिल हो गया। परन्तु १८८७ तक बिस्मार्क उसको किसी प्रकार चलाता रहा।

त्रिराष्ट्र सन्धि

बिस्मार्क ने १८७० में फ्राँस को सेडन के युद्ध में पराजित किया। इसके पश्चात् बिस्मार्क की कूटनीति का प्रधान लक्ष्य फ्राँस को अकेला रखना था। इसलिये १८७९ में उसने आस्ट्रिया से सन्धि कर ली। अब उसकी निगाह इटली पर थी। वास्तव में बिस्मार्क प्रत्येक राज्य का रुख देख लेना चाहता था। परन्तु १८७३ तथा १८७९ के मध्य इटली जर्मनी से सन्धि करने को तैयार न हुआ। अतः बिस्मार्क अब ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करना चाहता था कि इटली द्विराष्ट्र सन्धि में सम्मिलित होने के लिये स्वयं प्रार्थना करे। १८८१ से ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई। बात यह थी कि ट्यूनिस पर इटली तथा फ्राँस दोनों अधिकार करना चाहते थे। आशा यह थी कि इस सम्बन्ध में बिस्मार्क इटली की सहायता करेगा; क्योंकि फ्राँस से उसकी शत्रुता थी। परन्तु बिस्मार्क ने इस आशा के विरोध में कार्य किया। उसने ट्यूनिस पर अधिकार करने के लिये फ्राँस को आश्वासन दे दिया। फलतः १८८१ में फ्राँस ने ट्यूनिस पर अधिकार कर लिया। बिस्मार्क ने फ्राँस को इटली पर अधिकार करने का जो आश्वासन दिया उसका यह कारण नहीं था कि बिस्मार्क फ्राँस के साथ सहानुभूति रखता था। इस कार्य में भी बिस्मार्क की कूटनीति थी। इससे फ्राँस तथा इटली की शत्रुता हो गई और इटली अपनी सुरक्षा के लिये घबराने लगा। अतः बिस्मार्क को यह आशा थी कि इटली हमारे गुट में सम्मिलित होने की प्रार्थना करेगा। उसकी यह आशा पूर्ण हुई। १८८२ में इटली के सम्राट् विक्टर इमानुएल ने विएना की यात्रा की और द्विराष्ट्र संधि में सम्मिलित होने के लिए प्रार्थना करने लगा। फलतः २० मई १८८२ को इटली को भी द्विराष्ट्र संधि में सम्मिलित कर लिया गया और इस प्रकार यह द्विराष्ट्र संधि त्रिराष्ट्र संधि हो गई। इस संधि को प्रमुख शर्तें निम्न प्रकार थीं—

(१) यह संधि गुप्त रहेगी।

(२) यह संधि ५ वर्ष तक रहेगी। यदि हस्ताक्षरकर्त्ता देश चाहेंगे तो यह ३ वर्ष के लिए बढ़ाई जा सकेगी।

(३) यदि इटली पर फ्रांस आक्रमण करे तो आस्ट्रिया तथा जर्मनी अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ इटली की सहायता करेंगे।

(४) यदि जर्मनी पर फ्राँस का आक्रमण हो तो इटली भी जर्मनी की सहायता करेगा।

इस संधि में यह नहीं कहा गया था कि यदि फ्रांस आस्ट्रिया पर आक्रमण करे तो इटली उसकी भी सहायता करेगा।

(५) यदि रूस जर्मनी अथवा आस्ट्रिया पर आक्रमण करे तो इटली तटस्थ रहेगा।

(६) यदि रूस किसी दूसरे देश से मिलकर जर्मनी अथवा आस्ट्रिया पर आक्रमण करे तो इटली जर्मनी अथवा आस्ट्रिया को सहायता देगा।

इटली ब्रिटेन को भी इस सन्धि में सम्मिलित करना चाहता था। आस्ट्रिया भी इटली का इस सम्बन्ध में अनुमोदन कर रहा था। परन्तु बिस्मार्क इंगलैण्ड को इसमें सम्मिलित करना नहीं चाहता था, क्योंकि यदि इंगलैंड इसमें सम्मिलित हो जाता तो जर्मनी का प्रभाव समाप्त हो जाता और फिर इस गुट में ब्रिटेन की नीति के अनुसार कार्य होता। फिर भी इटली के कहने से इस सन्धि में यह धारा जोड़ दी गई कि किसी भी परिस्थिति में इस सन्धि का प्रयोग इंगलैंड के विरोध में नहीं होगा।[1]

यह सन्धि विशेष रूप से जर्मनी तथा इटली के पक्ष में थी तथा फ्रांस के विरोध में थी।

इस प्रकार त्रिराष्ट्र सन्धि के अनुसार इटली जर्मनी तथा आस्ट्रिया का मित्र हो गया। लेकिन फिर भी इन देशों के साथ इटली के अच्छे सम्बन्ध स्थापित न हो सके। इसके निम्न कारण थे :—

(१) बिस्मार्क इटली को अविश्वसनीय समझता था। उसकी दृष्टि में इटली की नीति—शृगाल-नीति थी जिसका उद्देश्य अवसर से लाभ उठाना था। बिस्मार्क ने १८८० में कहा था कि 'हमें इस बात की आशा बहुत कम है कि इटली हमारा मित्र बना रहेगा। इसके विपरीत हमें यह आशा अधिक है कि वह हमारे शत्रुओं से मिल जायगा।'

(२) अल्बानिया को आस्ट्रिया तथा इटली दोनों अपने प्रभाव-क्षेत्र में मानते थे।

(३) आस्ट्रिया परतन्त्र इटली को स्वतन्त्र करने की इटली की माँग को स्वीकार नहीं कर रहा था।

(४) जर्मनी टर्की का मित्र था; परन्तु १९११ में टर्की पर आक्रमण कर इटली ने ट्रिपोली पर अधिकार कर लिया।

1. 'The Triple Alliance is not in any case to be regarded as directed against England.'

इस सन्धि के पूर्ण होने पर इटैलियन इतिहासकार ने कहा था कि 'यद्यपि हम लोगों ने इस सन्धि को स्वीकार कर लिया है; परन्तु सच्चे अर्थों में किसी को भी इससे प्रेम नहीं है। महायुद्ध छिड़ने पर यह सन्धि स्वतः भंग हो जायगी।' वास्तव में उसकी यह बात सत्य निकली और १९१५ में महायुद्ध छिड़ने पर इटली ने जर्मनी तथा आस्ट्रिया का साथ नहीं दिया। अन्त में १९१५ में इटली ने मित्र राष्ट्रों से लन्दन की सन्धि कर ली और इस महायुद्ध में मित्र राष्ट्रों का साथ दिया।

जर्मनी को मिलने वाले लाभ—जर्मनी ने द्विराष्ट्र सन्धि के द्वारा रूस से अपनी सुरक्षा तथा त्रिराष्ट्र सन्धि द्वारा फ्रांस से अपनी सुरक्षा स्थापित कर ली। अब इटली जर्मनी के शत्रु फ्रांस से नहीं मिल सकता था। इस सन्धि के अनुसार फ्रांस के जर्मनी पर आक्रमण होने की अवस्था में उसे जर्मनी की सहायता करनी थी। इस सन्धि के पूर्व यदि रूस जर्मनी पर आक्रमण करता तो उसको अपनी कुछ सेनायें रूस के विरुद्ध तथा कुछ फ्रांस के विरुद्ध लगानी पड़तीं। इसी प्रकार यदि रूस आस्ट्रिया पर आक्रमण करता तो उसको अपनी कुछ सेनायें रूस की सीमा पर तथा कुछ इटली की सीमाओं पर लगानी पड़तीं। परन्तु अब यह परिस्थिति बदल गई। फ्रांस के विरुद्ध जर्मनी की सुरक्षा का भार इटली पर हो गया। राबर्ट महोदय लिखते हैं—'इस सन्धि के फलस्वरूप जर्मनी की सत्ता एवं प्रभाव में बहुत वृद्धि हो गई। यूरोप की राजनीति में यह बहुत बड़ा मैत्री-सम्बन्ध था। भविष्य में जितने भी मैत्री-सम्बन्ध हुए, उन सबको इसका सामना करना पड़ा।'

इटली को मिलने वाले लाभ—यद्यपि यह सन्धि इटली की प्रार्थना पर हुई थी, फिर भी आस्ट्रिया की अपेक्षा इटली को इससे अधिक लाभ प्राप्त हुये। कारण यह था कि आस्ट्रिया पर तो फ्रांस के आक्रमण के विरुद्ध इटली को सहायता देने का उत्तरदायित्व हो गया। परन्तु रूस के आक्रमण के विरुद्ध अपने मित्र की सहायता करने के लिये इटली को कोई वचन नहीं देना पड़ा। बर्लिन सन्धि के समय इटली की गणना एक छोटे राष्ट्र के रूप में होती थी; परन्तु इस सन्धि के हो जाने के परिणाम-स्वरूप उसकी गणना महाशक्तियों में होने लगी। इस सन्धि से उसे आस्ट्रिया के आक्रमण से मुक्ति मिल गई। इटली और आस्ट्रिया के बीच जो मन-मुटाव चल रहा था, वह समाप्त हो गया। परन्तु इस सन्धि से इटली को थोड़ी सी हानि भी हुई। बात यह थी कि एड्रिआटिक सागर के उत्तर की पट्टी में कुछ इटैलियन रहते थे और इटली आस्ट्रिया से उनकी स्वाधीनता की माँग कर रहा था परन्तु इस सन्धि के होने के पश्चात् अब वह परतन्त्र इटली (Italian Irrendenta) को स्वतन्त्र करने के लिए मांग नहीं कर सकता था।

आस्ट्रिया को मिलने वाले लाभ—सन्धि से आस्ट्रिया को विशेष लाभ नहीं हुआ। आस्ट्रिया को इटली उस समय सहायता करेगा जबकि रूस तथा फाँस मिल कर उस पर आक्रमण करेंगे। यह परिस्थिति उस समय उत्पन्न हो सकती थी जबकि यूरोप में महायुद्ध आरम्भ हो जाय और महायुद्ध बहुत शीघ्र आरम्भ होने की आशा नहीं थी। यदि महायुद्ध आरम्भ हो जाता तो इङ्गलैंड के विरोध में इटली किसी भी

देश की सहायता न करता। इस प्रकार आस्ट्रिया को द्विराष्ट्र सन्धि के स्थान पर त्रिराष्ट्र सन्धि में रहने से कोई विशेष लाभ न हुआ। हाँ, इतना कहा जा सकता है कि आस्ट्रिया टर्की के साम्राज्य में पूर्व की ओर अपना विस्तार कर रहा था। वह एड्रिआटिक सागर तक पहुंचना चाहता था। यदि यह विचार बराबर जारी रहता तो इस प्रदेश में आस्ट्रिया का प्रभाव स्थापित हो जाता। एड्रिआटिक सागर के उत्तर में एक पट्टी थी। इसमें इटैलियन रहते थे। यह परतन्त्र इटली (Italian Irrendenta) कहलाता था। इटली-निवासी इसको स्वतन्त्र कराने के लिए माँग कर रहे थे; परन्तु इस सन्धि के हो जाने के बाद अब इटली इसको स्वतन्त्र करने के लिये युद्ध नहीं कर सकता था।

बिस्मार्क ने यह बहुत बड़ी गलती की कि उसने इन सन्धियों को गुप्त रक्खा। यदि वह इनको गुप्त न रखता तो इससे अधिक हानि होने की सम्भावना नहीं थी। यद्यपि सन्धि की शर्तों का स्पष्टत: यूरोप के देशों को ज्ञान नहीं हुआ था; परन्तु अफवाह के रूप में उनको इन देशों की सन्धि का आभास हो गया था। अतः प्रत्येक देश यही सोचता था कि यह सन्धि हमारे विरुद्ध है। टर्की यह सोचता था कि यह सन्धि हमारे साम्राज्य के विभाजन के लिये की गई है। इंगलैंड यह सोचता था कि यह हमारे सामुद्रिक अधिकारों के विरोध में है। अन्य देश भी इसी प्रकार इसको अपने विरोध में समझते थे। टॉमस महोदय ने ठीक लिखा है कि इन सन्धियों ने प्रत्येक देश के भय को और अधिक बढ़ा दिया, क्योंकि अन्य देशों को इन सन्धियों की रूपरेखा का पता नहीं था। अत: इसके विरोध में प्रत्येक देश अपने लिये नये मित्र खोजने की दिशा में प्रोत्साहित हुआ।

बिस्मार्क की यह बहुत बड़ी गलती थी कि उसने द्विराष्ट्र सन्धि द्वारा रूस को तथा त्रिराष्ट्र सन्धि द्वारा फ्रांस को एकाकी करने का प्रयत्न किया। उसने यह नहीं सोचा कि कालान्तर में ये दोनों देश एक जगह मिल सकते हैं। यद्यपि इन दोनों देशों में परस्पर-विरोधी अनेक बातें थीं। फ्रांस में राजनीतिक क्रान्ति हो चुकी थी। वह प्रजातन्त्रवादी शासन-पद्धति का समर्थक था। वह नये विचारों का अड्डा था; परन्तु इसके विपरीत रूस राजतन्त्रवाद का समर्थक था। वहाँ पर सामन्तवाद का बोलबाला था। इसी प्रकार फ्रांस की अपेक्षा रूस एक बहुत पिछड़ा हुआ देश था। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि इन देशों में मैत्री-सम्बन्ध होना कठिन था; परन्तु फिर भी अपने शत्रु के विरोध में इन्होंने १८९३-९४ में एक सन्धि कर ली।

इस प्रकार की प्रति-सन्धियों से जर्मनी का बहुत अहित हुआ। इसके बाद यूरोप में कभी भी बिस्मार्क का बहुमत न हो सका। अत: उसने टर्की तथा इटली आदि देशों को अपनी ओर मिलाने की चेष्टा की, परन्तु ये देश स्वार्थी सिद्ध हुए। विद्वानों ने ठीक कहा है कि सन्धियों का प्रारम्भ जर्मनी के लिए बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ; परन्तु इसके पश्चात् अन्य देशों ने भी इनके विरोध में सन्धियाँ करनी आरम्भ कर दीं। इसका परिणाम जर्मनी के लिये विनाशकारी सिद्ध हुआ।

फ्रांस तथा रूस की सन्धि—त्रिराष्ट्रीय सन्धि के विरोध में ३१ दिसम्बर १८९३ को फ्रांस तथा रूस ने एक द्विवर्गीय सन्धि कर ली। रूस तथा फ्रांस में पर्याप्त

समय के पश्चात् सन्धि हो पाई। इस देरी के निम्नलिखित कारण थे—

१. १८७० में बिस्मार्क ने फ्राँस को पराजित किया। इसके पश्चात् उसकी कूटनीति का मुख्य उद्देश्य फ्राँस को यूरोप में अकेला रखना हो गया। इसके विरोध में फ्राँस का एक उद्देश्य अपने एकाकीपन को नष्ट करना था; परन्तु जब तक बिस्मार्क सत्ताधारी रहा तब तक उसको अपने इस उद्देश्य में सफलता प्राप्त न हुई। जो देश फ्रांस के साथ मिल सकते थे उनको किसी न किसी प्रकार लालच देकर वह अपनी ओर मिलाए रहा। इसी उद्देश्य से बिस्मार्क ने तीन सम्राटों के गुट (Three Emperors League) की स्थापना की। इसमें प्रशा, आस्ट्रिया तथा रूस थे। यह १८७२ से १८७८ तक सफलतापूर्वक चलती रही। परन्तु १८७८ की बर्लिन कांग्रेस में रूस तथा जर्मनी के सम्बन्ध बिगड़ गये। अतः इस बीच जर्मनी ने फ्राँस से अच्छे सम्बन्ध स्थापित कर लिये; परन्तु बिस्मार्क रूस की मित्रता खोना नहीं चाहता था। अतः १८८१ में उसने फिर रूस से अच्छे सम्बन्ध कायम कर लिये। यह १८८७ तक चलते रहे। १८८७ में बिस्मार्क ने रूस से पुनः आश्वासन की सन्धि कर ली। परन्तु १८९० में बिस्मार्क को त्याग-पत्र देना पड़ गया और इस सन्धि की पुनरावृत्ति न हो सकी।

२. फ्रांस को यह भी भय था कि यदि उसने रूस के साथ सन्धि कर ली तो हो सकता है कि बिस्मार्क तुरन्त फ्राँस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दे। इसलिये फ्राँस इस समय शान्ति की नीति का पक्षपाती था। इस सम्बन्ध में गैम्बेटा का यह कथन उल्लेखनीय है कि जब तक हमारे पास एक सुसंगठित एवं शक्तिशाली सेना न हो जाय तब तक हमें शान्तिमय नीति का पालन करना चाहिये तथा रूस के साथ सन्धि नहीं करनी चाहिये।

३. दोनों के शासन-तन्त्र एवं विचारधारा में मौलिक अन्तर था। फ्राँस में प्रजातन्त्रात्मक शासन था। इसके विपरीत रूस में राजतन्त्रवादी शासन था। फ्राँस क्रान्ति का अड्डा था। रूस को भय था कि यदि फ्राँस से सन्धि कर ली गई तो फ्राँस के क्रान्तिकारी विचार रूस में प्रवेश कर जायेंगे। इस सम्बन्ध में रूस के विदेश मन्त्री कैटगाफ का कथन उल्लेखनीय है—'मैं फ्राँस से घृणा करता हूं, क्योंकि वह क्रान्तिकारी विचारों का अड्डा है।'[1]

४. फ्राँस के मन्त्रि-मण्डल अस्थायी होते थे। अतः रूस को यह भय था कि जल्दी-जल्दी सरकार बदलने के कारण किया हुआ समझौता शीघ्र प्रकट हो सकता है।

५. रूस का विदेश मन्त्री गियर्स सन्धि-वार्ता के समय बीमार हो गया। अतः पर्याप्त समय तक सन्धि न हो सकी।

---

1. 'I hate France, for she has been and is a school of revolutionary propaganda.'

अन्त में मतभेदों के होने पर भी फ्रांस तथा रूस समीप आने लगे और उन्होंने सन्धि कर ली।

१८७३ में फ्रांस एवं जर्मनी के मध्य युद्ध के लक्षण दिखाई देने लगे। ऐसा प्रतीत होता था कि जर्मनी फ्राँस पर आक्रमण कर देगा। इस अवसर पर रूस ने यह घोषित किया कि हम फ्राँस को एक शक्तिशाली राष्ट्र देखना चाहते हैं। १८७५ में फ्राँस तथा जर्मनी के सम्बन्ध फिर खराब हो गये। इस अवसर पर भी रूस ने फ्राँस को सहायता देने का आश्वासन दिया। १८७७ तथा १८८५ के मध्य भी दोनों देशों के सम्बन्ध बहुत खराब हो गये और दोनों देशों ने अपने कूटनीतिक सम्बन्ध तोड़ दिये। १८८६ में रूस ने फ्राँस से मित्रता करने का प्रस्ताव रक्खा। परन्तु फ्रांस ने जर्मनी के भय के कारण इसको स्वीकार नहीं किया। १८८७ में बल्गेरिया-संकट के समय में भी फ्राँस ने रूस की नीति का अनुमोदन किया। १८८७ में फ्राँस में बूलान्जे का उदय हुआ। इसने जर्मनी से प्रतिशोध का युद्ध करने के लिये प्रचार किया। परिस्थिति यहाँ तक बिगड़ी कि दोनों देशों में युद्ध अवश्यम्भावी दिखाई देने लगा। इस पर जर्मनी ने रूस से पूछा कि यदि फ्राँस तथा जर्मनी में युद्ध प्रारम्भ हो जाय तो रूस जर्मनी की सहायता करेगा अथवा नहीं। इस पर रूस के सम्राट् ने उत्तर दिया कि रूस गत तीन युद्धों[1] में तटस्थ रहा था, परन्तु इस बार तटस्थ नहीं रहेगा और अपने लाभ को देखते हुये कार्य करेगा। रूस ने यह घोषित किया कि यदि जर्मनी ने फ्राँस पर आक्रमण किया तो रूस फ्राँस को नैतिक सहायता (Moral Support) देगा। १८८८ में रूस के ग्राण्ड ड्यूक ने पेरिस की यात्रा की और वहाँ पर उसका भारी स्वागत हुआ। १८८९ में फ्राँस में एक नये प्रकार की उच्च कोटि की राइफलों का निर्माण हुआ। रूस के सम्राट् ने भी यह इच्छा प्रकट की कि इस प्रकार के राइफल रूस के लिये भी बना दिये जायें। फ्राँस ने रूस में अपने कुछ इंजीनियर भेज दिये और उन्होंने रूस के लिये ५ लाख राइफलों का निर्माण किया। रूस ने यह प्रतिज्ञा की कि वह इन राइफलों का मुख फ्राँस की ओर नहीं करेगा अर्थात् इनका प्रयोग फ्राँस के विरुद्ध नहीं किया जायगा। १८८८ तथा १८८९ में रूस ने जर्मनी से ऋण की माँग की, परन्तु उसको ऋण नहीं मिला। इन दोनों अवसरों पर फ्रांस ने उसको ऋण दिया। १८९० में रूस का राजकुमार ग्राण्ड ड्यूक पुनः फ्रांस में आया। इस बार भी यहाँ की जनता तथा सरकार दोनों ने उसका भव्य स्वागत किया। ग्राण्ड ड्यूक ने कहा कि यदि मेरा प्रभाव रहा तो मैं दोनों देशों की सन्धि कराने का प्रयत्न करूंगा। १८९० में बिस्मार्क ने त्याग-पत्र दे दिया और उसके स्थान पर कैप्रिवी नया चाँसलर हुआ। वह इंगलैंड से मित्रता करना चाहता था। इसलिये उसने १८९० में पुनः आश्वासन सन्धि की पुनरावृत्ति की ओर कोई ध्यान न दिया। १८९० से १९१४

---

१. (i) १८६३ का डेनिश युद्ध।
(ii) १८६६ का प्रशा तथा आस्ट्रिया का युद्ध।
(iii) १८७० का प्रशा तथा फ्राँस का युद्ध।

तक का काल यूरोप के इतिहास में कूटनीतिक अराजकता का काल था। इस समय पुराने शत्रु आपस में मित्र हो रहे थे तथा मित्र शत्रु हो रहे थे। उदाहरण के लिए इटली अपने मित्र आस्ट्रिया तथा जर्मनी का साथ छोड़कर इंगलैंड तथा रुस की ओर झुक रहा था। इस समय इंगलैंड ने अपनी पृथक्त्व की नीति का परित्याग कर दिया था। १८९१ में जर्मन सम्राट् विलियम द्वितीय की माता फ्रांस में आई। फ्रांस की जनता ने उसके विरोध में प्रदर्शन करना चाहा। इस पर सम्राट् विलियम ने घोषित किया कि यदि राजमाता का अपमान हुआ तो हम फ्रांस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देंगे। इस सयय रुस ने फ्रांस को सहायता का आश्वासन दिया। परन्तु राजमाता की गाड़ी कुछ समय पूर्व निकल गई और जनता प्रदर्शन न कर सकी। इससे युद्ध की सम्भावना स्वतः ही दूर हो गई। १८९१ में एक फ्रांसीसी जहाजी बेड़ा गर्व के नेतृत्व में रुस आया। जनता तथा सम्राट् दोनों ने उसका भव्य स्वागत किया। इस अवसर पर जार सम्राट् अलेक्जेण्डर तृतीय ने नतमस्तक होकर फ्रांस के क्रान्ति के गीत को सुना। इस प्रकार दोनों देशों का आवागमन बढ़ता चला गया। फिशर महोदय लिखते हैं—रूस को हथियारों की आवश्यकता थी। इसकी पूर्ति फ्रांस कर रहा था। रूस को रेलों आदि का निर्माण कराने के लिये धन की आवश्यकता थी। धन की पूर्ति फ्रांस कर रहा था। इसके साथ-साथ रूस को बाल्कन प्रदेशों में शक्ति-संतुलन बनाये रखने के लिये भी मित्र की आवश्यकता थी। इस प्रकार आवश्यकता-वश दोनों देशों के सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ हो गये और १८९३–९४ में इन्होंने एक द्विवर्गी सन्धि कर ली। इस सन्धि की धारायें निम्म प्रकार थीं—

(१) यह सन्धि गुप्त रहेगी।

(२) यह सन्धि उस समय तक चलती रहेगी जब तक कि जर्मनी, आस्ट्रिया तथा इटली की त्रिराष्ट्र सन्धि चलती रहेगी।

(३) यदि फ्राँस पर जर्मनी अथवा उसकी सहायता से आस्ट्रिया का आक्रमण हो तो रूस उन दोनों के विरुद्ध फ्रांस की सहायता करेगा।

(४) यदि रूस पर जर्मनी अथवा उसकी सहायता से आस्ट्रिया का आक्रमण हो तो फ्रांस अपनी भारी सैनिक शक्ति के साथ उसका मुकाबला करेगा।

यद्यपि यह सन्धि सुरक्षात्मक थी और त्रिराष्ट्र सन्धि के विरोध में हुई थी फिर भी उसकी कुछ धारायें बहुत उग्र थीं। उदाहरण के लिए एक धारा में कहा गया था कि यदि जर्मनी के विरुद्ध युद्ध आरम्भ हो जाय तो जर्मनी के विरोध में फ्रांस को एक लाख ३० हजार सैनिक तथा रूस को जर्मनी के विरोध में ७ अथवा ८ लाख सैनिक देने होंगे। वह आक्रमण पूरी शक्ति के साथ होगा, जिससे कि जर्मनी को एक ही समय दो क्षेत्रों (पूर्वी तथा पश्चिमी) में लड़ना पड़े।

इस सन्धि की महत्ता के सम्बन्ध में एक फ्रेंच विद्वान् ने लिखा है कि इस सन्धि के फलस्वरुप यूरोप में हमारी प्रतिष्ठा आरम्भ हो गई, जो गत पराजयों के

कारण नष्ट हो गई थी। इस कूटनीतिक सम्बन्ध से हमारा एकाकीपन नष्ट हो गया है। इससे पूर्व यूरोप की राजनीति में हम एक दर्शक मात्र थे। परन्तु इस सन्धि के पश्चात् हमने पुनः शक्ति संतुलन प्राप्त कर लिया है। इससे विदित होता है कि इस सन्धि के कारण फ्रांस की शक्ति में बहुत वृद्धि हो गई।

इस सन्धि से रूस को भी लाभ हुआ। उसको ट्रांस-साइबेरियन रेलवे के निर्माण के लिये फ्रांस से ऋण मिल गया। इस सन्धि के परिणामस्वरूप यूरोप में शक्ति-संतुलन स्थापित हो गया। एक गुट में जर्मनी, आस्ट्रिया तथा इटली थे। दूसरे गुट में फ्रांस तथा रूस थे। इस प्रकार यूरोप दो गुटों में बंट गया। १८९४ से १९०४ तक यह शक्ति-संतुलन भली प्रकार चलता रहा; परन्तु १९०४ के पश्चात् यह शक्ति-संतुलन बिगड़ना आरम्भ हो गया, क्योंकि १९०४ में इंगलैंड ने अपनी शानदार पृथक्त्व की नीति का परित्याग कर यूरोप के अन्य देशों को अपना मित्र बनाने के प्रयत्न करने आरम्भ कर दिए। १९०४ में उसने फ्रांस के साथ मित्रता कर ली। दूसरे इटली, जर्मनी तथा आस्ट्रिया का साथ छोड़ कर फ्रांस, रूस तथा इंगलैंड से मित्रता करने का प्रयत्न करने लगा।

हार्दिक मैत्री-सम्बन्ध (Entente Cordiale)—पर्याप्त समय तक इंगलैंड पृथक्त्व की नीति का पालन करता रहा। वह अपने को महाद्वीपीय शक्ति न कहकर सामुद्रिक शक्ति कहता था। उसकी विशेष दिलचस्पी औपनिवेशिक मामलों में थी। परन्तु १८९४ तक यूरोप दो गुटों में बंट चुका था। अतः इंगलैंड को चिन्ता होनी स्वाभाविक थी, क्योंकि अभी तक उसका कोई भी मित्र न था। अनेक देशों से किन्हीं न किन्हीं मामलों में उसकी शत्रुता थी।

जापान—इस समय तक जापान अपनी पुरातन व्यवस्था का परित्याग कर पश्चिमी रंग में रंग गया था। वह भी इंगलैंड की भाँति उपनिवेश-स्थापना की ओर ध्यान दे रहा था। इस समय तक उसने पर्याप्त शक्ति प्राप्त कर ली थी। इससे प्रशान्त महासागर में इंगलैंड को जापान से खतरा हो गया था। जापान के विस्तार के कारण चीन में भी ब्रिटेन के हित खतरे में पड़ गये थे।

रूस—इंगलैंड तथा रूस में पुरानी शत्रुता थी। इस समय वह और अधिक बढ़ गई थी। १८७८ की बर्लिन सन्धि में उसने रूस के विस्तार को रोका था; परन्तु अब रूस पुनः भूमध्य सागर में प्रवेश करने का प्रयत्न कर रहा था।

टर्की के प्रश्न को लेकर भी दोनों देशों में शत्रुता थी। बर्लिन सन्धि के पश्चात् रूस ने पूर्वी समस्या की उपेक्षा करके मध्य एशिया की ओर अपना विस्तार करना आरम्भ कर दिया था। इससे तिब्बत, अफगानिस्तान तथा फारस के लिये खतरा हो गया था। इन देशों को खतरा होना इंगलैंड के उपनिवेशों को खतरा होना था।

फ्रांस—मिस्र के प्रश्न को लेकर सम्भवतः फ्रांस इंगलैंड का सबसे बड़ा शत्रु था। इस शत्रुता का मुख्य कारण अनेक प्रदेशों में दोनों देशों की औपनिवेशिक दौड़ थी। अंग्रेज केप कालोनी से बढ़कर अफ्रीका के अधिकांश भाग पर छा गए। फ्रांसीसी

भी इस प्रदेश में अपना विस्तार करना चाहते थे। फलत: फैशोदा नामक स्थान पर फ्रांसीसी सेनापति मार्शां तथा ब्रिटिश सेनापति किचनर के मध्य झगड़ा हो गया। दोनों ही इस प्रदेश पर अपना-अपना अधिकार करना चाहते थे, फलत: दोनों के मध्य युद्ध के लक्षण दिखाई देने लगे; परन्तु अपनी निर्बलता का ख्याल करते हुए फ्रांसीसी सेनापति पीछे हट गया।

इससे ब्रिटेन ने अपनी पृथक्त्व की नीति के परित्याग करने का निश्चय किया तथा मित्र बनाने के लिए वह अन्य देशों की ओर देखने लगा। उपर्युक्त देशों से उसकी मित्रता होनी असम्भव थी। अत: सर्वप्रथम उसकी निगाह जर्मनी की ओर गई। इसके निम्नलिखित कारण थे—

(१) जर्मनी का सम्राट् विलियम द्वितीय विक्टोरिया का नाती था।

(२) जर्मन तथा अंग्रेज दोनों ट्यूटानिक जाति के थे।

(३) इंगलिश तथा जर्मन भाषा का उद्‌गम-स्थान एक ही था।

(४) दोनों देशों का अतीत समान था। उन्होंने अपने सामान्य शत्रुओं के विरुद्ध एक साथ युद्ध तथा सन्धि की थी।

(५) इंगलैंड का शासक वर्ग जर्मनी में हैनोवर का निवासी था।

(६) ब्रिटेन में जर्मन सभ्यता तथा दर्शन का बहुत मान था। ब्रिटेन के ऑक्स-फोर्ड आदि विश्वविद्यालयों में अनेक जर्मन प्राध्यापक नियुक्त थे।

इस समानता के कारण १८९९ में ब्रिटेन के औपनिवेशिक मन्त्री जोसेफ चैम्बर-लेन ने घोषित किया था—'हमारे तथा जर्मन साम्राज्य के मध्य सन्धि होना स्वा-भाविक है।'[1] फिर भी दोनों एक न हो सके। इसके निम्न कारण थे—

(१) जर्मनी इंगलैण्ड के उदारवाद का विरोधी था। जर्मनी सैनिक शक्ति को महत्व देता था। अत: वह ब्रिटेन के उदारवाद का अपने देश में प्रवेश नहीं चाहता था।

(२) जब तक जर्मनी का एकीकरण चलता रहा तब तक इंगलैंड तटस्थ रहा। उसने कभी भी जर्मनी का साथ नहीं दिया; बल्कि कुछ अवसरों पर विरोध ही किया। डेनिश युद्ध के समय भी ब्रिटेन ने प्रशा का विरोध किया था। १८६६ के युद्ध में ब्रिटेन की सहानुभूति आस्ट्रिया के साथ तथा १८७० के युद्ध में ब्रिटेन की सहानुभूति फ्रांस के साथ थीं।

जब तक बिस्मार्क सत्ताधारी रहा तब तक जर्मनी तथा ब्रिटेन की विरोधी भावनाएं दबी रहीं तथा दोनों देशों में किसी न किसी रूप में अच्छे सम्बन्ध बने रहे। इसका विशेष कारण यह भी था कि बिस्मार्क ने कभी भी नौ सेना संगठन की ओर ध्यान नहीं दिया। इससे इस काल में ब्रिटेन तथा जर्मनी का विरोध न हुआ।

---

1. 'The most natural alliance is that between us and the German empire.'

(३) परन्तु जब विलियम द्वितीय सिंहासन पर बैठा तो उसने इस ओर ध्यान नहीं दिया। उसने पूर्वी समस्या में दिलचस्पी लेनी आरम्भ कर दी। उसने अपनी नौ सेना का संगठन भी करना आरम्भ कर दिया। उसने घोषित किया 'हमारा भविष्य समुद्र पर है।' अब जर्मनी धरती का चूहा (Land Rat) नहीं रहा था। उसके हित भी वही थे, जो इंगलैंड के थे।

(४) सन् १८९३ से जर्मनी में पान-जर्मन लीग (Pan German League) की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य समस्त जर्मनों को एक राज्य के अन्तर्गत संगठित करना था। इसका अर्थ था कि वह सम्पूर्ण आस्ट्रिया, नीयरलैंड तथा स्विट्जरलैंड के जर्मन भाग पर जर्मनी अधिकार करना चाहता था। परन्तु इंगलैंड नीदरलैंड तथा स्विट्जरलैंड पर किसी का प्रभाव स्थापित होते नहीं देख सकता था।

(५) केप कालोनी पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया था। अतः अब वह इसके आस-पास के प्रदेश पर अधिकार करने की चेष्टा कर रहा था। इसके पास ही ट्राँसवाल का प्रदेश था। यहाँ डच रहते थे। इन्हें बोअर (Boer) कहते थे। एक बार अंग्रेज सेनापति जेम्सन ने ट्रांसवाल पर आक्रमण कर दिया। उसे ट्रांसवाल के प्रेसीडेन्ट क्रूगर की सेना ने पराजित कर दिया। यह एक साधारण घटना थी, क्योंकि जेम्सन ने ट्रांसवाल पर आक्रमण करने की अनुमति अपनी सरकार से नहीं ली थी। फिर भी विलियम द्वितीय ने क्रूगर को विजय के उपलक्ष्य में बधाई का तार भेजा। इंगलैंड को पहले से ही यह शंका थी कि बोअर जर्मनी की सहायता तथा सहानुभूति के कारण ही इंगलैण्ड का विरोध कर रहे हैं। अब उसकी यह शंका और भी दृढ़ हो गई। इससे विलियम द्वितीय की इंगलैण्ड में बहुत बदनामी हुई। महारानी विक्टोरिया ने भी उसकी निन्दा की।

तत्पश्चात् अंग्रेजों तथा बोअरों के मध्य बोअर-युद्ध आरम्भ हो गया। विलियम द्वितीय ने अंग्रेजों का विरोध किया। उसकी यह इच्छा थी कि यूरोप के समस्त देश मिलकर अंग्रेजों का विरोध करें। परन्तु इन देशों के पास प्रचुर मात्रा में नौ सेना नहीं थी। अतः ये अंग्रेजों का विरोध करने का साहस न कर सके। जर्मनी ने भी इससे यह शिक्षा ग्रहण की कि जब तक जर्मनी के पास विशाल नौ-सेना न हो जाय तब तक उसकी गणना महाशक्तियों में नहीं हो सकती। अतः उसने अपनी नौ-सेना के विस्तार की ओर ध्यान दिया और नौ-सेना के संगठन का कार्य टिरपिज नामक एक व्यक्ति को सौंपा गया। फलतः इंगलैंड तथा जर्मनी के मध्य विरोध बढ़ गया और दोनों में कोई समझौता न हो सका। विलियम द्वितीय ने अंग्रेजों के मित्रता के समझौते की अवहेलना करते हुए कहा था कि बर्लिन का रास्ता वियना होकर आता है।[1] इसका अर्थ था कि इंगलैंड को पहले आस्ट्रिया से मित्रता करनी चाहिए। तत्पश्चात् जर्मनी से उसकी मित्रता सम्भव हो सकेगी; परन्तु इंगलैंड आस्ट्रिया से

1. 'The way to Berlin lies through Vienna.'

मित्रता करना नहीं चाहता था; क्योंकि पूर्वी समस्या के सम्बन्ध में दोनों देशों के हित परस्पर-विरोधी थे।

इंगलैंड तथा फ्रांस के सम्बन्ध—सन् १८५४–५६ के क्रीमिया युद्ध में इंगलैंड तथा फ्राँस ने रूस के विरुद्ध सम्मिलित रूप से कार्यवाही की थी। नेपोलियन तृतीय की मुक्त व्यापार की नीति के कारण भी इंगलैंड के फ्रांस के साथ अच्छे सम्बन्ध थे। परन्तु कालान्तर में इंगलैण्ड तथा नेपोलियन तृतीय के मध्य विरोध बढ़ गया। इस विरोध का कारण नेपोलियन की साम्राज्यवादी नीति थी। उसने इटली की सहायता करने के बदले में नाइस तथा सेवाय के प्रदेश प्राप्त किए थे। जर्मनी के एकीकरण में सहायता करने के बदले में उसने बेलजियम अथवा राइन का प्रदेश मांगा था। वह मैक्सिको में भी अपने साम्राज्य की स्थापना करना चाहता था। इससे इंगलैंड फ्रांस से नाराज हो गया और १८७० के युद्ध में उसने तटस्थता की नीति का पालन किया तथा फ्रांस की कोई सहायता न की और फ्रांस इस युद्ध में बुरी तरह पराजित हो गया।

१८७० की इस पराजय के पश्चात् बिस्मार्क बराबर फ्राँस को अकेला रखने का प्रयत्न करता रहा। तीन सम्राटों के गुट (Three Emperors League) के अनुसार वह रूस को अपना मित्र बनाए रहा। इंगलैंड को अपना मित्र बनाए रखने के हेतु बिस्मार्क ने कभी भी अपनी सेना का विस्तार नहीं किया तथा उपनिवेश-स्थापना की ओर ध्यान नहीं दिया। इंगलैंड का विरोध उसी देश से होता था जो नौ-सेना का विस्तार कर उपनिवेश-स्थापना की कोशिश करता था।

फ्रांस के उपनिवेश-स्थापना के कार्य ने इङ्गलैंड के साथ उसके सम्बन्ध और भी खराब कर दिये थे। फ्राँस ने १८८५ तथा १८८९ के मध्य में चीन के कोचीन तथा अनाम आदि कई प्रदेशों में अपने उपनिवेश स्थापित कर लिये थे। इधर इंगलैंड ने भी चीन के ह्वांगकांग तथा शंघाई प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। फलतः दोनों देश के मध्य बहुत कटुता बढ़ गई थी।

अफ्रीका में भी इंगलैण्ड तथा फ्रांस दोनों ही अपने उपनिवेश स्थापित करने में संलग्न थे। प्रारम्भ में फ्रांस ने अलजीरिया पर अधिकार कर लिया। बिस्मार्क के प्रोत्साहन के कारण १८८१ में फ्रांस ने ट्यूनिस पर अधिकार कर लिया। इंगलैंड इस पर इटली का अधिकार स्थापित कराना चाहता था। १८८४ में उसने काँगो के प्रदेश पर भी अधिकार कर लिया। अब वह मोरक्को पर अधिकार करना चाहता था, क्योंकि मोरक्को अफ्रीका में स्थित फ्रांसीसी उपनिवेशों की पश्चिमी तथा उत्तरी पट्टी को जोड़ने वाला केन्द्र-बिन्दु था, परन्तु अंग्रेज मोरक्को को फ्रांस के अधिकार में न होने देना चाहते थे, क्योंकि इसके पास ही अंग्रेजों का जिब्राल्टर नामक सुप्रसिद्ध बन्दरगाह था। दूसरे अंग्रेजों का मोरक्को के साथ अवैध व्यापार था। यदि इस प्रदेश पर फ्राँस का अधिकार हो जाता तो अंग्रेजों का यह व्यापार समाप्त हो जाता। अतः वे इस प्रदेश पर फ्रांस का अधिकार न होने देना चाहते थे। इंगलैण्ड ने अफ्रीका में ट्रांसवाल, नेटाल तथा औरेन्ज नदी की घाटी के प्रदेश पर अधिकार

कर लिया था। इंगलैंड सूडान को अपने अधिकार में करना चाहता था, क्योंकि सूडान अंग्रेजों के अफ्रीका-स्थित उत्तरी एवं दक्षिणी साम्राज्य के जोड़ने का केन्द्र-बिन्दु था। फ्रांस भी इस पर अपना प्रभाव स्थापित करना चाहता था। मिस्र के ऊपर अधिकार स्थापित करने के सम्बन्ध में इंगलैंड तथा फ्रांस में बहुत प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी। नेपोलियन महान् ने भी मिस्र पर आक्रमण कर उस पर अधिकार करने की चेष्टा की थी; परन्तु नील नदी के युद्ध में अंग्रेजों ने उसकी सारी योजना को नष्ट कर दिया और मिस्र पर फ्रांस का अधिकार न होने दिया।

फेशोदा की घटना (१८९९)—फ्रांस तथा इंगलैण्ड दोनों ही फेशोदा पर अधिकार करना चाहते थे। फ्रांसीसी सेनापति मार्शां ने वहां जाकर अपना झण्डा गाड़ दिया। अंग्रेजी सेनापति किचनर ने इसका विरोध किया। दोनों देशों में युद्ध अनिवार्य दिखाई देने लगा, परन्तु अन्त में यह तय हुआ कि युद्ध न किया जाय और दोनों सेनापति अपना झगड़ा अपनी-अपनी सरकारों के पास भेज दें। वहाँ से जैसा आदेश आवे वैसा ही किया जाय। फ्रांस के प्रधान मन्त्री देलकाजे ने बड़ी बुद्धिमत्ता से कार्य किया। वह समझ गया कि इंगलैंड से युद्ध करने का अर्थ है—आत्म-विनाश। यदि अंग्रेजों से युद्ध किया गया तो वह बड़ी आसानी से हमारे सभी उपनिवेशों को छीन लेगा। अतः फ्रांस ने इंगलैंड से शत्रुता मोल लेनी उचित नहीं समझी और अपनी सेनायें फेशोदा से हटा लीं। फ्रांस ने यह वादा किया कि भविष्य में वह पूर्व की ओर अर्थात् मिस्र की ओर अपना विस्तार न करेगा। इंगलैण्ड ने फ्रांस को अफ्रीका में पश्चिम की ओर अर्थात् सहारा की ओर बढ़ने का अधिकार दे दिया।

देलकाजे इस समझौते का विस्तार करना चाहता था। उसकी इच्छा थी कि दोनों देश इसी प्रकार अपने झगड़ों का समाधान करने का समझौता कर लें, परन्तु लार्ड सेलिसबरी इसके लिए तैयार न हुआ।

इस घटना के पश्चात् इंगलैंड तथा फ्रांस के सम्बन्ध बराबर अच्छे होते चले गये। १९०० में फ्रांस की राजधानी में एक प्रदर्शनी हुई। इसमें 'ब्रिटिश चेम्बर ऑफ कॉमर्स' को निमन्त्रित किया गया। सेलिसबरी ने भी इसका अनुमोदन किया। अनेक अंग्रेज इस प्रदर्शनी में पधारे और यह बहुत सफल सिद्ध हुई।

सम्राट् एडवर्ड सप्तम के सिंहासनारूढ़ होने तथा सेलिसबरी के त्याग-पत्र देने के पश्चात् दोनों देशों के सम्बन्धों में एक नये युग का प्रादुर्भाव हुआ। १९०३ में सम्राट् एडवर्ड सप्तम ने पेरिस की यात्रा की। पेरिस की जनता तथा सरकार दोनों ने ही सम्राट् का अभूतपूर्व स्वागत किया। सम्राट् इस स्वागत से बहुत प्रभावित हुआ। उसने अपने भाषण में कहा—'पेरिस में आकर मुझको बहुत प्रसन्नता हुई है। मुझे पूरा विश्वास है कि दोनों देशों के मध्य के विरोध के दिन अब सदैव के लिए समाप्त हो गये हैं। मैं ऐसे अन्य किन्हीं दो देशों को नहीं जानता जिनके कि हित एक दूसरे से इतने अधिक सम्बन्धित हों, जिनके कि फ्रांस तथा इंगलैंड के हैं।'

एडवर्ड सप्तम की यात्रा के तीन महीने पश्चात् ही फ्रांस के राष्ट्रपति लूबे ने लन्दन की यात्रा की। लूबे का भी लन्दन में भव्य स्वागत किया गया। लूबे की यह यात्रा सफल रही। लूबे की बिदाई के समय सम्राट् ने कहा था कि 'मेरी हार्दिक इच्छा है कि दोनों देशों के बीच स्थायी सहयोग स्थापित हो।' इस यात्रा के समय देलकाजे भी लूबे के साथ लन्दन गया था।

इससे सिद्ध होता है कि इंगलैण्ड फ्रांस के साथ मित्रता करने को तैयार था। १८९९ में फ्रांस ने इंगलैंड से मित्रता करने का प्रस्ताव रक्खा था, परन्तु उस समय इंगलैंड ने उसे स्वीकार नहीं किया, परन्तु १९०३ में इंगलैंड ने यह प्रस्ताव रक्खा और फ्रांस ने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। १९०३ में दोनों देशों ने मध्यस्थता की एक सन्धि (Treaty of Arbitration) कर ली। इसके द्वारा यह निर्णय किया गया कि उपनिवेशस-स्थापना के सम्बन्ध में दोनों देशों में यदि झगड़ा हो तो दोनों देश उसको मध्यस्थता से शान्तिपूर्वक हल कर लेंगे।

८ अप्रैल १९०४ में दोनों देशों ने एक समझौता कर लिया, जिसके अनुसार निम्न निर्णय किये गये—

१. सबसे महत्वपूर्ण निर्णय मिस्र तथा मोरक्को के सम्बन्ध में था। फ्रांस तथा इंगलैंड दोनों ही मिस्र को अपने अधिकार में करना चाहते थे। यदि अधिकार में भी न हो तो कम से कम प्रभाव स्थापित करने की लालसा थी ही, परन्तु १९०४ में फ्रांस ने यह स्वीकार किया कि मिस्र में उसका कोई हित नहीं है और यदि कोई देश मिस्र में अंग्रेजों के हितों को चुनौती देगा तो फ्रांस इंगलैंड का साथ देगा।

२. फ्रांस मोरक्को पर अधिकार करना चाहता था, क्योंकि यह प्रदेश उसके अफ्रीका में स्थित उत्तरी तथा पश्चिमी फ्रांसीसी उपनिवेशों को जोड़ने का केन्द्र-बिन्दु था, परन्तु इंगलैंड इसके लिये तैयार न था। कारण यह था कि इंगलैंड का इसके साथ अवैध व्यापार था। यदि इस पर फ्रांस का अधिकार हो जाता तो इंगलैंड का व्यापार नष्ट हो जाता, परन्तु इस समझौते के अनुसार इंगलैंड ने मोरक्को पर फ्रांस का अधिकार स्वीकार कर लिया, परन्तु जिब्राल्टर के सामने के मोरक्को के समुद्र-तट पर दुर्गीकरण नहीं किया जा सकता था। तीनों मोरक्को संकटों (१९०५, १९०८ तथा १९११) के समय इंगलैंड ने फ्रांस का साथ दिया तथा जर्मनी का विरोध किया।

१. न्यूफाउण्डलैंड के मछली पकड़ने के समुद्र तट के सम्बन्ध में जो दीर्घ-कालीन झगड़ा चल रहा था उसका भी समाधान किया गया। अब फ्रांसीसी मछेरे केवल मछली पकड़ने के मौसम में ही इस प्रदेश में घूम सकते थे तथा मछली पकड़ सकते थे। मछली पकड़ने के समुद्र तट की पट्टी पर अधिकार इंगलैंड का ही रहेगा। इसकी क्षति-पूर्ति करते हुए फांस को पश्चिमी अफ्रीका में कुछ प्रदेश दे दिये गये।

४. मलाया प्रायःद्वीप तथा उसके समीपवर्ती द्वीप अंग्रेजों के प्रभाव में मान लिए गये।

५. स्याम तथा मेडागास्कर फ्रांस के प्रभाव-क्षेत्र में मान लिए गए।

इस समझौते के पश्चात् लार्ड लैंसडाउन ने कहा था—'यह दोनों देशों के मध्य के सम्बन्धों के सुधार की योजना है। इससे भूतकाल के मतभेदों का स्थान पारस्परिक मित्रता ने ग्रहण कर लिया है।' इस सम्बन्ध में देलकाजे ने कहा था कि नैतिक तथा आर्थिक हितों की पूर्ति के लिये यह समझौता आवश्यक था। व्यूलो ने इस समझौते के विषय में कहा था—'यह समझौता किसी भी शक्ति के विरोध में नहीं है। यह तो फ्राँस तथा ग्रेट ब्रिटेन के मतभेदों को दूर करने का प्रयत्न है।[1] फिशर महोदय के मत में फ्राँस तथा इंगलैंड दोनों देशों की सरकारों ने इस समझौते द्वारा अपने औपनिवेशिक झगड़ों तथा मतभेदों का अन्त कर अपने हितों की रक्षा की। ब्रेन्डेनबर्ग ने कहा है कि आँग्ल-फ्रेंच समझौते (Anglo-French Ententé) के सम्पन्न होने से जर्मन शक्ति को बहुत धक्का लगा और सदैव के लिये उसका प्रभाव समाप्त हो गया। पेरिस में स्थित जर्मनी के राजदूत रेलोलिन ने कहा था कि यह समझौता बहुत स्वाभाविक तथा उचित था।[2]

इस समझौते के सम्पन्न होने पर इंगलैंड की जनता बहुत प्रसन्न हुई; परन्तु फिर भी कुछ नेताओं ने इसका विरोध किया। वे जर्मनी को भी इसमें सम्मिलित करना चाहते थे। लार्ड रोजवरी ने कहा था कि जर्मनी को इस समझौते में सम्मिलित न करके इंगलैंड ने बहुत गलती की है। इसका प्रभाव यह होगा कि जर्मनी इस समझौते को अपने विरोध में समझेगा। वास्तव में उसका यह कथन सत्य सिद्ध हुआ। मोरक्को संकटों के समय इंगलैंड ने जर्मनी का साथ न देकर फ्रांस का साथ दिया। तत्पश्चात् उत्तरोत्तर जर्मनी तथा इंगलैंड के सम्बन्ध कटु होते चले गये।

हम पीछे उल्लेख कर चुके हैं कि इंगलैंड तथा फ्राँस का मित्रता का समझौता हो जाने के बाद जर्मनी की स्थिति बहुत कमजोर हो गई। अब अपनी स्थिति को सुरक्षित करने के लिये जर्मनी ने यह प्रयत्न किया कि फ्रांस तथा इंगलैंड के मध्य का यह समझौता भंग हो जाय। इसलिये उसने मोरक्को का संकट खड़ा कर दिया। यह संकट १९०५, १९०८ तथा १९११ में उत्पन्न हुआ। १९११ में तो जर्मनी ने एक जंगी जहाज भी फ्राँस के विरुद्ध मोरक्को में भेज दिया; परन्तु तीनों अवसरों पर इंगलैंड ने अपने मित्र फ्राँस का साथ दिया। इससे इंगलैंड तथा फ्राँस के सम्बन्ध बहुत अच्छे हो गये और जर्मनी को अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिली।

मोरक्को के उक्त तीनों सकटों के समय एकमात्र आस्ट्रिया के अतिरिक्त किसी भी देश ने जर्मनी का साथ नहीं दिया यहाँ तक कि त्रिराष्ट्र सन्धि के तीसरे सदस्य इटली ने भी जर्मनी का साथ नहीं दिया। इससे यह स्पष्ट हो गया कि इटली

---

1. 'I can only say that we have no reason to suppose that this agreement is directed against any power whatever. It seems to be an attempt to eliminate the points of difference between France and Great Britain.'

2. 'Very natural and perfectly justified.'

भी फ्राँस तथा इंगलैंड की ओर झुकने लगा था। इसके पश्चात् जर्मनी तथा इंगलैंड की शत्रुता बढ़नी आरम्भ हो गई। जर्मनी ने घोषित किया कि हम अपनी स्थिति सुरक्षित करने के लिये शान्ति की नीति नहीं अपितु अपनी तलवार का आश्रय लेंगे। एक जर्मन पत्रकार ने भी कहा था कि इंगलैंड विश्व भर का पंच बना हुआ है। परन्तु सदैव ऐसा नहीं रहेगा।

इंगलैंड तथा फ्रांस के सम्बन्ध को तोड़ने में जर्मनी को सफलता न मिली। अतः उसने रूस को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया। उसका यह प्रयत्न १६०४ से १६०६ तक चलता रहा। जर्मनी रूस को अपनी ओर मिलाकर ऐंग्लो-जापानी गुट के विरोध में अपने गुट का निर्माण करना चाहता था।[1] अन्त में दोनों देशों के सम्राट् बजोरको (Bjorko) नामक स्थान पर मिले और उन्होंने ३ जुलाई, १६०५ को एक गुप्त सन्धि कर ली। इसके अनुसार यह निर्णय किया गया कि यदि दोनों देशों में से किसी भी एक देश की सीमा पर कोई देश आक्रमण करेगा तो दूसरा अपने मित्र को सैनिक तथा नाविक सहायता करेगा। परन्तु रूस में इस सन्धि का बहुत विरोध हुआ। अतः जार सम्राट् ने जर्मनी के सम्राट् विलियम द्वितीय को यह लिख भेजा कि हम इस सन्धि को मानने के लिये बाध्य नहीं हैं और यह सन्धि टूट गई। जर्मनी को अपने इस उद्देश्य में भी सफलता न मिली। अतः वह इंगलैंड को अपना प्रथम शत्रु मानने लगा। कालान्तर में जर्मनी की यह नीति और भी अधिक स्पष्ट हो गई।

१६०७ की आंग्ल रूसी-सन्धि (Anglo-Russian Alliance of 1907)—बाल्कन प्रदेश, मध्य एशिया तथा प्रशान्त महासागर में दोनों देशों के हित टकराते थे। इससे दोनों देश एक दूसरे को अपना प्रमुख शत्रु समझते थे। इस स्थिति को देखते हुये इंगलैंड के प्रधान मन्त्री सर एडवर्ड ग्रे ने कहा था—'जब किन्हीं दो देशों के हित एक दूसरे से इतने टकराने लगें तो उन देशों में या तो मित्रता हो जाती है या घोर शत्रुता हो जाती है।

इस समय रूस बड़ी शोचनीय अवस्था में था। वहाँ १६०५ में प्रथम रूसी क्रान्ति हो चुकी थी। १६०५ में वह जापान द्वारा पराजित हो चुका था। उसके विरोध में जर्मनी तथा आस्ट्रिया एक गुट का निर्माण कर चुके थे। प्रशान्त महासागर चीन तथा कोरिया में जापान बराबर उसका विरोध कर रहा था। जापान १६०२ की सन्धि के अनुसार इंगलैंड का मित्र था। यदि रूस की इंगलैंड से मित्रता हो जाती तो जापान को संयत रक्खा जा सकता था।

इंगलैंड का सम्राट् एडवर्ड सप्तम जर्मनी का विरोधी था। इधर रूस का विदेश मन्त्री इज्वोलास्की इंगलैंड से मित्रता करने के पक्ष में था। अंग्रेज भी रूस से

1. 'The only way......would be that Germany, Russia and France should atonce unite in an arrangement to abolish Anglo-Japanese arrogance and insolence.'

मित्रता करके अपनी सारी शक्ति प्रशान्त महासागर तथा बाल्कन प्रदेश में लगाना चाहते थे। रूस में स्थित इंगलैंड का राजदूत हार्डिंग भी इसका समर्थक था। अतः १९०७ में इंगलैंड तथा रूस के मध्य एक सन्धि हो गई। इस सन्धि की प्रमुख धारायें निम्न प्रकार थीं—

(१) दोनों देशों ने स्वीकार किया कि वे तिब्बत की सीमाओं की रक्षा करेंगे तथा उसके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करेंगे। तिब्बत को आन्तरिक मामलों में स्वतन्त्रता दे दी गई और नाममात्र के लिये उसको चीन सरकार के अधीन माना गया। तिब्बत की राजधानी में इन दोनों में से कोई भी अपना राजदूत न रखेगा। इसका अर्थ था कि इन देशों में से कोई भी तिब्बत के साथ प्रत्यक्ष कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित न करेगा। आवश्यकता पड़ने पर दोनों देश उसके नाममात्र के स्वामी चीन के माध्यम से उससे वार्ता करेंगे।

(२) रूस ने यह वादा किया कि वह अफगानिस्तान को अपने प्रभाव-क्षेत्र में नहीं मानेगा। रूस अफगानिस्तान के साथ अपने प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित न करेगा। वह आवश्यकता पड़ने पर अफगानिस्तान से इंगलैंड के माध्यम द्वारा ही वार्ता करेगा। इंगलैंड ने यह वायदा किया कि वह अफगानिस्तान के आन्तरिक मामले में परिवर्तन न करेगा। वह अपने अफगानिस्तान के प्रभाव को शान्ति की स्थापना के लिये प्रयोग करेगा, युद्ध के लिये नहीं। दोनों देशों को यहां व्यापार करने का अधिकार प्राप्त होगा।

(३) दोनों देशों ने वादा किया कि वे फारस की स्वतन्त्रता तथा उसकी सीमा की रक्षा करेंगे। दोनों देशों को फारस (ईरान) में व्यापार करने का अधिकार प्राप्त होगा। फारस को तीन प्रभाव-क्षेत्रों में बाँट दिया गया। उत्तरी फारस रूस के प्रभाव में तथा दक्षिणी फारस इंगलैंड के प्रभाव में मान लिया गया। मध्य फारस तटस्थ घोषित किया गया। यह फारस के नरेश के प्रभाव में रहेगा।

इस समझौते की सबसे बड़ी बुराई यह थी कि जिन देशों के सम्बन्ध में यह सन्धि की गई थी उनसे इस सम्बन्ध में कोई राय नहीं ली गई थी। उस समय के पत्र पंच ने एक कार्टून बनाया था जिसमें फारस को एक बिल्ली के रूप में बनाया गया था। उसके सिर को इंगलैंड रूपी शेर तथा पूंछ को रूस रूपी भालू खींच रहा था। फारस रूपी बिल्ली के नीचे लिखा था कि हमसे तो कुछ पूछा ही नहीं गया है।

इस सन्धि से रूस तथा इंगलैंड दोनों को ही लाभ हुआ। रूस को जर्मनी तथा आस्ट्रिया से जो भय था वह समाप्त हो गया। इंगलैंड को पूर्वी समस्या में रूस का जो भय था वह समाप्त हो गया। ग्रे के शब्दों में इस सन्धि से अधिक लाभ इंगलैंड को ही हुआ।[1]

१९०४ की सन्धि के अनुसार फ्रांस इंगलैंड का मित्र बन गया तथा १८९४ की सन्धि के अनुसार वह रूस का भी मित्र था; परन्तु रूस तथा इंगलैंड के सम्बन्ध

---

1. 'What we gained by it was real, what gained by Russia was apparent.'

खराब थे। यदि इन दोनों में युद्ध हो जाता तो फ्राँस आफत में पड़ जाता। उसे यह सोचना पड़ता कि अब दोनों में से वह किसकी सहायता करे ? जिसकी वह सहायता न करता उसकी ही मित्रता से उसे हाथ धोना पड़ता। अतः उसने भी इन दोनों देशों की सन्धि कराने की बहुत चेष्टा की थी।

जर्मनी में इस सन्धि की भयंकर प्रतिक्रिया हुई। जर्मन सम्राट् विलियम द्वितीय ने कहा कि हमको चारों ओर घेरा जा रहा है। मित्र राष्ट्रों ने कहा कि जर्मनी के विरोध में इसमें कोई बात नहीं है। यह तो एकमात्र सुरक्षात्मक सन्धि है। ब्रेन्डनबर्ग लिखता है कि 'यह सन्धि (Triple Entente) न तो जर्मनी के लिए खतरनाक है और न मित्र राष्ट्रों के लिए सुरक्षात्मक ही है।' इस सन्धि के सम्बन्ध में आगे विचार करता हुआ यह लेखक लिखता है—'चाहे यह सन्धि आक्रमणकारी हो, चाहे सुरक्षात्मक हो, इतना अवश्य है कि इसने जर्मनी की शक्ति को हीन बना दिया और उसको अपना भविष्य खतरे में दिखाई देने लगा। अब जर्मनी एक निर्बल गुट का नेता था। इसलिए अब जर्मनी को अपनी नौ-सेना का विस्तार करना आवश्यक हो गया।'

यद्यपि १९१४ तक यूरोप के इतिहास में जो सन्धियां हुईं, वे सुरक्षात्मक थीं, परन्तु अन्त में वे आक्रमणकारी सिद्ध हुईं।[1]

यूरोप की इस गुटबन्दी ने पिछली कूटनीति को समाप्त कर दिया। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। जो राष्ट्र कभी परस्पर मित्र थे, वे शत्रु हो गए और जो शत्रु थे, वे मित्र हो गये। उदाहरण के लिये एक दूसरे के प्रबल विरोधी इंगलैंड तथा रूस एवं फ्रांस और रूस परस्पर मित्र हो गये।

वास्तव में १९०४ से लेकर १९१४ तक का काल यूरोप के इतिहास में अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता का काल है। इस समय कौन देश किधर जा रहा था यह किसी को मालूम नहीं था। उदाहरण के लिए इटली आस्ट्रिया तथा जर्मनी का मित्र था; परन्तु इसके साथ-साथ वह इंगलैंड तथा रूस से भी सन्धि कर रहा था।

फिर भी इस गुटबन्दी के परिणामस्वरूप कुछ समय तक यूरोप महायुद्ध के खतरे से बचा रहा। एक गुट यह सोचता था कि हमारे विरोध में एक दूसरा भी शक्तिशाली गुट है। इससे कुछ दिन तक यूरोप में शक्ति-संतुलन बना रहा। इस शक्ति-संतुलन के अभाव में बोस्निया संकट अथवा बाल्कन संघ के स्थापित होने पर महा-युद्ध आरम्भ हो सकता था।

प्रारम्भ में यूरोप में दो गुट थे—त्रिराष्ट्र सन्धि (Triple Alliance) तथा हार्दिक मैत्री-सम्बन्ध (Triple Entente)। त्रिराष्ट्र सन्धि (Triple Alliance) में आस्ट्रिया, जर्मनी तथा इटली थे और हार्दिक मैत्री-सम्बन्ध (Triple Entente) में इंगलैंड, फ्रांस तथा रूस थे। परन्तु कालान्तर में कुछ अन्य छोटे-छोटे गुटों का भी

1. 'The road to war was paved with good intentions and bad manners.'

—Thomson.

निर्माण होना प्रारम्भ हो गया। इसका उत्तरदायित्व इटली पर है। उसने अन्य देशों के साथ सन्धियां करनी आरम्भ कर दीं। इसका अर्थ यह था कि उसकी पूरी सहानु-भूति जर्मनी तथा आस्ट्रिया के साथ न थी। वह नये मित्रों की खोज में था—

इटली ने त्रिराष्ट्र सन्धि का सदस्य होते हुये भी १८८७ में ब्रिटेन के साथ एक सन्धि कर ली। इंगलैंड ने आश्वासन दिया कि वह ट्रिपोली पर इटली के अधिकार का विरोध न करेगा।

इसी वर्ष (१८८७) इटली ने आस्ट्रिया तथा ब्रिटेन के साथ एक समझौता कर लिया। इसका उद्देश्य पूर्वी समस्या, प्रमुखतया बल्गेरिया, बासफोरस तथा डार्डेनेलीज में पूर्व स्थिति (Status quo) बनाये रखना था।

इटली ने १८८७ में जर्मनी के साथ भी एक समझौता कर लिया जिसमें यह कहा गया कि यदि मित्र राष्ट्रों ने मोरक्को पर फ्रांस का अधिकार करा दिया तो जर्मनी ट्रिपोली के ऊपर इटली के अधिकार का विरोध न करेगा।

१९०० में इटली ने रूस के साथ अलग सन्धि की। यह सन्धि इतिहास में Racconigo Agreement कहलाती है। इसके अनुसार इटली ने यह वायदा किया कि वह बासफोरस तथा डार्डेनेलीज पर रूस का विरोध न करेगा।

१९०२ में इटली तथा फ्रांस ने एक गुप्त सन्धि कर ली। इसके अनुसार यह निर्णय किया गया कि यदि इन दोनों देशों में से किसी एक पर कोई दूसरा देश आक्रमण करेगा तो ये दोनों देश परस्पर तटस्थता की नीति का पालन करेंगे।

इस प्रकार इटली ने अनेक देशों के साथ अलग-अलग सन्धियाँ कीं। इनमें कुछ सन्धियां एक दूसरे के विपरीत थीं। इसलिये टाम्सन महोदय ने कहा है कि इटली की इन सन्धियों ने गुटबन्दी को एक मखोल बना दिया।[1]

इटली का त्रिराष्ट्र सन्धि को छोड़ना—जर्मनी यह भली प्रकार समझता था कि इटली की नीति मक्कारीपूर्ण थी। जब इटली ने आस्ट्रिया तथा जर्मनी के गुट में सम्मिलित होने के लिये वार्ता की थी तो बिस्मार्क ने कहा था कि इटली को अपने गुट में सम्मिलित करना ठीक नहीं। वह अविश्वसनीय है। कालान्तर में यह स्पष्ट हो गया कि वह दोनों गुटों में है। कुछ सीमा तक उसकी परिस्थिति भी ऐसी ही थी। उसके हित एकमात्र त्रिराष्ट्र सन्धि में रहने से सुरक्षित न थे। परतन्त्र इटली के प्रश्न को लेकर आस्ट्रिया तथा इटली की शत्रुता थी। यह बात थी कि एड्रियाटिक सागर के समीप के इटली के प्रदेश को स्वतन्त्र कराने के लिये बार-बार आस्ट्रिया से कह रहा था; परन्तु आस्ट्रिया इस ओर कोई ध्यान नहीं दे रहा था। जर्मनी ने भी इस सम्बन्ध में इटली की कोई सहायता नहीं की। जिस समय महायुद्ध आरम्भ हो गया तो जर्मनी ने आस्ट्रिया से कहा कि तुम परतन्त्र इटली को स्वतन्त्र कर दो जिससे कि इटली भी हमारी सहायता करे। परन्तु इस समय भी आस्ट्रिया ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

1. Her (Italy) secret and inconsistent promises reduced the system of alliance into a farce.'

अल्बानिया पर इटली अधिकार करना चाहता था, परन्तु आस्ट्रिया भी अल्बानिया पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता था। एड्रियाटिक सागर पर अधिकार अथवा प्रभाव स्थापित करने के उद्देश्य से इटली इस प्रदेश पर अधिकार करना चाहता था। परन्तु आस्ट्रिया तथा जर्मनी उसके इस कार्य के विरोधी थे।

आस्ट्रिया भी एड्रियाटिक सागर की ओर दक्षिण में बढ़ना चाहता था। इसीलिये उसने बोस्निया तथा हर्जेगोविना पर अधिकार कर लिया था। इटली ने आस्ट्रिया के इस कार्य का विरोध किया।

आस्ट्रिया ने संजक रेलवे बनाने का प्रयत्न किया था। यदि यह रेलवे लाइन बन जाती तो आस्ट्रिया के इस प्रदेश में पैर जम जाते। इटली ने इसका विरोध किया। परन्तु इस अवसर पर भी जर्मनी ने इटली की सहायता की।

१९११ में इटली ने ट्रिपोली पर अधिकार कर लिया। इस अवसर पर मित्र राष्ट्रों ने इटली के पक्ष का समर्थन किया; परन्तु विरोध करने वालों में थे—उसके मित्र आस्ट्रिया और जर्मनी।

इसलिये इटली ने सोचा कि त्रिराष्ट्र सन्धि में रहते हुये उसके हित सुरक्षित नहीं हैं। जर्मनी प्रत्येक अवसर पर आस्ट्रिया का पक्ष लेता है। परन्तु सिद्धान्त के नाते उसे या तो तटस्थ रहना चाहिये या न्याय का पक्ष लेना चाहिये। इस प्रकार एक गुट में रहते हुये भी आस्ट्रिया तथा इटली की शत्रुता थी। १९०८ के बोस्निया संकट के समय एक सदस्य ने इटली की पार्लियामेन्ट में कहा था कि—आश्चर्य की बात तो यह है कि जो देश हमें युद्ध के लिये डराता रहता है, वही हमारा मित्र है।[1]

१९०८ में इटली में एक आन्दोलन चला कि इटली त्रिराष्ट्र संघ छोड़ दे, परन्तु इटली के प्रधान-मन्त्री ने कहा कि यह ठीक नहीं है। अभी वह समय नहीं आया है जबकि इटली को त्रिराष्ट्र संघ छोड़ देना चाहिये। अभी कुछ प्रतीक्षा की आवश्यकता है। परन्तु उसने इतना अवश्य कहा कि इस सन्धि में रहते हुये भी हम इङ्गलैंड के विरोधी नहीं हैं। हम कोई ऐसा कार्य नहीं करेंगे जिससे कि इंगलैंड के हितों को हानि हो। उसने फ्रांस तथा रूस को भी आश्वासन दिया कि वह इन देशों का भी विरोध न करेगा।[2]

ट्रिपोली पर अधिकार करने से पूर्व इटली ने यूरोप के प्रमुख देशों से सन्धि करके इस सम्बन्ध में उनकी सहानुभूति प्राप्त कर ली थी।

इङ्गलैंड से सन्धि—ये दोनों देश भूमध्य सागर, इजियन सागर, एड्रियाटिक सागर पर पूर्व स्थिति (Status quo) बनाये रक्खेंगे। यदि कोई अन्य देश इनके

---

1. 'The only state which really threatens us with war is in alliance with us.'

2. 'Our alliance with Germany and Austria-Hungary to which we remain true must not to my mind be an obstacle to our traditional friendship with England, to a renewed friendship with France and to the recent understanding with Russia.'

हितों को हानि पहुंचायेगा तो ये दोनों मिल कर उसका विरोध करेंगे। इंगलैंड ट्रिपोली में इटली का तथा इटली मिस्र में इंगलैंड का विरोध न करेगा।

फ्रांस से सन्धि—इटली ने ट्यूनिस पर फ्रांस का अधिकार मान लिया तथा फ्रांस ने ट्रिपोली पर इटली के अधिकार को मान्यता दे दी।

रूस से सन्धि—भूमध्य सागर में इटली रूसी हितों को हानि न पहुंचायेगा तथा रूस का डार्डेनेलीज तथा बासफोरस के सम्बन्ध में कोई विरोध न करेंगे। इसके बदले में रूस ने भी ट्रिपोली पर इटली का अधिकार मान लिया। फलतः इटली सच्चे अर्थ में त्रिराष्ट्र सन्धि (Triple Alliance) का सदस्य नहीं रहा। १९१४ में महायुद्ध छिड़ने पर भी उसने त्रिराष्ट्र गुट के मित्र जर्मनी तथा आस्ट्रिया का साथ नहीं दिया। जब जर्मनी तथा आस्ट्रिया ने उसको मित्रराष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध छेड़ने के लिये कहा तो उसने निम्न माँगें अपने मित्रों के सम्मुख रक्खीं और कहा कि इन माँगों के स्वीकृत होने पर ही इटली अपने त्रिगुट के मित्रों की सहायता करेगा। इटली की प्रमुख माँगें निम्न प्रकार थीं —

(१) आस्ट्रिया अल्बानिया में कोई हस्तक्षेप न करे। ट्रेण्टिनो का प्रदेश इटली को दे दिया जाय।

(२) इटली को टाइरोल, ट्रीस्टे तथा ग्रेडिसका के प्रदेश भी दे दिये जायें।

आस्ट्रिया ने इटली की इन शर्तों को अस्वीकार कर दिया। उधर मित्रराष्ट्रों ने भी इटली को अपनी ओर मिलाने की चेष्टा की। अन्त में १९१५ में इंगलैंड, रूस तथा फ्रांस ने इटली के साथ लन्दन की सन्धि कर ली। इस सन्धि की प्रमुख शर्तें निम्न प्रकार थीं —

(१) इटली महायुद्ध में मित्र राष्ट्रों का साथ देगा।

(२) मित्र राष्ट्र दक्षिणी टाइरोल, ट्रेनटिनो, ट्रीस्ट, ग्रेडिसका, उत्तरी डालमेशिया तथा इस्ट्रीया पर इटली का अधिकार करा देंगे।

(३) मित्रराष्ट्रों ने सुमालीलेंड, लिबिया तथा इरिट्रिया में इटली को अपना विस्तार करने का अधिकार दे दिया।

(४) युद्ध समाप्त होने पर पराजित राष्ट्रों से जो क्षति-पूर्ति ली जायगी उसमें से इटली को भी हिस्सा दिया जायगा।

(५) युद्धोपरान्त अपना विकास करने के लिये इंगलैंड इटली को आवश्यकतानुसार ऋण देगा।

इस सन्धि के होने के पश्चात् इटली ने पहले आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। कालान्तर में उसने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस प्रकार इटली त्रिराष्ट्र सन्धि से निकल कर मित्र राष्ट्रों के साथ मिल गया।

इस प्रकार सन्धियों तथा प्रतिसन्धियों के कारण समस्त यूरोप दो सैनिक शिविरों में बंट गया—त्रिराष्ट्र सन्धि (Triple Alliance) तथा हार्दिक मैत्री-सम्बन्ध

(Triple Entente) दोनों ही सन्धियाँ सुरक्षात्मक थीं। परन्तु इनका प्रभाव आक्रमक सिद्ध हुआ। वास्तव में बात यह थी कि दोनों दलों में अपनी शक्ति की वृद्धि करने की प्रतियोगिता हो गई। कालान्तर की घटनाओं से यह स्पष्ट हो गया कि त्रिराष्ट्र सन्धि (Triple Alliance) की अपेक्षा हार्दिक मैत्री सम्बन्ध (Triple Entente) अधिक शक्तिशाली है। वास्तव में बात यह थी कि हार्दिक मैत्री सम्बन्ध (Triple Entente) के सदस्यों में आपस में मेल था। वे अपनी समस्याओं को पारस्परिक वार्ता द्वारा सुलझा लेते थे। उदाहरण के लिये मोरक्को संकट के समय इंगलैंड ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ फ्रांस की सहायता की। इसी प्रकार जब जर्मनी ने फ्रांस के सम्मुख यह प्रस्ताव रक्खा कि हम मोरक्को पर तुम्हारा अधिकार स्वीकार करने को तैयार हैं बशर्ते कि तुम हमारी बर्लिन-बगदाद-योजना को स्वीकार कर लो तो फ्रांस ने इस योजना को अस्वीकृत कर दिया; क्योकि यह अंग्रेजी हितों के विरोध में थी। परन्तु त्रिराष्ट्र सन्धि (Triple Alliance) के सदस्यों में इस प्रकार का मतैक्य नहीं था। उदाहरण के लिए एड्रियाटिक सागर पर आस्ट्रिया तथा इटली दोनों ही अपना-अपना प्रभाव स्थापित करना चाहते थे। आस्ट्रिया ने इटली के एक भाग पर जो परतन्त्र इटली (Italian Irrendenta) कहलाता था अधिकार कर रक्खा था। वह इस प्रदेश को इटली के बार-बार कहने पर भी स्वतन्त्र नहीं कर रहा था। प्रत्येक प्रश्न पर जर्मनी आस्ट्रिया की सहायता करता था। इसलिए इटली अपने दोनों मित्रों से नाराज था। अन्त में प्रथम युद्ध छिड़ने पर उसने १९१५ में मित्र राष्ट्र से लन्दन की सन्धि कर ली और जर्मनी तथा आस्ट्रिया का साथ छोड़ कर उन्हीं के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

यूरोप के इन परस्पर-विरोधी राष्ट्रों की कटुता बराबर बढ़ती चली गई। जर्मनी यह सोचता था कि मित्र राष्ट्र हमको निम्न प्रश्नों के आधार पर अपमानित करना चाहते हैं —

(१) बर्लिन बगदाद रेलवे।

(२) मोरक्को का प्रश्न।

(३) नौ-सेना का विस्तार।

(४) अल्सेस तथा लोरेन के प्रदेश।

विलियम द्वितीय ने घोषित किया कि मित्र राष्ट्र प्रतिसन्धियों द्वारा जर्मनी का घेरा डाल रहे हैं। इसलिये विलियम द्वितीय का उद्देश्य भी नौ-सेना का विस्तार करके विश्व-शक्ति प्राप्त करना हो गया। नौ-सेना के विस्तार तथा सगठन का कार्य टिपिज नामक एक सुयोग्य अधिकारी को दिया। देश में एक नैवीलीग की स्थापना की गई। इसका प्रमुख कार्य जनता को नौ-सेना की आवश्यकता को समझाना था। एक निश्चित कार्य-क्रम के अनुसार १२ बड़े जंगी जहाज, समुद्र-तट की सुरक्षा के लिए ८ बड़े जहाज, १० बड़े तथा ८ छोटे क्रूजर जहाज बनाने की योजना बनाई गई। २३ सितम्बर १८९८ को डेन्जिग में एक सभा में भाषण देते हुये विलियम

द्वितीय ने कहा—'हमारा भविष्य समुद्र पर निर्भर है।'[1] अपने एक भाषण में उसने कहा था—'हमको अधिक से अधिक नौ-सेना, स्थल-सेना तथा सूखे पाउडर की आवश्यकता है।'[2] अपने एक भाषण में उसने मित्र राष्ट्रों को धमकी देते हुए कहा—'यदि वे युद्ध चाहते हैं, तो वे युद्ध प्रारम्भ कर सकते हैं। हम युद्ध से डरते नहीं हैं।'[3] विलियम द्वितीय के इन उत्तेजनात्मक भाषणों से यूरोप का रहा-सहा वातावरण भी बहुत खराब हो गया और युद्ध अवश्यम्भावी दिखाई देने लगा। इसलिए एक इतिहासकार ने उचित ही कहा है, '१६०५ में त्रिराष्ट्र सन्धि (Triple Alliance) तथा हार्दिक मैत्री सम्बन्ध (Triple Entente) एक दूसरे के बराबर थे; परन्तु १६१५ में वे एक दूसरे के आमने-सामने आ गये।'[4]

इस प्रकार इस गुटबन्दी द्वारा समस्त यूरोप दो गुटों में बंट गया। दोनों गुटों में अस्त्र-शस्त्र बढ़ाने के लिए भयंकर प्रतिस्पर्द्धा चल रही थी। अतः दोनों में युद्ध अवश्यम्भावी था। कुछ दिन तक दोनों दलों में शक्ति-संतुलन बना रहा; परन्तु इटली की निर्बल नीति के कारण यह शक्ति-संतुलन बिगड़ गया और त्रिराष्ट्र सन्धि (Triple Alliance) के सदस्यों का पक्ष निर्बल दिखाई देने लगा। इस प्रकार यूरोप में सन्धि-प्रतिसन्धियों का वातावरण उत्पन्न हो जाना प्रथम महायुद्ध की पृष्ठ-भूमि थी। इसलिए एक विद्वान् ने ठीक कहा है कि प्रथम महायुद्ध का प्रमुख कारण १८७० से १६१४ तक की राजनीति तथा कूटनीति में निहित है।

प्रश्न (बी० ए०)

१ त्रिराष्ट्र सन्धि क्या थी ? उसका जन्म कैसे हुआ और यूरोप की राजनीति पर उसका क्या प्रभाव पड़ा ?

२ सन् १६१४ के विश्व-युद्ध के प्रारम्भ में यूरोप की शक्तियों के कूटनीतिक सम्बन्धों का वर्णन करिए।

३ सन् १८७६ के उपरान्त प्रथम महायुद्ध के पीछे रहने वाले कूटनीतिक कारणों का वर्णन कीजिए।

४ जिन परिस्थितिवश रूस तथा फ्राँस में द्विवर्गी सन्धि (Dual Alliance) हुई, उनका वर्णन कीजिए तथा इस सन्धि के परिणामों का उल्लेख कीजिए।

५ सन् १६०७ में ब्रिटेन तथा रूस में मित्रता होने के क्या कारण थे ?

६ १६वीं शताब्दी में अंग्रेजी फ्रेंच शत्रुता के कारण बताइये। किस प्रकार अन्त में दोनों में मित्रता के सम्बन्ध स्थापित हुए।

---

1. 'Our future lies on sea.'
2. 'More navy, more army and more dry powder.'
3. 'If they want war, they can begin it. We are not afraid of it.'
4. 'In 1905 the Triple Alliance and the Triple Entente stood side by side. In 1914 they stood face to face.'

७ १६वीं शताब्दी के द्वितीयार्द्ध में ऐंग्लो फ्रेंच प्रतिद्वन्द्वता के क्या कारण थे ? सन् १६०४ के सौहार्द मित्र भाव (Entente Cordiale) की स्थापना किस प्रकार हुई ?

Questions (M. A.)

1 'The Dual Alliance of 1879 was a fatal error for Germany.' Do you agree with this view ? Give reasons for your answer.

2 'The Anglo-French Entente of 1904 is the most important event of modern diplomacy.' (H. Rose) Discuss.

3 Describe briefly the course of events which led to the signing of the Anglo-Russian Convention of 1907. How did it remove the friction between the two countries ?
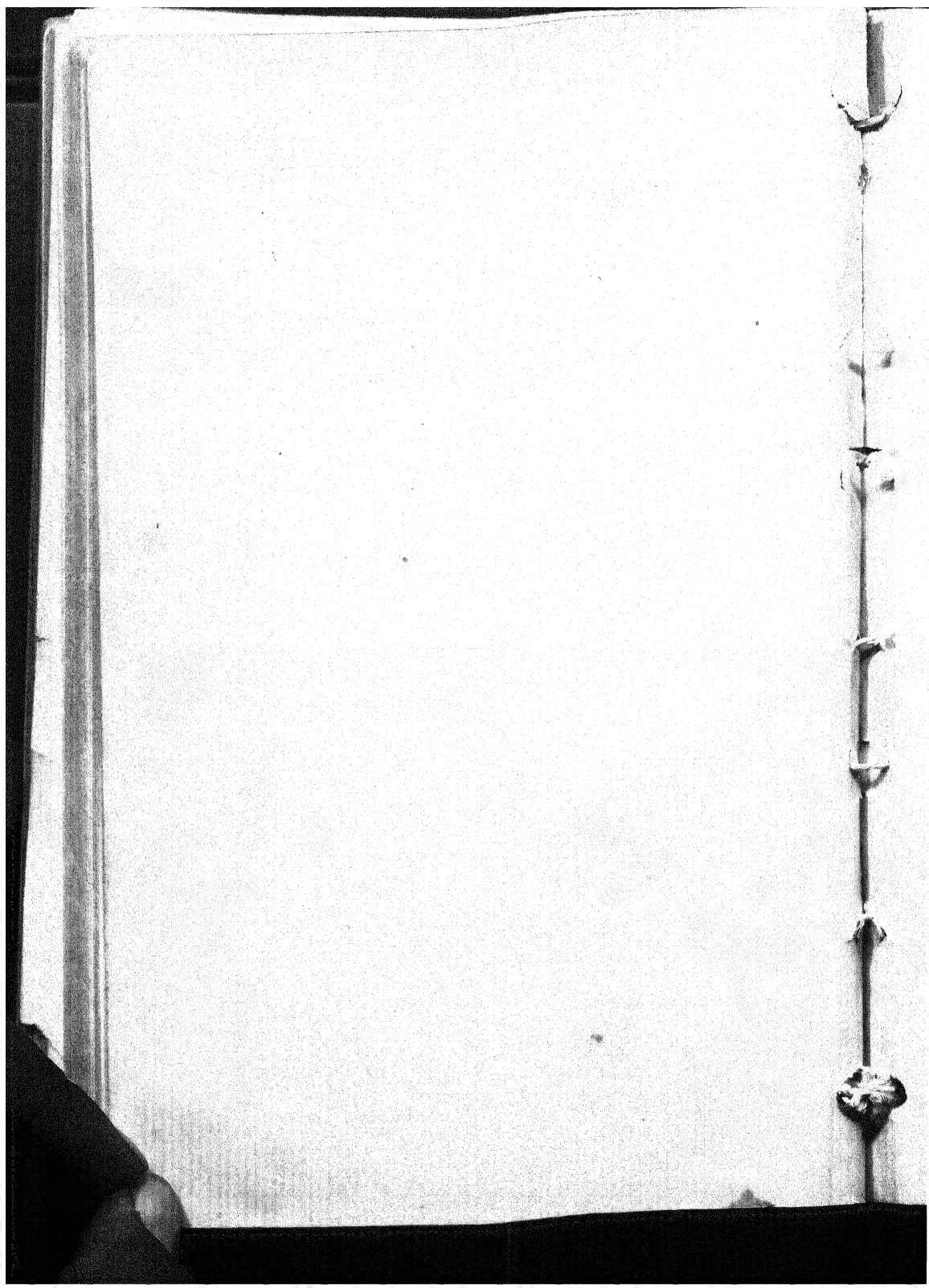
योरप का इतिहास
(१६१४-१६३६)

खराड ५

दो महायुद्धों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

१
प्रथम महायुद्ध (१९१४–'१८) के कारण और परिणाम

महायुद्ध के कारण—गुटबन्दी, उग्र राष्ट्रीयता, उग्र सैनिकवाद, गुप्त कूटनीति, उपनिवेशवाद, जर्मनी का पूर्व की ओर विस्तार, आर्थिक कारण, प्रशा का उग्र दर्शन, विलियम द्वितीय का चरित्र, समाचार पत्रों का प्रचार, अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का अभाव, अल्सेस और लोरेन की समस्या, बोस्निआ और हर्जेगोविना की समस्या, परतन्त्र इटली; सराजेवो का हत्या-काण्ड, युद्ध के परिणाम।

१९१४ की घटना यूरोप के लिए कोई आकस्मिक बात नहीं थी। इसकी पृष्ठ-भूमि पर्याप्त समय से तैयार हो रही थी। सन्धि-प्रतिसन्धियों के कारण यूरोप दो सशस्त्र गुटों में विभाजित हो गया था। उस समय यूरोप की स्थिति बारूद के ढेर के समान थी। तनिक सी चिंगारी से भारी विस्फोट सम्भव था। प्रत्येक राष्ट्र अपनी सैनिक तैयारियों में लगा हुआ था। इसका कारण महत्वाकांक्षा के साथ-साथ भय भी था। उस समय प्रत्येक शासक को भय था। सम्भवत: उनमें से कोई भी विश्व के नष्ट करने के लिए नहीं तुला हुआ था। लायड जार्ज के शब्दों में वे लड़खड़ाते हुए तथा ठोकर खाते हुए युद्ध की ज्वाला में जा गिरे। परन्तु फिर भी यह मानना पड़ेगा कि वे भावी खतरे के प्रति भी अन्धे बने रहे। उन्होंने यह नहीं सोचा कि विचार-विमर्श से भी भावी संकट का समाधान किया सकता है। पारस्परिक तना-तनी के कारण पर्याप्त समय से युद्ध अनिवार्य दिखाई देने लगा था। सुप्रसिद्ध कूटनीतिज्ञ बिस्मार्क ने १८९१ में एक राजनीतिज्ञ से कहा था—'मैं विश्व युद्ध को नहीं देखूँगा; परन्तु तुम देखोगे और उसका प्रारम्भ पूर्व से होगा।' वास्तव में उसकी भविष्यवाणी सत्य निकली और १९१४ में यूरोप में विश्व युद्ध की ज्वाला फैल गई।

प्रथम महायुद्ध के कारण—प्रथम महायुद्ध के संक्षेप में निम्नलिखित कारण बतलाए जा सकते हैं—

(१) **गुटबन्दी**—प्रथम महायुद्ध के प्रधान कारण यूरोप के राष्ट्रों की पारस्परिक गुटबन्दी थी। यूरोप के राष्ट्र महत्वाकांक्षा तथा भय के कारण एक दूसरे से सन्धि-प्रतिसन्धि करते रहे। इसके परिणामस्वरूप यूरोप दो सशस्त्र सैनिक कैम्पों में बँट गया तथा युद्ध अनिवार्य हो गया। सर्वप्रथम १८७९ में जर्मनी ने आस्ट्रिया

से द्विराष्ट्र सन्धि (Dual Alliance) कर ली। १८८२ में इटली भी इस गुट में सम्मिलित हो गया। इस प्रकार द्विराष्ट्र सन्धि त्रिराष्ट्र सन्धि में परिवर्तित हो गई। १८७० में बिस्मार्क ने फ्राँस को पराजित किया था। इसके पश्चात् वह बराबर यह प्रयत्न करता रहा कि फ्रांस यूरोप में अकेला रहे। जब तक बिस्मार्क के हाथ में सत्ता रही वह अपने इस उद्देश्य में सफल रहा; परन्तु १८९० में उसका पतन हो गया और १८९४ में फ्राँस तथा रूस में सन्धि हो गई। इंगलैंड पर्याप्त समय से पृथक्त्व की नीति का पालन कर रहा था। परन्तु इन सन्धि-प्रतिसन्धियों तथा तत्कालीन राजनीति को देखकर उसने भी अपनी पृथक्त्व की नीति को छोड़ना उचित समझा और १९०२ में उसने जापान से सन्धि कर ली। इसके पश्चात् १९०४ में उसने फ्रांस से तथा १९०७ में रूस से सन्धि कर ली। इन सन्धि-प्रति-सन्धियों के कारण समस्त यूरोप दो सशस्त्र सैनिक खेमों में विभाजित हो गया। प्रथम गुट के अन्तर्गत जर्मनी, आस्ट्रिया तथा इटली थे। इसके विरोध में द्वितीय गुट में इंगलैंड, फ्रांस तथा रूस थे। इस प्रकार यूरोप के दो सशस्त्र सैनिक कैम्पों में बट जाने के कारण एक न एक दिन इन दोनों में युद्ध होना अवश्यम्भावी था।

(२) **उग्र राष्ट्रीयता की भावना**—प्रथम महायुद्ध का बहुत कुछ उत्तरदायित्व उग्र राष्ट्रीयता की भावना पर भी है। इस समय यूरोप के अनेक देशों में राष्ट्रीयता की भावना जोर पकड़ रही थी। जर्मनी में इस भावना का सबसे अधिक प्रचार था। यह उग्र राष्ट्रीयता की भावना अन्तर्राष्ट्रीयता के लिए खतरा थी। इसी भावना के कारण फ्रांस जर्मनी से अल्सेस तथा लोरेन के प्रदेश प्राप्त करने का प्रयास कर रहा था। राष्ट्रीयता के उदय के कारण ही बाल्कन प्रदेश अशान्ति का केन्द्र हो गया था। राष्ट्रीयता की भावना के कारण ही आस्ट्रिया तथा सर्विया में उत्तरोत्तर शत्रुता बढ़ रही थी। उग्र राष्ट्रीयता की भावना के कारण ही जर्मनी तथा इंगलैंड के सम्बन्ध बिगड़ रहे थे।

(३) **उग्र सैनिकवाद की भावना का उदय**—१९वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में यूरोप में उग्र सैनिकवाद की भावना का उदय हुआ। प्रत्येक देश में सेना तथा शस्त्रों की वृद्धि करने की दौड़ लग गई। दोनों गुट बराबर अपनी सेना, नौ-सेना तथा शस्त्रों की वृद्धि कर रहे थे। जर्मनी अपनी नौ-सेना का तेजी के साथ विस्तार कर रहा था। जर्मन सम्राट विलियम द्वितीय ने घोषित किया था कि हमारा भविष्य समुद्र पर निर्भर है। इस प्रकार जर्मनी का अपनी नौ-सेना का विस्तार करना इंगलैंड को युद्ध की चुनौती देना था। फलतः इंगलैंड ने भी अपनी नौ सेना का विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया। उसने घोषित किया कि वह जर्मनी से दुगुनी संख्या में अपनी नौ सेना का विस्तार करेगा। इस समय प्रत्येक देश में सैनिक पदाधिकारियों का बहुत अधिक प्रभाव हो गया। विलियम द्वितीय के उग्र सैनिकवादी भाषणों ने स्थिति को बहुत गम्भीर बना दिया। इस प्रकार उग्र सैनिकवाद की भावना यूरोप को युद्ध के क्षेत्र में खींच कर ले गई।

(४) **गुप्त कूटनीति**—इस समय यूरोप की कूटनीति में अराजकता फैली हुई थी। उसका आधार झूठ, धोखा तथा बेईमानी हो गया था। कूटनीतिज्ञों की वार्ताओं का जनता को कोई पता नहीं चलता था। इटली ने जर्मनी तथा आस्ट्रिया के साथ त्रिराष्ट्रीय सन्धि कर रक्खी थी; परन्तु वह गुप्त रूप से इंगलैंड तथा फ्राँस आदि देशों से मित्रता करने की वार्ता कर रहा था। इंगलैंड तथा फ्राँस १९०६ से ही सैनिक बात-चीत कर रहे थे। परन्तु जनता को १९१४ से पहले इसका कोई पता न था। इस प्रकार धोखे तथा झूठ पर आधारित गुप्त कूटनीति बहुत कुछ अंशों तक युद्ध के लिए उत्तरदायी थी।

(५) **उपनिवेश स्थापना**—औद्योगिक क्रान्ति होने के कारण प्रत्येक राष्ट्र को कच्चा माल प्राप्त करने तथा कल-कारखानों में बना सामान बेचने के लिये बाजारों की आवश्यकता थी। निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या के बसाने के लिये भी नये देशों की आवश्यकता थी। अतः इस समय यूरोप का प्रत्येक राष्ट्र अफ्रीका, एशिया तथा बाल्कन प्रायःद्वीप में अपना अधिकार स्थापित करने की चेष्टा कर रहा था। बिस्मार्क एक महान् कूटनीतिज्ञ था। वह जर्मनी की उन्नति के लिये कुछ समय तक शान्ति चाहता था। वह अंग्रेजों को नाराज करना नहीं चाहता था। इसी से उसने अपने कार्यकाल में अपनी नौ-सेना का विस्तार नहीं किया था तथा उपनिवेश-स्थापना की चेष्टा न की थी। परन्तु विलियम द्वितीय को इस बात की कोई परवाह नहीं थी। वह उपनिवेश-स्थापना को आवश्यक समझता था। अतः अंग्रेजों से उसका संघर्ष होना स्वाभाविक था।

(६) **जर्मनी का पूर्व की ओर विस्तार**—१९वीं शताब्दी के अन्त में जर्मनी का उद्देश्य पूर्व की ओर विस्तार करना हो गया था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए जर्मन सम्राट् टर्की के सुल्तान से मित्रता कर बर्लिन-बगदाद रेलवे बनाना चाह रहा था। जर्मनी का पूर्व की ओर विस्तार इंगलैंड के विरोध में था। फलतः इस प्रश्न पर दोनों में विरोध होना स्वाभाविक था।

(७) **आर्थिक कारण**—जर्मनी का तीव्र गति से औद्योगिक तथा व्यावसायिक विकास हो रहा था। इससे अन्य देशों के साथ जर्मनी की प्रतियोगिता चल रही थी। इंगलैंड तथा फ्रांस के पास अच्छे उपनिवेश थे। जर्मनी इन प्रदेशों पर अधिकार करना चाहता था। फलतः उसका इंगलैंड तथा फ्राँस से विरोध होना स्वाभाविक था।

(८) **प्रशा का उग्र दर्शन**—प्रशा में अनेक दार्शनिक अपने उग्र दर्शन का प्रचार कर रहे थे। इसके आधार पर जर्मनी में उग्र सैनिकवाद तथा अंध राष्ट्र-भक्ति को प्रोत्साहन मिल रहा था। डार्विन के सिद्धान्त का भी बहुत प्रचार हो रहा था। इस सिद्धान्त के अनुसार जीवन को संघर्षमय तथा युद्ध को प्राकृतिक माना गया है। इस सिद्धान्त के समर्थकों का विश्वास था कि सैनिक दृष्टि से जो राष्ट्र शक्तिशाली है एकमात्र उसी को जीवित रहने तथा उन्नति करने का अधिकार है। प्रशा के इस उग्र दर्शन ने बहुत उत्तेजना उत्पन्न कर दी।

(९) **विलियम द्वितीय का चरित्र**—विलियम द्वितीय सैनिक शक्ति को बहुत अधिक महत्व देता था। सिंहासन-पर बैठने के पश्चात् उसने अपना पहला भाषण सेना के सामने ही दिया था। वह बराबर अपनी सेना का विस्तार करता रहा। इसके परिणामस्वरूप युद्ध के समय उसके पास लगभग १७ लाख सैनिक हो गये थे। नौ-सेना के सम्मुख उसने भाषण देते हुए कहा था—'हमारा भविष्य समुद्र पर निर्भर है। मैं उस समय तक चैन नहीं लूंगा जब तक कि मेरी जल-सेना स्थल-सेना के समान शक्तिशाली नहीं हो जाती।' उसने युद्ध-पोत तथा सैनिक बन्दरगाहों के निर्माण की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया था। उसने नैवी लीग की भी स्थापना की। इससे इंगलैंड से उसका विरोध स्वाभाविक हो गया, क्योंकि इंगलैंड का यह उद्देश्य था कि उसकी जल-सेना यूरोप के दो देशों के समान हो। अपने शब्दों में उसने अपना उद्देश्य इस प्रकार व्यक्त किया था—'मेरा उद्देश्य विश्व शक्ति प्राप्त करना अथवा पतन के लिए तैयार रहना है।' अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने उचित अथवा अनुचित की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। विलियम द्वितीय में परिस्थिति तथा मनुष्य की परख की योग्यता न थी। इंगलैंड ने उसके सम्मुख मित्रता का प्रस्ताव रक्खा था। परन्तु उसने अहंकारवश उसको ठुकरा दिया। यह उसके लिये विनाशकारी सिद्ध हुआ। इस प्रकार अपने उग्र तथा साम्राज्यवादी चरित्र द्वारा विलियम द्वितीय ने यूरोप को युद्ध तक पहुंचाने में बहुत योग दिया।

(१०) **समाचार-पत्रों तथा वक्ताओं का प्रचार**—इस समय यूरोप में अनेक समाचार-पत्र प्रकाशित हो रहे थे। ये अपनी संस्कृति को श्रेष्ठ तथा अन्य देशों की संस्कृति को हीन सिद्ध करने का प्रचार कर रहे थे। इस प्रकार समाचार-पत्र अंध देश-भक्ति का प्रचार कर रहे थे। वे अन्य राष्ट्रों पर अधिकार करने का प्रचार कर रहे थे। यदि पत्रकार अंध देश-भक्ति का प्रचार न करते तो परिस्थिति को संभाला जा सकता था। इस सम्बन्ध में एक बार बिस्मार्क ने कहा था—'प्रत्येक देश किसी न किसी समय अपने प्रेस के कारण ही विपत्ति में फंसता है।' इसी प्रकार वक्तागण भी अंध देश-भक्ति का प्रचार कर रहे थे। इस प्रचार के परिणामस्वरूप प्रत्येक राष्ट्र अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए नर-संहार करने के लिये तैयार हो गया था। इस समय शान्ति के प्रयास देशद्रोह समझे जाने लगे थे।

(११) **अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का अभाव**—इस समय यूरोप में कोई ऐसी संस्था नहीं थी जो देशों के आपस के झगड़ों का समाधान कर महायुद्ध को रोकने का प्रयास करती। हेग सम्मेलनों ने इस ओर प्रशंसनीय कदम उठाया। उन्होंने युद्धों के रोकने के लिए अनेक अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का निर्माण किया। परन्तु उसके पास इन नियमों को पालन कराने के साधन नहीं थे। फलतः हेग सम्मेलन भी अपने इन शान्तिमय उपायों में असफल रहे। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय सस्था के अभाव में यूरोप के राष्ट्रों की तनातनी बढ़ती चली गई।

(१२) **अल्सेस तथा लोरेन की समस्या**—अल्सेस तथा लोरेन के प्रदेशों के सम्बन्ध में फ्रांस तथा जर्मनी की दीर्घकालीन शत्रुता थी। १८७० में जर्मनी ने फ्रांस

को पराजित किया था और फ्रेंकफर्ट की सन्धि के अनुसार जर्मनी ने फ्रांस के अल्सेस तथा लोरेन नामक प्रदेशों पर अधिकार कर लिया था। ये स्थान बहुत महत्वपूर्ण थे। इनमें लोरेन अपनी लोहे की खानों के लिए प्रसिद्ध था। फ्राँसीसी जर्मनी की औद्योगिक उन्नति का कारण इन प्रदेशों को समझते थे। ऐतिहासिक दृष्टि से भी फ्राँस के लिये इन प्रदेशों का महत्व बहुत अधिक था। यह प्रदेश लुई चौदहवें की विजय-श्री के प्रतीक थे। इन सब कारणों से फ्रांस इन प्रदेशों को जर्मनी से वापस लेना चाहता था। फलतः इन प्रदेशों के कारण फ्राँस तथा जर्मनी के सम्बन्ध बहुत कटु हो गये थे।

(१३) **बोस्निया तथा हर्जेगोविना की समस्या**—अल्सेस तथा लोरेन की समस्या की भाँति बाल्कन प्रदेश में बोस्निया तथा हर्जेगोविना की समस्या बहुत जटिल थी। बर्लिन सन्धि के अन्तर्गत आस्ट्रिया को इन दोनों प्रदेशों पर शासन करने का अधिकार दिया गया था। वह इन प्रदेशों को अपने राज्य में नहीं मिला सकता था। परन्तु १९०८ में आस्ट्रिया ने बर्लिन सन्धि को भंग कर इन दोनों प्रदेशों को अपने राज्य में मिला लिया। सर्विया को इससे बहुत दुःख हुआ, क्योंकि ये दोनों प्रदेश स्लाव थे। दूसरे इन दोनों प्रदेशों पर आस्ट्रिया का अधिकार हो जाने से सर्विया एड्रियाटिक सागर तक अपना विस्तार नहीं कर सकता था। इससे आस्ट्रिया तथा सर्विया में घोर शत्रुता हो गई। इस प्रकार १९०८ की यह घटना १९१४ के महायुद्ध का प्रमुख कारण बनी।

(१४) **परतन्त्र इटली** (Italian Irrendenta) **की समस्या**—परतन्त्र इटली के प्रश्न पर इटली तथा आस्ट्रिया की शत्रुता भी प्रथम महायुद्ध का महत्वपूर्ण कारण बनी। एड्रियाटिक सागर के उत्तर में इटली का एक प्रदेश था; परन्तु इस पर आस्ट्रिया ने अधिकार कर रक्खा था। इटली बार-बार इस प्रदेश को स्वतन्त्र करने के लिए आस्ट्रिया पर जोर डाल रहा था। परन्तु आस्ट्रिया इस प्रदेश को छोड़ने के लिए तैयार न था। परतन्त्र इटली के प्रश्न पर जर्मनी भी आस्ट्रिया की ही सहायता करता था। इससे इटली में बहुत असंतोष था। इससे इटली यह समझ गया था कि त्रिराष्ट्र सन्धि में रहते हुए भी जर्मनी तथा इटली को उसके हितों की परवाह नहीं है। फलतः इटली ने त्रिराष्ट्र सन्धि से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर मित्र राष्ट्रों से अपना गठबन्धन कर लिया। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय संतुलन बिगड़ गया तथा युद्ध अनिवार्य हो गया। तात्कालिक कारण

(१५) **सराजेवो का हत्या-काण्ड**—सराजेवो का हत्या-काण्ड प्रथम महायुद्ध का तात्कालिक कारण सिद्ध हुआ। महायुद्ध के विभिन्न कारणों के रूप में बारूद का जो विशाल ढेर यूरोप में इकट्ठा हो गया था, उसमें विस्फोट करने के लिए सराजेवो का हत्याकाण्ड एक चिंगारी के रूप में प्रकट हुआ। २८ जून, १९१४ को बोस्निया की राजधानी सराजेवो में आस्ट्रिया के राजकुमार आर्क ड्यूक फर्डिनैण्ड तथा उसकी पत्नी की आस्ट्रियाई सर्वों ने हत्या कर दी। इस घटना से यूरोप में प्रथम महायुद्ध

प्रारम्भ हो गया। अस्ट्रिया तथा सर्विया की शत्रुता का हम पीछे संकेत कर चुके हैं। इस हत्या-काण्ड के पश्चात् आस्ट्रिया ने सर्विया को एक कठोर शर्तों वाला अल्टीमेटम दिया और ४८ घण्टे के अन्दर-अन्दर उसका उत्तर माँगा। सर्विया ने अधिकांश शर्तों को स्वीकार कर लिया। इस सम्बन्ध में जर्मनी की सहानुभूति आस्ट्रिया के साथ तथा रूस की सहानुभूति सर्विया के साथ थी।

प्रथम महायुद्ध का श्रीगणेश—सर्विया ने आस्ट्रिया की समस्त शर्तों को स्वीकार नहीं किया था। इससे आस्ट्रिया को बहुत असंतोष हुआ। उसने २८ जुलाई, १९१४ को सर्विया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। रूस ने सर्विया का पक्ष लिया। उसने समस्या के समाधान का भी प्रयास किया; परन्तु आस्ट्रिया इसके लिए तैयार नहीं हुआ। अतः रूस ने सर्विया का पक्ष लेकर आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। एक अगस्त को जर्मनी ने रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। फ्रांस रूस का मित्र था। अतः उसने आस्ट्रिया तथा जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस प्रकार यूरोप में प्रथम महायुद्ध का श्री गणेश हो गया।

प्रथम महायुद्ध के परिणाम—१९१४ का प्रथम महायुद्ध इतिहास की एक भयंकर घटना थी। यह पूर्व के सब युद्धों से अधिक भयंकर एवं विनाशकारी युद्ध था। इसमें ३६ राष्ट्रों ने भाग लिया था। इस युद्ध में दोनों पक्षों की ओर से ६½ करोड़ सैनिकों ने भाग लिया। युद्ध में भाग लेने वाले सैनिकों में से १ करोड़ ३० लाख सैनिक मारे गए। २ करोड़ २० लाख सैनिक घायल हुए। घायलों में ७० लाख व्यक्ति बिल्कुल पंगु हो गए। इसके अतिरिक्त हत्याकाण्डों, भुखमरी एवं महामारी में भी अनेक व्यक्ति मारे गए।

युद्ध के संचालन में असंख्य रुपया व्यय हुआ। दोनों पक्षों ने युद्ध के संचालन में एक खरब ८६ अरब डालर व्यय किए। लगभग एक खरब डालर की सम्पत्ति इस युद्ध में नष्ट हुई।

(१) **सामाजिक परिणाम**—यह युद्ध इतिहास में अपूर्व एवं बहुत भयंकर था। यह पृथ्वी पर, पृथ्वी के नीचे तथा आकाश आदि सभी जगहों में लड़ा गया। सभी वैज्ञानिक आविष्कारों का इसमें प्रयोग हुआ। मनुष्य ने मनुष्य का दिल खोलकर रक्तपात किया। निरीह स्त्री, पुरुष एवं बच्चों तक की भी हत्याएं की गईं। लाखों व्यक्ति अपंग हो गए। न जाने कितनी माताओं की गोद खाली हो गईं तथा ललनाओं की मांग के सिंदूर धुल गए। लाखों होनहार नवयुवक काल के गाल में समा गए। इस प्रकार युद्ध के दौरान में सामाजिक क्षेत्र में उथल-पुथल मच गई।

युद्ध-काल में स्त्रियों ने भी पुरुषों के कन्धे से कंधा मिलाकर कार्य किया। कारखानों में कठोर कार्य किए। युद्ध-क्षेत्र में घायलों का उपचार किया। इससे उन्होंने पुरुषों की सहानुभूति प्राप्त कर ली। फलतः स्त्रियों का महत्व भी पुरुषों के समान हो गया। स्त्रियों को राजनीतिक अधिकार भी प्रदान किए जाने लगे। इसी के परिणामस्वरूप १९१८ में इंगलेंड में जनता का प्रतिनिधित्व नियम (Represen.-

tation of the People Act) पास हुआ। इसके अनुसार ३० वर्ष से ऊपर की अवस्था वाली महिलाओं को मताधिकार प्रदान कर दिया गया।

(२) **आर्थिक परिणाम**—युद्ध-काल में असंख्य धन-राशि की सम्पत्ति नष्ट हुई तथा असंख्य धन-राशि युद्ध के संचालन में व्यय हुई। सब मदों पर खर्च कम करके युद्ध पर धन व्यय किया गया। शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण कार्य पर भी खर्च कम कर दिया गया।

युद्ध-काल में अधिकांश देशों ने ऋण लिए; परन्तु युद्धोपरान्त इन ऋणों का चुकाना कठिन हो गया। अमेरिका इस समय सबसे बड़ा महाजन था। दूसरा महाजन ग्रेट ब्रिटेन था; परन्तु वह भी अमेरिका का कर्जदार था। इस प्रकार युद्ध के पश्चात् अमेरिका को छोड़कर शेष सब देश ऋणी हो गए। इंगलैंड एवं फ्रांस इन ऋणों को रद्द कराने के पक्ष में थे। उनका कहना था कि ये ऋण व्यापारिक नहीं अपितु राजनीतिक थे। वे जर्मनी को परास्त करने के लिये लिए गए थे। अमेरिका काफी समय बाद युद्ध में सम्मिलित हुआ था। उसे युद्ध में विशेष हानि भी नहीं उठानी पड़ी थी। अतः उसको ये ऋण वसूल नहीं करने चाहिएं। परन्तु अमेरिका इसे मानने के लिए तैयार न था। उसका कहना था जब मित्र राष्ट्र जर्मनी से अधिक से अधिक हर्जाना वसूल करना चाहते हैं तो उसका ऋण क्यों नहीं चुकाते? कुछ दिन तक इंगलैंड आदि ने ऋणों की किश्तों को चुकाया; परन्तु भीषण आर्थिक मन्दी के कारण फिनलैंड के अतिरिक्त कोई भी देश सम्पूर्ण युद्ध-ऋण अदा न कर सका।

(३) **समाजवाद की लहर**—महायुद्ध के उपरान्त विश्व में साम्यवाद की नई भावना का प्रादुर्भाव हुआ। इसके अनुसार उद्योग-धन्धों का राष्ट्रीयकरण करके उद्योग-धन्धों पर राज्य का एकाधिकार होना चाहिए। फलस्वरूप अनेक क्षेत्रों में राज्य का हस्तक्षेप पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ गया। कारखानों में कार्य करने वाले मजदूरों का महत्व बहुत बढ़ गया। मजदूरों के लिए सुविधाजनक निवास-स्थानों का निर्माण हुआ। उनके लिए चिकित्सा का प्रबन्ध किया गया। मजदूरों को मिल-मालिकों के विरुद्ध संगठन बनाने एवं हड़ताल करने का भी अधिकार प्रदान किया गया। रूस में बोल्शेविकों का शासन स्थापित हो गया।

(४) **राजनीतिक परिणाम**—इस युद्ध के परिणामस्वरूप जर्मनी, रूस, टर्की, आस्ट्रिया, हंगरी तथा बल्गेरिया आदि देशों में एकतन्त्र शासन की समाप्ति के पश्चात् गणतन्त्र की स्थापना हुई। एशिया के पिछड़े देशों में भी जागृति की लहर आई। परतन्त्र देशों ने स्वतन्त्र होने के लिए आन्दोलन करने आरम्भ कर दिये। राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार हुआ। राष्ट्रीयता के आधार पर कई नए राज्यों का निर्माण हुआ। जर्मनी एवं इटली की सरकारें जनता को सन्तुष्ट न कर सकीं। वहां बराबर बेकारी एव आर्थिक संकट की समस्यायें बनी रहीं। अतः जर्मनी में नाजीवाद तथा इटली में फासीवाद की भावनाओं का उदय हुआ। युद्ध के पश्चात् फ्रांस की सैनिक शक्ति में बहुत वृद्धि हुई। उसके व्यापार का बहुत विकास हो गया। इंगलैंड की शक्ति भी इस युद्ध के पश्चात् बहुत बढ़ गई। समस्त विश्व में उसकी

धाक जम गई। जिन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उसने युद्ध आरम्भ किया था, उनकी पूर्ति हो गई। बेल्जियम की रक्षा हो गई तथा उसका समुद्रतट सुरक्षित हो गया।

जर्मनी को अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति भंग करने का कठोर दण्ड मिला। उसको केवल एक लाख सेना रखने का अधिकार मिला। उसकी जल एवं हवाई सेना समाप्त कर दी गई। उसके उपनिवेश एवं प्रभाव-क्षेत्र उससे छीन लिए गये। उस पर भारी हर्जाना लाद दिया गया। इस प्रकार जर्मनी को आर्थिक एवं सैनिक दोनों दृष्टियों से निर्बल बना दिया गया।

युद्ध के दौरान में अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन ने शान्ति-स्थापना के हेतु १४ सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। विश्व में शान्ति स्थापित करने के लिये राष्ट्रसंघ की स्थापना की गई। इसने राजनीतिक क्षेत्र के अतिरिक्त सामाजिक क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण कार्य किये।

अमेरिका की सीनेट ने वार्साय सन्धि को अस्वीकृत कर दिया। फलतः अमेरिका राष्ट्रसंघ का सदस्य नहीं बना और यूरोपीय राजनीति से तटस्थ हो गया। हर्जाने की अदायगी के सम्बन्ध में इंगलैंड एवं फ्रांस के सम्बन्ध बहुत कटु हो गये।

(५) **प्रजातन्त्र की भावना का विकास**—प्रथम महायुद्ध के दौरान में इंगलैंड ने घोषित किया था कि यह युद्ध प्रजातन्त्र की रक्षा के लिए लड़ा जा रहा है। अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन ने भी अमेरिका का युद्ध में सम्मिलित होने का उद्देश्य जनतन्त्र की रक्षा बतलाया था।[1] वास्तव में इस युद्ध से राजतन्त्र को भारी आघात लगा तथा प्रजातन्त्र की भावना का विकास हुआ। टर्की, रूस तथा जर्मनी के प्राचीन राजवंशों का अन्त हो गया तथा उनके स्थानों पर जनतन्त्रात्मक शासन की स्थापना हुई। युद्धोपरान्त जर्मनी का सम्राट् विलियम द्वितीय सिंहासन का परित्याग कर नीदरलैंड भाग गया। महायुद्ध के दौरान में रूस में बोल्शेविक क्रान्ति हो गई और वहाँ के जार सम्राटों के शासन का अन्त हो गया। अटोमन साम्राज्य सिकुड़ कर बहुत छोटा हो गया तथा टर्की में मुस्तफा कमाल पाशा ने गणतन्त्रात्मक सरकार की स्थापना की। इस प्रकार प्रथम महायुद्ध में पश्चिम की जनतन्त्रात्मक सरकारों ने सफलता प्राप्त की और युद्धोपरान्त उपर्युक्त तीन राज्यों का पूर्वी तथा मध्य यूरोप से विलोप हो गया।[2] इनके अतिरिक्त आस्ट्रिया, जेकोस्लोवाकिया, पोलैण्ड, लिथुएनिया तथा लटाविया आदि देशों में भी जनतन्त्रात्मक सरकारों की स्थापना हुई। एशिया तथा अफ्रीका के पिछड़े देशों में भी जागृति की लहर आई तथा वहाँ के परतन्त्र देश स्वतन्त्र होने के लिए आन्दोलन करने लगे।

---

1. 'He (Wilson) recommendeed a declaration of war against the natural foe of the liberty to vindicate the principles of peace and justice in the life of the world as against and autocratic powers and to make the world safe for democracy.'

2. 'The war had been won by the democracies of the west. At the end of it the three great military monarchies of Eastern and Central Europe had disappeared.'

(६) **राष्ट्रीयता की भावना का विकास**—महायुद्ध के पश्चात् राष्ट्रीयता को विशेष महत्व दिया गया। पेरिस के शान्ति-सम्मेलन में अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन ने आत्म-निर्णय (Self-determination) के सिद्धान्त के आधार पर ही यूरोप की नवीन व्यवस्था करने का निर्णय किया। उसी सिद्धांत के आधार पर चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया, लिथुएनिया, एस्टोनिया, हंगरी, पोलैण्ड, फिनलैण्ड, तथा लटाविया नामक नए राज्यों का निर्माण हुआ; परन्तु फिर इससे राष्ट्रीयता की समस्या का हल नहीं हुआ। इसके दो कारण थे—(१) यूरोप के देशों में जातियाँ बहुत अधिक मिली-जुली हुई बसी हुई हैं। प्रत्येक जाति के लिये आत्मनिर्णय के के सिद्धांत के आधार पर नवीन राष्ट्र का निर्माण नहीं किया जा सकता। प्रत्येक दशा में अल्प-संख्यक जातियों को बहुसंख्यक जातियों के अधीन रहना पड़ेगा। (२) मित्रराष्ट्रों ने बहुत से स्थानों पर अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए इस सिद्धांत का उल्लंघन किया। राष्ट्रीयता की भावना के कारण ही प्रत्येक देश ने अपने लिए अधिकाधिक उपनिवेशों की स्थापना करनी प्रारम्भ कर दी।

(७) **अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास**—राष्ट्रीयता की भावना के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना को भी अत्यधिक महत्व दिया गया। अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान के लिये राष्ट्र संघ (League of Nations) की स्थापना की गई।

(८) **सांस्कृतिक प्रभाव**—सांस्कृतिक दृष्टि से भी यह युद्ध विनाशकारी सिद्ध हुआ। अनिवार्य सैनिक सेवा के कारण बहुत से नवयुवकों को कालिजों तथा विश्व-विद्यालयों को छोड़ना पड़ा। शिक्षा के व्यय में कमी की गई। बहुत से विद्वान् तथा वैज्ञानिक युद्ध में मारे गये। बहुत सी ऐतिहासिक इमारतें नष्ट हो गई। इस प्रकार महायुद्ध से सांस्कृतिक विकास को बहुत धक्का लगा।

(९) **वैज्ञानिक प्रगति**—इस युद्ध में अनेक भयंकर तथा नवीनतम आविष्कृत यन्त्रों का प्रयोग किया गया। टैंक, हवाई जहाज, पनडुब्बी तथा विषैली गैसों का इसमें प्रयोग किया गया। इनसे बचाव के लिए भी अविष्कार किये गये। प्रत्येक देश में नवीनतम आविष्कारों के करने के लिये होड़ लग गई।

इस प्रकार प्रथम महायुद्ध के कारण विश्व की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक अवस्था पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। इसमें विजेता तथा पराजित दोनों पक्षों को भारी हानि उठानी पड़ी। क्षति-पूर्ति से विजेताओं को संतोष नहीं हुआ। उधर पराजित पक्ष प्रतिशोध के युद्ध की तैयारी में लग गया।

Questions

1. Was the war of 1914 inevitable ?
2. Dicuss the causes of the First World War.
3. Describe the result of the First World War.

--o--

२

पेरिस का समझौता

शान्ति-सम्मेलन का प्रारम्भ, चार व्यक्तियों की परिषद्, विल्सन, लायड जार्ज, क्लीमेन्शू, आरलैण्डो, विल्सन के चौदह सिद्धान्त, पालन तथा उल्लंघन, वार्साय की सन्धि, सेण्ट जर्मेन की सन्धि, नयी की सन्धि, त्रिआनी की सन्धि, सेव्र की सन्धि, वार्साय सन्धि की आलोचना, अन्य सन्धियों का मूल्यांकन ।

चार-पाँच वर्ष के लम्बे संघर्ष के पश्चात् ११ नवम्बर, १९१८ को जर्मनी ने आत्म-समर्पण कर युद्ध-विराम सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिये। युद्ध के कारण यूरोप में अनेक सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक समस्यायें उत्पन्न हो गई थीं। यूरोप का मानचित्र परिवर्तित हो गया था। युद्ध से पीड़ित मानव के लिये शान्ति-स्थापना का कार्य परमावश्यक था। अतः शान्ति-स्थापना तथा पराजित राष्ट्रों के साथ सन्धि करने के लिए फ्रांस की राजधानी पेरिस में कूटनीतिज्ञों का एक शानदार विशाल सम्मेलन हुआ। प्रारम्भ में शान्ति-सम्मेलन का स्थान जेनेवा निश्चित करने के लिये विचार किया गया था, वास्तव में यह ठीक था, क्योंकि इस नगर को युद्ध-काल में कोई विशेष हानि नहीं हुई थी; परन्तु ऐसा नहीं हो सका। युद्ध में सबसे अधिक क्षति फ्रांस ने ही उठाई थी। अतः पेरिस को ही शान्ति-सम्मेलन का स्थान चुना गया। परन्तु इस कार्य के लिए पेरिस को चुनना गलत था। युद्ध-काल में इस नगर की भारी क्षति हुई थी। दो बार इस नगर का घेरा डाला गया था। इस नगर पर युद्ध-काल में बराबर बम-वर्षा की गई थी। पेरिस में युद्ध के ध्वंसावशेषों को देखकर मित्रराष्ट्रों के हृदय में प्रतिशोध की भावना जाग्रत होना स्वाभाविक था।

पेरिस के शान्ति-सम्मेलन का प्रारम्भ—१८ जनवरी, १९१९ को पेरिस में शान्ति-सम्मेलन का अधिवेशन हुआ। इस सम्मेलन में जर्मनी आदि पराजित राष्ट्रों को नहीं बुलाया गया था। इसके अतिरिक्त इस सम्मेलन में संसार के २७ देशों के ७० प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। प्रत्येक देश का प्रतिनिधि-मण्डल अपने साथ अनेक कूटनीतिज्ञ, सहायक, परामर्शदाता तथा टाइपिस्ट आदि लेकर आया था। राजनीतिज्ञों का इतना बड़ा अधिवेशन यूरोप में पहले कभी नहीं देखा गया था। फ्रांस के राष्ट्रपति ने इस खुले अधिवेशन का उद्घाटन किया। उसने अपने भाषण में न्याय, आत्म-निर्णय के सिद्धान्त तथा राष्ट्र-संघ की स्थापना पर जोर दिया। इसके बाद पांच और खुले अधिवेशन हुये। परन्तु उनका एकमात्र कार्य पूर्व निर्णयों को स्वीकार करना था। क्लीमेन्शो इस सम्मेलन का अध्यक्ष चुना गया।

दस की परिषद् (Council of Ten)—इतने विशाल सम्मेलन में खुले रूप में निर्णय करना असम्भव था। अतः दस की परिषद् का निर्माण किया गया। इसमें पांच बड़े राष्ट्रों के प्रधान मन्त्री तथा विदेश-मन्त्री भी चुने गए थे। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, इंगलैंड, फ्राँस, इटली तथा जापान की गणना पाँच बड़े राष्ट्रों में होती थी। इस परिषद् की बैठकें दिन में दो बार होती थीं। आवश्यकता पड़ने पर इसमें सलाहकारों तथा विशेषज्ञों को भी बुला लिया जाता था। परन्तु कालान्तर में यह दस की परिषद् भी बड़ी प्रतीत हुई और बातों को गुप्त रखना कठिन हो गया। फलतः चार व्यक्तियों की परिषद् का निर्माण किया गया।

चार व्यक्तियों की परिषद् (Council of Four)—चार व्यक्तियों की परिषद् का मार्च १९१९ में निर्माण किया गया। इसमें संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, इंगलैंड, फ्रांस तथा इटली के प्रतिनिधि थे। इसमें संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का प्रतिनिधि राष्ट्रपति विल्सन, इंगलैंड के प्रधान मन्त्री लायड जार्ज, फ्रांस के प्रधान मन्त्री क्लेमेन्शो तथा इटली के प्रधान मन्त्री ओरलैण्डो थे। ये चारों व्यक्ति इतिहास में 'चार बड़े' (Big Four) के नाम से प्रख्यात हैं। बाद में ओरलैण्डो फ्यूम के प्रश्न पर नाराज होकर सम्मेलन छोड़कर चला गया था। अतः सम्मेलन के शेष सभी महत्वपूर्ण निर्णय शेष तीन प्रतिनिधियों ने किये। संक्षेप में इनका निम्न प्रकार से परिचय दिया जा सकता है—

विल्सन (Wilson)—विल्सन अमेरिका का राष्ट्रपति था। वह सच्चे हृदय से स्थायी शान्ति स्थापित करना चाहता था। युद्ध से पीड़ित जनता के लिये वह शान्ति का दूत था। उसको हजरत मूसा तथा ईसा मसीह की उपाधियों से विभूषित किया गया था। निकल्सन महोदय ने उसको मानव जाति के हित के लिये नई व्यवस्था करने वाला पैगम्बर माना है। यूरोप की जनता ने उसका अभूतपूर्व स्वागत किया था। उसने पेरिस सम्मेलन में बहुत परिश्रमपूर्वक कार्य किया था। वह हर समय कार्य में जुटा रहता था। अपने १४ सिद्धान्तों के आधार पर वह विश्व में स्थायी शान्ति स्थापित करना चाहता था। राष्ट्र-संघ की स्थापना का प्रशंसनीय सुझाव भी उसी का था। वह अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता तथा न्याय का समर्थक था। वह सम्मेलन के प्रतिनिधियों में सबसे अधिक कार्य करता था। मनोरंजन में वह सबसे कम समय व्यतीत करता था। वह अपने भाषण द्वारा अपने विरोधियों को भी अपना समर्थक बना लेता था। वास्तव में वह एक बहुत अधिक उदार व्यक्ति था।

इन गुणों के साथ-साथ विल्सन के चरित्र में कुछ दोष भी थे। वह दूसरों की बात को सुनना पसन्द नहीं करता था। यूरोप की राजनीति का उसको बहुत कम ज्ञान था। फिर भी वह विशेषज्ञों की सलाह लेना पसन्द नहीं करता था। दूसरे व्यक्तियों से उसके विचार नहीं मिलते थे। इसी से विद्वानों ने उसको पेरिस के सम्मेलन में सबसे एकाकी व्यक्ति कहा है। विल्सन बहुत बड़ा आदर्शवादी था। वह तथा उसका परामर्शदाता कर्नल हाउस राष्ट्र संघ की स्थापना के लिये बहुत अधिक प्रयत्नशील थे। दूसरे देशों ने इसका पूरा-पूरा लाभ उठाया और बहुत से देशों को प्रसन्न करने के लिए तथा राष्ट्र-संघ के

निर्माण में उनका सहयोग प्राप्त करने के लिए विलसन को अपने १४ सिद्धान्तों की भी अवहेलना करनी पड़ी। उदाहरण के लिये विलसन के आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के अनुसार शांटुंग चीन को मिलना चाहिये था; परन्तु विलसन ने राष्ट्र-संघ के निर्माण में अन्य देशों का सहयोग प्राप्त करने के हेतु शांटुंग को जापान को दे दिया। इसी से नाराज होकर चीन ने शान्ति-सन्धि को स्वीकार नहीं किया था। अपने द्वारा प्रतिपादित चौदह सिद्धान्तों की रक्षा के लिये भी उसने कोई रचनात्मक सुझाव नहीं दिये। अमेरिकन सीनेट भी उससे संतुष्ट नहीं हुई। उसने शान्ति-सन्धि को स्वीकार नहीं किया तथा अमेरिका राष्ट्र-संघ का सदस्य नहीं हुआ। कीन्स महोदय ने विलसन का चरित्र-चित्रण करते हुये कहा है—'विलसन कोई वीर मनुष्य अथवा पैगम्बर नहीं था। उसको एक तत्ववेता भी नहीं कहा जा सकता। वह अनेक दुर्बलताओं से युक्त एक उदार व्यक्ति था। वह लायड जार्ज तथा क्लीमेन्शू से अधिक कुशाग्र बुद्धि वाला था। उसमें अपने समय के चालाक कूटनीतिज्ञों के विरुद्ध सफलता प्राप्त करने की क्षमता न थी। उसके विचार अपूर्ण, अपरिपक्व तथा अन्य किसी से न मिलने वाले थे।'

लायड जार्ज (Loyad George)—लायड जार्ज इंगलैंड का प्रधान मन्त्री तथा लिबरल दल का नेता था। इंगलैंड में १९१८ का आम चुनाव लायड जार्ज ने प्रतिशोध की भावना का प्रचार कर ही जीता था। सर एरिक गैडीज ने सरकार से यह आग्रह किया था कि जर्मनी को उस समय तक निचोड़ना चाहिये, जब तक कि उसके शरीर से एक भी बूंद रक्त की निकलती रहे। युद्ध परिषद् में मजदूर दल के प्रतिनिधि बार्न्स ने यह सुझाव दिया था कि कैसर को फांसी दे दी जाय। वास्तव में इंगलैंड का यह लक्ष्य था कि जर्मनी को इतना निर्बल कर दिया जाय कि वह भविष्य में फिर कभी जल अथवा स्थल पर युद्ध न कर सके। वह अपने उपनिवेशों का परित्याग कर दे और युद्ध का अधिक से अधिक हर्जाना दे। युद्ध-बन्दियों को अभियोग चलाने के लिए मित्रराष्ट्रों को सौंप दे और जर्मनी इन सब शर्तों पर स्वेच्छा से हस्ताक्षर करदे। इस प्रकार लायड जार्ज ने प्रतिशोध की भावना के आधार पर चुनाव जीता था; परन्तु उसने जर्मनी के साथ कुछ अंशों में नर्मी का व्यवहार किया। वह शीघ्रतापूर्वक जर्मनी से सन्धि कर उससे व्यापारिक सम्बन्ध जोड़ना चाहता था तथा जर्मनी में रूस के बोल्शेविक मत के प्रचार का विरोध करना चाहता था। एक बार लायड ने कहा था कि 'जर्मनी रूपी गाय का दूध तथा माँस एक साथ नहीं लिया जा सकता।' परन्तु इंगलैंड का लोकमत इसके पक्ष में न था। अतः विवश होकर लायड जार्ज को कठोरता का पालन करना पड़ा। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि फ्रांस की अपेक्षा उसका दृष्टिकोण जर्मनी के प्रति उदार था।

लायड जार्ज विलक्षण प्रतिभा का व्यक्ति था। वह अपने साथियों मे सबसे अधिक कुशाग्र बुद्धि था। वह अपने विपक्षियों की दुर्बलता को समझने तथा उससे लाभ उठाने में सिद्धहस्त था। मनोविज्ञान का वह अच्छा ज्ञाता था। सूक्ष्म से सूक्ष्म

बातों का वह शीघ्रता से निर्णय कर लेता था। अपने गलत निर्णयों को वह हंसकर अथवा मजाक में टाल देता था। उसने शान्ति-सम्मेलन में अनेक जटिल प्रश्नों का समाधान किया। विशेषज्ञों की सम्मति का वह आदर करता था।

क्लीमेन्शू (Clemenceau)—क्लीमेन्शू फ्रांस का प्रधान मन्त्री तथा शान्ति-सम्मेलन का प्रधान था। अपने साथियों में वह सबसे अधिक कूटनीतिज्ञ था। उसको सामयिक कूटनीति का अच्छा ज्ञान था। वह फ्रांस का ७७ वर्ष का बूढ़ा शेर था। उसने १८७० में अपनी आँखों से जर्मनी द्वारा फ्रांस का भारी पराभव देखा था। अत: उसके हृदय में जर्मनी से बदला लेने की भारी आकांक्षा थी। वह कहता था कि जर्मनी शक्ति के अतिरिक्त अन्य कोई भी भाषा नहीं समझता है। वह फ्रांस के लिए युद्ध काल में जिस तत्परता से लड़ा, उसी प्रकार वह शान्ति सम्मेलन में भी लड़ा। उसका मुख्य लक्ष्य फ्रांस की सीमाओं की रक्षा करना तथा १८७१ के निर्णयों में परिवर्तन करना था। वह बिस्मार्क का अनुयायी था। आदर्शवाद से उसको घृणा थी। वह विल्सन के चौदह सिद्धान्तों में अपने को बंधा हुआ नहीं समझता था। विल्सन के चौदह सिद्धान्तों का उपहास करता हुआ वह कहा करता था—'अमेरिका के राष्ट्रपति की चौदह आज्ञायें हैं, जबकि भगवान् की केवल दस ही आज्ञायें हैं।' उसका व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली था। लैंन्सिग ने लिखा है—'उसमें नेतृत्व के सभी आवश्यक गुण विद्यमान थे। वह शान्ति सम्मेलन पर छा गया था। वह इस बात को भली प्रकार जानता था कि कब विरोध करना चाहिये।' कर्नल हाउस के शब्दों में उसका व्यक्तित्व अपने साथियों की अपेक्षा सबसे अधिक स्पष्ट तथा प्रभावशाली था। वह किसी बात का उसी समय समर्थन करता था जबकि उसे यह विश्वास हो जाता था कि उसका उसके देश के हितों पर कोई बुरा प्रभाव तो न पड़ेगा। उसने जितने कार्यों को अपने हाथ में उठाया उन सब में सफलता प्राप्त की।

ओरलैण्डो (Orlando)—ओरलैण्डो इटली का प्रधान मन्त्री था। यह पहले कानून का प्राध्यापक रह चुका था। इसको अंग्रेजी भाषा का अच्छा ज्ञान नहीं था। अत: शान्ति सम्मेलन में उसका स्थान गौण था। वह बहुत कम बोलता था। जिन प्रश्नों का सम्बन्ध उसके देश से था एकमात्र उन्हीं में उसने दिलचस्पी ली। इस प्रकार शान्ति सम्मेलन के अधिकांश निर्णय पूर्वोक्त तीन महानुभावों द्वारा ही हुये। परन्तु ये तीनों व्यक्ति परस्पर-विरोधी स्वभाव वाले थे। कुछ विद्वानों का यह मत है कि वे एक दूसरे से सहमत होने के लिये ही भारी विवाद किया करते थे। विल्सन एक तर्क-शास्त्री की भाँति बातचीत किया करता था। लायड जार्ज की बात तीरन्दाज की भाँति होती थीं। क्लीमेन्शू का तर्क जोरदार तथा अकाट्य होता था।

जापान का प्रतिनिधि सम्मेलन के समस्त अधिवेशनों में मौन बैठा रहा। वह एकमात्र शान्टुङ्ग प्राप्त करने के हेतु ही आया था। बेलजियम का प्रतिनिधित्व करने वाला वहाँ का प्रधान-मन्त्री हाइमन्स था। दक्षिणी अफ्रीका के प्रतिनिधि जनरल स्मट्स थे। पोलैण्ड के प्रतिनिधि दमोवस्की थे। अमेरिका से लेनसिंग तथा इङ्गलैण्ड

के बालफोर एवं बोनरला भी उसमें सम्मिलित हुए थे। फ्रांस के प्रतिनिधियों में काम्बों, पिशोन तथा तारदीयू थे। तारदीयू क्लीमेन्शू का व्यक्तिगत मित्र था। यह एक परिश्रमी, योग्य तथा अनुभवी व्यक्ति था। इसकी विदेशी नीति का भारी ज्ञान था। इससे यह क्लीमेन्शों का एक बहुत बड़ा सहायक सिद्ध हुआ। सौनीनो आरलैण्डो का प्रमुख सहयोगी था। यह इटली का बहुत अधिक जिद्दी तथा ईमानदार राजनीतिज्ञ था। इस प्रकार पेरिस के शान्ति-सम्मेलन में चार बड़ों के अतिरिक्त अन्य अनेक छोटे प्रतिनिधि सम्मिलित हुये थे।

रूस को इस सम्मेलन में नहीं बुलाया गया, क्योंकि वह पूँजीवाद का विरोधी था तथा उसने मार्च १९१८ में जर्मनी से सन्धि कर ली थी। विल्सन तथा लायड जार्ज रूस के वर्तमान राज्यों के प्रतिनिधियों को बुलाना चाहते थे, क्लीमेन्शो इसका विरोधी था। अतः यह निर्णय किया गया कि रूस में जिन दलों के हाथ में सत्ता है, वे अपना गृह-युद्ध बन्द कर मारमोरा सागर के द्वीप प्रिंकिपो में अपने तीन प्रतिनिधि भेजें। क्रान्तिकारी दल के प्रतिनिधियों ने इस शर्त पर इस निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया कि मित्र राष्ट्र रूस के घरेलू मामले में हस्तक्षेप न करेंगे। १५ फरवरी प्रिंकिपो-सम्मेलन के प्रारम्भ होने की तिथि रक्खी गई; परन्तु रूस का गृह-युद्ध समाप्त नहीं हुआ और रूस के प्रतिनिधि प्रिंकपो के सम्मेलन में उपस्थित नहीं हुये। जर्मनी आदि पराजित देशों को एकमात्र सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिये निमन्त्रित किया गया था।

विल्सन के चौदह सिद्धान्त (Fourteen points of President Wilson)—शान्ति सम्मेलन की बैठक प्रारम्भ होने पर इस बात पर बहुत विचार-विमर्श हुआ कि शान्ति सन्धियों का आधार क्या हो ? विल्सन तथा जर्मनी का यह कहना था कि सन्धियों का आधार युद्ध काल में विल्सन द्वारा प्रतिपादित चौदह सिद्धान्त हों; परन्तु इंगलैंड, फ्रांस तथा इटली आदि का यह कहना था कि सन्धियों का आधार युद्ध काल में इच्छा अथवा अनिच्छा से हुई सन्धियाँ होनी चाहियें। विश्व में स्थायी शान्ति स्थापित करने के लिये विल्सन बराबर अपने चौदह सिद्धान्तों पर जोर दे रहा था। विल्सन द्वारा प्रतिपादित चौदह सिद्धान्तों का इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है —

(१) गुप्त कूटनीति का परित्याग कर दिया जाय। सन्धियाँ खुले रूप में की जायें।

(२) समुद्रतटीय भागों (Territorial Waters) को छोड़ कर युद्ध अथवा शान्ति काल दोनों अवस्था में ही जहाज चलाने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

(३) पारस्परिक व्यापार में चुंगियाँ यथा-शक्ति कम कर देनी चाहियें।

(४) अस्त्र-शस्त्र उतने ही रक्खे जायें, जितने कि आत्म-रक्षा के लिए आवश्यक हैं।

(५) औपनिवेशिक प्रदेशों के शक्तियों के हित का ध्यान रखते हुए औपनिवेशिक दावों का निष्पक्ष निर्णय करना।

(६) रूस से सेनाओं को हटा लिया जाय तथा उसकी स्वतन्त्रता मान ली जाय।

(७) बेलजियम को खाली कर दिया जाय तथा उसकी स्वतन्त्रता मान ली जाय।

(८) फ्राँस के सब प्रदेशों को स्वतन्त्र कर दिया जाय। अल्सेस तथा लोरेन के प्रदेश उसको लौटा देने चाहियें।

(९) इटली की राष्ट्रीयता का ध्यान रखते हुए, उसकी सीमाओं का पुनः निर्धारण किया जाय।

(१०) आस्ट्रिया तथा हंगरी को अपना विकास करने के साधन दिये जायें।

(११) रोमानिया, सर्विया तथा मोन्टेनिग्रो को खाली कर दिया जाय। सर्विया को समुद्र-तट तक पहुंचने की स्वतन्त्रता प्रदान की जाय।

(१२) तुर्की साम्राज्य में रहने वाली अन्य जातियों को अपनी सुरक्षा का पूर्ण आश्वासन मिले तथा डार्डेनेलीज का अन्तर्राष्ट्रीयकरण कर दिया जाय।

(१३) पोलैण्ड की सीमाओं का पुन: निर्धारण हो। जिन स्थानों में पोल निवासी बसे हुये हैं, वे पोलैण्ड के अन्तर्गत हों। उसकी राजनीतिक तथा आर्थिक स्वतन्त्रता को स्वीकार कर लिया जाय। पोलैण्ड को समुद्र तक पहुंचने का मार्ग दिया जाय।

(१४) विश्व में शान्ति स्थापित करने के लिए राष्ट्र संघ की स्थापना की जाय। उसमें विश्व के सब छोटे बड़े राष्ट्रों को स्थान दिया जाय। सब राज्यों की राजनीतिक स्वाधीनता तथा प्रादेशिक अखण्डता को स्वीकार कर लिया जाय।

विल्सन के सिद्धान्तों पर विश्व में शान्ति स्थापित हो सकती थी अथवा नहीं, इस पर इतिहासकार दीर्घ-काल तक झगड़ते रहेंगे। परन्तु फिर भी यह मानना पड़ेगा कि ८ जनवरी १९१८ को प्रतिपादित विल्सन के चौदह सिद्धान्तों का इतिहास में बहुत महत्व है। इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर जर्मनी ने आत्म-समर्पण किया था।

विल्सन के सिद्धान्तों का कहाँ तक पालन हुआ—विश्व में शुद्ध तथा स्थायी शान्ति स्थापित करने के लिये राष्ट्रपति विल्सन ने अपने चौदह सिद्धान्तों को बहुत महत्व दिया था। अब संक्षेप में यह विचार कर लेना चाहिये कि इन सिद्धान्तों का व्यवहार में कहाँ तक पालन हुआ —

(१) राष्ट्र-संघ के द्वारा देशों के पारस्परिक समझौतों तथा सन्धियों को प्रकाशित करने की व्यवस्था की गई थी; परन्तु गुप्त सन्धियाँ फिर भी बराबर चलती रहीं।

(२) समुद्रों की स्वतन्त्रता (Territorial Water) की शर्त को किसी भी देश ने नहीं माना।

(३) कुछ नदियों तथा जल-मार्गों का अन्तर्राष्ट्रीयकरण अवश्य कर दिया गया; परन्तु चुंगियों के सम्बन्ध में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई।

(४) निःशस्त्रीकरण की दिशा में अमेरिका तथा इंगलैंड आदि कुछ देशों ने अवश्य कदम उठाया; परन्तु अन्य देशों ने इस ओर कोई कदम नहीं उठाया। इसके विपरीत जर्मनी आदि पराजित राष्ट्रों का पूर्णतया निःशस्त्रीकरण करने का प्रयास किया गया।

(५) उपनिवेशों के न्यायपूर्ण तथा निष्पक्ष बंटवारे का कार्य राष्ट्र संघ ने संरक्षण के सिद्धान्त (Mandate) के अनुसार प्रतिपादित किया। हार्डी ने इस सिद्धांत के पूर्ण पालन का समर्थन किया है।

(६) रूस से जर्मन सेनाओं का निष्कासन कर दिया गया; परन्तु मित्र राष्ट्रों ने उस पर आक्रमण कर दिया। इस प्रकार इस सिद्धान्त का आंशिक रूप में पालन हुआ।

(७) बेलजियम से सेनाएं हटा ली गईं।

(८) अल्सेस तथा लोरेन के प्रदेश फ्रांस को वापस कर दिए गए।

(९) इटली की सीमा निर्धारण सम्बन्धी-शर्त का पूर्णतया पालन नहीं हुआ, क्योंकि उसको कुछ ऐसे प्रदेश भी प्राप्त हुए जिसमें गैर इटालियन रहते थे। उदाहरण के लिए उसको कुछ ऐसे भी प्रदेश प्राप्त हुए जिनमें आस्ट्रियन रहते थे।

(१०) आस्ट्रिया तथा हंगरी को अपने विकास करने की स्वतन्त्रता दे दी गई; परन्तु उन प्रदेशों में रहने वाली अल्प-संख्यक जातियों के हितों का ध्यान नही रक्खा गया।

(११) रोमानिया, सर्विया तथा माण्टोनीग्रो को स्वतन्त्रता दे दी गई। परन्तु समुद्र-तट देने की शर्त का पालन नहीं हुआ।

(१२) टर्की साम्राज्य में रहने वाली गैर तुर्क जातियों के हितों की रक्षा का भार मित्र राष्ट्रों ने लिया। परन्तु इस शर्त का पूर्णतया पालन न हो सका।

(१३) पोलैण्ड को एक स्वतन्त्र राष्ट्र मान लिया गया तथा उसको समुद्र-तट दे दिया गया।

(१४) विश्व में स्थायी शान्ति स्थापित करने के लिए राष्ट्र संघ की स्थापना की गई।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि विल्सन द्वारा प्रतिपादित सभी सिद्धान्तों का पूर्णतया पालन नहीं। उसकी कुछ शर्तों का तो पूर्ण पालन हुआ, कुछ का आंशिक पालन हुआ तथा कुछ की उपेक्षा हुई। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों का भी ध्यान रखना चाहिए—

(१) विल्सन के चौदह सिद्धान्त उसके राजनीतिक भाषण थे। अतः सन्धि तथा समझौतों की भांति उनका पालन नहीं हो सकता था।

(२) विल्सन ने समस्त विश्व के हित का ख्याल करते हुए अपने सिद्धान्त प्रतिपादित किए थे। अतः उनका किसी एक देश के साथ सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता था।

(३) विल्सन के कुछ सिद्धान्तों में परिवर्तन कर दिया गया था। अतः उनके पालन न होने की आलोचना नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिए समुद्रों की स्वतन्त्रता-सम्बन्धी प्रस्ताव पेश ही नहीं किया गया था।

(४) विल्सन के कुछ सिद्धान्त बहुत अस्पष्ट थे और उनकी विभिन्न व्याख्याएं की जा सकती थीं। विल्सन का चतुर्थ सिद्धान्त सबसे अधिक अस्पष्ट था। उसमें कहा था कि देश की सुरक्षा का ध्यान रखते हुए अस्त्र-शस्त्र निम्नतम बिन्दु (Lowest point) तक घटा दिए जाँय। विभिन्न देश अपने स्वार्थों के अनुसार निम्नतम बिन्दु को बहुत घटा-बढ़ा सकते थे।

(५) विल्सन के कुछ सिद्धान्त परस्पर-विरोधी थे। उसने आत्म-निर्णय के सिद्धान्त पर बहुत जोर दिया था। इसके साथ-साथ वह वास्तविक न्याय के सिद्धान्त पर भी बहुत जोर दे रहा था। उसके ये दोनों सिद्धान्त जर्मनी, आस्ट्रिया तथा जैकोस्लोवाकिया के सम्बन्ध में परस्पर-विरोधी थे।

(६) बहुत से स्थानों पर स्वयं विल्सन ने अपने सिद्धान्तों की अवहेलना की। उसके आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के अनुसार शांटुंग चीन को मिलना चाहिए था; परन्तु उसने राष्ट्र संघ के निर्माण में अन्य देशों का सहयोग प्राप्त करने हेतु शांटुंग को जापान को दे दिया। इससे चीन का नाराज होना स्वाभाविक था।

(७) हिटलर ने विल्सन के चौदह सिद्धान्तों की अवहेलना का सबसे अधिक ढोल पीटा है; परन्तु उसने स्वयं अनेक अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों तथा समझौतों को भंग कर दिया था। अतः उसका यह प्रचार कोई महत्व नहीं रखता।

यह ठीक है कि विल्सन के कुछ सिद्धान्तों का पूर्णतया पालन नहीं हो सका। परन्तु फिर भी यह मानना पड़ेगा कि तत्कालीन व्यवस्था पर उसका बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था। यदि विल्सन के सिद्धान्तों की पूरी तरह अवहेलना की जाती तो पेरिस की सन्धि का स्वरूप इससे भी कहीं अधिक कठोर होता।

पेरिस की सन्धि—चार महीने के विचार-विमर्श के पश्चात् जर्मनी से सन्धि की गई। २८ जून को जर्मनी ने वार्साय में सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिए। इसके पश्चात् अन्य पराजित राष्ट्रों से सन्धियां की गई—

(१) आस्ट्रिया के साथ सां जर्मैं (St. Germain) की सन्धि (१० सितम्बर १६१६)।

(२) बल्गारिया के साथ नयी (Neuilly) की सन्धि (२७ नवम्बर १६१६)।

(३) हंगरी के साथ त्रिआनों (Trianon) की सन्धि (४ जून १६२०)।

(४) टर्की के साथ सेव्र (Sevres) की सन्धि (१० अगस्त १६२०)।

उपर्युक्त सन्धियाँ सम्मिलित रूप से 'पेरिस की सन्धि' कहलाती हैं। आगे प्रत्येक का विस्तारपूर्वक वर्णन किया जायगा। इन सब सन्धियों में राष्ट्र संघ की स्थापना का उल्लेख था। राष्ट्र-संघ का एक पृथक् अध्याय में विस्तृत वर्णन किया जायगा।

वार्साय की सन्धि (Treaty of Versailles)—वार्साय की सन्धि विजेताओं ने पराजित जर्मनी के साथ की थी। यह पेरिस के शाँति सम्मेलन की सबसे महत्व-पूर्ण तथा विस्तृत संधि थी। इसमें १५ अध्याय, ४३९ धाराएं तथा ८० हजार शब्द थे। यह अंग्रेजी तथा फ्रेंच भाषाओं में तैयार की गई थी। इसमें राष्ट्र-संघ का संविधान भी सम्मिलित था। इस सन्धि के अनुसार निम्नलिखित व्यवस्थाएं की गई थीं—

प्रादेशिक व्यवस्थाएं—(१) जर्मनी ने अल्सेस तथा लोरेन के प्रदेश फ्राँस को वापस कर दिए।

(२) यूपेन तथा माल्मेडी के नगर बेलजियम को दिए गए।

(३) पोसेन तथा पश्चिमी प्रशा पोलैंड को दिए गए। पोलैंड को समुद्र तक पहुंचने के लिए मार्ग दिया गया।

(४) जनमत द्वारा अपर साइलेशिया को जर्मनी तथा पोलैण्ड में विभाजित कर दिया गया।

(५) एलेनस्टाइन तथा मेरियनवर्डर जनमत द्वारा जर्मनी के ही पास रहने दिए।

(६) जनमत द्वारा श्लेजविग का उत्तरी भाग डेनमार्क को तथा दक्षिणी भाग जर्मनी को दे दिया गया।

(७) जर्मनी ने मेमल को मित्र राष्ट्रों को सौंप दिया तथा कालान्तर में उन्होंने उसको लिथुएनिया को दे दिया।

(८) जर्मनी, आस्ट्रिया तथा रूस आदि से पोलिश प्रदेश छीनकर पुनः पोलैंड का नवनिर्माण किया गया। उसे बाल्टिक सागर तक पहुंचने के लिए पश्चिमी प्रशा में से होकर एक गलियारा (Polish Corridor) दिया गया। इससे पूर्वी प्रशा शेष जर्मनी से पृथक् हो गया। पोलैंड के उपयोग के लिए डैन्जिग के बन्दरगाह को एक स्वतन्त्र नगर घोषित कर उसको राष्ट्र-संघ के संरक्षण में दे दिया गया।

(९) युद्धकाल में जर्मनी ने उत्तरी फ्रांस की कोयले की खानों को नष्टकर दिया था। अतः इसके बदले में फ्रांस कोयले की दृष्टि से समृद्धिशाली नगर सार को प्राप्त करने की चेष्टा कर रहा था। अब यह निश्चित कर दिया गया कि फ्रांस को सार की कोयले की खानों के उपयोग करने का अधिकार होगा। परन्तु सार का शासन-प्रबन्ध राष्ट्र-संघ को दे दिया गया। १५ वर्ष पश्चात् सार में जनमत-संग्रह होगा। यदि सार-निवासी जर्मनी के साथ रहना चाहेंगे तो जर्मनी को फ्राँस की कोयले की खानों का मूल्य देना होगा। खानों के मूल्य-निर्धारण का कार्य राष्ट्र-संघ द्वारा निर्मित एक आयोग करेगा।

(१०) शाँटुंग का प्रश्न एक सप्ताह तक शान्ति-सम्मेलन में विवाद का केन्द्र बिन्दु बना रहा। १८९८ की सन्धि के द्वारा जर्मनी ने चीन से शाण्टुंग का पट्टा प्राप्त कर लिया। यह प्रशान्त महासागर में जर्मनी का प्रमुख सैनिक अड्डा बन गया

था। प्रथम महायुद्ध में जापान ने मित्र राष्ट्रों का साथ दिया था। अतः उन्होंने शाण्टुंग को जापान को देने का आश्वासन दे दिया था। एकमात्र शाण्टुंग प्राप्त करने का उद्देश्य लेकर ही जापान का प्रतिनिधि शान्ति-सम्मेलन में सम्मिलित हुआ। चीन भी युद्ध में जर्मनी का विरोधी था। अतः उसने भी शाण्टुंग को प्राप्त करने की माँग रक्खी। विलसन की इच्छा थी कि आत्मनिर्णय के सिद्धांत के आधार पर शाण्टुंग चीन को दे दिया जाय। इस पर जापानी प्रतिनिधि ने शान्ति-सम्मेलन छोड़कर जाने की धमकी दी। उसकी धमकी का बहुत अधिक प्रभाव हुआ, क्योंकि इससे पूर्व फ्यूम के प्रश्न पर नाराज होकर इटली के प्रतिनिधि शान्ति-सम्मेलन छोड़कर चले गये थे। विलसन को यह भय था कि यदि इटली और जापान राष्ट्र-संघ के सदस्य न बने तो राष्ट्र-संघ का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायगा। अतः यह निर्णय किया गया कि शाण्टुंग के आर्थिक अधिकार जापान के पास तथा राजनीतिक अधिकार चीन के पास रहेंगे।

(११) जर्मनी को यह आश्वासन देना पड़े कि वह बेलजियम, पोलेंण्ड तथा चेकोस्लोवाकिया की स्वतन्त्रता के ऊपर भविष्य में कभी आक्रमण न करेगा।

(१२) टर्की, चीन, मिस्र, मोरक्को तथा बल्गेरिया आदि में जर्मनी को जो विशेषाधिकार प्राप्त थे, वे सब समाप्त कर दिये गये।

(१३) जर्मनी के उपनिवेश छीन लिए गए तथा वे संरक्षण-प्रणाली (Mandatesystem) के आधार पर मित्र राष्ट्रों में बांट दिए गये। यह बटवारा इस प्रकार हुआ—

(अ) सीरिया तथा लेबनान फ्राँस को दिये गये। इराक, ट्राँसजार्डन तथा फिलिस्तीन इङ्गलैंण्ड को दिये गये।

(ब) केमरून तथा तोगोलैण्ड को इङ्गलेंड तथा फ्राँस के मध्य बाँट दिया गया। बेलजियम को पूर्वी अफ्रीका का उत्तरी-पश्चिमी कोना दिया गया।

(स) दक्षिणी पश्चिमी अफ्रीका दक्षिणी अफ्रीका के संघ को दे दिया गया। समोआ न्यूजीलैंण्ड को दिया गया। नौरीद्वीप इङ्गलैंड को दिया गया। भूमध्य रेखा के दक्षिण के समस्त द्वीप आस्ट्रेलिया को और उत्तर के समस्त द्वीप जापान को दे दिये गये।

सैनिक व्यवस्थायें—(१) जर्मनी की सेना में एक लाख से अधिक सैनिक नहीं रह सकते हैं। इसी एक लाख में अफसरों की संख्या भी सम्मिलित थी।

(२) जर्मनी का जनरल स्टाफ (General Staff) भंग कर दिया। अनिवार्य सैनिक सेवा (Conscription) का अन्त कर दिया गया। कोई भी सैनिक ३० वर्ष से पहले रिटायर नहीं किया जा सकता था।

(३) जर्मनी को हेलीगोलैंड के बन्दरगाह की किलेबन्दी नष्ट करनी पड़ी तथा यह आश्वासन देना पड़ा कि भविष्य में वह कभी भी पुनः इसकी किलेबन्दी न करेगा।

(४) जर्मनी को राइन नदी के पूर्व की ओर पचास किलोमीटर (३० मील) तक सैनिक पड़ाव डालने का अधिकार न रहा।

(५) जर्मनी अधिक मात्रा में बड़ी तोपें नहीं रख सकता था। छोटी तोपें तथा बारूद भी सीमित मात्रा में ही रख सकता था।

(६) जर्मनी का जहाजी बेड़ा भी सीमित कर दिया गया। जर्मनी को यह आदेश दिया गया कि वह भविष्य में छः युद्ध पोत, छः हल्के क्रूजर, बारह विध्वंसक तथा बारह पनडुब्बियों से अधिक न रक्खे। नौ-सेना में १५ हजार से अधिक नौ सैनिक नहीं रह सकते थे।

(७) जर्मनी निश्चित मात्रा से अधिक युद्ध सामग्री का न तो निर्माण कर सकता था और न बाहर से ही मंगा सकता था।

(८) जर्मनी हवाई सेना नहीं रख सकता था।

(९) उपर्युक्त शर्तों की पूर्ण पाबन्दी के निरीक्षण के लिए राइन के पश्चिम की ओर के प्रदेश में १५ वर्ष के लिये मित्रराष्ट्रों ने अपनी सेनायें रख छोड़ी थीं।

आर्थिक व्यवस्थायें—(१) ५ नवम्बर, १९१८ को जर्मनी द्वारा हथियार डालने के परिपत्र के उत्तर में मित्रराष्ट्रों ने उससे कहा था—'स्थल, जल तथा आकाश के मार्ग से जर्मनी के द्वारा किये गये आक्रमण के द्वारा मित्रराष्ट्रों की नागरिक जनता तथा उसकी सम्पत्ति को जो हानि पहुंची थी उसका हर्जाना लिया जायगा।' परन्तु शान्ति सम्मेलन में फ्रांस तथा इंगलैंड के प्रतिनिधि बराबर यह मांग कर रहे थे कि जर्मनी से युद्ध का सम्पूर्ण व्यय (War indemnity) लिया जाय। विल्सन ने इसका विरोध किया। अन्त में क्लीमेन्शो तथा लायड जार्ज ने भी उसका समर्थन किया। विल्सन क्षतिपूर्ति की एक रकम निश्चित करना चाहता था, परन्तु क्लीमेन्शो इससे सहमत नहीं था। उसका कहना था कि चाहे कितनी ही अधिक रकम क्यों न निश्चित कर दी जाय, फ्राँसीसी जनता उसको थोड़ा ही कहेगी और उसके मन्त्रि-मण्डल का पतन हो जायगा। लायड जार्ज के ऊपर भी यही बात लागू होती थी। अतः यह निर्णय किया गया कि क्षति-पूर्ति की राशि निश्चित करने के लिये एक 'क्षति-पूर्ति आयोग' की स्थापना की जाय। इसका कार्य १ मई, १९२१ तक क्षति पूर्ति की सम्पूर्ण रकम निश्चित करना था। तब तक जर्मनी को मित्रराष्ट्रों को १०० करोड़ पौण्ड चुकाना आवश्यक था। सम्पूर्ण राशि का शेष भाग आगामी तीस वर्षों में चुकाया जाना आवश्यक था। अन्त में युद्ध-सम्बन्धी सम्पूर्ण व्यय तथा ५ नवम्बर के परिपत्र के मध्य समझौता कर यह निश्चित किया गया कि हर्जाने में पेन्शनों तथा अन्य अतिरिक्त वेतनों को भी शामिल कर लिया जाय।

इस समय तक विश्व के समस्त अर्थ-विशेषज्ञ इस बात से सहमत थे कि जर्मनी नकद चुकान करने में असमर्थ है। अतः मित्रराष्ट्र हर्जाने के रूप में उससे व्यापारिक तथा मछली पकड़ने के जहाज लेने लगे थे। जर्मनी ने फ्रांस तथा इटली आदि देशों को १० वर्ष तक पर्याप्त मात्रा में कोयला देने का आश्वासन दिया। उसने फ्राँस तथा बेल्जियम को घोड़े आदि पशु देने का आश्वासन दिया। उसके उपनिवेशों तथा अन्य प्रदेशों में जो जर्मन पूंजी लगी हुई थी, वह जब्त कर ली गई। चीन, मिस्र तथा

मोरक्को आदि में जर्मनी के विशेषाधिकारों का अन्त कर दिया गया। अन्त में ६० करोड़ पौण्ड क्षति-पूर्ति की राशि निश्चित की गई। जर्मनी के आर्थिक साधनों को देखते हुये यह धन-राशि बहुत अधिक थी।

(२) कील नहर सभी देशों के व्यापारिक तथा युद्ध-पोतों के लिए खोल दी गई।

(३) जर्मन नदियों का अन्तर्राष्ट्रीयकरण कर दिया गया।

कानूनी व्यवस्थायें—वार्साय सन्धि की २३१वीं धारा के अनुसार जर्मनी पर युद्ध आरम्भ करने का आरोप लगाया गया था। अतः निश्चित किया गया कि जर्मन-सम्राट् कैसर पर पांच देशों के न्यायाधीशों की अदालत में अभियोग चलाया जाय। अन्य सैनिकों पर विशेष सैनिक अदालतों में मुकद्दमा चलाया जाय। युद्ध-अपराधियों की एक लम्बी सूची प्रकाशित की गई। इस सूची में युद्ध में भाग लेने वाले सभी कार्य-कर्त्ताओं के नाम थे। इससे जर्मनी में असंतोष की लहर फैल गई। एक लम्बे वाद-विवाद के पश्चात् केवल १२ व्यक्तियों पर मुकदमा चलाने का निश्चय किया गया। १९२१ में ये मुकदमे चलाये गये। इनमें से एक मात्र ६ व्यक्ति ही अपराधी सिद्ध हुये तथा उनको दण्डित किया गया। कैसर पर मुकदमा न चल सका, क्योंकि उसको हालैंड सरकार ने मित्रराष्ट्रों को देना स्वीकार नहीं किया।

कुछ अन्य व्यवस्थायें—(१) बेल्जियम तथा लक्ज़मबर्ग की तटस्थता का अन्त कर दिया गया। उनको भी सुरक्षात्मक सन्धियाँ करने का अधिकार प्रदान कर दिया गया।

(२) सन् १८७० के पश्चात् जर्मनी अन्य देशों से जो कलात्मक वस्तुयें तथा झण्डे आदि ले आया था, उनको उसको वापस करना होगा।

(३) जर्मनी ने आस्ट्रिया तथा जेकोस्लोवाकिया की स्वतन्त्रता को स्वीकार कर लिया तथा यह आश्वासन दिया कि वह भविष्य में इन पर आक्रमण न करेगा।

सन्धि पर हस्ताक्षर—जर्मन प्रतिनिधियों को शान्ति-सम्मेलन में नहीं बुलाया गया था। सम्भवतः मित्रराष्ट्र १८१५ की विएना कांग्रेस की गलती की पुनरावृत्ति नहीं करना चाहते थे। १८१५ में विएना कांग्रेस में मित्रराष्ट्रों ने पराजित फ्रांस को बुलाया था और उसके प्रतिनिधि तालीराँ ने अपने देश के हित में अनेक बातों के मनवाने का भरसक प्रयास किया था। परन्तु पेरिस के शान्ति-सम्मेलन में जर्मनी के प्रतिनिधियों को केवल दो बार बुलाया गया—एक बार तो उनको सन्धि का ड्राफ्ट दिया गया तथा दूसरी बार सन्धि-पत्र पर उनसे हस्ताक्षर कराये गये थे। ७ मई १९१९ को जर्मन प्रतिनिधियों को सम्मेलन में बुलाकर वार्साय सन्धि का २३० पृष्ठ का विस्तृत ड्राफ्ट दिया गया। इस पर विचार करने के लिए उन्हें तीन सप्ताह का समय दिया गया। इस बीच वे केवल लिखकर ही सन्धि की आलोचना कर सकते थे। जर्मन प्रतिनिधियों ने इस सम्बन्ध में ४४३ पृष्ठ का एक विस्तृत स्मरण-पत्र (Detailed

Memorandum) मित्र राष्ट्रों के पास भेजा। मित्रराष्ट्रों ने सन्धि में नाममात्र के लिए निम्नलिखित संशोधन किए—

(१) अपर साइलेशिया पोलैण्ड को जन-मत, संग्रह के आधार पर दिया जायगा।

(२) पोलैण्ड की पश्चिमी सीमा में कुछ परिवर्तन कर दिया गया।

(३) पूर्वी प्रशा के यातायात के सम्बन्धों में कुछ सुधार कर दिया गया।

(४) जर्मन सेना की कमी को कुछ अंश तक रोक दिया गया।

(५) क्षति-पूर्ति के चुनाव के सम्बन्ध में कुछ बातचीत की गयी।

जर्मन प्रतिनिधि संशोधित सन्धि को भी अस्वीकृत करना चाहते थे; परन्तु अर्जबर्गर के प्रयास से वे इसे स्वीकार करने को तैयार हो गये। जर्मन प्रतिनिधि यह चाहते थे कि संधि-पत्र से २३१वीं धारा को निकाल दिया जाय, क्योंकि इसके अनुसार युद्ध का उत्तरदायित्व जर्मनी पर ठहराया गया था। परन्तु मित्र राष्ट्र इसके लिये तैयार नहीं हुये। उन्होंने जर्मन प्रतिनिधियों को यह धमकी दी कि वे ५ दिन के अन्दर-अन्दर सन्धि पर हस्ताक्षर कर दें अन्यथा पुनः जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी जायगी। इस प्रकार तलवार के बल से सन्धि-पत्र पर जर्मनी के प्रतिनिधियों को हस्ताक्षर करने के लिये विवश किया गया। वार्साय का शीशमहल सन्धि पर हस्ताक्षर करने का स्थान निश्चित किया गया, क्योंकि इससे ५० वर्ष पहले यहीं से प्रशा के राजा को सम्पूर्ण जर्मनी का सम्राट् घोषित किया गया था। २८ जून १९१९ को जर्मन प्रतिनिधियों द्वारा वार्साय सन्धि पर हस्ताक्षर किये जाने थे। सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिये जर्मनी से जोहान्नेस बेल तथा हर्मान्न मुइलर आय। उनको कैदियों की भाँति नुकीले तारों से घिरे होटल में ठहराया गया। वे जनता की गालियों तथा ईंट-पत्थरों के प्रहारों को सहन करते हुए तीन बजे शीश-महल में दाखिल हुए। मुइलर पीला, झुका हुआ तथा चश्मा लगाये हुये था। बेल शान्त तथा गम्भीर था। इन दोनों ने बादाम की लकड़ी की मेज पर रक्खे हुए सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर किये। इसके पश्चात् वर्णानुक्रम से अन्य देशों के प्रतिनिधियों ने हस्ताक्षर किये। इसके बाद बाहर तोपें दागी गयीं। सम्भवतः वे भावी महायुद्ध की सूचना दे रही थीं।

यह एक सफल सन्धि नहीं थी। इसके प्रतिनिधियों को स्थायी शान्ति स्थापित करने की अपेक्षा अपने-अपने स्वार्थों की पूर्ति की अधिक चिन्ता थी। इसी से मार्शल फाश ने इसके सम्बन्ध में कहा है—'यह शान्ति-सन्धि नहीं। यह बीस वर्षों के लिए एक विराम-सन्धि है।' वास्तव में उसकी यह भविष्य-वाणी सत्य सिद्ध हुई। जर्मन प्रतिनिधियों का यह कहना था कि इस सन्धि पर हमसे तलवार के बल से हस्ताक्षर कराए गये हैं। अतः यह हम पर बन्धनकारी नहीं हो सकती।

सां जर्मे की सन्धि—यह सन्धि १० सितम्बर १९१९ को आस्ट्रिया के साथ की गई थी। इसके अनुसार आस्ट्रिया के विशाल साम्राज्य का विभाजन कर उसको

एक छोटा सा जर्मन जनतन्त्र बना दिया गया। इस सन्धि के अनुसार निम्नलिखित महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गए—

(१) आस्ट्रिया के पुराने हेब्सबर्ग राजवंश का अन्त हो गया। उसके स्थान पर ६० लाख की आबादी वाला एक छोटा सा जनतन्त्र स्थापित किया गया।

(२) आस्ट्रिया में जर्मन, जेक, पोल, सर्व, क्रोट, रूमानियन तथा इटैलियन आदि अनेक जातियाँ रहती थीं। अतः आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के अनुसार इनको प्रदेश दिए गए।

(३) आस्ट्रिया को यह स्वीकार करना पड़ा कि हंगरी, पोलैण्ड, यूगोस्लाविया तथा जेकोस्लोवाकिया स्वतन्त्र राज्य हैं।

(४) साइलेशिया, बोहेमिया तथा मोराविया को मिलाकर जेकोस्लोवाकिया का निर्माण किया गया।

(५) जर्मनी तथा आस्ट्रिया परस्पर राजनीतिक अथवा आर्थिक संगठन नहीं कर सकते थे।

(६) इटली को ट्रीस्ट, दक्षिणी टाइरोल, इस्ट्रिया तथा डालमेशिया के प्रदेश मिले।

(७) टेशेन का उद्योग-प्रधान प्रदेश जेकोस्लोवाकिया तथा पोलैण्ड में विभक्त कर दिया गया।

(८) रूमानिया को बुकोविना का प्रदेश मिला।

(९) यूगोस्लाविया को बाजनिया, हर्जेगोविना तथा डालमेशिया तट का कुछ भाग मिला।

(१०) आस्ट्रिया को ३० हजार से अधिक सैनिक अपनी सेना में रखने का अधिकार न रहा।

(११) आस्ट्रिया की नौ-सैना तथा हवाई सेना का अन्त कर दिया गया। वह एकमात्र डेन्यूब नदी में तीन किश्तियाँ रख सकता था।

(१२ आस्ट्रिया को भी निर्धारित क्षति-पूर्ति की राशि देनी होगी तथा युद्ध-अपराधी मित्रराष्ट्रों को सौंपने होंगे।

आलोचना—आस्ट्रिया में जर्मन भी निवास करते थे। वे जर्मनी के साथ मिलना चाहते थे। परन्तु मित्रराष्ट्रों ने उनको ऐसा करने की आज्ञा नहीं दी। मित्र-राष्ट्रों को यह भय था कि इससे जर्मनी बहुत शक्तिशाली हो जायगा तथा जेकोस्लोवा-किया का राज्य खतरे में पड़ जायगा।

इटली को टायरोल तथा ट्रीस्ट नामक प्रदेश मिले थे; परन्तु इनकी जनता इटैलियन नहीं थी। एकमात्र दक्षिणी टाइरोल में ही २½ लाख जर्मन रहते थे। अतः आत्म-निर्णय के सिद्धान्त का पूर्णतया पालन नहीं हुआ।

न्यी (Neuilly) की सन्धि—यह सन्धि २७ नवम्बर १९१९ को बल्गेरिया के साथ हुई। इसके अनुसार निम्नलिखित निर्णय किए गए—

(१) पश्चिमी बल्गेरिया के चार छोटे-छोटे प्रदेश यूगोस्लाविया को दे दिए

गए। इन प्रदेशों की जनता बल्गेरियन थी। अतः इस सम्बन्ध में आत्म-निर्णय के सिद्धान्त की अवहेलना हुई।

(२) थ्रेस का समुद्री तट यूनान को दे दिया गया। इससे वह समुद्र-तट तक नहीं पहुंच सकता था।

(३) ग्रीस तथा बल्गेरिया की सीमा के सम्बन्ध में भी कुछ परिवर्तन गए।

(४) बल्गेरिया की सेना घटाकर १० हजार निश्चित कर दी गई।

(५) उसकी जल-सेना समाप्त कर दी गई।

(६) जर्मनी आदि पराजित राष्ट्रों की भाँति उस पर भी भारी युद्ध का हर्जाना लाद दिया गया।

त्रिआनों (Trianon) की सन्धि—यह सन्धि ४ जून १६२० को हंगरी के साथ की गई। इस सन्धि की प्रमुख शर्तें निम्नलिखित थीं—

(१) हंगरी को आस्ट्रिया से अलग कर दिया गया।

(२) ट्रान्सिलवेनिया रूमानिया को दिया गया।

(३) क्रोशिया सर्विया को दे दिया गया।

(४) स्लोवाकिया चेकोस्लोवाकिया को दे दिया गया।

(५) हंगरी को ३५ हजार से अधिक सैनिक रखने का अधिकार न रहा।

(६) अन्य पराजित राष्ट्रों की भाँति उस पर भी युद्ध का हर्जाना लादा गया।

आलोचना—इस व्यवस्था से हंगरी की जनसंख्या दो करोड़ दस लाख से घटकर ७५ लाख रह गई। उसका क्षेत्रफल एक लाख २५ हजार वर्ग मील से घटकर केवल ३५ हजार वर्ग मील रह गया। हंगरी के ३० लाख मगयर उन विदेशी जातियों के अधीन हो गए, जिनको कि वे घृणा की दृष्टि से देखते थे।

सेव (Sevres) की सन्धि—यह सन्धि १० अगस्त १६२० को तुर्की के खलीफा के साथ हुई थी। इस सन्धि के अनुसार निम्नलिखित निर्णय किए गए—

(१) तुर्की के साम्राज्य का अन्त कर दिया गया। तुर्की के खलीफा के पास एकमात्र अनातोलिया का पहाड़ी प्रदेश तथा कुस्तुन्तुनिया का समीपवर्ती प्रदेश ही रहा।

(२) आर्मीनिया को स्वतन्त्र कर दिया गया तथा कुर्दिस्तान को भी स्वतंत्र करने का आश्वासन दिया गया।

(३) डार्डेनेलीज तथा बॉस्फोरस के जल अन्तरीपों का अन्तर्राष्ट्रीयकरण कर दिया गया।

(४) ग्रीस को थ्रेस, स्मर्ना, एड्रियाटिक सागर के कुछ टापू तथा गेलीपोली के द्वीप दिए गए।

(५) तुर्की ने मिस्र, साइप्रस, मोरक्को, ट्रिपोली, सीरिया, फिलिस्तीन, अरब तथा मेसोपोटामिया पर से अपने अधिकार छोड़ दिए।

टर्की के राष्ट्रीय दल के नेता मुस्तफा कमाल पाशा ने इस सन्धि को स्वीकार नहीं किया तथा उसने ग्रीस की सेनाओं को पराजित कर भगा दिया। अत: मित्र-राष्ट्रों ने सेव्र की सन्धि पर पुन: विचार करने के लिए १६२३ में लोजान में एक सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन में उक्त सन्धि में निम्नलिखित संशोधन किए गए—

(१) पूर्वी थ्रेस, आर्मीनिया तथा स्मर्ना तुर्की को वापस मिल गए।

(२) अपनी सीमा से बाहर के प्रदेशों यथा मेसोपोटामिया, सीरिया, सूडान, अरब, मिस्र, साइप्रस तथा फिलिस्तीन आदि पर तुर्की का कोई अधिकार न रहा।

(३) तुर्की को अल्प-संख्यकों के हितों की रक्षा का आश्वासन देना पड़ा।

(४) तुर्की की सेना पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया तथा उससे हर्जाना भी नहीं मांगा गया।

यह सन्धि आरोपित शान्ति (Dictated Peace) नहीं थी। यह पर्याप्त वार्ता के पश्चात् हुई थी। इस सन्धि के करते समय मित्रराष्ट्रों के हृदय में कटुता का अंश बहुत कुछ कम हो गया था, क्योंकि यह सन्धि युद्ध समाप्त होने के २—३ बर्ष पश्चात् हुई थी। इस सन्धि पर हस्ताक्षर भी शत्रु देश में नहीं हुए थे। यदि अन्य देशों के साथ भी इसी प्रकार सन्धियाँ की जातीं तो बहुत कुछ अंशों तक यूरोप में स्थायी शान्ति स्थापित होने की सम्भावना थी।

पेरिस सन्धि की आलोचना

मित्रराष्ट्र पेरिस में इसलिए इकट्ठे हुए थे कि समस्त विश्व में स्थायी शांति स्थापित की जाय; परन्तु इस कार्य में उनको सफलता न मिली। मार्शल फाँस के शब्दों में पेरिस सम्मेलन २० वर्षों के लिए विराम सन्धि का ही कार्य कर सका। कोई भी राष्ट्र इस सन्धि से संतुष्ट न हो सका—

अमेरिका—अमेरिका के राष्ट्रपति विलसन ने शान्ति सम्मेलन में कठिन परिश्रम किया था; परन्तु फिर भी वह आलोचना से न बच सका। मि० बुलिट ने राष्ट्रपति विलसन को एक खुले पत्र में लिखा था, 'मैं उन करोड़ों लोगों में से एक था, जिन्होंने आँख बन्द कर आपके नेतृत्व में विश्वास प्रकट किया। हमें यह विश्वास था कि आप नि:स्वार्थ तथा निष्पक्ष न्याय के आधार पर स्थायी शान्ति स्थापित करेंगे; परन्तु हमारी सरकार ने तो पीड़ित जातियों को मुक्ति दिलाने की अपेक्षा उन्हें अत्याचारों, गुलामी तथा विभाजनों के हाथ में सौंप दिया है। यह हम सब मानते हैं कि आपने इन सब बातों का विरोध किया और दबाव में आकर ही इनको स्वीकार किया है। यदि आप गुप्त रूप से लड़ने के स्थान पर मैदान में लड़ते तो समस्त विश्व का जनमत आपके साथ होता। मुझे खेद है कि आप निर्णायक युद्ध नहीं लड़े। आपको मुझ जैसे उन करोड़ों व्यक्तियों में बहुत कम विश्वास रहा, जिन्हें आप में विश्वास था।' विलसन ने राष्ट्र संघ की स्थापना के लिए बहुत अधिक प्रयास किया था। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने कुछ स्थानों पर अपने सिद्धान्तों की भी अवहेलना की; परन्तु अमेरिकन सीनेट ने राष्ट्र-संघ का विरोध किया और वह उसका सदस्य नहीं हुआ।

फ्रांस—इस सन्धि में सबसे अधिक ध्यान फ्राँस का रक्खा गया था; परन्तु फ्रेंच पार्लियामेंट में क्लीमेन्शो की कटु आलोचना की गई और उस पर राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा का आरोप लगाया गया।

इङ्गलैंड—ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में लायड जार्ज की भी आलोचना की गई। कुछ सदस्यों ने उस पर यह आरोप लगाया कि उसने अमेरिका के आदर्शवाद के प्रभाव में आकर न्याय की उपेक्षा की है तथा कुछ लोगों ने यह आरोप लगाया कि उसने फ्राँस को प्रसन्न करने के लिए जर्मनी पर कठोर शर्तों वाली सन्धि लाद दी है।

इटली—इटली भी इस सन्धि से सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसे जो मिला था, उसे वह अपर्याप्त बतला रहा था। युद्ध में इटली ने पर्याप्त बलिदान किये थे; परन्तु युद्धोपरान्त उसे केवल ट्रेण्टिना, टाइरोल तथा डालमेशिया का एक भाग ही प्राप्त हुआ। उसको इटैलियन भाषा-भाषी प्रदेश भी न मिला। इसी से एक विद्वान् ने ठीक कहा है कि 'इटली युद्ध में तो जीत गया; परन्तु शान्ति सम्मेलन में पराजित हो गया।' इससे इटली में बहुत असन्तोष फैला। वह मित्र राष्ट्रों का विरोधी हो गया। वहाँ फासिस्टवाद का उदय हुआ तथा द्वितीय महायुद्ध में इटली ने मित्र राष्ट्रों के विरोध में युद्ध किया।

आस्ट्रिया—इस सन्धि के अनुसार आस्ट्रिया का अंग-भंग कर उसको ६० लाख आबादी का एक छोटा-सा जनतन्त्र बना दिया गया था। उसकी सेना घटाकर ३० लाख कर दी गई थी। वह नौ-सेना नहीं रख सकता था। उस पर युद्ध का भारी हर्जाना लाद दिया गया था। अतः आस्ट्रिया भी इस सन्धि का विरोधी था।

हंगरी—हंगरी के प्रदेशों का बंटवारा कर दिया गया था। इससे उसका क्षेत्रफल कम हो गया था। उसके मग्यर विदेशी शासन के अन्तर्गत चले गये थे। अतः हंगरी भी इस सन्धि का विरोधी था।

टर्की—टर्की के साम्राज्य का विभाजन कर दिया गया था। अतः टर्की इसका विरोधी था। राष्ट्रीय नेता मुस्तफा कमाल पाशा ने इस सन्धि का उल्लंघन कर यूनान को पराजित कर दिया था। इससे मित्र राष्ट्रों को टर्की से एक नई सन्धि करनी पड़ी।

जर्मनी—जर्मनी को उस सन्धि से सबसे अधिक असन्तोष था। उसका कहना था कि इस सन्धि पर मित्र राष्ट्रों ने हमसे तलवार के बल पर हस्ताक्षर कराए हैं। यह सन्धि विजेताओं द्वारा पराजितों पर लाद दी गई है। अतः यह हम पर बन्धन-कारी नहीं हो सकती।

जर्मनी की शिकायतें—वार्साय सन्धि के विरोध में जर्मनी ने निम्नलिखित शिकायतें प्रस्तुत कीं—

(१) जर्मन प्रतिनिधियों का यह कहना था कि हमने विल्सन के चौदह सिद्धान्तों के आधार पर युद्ध-विराम सन्धि पर हस्ताक्षर किये थे; परन्तु सन्धि की शर्तों में पूर्णतया विल्सन के चौदह सिद्धान्तों का पालन नहीं किया गया है।

(२) युद्ध-काल में बार-बार मित्र राष्ट्रों ने यह कहा था कि हम जर्मन राष्ट्र के विरुद्ध नहीं, अपितु वहाँ की साम्राज्यवादी निरंकुश सत्ता के विरोध में युद्ध कर रहे हैं। जर्मनी में अब लोक-प्रिय जनतन्त्रवादी सरकार की स्थापना हो गई है। साम्राज्यवादी निरंकुश सत्ता का अन्त हो गया है। अतः निरंकुश तथा साम्राज्यवादी सरकार के स्थान पर जर्मन राष्ट्र को दण्ड नहीं देना चाहिए।

(३) यह न्याय-युक्त सन्धि नहीं है। जर्मनी पर इतना भारी हर्जाना लाद दिया गया है कि इसके भार से वह सदैव ही गुलाम बना रहेगा।

(४) समानता के आधार पर जर्मनी को भी राष्ट्र संघ का सदस्य बनाया जाना चाहिए।

(५) सार के जर्मन प्रदेश को १५ वर्ष के लिए जर्मनी से छीन लिया गया है। अपर साइलेशिया को पोलैण्ड को दे दिया गया है, जबकि सात सौ पचास वर्ष से उसका उससे कोई सम्बन्ध न था। अल्सेस-लोरेन, डेंजिग, मेमल, पोलैंड तथा बेलजियम को प्रदान किए जाने वाले प्रदेशों में आत्म-निर्णय के सिद्धान्त का पालन नहीं किया गया है। इससे बहुत से जर्मन जर्मनी से अलग हो गये हैं। बहुत से जर्मनों को जेकोस्लोवाकिया के राज्य में रख दिया गया है। जर्मनी के उपनिवेशों को अनुचित ढंग से छीन लिया गया है।

मित्र राष्ट्रों का उत्तर—मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी की सभी शिकायतों का उत्तर देने का प्रयास किया—

(१) शान्ति सन्धि में यथा-शक्ति विल्सन के चौदह सिद्धान्तों के पालन का प्रयास किया गया था। विल्सन के सभी सिद्धान्तों का पालन करना कठिन था। विल्सन के चौदह सिद्धान्त उसके राजनीतिक भाषण थे। अतः सन्धि की शर्तों में उनका पूर्ण पालन होना असम्भव था। उसके सिद्धान्त सब देशों के लिए थे। अतः सबको किसी एक देश पर लागू नहीं किया जा सकता था।

(२) जर्मनी ने अपने शासकों का समर्थन किया था। अतः जर्मन राष्ट्र को सजा देना आवश्यक था। (गूच)

(३) जर्मनी ने न्याय की याचना की है। अतः उसको अवश्य ही न्याय दिया जायगा। परन्तु उसको यह ध्यान रखना चाहिए कि न्याय सबके साथ हो। युद्ध में काम आने वालों, घायलों तथा पितृहीनों के लिये भी ध्यान मिलना चाहिए। युद्ध का हर्जाना न्याय का सार है। अतः जर्मनी को अधिक से अधिक हर्जाना देना चाहिए, जिससे कि घर-विहीन व्यक्तियों तथा ऋण के भार से दबे राष्ट्रों के प्रति भी न्याय किया जा सके। (लिप्सन)

(४) जर्मनी को राष्ट्र संघ का सदस्य अभी इसलिए नहीं बनाया गया है क्योंकि विजेता राष्ट्र उसको समानता के स्थान पर बैठाने के लिए तैयार नहीं हैं। (लिप्सन)

(५) प्रादेशिक परिवर्तन की शर्तें कठोर होने पर भी न्यायपूर्ण हैं, क्योंकि बहुत से प्रदेशों पर जर्मनी ने अन्यायपूर्ण ढंग से अधिकार कर लिया था। विल्सन के

सिद्धान्तों के अनुसार अल्सेस-लोरेन को फ्राँस को दिया जाना आवश्यक था। साइलेशिया में जनमत की बात मान ली गई। जर्मनी ने उत्तरी-पूर्वी फ्राँस की कोयले की खानों को नष्ट कर दिया था। अतः उसकी क्षति-पूर्ति के लिए फ्राँस को जर्मनी का कोयला-प्रधान प्रदेश सार देना आवश्यक था। स्वतन्त्र पोलैण्ड को उसके पुराने प्रदेश तथा समुद्र तक का मार्ग देना आवश्यक था। जर्मनी से उसके उपनिवेशों को इसलिये छीन लिया गया है कि उसके प्रबन्ध से वहाँ की जनता दुःखी थी।

मित्र राष्ट्र ने वार्साय सन्धि में कुछ संशोधनों को भी स्वीकार कर लिया। उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि सन्धि की शर्तें कठोर होने पर भी न्याय-संगत हैं और मित्र राष्ट्रों का उद्देश्य जर्मनी से प्रतिशोध लेना नहीं है।

दोष—वार्साय की सन्धि में निम्नलिखित महत्वपूर्ण दोष थे :—

आरोपित शान्ति (Dictated Peace)—वार्साय की सन्धि को इतिहास में आरोपित शान्ति कहा गया है। यह विजेताओं द्वारा पराजितों पर लादी गई थी। वास्तव में बहुत कुछ सीमा तक प्रत्येक सन्धि ही विजेताओं द्वारा पराजितों पर लादी जाती हैं; परन्तु वार्साय सन्धि में यह दोष कहीं अधिक स्पष्ट था। सन्धि की शर्तें तय करते समय जर्मन प्रतिनिधियों को पेरिस सम्मेलन में नहीं बुलाया गया था। अतः इस सन्धि का आधार पारस्परिक आदान-प्रदान नहीं था। सन्धि का प्रारूप देने पर जर्मन प्रतिनिधियों को उस पर विचार करने का २१ दिन का समय दिया गया था। इस मध्य वे केवल लिखकर ही वार्ता कर सकते थे। जर्मन प्रतिनिधियों ने विस्तार-पूर्वक सन्धि की आलोचना की थी तथा उसकी बुराइयों की ओर मित्र राष्ट्रों का ध्यान आकर्षित किया। मित्र राष्ट्रों ने उसमें कतिपय संशोधन स्वीकार किये थे। इसके बाद उन्होंने संशोधित ड्राफ्ट जर्मन प्रतिनिधयों को देते हुए यह आदेश दिया था कि यदि वे ५ दिन के अन्दर-अन्दर उस पर हस्ताक्षर न करेंगे तो पुनः जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी जायगी। इस प्रकार संशोधित सन्धि-पत्र पर जर्मन प्रतिनिधियों द्वारा तलवार के बल से हस्ताक्षर कराये गये थे। इससे जर्मनी इनको अपने लिए बन्धनकारी नहीं मानता था।

अपमानजनक सन्धि—पराजित जर्मनी के लिए यह बहुत अपमानजनक सन्धि थी। इस सन्धि के अन्तर्गत जर्मन प्रतिनिधियों के साथ समानता का बर्ताव नहीं किया था। उनको शान्ति-सम्मेलन में नहीं बुलाया गया था। जर्मनी को राष्ट्र-संघ का भी सदस्य नहीं बनाया गया था। जर्मन प्रतिनिधियों को नुकीले तारों से घिरे एक होटल में कैदियों की भाँति ठहराया गया था। उनको इधर-उधर घूमने की स्वतन्त्रता नहीं थी। उनके ऊपर कड़ी निगरानी रक्खी गई थी। सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिए उन्हें पहरे के साथ अपराधियों की भाँति ले जाया गया था। मार्ग में जनता ने उन पर ईंट-पत्थर तथा गालियों की वर्षा की थी। अन्य प्रतिनिधियों को गार्ड ऑफ ऑनर (Guard of Honour) दिया गया था; परन्तु जर्मन प्रतिनिधियों के आने पर वह उठा दिया गया था। हस्ताक्षर करने के समय भी उनको मित्र राष्ट्रों के प्रतिनिधियों के

समान बराबरी का स्थान नहीं दिया गया था। इस प्रकार अनावश्यक रूप से जर्मनी का घोर अपमान किया गया। जर्मन राष्ट्र भली प्रकार समझ गया कि इस अपमान का कारण युद्ध नहीं अपितु युद्ध में हमारा पराजित होना है। अतः भविष्य में एक ऐसा युद्ध किया जाय जिसमें विजय प्राप्त कर जर्मनी अपने पिछले अपमान का प्रक्षालन कर सके।

कठोर शर्तें—वार्साय सन्धि की शर्तें जर्मनी के लिये बहुत कठोर थीं। लिप्सन महोदय के शब्दों में प्रथम महायुद्ध में पराजित हो जाने के कारण जर्मनी को पर्याप्त कीमत चुकानी पड़ी थी। मुख्यतः भूमि की हानि उसको बहुत अधिक उठानी पड़ी थी। लैंगसम महोदय ने जर्मनी की क्षति की एक लम्बी तालिका इस प्रकार दी है—इस सन्धि के फलस्वरूप जर्मन भूमि का आठवाँ भाग तथा सत्तर लाख व्यक्ति उससे छीन लिए गए थे। उसके सारे उपनिवेश छीन लिए गए थे। इससे उसके लिये रबर तथा तेल आदि की भी बहुत कमी हो गई थी। उससे १५ प्रतिशत कृषि-योग्य भूमि, १२ प्रतिशत पशु तथा १० प्रतिशत कारखाने छीन लिए गए थे। उससे कोयले का $\frac{२}{५}$ भाग, लोहे का $\frac{२}{३}$ भाग, जस्ते का $\frac{७}{१०}$ भाग तथा $\frac{१}{२}$ भाग से अधिक सीसा छीन लिया गया था। उसके व्यापारिक तथा मछली पकड़ने के जहाज भी छीन लिये गये थे। उस पर भारी हर्जाना लाद दिया गया था। उसकी स्थल-सेना की संख्या एक लाख निश्चित कर दी गई थी। उसकी जल-सेना सीमित तथा हवाई सेना भंग कर दी गई थी। शिवेल महोदय ने लिखा है कि 'एक निर्णायक युद्ध के पश्चात् जितनी सन्धियाँ अब तक पराजित राष्ट्रों पर लादी गई हैं, उनमें यह सबसे अधिक कठोर थी।' लैंसिग के अनुसार भी सन्धि की शर्तें कठोर थीं और उनमें से अधिकांश को क्रियान्वित किया जाना कठिन था। विवश होकर ही जर्मन राष्ट्र ने सन्धि की इन शर्तों पर हस्ताक्षर किये थे तथा यह निश्चित था कि अवसर पाकर जर्मन राष्ट्र इनको अवश्य तोड़ेगा।

प्रतिशोधात्मक सन्धि—मित्र राष्ट्र वार्साय सन्धि को न्याय-संगत कहते थे; परन्तु उपर्युक्त शर्तों तथा मित्र राष्ट्रों के जर्मन व्यवहार से यह स्पष्ट होता है कि यह सन्धि प्रतिशोधात्मक थी। मित्र राष्ट्र पराजित जर्मनी को इतना अधिक दबाना चाहते थे कि भविष्य में वह पुनः कभी सिर न उठा सके। लायड जार्ज ने कहा था कि सन्धि की शर्तें युद्ध में काम आने वाले वीरों के रक्त से लिखी गई हैं। क्लीमेन्शो ने कहा था, 'अब हमें बदला लेने का अवसर मिल गया है।'[1] मित्र राष्ट्रों का यह दृष्टिकोण था—'हम कैसर को फाँसी दे देंगे तथा जर्मनी से युद्ध का पूरा हर्जाना वसूल करेंगे।'[2]

एकपक्षीय शर्तें—इस सन्धि की शर्तें एकपक्षीय थीं। मित्र राष्ट्रों ने बलपूर्वक उनको जर्मन राष्ट्र पर लाद दिया था। सन्धि का आधार पारस्परिक आदान-प्रदान

1. 'The time has come when we must settle our accounts.'

2. 'We shall hang Kaiser and make Germany pay to the last penny.'

नहीं था। शान्ति सम्मेलन में विचार-विमर्श के लिए जर्मन प्रतिनिधियों को नहीं बुलाया गया था। संशोधित सन्धि पत्र पर जर्मन प्रतिनिधियों से बलपूर्वक हस्ताक्षर करा लिए गए थे। सन्धि की कुछ शर्तें ऐसी थीं जिनको एकमात्र जर्मनी पर ही लागू किया गया था, मित्र राष्ट्रों ने उनको अपने लागू ऊपर नहीं किया था —

(१) युद्ध-काल में दोनों पक्षों ने ही भयंकर अपराध किये थे; परन्तु युद्धोपरान्त एकमात्र जर्मन युद्ध-अपराधियों पर ही अभियोग चलाये गये थे।

(२) जर्मनी के उपनिवेश छीन लिये गये थे; परन्तु मित्र राष्ट्रों के पास बराबर उपनिवेश रहे।

(३) संग्रहालयों की लूट वापस करने के लिए एकमात्र जर्मनी पर ही जोर दिया गया था।

(४) जर्मनी का पूर्ण निःशस्त्रीकरण कर दिया गया था; परन्तु अन्य राष्ट्रों की सेनाओं तथा हथियारों में कोई कमी नहीं की गई थी।

(५) जर्मनी को राष्ट्र संघ का सदस्य नहीं बनाया गया था।

इन एकपक्षीय शर्तों से जर्मनी को बहुत अधिक क्रोध आना स्वाभाविक था। यदि मित्र राष्ट्र स्वयं भी इन शर्तों का पालन करते तो सम्भवतः जर्मनी को अधिक क्रोध न आता।

विलसन की चौदह शर्तों का पालन—जर्मनी का यह कहना था कि हमने विलसन की चौदह शर्तों के आधार पर आत्म-समर्पण किया था; परन्तु शान्ति-सन्धि में इनमें से किसी शर्त का भी पालन नहीं किया गया है। इसके विपरीत मित्र राष्ट्रों का यह कहना था कि विलसन की प्रत्येक शर्त का पालन किया गया था। वास्तविकता इन मतों के मध्य में है। हार्डी महोदय ने यह सिद्ध कर दिया है कि विलसन द्वारा प्रतिपादित अधिकांश शर्तों का कहाँ तक पालन हुआ।

विलसन के सिद्धान्तों का पालन—राष्ट्रीयता, आत्म-निर्णय तथा राष्ट्र संघ विलसन के सिद्धान्त थे। जर्मनी का यह कहना था कि वार्साय सन्धि में इनका पालन नहीं हुआ है। यह सत्य है कि बहुत कुछ अंशों तक इन सिद्धान्तों का पालन नहीं हुआ; परन्तु विलसन ने इनके पालन कराने का पूर्ण प्रयास किया था। साइलेशिया आदि कई स्थानों में जनमत का आश्रय लिया गया था। राष्ट्रीयता तथा आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के अनुसार पोलैण्ड, फिनलैण्ड, जेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया, लिथ्यूनिया, एस्टोनिया तथा लाटविया आदि नये राष्ट्रों का जन्म हुआ था। यह माना जा सकता है कि पोलेंड तथा डैन्जिग आदि में इन सिद्धान्तों की अवहेलना की गई। परन्तु इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इन प्रदेशों पर जातियाँ इतनी मिली-जुली बसी हुई थीं कि कुछ न कुछ अल्पसंख्यक जातियों का विदेशी शासन में रहना अनिवार्य था। फिर भी कुछ विद्वानों का यह मत है कि वार्साय सन्धि में विलसन के सिद्धान्तों तथा १४ शर्तों के अनुसार जर्मनी के साथ पूरा-पूरा न्याय नहीं किया

गया। विद्वानों का यह मत है कि विल्सन के १४ सिद्धान्तों का रूप विकृत हो गया था।[1] कुछ विद्वानों का मत है कि 'यह समझौता विल्सन के आदर्शवाद के भेष में साम्राज्यवादी समझौते को छुपाने का दोषी है।'[2]

गुण—वार्साय सन्धि के दोषों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया जा चुका है। अब संक्षेप में इसके कतिपय गुणों की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है। यद्यपि इस सन्धि में विल्सन के सिद्धान्तों का पूरी तरह पालन नहीं हुआ, फिर भी यह एक आदर्शवादी सन्धि थी। सेटनवाटन ने लिखा है कि यह पहला अन्तर्राष्ट्रीय समझौता था, जो कुछ निश्चित नैतिक सिद्धान्तों के आधार पर बनाया गया था। हार्डी के अनुसार इससे पहले कभी किसी शान्ति-सन्धि का स्वरूप इतना अधिक आदर्शवादी नहीं था।[3] संक्षेप में इस संधि में निम्नलिखित विशेषतायें थीं—

(१) संधि की शर्तों का निश्चय विल्सन के द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों के आधार पर हुआ था।

(२) विल्सन के एक सिद्धांत के अनुसार राष्ट्रसंघ का निर्माण किया गया था। उसका उद्देश्य विश्व में शान्ति स्थापित करना था।

(३) मजदूरों की दशा सुधारने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ की स्थापना की गई थी।

(४) जर्मनी के उपनिवेशों का वितरण मित्र राष्ट्रों में संरक्षण-प्रणाली के आधार पर हुआ था।

(५) जर्मनी से युद्ध का सम्पूर्ण व्यय नहीं मांगा गया था। उससे एकमात्र नागरिक सम्पत्ति को पहुंची क्षति का हर्जाना मांगा गया था।

(६) हर्जाना निश्चित करने के लिये क्षतिपूर्ति आयोग (Reparation Commission) की स्थापना की गई थी।

(७) राष्ट्रीयता तथा आत्मनिर्णय के सिद्धान्त के आधार पर पोलैण्ड, फिनलैंड, जैकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया, लिथुनिया, एस्टोनिया तथा लैटविया आदि नये राष्ट्रों का निर्माण किया गया था। राष्ट्रीयता के सिद्धांत का इतनी सीमा तक कभी भी पालन नहीं हुआ था। इसके बाद यूरोप की केवल तीन प्रतिशत जातियाँ ही विदेशी शासन में रह गई थीं।

वार्साय सन्धि की कठोरता—वार्साय सन्धि की कुछ शर्तें वास्तव में बहुत कठोर थीं। मित्र-राष्ट्र भी उसकी कठोरता से परिचित थे। लायड जार्ज ने एक बार

---

1. 'The Fourteen points have become fourteen disappointments.'

2. 'The settlement was guilty of disguising an imperialistic peace under the serplice of Wilsonism.'

3. 'On the other hand there has surely never been constructed a peace of so idealistic a character.'

कहा था—'इस सन्धि की कुछ शर्तें बहुत भयंकर तथा कठोर हैं, परन्तु जर्मनी के कार्य भी कम भयंकर न थे और यदि जर्मनी जीत जाता तो इसके परिणाम भी कम भयंकर न होते।' दक्षिणी अफ्रीका के प्रतिनिधि जनरल स्मट्स ने कहा था—'मैंने इस सन्धि पर हस्ताक्षर इसलिए नहीं किये हैं कि यह संतोषजनक सन्धि है, अपितु इस कारण कि युद्ध समाप्त करने के लिए ऐसा करना आवश्यक हो गया था। उसके साथी बोथा का भी यही मत था। वेथमान-होल्वेग ने अपने संस्मरणों में लिखा है—'पराजितों को सदैव के लिये दास बनाने के लिये इससे भयंकर सन्धि कभी नहीं बनाई गई।' इस सन्धि के कठोर होने का उत्तरदायित्व निम्न बातों पर डाला जा सकता है—

(१) शान्ति सम्मेलन में जर्मन प्रतिनिधियों को नहीं बुलाया गया था। इसलिये सन्धि की शर्तें पारस्परिक विचार-विमर्श के पश्चात् निश्चित नहीं हुई थीं, अपितु विजेताओं द्वारा पराजितों पर बलपूर्वक लाद दी गई थीं।

(२, वार्साय सन्धि के कई विभाग थे, जैसे आर्थिक, राजनीतिक तथा सैनिक आदि। प्रत्येक विभाग की शर्तें विशेषज्ञों के अलग-अलग कमीशनों द्वारा निश्चित हुई थीं। बाद में ये सब सन्धि में सम्मिलित कर ली गईं। इससे सन्धि बहुत कठोर हो गई; परन्तु बाद में उसकी सम्मिलित कठोरता के ऊपर कोई विचार नहीं किया गया।

(३) शान्ति सम्मेलन का स्थान पेरिस निश्चित किया गया था। युद्धकाल में इस नगर का भारी विनाश हुआ था। दो बार इसका घेरा डाला गया था। अतः युद्ध के ध्वंसावशेषों को देखकर मित्रराष्ट्रों के हृदय में प्रतिशोध की भावना विद्यमान थी। यदि यह अधिवेशन स्वीटजरलैंड जैसे किसी दूरस्थ देश में किया जाता तो सम्भवतः विजेताओं के हृदय में प्रतिशोध की भावना कम होती।

(४) मित्रराष्ट्रों ने युद्ध-काल में ही कुछ देशों को अपनी ओर मिलाने के हेतु उनका पुरस्कार गुप्त सन्धियों के अनुसार निश्चित कर दिया था। लन्दन की सन्धि के अनुसार इटली का हिस्सा निश्चित कर दिया गया था। फ्राँस को अल्सेस-लोरेन वापस देने का वचन दे दिया गया था। मित्र-राष्ट्रों ने टर्की तथा जर्मनी के साम्राज्य के बंटवारे की योजना बना ली थी।

(५) विल्सन सच्चे अर्थों में विश्व में शान्ति स्थापित करना चाहता था, परन्तु अन्य प्रतिनिधि शान्ति स्थापित के कार्य को महत्व न देकर अपने स्वार्थों को महत्व दे रहे थे। फ्रांस जर्मनी को इतना निर्बल करना चाहता था कि भविष्य में फिर कभी भी वह उसके विरुद्ध उठने का साहस न कर सके।

दूसरी विचारधारा—कुछ विद्वानों का यह मत है कि वार्साय-सन्धि इतनी कठोर नहीं थी, जितना कि उसकी कठोरता का ढिंढोरा पीटा गया है। लिप्सन महोदय का कथन है कि कालान्तर में वार्साय की सन्धि की आलोचना करना तथा उसको एक कठोर सन्धि कहना एक फैशन सा हो गया था। वर्डसाल ने ठीक ही लिखा है कि 'यदि विल्सन शान्ति सम्मेलन में न होता तो जर्मनी के लिये यह सन्धि

इससे भी कहीं अधिक कठोर होती।' हाल तथा डेविस ने इसी प्रकार लिखा है, 'इस सन्धि के अनुसार राइनलैंड को फ्रांस का अंग बनाया जा सकता था। १८६६ की भांति जर्मनी को मेन नदी पर विभक्त किया जा सकता था। परन्तु इस सन्धि में इस प्रकार की असंगत बातों को स्थान नहीं दिया गया था। केनीज आदि कुछ विद्वानों ने वार्साय सन्धि की कठोरता का वर्णन करते हुये उसको कार्थेज जैसी शान्ति (Carthagian Peace) कहा है, परन्तु हाल तथा डेविस इस मत से भी सहमत नहीं हैं। वे इसको अतिशयोक्ति पूर्ण मानते हैं। उनके अनुसार कार्थेज के साथ इसकी अपेक्षा कहीं अधिक अन्यान्य हुआ था। प्रायः सभी विद्वान इस मत से सहमत है कि जर्मनी ने ब्रेस्टलिटोवस्क की सन्धि रूस के साथ और बुखारेस्ट की सन्धि रूमानिया के साथ करते समय उससे भी कहीं अधिक कठोरता का व्यवहार किया था। यदि फिर मित्र-राष्ट्रों ने जर्मनी के साथ भी उसी नजीर का पालन किया तो उसको आपत्ति क्यों प्रकट करनी चाहिये? इस सन्धि की आलोचना करते हुये लैंगसम महोदय ने लिखा है—'शान्ति सम्मेलन के कार्यकर्त्ता इस सन्धि को इतना बना सकते थे कि जर्मनी को कभी उठने का साहस न होता। वे उसको इतनी उदार भी बना सकते थे कि उनको इसकी आलोचना करने की आवश्यकता ही न होती, परन्तु मित्र राष्ट्रों ने मध्यम मार्ग का आश्रय लिया। उन्होंने इतनी कठोर सन्धि का निर्माण किया जिसने कि जर्मन राष्ट्र के हृदय में प्रतिशोध की भावना जागृत की तथा इतनी उदार सन्धि तैयार की जिसने कि बीस वर्षों में ही जर्मनी को संसार का सबसे भयंकर युद्ध प्रारम्भ करने के लिए एक शक्तिशाली सैनिक राष्ट्र बना दिया।' यदि मित्र-राष्ट्र अपने पारस्परिक मतभेदों का पालन कराते तो उसको यह विदित हो जाता कि वह युद्ध में पराजित ही नहीं हुआ है, अपितु भविष्य में उसके लिये युद्ध प्रारम्भ करना विनाशकारी होगा।

सन्धियों का मूल्यांकन—युद्धोपरान्त जर्मनी, आस्ट्रिया, रूस तथा टर्की के बड़े साम्राज्यों का अन्त हो गया और उनके स्थान पर छोटे-छोटे राज्यों का निर्माण हुआ। इनमें से कुछ राज्य इतने छोटे थे कि वे अपनी सुरक्षा भी नहीं कर सकते थे। इससे कार्विन महोदय ने लिखा है—'Europe was balk anised.' राष्ट्रीयता का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया था तथा आत्मनिर्णय (Self determination) के सिद्धान्त को मान्यता मिल गयी थी। राष्ट्रीयता के सिद्धान्त के आधार पर ही पोलैण्ड, फिनलैण्ड जैकोस्लोवाकिया तथा यूगोस्लाविया आदि राज्यों का निर्माण हुआ था। यूरोप में १९१४ में ४५ करोड़ व्यक्ति परतन्त्र थे; परन्तु १९१९ में केवल १६ करोड़ लोग ही परतन्त्र रह गये थे। यह संख्या यूरोप की समस्त जनसंख्या की तीन प्रतिशत के लगभग थी। यह राष्ट्रीयता के सिद्धान्त की भारी सफलता थी। इससे पहले राष्ट्रीयता के सिद्धान्त का इतनी सीमा तक कभी पालन नहीं हुआ था। राष्ट्रीयता के सिद्धान्त की रक्षा के लिए ही राष्ट्रपति विल्सन ने फ्रांस के राइन प्रदेश में पृथक् राज्य का निर्माण करने तथा इटली के फ्यूमे अधिकार करने की मांग का समर्थन नहीं किया था परन्तु फिर भी कुछ स्थानों पर राष्ट्रयता तथा आत्म निर्णय

के सिद्धान्तों की अवहेलना हुई। आत्म-निर्णय के सिद्धान्त की उपेक्षा कर जर्मनी तथा आस्ट्रिया के मिलन का निषेध कर दिया गया था। आस्ट्रिया से ४० लाख जर्मनी को अलग कर जेकोस्लोवाकिया में शामिल कर दिया गया। जर्मनी से डेन्जिग तथा मेमल नामक दो नगर छीन लिये गए थे। उसके १० लाख से भी अधिक जर्मन पोलैण्ड के अधिन हो गये थे। हंगरी से ट्रांसिलवेनिया छीनकर रोमानिया को दे दिया गया। हंगरी के ३० लाख मगयर विदेशी शासन में चले गए। आर्मीनियन टर्की के ही अधीन रहे। इस प्रकार अल्पसंख्यकों की समस्या पैदा हो गयी; परन्तु इस सम्बन्ध में यह याद रखना चाहिए कि यूरोप में जातियाँ इतनी मिली-जुली बसी हुई थीं कि कुछ न कुछ अल्पसंख्यक जातियों का विदेशी शासन में रहना अनिवार्य था। अल्पसंख्यक लोगों की रक्षा के लिए जेकोस्लोवाकिया यूगोस्लाविया, पोलैण्ड तथा यूनान से सन्धियाँ की गयी थीं, परन्तु उन्होंने उसका पूरी तरह पालन नहीं किया। इससे अल्पसंख्यक-सम्बन्धी कटुता बहुत अधिक बढ़ गई। इन सन्धियों के अनुसार अनेक नए देश बनने के कारण १२ हजार मील लम्बी सीमा रेखाएं बन गई थीं। इससे अनेक चुंगियाँ बढ़ जाने के कारण आर्थिक संकट बढ़ गया था। अन्त में लिप्सन महोदय के शब्दों में यही कहा जा सकता है—'यूरोप का नवीन मानचित्र बहुत कुछ सीमा तक न्याय पर आधारित था। यूरोप का पुराना मानचित्र कभी भी इतना न्यायोचित न था। जातीयता के आधार पर जो परिवर्तन किए गए थे, वे उचित ही थे।' सारांश में यही कहा जा सकता है कि राष्ट्रीयता की दृष्टि से १९१९ के बाद का यूरोप प्रथम महायुद्ध के पूर्व के यूरोप से कहीं अधिक संतोषजनक था। कोई भी ऐसा निर्णय नहीं किया जा सकता था जिससे कि सब लोग संतुष्ट हों तथा आलोचना की सम्भावना न हो।

१९१९ का नया यूरोप—१९१९ में यूरोप में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गये थे। पुराना शक्ति-संतुलन समाप्त हो गया था। फ्रांस समस्त यूरोप पर छा गया था। समुद्रों पर ब्रिटेन का एकाधिकार स्थापित हो गया था। जर्मनी के साम्राज्य का अन्त हो गया था। अब वहाँ एक गणतन्त्र की स्थापना हो गई थी। कैसर ने हालैंड में शरण ले ली थी। जर्मनी की सेना की संख्या निश्चित कर दी गई थी। उसकी नौ-सेना बहुत अधिक सीमित कर दी गई थी। उसकी हवाई सेना का अन्त कर दिया गया था। एल्सेस-लोरेन के प्रदेश फ्रांस को वापस कर दिये गये थे। आस्ट्रिया के हैब्सबर्ग साम्राज्य के टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये। रूस के जार सम्राट् तथा उसके समर्थकों का वध कर दिया गया था। टर्की का विस्तार बहुत कम रह गया था। हंगरी का क्षेत्रफल पहले की अपेक्षा आधा ही रह गया था। रूमानिया का विस्तार दुगुने से भी अधिक हो गया था। राष्ट्रीयता के आधार पर यूरोप में पोलैंड, फिनलैंड, जेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया, लिथुनिया, एस्टोनिया तथा लैटविया आदि राज्यों का जन्म हुआ। इस प्रकार यूरोप पहले की अपेक्षा बहुत अधिक परिवर्तित हो गया था।

प्रश्न

१. सन् १६१६ की यूरोपीय व्यवस्था का आलोचनात्मक वर्णन कीजिये।

२. राष्ट्रपति विल्सन द्वारा प्रतिपादित आत्मनिर्णय के सिद्धांत को क्या उलझनें हैं ? उनको वार्साय सन्धि में कहां तक सम्मिलित किया गया था ?

३. विल्सन के चौदह सिद्धान्तों का वर्णन कीजिये। उनका कहां तक पालन किया गया था ?

4. In what respects was the Treaty of Versailles unjust to Germany ? What, in your opinion, would have been a just settlement with Germany ?

5. What were the main defects of the Peace Treaties concluded after the First World War ? What were they mainly due to ?

———

३

राष्ट्र-संघ
(League of Nations)

राष्ट्रसंघ का संविधान, राष्ट्रसंघ के उद्देश्य, संगठन, सफलतायें एवं असफलतायें, असफलता के कारण।

प्रथम महायुद्ध बहुत विनाशकारी सिद्ध हुआ। उसमें अपार जन-धन की हानि हुई। मनुष्य अशान्ति का परित्याग कर शान्ति की आकाँक्षा करने लगे। विश्व में युद्ध तथा स्थायी शान्ति स्थापित करने के लिये अमेरिका का राष्ट्रपति विल्सन बहुत लालायित था। वह सामूहिक सुरक्षा तथा पारस्परिक उत्तरदायित्व के आधार पर विश्व में शान्ति स्थापित करने का एक अनोखा प्रयोग करना चाहता था। उसने ही विश्व में शान्ति स्थापित करने के लिये राष्ट्र संघ की योजना रक्खी थी। उसने अपने चौदहवें सिद्धांत में इसका उल्लेख किया था। विल्सन ने अमेरिका का युद्ध में सम्मिलित होने का कारण भी युद्ध का अन्त करना तथा शाँति की स्थापना बताया था।

राष्ट्रसंघ का संविधान—राष्ट्रसंघ के संविधान को समझौते (Covenant) का नाम दिया गया है। इससे कोई भी देश इसको अपने से ऊँचा संगठन समझने के भ्रम में नहीं पड़ सकता था। १९ प्रतिनिधियों के सम्मेलन ने उसका संविधान बनाया था। विल्सन सम्मेलन का अध्यक्ष था। राष्ट्र-संघ की रूपरेखा का प्रतिपादन विल्सन ने किया था, परन्तु उसके विधान का कानूनी ढाँचा ब्रिटेन के प्रतिनिधियों द्वारा बनाया गया था। शांति सम्मेलन की सभी सन्धियों में इसको सम्मिलित किया गया था। राष्ट्र-संघ का समझौता बहुत संक्षिप्त था। उसमें एक भूमिका तथा २६ धारायें थीं। संविधान की निम्नलिखित धारायें बहुत महत्वपूर्ण हैं—

१०वीं धारा—राष्ट्र-संघ के सदस्य संघ के सभी सदस्यों की प्रादेशिक एकता (Territorial integrity) तथा राजनीतिक स्वतंत्रता का सम्मान करते हैं। किसी भी बाह्य आक्रमण के समय वे उसकी स्वतन्त्रता की रक्षा करेंगे।

१२वीं धारा—राष्ट्र-संघ के सभी सदस्य इस बात पर एकमत हैं कि यदि उनके मध्य कोई ऐसा झगड़ा खड़ा हो जाय जिसका कि परिणाम युद्ध हो सकता है तो वे उस विवाद के सम्बन्ध में पंचों द्वारा निर्णय करायेंगे या न्यायालय में उसका निर्णय करायेंगे अथवा निर्णय के लिये कौन्सिल के पास भेजेंगे। वे तब तक युद्ध प्रारम्भ नहीं करेंगे जब तक कि निर्णय को तीन महीने व्यतीत न हो गये हों।

१६वीं धारा—यदि राष्ट्र-संघ का कोई सदस्य समझौते की उपेक्षा करके युद्ध प्रारम्भ करता है तो वह राष्ट्र-संघ के सब सदस्यों के विरुद्ध युद्ध करने वाला समझा जायगा। राष्ट्र-संघ के सदस्य उससे व्यापारिक अथवा आर्थिक सम्बन्ध-विच्छेद कर देंगे। राष्ट्र-संघ के समझौते की रक्षा के लिये वे राष्ट्र-संघ के सदस्यों से यह अपील करेंगे कि उनको आक्रमणकारी देश के विरुद्ध कितनी संख्या में स्थल-सेना, जल-सेना अथवा वायु-सेना भेजनी है।

राष्ट्र-संघ के उद्देश्य—राष्ट्र-संघ के समझौते की भूमिका में उसके निम्न-लिखित उद्देश्य बतलाये गये हैं—

१. अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की वृद्धि करना।

२. अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा की स्थापना करना।

३. युद्ध को रोकना।

४. पेरिस के शान्ति-सम्मेलन की सन्धियों का पालन कराना।

संगठन—राष्ट्र-संघ की प्रथम सात धाराओं में इसकी सदस्यता तथा संगठन का वर्णन है। संक्षेप में इसका इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है—

सदस्यता—इसके समझौते पर सर्व-प्रथम हस्ताक्षर करने वाले १६ देशों को इसका सदस्य बना लिया गया। इसके दो महीने के पश्चात् जिन देशों ने इसके समझौते को स्वीकार कर लिया, उनको भी राष्ट्र-संघ का सदस्य बना लिया गया। असेम्बली के $\frac{2}{3}$ बहुमत से किसी भी देश को इसका सदस्य बनाया जा सकता था। कौन्सिल की सर्व-सम्मति से कोई भी राष्ट्र इसकी सदस्यता से वंचित किया जा सकता था। जो देश स्वेच्छा से इसकी सदस्यता त्यागना चाहता था, उसको दो वर्ष का नोटिस देना आवश्यक था। राष्ट्र-संघ में कभी भी समस्त महा-शक्तियाँ सम्मिलित न हो सकीं। विश्व का सबसे अधिक शक्तिशाली, निःस्वार्थी तथा इसका जन्मदाता अमेरिका इसका कभी सदस्य नहीं हुआ। प्रारम्भ में जर्मनी को भी इसका सदस्य नहीं बनाया गया। अन्त में १९२६ में उसको इसका सदस्य बनाया गया; परन्तु १९३३ में उसने इसे छोड़ने की सूचना दे दी। रूस को १९३३ में इसका सदस्य बनाया गया, परन्तु १९४० में उसने फिनलैंड पर आक्रमण कर दिया और कौन्सिल ने उसको सदस्यता से पृथक् कर दिया। जापान ने १९३३ में तथा इटली ने १९३७ में राष्ट्र-संघ को छोड़ दिया। इस प्रकार कभी भी सभी महाशक्तियां इसकी सदस्य न हो पाईं।

असेम्बली (Assembly)—असेम्बली राष्ट्र-संघ की प्रमुख संस्था थी। इसमें प्रत्येक सदस्य राज्य तीन प्रतिनिधि तक भेज सकता था। परन्तु प्रत्येक राज्य को एक ही वोट देने का अधिकार था। इसके सदस्य कुशल कूटनीतिज्ञ होते थे। वर्ष में एक बार इसका अधिवेशन होता था। वह अधिवेशन तीन सप्ताह तक चलता था। इसकी सदस्य-संख्या अधिक होने के कारण इसका महत्व कौन्सिल से भी अधिक बढ़ गया था। इसके समस्त निर्णय सर्व-सम्मति से किये जाते थे।

कार्य—असेम्बली के महत्वपूर्ण कार्यों का इस प्रकार वर्णन किया जा सकता

है—विश्व-शान्ति को प्रभावित करने वाले विषयों पर यह विचार कर सकती थी। $\frac{2}{3}$ बहुमत से यह संघ के सदस्य बनाती थी। बजट को भी यही पारित करती थी। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के जजों की नियुक्ति करती थी। कौंसिल के अस्थायी सदस्यों, सभापति तथा आठ उप-सभापतियों का चुनाव करती थी।

परिषद् (Council)—यह राष्ट्र-संघ की कार्यकारिणी थी। इसके एक वर्ष में प्राय: ३ अधिवेशन होते थे। इसकी प्रत्येक बैठक में फ्रेंच वर्णानुक्रम के अनुसार इसके सभापति का निर्वाचन होता था। इसके स्थायी सदस्यों की संख्या ५ थी—अमेरिका, इङ्गलैंड, फ्रांस, इटली तथा जापान। इस प्रकार इसमें महाशक्तियों को स्थायी सदस्यता दी गई थी। परन्तु अमेरिका इसमें सम्मिलित नहीं हुआ। अत: स्थायी सदस्यों की संख्या चार ही रह गई। इसके अस्थायी सदस्यों की संख्या भी चार थी। अत: दो वर्ष तक इसके सदस्यों की संख्या ८ रही। परन्तु कालान्तर में इसके अस्थायी सदस्यों की संख्या बढ़ाकर क्रमश: ६, ९ और अन्त में ११ कर दी गई। स्थायी सदस्यों की कार्यावधि ३ वर्ष होती थी। इसके $\frac{1}{3}$ सदस्यों को प्रति वर्ष अवकाश ग्रहण करना पड़ता था। कभी-कभी विशेष अवसरों पर किसी देश के किसी प्रश्न पर विचार करने के समय उसके एक सदस्य को बुला लिया जाता था और कार्य समाप्त होने पर उसकी सदस्यता भी समाप्त हुई समझी जाती थी।

कार्य—यह राष्ट्र-संघ के किसी भी सदस्य को समझौते की अवहेलना करने पर राष्ट्र-संघ की सदस्यता से वंचित कर सकती थी। संघ के समझौते की रक्षा के लिये यह आक्रमणकारी राष्ट्र के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करने का निश्चय कर सकती थी। अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का समाधान करने का कार्य भी इसी का था। सार प्रदेश तथा डेन्जिग के स्वतन्त्र नगर के शासन प्रबन्ध का कार्य भी इसी के जिम्मे था। मेन्डेट-सम्बन्धी राष्ट्रों की रिपोर्ट पर यही विचार करती थी। अस्त्र-शस्त्रों को कम करने तथा अल्प-संख्यकों के हितों की रक्षा करने का कार्य भी इसी का था।

सचिवालय (Secretariat)—इसका प्रधान केन्द्र जेनीवा था। इसका अध्यक्ष महा-मंत्री (Secretary-General) कहलाता था। इसकी नियुक्ति कौंसिल द्वारा होती थी। सचिवालय में ५० देशों के लगभए साढ़े सात सौ सदस्य कार्य करते थे। इसके सदस्य विभिन्न कार्य करने के लिये ११ विभागों में बंटे हुए थे।

कार्य—यह असेम्बली तथा कौंसिल में विचार करने के लिये कार्यों की सूची तैयार करता था। बैठकों के कार्यों को लिपिबद्ध करता था। राष्ट्र-संघ के सदस्य राज्य एक दूसरे से जो सन्धियां तथा समझौते करते थे, उनके प्रकाशन का कार्य भी इसी का था। इसने अपने जीवन-काल में पाँच हजार सन्धियों तथा समझौतों को मूल भाषा के साथ-साथ फ्रेंच तथा अंग्रेजी अनुवाद के साथ प्रकाशित कराया था। इस कार्यालय में दर्ज किये बिना संधियां बन्धनकारी नहीं मानी जाती थीं। सन्धियों के संशोधन के लिये भी परामर्श दिया जा सकता था।

अन्तर्राष्ट्रीय न्याय का स्थायी न्यायालय (Permanent Court of International Justice)—२० दिसम्बर १६२० को हेग में इस न्यायालय की स्थापना की गई। प्रारम्भ में इसके जजों की संख्या ११ थी, परन्तु १६३१ में इनकी संख्या १५ कर दी गई। इनका कार्य-काल नौ वर्ष था। ये अपना सभापति तथा उप-सभापति स्वयं चुनते थे। इनकी नियुक्ति असेम्बली तथा परिषद् की संयुक्त बैठक में होती थी।

कार्य—(१) विभिन्न देशों के पारस्परिक झगड़ों पर कानूनी राय देना।

(२) विभिन्न सन्धियों तथा समझौतों की व्याख्या करना।

(३) अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों के सम्बन्ध में यह असेम्बली तथा परिषद् को सलाह देने का कार्य भी करता था।

क्षेत्राधिकार—इस न्यायालय का क्षेत्राधिकार दो प्रकार का था—(१) ऐच्छिक तथा (२) आवश्यक।

ऐच्छिक क्षेत्राधिकार—जिस समय दो या दो से अधिक राष्ट्र अपना विवाद निर्णय के लिये न्यायालय के सम्मुख रखते थे तो यह ऐच्छिक क्षेत्राधिकार कहलाता था।

(२) **आवश्यक क्षेत्राधिकार**—कुछ राष्ट्रों ने सदस्य होते समय अपने झगड़ों का न्यायालय से निर्णय कराने के लिये प्रतिज्ञा की थी। यह आवश्यक क्षेत्राधिकार कहलाता था।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संघ (I. L. O.) राष्ट्र-संघ के सभी सदस्य इसके भी सदस्य हो सकते थे। इसका मुख्य कार्यालय जेनीवा में था। इसकी स्थापना का उद्देश्य था—'मजदूरी करने वाले पुरुषों, स्त्रियों तथा बच्चों के लिये उचित तथा मानवीय परिस्थितियाँ उत्पन्न करना।'[1]

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संघ के निम्नलिखित अंग थे—

(१) **सामान्य सम्मेलन** (General Conference)—इसको कानून बनाने का कोई अधिकार प्राप्त न था। यह मजदूरों की उन्नति तथा दशा सुधारने के संबंध में अनेक प्रस्ताव उपस्थित कर संसार को प्रभावित करने का प्रयास किया करता था। इसमें प्रत्येक सदस्य राज्य के चार प्रतिनिधि सम्मिलित होते थे। इनमें २ प्रतिनिधि सरकार में, एक मजदूरों का तथा एक मालिकों का होता था।

(२) **शासक सभा** (Governing Body)—इसके सदस्यों की संख्या ३२ थी। इनमें आठ सदस्य मजदूरों, आठ मिल मालिकों के तथा १६ सदस्य राज्यों के प्रतिनिधि थे। शासक सभा में प्रमुख औद्योगिक देशों की प्रधानता थी। शासक सभा का प्रधान कार्य अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय के डायरेक्टर का चुनाव करना था।

(३) **अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय** (International Labour Office)—इसका प्रमुख कार्य संसार भर के मजदूरों की दशा सुधारने की परिस्थितियों पर

---

1. 'To secure and maintain fair and humane conditions of labour for men and women and children.'

विचार करना था। इस कार्य के सम्पादन के लिये इसने अनेक समाचार-पत्रों का प्रकाशन किया था।

राष्ट्र-संघ की सफलतायें—राष्ट्र-संघ की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य विश्व में शान्ति स्थापित करना तथा युद्धों को रोकना था। प्रारम्भ में उसको अपने इस कार्य में कुछ सफलता अवश्य मिली; परन्तु अन्त में उसको अपने इस युद्ध में असफल होना पड़ा। राष्ट्र-संघ की कुछ सफलताओं का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है—

१. सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में लीग ने बहुत कुछ सफलता प्राप्त की। इसने स्त्री, पुरुष तथा बच्चों के अवैध व्यापार को रोकने का प्रयास किया। मजदूरों की दशा सुधारने के लिये भी महत्वपूर्ण कार्य किया गया। अफीम आदि मादक पदार्थों के प्रयोग पर नियन्त्रण स्थापित करने का प्रयास किया। टी० बी०, मलेरिया, चेचक तथा कॉलरा आदि भयंकर रोगों के प्रसार को रोगने के लिये भी कार्य किया गया।

२. युद्ध से पीड़ित १५ लाख यूनानी तथा ३० हजार बल्गेरियनों को बसाने की व्यवस्था की गई।

३. विभिन्न ३६ देशों के लगभग चार लाख युद्धबन्दियों को उनके घर पहुंचाया गया।

४. युद्ध-काल में कुछ देशों की आर्थिक अवस्था बहुत खराब हो गई थी। राष्ट्र-संघ ने उनके आर्थिक पुनर्निर्माण में बहुत अधिक सहयोग दिया। विशेषतया आस्ट्रिया तथा हंगरी के आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए राष्ट्र-संघ ने बहुत कार्य किया।

५. सार के शासन-प्रबन्ध में राष्ट्र-संघ को पर्याप्त सफलता मिली। राष्ट्र-संघ की देख-रेख में वहाँ जनमत संग्रह हुआ और उसके अनुसार मार्च १९३५ में सार का शासन-प्रबन्ध जर्मनी को दे दिया गया।

६. राष्ट्र-संघ ने जर्मनी तथा टर्की आदि के विभिन्न उपनिवेश विभिन्न राष्ट्रों में मेण्डेट के रूप में बाँट दिये थे। उन राष्ट्रों को अपने शासन की रिपोर्ट प्रतिवर्ष कौंसिल को देनी होती थी। राजनीति में यह एक नए सिद्धांत का प्रतिपादन था। सम्बन्धित देश इसको साम्राज्यवादी शोषण के स्थान पर अमानत समझते थे। इस कार्य में राष्ट्र-संघ को पर्याप्त सफलता मिली।

७. अन्तर्राष्ट्रीय न्याय का स्थायी न्यायालय भी बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। उसने अपने कार्य काल में ३१ विवादों के सम्बन्ध में अपने निर्णय तथा २७ मामलों में अपने परामर्श दिये थे।

८. संघ ने अन्तर्राष्ट्रीय कानून को लिपिबद्ध करने का भी प्रयास किया था।

९. लैंगसम महोदय के मतानुसार अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के विकास में राष्ट्र-संघ का बहुत हाथ रहा है।

(१) राजनीतिक प्रश्नों के हल करने में भी राष्ट्र-संघ ने प्रारम्भ में बहुत कुछ सफलता प्राप्त की। सन् १९२१ में ओलैण्ड (Aaland) के स्वामित्व के सम्बन्ध

में स्वीडन तथा फिनलैंड के मध्य विवाद खड़ा हो गया। इस पर राष्ट्र-संघ ने इसको फिनलैंड को दिला दिया। इस प्रदेश में रहने वाली स्वेडिश जनता को भी स्वायत्त-सम्बंधी अधिकार दिला दिए। एक अन्तर्राष्ट्रीय संधि के अनुसार इन द्वीपों को निःशस्त्र तथा तटस्थ घोषित कर दिया गया। १९२१ में यूनान तथा यूगोस्लाविया के मध्य अल्बानिया की सीमा के संबन्ध में विवाद खड़ा हो गया; परन्तु राष्ट्र-संघ ने वार्ता द्वारा शान्तिपूर्वक इसका समाधान करा दिया। लैटिशिया नगर के सम्बन्ध में कोलम्बिया तथा पेरू नामक राज्यों में विवाद उठ खड़ा हुआ। १९२२ की एक सन्धि के अनुसार पेरू के इस नगर को कोलम्बिया को दे दिया था। परन्तु १९३३ में पेरू ने सेनाएं भेजकर इस पर अधिकार कर लिया। परन्तु अन्त में राष्ट्र संघ ने दोनों में समझौता करा कर इस नगर को कोलम्बिया को दिला दिया। १९२५ में यूनान तथा बल्गेरिया के मध्य सीमा के सम्बन्ध में युद्ध प्रारम्भ हो गया। परन्तु राष्ट्र संघ ने अपने प्रयास से युद्ध बन्द कराकर दोनों में समझौता करा दिया। १९२३ मैं पोलैंड तथा जेकोस्लोवाकिया के मध्य सीमा-सम्बन्धी झगड़ा प्रारम्भ हो गया, परन्तु राष्ट्र.संघ द्वारा नियुक्त किए गए कमीशन ने सीमा निर्धारित कर दोनों में समझौता करा दिया। १९२३ में हंगरी तथा रूमानिया के मध्य भी झगड़ा हो गया; परन्तु राष्ट्र-संघ से शान्तिपूर्वक समस्या का समाधान करा दिया।

इस प्रकार प्रारम्भ में राष्ट्र-संघ को राजनीतिक क्षेत्र में भी पर्याप्त सफलता मिली।। सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में तो राष्ट्र-संघ ने बहुत अधिक प्रगति की थी। यद्यपि अन्त के युद्ध-निवारण के कार्य में राष्ट्र-संघ को सफलता न मिली, परन्तु संयुक्त-राष्ट्र (U. N. O.) के रूप में उसके द्वारा प्रतिपादित शान्ति का प्रयास अब भी कायम है।

राष्ट्र-संघ की असफलताएं—राष्ट्र-संघ को अपने युद्ध रोकने के कार्य में प्रारम्भ में पर्याप्त सफलता मिली; परन्तु उसकी यह सफलता छोटे-छोटे राष्ट्रों के सम्बन्ध में ही थी। बड़े राष्ट्रों के स्वार्थों के ऊपर वह अंकुश लगाने में सफल न हो सकी। नीचे संक्षेप में उन घटनाओं का वर्णन किया जायगा, जिनके सम्बन्ध में वह समझौता कराने में असफल रही—

विलना विवाद—विलना का नगर लिथुएनिया के अधिकार में था। परन्तु १९२० में पोलैंड ने इस पर अधिकार कर लिया। लिथुएनिया ने राष्ट्र-संघ से न्याय के लिए अपील की। राष्ट्र-संघ की कौंसिल ने दो वर्ष तक बराबर इस समस्या के सुलझाने का प्रयास किया। इस मध्य पोलैंड ने फ्रांस आदि देशों का समर्थन प्राप्त कर लिया। इसलिए राष्ट्र-संघ को इस संघर्ष में सफलता न मिली।

कार्फ्यू विवाद—यह विवाद इटली तथा यूनान के मध्य में था। १९२३ में यूनान तथा अल्बानिया के मध्य की सीमा निर्धारित करने वाले एक इटैलियन प्रतिनिधि की हत्या कर दी गई। इटली ने यूनान से क्षति-पूर्ति के लिए जोर दिया; परन्तु यूनान इसके लिए तैयार नहीं हुआ। यूनान ने मामले को राष्ट्र-संघ में भेज

दिया; परन्तु इटली ने यूनान के कार्फ्यू द्वीप पर बम-वर्षा कर उसका विध्वंस कर दिया। इटली के जोर देने पर राष्ट्र-संघ ने यह मामला राजदूतों की समिति को दे दिया। इटली ने यूनान से क्षति-पूर्ति प्राप्त की। इस घटना से राष्ट्र-संघ की निर्बलता स्पष्ट हो गई।

जापान तथा मंचूरिया का युद्ध—मंचूरिया एक उपजाऊ तथा समृद्ध देश था। वहाँ लोहा, कोयला, सोना, चाँदी तथा तांबे की खानें भी थीं। इसी कारण से जापान तथा रूस दोनों ही इसको लालच की दृष्टि से देख रहे थे। १९०५ की रूसी, जापानी सन्धि के अनुसार जापान को दक्षिणी मंचूरियन रेलवे की रक्षा के लिए मुकडन में १५ हजार सैनिक रखने का अधिकार मिल गया था। १९३१ में चीनियों ने उक्त रेलवे को कुछ हानि पहुंचाई तथा एक जापानी सेनापति की हत्या कर दी। फलतः जापान ने मंचूरिया पर आक्रमण कर दिया। चीन ने समस्त मामला राष्ट्र संघ में प्रस्तुत किया। परन्तु जापान को इसकी कोई चिन्ता न थी। उसने मंचूरिया के पर्याप्त क्षेत्र को जीतकर वहाँ मानचुकाओ नामक एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना कर दी तथा वहाँ अपने समर्थक पी-यू (Pi-Yo) को अध्यक्ष बनाया। जापान ने अपने आक्रमण का उद्देश्य चीनी लुटेरों से अपनी रक्षा करना बताया था। जापान को राष्ट्र-संघ की कोई चिन्ता न थी। फलतः उत्तरी चीन की नानकिंग सरकार तथा दक्षिणी चीन की साम्यवादी सरकार ने आपस में समझौता कर जापान के खतरे का सामना करने का निर्णय किया। चीन ने जापान के साथ व्यापार करना भी बन्द कर दिया। ८ जनवरी १९३२ को शंघाई में कुछ जापानी भिक्षुओं की चीनियों ने हत्या कर दी। इस पर जापान ने शंघाई पर भी आक्रमण कर दिया।

चीन ने अपनी रक्षा के लिए फिर राष्ट्र-संघ में अपील की। फलतः स्थिति की जांच के लिए ब्रिटिश प्रतिनिधि लिटन की अध्यक्षता में घटना-स्थल पर एक कमीशन भेजा गया। लिटन के नाम पर ही यह कमीशन इतिहास में 'लिटन कमीशन' के नाम से प्रख्यात है। लिटन कमीशन के प्रयास से शंघाई में युद्ध बन्द हो गया; परन्तु मंचूरिया में युद्ध चलता रहा। अपनी विस्तृत रिपोर्ट में लिटन कमीशन ने मानचुकाओ राज्य को जापान के हाथ का खिलौना बतलाया। रिपोर्ट में इस बात पर जोर दिया गया कि मंचूरिया में राष्ट्र-संघ की देख-रेख में एक स्वतन्त्र सरकार बनाई जाय। इंगलैण्ड का यह विश्वास था कि जापान साम्यवादी रूस से लड़ने की तैयारी कर रहा है। अतः रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से यह नहीं कहा गया कि जापान ने अकारण ही चीन पर आक्रमण किया है। इसलिए जापान के विरुद्ध प्रतिबन्ध लगाने की बात ही नहीं उठने पाई। राष्ट्र-संघ की इस असफलता पर विवश होकर चीन-सरकार को जापान से सन्धि करनी पड़ी। १९३३ में जापान ने राष्ट्र-संघ की सदस्यता का परित्याग कर दिया।

ग्रेन चेको विवाद—जापान के सम्बन्ध में राष्ट्र-संघ की असफलता से उसकी निर्बलता स्पष्ट हो गई। इससे अन्य राष्ट्रों को भी राष्ट्र-संघ की अवहेलना करने का

साहस हो गया। १९२८ में ग्रेन चेको नामक प्रदेश के सम्बन्ध में बोलविया तथा पैरागुए में विवाद खड़ा हो गया। १९३३ में पैरागुए ने बोलविया के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। राष्ट्र-संघ ने दोनों राज्यों में समझौता कराने का प्रयास किया; परन्तु कोई सफलता न मिली। १९३५ में पैरागुए ने राष्ट्र-संघ की सदस्यता का परित्याग कर दिया।

इटली की एबीसीनिया विजय—पर्याप्त समय से इटली एबीसीनिया को जीतने की चिन्ता में था। १८९६ में भी इटली ने इस पर आक्रमण किया था; परन्तु इसमें उसको सफलता न मिली। इटली के एबीसीनिया में निम्नलिखित स्वार्थ थे—

(१) इटली अपनी १८९६ की पराजय का बदला लेना चाहता था।

(२) एबीसीनिया में कुछ महत्वपूर्ण खानें थीं।

(३) एबीसीनिया का छोटा सा पिछड़ा देश इटली के दो प्रदेशों-सोमालीलैण्ड तथा इरिट्रिया के मध्य में स्थित था। अतः इटली एबीसीनिया पर अधिकार कर इन प्रदेशों को एक जगह मिलाना चाहता था।

(४) अफ्रीका में एकमात्र एबीसीनिया ही ऐसा प्रदेश था, जिस पर किसी विदेशी सत्ता का अधिकार न था। अतः इटली इस पर आसानी से अधिकार कर सकता था।

(५) इटली में यह समय २½ लाख के लगभग मनुष्य बेकार थे। अतः मुसोलनी इन बेकारों का ध्यान दूसरी ओर आकर्षित करना चाहता था।

(६) अपने गौरव की वृद्धि के लिए मुसोलनी कुछ महत्वपूर्ण कार्य करना चाहता था।

१९३५ में इटली तथा एबीसीनिया के मध्य सीमा-सम्बन्धी विवाद उत्पन्न हुआ। इसी से इटली ने उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। राष्ट्र-संघ के लिए यह बहुत खतरे की बात थी, क्योंकि इटली की गणना महाशक्तियों में होती थी। उसने शान्ति समझौते पर हस्ताक्षर किए थे और राष्ट्र-संघ का वह प्रारम्भ में ही सदस्य हो गया था। अतः यह राष्ट्र-संघ की कड़ी परीक्षा का समय था। फ्राँस की सहानुभूति भी इटली के साथ थी। वह जर्मनी के विरुद्ध इटली की मित्रता प्राप्त करने का प्रयास कर रहा था। राष्ट्र-संघ ने युद्ध को बन्द करने का प्रयास किया; परन्तु मुसोलिनी युद्ध करने का निर्णय कर चुका था। उसने घोषित किया था—'हमारा निश्चय दृढ़ है तथा हमारा वापस लौटने का विचार नहीं है।' फलतः राष्ट्र-संघ ने इटली को आक्रमणकारी घोषित कर दिया। राष्ट्र-संघ की १६वीं धारा के अनुसार इटली के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिए गए। इसके अनुसार इटली को हथियार, लोहा तथा रबड़ आदि पदार्थ नहीं भेजे जा सकते थे। इटली से कोई माल नहीं मंगाया जा सकता था और उसको कोई ऋण नहीं दिया जा सकता था। राष्ट्र-संघ के सदस्यों ने एकता के साथ इन प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया। परन्तु इटली के विरुद्ध तेल के आयात पर नियन्त्रण नहीं लगाया गया। स्वेज नहर भी उसके लिए

बन्द नहीं की गई, क्योंकि मुसोलिनी ने पहले ही घोषित कर दिया कि यह कार्य शत्रुतापूर्ण समझा जायगा।

इटली बराबर एबीसीनिया में आगे बढ़ता चला गया और अन्त में उसने राजधानी पर अधिकार कर लिया। एबीसीनिया का सम्राट् हेलसिलासी राजधानी छोड़कर भाग खड़ा हुआ। मई १९३६ में पूरी तरह इटली का एबीसीनिया पर अधिकार हो गया। सम्राट् हेलसिलासी ने स्वयं ही राष्ट्र-संघ में इटली के विरुद्ध शिकायत की; परन्तु उसकी बात की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया गया। अन्त में इटली के विरुद्ध लगाये गये आर्थिक प्रतिबन्ध हटा दिये गये। फ्रांस तथा इङ्गलैंड ने इटली की एबीसीनिया-विजय को मान्यता प्रदान कर दी। इस प्रकार राष्ट्र संघ साम्राज्यवादी इटली से एबीसीनिया की रक्षा न कर सका। इससे सामूहिक सुरक्षा का सिद्धान्त तथा राष्ट्र-संघ का अस्तित्व खतरे में पड़ गया। अब कोई भी छोटा राष्ट्र सुरक्षा के लिए राष्ट्र-संघ पर विश्वास नहीं कर सकता था।

चीन जापान युद्ध—१९३७ में जापान ने चीन के विरुद्ध अघोषित युद्ध प्रारम्भ कर दिया। इस पर चीन ने जापान के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध लगाने की प्रार्थना की। परन्तु राष्ट्र संघ की कौंसिल ने इसका समर्थन नहीं किया। इससे राष्ट्र-संघ की निर्बलता स्पष्ट हो गई।

स्पेन का गृह-युद्ध—१९३७ में जनरल फ्रेन्को ने स्पेन के गणतन्त्र के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इटली तथा जर्मनी के तानाशाहों ने जनरल फ्रेन्को की भरपूर सहायता की। हिटलर तथा मुसोलनी की सहायता के कारण जनरल फ्रेन्को को सफलता मिली। राष्ट्र-संघ स्पेन के गणतन्त्र की रक्षा न कर सका।

रूसी-फिनिश युद्ध—नवम्बर १९३९ में रूस ने फिनलैंड के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। फिनलैंड ने राष्ट्र-संघ से अपील की। राष्ट्र संघ के अधिकांश सदस्य साम्यवाद के विरोधी थे। अतः उन्होंने रूस को राष्ट्र संघ की सदस्यता से पृथक् कर दिया; परन्तु इससे फिनलैंड को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। रूस ने उसको पराजित कर दिया और उसको विवश होकर मार्च १९४० में रूस से सन्धि करनी पड़ी।

हिटलर तथा राष्ट्र संघ—राष्ट्र-संघ की असफलताओं से जर्मनी के तानाशाह हिटलर के उत्साह में बहुत वृद्धि हो गई थी। उसने इसका लाभ उठाते हुए वार्साय सन्धि की धाराओं का भंग करना प्रारम्भ कर दिया—

(१) १९३३ में उसने राष्ट्र-संघ छोड़ने का नोटिस दे दिया।

(२) १९३५ में उसने वार्साय-सन्धि को भंग कर सैनिक-सेवा अनिवार्य कर दी।

(३) उसने वार्साय-सन्धि तथा लोकार्नो पैक्ट को भंग कर १९३६ में राइन प्रदेश में सेनाएँ भेज दीं।

(४) आत्म-निर्णय के सिद्धान्त का बहाना बनाकर उसने आस्ट्रिया को हड़प लिया।

(५) जेकोस्लोवाकिया का अंग-भंग कर उस पर अधिकार कर लिया।

(६) स्पेन के गृह-युद्ध में उसने जनरल फ्रेन्को की सहायता की।

(७) अन्त में सितम्बर १९३९ में उसने पोलैंड पर आक्रमण कर द्वितीय महायुद्ध का प्रारम्भ कर दिया।

इस प्रकार राष्ट्र-संघ हिटलर के विस्तार को रोकने में सफल नहीं हुआ। युद्धों का रोकना ही राष्ट्र संघ का प्रमुख उद्देश्य था; परन्तु दुर्भाग्यवश उसको इसमें सफलता न मिली और संसार को प्रथम महायुद्ध से भी कहीं अधिक भयंकर द्वितीय महायुद्ध देखना पड़ा। राष्ट्र संघ की असफलता के निम्नलिखित प्रमुख कारण थे—

(१) **वार्साय सन्धि से सम्बन्ध**—राष्ट्र संघ का निर्माण वार्साय सन्धि के समय हुआ था। इसको अन्य सन्धियों के साथ भी जोड़ा गया था। ये सन्धियां पराजितों के लिए बहुत कठोर थीं। प्रारम्भ में पराजितों को राष्ट्र संघ का सदस्य भी नहीं बनाया गया था। अतः पराजित राष्ट्र इससे असन्तुष्ट थे। वे इसको मित्र-राष्ट्रों का अन्यायपूर्ण सन्धियों को पालन कराने वाला एक शस्त्र समझते थे। इस प्रकार पराजित राष्ट्रों की सहानुभूति राष्ट्र संघ के साथ न थी। इसका जन्म अच्छे वातावरण में नहीं हुआ। कठोर सन्धियों से सम्बन्धित होने के कारण एक विद्वान् ने इसको 'बदनाम मां की सम्मानित बेटी' कहा है। यदि राष्ट्र संघ का जन्म अच्छे वातावरण में हुआ होता तो समस्त राष्ट्रों की सहानुभूति इसके साथ होती।

(२) **अमेरिका का राष्ट्र संघ से बाहर रहना**—अमेरिका का राष्ट्रपति विल्सन राष्ट्र संघ का जन्मदाता था। यूरोप के राष्ट्र अपने स्वार्थों में फँसे हुए थे। उनको विश्व-शान्ति की चिन्ता नहीं थी। वे तो एकमात्र अपने देश के हितों की पूर्ति की चिन्ता में थे। राष्ट्रपति विल्सन का प्रधान उद्देश्य विश्व में शुद्ध तथा स्थायी शान्ति स्थापित करना था। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने राष्ट्र संघ की स्थापना पर सबसे अधिक जोर दिया था। इसी से उसको राष्ट्र संघ का धर्म-पिता कहा जाता है; परन्तु अमेरिकन सीनेट ने वार्साय सन्धि को स्वीकार नहीं किया और अमेरिका राष्ट्र संघ का सदस्य नहीं हुआ। इससे राष्ट्र संघ नई दुनिया के सहयोग से वंचित रह गया। अमेरिका की अनुपस्थिति में राष्ट्र संघ यूरोप के राष्ट्रों की संकुचित विचारधारा का केन्द्र हो गया। अमेरिका का इसका सदस्य न होने से अन्य राष्ट्रों को भी इसकी सदस्यता से त्याग-पत्र देने की प्रेरणा मिली। अमेरिका के सहयोग के अभाव में आर्थिक प्रतिबन्धों का महत्व बहुत कम हो गया। आर्थिक प्रति-बन्ध के समय राष्ट्र संघ का विरोधी देश अमेरिका से हथियार तथा अन्य आवश्यकता की वस्तुयें मोल ले सकता था। अमेरिका तथा इंगलैंड ने मिलकर फ्रांस को सुरक्षा की गारण्टी दी थी। अतः अमेरिका के राष्ट्र संघ के सदस्य न होने पर यह गारण्टी समाप्त हो गई। इससे फ्रांस अपनी सुरक्षा के लिये स्वयं ही प्रबन्ध करने लगा। इसका परिणाम विश्व-शान्ति के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ। यदि अमेरिका राष्ट्र संघ का सदस्य होता तो इटली, जर्मनी, रूस तथा जापान की आक्रमणकारी नीति को रोका जा सकता था।

(३) **सार्वभौमिकता का अभाव**—राष्ट्र संघ को कभी भी विश्व की महा-शक्तियों का सहयोग प्राप्त नहीं हुआ। उसका जन्मदाता अमेरिका कभी भी उसका सदस्य नहीं बना। जर्मनी तथा आस्ट्रिया आदि पराजित राष्ट्रों को उसका सदस्य बनने नहीं दिया गया। रूस साम्यवादी क्रान्ति के कारण तटस्थ रहा। मित्र राष्ट्र उसको घृणा की दृष्टि से देखते थे और वह राष्ट्र संघ को पूँजीवाद का संरक्षक समझकर उसको घृणा की दृष्टि से देखता था। वह उसे अपने विरुद्ध बना हुआ पश्चिम का षड़यन्त्र कहता था। १९३४ में रूस को इसका सदस्य बनाया गया; परन्तु १४ दिसम्बर १९३९ को उसको फिनलैंड पर आक्रमण करने के कारण राष्ट्र संघ की सदस्यता से पृथक् कर दिया गया। १९२६ में जर्मनी को भी इसका सदस्य बना लिया गया; परन्तु १९३३ में उसने इसकी सदस्यता का परित्याग कर दिया। इसी वर्ष जापान ने भी राष्ट्र संघ को छोड़ दिया। १९३६ में इटली ने भी इसको छोड़ दिया। इस प्रकार कभी भी राष्ट्र संघ को सभी महाशक्तियों का सहयोग प्राप्त नहीं हुआ। कुछ विद्वानों ने इसको इंगलैंड तथा फ्रांस के हितों की रक्षा करने वाला संगठन कहा है। कुछ विद्वानों ने इसको विजेताओं का संघ तथा कुछ ने संतुष्ट राष्ट्रों का संगठन कहा है।

(४) **सदस्य राज्यों का असहयोग**—विश्व की सभी महाशक्तियों का कभी भी राष्ट्र संघ को सहयोग प्राप्त नहीं हुआ। जो राष्ट्र इसके सदस्य हुए वे भी सच्चे हृदय से इसके सहयोगी नहीं थे। राष्ट्र संघ के संविधान में आक्रमणकारी देश के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध लगाने की व्यवस्था की गई थी और सदस्य राज्यों के सहयोग के आधार पर सैनिक कार्यवाही भी की जा सकती थी। परन्तु अवसर आने पर सदस्य राज्यों में इन कार्यों के करने के लिए सहयोग की भावना का अभाव पाया गया। इटली के एबीसीनिया पर आक्रमण करने पर उसके विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध लगाये गये। इसका ५० राष्ट्रों ने समर्थन किया। यदि सैनिक कार्यवाही का प्रश्न उठता तो शायद अधिकाँश राष्ट्र इसका भी समर्थन करते, परन्तु ये आर्थिक प्रतिबन्ध अधूरे थे। इटली में तेल का आयात नहीं रोका गया था। उसके लिए स्वेज नहर भी बन्द नहीं की गई थी। मुसोलिनी ने स्पष्ट कह दिया था कि यदि तेल बन्द कर दिया गया तो यह कार्य शत्रुतापूर्ण समझा जायगा। इंगलैंड तथा फ्रांस के नेताओं ने यह समझौता कर लिया था कि इटली को जर्मनी के साथ मिलने से रोकने के लिये यह आवश्यक है कि मुसोलनी को अफ्रीका में अबाध गति से बढ़ने दिया जाय। इसलिए शूमाँ महोदय ने इटली के विरुद्ध लगाये गये इन प्रयत्नों को कोरा ढोंग कहा है। सभी राष्ट्रों के सामूहिक सहयोग से आर्थिक प्रतिबन्ध सफल हो सकते थे। महा-शक्तियों में से अमेरिका राष्ट्र संघ का सदस्य नहीं हुआ था। जर्मनी तथा जापान ने इसकी सदस्यता का परित्याग कर दिया था। इटली स्वयं आक्रमणकारी था। अतः इस समय राष्ट्र संघ में केवल इंगलैंड, फ्रांस तथा रूस ही तीन बड़े राष्ट्र रह गये थे। इनमें भी इटली के विरुद्ध युद्ध करने के लिए सहयोग नहीं था। इन महाशक्तियों में से कोई भी एकमात्र सिद्धान्त की रक्षा के लिए इटली से युद्ध करने के लिये तैयार

नहीं था। इंगलैंड के विदेश-मन्त्री सैमुअल हेग तथा फ्रांस के विदेश-मन्त्री लावाल ने यह गुप्त समझौता कर लिया था कि इटली का प्रश्न ऐसा नहीं है कि इसके लिये उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी जाय। अतः उन्होंने इटली में तेल के आयात को न रोकने तथा उसके लिए स्वेज नहर के बन्द न करने का निश्चय कर लिया था। इस प्रकार सदस्य राज्यों का असहयोग राष्ट्र संघ के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ।

५. राष्ट्र संघ के पास अन्तर्राष्ट्रीय सेना का अभाव—आक्रमणकारी देशों के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिये राष्ट्र-संघ के पास कोई अन्तर्राष्ट्रीय सेना नहीं थी। आवश्यकता पड़ने पर उसको अपने सदस्य राज्यों की सहायता पर निर्भर रहना पड़ता था। वह अपने सदस्य राज्यों से सेना भेजने के लिए प्रार्थना ही कर सकता था, उनको बाध्य नहीं कर सकता था। सदस्यों को सहायता देने अथवा न देने की बात उनकी इच्छा पर निर्भर थी।

६. राष्ट्र-संघ के संविधान के दोष—राष्ट्र-संघ की कार्य-पद्धति बहुत जटिल थी। छोटी-छोटी बातों के लिये भी लम्बे-लम्बे वाद-विवाद हुआ करते थे। प्रत्येक निर्णय के लिये राष्ट्र-संघ के बड़े सदस्यों का सर्व-सम्मत होना आवश्यक था। परन्तु सदस्यों का सर्व-सम्मत होना बहुत कठिन था।

७. फ्रांस की नीति—फ्रांस राष्ट्र-संघ का समर्थक था। वह उसको नये यूरोप का दुर्ग समझता था। परन्तु परीक्षा के समय फ्रांस ने शिथिलता का प्रदर्शन किया। उसका यह विश्वास हो गया था कि राष्ट्र-संघ द्वारा सुरक्षा सम्भव नहीं है। अतः उसने इटली से एक सन्धि कर ली। इससे उसे इटली की ओर से सीमा-सम्बन्धी झगड़ों तथा उत्तरी अफ्रीका के उपनिवेश-सम्बन्धी झगड़ों का भय नहीं रहा। इस सन्धि की रक्षा के लिए वह इटली के विरुद्ध कठोर व्यवहार कर उसको अप्रसन्न नहीं करना चाहता था। उसको यह भी भय था कि यदि इटली के साथ कठोरता का व्यवहार किया गया तो वह जर्मनी की गोद में जा बैठेगा। फ्रांस इंगलैण्ड को भी अपने से अलग नहीं करना चाहता था। राइन नदी के पार के झगड़े में उसके लिए इंगलैंड के सहयोग की आवश्यकता थी। इसके साथ-साथ राष्ट्र-संघ के प्रति अपने कर्त्तव्यों की भी वह खुले रूप से उपेक्षा नहीं कर सकता था। इस प्रकार इस समय उसकी अवस्था बहुत शोचनीय थी। इसी से वह इटली के विरुद्ध कठोर प्रतिबन्ध लगाने के विरोध में था तथा साथ-साथ कुछ सीमा तक इंगलैंड को प्रसन्न करने के लिए उसका समर्थन भी कर रहा था। इस प्रकार इटली के विरोध में फ्रांस ने पूरी तरह इंगलैण्ड का साथ नहीं दिया।

८. आर्थिक मन्दी—१९३० की विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी के कारण प्रायः प्रत्येक देश की अवस्था बहुत खराब हो गई। इससे प्रत्येक देश को अपने देश के हितों की चिन्ता सबसे अधिक हो गई। इससे अन्तर्राष्ट्रीयता के सिद्धान्त को बहुत धक्का लगा। आर्थिक मन्दी के कारण रूस पूंजीवाद का विरोधी हो गया। पूंजीवादी देश

रूस के विरोधी हो गये। उन राष्ट्रों ने रूस-विरोधी, जर्मनी, इटली तथा जापान के प्रति तुष्टीकरण के सिद्धान्त का पालन किया। यह सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये विनाशकारी सिद्ध हुआ।

९. **उग्र राष्ट्रीय भावना की प्रधानता**—महायुद्ध का प्रधान कारण उग्र राष्ट्रीयता की भावना थी; परन्तु इसके बाद भी राजनीतिज्ञों ने इस भावना का पूर्ण परित्याग नहीं किया। अवसर पड़ने पर उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय का परित्याग कर राष्ट्रीयता के सिद्धान्त को ही महत्व दिया। राष्ट्र-संघ की स्थापना का यह उद्देश्य था कि विभिन्न देश युद्ध का बहिष्कार कर पारस्परिक वार्ता से ही अपनी समस्याओं का समाधान कर लेंगे। यह सिद्धान्त बहुत उच्च तथा महान् था; परन्तु इसकी पूर्ति नहीं हुई। प्रत्येक देश अपनी प्रभुसत्ता को सर्वोच्च समझता रहा और कोई भी देश राष्ट्र-संघ का तनिक भी अंकुश अपने ऊपर मानने के लिए तैयार नहीं हुआ। इस प्रकार राष्ट्र-संघ की सफलता का बहुत कुछ उत्तरदायित्व राष्ट्रीयता की उग्र भावना पर है।

१०. **महा शक्तियों के विभिन्न विरोधी दृष्टिकोण**—राष्ट्र-संघ का उद्देश्य शान्ति स्थापित करना तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में वृद्धि करना था; परन्तु राष्ट्र-संघ के प्रति महा शक्तियों के दृष्टिकोण परस्पर-विरोधी थे। फ्रांस इसको वार्साय सन्धि का संरक्षक तथा जर्मनी से सुरक्षा पाने का साधन समझता था। वह इसके द्वारा यथाशक्ति जर्मनी को दबाने का समर्थक था। जर्मनी से अपनी सुरक्षा के लिए ही फ्रांस ने एबीसीनिया की रक्षा की उपेक्षा की। इंगलैंड को सबसे अधिक चिन्ता अपने व्यापारिक हितों की थी। इसी से वह जर्मनी के प्रति उदार नीति का समर्थक था। जर्मनी आदि पराजित राष्ट्रों को प्रारम्भ में राष्ट्र-संघ का सदस्य नहीं बनाया गया था। अतः वे इसके विरोधी थे। पश्चिम के राष्ट्र रूस की साम्यवादी सरकार को घृणा की दृष्टि से देखते थे। अतः रूस भी राष्ट्र-संघ का विरोधी था। इस प्रकार कोई भी राष्ट्र सच्चे अर्थों में राष्ट्र-संघ के सिद्धान्तों में विश्वास नहीं रखता था। प्रत्येक राष्ट्र अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए इसका उपयोग करना चाहता था।

११. **राष्ट्र-संघ के सदस्यों का जनता के प्रतिनिधि न होना**—राष्ट्र-संघ के सदस्य जनता के प्रतिनिधि नहीं थे। उनका चुनाव विभिन्न देशों में जनता द्वारा नहीं होता था। वे अपनी-अपनी सरकारों द्वारा मनोनीत होते थे। इसलिए वे जनता के प्रतिनिधि न होकर अपनी सरकारों के प्रतिनिधि थे।

१२. **अधिनायकवाद का उदय**—१९३० के पश्चात् यूरोप के कई देशों में अधिनायकों का उदय हुआ। वे वार्ता के स्थान पर सेना को महत्व देते थे। वे पाशविक शक्ति के समर्थक थे। इटली में मुसोलिनी, जर्मनी में हिटलर तथा स्पेन में जनरल फ्रैन्को इसी प्रकार के अधिनायक थे। जापान में भी सैनिकवाद तथा अधिनायकवाद की भावनायें कार्य कर रही थीं। इन सभी अधिनायकों ने राष्ट्र-संघ को छोड़ दिया तथा खुले आम छोटे-छोटे राष्ट्रों का अपहरण करना प्रारम्भ कर दिया।

राष्ट्र संघ के लिये यह खतरे का चिन्ह था। १९३६–३७ में इन अधिनायकों ने रोम-बर्लिन-टोकियो धुरी (Rome-Burlin Tokyo Axis) की स्थापना की। प्रारम्भ में इसमें इटली, जर्मनी तथा जापान सम्मिलित थे। कालान्तर में स्पेन तथा मान-त्रुकाओ भी इस संघ में सम्मिलित हो गये। इस प्रकार अधिनायकवाद का उदय राष्ट्र-संघ के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ।

प्रश्न

१ राष्ट्र संघ के उद्‌देश्य तथा संगठन का वर्णन कीजिये।

२ राष्ट्र संघ की असफलता के क्या कारण थे? क्या वे दूर किये जा सकते थे?

३ 'जापान, इटली, जर्मनी तथा रूस की आक्रमणकारी नीति को रोकने में राष्ट्र संघ पूर्ण रूप से असफल रहा।' उपर्युक्त कथन की विवेचना कीजिये?

४ विश्व में शान्ति स्थापित करने में राष्ट्र संघ की असफलता के कारणों पर प्रकाश डालिए।

५. राष्ट्र संघ ने विश्व-शान्ति की रक्षा के लिये सन् १९३३ तक क्या काम किया?

———

मैण्डेट व्यवस्था
(Mandate System)

नया दृष्टिकोण; मैण्डेट व्यवस्था का जन्म; कोटियाँ; कार्य-प्रणाली; गुण और दोष।

नया दृष्टिकोण—प्रथम महायुद्ध के पश्चात् प्रायः सम्पूर्ण संसार ने यह अनुभव करना प्रारम्भ कर दिया था कि जब तक संसार की व्यवस्था न्याय, समानता और सहकारिता पर आधारित न होगी तब तक स्थायी शांति की स्थापना नहीं हो सकती। विश्व-शांति के लिये जो सम्भव खतरे थे उनमें एक उपनिवेशवाद भी था। बड़े-बड़े योरोपीय देशों ने संसार के पिछड़े हुये प्रदेशों में अपने उपनिवेश स्थापित किये थे। उपनिवेशों के प्रति सभी साम्राज्यवादी देशों की नीति शोषणात्मक थी। वे अपने अधीन उपनिवेशों के धन-जन का प्रयोग एकमात्र अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये करते थे। उन्हें उपनिवेशों के हितों का कोई ध्यान न था। अतः संसार के एक बड़े भाग—उपनिवेशों – में अशांति और असंतोष के बीज विद्यमान थे।

१६१८–१६ का संसार सम्पूर्ण उपनिवेशवाद को छोड़ने के लिये तो तैयार न हुआ था, परन्तु वह कुछ उपनिवेशों में नूतन प्रयोग करने के लिये तैयार हो गया था। यह नूतन प्रयोग पराजित देशों से छीने गये उपनिवेशों में किया गया। यह प्रयोग इतिहास में मैण्डेट-व्यवस्था के नाम से प्रख्यात है।

मैण्डेट व्यवस्था का जन्म—प्रथम महायुद्ध में मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी और टर्की के उपनिवेशों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् यह प्रश्न उठा कि इन अधिकृत उपनिवेशों का क्या किया जाय। इस सम्बन्ध में तीन मार्ग थे—

(१) इन उपनिवेशों को मित्र राष्ट्र अपने ही अधीन रक्खें।
(२) इन्हें पराजित देशों को वापस कर दें।
(३) इन्हें पूर्ण स्वतन्त्र कर दें।

परन्तु तीनों मार्गों के विरुद्ध आपत्तियाँ उठाई गईं। उपनिवेशों पर विजेताओं का अधिकार करना न्याय, औचित्य और नैतिकता के विरुद्ध होता। मित्र राष्ट्र पराजित देशों को दण्डित करना चाहते थे। वे नहीं चाहते थे कि पराजित देश पुनः शक्तिशाली होकर आक्रांता होने का प्रयास करें। अतः पराजित देशों को उनके उपनिवेश वापस देने का विरोध किया गया। उपनिवेशों को पूर्ण स्वतन्त्र भी नहीं किया जा सकता था, क्योंकि वे अविकसित थे और सम्भवतः अपना स्वतन्त्र अस्तित्व कायम

नहीं रख सकते थे। इसके अतिरिक्त युद्ध के दौरान में मित्र राष्ट्र आपस में उन उपनिवेशों के विभाजन के अनेक समझौते भी कर चुके थे। अत: अब वे उन्हें पूर्ण स्वतन्त्र कैसे कर देते ?

इस परिस्थिति में एक मध्यम मार्ग निकाला गया जिसके अन्तर्गत पूर्व सन्धियों और मित्र राष्ट्रों के हितों की रक्षा हो सके और साथ ही साथ उपनिवेशों को अपने क्रमिक विकास का अवसर मिल सके तथा उन्हें पूर्ण स्वराज्य के लिये तैयार किया जा सके। इन ध्येयों की पूर्ति तभी हो सकती थी जब उपनिवेशों में स्थापित की जाने वाली नवीन व्यवस्था लीग के तत्वाधान और निरीक्षण में हो। सर्वप्रथम दक्षिणी अफ्रीका के जनरल स्मट्स (General Smuts) ने यह घोषित किया कि सभ्य और उन्नतिशील देश अविकसित और अनुन्नत देशों के प्रति अपना उत्तरदायित्व स्वीकार करें।[1] तत्पश्चात् लीग इन अविकसित उपनिवेशों को उन्नतिशील देशों को सौंप दे।[2] ये उन्नतिशील देश अपने अधीन उपनिवेशों को लीग की धरोहर समझें, उनके विकास के लिये समस्त सुविधायें दें[3] और विकसित तथा आत्म-निर्भर हो जाने पर उन्हें स्वतन्त्र कर दें। मैण्डेट व्यवस्था का मूल सिद्धान्त यही था। जिन देशों को यह उपनिवेश सुपुर्द किये गये वे Mandatory कहलाये। उनके अधीन उपनिवेशों को Mandated Countries कहा गया।

मैण्डेट व्यवस्था राष्ट्र संघ के संविधान (League Covenant) की २२वीं धारा में उल्लिखित की गई। किस देश को किस देश का मैण्डेट मिले, यह निर्णय वास्तव में मित्र राष्ट्रों की सर्वोच्च समिति (Supreme Council of the Allies) ने किया था। कालान्तर में राष्ट्र संघ की काउन्सिल ने उसका अनुमोदन कर दिया। मैण्डेट देते समय उपनिवेशों की इच्छा, भौगोलिक स्थिति, उनकी आर्थिक अवस्था, उनके साधनों, अनुभवों आदि को ध्यान में रक्खा गया। अमेरिका को भी आर्मीनिया का मैण्डेट दिया गया, परन्तु राष्ट्र संघ से पृथक् होने के कारण उसने उसे अस्वीकार कर दिया था।

मैण्डेट की कोटियाँ
(Types of Mandates)

मैण्डेट व्यवस्था में तीन कोटियाँ निश्चित की गई —

(अ) इस कोटि के अन्तर्गत टर्की साम्राज्य के राज्य—ईराक, फिलिस्तीन, ट्रांसजार्डन, सीरिया और लेबनान—रक्खे गये। प्रथम तीन राज्य ब्रिटेन के सुपुर्द और

1. The Covenant 'should give precision to the idea of the responsibility of the civilised states to the more backward peoples.'

2. 'Particular areas should be handed over to individual states who would be responsible to the League for the discharge of that mandate.'

3. 'They were to act as stewards for the League in the protection of the relatively backward peoples who as yet were unable to stand alone in the complex world.' —Langsam.

अन्तिम दो राज्य फ्रांस के सुपुर्द किये गये। इस कोटि के राज्य अपेक्षाकृत अधिक विकसित थे और थोड़ा सहयोग और पथ-प्रदर्शन प्राप्त होने पर स्वतन्त्र होने के योग्य हो सकते थे।[1]

(ब) इसके अन्तर्गत टैंगैनिका, कैमरून्स का $\frac{1}{6}$ भाग एवं तोगोलैण्ड का $\frac{1}{3}$ भाग ब्रिटेन को दिया गया। फ्रांस को कैमरून्स और तोगोलैंड के शेष भाग मिले। बेलजियम को रुअण्डा-उरुण्डी का प्रदेश दिया गया। ये सब मध्य अफ्रीका के प्रदेश थे और महायुद्ध के पूर्व जर्मनी के अधीन थे। ये अपेक्षाकृत अविकसित देश थे।[2]

(स) इस कोटि के अन्तर्गत दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका दक्षिणी अफ्रीका संघ को, समोआ न्यूजीलैंड को, नौरा सम्मिलित रूप से ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड को दिये गये। भूमध्य रेखा के उत्तर के द्वीप जापान को और दक्षिण के द्वीप आस्ट्रेलिया को दिये गये। ये सारे प्रदेश महायुद्ध के पूर्व जर्मनी के अधीन थे।

कार्य-प्रणाली
(Working of the Mandate System)

(१) अपने अधीन प्रदेशों पर संरक्षक देश (Mandatory) को क्या-क्या अधिकार होंगे, इसका निर्णय काउन्सिल के हाथ में छोड़ दिया गया।

(२) प्रत्येक संरक्षक देश का यह कर्तव्य था कि वह अपने अधीन प्रदेशों के सम्बन्ध में एक वार्षिक रिपोर्ट काउन्सिल को दे।

(३) एक स्थायी मैण्डेट आयोग (Permanent Mandate Commission) की स्थापना की गई। इसके सदस्यों की संख्या प्रारम्भ में ९ थी। कालान्तर में जर्मनी के प्रतिनिधि के आ जाने पर १९२७ मे इनकी संख्या १० हो गई। ये सदस्य विभिन्न सरकारों द्वारा मनोनीत होते थे। परन्तु राष्ट्र संघ की काउन्सिल द्वारा उनका अनुमोदन आवश्यक था। सदस्य होने के पश्चात् ये लोग अपनी सरकार के अधीन कोई पद स्वीकार नहीं कर सकते थे। स्थायी मैण्डेट आयोग का कार्य मैण्डेट के सम्बन्ध में काउन्सिल को परामर्श देना था। यह संरक्षक देश की भेजी हुई वार्षिक रिपोर्ट पर भी

1. '...which have reached a stage of development where their existence as independent nations can be provisionally recognised, subject to the tendering of administrative advice and assistance by a mandatory until such time as they are able to stand alone.'

2. 'Other peoples, especially those of Central Africa, are at such a stage that the Mandatory must be responsible for the administration of the territory under conditions which will guarantee freedom of conscience and religion, subject only to the maintenance of public order and morals, the prohibition of abuses such as the slave trade, the arms traffic and the liquor traffic... .'

विचार करता था। इस आयोग को 'an impartial tribunal of practical men' कहा गया है।

(४) संरक्षित देश (Mandated Country) को यह अधिकार था कि वह अपनी शिकायतों आदि के सम्बन्ध में आयोग को आवेदन-पत्र दे सके।

(५) यह आवेदन-पत्र संरक्षक देश के माध्यम से आयोग के पास आता था। संरक्षक देश उस आवेदन-पत्र पर अपनी आलोचना, मत आदि लिख देता था।

(६) आयोग का कार्य अंग्रेजी और फ्रांसीसी भाषाओं में होता था।

(७) आयोग वर्ष में कम से कम दो मीटिंग करता था। ये मीटिंग जिनेवा में होती थीं।

(८) एक सचिवालय (Secretariat) का भी निर्माण किया गया। यह मैण्डेट-व्यवस्था के सम्बन्ध में समस्त सामग्री एकत्र करता था। इसका एक डायरेक्टर होता था।

(९) काउन्सिल संरक्षक देश को प्रशासन-सम्बन्धी सुझाव दे सकती थी, आज्ञा नहीं। अतः संरक्षक देश को यह अधिकार था कि वह काउन्सिल के सुझावों को स्वीकार करे अथवा अस्वीकार।

(१०) मित्र राष्ट्रों ने पहले से ही आपस में उपनिवेश-विभाजन कर लिया था। लीग ने तो उनके विभाजन का एकमात्र अनुमोदन किया था। अतः स्पष्ट था कि जब लीग ने प्रदेश दिये नहीं थे तो उन्हें वह वापस भी नहीं ले सकती थी। इस प्रकार संरक्षक देशों पर लीग का अंकुश बहुत कम था। सम्पूर्ण मैण्डेट-व्यवस्था मित्र राष्ट्रों की सदिच्छा पर निर्भर थी।

मैण्डेट व्यवस्था के गुण

(१) सर्वप्रथम संसार ने यह स्वीकार किया कि शोषणात्मक उपनिवेशवाद में परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

(२) मैण्डेट व्यवस्था शासक और शासितों के बीच उच्चतर आधार पर सम्बन्ध-स्थापना का नूतन प्रयोग था। इसके द्वारा शासकों ने यह स्वीकार किया कि अपने अधीन प्रदेशों को विकसित और उन्नत करना उनका विशेष कर्तव्य है।

(३) इसके द्वारा यह भी स्वीकार किया गया कि अन्ततोगत्वा अधीन उपनिवेश को स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये।

(४, स्थायी मैण्डेट आयोग संरक्षक देशों के ऊपर किसी सीमा तक नियंत्रण रखता था। संरक्षक देशों को प्रतिवर्ष उसे रिपोर्ट देनी पड़ती थी। उसके आधार पर संरक्षित देशों की स्थिति पर प्रकाश पड़ता था और सुधार के लिये लोकमत संगठित किया जा सकता था।

(५) अ और ब कोटि के संरक्षित राज्यों में सभी देशों को समान व्यापारिक अधिकार दिये गये थे।

(६) ब और स कोटि के संरक्षित राज्यों में स्थानीय सुरक्षा के अतिरिक्त अन्य

किसी उद्देश्य से संरक्षक राज्य अपने अधीन जनता में सैनिक भर्ती नहीं कर सकता था और न वहाँ सैनिक अथवा जहाजी अड्डे बना सकता था।

(७) संरक्षित देशों को यह भी अधिकार दे दिया गया कि वे संरक्षक देशों के कार्यों के विरुद्ध काउन्सिल से शिकायत कर सकें।

शूमाँ महोदय ने मैण्डेट व्यवस्था की प्रशंसा में निम्नलिखित शब्द कहे हैं—

'Regardless of these shortcomings, the Mandate system represented a significant adventure in international supervision over backward areas. The introduction of the system, conveying the idea that the rulers of these regions owed some responsibility to the civilised world as a whole for the way they used their power, enbodies a new and fruitful idea, which augured well for the future.'

मैण्डेट व्यवस्था के दोष

मैण्डेट व्यवस्था में बहुसंख्यक दोष भी थे जिनके कारण वह असफल रही—

(१) वस्तुतः किस देश को कौन सा प्रदेश दिया जाय, इसका निर्णय लीग ने न किया था। यह निर्णय अधिकांशत मित्रराष्ट्रों ने अपनी पारस्परिक सन्धियों द्वारा किया था। अतः संरक्षक देशों के ऊपर लीग का अधिक नियन्त्रण न था। वह संरक्षण (Mandate) को समाप्त नहीं कर सकती थी। १९३३ में लीग से बाहर निकल जाने के पश्चात् भी जापान ने संरक्षित द्वीपों (Mandated Islands) पर अपना अधिकार बनाये रक्खा।

(२) यह स्पष्ट न किया गया था कि संरक्षित देश पर प्रभुसत्ता (Sovereignty) किस की है—संरक्षक देश की अथवा मित्रराष्ट्रों की अथवा स्वयं सरक्षित देश की अथवा लीग की।

(३) वास्तव में मैण्डेट व्यवस्था विल्सन के उदात्त सिद्धान्तों और साम्राज्यवादी शक्तियों की स्वार्थपूर्ण नीति के बीच एक असगत समझौता था। ऊपर से उन शक्तियों ने अपने संरक्षित देशों को स्वतन्त्रता प्राप्त करने के योग्य बनाने के उत्तरदायित्व को स्वीकार कर लिया था, परन्तु वास्तव में इस दिशा में उन्होंने कोई विशेष उत्साह न दिखाया।

(४) मैण्डेट व्यवस्था विजेता देशों द्वारा पराजित देशों के उपनिवेशों को हस्तगत करने का एक बहाना मात्र था।[1]

(५) संरक्षण की व्यवस्था करने के पूर्व प्रदेशों की जनता की राय लेने की आवश्यकता न समझी गई। विभिन्न प्रदेशों की जनता मनमाने ढंग से किसी न किसी बड़े साम्राज्यवादी देश के अधीन कर दी गई।

1 'A transparent cover of the division of colonial spoils of the defeated enemy.'

(६) अनेक संरक्षित देशों में संरक्षक राज्यों का शासन अत्यन्त अनुदार और असहिष्णु था। उन्होंने ईराक, फिलिस्तीन, दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका और पश्चिमी समोआ आदि में दमन-नीति से कार्य किया। अतः पुराने उपनिवेशों और नवीन संरक्षित राज्यों में कोई विशेष अन्तर न रहा।

(७) संरक्षण राज्यों ने ऐसी विकास-योजनायें लागू न कीं जिनसे संरक्षित राज्यों को थोड़े से थोड़े समय में उन्नत और आत्म-निर्भर बनाया जा सकता।

(८) संरक्षित राज्यों की जनता को यह अधिकार न था कि वह संरक्षक देशों के विरुद्ध सीधे लीग को आवेदन-पत्र दे सके। उसके आवेदन-पत्र संरक्षक देशों के माध्यम से काउन्सिल के पास जाते थे। सं क्षक देश उन आवेदन-पत्रों पर अपनी टीका-टिप्पणी लिख देते थे जिनसे आवेदन-पत्रों का प्रभाव कम हो जाता था।

(९) संरक्षक राज्यों को प्रतिवर्ष स्थायी मैण्डेट आयोग को अपनी रिपोर्ट देनी पड़ती थी। परन्तु इस बात का पता लगाने का कोई उपाय न निकाला गया था कि ये रिपोर्टें झूठी हैं या सच्ची।

(१०) लीग की क त संरक्षक राज्यों को एकमात्र सुझाव ही दे सकती थी, आदेश नहीं। उन सुझावों को स्वीकार अथवा अस्वीकार करना संरक्षक राज्य की इच्छा पर था।

Questions

1. What do you understard by the Mandate System? How did it work?

2. What were the aims and objects of the Mandate System? Discuss its merits and demerits.

५ जर्मन गणतन्त्र
(१९१८–१९३२)

विलियम द्वितीय का विरोध, गणतन्त्र का निर्माण, संकट, विभिन्न दल, संविधान की विशेषतायें, वीमर गणतन्त्र की कठिनाइयाँ, विदेशी नीति।

जर्मन सम्राट् विलियम कैसर एकतन्त्रवादी तथा निरंकुश था। राजा की सहायता के लिए एक चांसलर होता था। उसकी नियुक्ति राजा द्वारा होती थी और राजा के प्रति ही वह उत्तरदायी होता था। युद्धकाल में ह्वलवेग जर्मनी का चांसलर था। जर्मनी में किसानों और मजदूरों की अवस्था बहुत खराब थी। मताधिकार बहुत सीमित था। फिर भी राष्ट्रीय संकट के समय जनता ने अपने सम्राट् का समर्थन किया। विजय की आशा में अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ सहन करते हुए भी जर्मन चार वर्ष तक अपनी सरकार की पूरी सहायता करते रहे।

स्थिति में परिवर्तन—निम्नलिखित कारणों से स्थिति में परिवर्तन हो गया और जर्मन अपने सम्राट् के विरोधी हो गए—

(१) भोजन तथा अन्य सामग्री के अभाव में जर्मन निवासियों को अपनी विजय की बहुत कम आशा रह गई थी।

(२) अमेरिका के युद्ध में प्रवेश करने से जर्मनी की विजय की रही आशा भी जाती रही थी।

(३) रूस से आने वाले बहुत से जर्मन कैदी अपने साथ साम्यवादी विचार लाए थे। इन विचारों से जनता बहुत प्रभावित हुई।

(४) मित्रराष्ट्र जर्मन सम्राट् विलियम कैसर से कोई सन्धि करने के लिए तैयार न थे। राष्ट्रपति विल्सन ने स्पष्ट रूप से घोषणा कर दी थी कि वे विलियम कैसर के साथ कोई सन्धि नहीं करेंगे।

(५) जर्मनी को भी यह विश्वास हो गया था कि यदि विलियम कैसर सिंहासन का परित्याग कर दे तो मित्रराष्ट्र उसके साथ सन्धि करते समय उदारता का व्यवहार करेंगे।

फलतः जर्मन निवासी अपने सम्राट् के विरोधी हो गए। वे इस भयंकर तथा विनाशकारी युद्ध में भाग लेने के लिए विलियम कैसर को दोष देने लगे। वर्षा के अभाव में फसल खराब हो जाने के कारण असंतोष और अधिक बढ़ गया। अक्टूबर १९१८ में कील के बन्दरगाह में स्थित नौ-सेना ने विद्रोह कर दिया। नवम्बर के महीने में बवेरिया में विद्रोह हो गया। इसी समय बर्लिन के कारखानों में भी हड़तालें

हो गईं । रूस की कम्युनिस्ट पार्टी के एजेन्ट इन विद्रोहों को प्रोत्साहन दे रहे थे । चारों ओर से यह आवाज आने लगी कि विलियम कैसर सिंहासन का परित्याग कर दे । फलतः १० नवम्बर १९१८ को विलियम कैसर सिंहासन का परित्याग कर हालैंड चला गया । लगभग अन्य २० जर्मन शासकों ने भी अपने सिंहासन का परित्याग कर दिया । इस सम्बन्ध में एक जर्मन लेखक ने लिखा है कि 'जर्मन शासक इस प्रकार चले गए जिस प्रकार कि तेल के समाप्त हो जाने पर दीपक बुझ जाता है ।' इसके बाद जर्मनी में गणतन्त्र की स्थापना कर दी गई । सत्ता सामाजिक प्रजातन्त्रीय दल के हाथ में आई । इस दल के नेता एबर्ट (Ebert) ने एक अस्थायी सरकार का निर्माण किया ।

गणतन्त्र संकट में—यद्यपि जर्मनी में गणतन्त्र की स्थापना हो गई, परन्तु कई सप्ताह तक गणतन्त्र की स्थिति बहुत गम्भीर रही । सत्ता सामाजिक प्रजातन्त्रीय दल के हाथ में आई थी । इस दल के नेता एबर्ट, सीडमेन तथा नॉस्के आदि इतने योग्य नहीं थे कि संकट-काल में अपना कार्य चला पाते । शीघ्र ही यह दल दो भागों में बंट गया—(१) अल्पमत दल तथा (२) बहुमत दल । अल्पमत दल क्रान्ति में विश्वास रखता था तथा वह साम्यवादियों से मित्रता करना चाहता था । बहुमत दल प्रजातन्त्र में विश्वास रखता था । साम्यवादी दल के नेता लग्जेम्बर्ग तथा लीबनाख्ट थे । ये जर्मनी में रूस की तरह किसानों और मजदूरों की साम्यवादी सरकार स्थापित करना चाहता थे । ये देश में गृह-युद्ध कर गणतन्त्र को भंग करना चाहते थे; परन्तु योग्यता का उनमें भी अभाव था । अतः आसानी से उनकी हत्या कर दी गई । इससे साम्यवादियों से जर्मन गणतन्त्र की रक्षा हो गई ।

राजनीतिक दल—उस समय जर्मन में लगभग २० राजनीतिक दलों का उदय हुआ । उस समय के प्रमुख राजनीतिक दलों का इस प्रकार विवरण दिया जा सकता है—

सामाजिक प्रजातन्त्रीय दल (Social Democratic Party)—यह जर्मनी का प्रमुख राजनीतिक दल थे । कालान्तर में यह दो दलों में विभाजित हो गया—

(१) **बहुमत दल** (Majority Party)—एबर्ट तथा सीडमेन आदि इस दल के नेता था । यह दल प्रजातन्त्रीय पद्धति में विश्वास रखता था ।

(२) **अल्पमत दल** (Minority Party)—इस दल के अनुयायी क्रान्तिकारी थे । वे साम्यवादियों से घनिष्ठता स्थापित करना चाहते थे । इस दल ने इंडिपेण्डेण्ट सोशल डेमोक्रेटिक (Independent Social Democratic Party) के नाम से अपना अलग संगठन किया ।

सेन्ट्रिस्ट पार्टी (Centrist Party)—इस दल में मुख्यतया कैथोलिक थे । अर्जबर्गर इनका नेता था । कुछ दिन तक इन लोगों ने अपना नाम 'क्रिश्चियन डेमोक्रेट' भी रक्खा; परन्तु बाद में इन्होंने अपना पुराना नाम सेन्ट्रिस्ट पार्टी ही रख लिया ।

राष्ट्रवादी दल (Nationalist Party)—इस दल में पुराने कंजर्वेटिव लोग थे। ये राजसत्तावादी थे।

स्पार्टासिस्ट (Spartasist)—यह पार्टी साम्यवादी थी। स्पार्टासिस्ट इस पार्टी के नेता का उपनाम था। इस पार्टी को चुनाव में भाग नहीं लेने दिया गया था।

राष्ट्रीय विधान-सभा—१९ जनवरी १९१९ को देश के लिए जनतन्त्रात्मक संविधान बनाने के लिये एक राष्ट्रीय महासभा का चुनाव हुआ। इस सभा में किसी भी दल को बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। अतः सभा में अधिक संख्या रखने वाली सोशल डेमोक्रेट पार्टी ने अन्य मध्यम वर्गीय दलों से मिलकर अपना बहुमत स्थापित किया। इस सभा का अधिवेशन वीमर नगर (Weimar) में हुआ।

राष्ट्रीय विधान सभा के सम्मुख कठिनाइयां—राष्ट्रीय विधान सभा के सम्मुख निम्नलिखित कठिनाइयाँ थीं—

(१) देश में अराजकता तथा बेकारी का साम्राज्य था। इससे साम्यवादियों का प्रभाव बहुत अधिक बढ़ रहा था। यद्यपि साम्यवादियों को कुचल दिया गया था। परन्तु औद्योगिक नगरों में उनका प्रभाव बहुत अधिक था।

(२) देश में स्थान-स्थान पर विद्रोह हो रहे थे। नोस्के ने पुराने सेनाध्यक्षों द्वारा उनका दमन कराया।

(३) उसको वार्साय की अपमानजनक सन्धि पर हस्ताक्षर करना था। देश के अधिकारी लोग इसके लिए तैयार न थे। वे अन्त तक मित्र राष्ट्रों का विरोध करना चाहते थे। परन्तु मित्र राष्ट्रों की युद्ध की धमकी से भयभीत होकर जर्मन देश-भक्तों को वार्साय की सन्धि पर हस्ताक्षर करने पड़े। इससे राष्ट्रीय सभा को बहुत अपमान सहन करना पड़ा।

(४) देश के लिए एक नवीन संविधान बनाना था।

नवीन संविधान की विशेषतायें—जर्मनी का नवीन संविधान वीमर नगर में बना था। इसी से यह वीमर संविधान कहलाता है। इसके अनुसार जर्मनी में वीमर गणतन्त्र (Weimar Republic) की स्थापना हुई। इस संविधान की प्रमुख विशेषतायें इस प्रकार थीं—

(१) जर्मनी में एक गणतन्त्रवादी संघ शासन की स्थापना होगी। जर्मन संघ को रीख (Reich) कहा जायगा।

(२) संघ सरकार को सुरक्षा, शिक्षा, सिनेमा तथा यातायात आदि विषय दिये गये।

(३) नागरिकों को मौलिक अधिकार प्रदान किये गये।

(४) बीस वर्ष की आयु के सब स्त्री-पुरुषों को मताधिकार प्रदान किया गया। निर्वाचन का आधार आनुपातिक एकल-संक्रमण प्रणाली रक्खा गया। ६० हजार मतों से एक प्रतिनिधि चुना जाता था। इससे किसी भी मतदाता का मत व्यर्थ नहीं जाता था।

(५) जनमत-संग्रह (Referendum) और प्रत्याह्वान (Recall) आदि की भी व्यवस्था की गई थी।

(६) आर्थिक हितों की रक्षा के लिए 'राष्ट्रीय आर्थिक परिषद्' नामक एक समिति की स्थापना की गई थी। इसमें पूँजीपतियों तथा मजदूरों के प्रतिनिधि होते थे। यह परिषद् संसद को आर्थिक तथा सामाजिक मामलों में सलाह देती थी।

वीमर संविधान—यह संसार के प्रमुख प्रजातन्त्रीय संविधानों में से था। इसके साथ-साथ इसके द्वारा जर्मनी के एकीकरण का भी पूरा प्रयास किया गया था इस संविधान की संक्षिप्त रूपरेखा का इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है—

राष्ट्रपति (President)—कार्य-पालिका का अध्यक्ष राष्ट्रपति होगा। उसका चुनाव जनता द्वारा होगा। २० वर्ष या इससे अधिक अवस्था के प्रत्येक स्त्री-पुरुष को मताधिकार प्राप्त होगा। राष्ट्रपति का कार्यकाल ७ वर्ष होगा। उसको पुनः निर्वाचन के लिये खड़े होने का भी अधिकार होगा। इस संविधान में उप-राष्ट्रपति का पद नहीं रक्खा गया था।

राष्ट्रपति को पदच्युत करने का उपाय—यदि लोअर हाउस के $\frac{2}{3}$ सदस्य राष्ट्रपति के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दें तथा जनता भी इसका अनुमोदन करे तो राष्ट्रपति को उसके पद से हटाया जा सकता था।

राष्ट्रपति के अधिकार—(१) राष्ट्रपति को चाँसलर के निर्देश के अनुसार कार्य करना था। उसके प्रत्येक आदेश पर चाँसलर अथवा किसी अन्य मन्त्री के हस्ताक्षर होने आवश्यक थे।

(२) चाँसलर की आज्ञा प्राप्त किये बिना ही राष्ट्रपति लोअर हाउस को भंग कर सकता था। परन्तु इसके बाद छः दिन के अन्दर-अन्दर पुनर्निर्वाचन होना आवश्यक था।

(३) संकट-काल में राष्ट्रपति चाँसलर की सलाह से अध्यादेश भी जारी कर सकता था। ये अध्यादेश अनिश्चित समय तक चल सकते थे। ये देश के अन्य कानूनों की भाँति ही माने जाते थे।

चांसलर—राष्ट्रपति उस व्यक्ति को चांसलर नियुक्त करता था, जो कि बहुमत दल का नेता होता था। उसकी कार्यावधि चार वर्ष होती थी। विदेश-नीति को निर्धारित करने का कार्य चांसलर ही करता था। चाँसलर तथा अन्य मन्त्री लोअर हाउस के प्रति उत्तरदायी होते थे। लोक सभा साधारण बहुमत से अविश्वास का प्रस्ताव पास कर मन्त्रि-मण्डल को भंग कर सकती थी।

उच्चतम न्यायालय—इस संविधान के अनुसार एक उच्चतम न्यायालय की स्थापना की गई। इस न्यायालय का कार्य विवाद होने पर संविधान की धाराओं की व्याख्या करना था।

लोक सभा (Reich Stag)—यह संसद का लोअर हाउस था। इसका निर्वाचन ४ वर्ष के लिये सूची-प्रणाली के अनुसार होता था। इससे मतदाताओं के मत व्यर्थ नहीं जाते थे तथा अल्प संख्यकों को भी प्रतिनिधित्व मिल जाता था। कम से कम ६० हजार मत आने पर एक उम्मीदवार चुन लिया जाता था। इसके साथ

साथ इस पद्धति में कुछ दोष भी थे। जनता को उम्मीदवार का पता नहीं लगता था। यदि किसी योग्य व्यक्ति का नाम सूची के अन्त में होता था तो उसको नहीं चुना जा सकता था। इस पद्धति से पार्टियों की संख्या में वृद्धि हो गई। इससे किसी भी पार्टी को बहुमत प्राप्त नहीं होता था। फलतः संयुक्त मन्त्रि-मण्डलों का निर्माण किया जाता था; परन्तु ये मन्त्रि-मण्डल अस्थायी होते थे।

राज्य परिषद् (Reichsrat)—यह अपर हाउस था। इसमें राज्यों के प्रतिनिधि होते थे। इसके अधिकार सीमित थे। यह लोक सभा द्वारा पारित बिलों को रद्द नहीं कर सकती थी। राज्यों की संख्या १८ थी। प्रत्येक राज्य से कम से कम एक सदस्य आना आवश्यक था। साधारणतया एक लाख से अधिक जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि होता था। प्रशा की जनसंख्या बहुत अधिक थी। इससे यह नियम बना दिया गया था कि किसी भी राज्य से अपर हाउस के समस्त सदस्यों की जनसंख्या के ⅖ भाग से अधिक सदस्य नहीं आ सकते।

बीमर गणतन्त्र की कठिनाइयाँ—जर्मनी में गणतन्त्र की स्थापना अवश्य हो गई, परन्तु उसकी स्थिति डांवाडोल ही रही। उसको अनेक संकटों तथा कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। संक्षेप में बीमर गणतन्त्र की कठिनाइयों का इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है—

(१) **राजतन्त्रवादियों का प्रचार**—राजतन्त्रवादी जर्मनी में पुनः राजतन्त्र की स्थापना करना चाहते थे। अतः उन्होंने गणतन्त्र को बदनाम करने के लिए प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। राजतन्त्रवादियों का कहना था—'युद्ध में जर्मनी की पराजय का उत्तरदायित्व गणतन्त्रवादियों पर है। कोई भी देश-भक्त वार्साय की कठोर तथा अपमानजनक सन्धि पर हस्ताक्षर करने को तैयार नहीं था; परन्तु गणतन्त्रवादियों ने उसको स्वीकार कर लिया है। यह भी हो सकता है कि ये लोग युद्ध-अपराधियों को मित्र राष्ट्रों को सौंप दें। यदि उन्होंने ऐसा किया तो यह बहुत अन्यायपूर्ण होगा। वास्तव में युद्ध का उत्तरदायित्व मित्र राष्ट्रों पर है। जर्मनी पर मित्र राष्ट्रों ने युद्ध प्रारम्भ कर भयंकर रक्तपात करने का जो आरोप लगाया है वह निराधार है। गणतन्त्रवादी निर्वाचन भी ईमानदारीपूर्वक नहीं करा रहे हैं। उनको यह भय है कि ईमानदारी से निर्वाचन कराने पर राजतन्त्रवादियों के नेता हिन्डेनबर्ग के राष्ट्रपति बनने की सम्भावना है।'

(२) **राजतन्त्रवादियों का विद्रोह**—इस प्रकार प्रचार करने के पश्चात् राजतन्त्रवादियों ने विद्रोह (Putsch) करने की योजना बनाई। उन्होंने १२ मार्च १९२० को आठ हजार सैनिकों की सहायता से बर्लिन पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया तथा डा० कैप (Dr. Kapp) को राष्ट्रपति घोषित कर दिया। गणतन्त्र सरकार को बर्लिन छोड़ कर ड्रेस्डन (Dresden) जाना पड़ा। इस समय देश की आर्थिक अवस्था बहुत खराब थी। गणतन्त्र सरकार ने मजदूरों को हड़ताल करने के लिए प्रोत्साहित किया। फलतः बर्लिन में मजदूरों ने हड़ताल कर दी। बर्लिन में रेल,

मोटर तथा ट्राम आदि चलना बन्द हो गया। शहर को पानी तथा बिजली मिलना भी बन्द हो गया। कैप मजदूरों को संतुष्ट न कर सका। अतः वह तथा उसके साथी बर्लिन छोड़ कर स्वीडन (Sweden) चले गये। कालान्तर में कैप ने गणतन्त्र सरकार के सम्मुख आत्म-समर्पण कर दिया। उस पर अभियोग चलाया गया; परन्तु इसी मध्य उसका देहान्त हो गया।

(३) **साम्यवादियों का विरोध**—जर्मनी के साम्यवादी गणतन्त्र का अन्त कर देश में सर्वहारा वर्ग का अधिनायकतन्त्र स्थापित करना चाहते थे। डा० कैप के विरोध में जो हडताल हुई थी उसको इन्होंने खूब प्रोत्साहन दिया। इनके प्रोत्साहन से मजदूरों ने यह घोषित किया कि हड़ताल उस समय तक रहेगी जब तक कि नोस्के त्याग-पत्र न दे दे तथा नये चुनाव न हों। सरकार को इन दोनों बातों को स्वीकार करना पड़ा। नये चुनाव में बहुमत गणतन्त्रवादियों का ही रहा, परन्तु संसद में विरोधी दलों के सदस्यों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गई।

(४) **देशव्यापी असन्तोष**—मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी को महायुद्ध के लिये उत्तरदायी ठहराया था। यदि जर्मनी चाहता तो युद्ध बन्द किया जा सकता था। परन्तु जर्मनी रक्तपात करता रहा। अतः मित्र राष्ट्र यह चाहते थे कि अब जर्मनी को इसका प्रायश्चित करना चाहिये। इसी से वार्साय सन्धि के समय उसके साथ कठोरता का बर्ताव किया गया था। उसको बहुत अधिक अपमानित किया गया था। जिन कमरों में बैठ कर जर्मनी के भाग्य का निर्णय किया जा रहा था वहाँ जर्मन प्रतिनिधियों को नहीं बुलाया गया था। वे दूसरे कमरे में बैठे हुए निर्णयों की प्रतीक्षा करते रहते थे। जर्मनी में विदेशी सेनायें रक्खी गई थीं। वार्साय सन्धि का पालन करने के लिए उसके देश में विदेशी कमीशन कार्य कर रहा था। सरकार को उसकी आज्ञाओं का पालन करना पड़ता था। देश की आर्थिक अवस्था भी बहुत खराब थी। इससे देश में सर्वत्र भारी असन्तोष था।

(५) **अराजकतावादियों के उग्र कार्य**—अराजकतावादियों ने गुप्त समितियों का निर्माण कर लिया। उन्होंने वार्साय सन्धि के समर्थक राजनीतिज्ञों तथा कैथोलिकों की हत्यायें करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने सेन्ट्रिस्ट पार्टी के नेता अर्जबर्गर की हत्या कर दी।

(६) **ल्यूडेनडॉर्फ तथा हिटलर का विद्रोह**—नवम्बर १९२३ में ल्यूडेनडॉर्फ (Ludendorff) तथा हिटलर ने मिल कर एक षड़यन्त्र किया। उन्होंने बर्लिन पर चढ़ाई कर दी; परन्तु उनमें परस्पर मतभेद था। अतः म्यूनिख की पुलिस ने उनको सरलता से दबा दिया। षड़यन्त्र में भाग लेने वाले व्यक्तियों पर बवेरिया के न्यायालय में अभियोग चलाये गये तथा उनको साधारण दण्ड देकर छोड़ दिया गया। हिटलर को ५ वर्ष के कारावास का दण्ड दिया गया। परन्तु आठ महीने पश्चात् ही उसको रिहा कर दिया गया। जेल में हिटलर ने 'मेरा संघर्ष' (Mien Kamph) नामक सुप्रसिद्ध पुस्तक की रचना की। आगे चल कर यह पुस्तक नाजियों की बाइबिल बन गई।

(७) **क्षति-पूर्ति**—वार्साय सन्धि की २३१ तथा २३२वीं धाराओं के अनुसार जर्मनी को युद्ध प्रारम्भ करने का दोषी ठहरा कर यह व्यवस्था की गई कि वह युद्ध में नष्ट हुई नागरिक सम्पत्ति का हर्जाना दे। हर्जाने की सम्पूर्ण राशि निश्चित करने का कार्य क्षति-पूर्ति आयोग (Reparation Commission) को सौंपा गया। इस कमीशन ने क्षति-पूर्ति की सम्पूर्ण राशि छः अरब साठ करोड़ पौंड निश्चित की। जर्मनी के आर्थिक साधनों को देखते हुए राशि बहुत अधिक थी। इसके साथ-साथ जर्मन देश-भक्त इस राशि को अदा करने की इच्छा भी नहीं रखते थे। उनका यह मत था कि जर्मनी को धोखे से पराजित किया गया है। मित्र राष्ट्र जर्मनी से केवल बलपूर्वक ही क्षति-पूर्ति वसूल कर सकते थे।

जर्मन जनतन्त्र ने क्षति-पूर्ति की राशि कम करने के लिये माँग की। डावेस तथा यंग योजना के अनुसार क्षति-पूर्ति में पर्याप्त कमी कर दी गई। आर्थिक संकट के उत्पन्न होने पर १९३२ में मित्र राष्ट्रों ने लोजान के सम्मेलन में क्षति-पूर्ति की राशि केवल ७५ करोड़ डालर निश्चित कर दी। जर्मनी ऋण लेकर क्षति-पूर्ति की राशि अदा कर रहा था। अतः उससे इस राशि के अदा करने की सम्भावना नहीं थी। जर्मन चांसलर ब्रूनिग, पेपेन तथा श्लीचर ने क्रमशः यह घोषित किया कि जर्मनी की आर्थिक अवस्था बहुत खराब है। अतः वह क्षति-पूर्ति की राशि अदा नहीं कर सकता। १९३३ में हिटलर के हाथ में सत्ता आ गई और उसने क्षति-पूर्ति की कोई भी राशि अदा करने से इंकार कर दिया।

(८) **आर्थिक कठिनाई**—जर्मनी की आर्थिक अवस्था बहुत खराब थी। वह ऋण लेकर क्षति-पूर्ति कर रहा था। वह कागज के सिक्के छाप-छाप कर अपना कार्य चला रहा था। परन्तु इससे उसके सिक्के मार्क का मूल्य गिरना प्रारम्भ हो गया। इसका अनुमान इस प्रकार लगाया जा सकता है—१९१९ में इंगलैंड का एक पौंड २० मार्क के बराबर होता था। १९२० में एक पौण्ड का मूल्य २५० मार्क हो गया। १९२२ में एक पौंड १००० मार्क के बराबर हो गया। १९२२ में एक पौंड २५०० मार्क के बराबर हो गया। १९२३ में मार्क का कोई मूल्य नहीं रह गया। एक पौंड का मूल्य अरबों तथा करोड़ों मार्क समझा जाने लगा। ऐसा कहा जाता है कि युद्ध के पूर्व मनुष्य जेब में रख कर मार्क ले जाते थे और टोकरी भर कर वस्तुयें ले आते थे, परन्तु युद्ध के पश्चात् टोकरी भर कर मार्क ले जाते थे और जेब में रख कर वस्तुयें ले आते थे। एक सप्ताह की मजदूरी से एक डबल रोटी मिलना भी कठिन हो गया। इससे जनता में त्राहि-त्राहि मच गई। फलतः मुद्रा में स्थिरता लाने का प्रयास किया गया। एक नये मार्क (Rentalmark) का सिक्का चलाया गया। मुद्रा में स्थिरता आने तथा विदेशों से ऋण मिलने पर जर्मनी की आर्थिक अवस्था कुछ अच्छी हो गई। परन्तु विदेशी ऋण मिलना बन्द होने पर जर्मनी की आर्थिक अवस्था पुनः खराब हो गई। १९३२ में जर्मनी की ६ करोड़ ४० लाख की जनसंख्या में से ६५ लाख व्यक्ति बेकार थे।

८. रूर पर आक्रमण—जर्मनी की आर्थिक व्यवस्था खराब होने के कारण क्षति-पूर्ति की किश्त अदा करने में असमर्थ था। अत: उसने १६२२ में यह माँग की कि उसको दो वर्ष के लिए क्षति-पूर्ति की किश्तों की अदायगी स्थगित करने की छूट (Moratorium) दी जाय। इंगलैण्ड जर्मनी से अपना व्यापार बढ़ाना चाहता था। अत: उसने जर्मनी की इस माँग का समर्थन किया; परन्तु फ्रांस ने इसका विरोध किया। फ्राँस का यह विश्वास था कि जर्मनी जान बूझकर क्षति-पूर्ति नहीं करना चाहता है। अत: फ्राँस ने उसी अवस्था में जर्मनी की माँग का समर्थन करने का आश्वासन दिया जबकि जर्मनी अपनी खानों तथा कारखानों पर फ्राँस का अधिकार स्वीकार कर ले। इंगलैंड ने फ्राँस की इस माँग का विरोध किया। फ्राँस ने जर्मनी पर यह आरोप लगाया कि उसने जानबूझकर टेलीफोन के खम्भे तथा इमारती लकड़ी आदि नहीं दिये हैं। फलत: उसने बेल्जियम तथा इटली का सहयोग प्राप्त कर रूर के सुप्रसिद्ध औद्योगिक क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। इससे जर्मनी में बहुत असंतोष हुआ। इंगलैंड ने भी फ्रांस के इस कार्य को अवैध बतलाया। इस क्षेत्र के जर्मनों ने फ्रांस के विरुद्ध असहयोग-आन्दोलन चलाया। जर्मन सरकार ने आन्दोलनकारियों की प्रत्येक प्रकार से सहायता की। फ्राँस ने इस क्षेत्र के जर्मनों के साथ बहुत कठोरता का बर्ताव किया। अन्त में दोनों पक्ष ही संघर्ष से थककर समझौते के लिये विचार करने लगे। इसी मध्य राजनीतिक क्षेत्र में भी परिवर्तन हुए। १६२४ में प्वायन्केअर के स्थान पर हैरियो फ्राँस का प्रधान मन्त्री बना। उधर जर्मनी में स्ट्रेस्मन प्रधान मन्त्री बना। ये दोनों व्यक्ति उदार थे। स्ट्रेस्मन ने रूर क्षेत्र के असहयोग आन्दोलन को वापस ले लिया। क्षतिपूर्ति के सम्बन्ध में कुछ सुधार करने के हेतु डावेस योजना का निर्माण किया गया।

जर्मनी की विदेशी नीति (१६१६—'३२)—१६१६ से १६३२ तक जर्मनी की विदेशी नीति का प्रमुख उद्देश्य यह था कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में फिर से जर्मनी की प्रतिष्ठा स्थापित की जाय। इस ध्येय की पूर्ति के सम्बन्ध में जर्मन देशभक्तों के विचार परस्पर-विरोधी थे। कुछ लोग रूस से सम्बन्ध स्थापित करना चाहते थे। उनका विचार था कि वे रूस की मित्रता प्राप्त कर वार्साय की कठोर तथा अपमान-जनक सन्धि की अवहेलना कर सकते हैं; परन्तु कुछ व्यक्ति रूस के साम्यवादी विचारों को घृणा की दृष्टि से देखते थे। वे वार्साय सन्धि का यथाशक्ति पालन कर फ्रांस को संतुष्ट करना चाहते थे।

रैंपेलो की सन्धि (Rapallo Agreement)—१६२२ में जर्मनी ने अपने एकाकीपन का अन्त कर रूस से रैंपेलो की सन्धि कर ली। इसके अनुसार दोनों देशों में व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो गये। इसके साथ-साथ दोनों देशों ने एक गुप्त सैनिक समझौता भी कर लिया। इसके अनुसार रूस ने प्रतिवर्ष कुछ जर्मन अफसरों को सैनिक शिक्षा देना स्वीकार कर लिया।

मित्रराष्ट्रों की ओर झुकाव—पिपुल्स पार्टी (Peoples Party) का संस्थापक

स्ट्रेसमन (Stresemann) मित्रराष्ट्रों से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने का समर्थक था। वह यथा-शक्ति वार्साय सन्धि का पालन कर फ्रांस को प्रसन्न कर मित्र-राष्ट्रों की सहानुभूति प्राप्त करना चाहता था। इसी से उसने रूर प्रदेश के असहयोग आन्दोलन को वापस ले लिया। उसी के प्रयास से जर्मनी ने डावेस योजना को स्वीकार किया था।

लोकार्नो पैक्ट—यह स्ट्रेसमन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य था। इसी के लिए उसको नोबुल पुरस्कार (Noble Price for Peace) मिला था। यह पैक्ट १९२५ में स्विट्जरलैंड में लोकार्नो नामक स्थान पर हुआ था। इस पर जर्मनी के अतिरिक्त इंगलैण्ड, फ्रांस, बेल्जियम तथा इटली ने हस्ताक्षर किये थे। जर्मनी ने इस पर स्वेच्छा से हस्ताक्षर किये थे। अतः यह उसके लिये वार्साय सन्धि की भांति आरोपित (Dictated) नहीं था। इस पैक्ट के अनुसार निम्नलिखित निर्णय किये गये—

(१) जर्मनी ने वार्साय-सन्धि के द्वारा निर्धारित अपनी पश्चिमी सीमा को स्वीकार कर लिया। दूसरे शब्दों में उसने अल्सेस तथा लोरेन पर फ्रांस का अधिकार स्वीकार कर लिया।

(२) फ्रांस तथा जर्मनी ने एक दूसरे को यह आश्वासन दिया कि वे परस्पर युद्ध नहीं करेंगे। यदि उनमें से किसी एक पर भी किसी तीसरे ने आक्रमण किया तो एक राष्ट्र दूसरे की सहायता करेगा।

(३) राइन प्रदेश में कोई सेना नहीं रक्खी जायगी।

इस पैक्ट के हो जाने पर जर्मनी की प्रतिष्ठा में बहुत वृद्धि हो गई तथा फ्रांस को सुरक्षा मिल गई। इससे यूरोप में सच्चे अर्थों में शान्ति की लहर दौड़ गयी।

जर्मनी का राष्ट्र-संघ का सदस्य बनाना—प्रारम्भ में पराजित होने के कारण जर्मनी को राष्ट्र-संघ का सदस्य नहीं बनाया गया था। लोकार्नो पैक्ट के होने पर स्ट्रेसमन के प्रयास से सितम्बर १९२६ में जर्मनी को राष्ट्र-संघ का सदस्य बना लिया गया। उसको कौंसिल की स्थायी सदस्यता भी प्रदान कर दी गई। इससे जर्मनी को पुनः यूरोप के अन्य राष्ट्रों में समानता का स्थान प्राप्त हो गया। इससे जर्मनी की प्रतिष्ठा में बहुत वृद्धि हो गई।

कुछ अन्य महत्वपूर्ण कार्य—इसके अतिरिक्त स्ट्रेसमन के प्रयास से कुछ अन्य महत्वपूर्ण कार्य हुये। १९२७ में मैण्डेट कमीशन में भी जर्मनी को भी स्थान मिल गया। इसी वर्ष मित्र-राष्ट्रों का अन्तिम कमीशन जो कि वार्साय सन्धि के पालन कराने के लिए जर्मनी में रह रहा था, वापस चला गया। १९२८ में जर्मनी ने केलाँग-ब्रियाँ पैक्ट पर हस्ताक्षर किये। १९२९ में जर्मनी ने यंग-योजना को स्वीकार कर लिया। ३ अक्तूबर १९२९ को जर्मनी के शान्तिप्रिय विदेश-मन्त्री स्ट्रेसमन का देहान्त हो गया। उसकी मृत्यु के कुछ बाद भी उसी की नीति पर कार्य चलता रहा और उसी के प्रभाव के अन्तर्गत १९३० में राइन प्रदेश खाली कर दिया गया।

लोजान सम्मेलन—१९२९ में विश्व-व्यापी आर्थिक संकट प्रारम्भ हो गया। इससे जर्मनी को हर्जाने की किश्त चुकाना कठिन हो गया। अतः इस समस्या पर विचार करने के लिए जून १९३२ में लोजान में एक सम्मेलन हुआ। इसमें इंगलैंड, फ्राँस, बेल्जियम, इटली तथा जापान आदि देशों ने भाग लिया। इस सम्मेलन के प्रतिनिधियों ने यंग योजना रद्द कर जर्मनी से केवल ७५ करोड़ डालर की राशि की माँग की गई। इससे जर्मनी को पर्याप्त छूट मिल गई। मित्रराष्ट्र चाहते थे कि इसी अनुपात में अमेरिका भी ऋणों की मात्रा में कमी कर दे; परन्तु वह उसके लिए तैयार नहीं हुआ। फलतः यह सम्मेलन असफल हो गया। जर्मनी को विदेशों से ऋण मिलना बन्द हो गया। अतः १९३२ में जर्मनी के चाँसलर ने यह घोषित कर दिया कि अब जर्मनी क्षति-पूर्ति की राशि को किश्त अदा नहीं कर सकता।

प्रश्न

१ १९१९ से १९३२ तक जर्मनी की गृह तथा वैदेशिक नीति का वर्णन कीजिये।

२ वीमर गणतन्त्र को किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा? विस्तार-पूर्वक लिखिये।

६

सुरक्षा की खोज

फ्राँसीसी सुरक्षा; राष्ट्र संघ के बाहर सुरक्षा के प्रयत्न; फ्रांस की सन्धियां, प्रतिक्रिया तथा अन्य सन्धियाँ; फ्रांस की सुरक्षा का अन्त; ऐण्टी कोमिण्टर्न पैक्ट–बर्लिन–रोम–टोकियो ऐक्सिस, नात्सी–सोवियट अनाक्रमक समझौता; राष्ट्रसंघ द्वारा सुरक्षा के प्रयास; जेनेवा प्रोटोकल, लोकार्नो पैक्ट; केलाग–ब्रिआँ पैक्ट; वाशिंगटन सम्मेलन; निःशस्त्रीकरण; जेनेवा सम्मेलन; असफलता के कारण।

प्रथम महायुद्ध के भयंकर विनाश के पश्चात् भी यूरोप के राष्ट्रों की समस्या समाधान नहीं हुआ। इस समय फ्रांस सबसे अधिक सुरक्षा की कमी का अनुभव र रहा था। प्रथम महायुद्ध में अपने साथियों के सहयोग से फ्रांस ने जर्मनी को भली कार पद-दलित कर दिया था, परन्तु वह यह भली प्रकार जानता था कि जर्मनी की अपेक्षा कहीं अधिक शक्तिशाली है। एकमात्र गत ५० वर्षों में ही जर्मनी ने पर दोबारा भयंकर आक्रमण किया था। विजय प्राप्त करने पर भी फ्रांस को नी के भावी आक्रमण की आशंका भयभीत कर रही थी। फ्रांस यह भली प्रकार नता था कि जर्मनी ने विवशतावश वार्साय की सन्धि को स्वीकार किया है। सर पाकर वह पुनः फ्रांस के विरुद्ध प्रतिशोध का युद्ध करेगा। अतः लैंगसम के शब्दों में 'प्रथम महायुद्ध के समाप्त होने से पूर्व ही फ्राँस ने जर्मनी के भावी क्रमण से सुरक्षा पाने की खोज प्रारम्भ कर दी थी।' जैकसन (Jackson) के दों में 'फ्रांस की नीति का मूलाधार सुरक्षा की चिन्ता थी।' कार महोदय ने ठीक लिखा है कि १९१९ के बाद यूरोप की समस्याओं में सबसे महत्वपूर्ण बात फ्रांस सुरक्षा की मांग थी।[1]

राष्ट्र संघ के बाहर सुरक्षा की खोज

फ्रांस के सुरक्षा के प्रयास—पेरिस के शान्ति सम्मेलन में फ्राँस ने अपनी क्षा के लिये बहुत अधिक प्रयास किया। उसने यह माँग की कि फ्रांस की सुरक्षा लिये यह आवश्यक है कि फ्राँस तथा जर्मनी के मध्य राइन का स्वतन्त्र य स्थापित कर दिया जाय। परन्तु विलसन तथा लायड जार्ज ने फ्रांस की इस मांग स्वीकार नहीं किया। उन्होंने फ्रांस को संतुष्ट करने के लिए जर्मनी को यह आदेश ा कि जर्मनी इस प्रदेश में सेना न रक्खे तथा किलेबन्दी न करे। १५ वर्ष के

1. 'The most important and persistent single factor in ıropean affairs in the years following 1919 was the French mand for security.' —Carr

लिए यह प्रदेश मित्र राष्ट्रों को दे दिया गया। इससे फ्रांस को संतोष नहीं हुआ। १५ वर्ष तक जर्मनी के निर्बल रहने की सम्भावना थी। इसके पश्चात् वह पुनः शक्ति प्राप्त कर फ्रांस के लिए खतरे का कारण बन सकता था। इससे फ्रांस की सुरक्षा की समस्या हल नहीं हुई। फ्रांस ने यह भी मांग की थी कि राष्ट्र संघ के पास एक अन्तर्राष्ट्रीय सेना होनी चाहिए, जिसकी सहायता से वह सन्धियों का पालन करा सके तथा आक्रमणकारी देश का विरोध कर सके। परन्तु विल्सन तथा लायड जार्ज ने फ्रांस की इस बात को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने यह कहा था कि उनके देश अपनी सेना पर राष्ट्रसंघ का आधिपत्य स्वीकार नहीं करेंगे। परन्तु अमेरिका तथा इंगलैंड ने मिलकर फ्रांस को जर्मनी के विरुद्ध सुरक्षा की गारन्टी दी और यह आश्वासन दिया कि यदि जर्मनी अकारण ही फ्राँस पर आक्रमण करेगा तो वे दोनों मिलकर फ्राँस को सैनिक सहायता देंगे। परन्तु अमेरिका की सीनेट ने वार्साय की सन्धि को अस्वीकृत कर दिया। उससे अमेरिका यूरोप की राजनीति से अलग हो गया। यूरोप की राजनीति से अमेरिका के हटने पर उसके साथ ही इंगलैंड का सुरक्षा का आश्वासन भी समाप्त हो गया। इससे फ्राँस की सुरक्षा की समस्या बहुत जटिल हो गई।

राष्ट्रसंघ की १०वीं धारा में कहा गया था कि 'राष्ट्रसंघ के सदस्य संघ के सभी सदस्यों की क्षेत्रिक अखण्डता तथा वर्तमान राजनीतिक स्वतन्त्रता का सम्मान करते हैं। वे उसकी बाह्य आक्रमणकारी से रक्षा करने का भी वचन देते हैं।'[1] राष्ट्रसंघ की १६वीं धारा में कहा गया था कि यदि कोई देश राष्ट्रसंघ की अवहेलना कर आक्रमण करता है तो उसको राष्ट्रसंघ के सभी राष्ट्रों के विरोध में युद्ध करने वाला माना जायगा। उसके विरोध में राष्ट्रसंघ के सदस्य आर्थिक प्रतिबन्ध (Economic Sanctions) लगा सकते थे। परन्तु फ्रांस को राष्ट्रसंघ की इन धाराओं से कोई सन्तोष न था। वह जानता था कि अमेरिका के राष्ट्रसंघ से बाहर रहने का अर्थ है विश्व के आधे भाग का उससे बाहर रहना। अतः ऐसी अवस्था में अभी भी राष्ट्र-संघ द्वारा लगाये हुए आर्थिक प्रतिबन्ध सफल नहीं हो सकते।

फ्राँस यह चाहता था कि राष्ट्रसंघ के पास अन्तर्राष्ट्रीय सेना हो। अमेरिका तथा इंगलैंड इसके लिए सहमत नही हुए। अतः यह व्यवस्था की गई कि आवश्यकता-नुसार राष्ट्रसंघ के सदस्य राज्यों से सेना आ सकती है. परन्तु फ्राँस को इससे भी सन्तोष नहीं था। वह यह जानता था कि राष्ट्रसंघ केवल अपने सदस्य राज्यों से सेना भेजने की प्रार्थना कर सकता था। सेना भेजने या न भेजने का निर्णय करने का अधिकार उक्त देशों की संसदों को था। इसके साथ-साथ सैनिक कार्यवाही कौन्सिल के बड़े सदस्यों की सर्वसम्मति से ही की जा सकती थी। इससे फ्राँस का सुरक्षा के

---

1. 'To respect and preserve as against external aggression the terrtorial integirity, existence and political independence of all members of the League.'

सम्बन्ध में राष्ट्रसंघ पर विश्वास नहीं था। अतः उसने अपनी सुरक्षा के लिए यूरोप के अन्य देशों से सुरक्षात्मक सन्धियाँ करना प्रारम्भ कर दिया।

बेल्जियम से सन्धि—७ सितम्बर १९२० को फ्राँस ने बेल्जियम के साथ एक सुरक्षात्मक सन्धि कर ली। यह एक सैनिक सन्धि थी। इसके अनुसार दोनों देशों ने यह निर्णय किया कि यदि एक देश के ऊपर कोई अन्य देश आक्रमण करे तो दूसरा देश अपने मित्र की सहायता करेगा। दोनों देशों के मध्य यह सन्धि १५ वर्ष तक चलती रही। इससे उत्तर-पश्चिम में फ्राँस की सीमा सुरक्षित हो गई।

पोलैण्ड के साथ सन्धि—पूर्व में अपनी सुरक्षा स्थापित करने के लिये फ्राँस ने पोलैंड से मित्रता करनी चाही। इस समय दोनों देशों में मैत्री स्थापित होने के लिये परिस्थितियाँ अनुकूल थीं। पोलैंड का पोलिश गलियारे (Polish Croridor) के सम्बन्ध में जर्मनी से घोर मतभेद रहता था। उधर फ्राँस भी जर्मनी का घोर विरोधी था। अतः इन दोनों में मैत्री-सम्बन्ध स्थापित होना स्वाभाविक था। इस समय पोलैण्ड का अपने प्रत्येक पड़ोसी से झगड़ा चल रहा था। साइलेशिया के सम्बन्ध में उसका जेकोस्लोवाकिया से झगड़ा था। विलना नगर के कारण लिथुआनिया से उसका झगड़ा था। यूक्रेन के प्रदेश के कारण उसका रूस से तथा पूर्वी गलेशिया में उसका रुथीन लोगों से संघर्ष था। अतः पोलैंड भी अपने विरोधियों से सुरक्षा पाने के लिये फ्राँस से मित्रता करने को तैयार था। इसके साथ-साथ पोलैण्ड की आन्तरिक परिस्थिति भी ठीक नहीं थी। देश मे अनेक भाषा बोलने वाले लोग रहते थे। उनमें राष्ट्रीय भावना का सर्वथा अभाव था। मैदान में स्थित होने के कारण कोई भी देश सरलता से पोलैण्ड पर आक्रमण कर सकता था। अतः उसने १९ फर्वरी १९२१ को फ्राँस से सुरक्षा-सन्धि कर ली। इस सन्धि के द्वारा निम्नलिखित निश्चय किये गये—

(१) दोनों देशों की मित्रता विशेष रूप से जर्मनी के विरोध में हुई थी। अतः यह निर्णय किया गया कि यदि भविष्य में जर्मनी अथवा उसकी सहायता से कोई देश इसमें से किसी पर आक्रमण करे तो फ्राँस तथा पोलैण्ड एक दूसरे की सहायता करेंगे।

(२) दोनों देशों ने पारस्परिक व्यापार में चुंगियाँ कम कर दीं।

(३) दोनों देश सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए परस्पर विचार-विमर्श करते रहेंगे।

(४) फ्राँस ने पोलैंड को पर्याप्त युद्ध-सामग्री देने का आश्वासन दिया, परन्तु यह धारा गुप्त रक्खी गई।

इङ्गलैंड से पुनः सुरक्षा के आश्वासन की मांग—हम पीछे उल्लेख कर चुके हैं कि प्रारम्भ में इंगलैण्ड ने अमेरिका के साथ सम्मिलित रूप से फ्रांस को जर्मनी के विरुद्ध सुरक्षा का आश्वासन दिया था; परन्तु अमेरिका के हाथ खींच लेने से इंगलैण्ड के द्वारा दिया हुआ सुरक्षा का आश्वासन स्वतः समाप्त हो गया। १९२१ में पुनः

फ्रांस ने इंगलैंड से सुरक्षा के आश्वासन की मांग की । इंगलैंड भी उसको यह आश्वासन देने के लिए तैयार हो गया कि यदि जर्मनी ने अकारण ही फ्रांस पर आक्रमण किया तो वह फ्रांस की सहायता करेगा । फ्रांस का उग्रवादी प्रधान मन्त्री प्वायन्केअर इसके लिए सहमत नहीं हुआ । वह चाहता था कि इंगलैंड उसके साथ ३० वर्ष के लिए सैनिक समझौता कर ले । दूसरे उसकी यह मांग थी कि इंगलैंड उसकी सुरक्षा के साथ-साथ उसके मित्रों की सुरक्षा का भी आश्वासन दे; परन्तु इंगलैंड इसके लिए तैयार नहीं हुआ । फलतः फ्रांस तथा इंगलैंड के मध्य सन्धि नहीं हो सकी ।

लघु गुट (Little Entente)—लघु गुट की सन्धि तीन नए राज्यों के मध्य थी । इसके अन्तर्गत डेन्यूब नदी की घाटी के जेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया तथा रूमानिया नामक तीन छोटे राज्य थे । इन तीनों राज्यों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है—

जेकोस्लोवाकिया—इसकी आन्तरिक अवस्था अच्छी नहीं थी । इसमें जेक तथा स्लाव नामक जातियाँ रहती थीं । जेक जाति अधिक शिक्षित होने के कारण उच्च पदों पर प्रतिष्ठित थीं । इससे स्लाव जाति में बहुत असंतोष था । इसके विरोध में उसने स्वायत्त शासन की मांग की । राजनीतिक तथा भौगोलिक दृष्टिकोण से भी जेकोस्लोवाकिया की स्थिति ठीक नहीं थी । उसकी राजधानी सीमा पर स्थित थी । अतः जर्मनी उस पर आसानी से अधिकार कर सकता था । इस सम्बन्ध में कार (Carr) महोदय का कथन उल्लेखनीय है—'मध्य यूरोप में जितने भी राज्य हैं, उनमें जेकोस्लोवाकिया की स्थिति बहुत विभिन्न थी । सैनिक दृष्टि से उस पर सरलतापूर्वक आक्रमण किया जा सकता था ।'[1]

यूगोस्लाविया—इसकी भी आन्तरिक स्थिति अच्छी नहीं थी । इसमें भी सर्व, स्लोवेनीज तथा क्रोट (Croat) नामक कई जातियाँ रहती थीं । इन जातियों में परस्पर सहयोग का अभाव था ।

रूमानिया—इस राज्य का निर्माण हंगरी से ट्रांसिल्वेनिया तथा रूस से बसरेबिया का प्रदेश लेकर किया गया था । यह बड़े देशों के मध्य स्थित होने के कारण बाह्य आक्रमण की आशंका से भयभीत रहता था ।

तीनों देशों के सामान्य उद्देश्य—उपर्युक्त तीनों देशों का निर्माण आस्ट्रिया-हंगरी के विघटन के पश्चात् हुआ था । अतः ये तीनों राज्य यह चाहते थे कि आस्ट्रिया में पुनः हैप्सबर्ग वंश के शासन की स्थापना न हो । इनका उद्देश्य वार्साय सन्धि की प्रादेशिक व्यवस्था को बनाए रखना था । ये तीनों राज्य यह चाहते थे कि वार्साय सन्धि के अनुसार उनको जो प्रदेश प्राप्त हुए हैं वे कभी वापस न लिए जाँय ।

---

1. 'Of all the states of Central Europe Czechoslovakia was the most heterogeneous and from the military stand point, the most vulnerable.' —Carr.

वार्साय सन्धि की व्यवस्था में वे किसी भी प्रकार के संशोधन के घोर विरोधी थे।[1] अतः उन्होंने अपने इन सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए १९२०–२१ में परस्पर मैत्री-सम्बन्ध स्थापित कर लिया। उनकी यह मैत्री-सन्धि इतिहास में लघु गुट (Little Entente) के नाम से प्रख्यात है। इसके बाद फ्राँस ने इन तीनों देशों से अलग-अलग सन्धियाँ कीं। १९२४ में उसने जेकोस्लोवाकिया से सन्धि की। १९२७ में उसने यूगोस्लाविया तथा रूमानिया से सन्धियाँ कीं। ये सन्धियाँ १५ वर्ष तक चलती रहीं।

लघु गुट का प्रभाव—लघु गुट की स्थापना का बहुत अधिक महत्व है। यद्यपि इस गुट के तीनों राज्य बहुत छोटे थे, परन्तु सम्मिलित रूप से उनकी जन-संख्या ५ करोड़ थी। ये तीनों राज्य फ्राँस की भाँति ही वार्साय सन्धि को बनाए रखने के पक्षपाती थे। इससे फ्रांस की शक्ति में वृद्धि होना तथा उसकी सुरक्षा का दृढ़ होना स्वाभाविक था। इस समय जर्मनी उससे युद्ध करने का साहस नहीं कर सकता था। यदि वह ऐसा करता तो उसको एक साथ फ्राँस तथा उसके लघु गुट के मित्रों से युद्ध करना पड़ता। हिटलर के उदय होने तक यूरोप की राजनीति में इस गुट की प्रधानता रही। परन्तु इससे फ्रांस के लिए कुछ कठिनाईयाँ भी उत्पन्न हो गईं। फ्राँस को इन राज्यों की धन तथा सैनिक सामग्री से सहायता करनी पड़ती थी। ये राज्य छोटे-छोटे थे तथा फ्राँस से दूर थे। अब इनकी सुरक्षा का भार भी फ्राँस पर आ गया था। इससे फ्राँस को पूर्वी तथा पश्चिमी यूरोप की समस्याओं में भी हस्तक्षेप करना आवश्यक हो गया।

प्रतिक्रिया—अपनी सुरक्षा के लिए फ्राँस ने इस गुटबन्दी का जाल फैलाया था; परन्तु इसकी प्रतिक्रिया के रूप में रूस तथा इटली ने भी सशस्त्र गुटों का निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया। इससे यूरोप में पुनः वह स्थिति उत्पन्न होनी प्रारम्भ हो गई, जोकि प्रथम महायुद्ध से पूर्व थी।

रूस की सन्धियाँ—बोल्शेविक रूस तथा पराजित जर्मनी को मित्रराष्ट्र घृणा की दृष्टि से देखते थे। वे इनको अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भी निमन्त्रित नहीं करते थे। अतः इन देशों ने १६ अप्रैल १९२२ की रैपेलो की सन्धि (Rapallo Agreement) कर ली। इसके अनुसार जर्मनी ने रूस की सोवियत सरकार को मान्यता दे दी। दोनों देशों ने प्रथम महायुद्ध के पूर्व के ऋणों को रद्द कर दिया। दोनों देशों में व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो गए। दोनों देशों ने एक गुप्त समझौता भी कर लिया। इसके अनुसार रूस ने यह स्वीकार किया कि वह प्रति वर्ष कुछ जर्मन सैनिक पदाधिकारियों को उच्च सैनिक शिक्षा देगा। वार्साय-सन्धि के अनुसार जर्मन पदाधिकारियों को इस प्रकार की सैनिक शिक्षा देना अवैध था।

1. 'The three members of the Entente shared of course a general interest in the maintenance of the territorial settlement. On a broad classification they belonged to the anti-revisionist grouping.'

—Gathorne-Hardy.

इसके पश्चात् रूस ने अपने पड़ोसियों के साथ अनाक्रमक समझौते करने प्रारम्भ कर दिए। इस प्रकार के समझौते उसने १९२५ में टर्की से, १९२६ में अफगानिस्तान, लिथुआनिया तथा जर्मनी से और १९२७ में फारस के साथ किए।

इटली की सन्धियाँ—इटली विजेता होने पर भी फ्राँस का विरोधी तथा वार्साय-सन्धि के संशोधन का समर्थक था, क्योंकि पेरिस के समझौते में उनको लूट में से पर्याप्त भाग नहीं मिला था। इसी से यह कहा जाता है कि इटली युद्ध में तो जीत गया, परन्तु शाँति-सम्मेलन में पराजित हो गया। फ्राँस की गुटबन्दी से वह और भी अधिक भयभीत हो गया। अतः उसने भी अपने पड़ोसी देशों से गुटबन्दी करनी प्रारम्भ कर दी। उसने १९२६ में अल्बानिया से, १९२७ में हंगरी से, १९२८ में टर्की तथा यूनान से और १९३० में आस्ट्रिया के साथ मैत्री-सम्बन्ध स्थापित कर लिए।

बाल्कन पैक्ट—इटली की गुटबन्दी से बाल्कन राज्यों तथा लघु गुट के राज्यों को खतरा उत्पन्न हो गया। अतः इसके विरोध में १९३४ में यूगोस्लाविया, रूमानिया, टर्की तथा यूनान ने परस्पर मैत्री-सम्बन्ध स्थापित कर लिया। इतिहास में यह बाल्कन पैक्ट के नाम से प्रख्यात है। यूगोस्लाविया तथा रूमानिया लघु गुट तथा बाल्कन पेक्ट दोनों के ही सदस्य थे।

फ्राँस की सुरक्षा का अन्त—बेल्जियम, पोलैंड तथा लघु गुट के राष्ट्रों के साथ मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करने से फ्राँस को अपनी सुरक्षा का विश्वास हो गया। इससे अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में फ्राँस की प्रतिष्ठा में वृद्धि हो गई थी। हिटलर के उदय तक यूरोप की राजनीति में फ्राँस की पूर्ण प्रतिष्ठा रही; परन्तु इसके बाद उसके द्वारा बनाया हुआ सन्धियों का जाल छिन्न-भिन्न होना प्रारम्भ हो गया। हिटलर का मुख्य उद्देश्य वार्साय-सन्धि को भंग कर पुनः यूरोप में जर्मनी की पूर्व प्रतिष्ठा स्थापित करना था। इसीलिए उसने १९३५ में जर्मनी के निःशस्त्रीकरण का अन्त करने के लिए सैनिक सेवा अनिवार्य कर दी। अगले वर्ष उसने राइन के निःशस्त्र प्रदेश में सेनाएँ भेज दीं। इटली तथा इङ्गलैंड की सहायता के अभाव में फ्रांस जर्मनी की इस प्रगति को न रोक सका। इससे फ्राँस के मित्रों का उसकी शक्ति में विश्वास नहीं रहा। वे समझ गए कि जब वह अपनी रक्षा करने में ही असमर्थ रहा है तो फिर वह अपने मित्रों की किस प्रकार रक्षा कर सकता है? हिटलर के उत्कर्ष से पौलैंड तथा बेल्जियम की सुरक्षा खतरे में पड़ गई। उन्हें फ्रांस से सुरक्षा पाने का भरोसा नहीं रहा। अतः १९३४ में पौलैंड ने हिटलर से १० वर्ष के लिए एक अनाक्रमक समझौता कर लिया। १९३७ में इसी प्रकार की एक सन्धि बेल्जियम के साथ भी कर ली गई। इस प्रकार फ्रांस की सुरक्षा का प्रयास नष्ट हो गया।

एण्टी कोमिण्टर्न पैक्ट तथा बर्लिन-रोम-टोकियो धुरी का निर्माण—२५ नवम्बर १९३६ को जापान तथा जर्मनी ने रूस की कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल संस्था (Communist International) के विरुद्ध एण्टी कोमिण्टर्न पेक्ट (Anti-Comintern Pact) किया। इसमें निम्नलिखित बातें तय की गईं—

(१) यह समझौता ५ वर्ष तक रहेगा तथा इस मध्य पूर्ण शक्ति के साथ साम्यवाद का विरोध किया जायगा।

(२) यूरोप के अन्य साम्यवाद-विरोधी देशों को भी इसमें सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रित किया जायगा।

(३) दोनों देश एक दूसरे को साम्यवादियों के कार्यों से परिचित कराते रहेंगे तथा उनसे सुरक्षा पाने के उपायों पर भी विचार करेंगे।

६ नवम्बर १९३७ को इटली ने भी इस पैक्ट को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार बर्लिन-रोम-टोकियो धुरी (Berlin-Rome-Tokyo Axis) का निर्माण हुआ। कालान्तर में हंगरी तथा मंचुकुओ भी इस पैक्ट में सम्मिलित हो गए। इससे यूरोप दो गुटों में विभाजित हो गया। वास्तव में यह इंगलैंड, फ्राँस तथा रूस आदि संतुष्ट राष्ट्रों के विरोध में जर्मनी, इटली तथा जापान आदि असंतुष्ट राष्ट्रों की सन्धि थी।

नाजी-सोवियत अनाक्रमण समझौता (Nazi-Soviet Non-Aggression Pact)—जर्मनी रूस का कट्टर विरोधी था। हिटलर अपने भाषणों में बराबर रूस की निन्दा करता रहता था। एण्टी-कोमिण्टर्न पेक्ट भी रूस के ही विरोध में किया गया था; परन्तु फिर भी २३ अगस्त १९३९ को इन दोनों देशों ने अपने-अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए अनाक्रमण समझौता कर लिया।

इस समय हिटलर पोलैण्ड पर आक्रमण करने की तैयारियाँ कर चुका था। अत: इसकी सफलता के लिए वह रूस से मित्रता की वार्ता कर रहा था। उधर मित्र राष्ट्र पोलैण्ड की सुरक्षा चाहते थे। अत: वे भी रूस से समझौते के लिए वार्ता कर रहे थे। मित्र-राष्ट्रों से रूस की मित्रता न हो सकी, क्योंकि वे बोल्शेविक रूस को घृणा की दृष्टि से देखते थे और रूस भी इंगलैंड तथा फ्राँस की पूंजीवादी व्यवस्था को घृणा की दृष्टि से देखता था। प्रथम महायुद्ध के दौरान में बाल्टिक प्रदेश के कुछ छोटे-छोटे राज्य रूस के हाथ से निकल गए थे। रूस पुन: इन पर अधिकार करना चाहता था, परन्तु मित्र-राष्ट्र उसकी इस माँग को स्वीकार नहीं कर रहे थे। परन्तु जर्मनी ने उसकी इस मांग को स्वीकार कर लिया था। पोलैंड रूस का पुराना शत्रु था। उसने १९२० में रूस पर आक्रमण किया था। इस समय रूस ने यह मांग की कि आवश्यकता पड़ने पर उसको पोलैंड में अपनी सेनाएं भेजने का अधिकार होना चाहिए; परन्तु पोलैंड इसके लिए तैयार नहीं हुआ। अत: रूस ने भी उसकी सुरक्षा के लिए विशेष दिलचस्पी नहीं ली और उसने रूस के साथ अनाक्रमण सन्धि कर ली। इसके अनुसार निम्नलिखित निर्णय किए गए—

(१) दोनों देश एक दूसरे के विरुद्ध युद्ध न करेंगे।

(२) यदि उनमें से किसी एक देश पर किसी तीसरे देश ने आक्रमण किया तो आक्रमणकारी को सहायता नहीं दी जायगी।

(३) एक दूसरे के विरुद्ध की जाने वाली गुटबन्दियों में सम्मिलित नहीं होंगे।

(४) एक गुप्त समझौते के अनुसार दोनों ने पूर्वी यूरोप को परस्पर बांट लिया।

इस समझौते से मित्र-राष्ट्रों को बहुत दुःख हुआ। हिटलर को इस सन्धि से कई महत्वपूर्ण लाभ हुए। इसके द्वारा रूस जर्मनी के विरोधी इङ्गलैण्ड तथा फ्राँस के साथ नहीं मिल सका। इससे जर्मनी की पूर्वी सीमा सुरक्षित हो गई। अतः उसको दो मोर्चों पर लड़ने की आवश्यकता न रह गई। अब वह डटकर पोलैण्ड का सामना कर सकता था। अतः उसके लिए पोलैण्ड-विजय करना सरल हो गया।

राष्ट्र-संघ द्वारा सुरक्षा के प्रयास

राष्ट्र-संघ ने भी सुरक्षा के लिए कुछ महत्वपूर्ण कार्य किए। इनमें निम्नलिखित प्रयास प्रमुख हैं—

(१) पारस्परिक सहायता की सन्धि का ड्राफ्ट।

(२) जेनीवा प्रोटोकल।

(३) लोकार्नो-समझौता।

(४) केलॉग ब्रीआं पैक्ट (पेरिस का पैक्ट)।

(५) निःशस्त्रीकरण सम्मेलन।

नीचे प्रत्येक का क्रमशः वर्णन किया जायगा—

पारस्परिक सहायता की सन्धि का ड्राफ्ट (Draft Treaty of Mutual Assistance)—फ्राँस को राष्ट्र-संघ से सुरक्षा का विश्वास नहीं था। अतः उसने राष्ट्र-संघ द्वारा अन्य देशों से सुरक्षा के समझौते कराने की माँग की। १९२२ में इङ्गलैण्ड के लार्ड राबर्ट सेसिल ने इस प्रकार के समझौतों के लिए कुछ प्रस्ताव प्रस्तुत किए। इन्हीं प्रस्तावों के आधार पर राष्ट्र-संघ की असेम्बली ने पारस्परिक सहायता की सन्धि का ड्राफ्ट तैयार किया। १९२३ में विचारार्थ यह ड्राफ्ट राष्ट्र-संघ के सदस्यों को भेजा गया। इस ड्राफ्ट में निम्नलिखित बातों पर प्रकाश डाला गया था—

(१) आक्रमणात्मक युद्धों को अवैध घोषित कर दिया गया।

(२) इस ड्राफ्ट को स्वीकार करने वाले देशों ने एक दूसरे को सहायता देने का आश्वासन दिया।

(३) संघ की कौंसिल को यह अधिकार दिया गया कि वह यह निर्णय करे कि आक्रमणकारी कौन है और आक्रमणकारी देश के विरोध में क्या कार्यवाही की जाय।

(४) सदस्य राज्य अपनी भौगोलिक स्थिति के अनुसार सहायता देंगे।

(५) सहायता उन्हीं देशों को दी जायगी जो कि एक निश्चित सीमा तक दो वर्ष के अन्दर-अन्दर अपने शस्त्रास्त्रों में कमी कर लेंगे।

पारस्परिक सहायता की सन्धि के इस ड्राफ्ट पर १८ देशों ने हस्ताक्षर किए। अमेरिका तथा रूस ने इसका विरोध किया। इङ्गलैण्ड तथा उसके उपनिवेशों न

इसका घोर विरोध किया। इङ्गलैण्ड के विरोध का प्रमुख कारण यह था कि उसका साम्राज्य समस्त भूमण्डल पर फैला हुआ था। अतः विश्व के किसी भी देश में युद्ध प्रारम्भ होने पर सहायता के भौगोलिक सिद्धान्त के आधार पर उसको अधिकाँश युद्धों में भाग लेना अनिवार्य था। इङ्गलैंड इतना बड़ा उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेने के लिए तैयार नहीं था। फलतः सुरक्षा का यह सिद्धान्त असफल हो गया।

जेनीवा प्रोटोकल—१९२४ में परिस्थिति बदल गई। फ्राँस के उग्रवादी प्रधान मन्त्री प्वायन्केअर के मन्त्रि-मण्डल का पतन हो गया तथा हैरियो ने अपना मन्त्रि-मण्डल बनाया। यह एक उदार-हृदय व्यक्ति था। उधर इंगलैंड में मजदूर दल के नेता रैम्जे मैकडानल्ड ने मन्त्रि-मण्डल का निर्माण किया। इन दोनों उदार प्रधान मन्त्रियों ने मिलकर विश्व में शान्ति बनाये रखने के लिए एक योजना बनाई। इस योजना में सुरक्षा, निःशस्त्रीकरण तथा मध्यस्थता (Arbitration) को विशेष महत्व दिया गया। यह योजना इतिहास में जेनीवा प्रोटोकल के नाम से प्रख्यात है। २ अक्टूबर १९२४ को राष्ट्र संघ की असेम्बली ने भी इस योजना को स्वीकार कर लिया। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित व्यवस्थायें की गयीं—

१. जो राष्ट्र इसके सदस्य बनेंगे वे परस्पर युद्ध नहीं करेंगे।

२. राजनीतिक झगड़ों का फैसला समझौते अथवा मध्यस्थता द्वारा करेंगे।

३. कानूनी झगड़ों का फैसला राष्ट्र-संघ के स्थायी न्यायालय द्वारा करायेंगे।

४. यदि कोई राष्ट्र समझौते अथवा मध्यस्थता को स्वीकार न करे तो उसे आक्रमणकारी समझा जायगा और इस समझौते पर हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्र उसके विरुद्ध कार्यवाही करेंगे। यह कार्यवाही सम्बन्धित राष्ट्रों की भौगोलिक स्थिति के अनुसार की जायगी।

५. यदि मई १९२५ तक कौंसिल के स्थायी सदस्य तथा राष्ट्र-संघ के अन्य १० सदस्य इसको स्वीकार कर लेंगे तो जून १९२५ में निःशस्त्रीकरण के सम्बन्ध में एक अन्तर्राष्ट्रीय समझौता बुलाया जायगा।

१७ राज्यों ने प्रोटोकल को स्वीकार कर लिया; परन्तु इसी मध्य इंगलैंड में मजदूर दल के मन्त्रि-मण्डल का पतन हो गया और उसके स्थान पर अनुदार दल के नेता बाल्डविन ने अपने मन्त्रि-मण्डल का निर्माण किया। निम्नलिखित कारणों से १२ मार्च १९२५ को इंगलैंड ने इस प्रोटोकल को अस्वीकार कर दिया—

१. अमेरिका राष्ट्र-संघ में सम्मिलित नहीं था। उसके लिये इसके निर्णयों को मानना आवश्यक नहीं था। अतः जेनेवा प्रोटोकल के सदस्य उनके निर्णयों को न मानने पर उसको आक्रमणकारी घोषित कर सकते थे। ऐसी अवस्था में इंगलैंड अमेरिका से संघर्ष करने को तैयार न था।

२. इंगलैंड का साम्राज्य समस्त विश्व में था। अतः वह इस प्रोटोकल को स्वीकार कर अपनी जिम्मेदारी को नहीं बढ़ाना चाहता था।

फलतः १२ मार्च १६२५ को इंगलैंड के विदेश-मन्त्री चेम्बरलेन ने इस योजना को अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार इंगलैंड के विरोध के कारण कानून द्वारा शान्ति स्थापित करने का यह कार्य असफल हो गया।

लोकार्नो समझौता
(Locarno Pact)

जर्मनी को फ्राँस के आक्रमण का भय था। अतः उसने ३१ दिसम्बर १६२२ को यह प्रस्ताव रक्खा— हम राइन प्रदेश पर आक्रमण नहीं करेंगे। अतः इस प्रदेश में दिलचस्पी रखने वाले देश इंगलैंड तथा बेल्जियम आदि परस्पर युद्ध न करने का समझौता कर लें। परन्तु फ्रांस के उग्रवादी प्रधान मन्त्री प्वायन्केअर ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। फिर भी जर्मन सरकार बराबर इस प्रस्ताव को दोहराती रही। इससे उसे इंगलैंड आदि देशों की सहानुभूति प्राप्त हो गई। फलतः फ्रांस ने भी इसको स्वीकार कर लिया। इंगलैंड ने जर्मनी तथा फ्रांस को यह आश्वासन दिया कि यदि फ्राँस ने जर्मनी पर आक्रमण किया तो वह जर्मनी की सहायता करेगा और यदि जर्मनी ने फ्राँस पर आक्रमण किया तो वह फ्राँस की सहायता करेगा।

समझौते की रूपरेखा तैयार करने के लिए इंगलैंड, फ्राँस, बेल्जियम, जर्मनी, इटली, पोलैंड तथा जेकोस्लोवाकिया के प्रतिनिधियों ने स्विट्जरलैंड के लोकार्नो नामक स्थान पर अक्तूबर १६२५ में एक सम्मेलन किया। यहाँ राइन प्रदेश की सुरक्षा के सम्बन्ध में एक समझौता किया गया जो कि इतिहास में 'लोकार्नो समझौता' कहलाता है। यह पहला अवसर था जबकि जर्मनी के प्रतिनिधियों से भी समानता के आधार पर समझौता किया गया था। इससे यूरोप की राजनीति में जर्मनी की पूर्व प्रतिष्ठा स्थापित हो गई। जर्मनी ने इस सम्मेलन में निम्नलिखित मांगें प्रस्तुत कीं—

१. उसको राष्ट्र संघ तथा कौंसिल की सदस्यता प्रदान की जाय। उसकी यह माँग स्वीकार कर ली गई।

२. उसने पश्चिमी सीमा भंग न करने का आश्वासन दिया; परन्तु पूर्वी सीमा के सम्बन्ध में उसने इस प्रकार का कोई आश्वासन न दिया। पूर्व में फ्रांस के मित्रराष्ट्र जेकोस्लोवाकिया तथा पोलैंड थे। अतः फ्रांस यह माँग कर रहा था कि जर्मनी पूर्वी सीमा को भंग न करने का आश्वासन दे; परन्तु इस सम्बन्ध में इंगलैंड ने जर्मनी का साथ दिया। उसने भी पश्चिमी सीमा की सुरक्षा का आश्वासन दिया। पूर्वी सीमा के सम्बन्ध में झगड़ा होने पर इंगलैंड ने केवल मध्यस्थता का आश्वासन दिया।

३. जर्मनी ने यह मांग की कि राइन प्रदेश खाली कर दिया जाय; परन्तु फ्राँस ने जर्मनी की इस मांग का विरोध किया। अतः जर्मनी ने अपनी इस माँग को छोड़ दिया।

४. जर्मनी रूस से रैपेलो की सन्धि कर चुका था। अतः राष्ट्र संघ का सदस्य होने पर भी वह रूस के विरोध में कोई कार्यवाही नहीं करना चाहता था।

अतः मित्रराष्ट्रों ने उसको यह आश्वासन दिया कि निःशस्त्र जर्मनी से यह आशा नहीं की जाती कि वह रूस के विरुद्ध किसी कार्यवाही में भाग ले।

लोकार्नो पैक्ट वास्तव में अलग-अलग सात सन्धियों का समूह था। प्रथम दिसम्बर १९२५ को सम्बन्धित देशों ने इसको स्वीकार कर इस पर हस्ताक्षर कर दिये। इस पैक्ट के अनुसार निम्नलिखित महत्वपूर्ण निर्णय किये गए—

१. इंगलैंड, फ्राँस, बेल्जियम, जर्मनी तथा इटली ने परस्पर यह वादा किया कि वे वार्साय सन्धि द्वारा निर्धारित जर्मनी तथा बेल्जियम की सीमा और जर्मनी तथा फ्राँस के मध्य की सीमा की रक्षा करेंगे। राइन के प्रदेश में किलेबन्दी नहीं की जायगी।

२. सीमा भंग करने पर आक्रमणकारी के विरुद्ध सामूहिक रूप से कार्यवाही की जायगी।

३. झगड़ों का निर्णय वार्ता तथा समझौते द्वारा किया जायगा। किसी भी विषय पर विवाद होने पर राष्ट्र-संघ का निर्णय सर्वमान्य होगा।

४. युद्ध का परित्याग कर दिया जायगा। समस्त विवाद शान्तिमय उपायों से हल किये जायेंगे। केवल तीन अवस्थाओं में ही युद्ध किया जा सकेगा—(१) आत्म-रक्षा, (२) सीमा भंग तथा (३) राष्ट्र-संघ की आज्ञा।

५. फ्रांस ने पोलैण्ड तथा जेकोस्लोवाकिया को यह वचन दिया कि यदि उन पर कोई देश आक्रमण करता है तो वह उनकी सहायता करेगा।

लोकार्नो की सन्धि का यूरोप के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इससे पराजित तथा विजेता राष्ट्रों के मध्य समन्वय की भावना का प्रादुर्भाव हुआ। यह यूरोप में शान्ति-स्थापना का सूचक था। इसके गुण-दोषों का इस प्रकार विवेचन किया जा सकता है—

गुण—लोकार्नो पैक्ट में निम्नलिखित महत्वपूर्ण गुण थे—

१. यह वार्साय सन्धि की भाँति जर्मनी के लिये आरोपित शान्ति (Dictated Peace) नहीं थी। इसको जर्मनी ने स्वेच्छा से स्वीकार किया था।

२. इसके अनुसार जर्मनी को राष्ट्र संघ में स्थान तथा कौंसिल की स्थायी सदस्यता मिल गई। इससे जर्मनी की प्रतिष्ठा में वृद्धि हो गई। राष्ट्र संघ में जर्मनी का प्रवेश होने से वार्साय सन्धि की कठोर धाराओं में परिवर्तन होने लगा।

३. इससे फ्रांस तथा जर्मनी के मध्य की दीर्घकालीन शत्रुता का अन्त हो गया। फ्राँस को जर्मन आक्रमण से मुक्ति मिल गई। फ्राँस के विदेश मन्त्री ब्रिआँ ने कहा था—'यह जर्मनी तथा फ्राँस दोनों के लिए ही शान्ति है।'[1] इंगलैंड के विदेश मन्त्री चेम्बरलेन ने कहा था—'यह समझौता युद्ध तथा शान्ति के वर्षों की वास्तविक भेदक रेखा है।'[2]

---

1. '...Peace for Germany and for France.'
2. '...The real dividing line betwaen the years of war and years of peace.'

(४) इस समझौते में फ्रांस की सुरक्षा की मांग तथा जर्मनी की वार्साय सन्धि की धाराओं के संशोधन की मांग में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया गया था। यह फ्रांस तथा जर्मनी दोनों के मध्य एक न्यायपूर्ण समझौता था। इंगलैंड ने उक्त दोनों देशों को ही एक दूसरे के विरुद्ध सुरक्षा का आश्वासन दिया था।[1]

दोष—इस समझौते में कई दोष थे। कार महोदय ने उनका इस प्रकार वर्णन किया है—

(१) इंगलैंड के द्वारा जर्मनी की पश्चिमी सीमा को अधिक महत्ता प्रदान की गई तथा पूर्वी सीमा की उपेक्षा की गई। उसने पश्चिमी सीमा की रक्षा का आश्वासन दिया; परन्तु पूर्व की सीमा के सम्बन्ध में उसने इस प्रकार का आश्वासन नहीं दिया।

(२) इस समझौते में पूर्वी सीमाओं की उपेक्षा की गई थी। इससे पौलैंड तथा रूस असन्तुष्ट हो गये।

(३) इंगलैंड ने अपने हित को दृष्टि में रखते हुए जर्मनी की पश्चिमी सीमा को सुरक्षा का आश्वासन दिया; परन्तु पूर्वी सीमा के सम्बन्ध में उसने इस प्रकार का कोई आश्वासन नहीं दिया। इससे यह सिद्ध हो गया कि इंगलैंड की दृष्टि में राष्ट्र-संघ के सिद्धान्तों की अपेक्षा अपने हितों की सुरक्षा का अधिक महत्व है। इससे अन्य देशों को भी राष्ट्र-संघ की उपेक्षा कर अपने हितों की पूर्ति के लिए प्रोत्साहन मिला।

(४) यह समझौता वार्साय सन्धि तथा राष्ट्र-संघ दोनों के लिये ही विनाश-कारी सिद्ध हुआ।[2]

केलाग-ब्रिआं पैक्ट

ब्रिआँ फ्रांस का विदेश मन्त्री था। उसने अमेरिका के पास यह सन्देश भेजा कि हम युद्ध का हमेशा के लिए बहिष्कार करना चाहते हैं। अमेरिका ने भी इसे स्वीकार कर लिया। उसने अपने पेरिस स्थित दूत को इस सम्बन्ध में एक ड्राफ्ट तैयार करने का आदेश दिया। उसने इस ड्राफ्ट में दो बातें रक्खीं—

(१) राष्ट्र-नीति में युद्ध के लिए कोई स्थान नहीं है।

(२) झगड़े शान्तिपूर्ण उपायों से तय करेंगे।

---

1. 'The immediate effect on international relations in Europe was undoubtedly most favourable. The sence of improved security which the British guarantee implanted in the minds of the French man and the Germans had an importance... .' —Gathorne Hardy.

2. 'In the long run, the Locarno Treaty was destructive both of the Versailles Treaey and of the Covenant. It increased both the views that Versailles Treaty, unless confirmed by other engagements of a voluntry character, had no binding force, and the view that Governments could not be expected to take military action in defence of frontiers in which they themselves were not directly interested. 10 years later nearly all Governments appear to be acting on these assumptions.'

यह ड्राफ्ट अमेरिका के विदेश मन्त्री केलाग के पास भेजा गया। केलाग ने इस ड्राफ्ट को स्वीकार कर लिया। केलाग ने कहा इसे पैक्ट के रूप में स्वीकार किया जाय न कि सन्धि के रूप में तथा योरप के अन्य राष्ट्र भी इसे स्वीकार कर लें। इससे फ्राँस घबराया, क्योंकि इससे उसकी अन्य सन्धियां बेकार हो जातीं। ब्रिआँ ने कहा कि फ्रांस आक्रमरण तो नहीं करेगा, परन्तु सुरक्षा के लिए उसे हथियार उठाने का अधिकार होगा।

यह पैक्ट सबके लिए तब खोला जायगा जबकि योरप के बड़े राज्य भी इसमें सम्मिलित हो जायें।

केलाग ने उपर्युक्त शर्तों को मान लिया।

ब्रिटेन ने मोटे रूप में युद्ध का परित्याग कर दिया; अफ्रीका आदि के कुछ प्रदेश को छोड़कर उसने अन्यत्र युद्ध न करने का वचन दिया। अमेरिका ने कहा कि यदि मुनरो सिद्धान्त पर आघात नहीं होगा तो हम भी युद्ध नहीं करेंगे। अमेरिकन सीनेट के एक सदस्य ने निम्न घोषणा की थी—"We would have a perfect right to send an expedition everywhere into Mexico or China, if it were necessary in order to protect the lives and property of our citizens against actual threatend attack."

२६ अगस्त १६२८ को पेरिस में एक सम्मेलन हुआ जिसमें १५ देशों के प्रतिनिधियों ने इस पैक्ट पर हस्ताक्षर कर दिये। इसमें प्रायः सब बड़े राष्ट्र थे। १६३० तक प्राय: सब देशों ने इसे स्वीकार कर लिया।

आलोचना

आक्रान्ता के रोकने के लिए इसमें कोई बात नहीं थी। Pegg ने कहा है—It was an aspiration rather than a realization; its force was purely moral and ethical and no stronger than the good faith of the signatory nations.

युद्ध सुरक्षात्मक होगा, लेकिन सुरक्षात्मक युद्ध की कोई परिभाषा नहीं बताई गई। वे सुरक्षात्मक युद्ध के बहाने आक्रमरणकारी युद्ध कर सकते थे—

Ball and Killiough—'But since virtually all wars are alleged to be defensive by their instigaters, this loophole was tremendous. War was not defined and no mention was made of forcible measures short of war.'

इसके विषय में लैंगसम ने कहा है—

"In effect, war was outlawed except when resorted to in self-defence—in the execution of obligations assumed under previous treaties or in fulfilment of responsibility incurred through the signing of the League Covenant or the Locarno Agreements."

Zimmern महोदय कहते हैं—

'The Kellogg Pact undermines the traditional doctrine of sovereignty by taking it's stand at the social principle."

Carr महोदय कहते हैं—

'It was regarded by many as a declaration of principle rather a contractual obligation; each state remained the sole judge of its own actions. No machinery for the interpretation of inforcement of the pact was set up or contemplated.

इसके पक्ष में Zimmern कहते हैं—

'It is practically speaking irrevocable......They have renounced war : they are not free to unrenounce it.'

इस पैक्ट का उल्लंघन—

(१) १९२९ में चीन और रूस में मंचूरिया के ऊपर झगड़ा हुआ। रूस ने मंचूरिया में सेनायें भेज दीं। अमेरिका ने केलाग पैक्ट की दुहाई दी; परन्तु रूस नहीं माना। अतः अमेरिका को विवश होकर खामोश हो जाना पड़ा।

(२) १९३१ में जापान ने मंचूरिया पर आक्रमण किया। केलाग पैक्ट की दुहाई दी गई; परन्तु जापान ने कार्यवाही को पुलिस कार्यवाही बतलाया। अतः मित्र-राष्ट्रों को विवश होकर खामोश हो जाना पड़ा।

(३) १९३५–३६ में इटली ने एबीसीनिया पर आक्रमण किया। मित्र-राष्ट्रों के विरोध में इटली ने भी यही कहा कि हम तो Police Action ले रहे हैं। अतः इस बार भी मित्र-राष्ट्रों को खामोश हो जाना पड़ा।

वाशिंगटन सम्मेलन

लीग के बाहर रहते हुए भी अमेरिका ने दो विषयों में विशेष रुचि दिखलाई।

(१) नौ-सेना संगठन।

(२) प्रशान्त महासागर और धुर पूर्वी समस्याओं में रूचि।

(१) **नौ-सेना संगठन**—इस समय इंगलैंड और अमेरिका में जहाजी बेड़े की प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी। अमेरिका ने १९१६ में ही अपने जहाजी बेड़े को संगठित करने के लिये एक National Defence Act पास किया था। इसी समय से इंगलैंड अमेरिका के प्रति सशंकित हो गया था। जनवरी १९०२ में इंगलैंड ने जापान के साथ एक सन्धि कर ली तो इससे प्रशान्त महासागर में अमेरिका की जहाजी शक्ति एवं अमरीकी प्रदेशों के लिए और अधिक खतरा उत्पन्न हो गया। १९२१ में यह अंग्रेजी जापानी सन्धि पुनरावृत्त होने वाली थी। इसलिये इस समय अमेरिका अपनी रक्षा के लिये फौरन ही कोई कदम उठाना चाहता था। चीन और प्रशान्त महासागर में इंगलैंड पूरी तरह से अमेरिका की Open door Policy का पूर्णतया समर्थन नहीं कर रहा था। इसलिए १९२१ में राष्ट्रपति हार्डिंग ने इन समस्त झगड़ों को

तय करने के लिए वाशिंगटन कान्फ्रेंस बुलाई। इसमें प्रशान्त महासागर में हित रखने वाले समस्त देश बुलाये गये। एकमात्र रूस छोड़ दिया गया। इस सम्मेलन में जापान ने दो शर्तों पर भाग लिया।

(१) किसी भी राज्य के विशेष हितों की उपेक्षा नहीं की जायगी।

(२) जो हल पहले से ही चले आ रहे हैं, उनके ऊपर पुनर्विचार नहीं होगा।

वाशिंगटन कान्फ्रेंस १९२१–२२ तक चली। इस कान्फ्रेंस में निम्नलिखित देशों ने भाग लिया—

इंगलैंड, फ्राँस, अमेरिका, जापान, चीन, इटली, बेलजियम, नीदरलैंड और पुर्तगाल।

इस कान्फ्रेंस ने कुल सात सन्धियाँ कीं। इनमें दो सन्धियां Naval Disarmament के सम्बन्ध में थी और ५ सन्धियाँ प्रशान्त महासागर तथा धुर पूर्वी समस्याओं के सम्बन्ध में थीं।

कान्फ्रेंस के बाहर दो सन्धियाँ और की गईं। एक सन्धि चीन और जापान के बीच हुई जिसमें शान्तुंग समस्या को हल किया गया।

दूसरी सन्धि अमेरिका और जापान के बीच में हुई। यह याप द्वीप के सम्बन्ध में हुई थी।

नौ-सैनिक शस्त्रों पर नियन्त्रण की दो सन्धियां—वाशिंगटन सम्मेलन में जो दो सन्धियां नौ-सेना-नियन्त्रण के सम्बन्ध में हुईं वे निश्शस्त्रीकरण के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं। इसकी प्रमुख धारायें इस प्रकार थीं—

(१) अमेरिका, इंगलैंड, जापान, फ्रांस और इटली की नौ-शक्ति ५ : ५ : ३ : १·६७ : १·६७ के अनुपात में निश्चित की गई।

(२) अमेरिका और इंगलैंड १३५००० टन के, जापान ८१००० टन के तथा फ्रांस और इटली ६०००० टन के वायुयान-ग्राहक जहाज रख सकते थे।

(३) १० हजार टन से बड़ा युद्ध-पोत न बनाया जायेगा।

(४) २७ हजार टन से बड़ा तथा ८ इंच से बड़ी तोपों वाला जहाज न बनाया जायगा।

(५) अमेरिका, इंगलैंड तथा जापान ने आश्वासन दिया कि वे प्रशान्त महासागर में नौ-सेना के नये अड्डे न बनायेंगे।

(६) इन धाराओं के परिणामस्वरूप इस सम्मेलन में भाग लेने वाले देशों ने १० वर्ष तक नौ-सेना निर्माण का कार्य बन्द रखने का आश्वासन दिया।

(७) सभी देशों ने विषैली गैसों का प्रयोग न करने का वचन दिया। उन्होंने यह भी तय किया कि पनडुब्बियों का प्रयोग कम करेंगे।

परन्तु इस सम्मेलन में क्रूजर, डेस्ट्रायर तथा वायुसेना एवं नौ-सेना को घटाने के विषय में कोई समझौता न हो सका। सारांश में समझौता केवल बड़े युद्ध-पोतों और वायुयानवाहक जहाजों की संख्या घटाने के विषय में ही हुआ।

प्रशान्त महासागर सम्बन्धी पांच सन्धियां

(१) Four Power Treaty—यह सन्धि इंगलैंड, फ्रांस, अमेरिका और जापान के बीच हुई। इस सन्धि में इन चारों देशों ने प्रशान्त महासागर में प्रत्येक राज्य के अधिकारों को मान्यता प्रदान की। यह भी स्वीकार किया कि यदि बाहर का कोई देश उनमें से किसी के ऊपर आक्रमण करे तो ये चारों देश मिलकर उस समस्या के हल करने पर विचार करेंगे। यह सन्धि १० वर्ष तक रहेगी परन्तु १ वर्ष की पूर्व सूचना देकर कोई भी राज्य इस सन्धि से निकल सकता है। इस सन्धि ने किसी भी देश के प्रदेशों की रक्षा का वचन नहीं दिया, परन्तु इसका इतना परिणाम अवश्य हुआ कि Anglo-Japanese Treaty बेकार हो गई।

(२) Four Power Treaty—इस सन्धि में पूर्व सन्धि की व्याख्या एवं विस्तार किया गया है।

(३) Nine Power Treaty—इसमें प्रमुख धारायें निम्न थीं—

(i) प्रत्येक हस्ताक्षर-कर्त्ता राज्य चीन की स्वतन्त्रता एवं अखण्डता को मानेगा।

(ii) प्रत्येक राज्य Open door Policy को स्वीकार करेगा।

(iii) चीनी सरकार अपनी Railway lines का प्रयोग सब देशों (९ देशों) को समान रूप से करने देगी।

(iv) आगामी युद्धों में यदि चीन तटस्थ रहा तो सब देश चीन की तटस्थता को स्वीकार कर लेंगे।

इस सन्धि से अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में चीन की प्रतिष्ठा बढ़ गई। परन्तु इस सन्धि का सबसे बड़ा दोष यह था कि यह भविष्य के लिये बनाई गई थी। भूतकाल में चीनी साम्राज्य में विदेशियों ने जो विशेषाधिकार प्राप्त कर लिये थे उन्हें दूर करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया।

(४) Nine Power Treaty—इस सन्धि के अनुसार अपनी चुंगी व्यवस्था के ऊपर चीन का और अधिक अधिकार एवं नियन्त्रण मान लिया गया।

(५) Six Power Treaty—यह इंगलैंड, अमेरिका, फ्रांस, जापान, इटली और चीन के बीच हुई थी। प्रशान्त महासागर में अभी तक जो Cable lines थीं उन्हें इन छः राज्यों ने आपस में बाँट लिया।

वाशिंगटन कान्फ्रेंस के बाहर दो सन्धियां

(१) उनमें एक चीन और जापान के बीच हुई। इस सन्धि के अनुसार यह तय हुआ कि शान्टुंग का प्रदेश चीन को दे दिया जाय और वहां पर की गई विकास-योजनाओं के बदले में चीन जापान को कुछ धन-राशियां देगा।

(२) दूसरी सन्धि अमेरिका और जापान के बीच हुई। पेरिस के समझौते के अनुसार याप द्वीप को जापान की Mandate में रख दिया गया था। परन्तु सैनिक दृष्टिकोण से यह द्वीप अमेरिका के लिए भी बड़ा महत्वपूर्ण था। अतः इस सन्धि के

अनुसार अमेरिका को इस द्वीप की Cable lines का प्रयोग करने का अधिकार दे दिया गया।

वाशिंगटन कान्फ्रेंस का मूल्यांकन—(१) इस कान्फ्रेंस ने अनेक वर्षों से चले आने वाले इंगलैंड और अमेरिका के नौ-सेना-सम्बन्धी झगड़े को समाप्त कर दिया।

(२) इसने १९०२ की Anglo-Japanese Treaty को समाप्त कर दिया। अब प्रशान्त महासागर एवं धुर पूर्व की समस्याओं में एकमात्र इंगलैंड और जापान का ही हित न रहा वरन् योरप के नौ प्रमुख राज्यों का हित स्वीकार कर लिया गया।

(३) इस कान्फ्रेंस ने जापान की नौ-सेना को सीमित कर दिया और इंगलैंड तथा अमेरिका की नौ-सेना की शक्ति जापानी नौ-सेना से कहीं अधिक हो गई।

(४) इस कान्फ्रेंस ने चीन में Open door Policy का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया। यह अमेरिका की विजय थी।

(५) चीन को शान्टुंग प्रदेश प्राप्त हो गया। उसे अपने साम्राज्य की चुंगी व्यवस्था पर अधिकार प्राप्त हो गया। मित्र राष्ट्रों ने उसकी स्वतन्त्रता एवं अखण्डता की रक्षा करने का वायदा किया। इस प्रकार कुछ समय के लिये चीन की स्थिति सुरक्षित हो गई।

परन्तु अमेरिका और इंगलैंड के बीच हुए नौ-सेना सम्बन्धी समझौते के अतिरिक्त वाशिंगटन कान्फ्रेंस की अधिकाँश धारायें अधिक समय तक न चल सकीं। १९२७ तक जापान अनेक कारणों से चीन के प्रति मित्र रहा, परन्तु इस तिथि के पश्चात् उसने फिर चीन के प्रति आक्रमणकारी नीति अपनाई जिससे प्रशान्त महासागर एवं धुर पूर्व में फिर से समस्यायें उत्पन्न हो गईं। इसलिये वाशिंगटन कान्फ्रेंस इन समस्याओं का स्थायी रूप से निर्णय न कर सकी और वह असफल रही।

निःशस्त्रीकरण—प्रथम महायुद्ध बहुत भयंकर तथा विनाशकारी सिद्ध हुआ। इसमें विजेता तथा पराजित दोनों ही पक्षों को भारी हानि उठानी पड़ी थी। इस युद्ध में ८० लाख व्यक्ति रण-चण्डी की भेंट चढ़ गए थे तथा दो लाख मनुष्य घायल हुये थे। युद्ध के संचालन में अपार धन-राशि व्यय की गई थी। इससे प्रत्येक देश पर भारी मात्रा में राष्ट्रीय ऋण बढ़ गया था। विजेताओं ने जिन प्रदेशों पर अधिकार कर लिया था, उनका भयंकर विनाश कर दिया था। इस भारी विनाश से मानव का हृदय सहम गया था और वह युद्ध रोकने के लिये सोचने लगता था। युद्धों का बन्द होना निःशस्त्रीकरण पर सम्भव था। इसी से जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी तथा बलगेरिया आदि पराजित राष्ट्रों की सैनिक शक्ति मर्यादित कर दी गई थी। विजेता राष्ट्रों से भी यह आशा की गई थी कि वे भी अपनी सैनिक शक्ति को सीमित कर देंगे। शान्ति बनाये रखने के लिये राष्ट्र-संघ की स्थापना की गई थी। राष्ट्र-संघ के संविधान की आठवीं धारा में यह कहा गया था कि अस्त्र-शस्त्र उस अवस्था तक सीमित कर दिये जायें, जितने कि राष्ट्र की सुरक्षा के लिये आवश्यक हों। इस सम्बन्ध में

योजना बनाने का कार्य राष्ट्र-संघ की कौंसिल को सौंपा गया। इङ्गलैंड के प्रधान-मंत्री ने कहा था—'यदि हम अस्त्र-शस्त्रों को सीमित नहीं करेंगे तो हम को स्थायी शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती और न हम जर्मनी के अस्त्र-शस्त्रों को ही सदैव के लिये सीमित कराने में समर्थ हो सकेंगे।' निःशस्त्री-करण के प्रश्न पर विचार करने के लिये एक आयोग (Permanent Advisory Commission) की स्थापना भी की गई; परन्तु उसको कोई सफलता नहीं मिली। राष्ट्र एक दूसरे को शंका की दृष्टि से देखते थे। प्रत्येक राष्ट्र अपने अस्त्र-शस्त्र अपनी सुरक्षा के लिए आवश्यक समझता था और दूसरे से निःशस्त्रीकरण की आशा करता था। इस पारस्परिक शंका के कारण सुरक्षा के लिये कोई कदम नहीं उठ सका। फ्रांस अपनी सुरक्षा को विशेष महत्व दे रहा था। वह अपनी सेना की शक्ति में कमी करने तथा अपने अस्त्र-शस्त्रों को घटाने के लिए तैयार न था। फ्रांस की इस धारणा का कारण यह बतलाया जा सकता है कि १६१६ में अमेरिका तथा इङ्गलैंड ने मिलकर फ्रांस को यह आश्वासन दिया था कि यदि जर्मनी ने उस पर अकारण आक्रमण किया हो वे दोनों उसकी सहायता करेंगे। परन्तु कालान्तर में अमेरिकन सीनेट ने वार्साय की संधि को अस्वीकार कर दिया और अमेरिका यूरोप की राजनीति से अलग हो गया। अमेरिका के अलग होने पर इङ्गलैंड का सुरक्षा का आश्वासन समाप्त हो गया। इससे फ्रांस को अपनी सुरक्षा की चिन्ता बहुत अधिक हो गई। अतः वह बराबर निःशस्त्रीकरण का विरोध करता रहा।

जेनेवा सम्मेलन—पूर्वोल्लिखित वाशिंगटन सम्मेलन ने बड़े लड़ाकू जहाजों और वायुयानवाहक जहाजों की संख्या को घटाने का निर्णय किया था, परन्तु वह छोटे जहाजों की संख्या को कम करने में सफल न हुआ था। अमेरिका के राष्ट्रपति कूलिज ने निःशस्त्रीकरण की समस्या पर विचार करने के लिए १० फरवरी, १६२७ को इङ्गलैंड, फ्रांस, इटली और जापान के सम्मुख एक सम्मेलन करने का प्रस्ताव रक्खा। इङ्गलैंड और जापान ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। परन्तु फ्रांस और इटली ने उसे अस्वीकार कर दिया। फ्रांस का मत था कि निःशस्त्रीकरण का कार्य राष्ट्र-संघ का है। उसके बाहर इस पर विचार नहीं होना चाहिये। इटली तो अपनी नौ-सेना घटाने के लिये तैयार ही न था।

अस्तु, २० जून, १६२७ को जेनेवा में अमेरिका, इङ्गलैंड तथा जापान के प्रतिनिधियों का सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। अमेरिका ने यह प्रस्ताव रक्खा कि उसके तथा इंगलैंड के क्रूजरों के टनों में समानता स्थापित होनी चाहिये। इंगलैंड ने यह कह कर इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया कि उसका साम्राज्य विशाल है। अतः उसे अमेरिका से अधिक क्रूजरों की आवश्यकता है। फलतः ४ अगस्त, १६२७ को जेनेवा सम्मेलन भंग हो गया।

लन्दन सम्मेलन—परन्तु अमेरिका और इंगलैंड में वार्ता निरन्तर चलती रही और ८ अक्टूबर १६२६ को इंगलैंड के प्रधान-मंत्री मैग्डानल्ड ने अमेरिका, फ्रांस,

इटली और जापान को एक नवीन सम्मेलन के लिए आमन्त्रित किया। यह सम्मेलन लन्दन सम्मेलन के नाम से प्रख्यात है। फ्रांस और इटली अपनी नौ-सेना सीमित करने के लिए तैयार न हुये। परन्तु दीर्घकाल की वार्ता के पश्चात् अमेरिका, इंग्लैंड तथा जापान ने २२ अप्रैल, १९६० को आपस में एक समझौता कर लिया। इसके अनुसार—

(१) अमेरिका ने अपने ३, इंग्लैंड ने ५ तथा जापान ने १ जंगी जहाज नष्ट करने का निर्णय किया।

(२) सभी ने १९३६ तक बड़े जंगी जहाज न बनाने का वचन दिया।

(३) तीनों देशों के वायुयानवाहक जहाजों, पनडुब्बियों, क्रूजरों और डेस्ट्रायरों के आकार, वजन, तोपों अथवा संख्या को मर्यादित कर दिया गया।

निःशस्त्रीकरण

राष्ट्र-संघ की असेम्बली में निःशस्त्रीकरण के ऊपर बराबर विचार होता रहा। अन्त में असेम्बली इस निष्कर्ष पर पहुंची कि जब तक प्रत्येक देश अपनी सुरक्षा के सम्बन्ध में निश्चिन्त न होगा तब तक वह अपना निःशस्त्रीकरण न करेगा।

अतः १९२३ में असेम्बली ने पारस्परिक सहायता सम्बन्धी संधि का एक मसविदा (Draft Treaty of Mutual Assistance) तैयार किया। इसकी धारायें इस प्रकार थीं—

(१) आक्रमण अन्तर्राष्ट्रीय अपराध है।

(२) आक्रमण होने के ४ दिन के भीतर काउंसिल यह निर्णय कर देगी कि आक्रमणकारी कौन है।

(३) वह आक्रान्त देश को दी जाने वाली सैनिक और आर्थिक सहायता का रूप भी निश्चत कर देगी।

(४) यह सहायता युद्ध-क्षेत्र के निकटवर्ती राज्यों को ही देनी होगी।

परन्तु केवल १८ देशों ने ही इस मसविदे को स्वीकार किया। विरोध करने वालों में सबसे महत्वपूर्ण इंग्लैंड था। उसका विश्वव्यापी साम्राज्य था। अतः इस मसविदे के अनुसार उसे प्रत्येक क्षेत्र में आक्रान्त देश को सैनिक तथा आर्थिक सहायता देनी पड़ती, जब कि दूसरे देश बहुधा तटस्थ रहते। अतः उसने इस मसविदे को अस्वीकार कर दिया।

अब असेम्बली ने सभी अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को मध्यस्थता (Arbitration) के द्वारा हल करके प्रश्न पर विचार किया और २ अक्टूबर, १९२४ को एक प्रोटोकल स्वीकार किया। इसे जेनेवा प्रोटोकल कहते हैं। इसके अनुसार—

(१) सभी देश एकमात्र अपनी रक्षा के लिये अथवा राष्ट्र-संघ के आदेश पर युद्ध करेंगे, अन्यथा नहीं।

(२) सभी कानूनी झगड़ों का निर्णय अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा होगा।

(३) राजनीतिक झगड़ों का निर्णय राष्ट्र-संघ की मध्यस्थता-समितियाँ (Arbitration Committees) करेंगी।

(४) कौंसिल किसी भी आक्राँन्ता देश के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध लगा सकती है।

इस प्रोटोकल को भी केवल १७ राज्यों ने स्वीकार किया। इंग्लैंड ने इसे भी अस्वीकार कर दिया। अतः समस्त देशों को सुरक्षा देने का मध्यस्थता का उपाय भी असफल रहा।

निःशस्त्रीकरण के सम्पूर्ण प्रश्न पर विचार करने के लिये राष्ट्र-संघ ने पूर्व-नियोजित अस्थायी मिश्रित आयोग (Temporary Mixed Commission) को भंग करके उसके स्थान पर 'निःशस्त्रीकरण सम्मेलन के लिये सज्जीकरण आयोग' (Preparatory Commission for the Disarmament Conference) की स्थापना की। परन्तु पारस्परिक मतभेदों के कारण यह आयोग भी सफलता न प्राप्त कर सका—

३० नवम्बर १९२७ को जब रूस ने आयोग में यह प्रस्ताव रक्खा कि समस्त सेनाओं की सम्पूर्ण समाप्ति कर दी जाय तो आयोग के अन्य सभी सदस्यों ने इस प्रस्ताव का विरोध किया।

९ दिसम्बर १९३० को आयोग ने निःशस्त्रीकरण के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव (Draft Convention) अवश्य पास किया। इस प्रस्ताव की प्रमुख धारायें निम्न-प्रकार से थी—

(१) स्थानीय युद्ध-सामग्री का बजट कम किया जाय।

(२) अनिवार्य सैनिक सेवा कम वर्षों के लिये ली जाय।

(३) पहले हुये वाशिंगटन और लन्दन सम्मेलनों की सिफारिशों को व्यवहार-रूप दिया जाय।

(४) रासायनिक एवं कीटाणु प्रचारक युद्ध का सर्वथा बहिष्कार किया जाय।

(५) एक स्थायी निःशस्त्रीकरण आयोग की स्थापना की जाय।

इन सिफारिशों के पश्चात् 'निःशस्त्रीकरण सम्मेलन के लिये सज्जीकरण आयोग' समाप्त हो गया।

जेनेवा निःशस्त्रीकरण सम्मेलन
(Geneva Disarmament Conference)

इस पृष्ठ-भूमि पर संसार का निःशस्त्रीकरण करने के हेतु ३ फरवरी, १९३२ को जेनेवा में एक निःशस्त्रीकरण सम्मेलन किया गया। इस सम्मेलन में भाग लेने के लिये ५७ देशों के प्रतिनिधि आये। सम्मेलन के सभापति आर्थर हैण्डर्सन थे।

इस सम्मेलन में फ्रांस ने यह प्रस्ताव रक्खा कि राष्ट्र-संघ के तत्वाधान में—(१) एक अन्तर्राष्ट्रीय सेना का संगठन किया जाय। (२) सभी महत्वपूर्ण युद्ध-सामग्री

राष्ट्र-संघ के सुपुर्द कर दी जाय तथा (३) सभी झगड़ों का निबटारा मध्यस्थता द्वारा हुआ करे।

इस पर जर्मनी ने यह माँग की कि या तो सभी देश अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र कम करें या जर्मनी को भी उनके बराबर अस्त्र-शस्त्र रखने की अनुमति दी जाय।

फ्रांस जर्मनी को समान शस्त्रीकरण का अधिकार न देना चाहता था। दोनों देशों के विरोध के कारण जेनेवा सम्मेलन में गत्यवरोध (Deadlock) उत्पन्न हो गया।

२२ जून, १९३२ को अमेरिका ने एक नया प्रस्ताव रक्खा कि प्रत्येक देश अपने अस्त्र-शस्त्रों का तिहाई भाग घटा दे। परन्तु दूसरे देशों ने इस प्रस्ताव को भी अस्वीकार कर दिया।

२३ जुलाई, १९३२ में सम्मेलन ने रासायनिक युद्ध का बहिष्कार करने और अस्त्र-शस्त्र घटाने के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

परन्तु अपनी मूल माँग को स्वीकार न होते देखकर जर्मनी ने १६ सितम्बर, १९३२ को सम्मेलन छोड़ देने का निर्णय घोषित किया।

इस पर अमेरिका, इङ्गलैंड, फ्रांस, जर्मनी और इटली का एक पृथक् सम्मेलन किया गया। इसने फ्रांस और जर्मनी के झगड़े को सुलझाते हुये एक अस्पष्ट प्रस्ताव पास किया। इसमें कहा गया था कि जर्मनी के शस्त्रीकरण में समानता की माँग को इस प्रकार स्वीकार किया जाय जिससे अन्य देशों की भी सुरक्षा हो। परन्तु यह प्रस्ताव असम्भव था।

इस प्रस्ताव को जर्मनी ने स्वीकार कर लिया और उसने सम्मेलन-बहिष्कार का अपना निर्णय स्थगित कर दिया।

३० जनवरी, १९३३ को हिटलर जर्मनी का चांसलर निर्वाचित हुआ। इस घटना के बाद जर्मनी के रुख में और अधिक दृढ़ता आ गई।

फ्रांस को अपनी सुरक्षा की और भी अधिक चिन्ता हो गई। अतः उसने यह माँग की कि पहले उसकी सुरक्षा की व्यवस्था की जाय और उसके पश्चात् निःशस्त्रीकरण की योजना बनाई जाय।

इसके विरुद्ध जर्मनी ने यह माँग फिर की कि पहले निःशस्त्रीकरण किया जाय, फ्रांसीसी सुरक्षा की बात बाद को आती है। इटली ने भी जर्मनी की माँग का समर्थन किया।

जर्मनी ने अपनी मूल माँग दुहराई कि यदि सभी देश अपना निःशस्त्रीकरण न करें तो उसे भी समान रूप से अपना शस्त्रीकरण करने दिया जाय।

पुनः गत्यवरोध हो गया। इसे हल करने के लिये १४ अक्टूबर, १९३३ को इंगलैंड ने एक प्रस्ताव रक्खा कि ४ वर्ष तक जर्मनी अपनी यथास्थिति को कायम रक्खे और इस बीच अन्य राज्य अपने अस्त्र-शस्त्रों को घटाते रहें। परन्तु हिटलर ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।

१९ अक्टूबर, १९३३ को हिटलर ने सम्मेलन से जर्मनी के अलग होने की घोषणा कर दी। जर्मनी के अलग होते ही सम्मेलन प्रायः समाप्त हो गया।

जर्मनी को सम्मेलन में वापस बुलाने के लिये कई योजनायें बनाई गईं। परन्तु फ्रांस के विरोध के कारण वे कार्यान्वित न हो सकीं।

उधर हिटलर के नेतृत्व में जर्मनी का रुख उत्तरोत्तर कठोर होता गया। १६ मार्च, १९३५ को जर्मनी ने वार्साई सन्धि की धारा का उल्लंघन करते हुये अनिवार्य सैनिक सेवा का कानून लगा दिया।

७ मार्च, १९३६ को जर्मनी ने वार्साई सन्धि और लोकार्नो सन्धि का उल्लंघन करते हुये राइन प्रदेश का सैनिकीकरण कर दिया। शूमाँ महोदय ने ठीक ही कहा है कि 'राष्ट्र-संघ द्वारा निःशस्त्रीकरण के प्रयत्न जर्मनी के एक-पक्षीय निःशस्त्रीकरण से प्रारम्भ हुये थे, जर्मनी के एकपक्षीय पुनः शस्त्रीकरण से उनका अन्त हुआ। योरप की साम्हिक बुद्धि सुरक्षा प्राप्त करने में असफल होकर आत्म-हत्या की तैयारी करने लगी।'

सम्मेलन की असफलता के कारण

जेनेवा सम्मेलन अथवा निःशस्त्रीकरण की योजनाओं की असफलता के निम्न-लिखित कारण बताये जा सकते हैं —

(१) प्रायः कोई भी देश हृदय से अपना निःशस्त्रीकरण नहीं करना चाहता था। प्रत्येक देश अपनी युद्ध-सामग्री को कायम रखते हुये दूसरे देशों का निःशस्त्रीकरण करने की माँग कर रहा था। अपनी युद्ध-सामग्री को सुरक्षात्मक तथा दूसरों की युद्ध-सामग्री को आक्रमणात्मक बताना कोरा धोखा था।

(२) तत्कालीन विश्व का वातावरण नितान्त सन्देहपूर्ण और कटुतापूर्ण था। अतः एक देश दूसरे के सदाशयपूर्ण प्रस्तावों को भी स्वच्छ हृदय से स्वीकार करने के लिये सहसा तैयार न होता था।

(३) निःशस्त्रीकरण की योजनायें सबके लिये एक-सी न थीं। मित्र राष्ट्र अपने अस्त्र-शस्त्रों को न्यूनाधिक मात्रा में कायम रखते हुये एकमात्र जर्मनी आदि पराजित देशों को ही पूर्ण रूप से निःशस्त्रीकृत रखना चाहते थे। इस पक्षपातपूर्ण व्यवहार के कारण ही जर्मनी की समान शस्त्रीकरण अथवा समान निःशस्त्रीकरण की माँग को मित्र राष्ट्र बार-बार अस्वीकार करते रहे।

(३) फ्रांस को जर्मनी के प्रतिशोधात्मक युद्ध का सदैव खतरा रहता था। वह जर्मनी के विरुद्ध अपनी सुरक्षा की गारण्टी चाहता था। सुरक्षा की गारण्टी पाने के पश्चात् ही वह अपना निःशस्त्रीकरण करने के लिये तैयार था। मित्र राष्ट्रों अथवा राष्ट्र-संघ से वह अपनी सुरक्षा की सन्तोषजनक गारंटी न पा सका। अतः उसने अपना निःशस्त्रीकरण करने से भी इन्कार कर दिया।

(५) अमेरिका जापान को नौ-सेना की समानता (Parity) न देना चाहता था। उसका कहना था कि जापान के पास केवल प्रशान्त महासागर है, जबकि

अमेरिका को प्रशान्त महासागर तथा अटलांटिक महासागर दोनों में अपनी रक्षा करनी है। अतः दोनों की नौ-सेना में समानता कैसे हो सकती है ?

(६) इसी प्रकार इंगलैंड अपने विशाल साम्राज्य के कारण किसी भी अन्य देश के साथ नौ-सेना की समानता न रखना चाहता था।

(७) उधर फ्रांस का कथन था कि उसे दो सागरों—अटलांटिक और भूमध्य सागरों में अपनी रक्षा करना है, जबकि इटली को एकमात्र भूमध्य सागर में। अतः वह इटली के साथ नौ-सेना की समानता नहीं रखना चाहता था।

(८) कुछ देश केवल कुल जहाजों के टनों की संख्या को नियन्त्रित करना चाहते थे। परन्तु कुछ देश इसके साथ-साथ प्रत्येक प्रकार के जहाज—जंगी जहाज, क्रूजर, डेस्ट्रायर, पनडुब्बी, वायुयानवाहक आदि–के टनों की संख्या को भी नियन्त्रित करना चाहते थे। इस परस्पर-विरोधी दृष्टिकोण से भी निःशस्त्रीकरण की योजनाओं में भारी बाधा पड़ी थी।

(९) इस बात पर भी मतभेद था कि सैनिक किसे समझा जाय—सेना में क्रियाशील सैनिक को ही अथवा उसके साथ-साथ सेना से मुक्त सैनिक को भी। जब तक यह प्रश्न हल न होता तब तक प्रत्येक देश की सैनिक संख्या कैसे मर्यादित होती ?

(१०) कुछ देश सभी देशों से अस्त्र-शस्त्रों पर नियन्त्रण रखने का कार्य एक अन्तर्राष्ट्रीय समिति के हाथ में सौंपना चाहते थे। परन्तु अन्य कुछ देश, विशेषतया इंगलैंड, इस प्रकार के नियन्त्रण के लिये तैयार न थे।

(११) निःशस्त्रीकरण के पूर्व सुरक्षा की भावना लाना आवश्यक था। अतः यह योजना रक्खी गई कि आक्रान्ता के विरुद्ध समीपवर्ती देश आक्रान्त देश को सैनिक एवं आर्थिक सहायता देने का वचन दे दे। परन्तु इंगलैंड इस योजना के लिये भी तैयार न हुआ। उसका कथन था कि हमारा साम्राज्य विश्वव्यापी है। अतः हम प्रायः सभी आक्रान्त देशों के समीपवर्ती होंगे। इस परिस्थिति में प्रत्येक स्थान पर हमीं को सैनिक और आर्थिक सहायता देनी होगी, जबकि अधिकांश देश अधिकतर तटस्थ रहेंगे।

(१२) निःशस्त्रीकरण के पूर्व सुरक्षा की भावना स्वाभाविक थी। परन्तु तत्कालीन कूटनीतिज्ञों ने सुरक्षा के प्रश्न को एकमात्र राजनीनिक समझा। सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक एवं मनोवैज्ञानिक क्षेत्रों में सुरक्षा की भावना को दृढ़ न किया गया। इस प्रकार की भावना के अभाव में निःशस्त्रीकरण के लिए अधिकांश देश तैयार न थे।

(१३) जापान, इटली, जर्मनी और स्पेन में तानाशाही एवं युद्धवादी शासन-तन्त्रों के उदय के कारण निःशस्त्रीकरण की भावना को बड़ा धक्का लगा। मंचूरिया पर जापान के आक्रमण, इटली के अबीसीनिया के आक्रमण, जर्मनी के राइन प्रदेश के सैनिकीकरण एवं अनिवार्य सैनिक सेवा के कानून आदि तथा स्पेन के गृह-युद्ध ने निःशस्त्रीकरण के विचारों को निर्बल कर दिया।

(१४) मित्रराष्ट्रों ने रूस के साथ सहयोग न किया। वे रूस का विश्वास न करते थे। ३० नवम्बर, १९२७ को जब रूसी प्रतिनिधि लिटविनोव ने 'निःशस्त्रीकरण सम्मेलन के लिये सज्जीकरण आयोग' के समक्ष यह प्रस्ताव रक्खा कि सब देश अपनी-अपनी सेनाओं को पूर्णरूप से भंग कर दें तो सभी ने उसके प्रस्ताव का विरोध किया।

प्रश्न (बी० ए०)

१. दो महायुद्धों के मध्य सुरक्षा की समस्या पर प्रकाश डालिए।

२. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—

(अ) जेनेवा प्रोटोकल (Geneva Protocol)

(ब) लोकार्नो पैक्ट (Locarno Pact)

(स) केलॉग ब्रिआं पैक्ट (Kellogg Briand Pact)

(द) निःशस्त्रीकरण की समस्या (Problem of Disarmament)

Questions (M. A.)

1 'The most important and persistent single factor in European affairs in the years following 1919 was the French demand for security'. (Carr.) Elucidate and comment on this statement.

2 The Locarno Treaties were said to mark the real dividing line between the years of war and the years of peace. Give a brief historical background of the Locarno Pact and show how far this opinion was justified by the course of events.

3 Analyze the main provisions of the Locarno Treaties.

4 What were the circumstances which led to the Kellogg Briand Pact of 1928. Explain its main terms and show why it failed in its purpose to outlaw war.

5 Discuss the provisions of Geneva Protocol of 1924 and analyze the attitude of the European powers towards it.

6 What circumstances led to the conclusion of the Washington Treaties of 1921–22 ?How far did they contribute to the establishment of a durable peace in the Far East.

7 Outline the history of the Geneva Disarmament Conference (1932–34) and account for its failure. What contribution did the U.S.A. make to it ?

8 Review briefly the attempts made during the inter-war period to bring about disarmament of all nations and account for their failure.

---

७ युद्धोत्तर यूरोप की आर्थिक समस्यायें

क्षति-पूर्ति, जर्मनी की कठिनाइयाँ, रूर पर आक्रमण, सेपरेटिस्ट आन्दोलन, स्थिति में परिवर्तन, डावेस योजना, यंग योजना, क्षति-पूर्ति की समस्या का अन्त, प्रभाव, अन्तर्राष्ट्रीय ऋणों की समस्या, आर्थिक संकट, सम्मेलन, आर्थिक संकट का परिणाम।

प्रथम महायुद्ध में धन का बहुत अपव्यय हुआ था। विद्वानों का अनुमान है कि इस युद्ध के संचालन में दोनों पक्षों की ओर से एक खरब, ८६ अरल डालर की धन-राशि व्यय हुई थी। युद्ध-काल में नष्ट हुई सम्पत्ति की क्षति का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। युद्धोत्तर यूरोप को विशेष रूप से तीन प्रकार की आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ा—

(१) क्षति पूर्ति,
(२) युद्ध ऋण,
(३) आर्थिक मन्दी।

क्षति पूर्ति—प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ करने का उत्तरदायित्व जर्मनी पर डाला गया था। अतः उससे युद्ध का भारी हर्जाना लिए जाने का निश्चय किया गया। फ्रांस आदि विजेता राष्ट्रों की यह इच्छा थी कि जर्मनी से युद्ध का समस्त व्यय (War indemnity) लिया जाय। परन्तु विल्सन यह चाहता था कि जर्मनी से केवल नागरिक सम्पत्ति को पहुँची क्षति की पूर्ति की जाय। अन्त में यह निश्चय किया गया कि 'मित्र और संयुक्त राष्ट्रों की नागरिक जनता की जन-धन की जो भी हानि हुई हो उसकी क्षति-पूर्ति की जाय।'[1] क्षति पूर्ति की सम्पूर्ण राशि मित्र राष्ट्र आयोग (Allied Commission) द्वारा प्रथम मई १९२१ तक निश्चित की जानी थी; तब तक जर्मनी को मित्र राष्ट्रों को १०० करोड़ पौण्ड का चुकान करना आवश्यक था। कमीशन द्वारा निश्चित धन राशि का ३० वर्ष के अन्दर-अन्दर चुकान होना आवश्यक था। जर्मनी को अपने बड़े-बड़े व्यापारिक तथा मछली पकड़ने के जहाज मित्र राष्ट्रों को देने थे। उसको १० वर्ष तक भारी मात्रा में फ्रांस को कोयला देना था। क्षति-पूर्ति निश्चित करने के लिए एक क्षति-पूर्ति आयोग (Reparation Commission) की स्थापना की गई। इसके सदस्य

1 'Compensation for all damages done to the civilian population of the Allied and Associated Powers and to thier property'

इंगलैंड, फ्रांस, इटली तथा बेल्जियम के प्रतिनिधि थे। अमेरिका ने वार्साय की सन्धि को स्वीकार नहीं किया था। अतः इसमें उसका कोई सदस्य न था। इस कमीशन ने क्षति-पूर्ति की सम्पूर्ण राशि ६ अरब ६० करोड़ पौण्ड निश्चित की।[1] जर्मनी के आर्थिक साधनों को देखते हुए यह राशि बहुत अधिक थी। विश्व के प्रायः सभी अर्थविशेषज्ञ इस बात से सहमत थे कि इतनी अधिक क्षति-पूर्ति का नकद चुकान करना जर्मनी के लिए कठिन था। सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री कीन्स ने क्षति-पूर्ति सम्बन्धी समझौते का विरोध करते हुए अपने पद का परित्याग कर दिया था। जर्मन प्रतिनिधियों ने अपने एक स्मरण-पत्र में कहा था—इतने अधिक प्रदेश खो जाने, लोहे तथा कोयले की क्षति उठाने के पश्चात् जर्मनी इस स्थिति में नहीं रह गया है कि वह क्षति-पूर्ति के रूप में भारी धनराशि दे सके। यदि उसको ऐसा करने के लिए विवश किया गया तो उसके करोड़ों लोगों के लिए जीवित रहना भी कठिन हो जायगा। जर्मनी को मित्र राष्ट्रों को प्रतिवर्ष ५० करोड़ डालर की किश्त देनी थी। इसके साथ-साथ उसको कोयला आदि भी देना था। जर्मनी इतनी राशि देने के लिए तैयार नहीं था; परन्तु मित्रराष्ट्रों के रूर पर आक्रमण करने की धमकी से भयभीत होकर उसने इसको स्वीकार कर लिया।

जर्मनी से प्राप्त धन-राशि को मित्रराष्ट्रों के मध्य विभाजित करने के सम्बन्ध में जुलाई १९२० में स्पा (Spa) में एक सम्मेलन हुआ। इसमें प्रत्येक देश का भाग इस प्रकार निश्चित किया—

१. फ्रांस	को	५२	प्रतिशत
२. इंगलैंड	,,	२२	,,
३. इटली	,,	१०	,,
४. बेल्जियम	,,	८	,,
५. अन्य छोटे २ राज्यों	,,	८	,,

जर्मनी क्षति-पूर्ति मुद्रा तथा सामान दोनों में ही कर सकता था। उसने किसी प्रकार प्रारम्भिक धन-राशि अदा कर दी; परन्तु मित्रराष्ट्रों ने उसको निश्चित राशि का केवल ४० प्रतिशत ही माना। फलतः मित्र राष्ट्रों ने राइन नदी के पूर्वी भाग पर अधिकार कर लिया। मित्र राष्ट्रों ने यह घोषित किया कि इस प्रदेश में बिक्री के लिए जर्मन माल का प्रवेश नहीं हो सकता और यदि प्रवेश की आज्ञा भी दी जायगी तो उस पर भारी मात्रा में चुंगी लगाई जायगी।

क्षति-पूर्ति करने के सम्बन्ध में जर्मनी की कठिनाइयाँ—जर्मनी पर भारी मात्रा में क्षति-पूर्ति लादी गई थी। इसकी पूर्ति के लिए जर्मनी के सम्मुख निम्नलिखित कठिनाइयाँ थीं—

१. जर्मनी के उत्पादन के प्रमुख क्षेत्रों पर मित्र राष्ट्रों ने अधिकार कर लिया था।

---

१. लिप्सन महोदय ने क्षति-पूर्ति को युद्ध-दण्ड के नाम से सम्बन्धित किया है।

(२) भारी टैक्सों से बचने के लिये जर्मनी के पूंजीपतियों ने अपना अधिकांश धन विदेशी बैंकों में जमा कर दिया था।

(३) अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये जर्मनी को विदेशों से पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल मंगाना पड़ रहा था। इससे उसकी बहुत सी पूंजी इसमें व्यय हो रही थी।

(४) अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जर्मनी की साख (Credit) बहुत कम हो गई थी। कोई भी देश इस पराजित तथा साखहीन देश को धन देने के लिये तैयार न था।

(५) यदि जर्मनी विदेशों से क्षति-पूर्ति के लिये कुछ धन उधार लेता तो उसकी साख और भी खराब हो जाती।

(६) जर्मनी अपनी सेवाओं द्वारा भी हर्जाने को अदा नहीं कर सकता था, क्योंकि मित्र-राष्ट्रों ने उससे बड़े-बड़े व्यापारिक जहाज भी छीन लिये थे।

(७) अन्तर्राष्ट्रीय आदान-प्रदान (Exchange) में जर्मनी के सिक्के मार्क का मूल्य बराबर गिर रहा था। १६१६ में २० मार्क इंगलैंड के एक पौण्ड के बराबर होता था। १६२० में २५० मार्क एक पौण्ड के बराबर हो गये। नवम्बर १६२१ में १००० मार्क एक पौंड के बराबर हो गये। १६२२ की गर्मियों में २५०० मार्क का मूल्य एक पौंड के बराबर हो गया। अन्त में मार्क का कोई मूल्य नहीं रह गया। इस प्रकार जर्मनी की आर्थिक अवस्था बहुत खराब हो गई। इस सम्बन्ध में कार महोदय ने लिखा है—'मार्क के मूल्य के ह्रास का मौलिक कारण युद्ध-काल की आर्थिक अव्यवस्था थी। उस पर जर्मन सरकार का कोई नियन्त्रण न था। परन्तु एक बार जब मार्क का मूल्य गिरना प्रारम्भ हो गया तो जर्मन अधिकारियों ने इसको रोकने का प्रयास नहीं किया। जर्मन पदाधिकारी यह भली प्रकार जानते थे कि उनके देश की आर्थिक स्थिति जितनी अच्छी होगी, उतना ही अधिक उनको हर्जाना देना होगा।'

रूर पर आक्रमण—जर्मनी की आर्थिक अवस्था बहुत खराब थी और यह स्पष्ट हो गया था कि अब वह किसी प्रकार भी क्षति-पूर्ति की राशि अदा नहीं कर सकता। अतः नवम्बर १६२२ में जर्मनी ने यह माँग की कि दो वर्षों तक उसको नकद किश्तों की अदायगी स्थगित करने (Moratorium) की छूट दी जाय। इंगलैण्ड ने जर्मनी की इस माँग का समर्थन किया, क्योंकि इंगलैंड का प्रधान मन्त्री लायड जार्ज जर्मनी से अपना व्यापार बढ़ाने का प्रयास कर रहा था। फ्राँस ने इसका घोर विरोध किया। फ्राँस निम्नलिखित कारणों से जर्मनी से नाराज था—

(१) जर्मनी ने सम्पूर्ण क्षति-पूर्ति के स्थान पर आंशिक क्षति-पूर्ति देना ही स्वीकार किया था।

(२) अब दो वर्षों के लिये जर्मनी आंशिक हर्जाने की किश्त को भी स्थगित करना चाहता था।

(३) युद्ध-काल में जर्मनी ने फ्राँस का तेरह हजार वर्ग मील का उत्तरी-पश्चिमी प्रदेश पूर्णतया नष्ट कर दिया था। अतः फ्रांस यह चाहता था कि अब

जर्मनी को इतना निर्बल कर दिया जाय कि वह भविष्य में फिर कभी फ्रांस पर आक्रमण करने का साहस न कर सके। अतः फ्राँस क्षति-पूर्ति की राशि में कोई रियायत करने को तैयार न था।

(४) फ्रांस अपने पुनर्निर्माण तथा पेंशनों में १९२२ तक ७½ अरब डालर व्यय कर चुका था। वह इस समस्त व्यय को जर्मनी से वसूल करना चाहता था। फ्रांस का यह कहना था कि वह गत दो वर्षों से अपने पुनर्निर्माण तथा पेंशनों पर पाँच हजार सात सौ डालर प्रति मिनट के हिसाब से व्यय कर रहा है। परन्तु इसके स्थान पर जर्मनी उसको केवल ३८१ डालर ही प्रति मिनट के हिसाब से दे रहा है।

फ्राँस के प्रधान मन्त्री प्वायन्केअर (Poincare) ने कहा कि जर्मनी क्षति-पूर्ति करना नहीं चाहता है। उसने जानबूझ कर मार्क का मूल्य गिरा दिया है। एकमात्र उत्पादक गारन्टी (Productive guarantees) के आधार पर ही जर्मनी को नकद अदायगी स्थगित करने की छूट दी जा सकती है। इसका अर्थ था कि जर्मनी की खानों तथा रंग आदि के कारखानों पर फ्रांस का अधिकार स्वीकार कर लिया जाय। इंगलैंड ने इसका विरोध किया। फ्रांस को इंगलैंड के विरोध की कोई चिन्ता नहीं थी। उसने जर्मनी पर यह आरोप लगाया कि उसने जान-बूझकर टेलीफोन के खम्बे, इमारती लकड़ी, कोयला तथा पशु आदि नहीं दिए हैं। फ्रांस ने कमीशन के अन्य सदस्यों बेल्जियम तथा इटली को भी अपनी ओर मिला लिया। उसने वार्साय सन्धि की एक धारा[1] के अनुसार ११ जनवरी १९२३ को बेल्जियम तथा इटली की सेनाओं की सहायता से रूर के सुप्रसिद्ध औद्योगिक क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। यह प्रदेश जर्मनी के लिए बहुत महत्वपूर्ण था। इसमें जर्मनी का ८० प्रतिशत कोयला, लोहा तथा इस्पात उत्पन्न होता था। देश की ७० प्रतिशत रेलवे लाइनें यहीं थीं। इसी से यह प्रदेश जर्मनी का औद्योगिक हृदय कहलाता था। इंगलैंड ने फ्रांस के इस कार्य को अवैध बतलाया तथा वह इससे दूर रहा। इंगलैंड का यह कहना था कि क्षति-पूर्ति की किश्त न चुकाने का निर्णय करने तथा इसके विरोध में जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने का कार्य क्षति-पूर्ति आयोग के सदस्यों की सर्वसम्मति से होना था न कि बहुमत से।

प्रमुख समृद्धिशाली औद्योगिक क्षेत्र रूर के निकल जाने से जर्मनी में बहुत असंतोष हुआ। एक जर्मन राजनीतिज्ञ ने ठीक ही कहा है—"दो मनुष्यों ने जर्मनी का संगटन किया है—१८७१ में बिस्मार्क ने तथा १९२३ में प्वायन्केअर ने।"[2] इस क्षेत्र के जर्मन लोगों ने फ्रांस के विरुद्ध असहयोग आन्दोलन चलाना प्रारम्भ कर दिया। जर्मन कर्मचारियों ने खानों, कारखानों, रेलों तथा दफ्तरों आदि में कार्य करना बन्द कर दिया। सरकार ने क्षति-पूर्ति की किश्तों की अदायगी बन्द कर दी। जर्मन

1 'In case of voluntary default by Germany, the Allies can take such measures as the respective Governments may determine to be necessary.'

2. 'Two men have united the German people–Bismarck in 1871 and Poincare in 1923.'

सरकार ने कागज के नोट छापकर हड़तालियों को वेतन देना प्रारम्भ कर दिया। इससे मार्क का मूल्य बहुत गिर गया तथा मंहगाई बढ़ गई। इससे फ्रांस को भी हानि हुई। उसे जर्मनी से पहले की अपेक्षा कोयले का केवल $\frac{1}{4}$ भाग ही मिला। इससे फ्रांसीसी सरकार को बहुत क्रोध आया। फ्राँस तथा बेल्जियम की सरकार ने जर्मन निवासियों के साथ बहुत कठोरता का व्यवहार किया। इस प्रदेश में जर्मन जनता तथा सरकार की जितनी सम्पत्ति लगी हुई थी सब जस्त कर ली गई। इस प्रदेश में उत्पन्न होने वाली कोई भी वस्तु जर्मनी में नहीं जा सकती थी। इंगलैंड फ्राँस के इन कार्यों का बराबर विरोध करता रहा।

सेपरेटिस्ट आन्दोलन (Separatist Movement) - फरवरी १९१७ की एक गुप्त सन्धि के अनुसार जारशाही रूस तथा फ्रांस ने यह तय कर लिया था कि फ्राँस तथा जर्मनी के मध्य पश्चिमी राइन प्रदेश का एक तटस्थ राज्य (Buffer State) बना दिया जाय। वार्साय सन्धि के समय भी फ्राँस इस तटस्थ राज्य की स्थापना के लिए प्रयत्नशील था। विल्सन इसके लिए तैयार न था। अत: अमेरिका तथा इंगलैंड ने मिलकर फ्राँस को जर्मनी से सुरक्षा की गारंटी दी। अमेरिकन सीनेट ने वार्साय की सन्धि को अस्वीकृत कर दिया। इससे विल्सन द्वारा फ्राँस को दिया सुरक्षा का आश्वासन व्यर्थ हो गया। अमेरिका के अलग होने पर इंगलैंड ने भी अपने आश्वासन को वापस ले लिया। अत: जर्मनी का विरोध करने के लिए फ्रांस ने यह आन्दोलन चलाया। अन्त में यहां की जनता ने राइनलैंड रिपब्लिक (Rhineland Republic) नामक एक स्वतन्त्र राज्य की घोषणा कर दी। फ्रांसीसी सरकार ने तुरन्त उसको स्वीकार कर लिया। २ जनवरी १९२४ को इंगलैंड की सरकार ने घोषित किया कि यदि फ्राँसीसी सरकार ने इस आन्दोलन से अपना सम्बन्ध-विच्छेद न किया तो विवश होकर उनको यह सारा मामला राष्ट्र संघ के सम्मुख प्रस्तुत करना होगा। यह धमकी काम कर गई। फ्राँसीसी सरकार ने आन्दोलनकारियों की सहायता बन्द कर दी और यह आन्दोलन स्वत: समाप्त हो गया। परन्तु इन कार्यों से इंगलैंड फ्रांस का विरोधी हो गया। संसार की सहानुभूति जर्मनी के साथ हो गई।

स्थिति में परिवर्तन—इसके बाद स्थिति में परिवर्तन हो गया। दोनों पक्ष ही संघर्ष से थक गए। अत: दोनों के हृदय में इस संघर्ष की समाप्ति के लिए परिवर्तन हुआ। फ्राँस यह समझ गया था कि जर्मनी को इस प्रकार दबाकर उससे हर्जाना वसूल नहीं किया जा सकता। जर्मनी की आर्थिक अवस्था बहुत खराब हो गई थी। अत: मित्रराष्ट्रों ने यह यह समझ लिया कि क्षति-पूर्ति के सम्बन्ध में अर्थ-विशेषज्ञों की सलाह से सुधार किया जाना चाहिए। सौभाग्य-वश दोनों विरोधी पक्षों में भी इस समय महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। १९२४ के नए चुनाव में फ्रांस के प्रधान मन्त्री प्वायन्केअर का पतन हो गया। उसके स्थान पर हैरियो (Herriot) प्रधान मन्त्री बना। वह एक उदार तथा सहृदय व्यक्ति था। हैरियो के मन्त्रि-मण्डल में ब्रियां (Briand) विदेश मन्त्री बना। वह प्वायन्केअर की नीति का विरोधी था। प्वायन्केअर जर्मनी को पददलित कर फ्रांस को सुरक्षा करना चाहता था; परन्तु ब्रियाँ

फ्रांस की सुरक्षा का सबसे अच्छा साधन जर्मनी की मित्रता को मानता था। दूसरी ओर स्ट्रेसमन (Stresemann) जर्मनी का नया प्रधान-मन्त्री बना। वह जर्मनी की प्रतिष्ठा में वृद्धि कर उसको अन्य राज्यों के स्तर पर लाना चाहता था। इसके लिए वह यह आवश्यक समझता था कि जर्मनी वार्साय-सन्धि की शर्तों का यथाशक्ति पालन कर मित्रराष्ट्रों को संतुष्ट करने का प्रयास करे। उसे यह आशा थी कि ऐसा करने पर मित्रराष्ट्र सन्धि की शर्तों में कुछ उदारता लाने के लिए सहमत हो जायेंगे। अतः उसने रूर क्षेत्र का असहयोग आन्दोलन वापस ले लिया तथा मार्क की कीमत स्थिर करने का भी प्रयास किया। इंगलैंड में मजदूर दल के हाथ में सत्ता आई। रैम्जे मैकडोनल्ड ब्रिटेन का प्रधान मन्त्री बना। वह जर्मनी के प्रति पर्याप्त उदार था।

डावेस योजना (Dawes Plan)—मार्च १९२४ में इंगलैंड ने अमेरिका के सम्मुख जर्मनी को ऋण अदा करने की क्षमता के ऊपर विचार करने के लिए एक कमेटी बनाने का प्रस्ताव रक्खा। अमेरिका इससे सहमत हो गया। अतः अमेरिकन अर्थ-विशेषज्ञ डावेस की अध्यक्षता में एक समिति बनाई। इस समिति में अमेरिका, इंगलैंड, फ्रांस, इटली तथा बेल्जियम के दो-दो प्रतिनिधि थे। कुछ विशेष अवसरों पर जर्मनी के प्रधान स्ट्रेस्मन को भी इसमें बुलाया गया था। ९ अप्रैल १९२४ को इस समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की। अपनी रिपोर्ट में उसने निम्नलिखित सिफारिशें प्रस्तुत कीं।

(१) फ्रांस तथा जर्मनी रूर के प्रदेश को खाली कर दें।

(२) जर्मनी को विदेशी व्यापार से जितनी बचत होगी, उससे अधिक वह मित्रराष्ट्रों को नहीं देगा।

(३) जर्मनी की आर्थिक स्थिति के अनुसार किश्तों की राशि प्रति वर्ष बदला करेगी। जर्मनी द्वारा दी जाने वाली प्रथम वर्ष की किश्त २५ करोड़ डालर हो। चार वर्षों में धीरे-धीरे इस राशि को बढ़ाकर ६२½ करोड़ डालर कर दिया जाय।

(४) जर्मनी के नए सिक्के रेन्टल मार्क (Rentalmark) का अनुपात १ पौंड: २० रेन्टलमार्क मान लिया जाय।

(५) जर्मनी के सिक्के के मूल्य में स्थिरता प्रदान करने तथा उसको प्रथम किश्त चुकाने के लिए मित्रराष्ट्र उसको २० करोड़ डालर का ऋण दें।

(६) जर्मनी में एक केन्द्रीय बैंक (Reich bank) की स्थापना की गई। इसका संचालन करने के लिये सात जर्मन तथा सात विदेशी अर्थ-विशेषज्ञों के एक बोर्ड की स्थापना की गई। इस बैंक का अध्यक्ष एक विदेशी बनाया गया। इस बैंक को कागजी मुद्रा चलाने का अधिकार प्रदान किया गया।

(७) क्षति-पूर्ति आयोग के निरीक्षण के लिये एक एजेन्ट-जनरल की व्यवस्था की गई। इस पर गिलबर्ट नामक एक अमेरिकन नियुक्त किया गया।

मित्र राष्ट्रों तथा जर्मनी ने इस योजना को स्वीकार कर लिया। फ्राँसीसी सेनाओं ने रूर प्रदेश से हटना प्रारम्भ कर दिया। प्रथम सितम्बर १९२४ से यह योजना कार्यान्वित हो गई।

गुण—डावेस योजना में निम्नलिखित प्रमुख गुण थे—

१. इस समिति ने अपने कार्य में आर्थिक दृष्टिकोण को महत्व दिया। राजनीति को उसने अपने कार्य से अलग रक्खा। इस समिति ने क्षति-पूर्ति के प्रश्न को राजनीतिक कटुता के स्थान पर विशुद्ध व्यापारिक स्वरूप प्रदान किया। इसका उद्देश्य था—'Bussiness, not poliitcs.'

२. उस समिति ने क्षति-पूर्ति की किश्तें निश्चित कर दीं, तथा उन किश्तों के अदा करने के उपाय भी बतलाए।

३. एजेन्ट जनरल की नियुक्ति से क्षति-पूर्ति आयोग के बहुत से झगड़े समाप्त हो गये।

४. डावेस तथा गिलबर्ट नामक अमेरिकनों के प्रभाव से फ्रांस तथा इंगलैंड की मनमानी रुक गई।

५. केन्द्रीय बैंक की स्थापना से कागजी मुद्रा पर नियन्त्रण स्थापित हो गया। जर्मनी के नए सिक्के का मूल्य निश्चित हो गया।

६. जर्मनी को विदेशों से ऋण मिलने लगा। उसके उद्योग-धंधों का विकास हो गया तथा उसकी आर्थिक अवस्था ठीक हो गई।

दोष—उपर्युक्त गुणों के साथ-साथ डावेस योजना में निम्नलिखित दोष भी थे—

१. इस समिति ने क्षति-पूर्ति की समस्त राशि निश्चित नहीं की। इसने यह भी निश्चित नहीं किया कि जर्मनी क्षति-पूर्ति की किश्तें कब तक अदा करता रहेगा।

२. जर्मन निवासियों को इससे बचत करने का प्रोत्साहन नहीं मिला। उन्होंने यही सोचा कि वे जो कुछ बचत करेंगे, वह सब क्षति-पूर्ति की किश्तों में चली जायेगी।

३. जर्मनी की अर्थ-व्यवस्था पर विदेशी प्रभाव स्थापित हो गया था। जर्मनी के लिये यह बहुत अपमान-जनक था। जर्मनी में इससे बहुत असंतोष था।

४. विदेशों से ऋण मिलने पर जर्मनी बराबर यही सोचने लगा कि उसको क्षति-पूर्ति की किश्तें अदा करने के लिये बराबर ऋण मिलता रहेगा।

अप्रैल १६२४ से मई १६३० तक जर्मनी तथा मित्र-राष्ट्रों के सम्बन्ध अच्छे रहे। जर्मनी ठीक समय पर हर्जाने की किश्तें अदा करता रहा। १६२६ में जर्मनी को राष्ट्र-संघ की सदस्यता प्रदान कर दी गई।

यंगयोजना (Young Plan)—जर्मनी राइन प्रदेश को तुरन्त खाली कराने की माँग कर रहा था। इंगलैंड उसका समर्थन कर रहा था। फ्रांस इस प्रदेश को खाली करने से पूर्व ही हर्जाने की समस्त राशि निश्चित करने की माँग कर रहा था। अतः अमेरिकन अर्थ-विशेषज्ञ यंग की अध्यक्षता में एक अन्य समिति का निर्माण

किया गया। यह समिति इतिहास में यंग योजना के नाम से प्रख्यात है। उसने ७ जून १६२६ को अपनी रिपोर्ट में निम्नलिखित बातों की सिफारिश की—

१. क्षति-पूर्ति की राशि घटाकर पहले की अपेक्षा लगभग ¼ कर दी गई। पहले यह ३३ अरब डालर थी; परन्तु अब यह ६ अरब डालर कर दी गई।

२. जर्मनी को ३७ वर्ष तक प्रति वर्ष ५२ करोड़ १५ लाख डालर की किश्तें देनी थीं। इसके बाद २२ वर्ष तक उसको प्रति वर्ष ३६ करोड़, १२ लाख, ५० हजार डालर की किश्तें देनी थीं। इस प्रकार ५६ वर्ष में अर्थात् १६८८ तक हर्जाने की समस्त राशि जर्मनी को चुकानी थी।

३. अन्तर्राष्ट्रीय हिसाब करने के लिए एक बैंक (Bank for International Settlements) की स्थापना की गई। इसका कार्य जर्मनी से हर्जाना लेकर मित्र-राष्ट्रों में वितरित करना था।

४. क्षति-पूर्ति आयोग तोड़ दिया गया।

५. डावेस योजना के अनुसार जर्मनी पर जो नियन्त्रण लगाया गया था, वह समाप्त कर दिया गया।

जनवरी १६३० में हेग में मित्र-राष्ट्रों का एक सम्मेलन हुआ। उस सम्मेलन में कतिपय साधारण संशोधनों के पश्चात् इस योजना को स्वीकार कर लिया गया। यह निर्णय किया गया कि ३० जून १६३० तक सम्पूर्ण राइन प्रदेश खाली कर दिया जायगा। इस सम्मेलन में यह भी निर्णय किया गया कि यदि जर्मनी जान-बूझकर किश्त अदा करने में आनाकानी करेगा तो यह प्रश्न अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में प्रस्तुत किया जायगा और उसकी आज्ञा से मित्र-राष्ट्रों को जर्मनी के विरुद्ध कार्यवाही करने का अधिकार होगा।

क्षति-पूर्ति की समस्या का अन्त—१८३० की आर्थिक मन्दी के कारण यंग योजना असफल हो गई। जर्मनी को विदेशों से ऋण मिलना बन्द हो गया। इससे जर्मनी के लिये हर्जाना अदा करना असम्भव हो गया। अमेरिका के राष्ट्रपति हूवर की सलाह के आधार पर १६३१ में हर्जाने की किश्त स्थगित कर दी गई; परन्तु इसके बाद भी जर्मनी हर्जाने की किश्त अदा न कर सका। फलतः १६३२ में लोजान में एक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में यंग योजना को रद्द कर दिया गया। इस समय जर्मनी से केवल ७५ करोड़ डालर क्षति-पूर्ति के रूप में माँगा गया। इस समय जर्मनी में हिटलर का उत्कर्ष हो रहा था। उसने क्षति-पूर्ति के सम्बन्ध में कोई भी राशि अदा करना अस्वीकार कर दिया।

क्षति-पूर्ति की समस्या का प्रभाव—क्षति-पूर्ति का प्रश्न युद्धोत्तर यूरोप का महत्वपूर्ण प्रश्न था। इसके निम्नलिखित प्रमुख प्रभाव हुये—

१. जर्मनी से हर्जाना वसूल करने के सम्बन्ध में इंगलैंड तथा फ्रांस के दृष्टि-कोणों में मौलिक अन्तर था। इंगलैंड फ्रांस से अपना व्यापार बढ़ाना चाहता था। उसका यह मत था कि जर्मनी को पूर्णतया पराजित कर दिया गया है। अतः

अब उससे अधिक क्षति-पूर्ति की आशा नहीं रखनी चाहिये। इंगलैंड की यह इच्छा थी कि अब जर्मनी अपनी पूर्व स्थिति प्राप्त करले। फ्राँस इससे सहमत नहीं था। उसकी यह इच्छा थी कि जर्मनी से युद्ध का पूरा हर्जाना वसूल किया जाय। फ्रांस यह नहीं चाहता था कि जर्मनी युद्ध से पूर्व की स्थिति में आ जाये। जर्मनी का शक्तिशाली होना फ्रांस के लिये खतरनाक था। इस मौलिक मत-भेद के कारण इंगलैंड तथा फ्रांस में बहुत विरोध उत्पन्न हो गया। इस पारस्परिक संघर्ष के कारण कभी भी वार्साय सन्धि का कठोरता से पालन नहीं किया गया। अपने शत्रुओं के मतभेद से जर्मनी का लाभ उठाना स्वाभाविक था।

२. इंगलैंड तथा फ्राँस अपने मौलिक मत-भेद को दूर करने के लिए कोई समझौता न कर सके। फ्राँस का इंगलैंड पर कोई विश्वास न रहा। अतः फ्राँस ने अपनी सुरक्षा के लिए अन्य देशों से सन्धियां करनी प्रारम्भ कर दीं।

३. इंगलैंड तथा फ्राँस ने हर्जाने को अमेरिका से लिए गए ऋणों से संबंधित कर दिया। इससे अमेरिका नाराज हो गया।

४. हर्जाना देने के लिए तथा अपना विकास करने के लिए अमेरिका ने पर्याप्त मात्रा में जर्मनी को ऋण दिया था। इससे अमेरिका की औद्योगिक उन्नति बहुत अधिक हो गई।

५. जर्मनी हर्जाना चुकाना नैतिक दृष्टि से उचित नहीं समझता था। अतः हर्जाना चुकाने के लिए उसके हृदय में कोई उत्साह नहीं था। वह केवल उतना ही धन चुकाने को तैयार था, जितना कि मित्र-राष्ट्र उससे बलपूर्वक वसूल कर सकें। इस भावना से जर्मनी तथा मित्र-राष्ट्रों में कटुता उत्पन्न होनी स्वाभाविक थी।

अन्तर्राष्ट्रीय ऋणों की समस्या—युद्धोत्तर यूरोप की अन्तर्राष्ट्रीय ऋणों के अदा करने की समस्या भी बहुत जटिल थी। युद्ध-काल में अमेरिका सबसे बड़ा महाजन था। दूसरे नम्बर का महाजन इंगलैंड था। इस सम्बन्ध में अमेरिका ने मित्र राष्ट्रों को कुल लगभग दो अरब और ५$\frac{1}{2}$ करोड़ पौंड का ऋण दिया था। युद्ध-काल में इंगलैंड पर अमेरिका का एक अरब पौंड ऋण हो गया था। इंगलैंड ने अपने साथी राष्ट्रों को एक करोड़ साठ लाख पौंड का ऋण दिया था। इस प्रकार युद्ध के पश्चात् अमेरिका के अतिरिक्त सभी देश ऋणी हो गये थे। इन ऋणों की अदायगी के सम्बन्ध में अमेरिका तथा मित्र राष्ट्रों में मौलिक मतभेद उत्पन्न हो गया। इंगलैंड तथा फ्रांस इन ऋणों को युद्ध से सम्बन्धित कर इनको रद्द कराने अथवा कम कराने के पक्ष में थे। इंगलैंड ने बाल्फोर नोट के द्वारा घोषित किया था—'यदि अमेरिका उससे अपना ऋण वापस न माँगे तो वह अन्य देशों से अपना धन वापस लौटाने को नहीं कहेगा।' इङ्गलैंड तथा फ्रांस का यह मत था कि ये ऋण व्यापारिक नहीं अपितु राजनीतिक थे। ये जर्मनी को पराजित करने के लिए दिए गए थे। अतः इनको वापस करने का प्रश्न ही नहीं उठता। अमेरिका युद्ध में बहुत बाद में आया था। इससे उसको अधिक हानि नहीं उठानी पड़ी थी। इंगलैंड तथा फ्रांस ने युद्ध में अमेरिका

की अपेक्षा बहुत अधिक रक्त बहाया था। अमेरिका को यह धन युद्ध जीतने में सहायक समझना चाहिए और उसको इसे प्राप्त करने की माँग नहीं करनी चाहिए। मित्र राष्ट्र इन ऋणों को हर्जाने से सम्बन्धित कर यह कह रहे थे कि वे इन ऋणों को उसी सीमा तक वापस कर सकते हैं जितनी कि राशि उनको जर्मनी से क्षति-पूर्ति के रूप में मिलती है। अमेरिका मित्र राष्ट्रों के इन तर्कों से सहमत नहीं था। वह इन ऋणों को हर्जाने से सम्बन्धित नहीं मानता था। उसका कहना था कि उसे १९१८ के पहले तथा बाद में जो ऋण दिया था, वह विनाश-कार्यों के लिए नहीं था। उससे भारी मात्रा में भोजन, तम्बाकू तथा रुई आदि क्रय की गई थी। अमेरिका का दूसरा तर्क यह था कि जब मित्र राष्ट्र जर्मनी से अधिक से अधिक हर्जाना वसूल करना चाहते हैं तो वे अमेरिका का ऋण चुकाने में आनाकानी क्यों करते हैं ?

अन्त में मित्र राष्ट्रों ने अमेरिका से एक समझौता कर उसको यह आश्वासन दिया कि वे ६२ किश्तों में उसका ऋण चुका देंगे। १९३० में आर्थिक मन्दी आने के कारण मित्र राष्ट्रों को ऋण की किश्त चुकाना कठिन हो गया। अमेरिका के राष्ट्रपति हूवर ने १९३१ में एक वर्ष के लिए ऋणों की अदायगी स्थगित करने की बात मान ली। इसके बाद भी आर्थिक मन्दी चलती रही। जर्मनी के हर्जाने की राशि घटा कर बहुत कम कर दी गई। मित्र राष्ट्र यह चाहते थे कि अमेरिका भी इसी अनुपात में अपने ऋणों की राशि में कमी कर दे; परन्तु इसके लिए वह तैयार नहीं हुआ। ऐसी परिस्थिति में मित्र राष्ट्रों को ऋण चुकाना कठिन हो गया। इंगलैंड ने ऋण चुकाने का पूरा प्रयास किया और उसने ५० प्रतिशत ऋण चुका दिया। उसके साथियों पर उसका जो ऋण था, उसमें भी उसने कमी कर दी। अन्य मित्र राष्ट्रों ने अमेरिका को केवल १२ प्रतिशत ही ऋण चुकाया। एकमात्र फिनलैंड ही ऐसा देश था जिसने अपना समस्त ऋण चुका दिया था। लिप्सन महोदय ने लिखा है कि 'यह बड़े दुःख की बात है कि विजेता राष्ट्र तो अपना ऋण अदा करने का प्रयास करते रहे; परन्तु पराजित राष्ट्रों ने क्षति-पूर्ति अदा करने का प्रयास नहीं किया। जर्मनी ने मित्र राष्ट्रों को उतना ही हर्जाना दिया, जितना कि उसने अमेरिका से ऋण प्राप्त किया था और अन्त में उसने हर्जाना अदा करने से एकदम इन्कार कर दिया।'

आर्थिक संकट (Economic depression)—१९२९ में यूरोप में ही नहीं अपितु समस्त विश्व में आर्थिक संकट आ गया। यह संकट १९३३ तक रहा। इस संकट के समय लाखों मनुष्य बेकार हो गये, बहुत से बैंक फेल हो गये, बहुत सी कम्पनियों तथा कारखानों का दिवाला निकल गया, व्यापार बहुत कम हो गया तथा सरकारी बजटों में घाटा पड़ने लगा। प्रत्येक देश में सिक्के का मूल्य गिरने लगा। कुछ देशों में प्रजातन्त्र राज्यों के स्थान पर तानाशाही की स्थापना हो गई थी। इस आर्थिक संकट के निम्नलिखित कारण थे —

(१) लिप्सन महोदय का मत है कि आर्थिक संकट का एक चक्र चलता रहता है और यह संकट समय-समय पर देशों में आया करता है। इतिहास में इस प्रकार के

संकटों के अनेक उदाहरण मिलते हैं। १६२० से १६२४ तक इंगलैंड में इसी प्रकार का आर्थिक संकट आया था।

(२) युद्ध-काल में तेजी बढ़ जाती है। युद्ध समाप्त होने पर कुछ दिन तक तो तेजी बनी रहती है, परन्तु उसके बाद आर्थिक मन्दी आ जाती है। नेपोलियन के युद्धों, अमेरिकन गृह-युद्ध तथा १८७० के फ्रांस-प्रशा-युद्ध के पश्चात् ऐसा ही हुआ था। प्रथम महायुद्ध आर्थिक दृष्टि बहुत विनाशकारी था। अतः इस युद्ध की समाप्ति के कुछ दिन पश्चात् आर्थिक संकट आना स्वाभाविक था।

(३) इस समय कुछ देशों के पास बहुत अधिक सोना था तथा कुछ राष्ट्रों के पास कम सोना था। अर्थ-विशेषज्ञों का ऐसा मत है कि १९३१ में समस्त विश्व में दो अरब, तीस करोड़ पौंड सोना था। इसमें से ६० करोड़ पौंड अमेरिका के पास तथा ५४ करोड़ पौंड फ्रांस के पास था। इस प्रकार इन दोनों देशों के पास विश्व का लगभग आधा सोना था। यद्यपि इस समय इंगलैंड के पास ११ करोड़ ८० लाख पौंड था, परन्तु उसने इस सोने को बाहर भेजना उचित नहीं समझा। इसीलिए उसने सितम्बर १९३१ में स्वर्णमान (Gold Standard) को त्याग दिया। एक वर्ष के अन्दर-अन्दर चालीस देशों ने भी ऐसा ही किया। इस प्रकार इन देशों ने स्वर्ण-मान का परित्याग कर आर्थिक मन्दी का सामना किया।

(४) सन् १९२९ तथा १९३३ के मध्य विश्व के अधिकांश देशों में आर्थिक राष्ट्रीयता तथा आत्म-निर्भरता की भावना अपनी चरम सीमा पर पहुंच गई थी। प्रत्येक राष्ट्र यह प्रयास कर रहा था कि वह अपनी आवश्यकता की अधिकांश वस्तुयें बाहर से न मंगा कर स्वयं बनाये। प्रत्येक देश की सरकार बाहर से आने वाले माल पर भारी-भारी चुंगियाँ लगा रही थी तथा विदेशी व्यापार को कम करने के लिये अनेक प्रकार के नियन्त्रण लगा रही थी। इससे औद्योगिक देशों की बहुत हानि हुई।

(५) युद्ध-काल में कारखानों तथा कृषि का उत्पादन बहुत अधिक बढ़ गया था। तेजी से कार्य करने वाले अनेक यन्त्रों का आविष्कार हो गया था। एक मशीन बहुत से मजदूरों का काम करने लगी थी। इससे बेकारी बढ़ने लगी थी। यन्त्रों की सहायता से उत्पादन की मात्रा तो अधिक हो गई थी, परन्तु युद्ध के बाद वस्तुओं की आवश्यकता बहुत कम हो गई थी। फलतः माल-गोदामों में इकट्ठा होने लगा था। अतः खरीदारी के अभाव में मन्दी आ गई।

(६) अक्टूबर १९२९ में न्यूयार्क के शेयर बाजार का दिवाला निकला। इससे जर्मनी आदि देशों को अमेरिका से ऋण मिलना बन्द हो गया तथा वस्तुओं का मूल्य गिरने लगा। अमेरिका से ऋण मिलना बन्द होने पर जर्मनी की आर्थिक अवस्था बहुत खराब हो गई। सरकारी बजट में भारी घाटा आ गया। कारखाने बन्द होने से मजदूर बेकार हो गये।

विभिन्न देशों में आर्थिक संकट—फ्रांस के अतिरिक्त प्रायः सभी देश आर्थिक संकट से परेशान हो गये। आस्ट्रिया की अवस्था बहुत खराब हो गई। १९३१ में

उसके सबसे बड़े बैंक का दिवाला निकल गया। जर्मनी की भी आर्थिक अवस्था बहुत खराब हो गई। उसके सबसे बड़े बैंक का दिवाला निकल गया तथा उसके ५६ लाख मजदूर बेकार हो गये। इससे अमेरिका के राष्ट्रपति हूवर ने एक वर्ष के लिए क्षति-पूर्ति तथा ऋणों का चुकान स्थगित करने की सलाह दी। फ्रांस ने इसका विरोध किया; परन्तु अन्य सभी राष्ट्रों ने इसका समर्थन किया। इस सुविधा से भी जर्मनी की अवस्था में कोई सुधार नहीं हुआ। इङ्गलैंड में भी आर्थिक संकट आ गया। 'बैंक ऑफ इंगलैंड' का दिवाला निकल गया। यह विश्व का सबसे बड़ा बैंक था। अन्त में विवश होकर इंगलैंड ने अपनी स्वर्ण-मर्यादा (Gold Standard) का परित्याग कर दिया। इस दिशा में अन्य बहुत से देशों ने भी इंगलैंड का अनुकरण किया।

आर्थिक संकट दूर करने के लिये सम्मेलन—यह आर्थिक संकट बहुत भयंकर था। प्रायः प्रत्येक देश इससे भयभीत था। किसी को भी इस संकट के दूर करने का उपाय नहीं सूझ रहा था। इस सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने के लिए निम्नलिखित सम्मेलन किये गये —

लोजान-सम्मेलन—आर्थिक संकट पर विचार करने के लिए जून १९३२ में लोजान में एक सम्मेलन बुलाया गया। इसमें इङ्गलैंड, फ्रांस, बेलजियम, जापान, जर्मनी तथा इटली आदि देशों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। इस सम्मेलन में यंग-योजना भंग कर दी गई तथा जर्मनी से केवल ७५ करोड़ डालर की राशि की मांग की गई। इस प्रकार जर्मनी को ९० प्रतिशत की छूट मिल गई। इस छूट का कारण उदारता नहीं थी अपितु आर्थिक संकट को दूर करने तथा व्यापार को बढ़ाने के लिए ऐसा करना आवश्यक था। मित्र राष्ट्र यह चाहते थे कि अमेरिका भी इसी अनुपात में ऋणों की मात्रा कम कर दे। अमेरिका इसके लिए तैयार नहीं हुआ और यह सम्मेलन असफल रहा। जर्मनी को बाहर से ऋण नहीं मिल रहा था। अतः १९३२ में जर्मन चांसलर ने यह घोषित कर दिया कि अब जर्मनी पुनः क्षति-पूर्ति की किश्त प्रारम्भ नहीं कर सकता। इस प्रकार गत १०- १ वर्षों से चले आने वाला क्षति-पूर्ति का प्रश्न समाप्त हो गया। विजेता राष्ट्रों ने भी ऋण चुकाना बन्द कर दिए।

लन्दन-सम्मेलन—आर्थिक संकट पर विचार करने के लिए जून १९३३ में लन्दन में एक विश्व आर्थिक सम्मेलन बुलाया गया। इसमें विश्व के ६४ राज्यों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में मुख्यतया दो बातों पर विचार किया जाना था—

(१) मुद्रा में स्थिरता लाना।

(२) आयात-कर को कम करके अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहन देना।

फ्रांस ने इस बात पर जोर दिया कि पहले मुद्रा में स्थिरता लाई जाय। इसके पश्चात् ही आयात-करों को कम किया जा सकता है। कुछ अन्य देशों ने भी इस सम्बन्ध में उसका समर्थन किया। इस समय अमेरिकन डालर का मूल्य गिराने के लिए तैयार नहीं था, क्योंकि उसका यह ख्याल था कि ऐसा करने से पक्के माल के मूल्य में वृद्धि हो जायगी। अतः अमेरिका के प्रतिनिधि ने सम्मेलन में यह घोषित कर

दिया कि अभी मुद्रा में स्थिरता नहीं लाई जा सकती। इस पर कांग्रेस ने अपना अधिवेशन स्थगित कर दिया। इस प्रकार आर्थिक समस्याओं के हल करने में यह कांग्रेस असफल हो गई। कालान्तर में आर्थिक संकट धीरे-धीरे स्वयं ही दूर होना आरम्भ हो गया। इसके निम्नलिखित कारण थे –

(१) पर्याप्त समय तक कारखाने बन्द रहने से माल का स्टाक समाप्त हो गया था। अतः पुनः कारखाने चलने प्रारम्भ हो गए।

(२) कुछ देशों ने अपने सिक्कों का प्रसार कर उनका मूल्य गिरा लिया। इससे वस्तुओं का मूल्य बढ़ने लगा।

(३) कुछ देशों ने युद्ध-सामग्री का निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया था। इससे बहुत से कारखानों को कार्य मिल गया।

आर्थिक संकट के परिणाम

आर्थिक परिणाम—इस आर्थिक संकट से सरकार तथा समाज के प्रत्येक वर्ग को कठिनाई तथा हानि हुई। सरकारी बजटों में घाटा आ गया। इससे सरकार को करों में वृद्धि करनी पड़ी। बहुत से कारखाने बन्द हो गए। लाखों मजदूर बेकार हो गए। गोदाम वस्तुओं से भर गए; परन्तु उनका कोई खरीदार नहीं था। कारखाने बन्द होने से पूंजीपति भी संकट में आ गए। मध्यम वर्ग के जिन लोगों का रुपया कल-कारखानों में शेयरों के रूप में लगा हुआ था, वे भी परेशान हो गए। सरकार ने ब्याज की दर कम कर दी थी। इससे बहुत से लोग सरकार से नाराज हो गए। सरकार ने बेकार व्यक्तियों को आर्थिक सहायता देनी प्रारम्भ की; परन्तु धन के अभाव में सरकार को अपने इस कार्य में में सफलता मिलनी असम्भव थी।

राजनीतिक परिणाम—(१) आर्थिक संकट को दूर करने के लिए प्रत्येक देश की सरकार के अधिकारों में वृद्धि हो गई। इससे जनतन्त्र के स्थान पर अधिनायकतन्त्र को प्रोत्साहन मिला। इटली में मुसोलिनी तथा जर्मनी में हिटलर जैसे तानाशाहों का उदय हुआ। इङ्गलैंड में मजदूर दल की सरकार का पतन हो गया और उसके स्थान पर सर्व-दलीय सरकार का निर्माण हुआ। यह सरकार बहुत निरंकुश थी। अमेरिका में राष्ट्रपति रूजवेल्ट को बहुत अधिक अधिकार प्राप्त हो गए। आस्ट्रिया, स्पेन, हंगरी, यूगोस्लाविया, पोलैंड, पुर्तगाल, यूनान, बल्गेरिया, एस्टोनिया, लेटाविया तथा रूमानिया आदि देशों में भी किसी न किसी रूप में अधिनायकतन्त्र की लहर आ गई।

(२) लोग पूंजीवाद का विरोध कर साम्यवाद के प्रति झुकने लगे। इससे पश्चिम के पूंजीवादी देशों में बहुत असंतोष उत्पन्न हुआ। उन्होंने साम्यवाद के विरोधी हिटलर तथा मुसोलिनी के प्रति तुष्टीकरण की नीति का पालन करना प्रारम्भ किया। रूस का विरोधी होने के कारण ही जापान के प्रति तुष्टीकरण की नीति का पालन किया गया। अन्त में इसका परिणाम विनाशकारी सिद्ध हुआ।

(३) आर्थिक मन्दी से पूर्व अमेरिका तथा इङ्गलैंड आदि की सरकारें औद्योगिक क्षेत्र में बहुत कम हस्तक्षेप किया करती थीं। परन्तु इसके पश्चात् सरकार का औद्योगिक क्षेत्र में हस्तक्षेप बहुत अधिक बढ़ गया।

(४) इससे राष्ट्र-संघ की शक्ति का भी ह्रास हुआ। इस आर्थिक संकट के कारण ही सामूहिक सुरक्षा की दिशा में कोई कदम नहीं उठाया जा सका।

(५) आर्थिक संकट के कारण इटली की आन्तरिक अवस्था बहुत खराब हो गई थी। अतः मुसोलिनी ने जनता का ध्यान दूसरी ओर आकर्षित करने के लिए एबीसीनिया के एक छोटे राज्य पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया।

(६) जापान में सैनिकवाद का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया। अपने आर्थिक हितों की पूर्ति के लिए जापान ने मंचूरिया पर आक्रमण कर उसको जीत लिया।

(७) प्रत्येक देश में आर्थिक राष्ट्रीयता का बहुत अधिक विकास हो गया। इससे अन्तर्राष्ट्रीयता को ठेस पहुंची। प्रत्येक राष्ट्र ने अपने व्यापार के संरक्षण के दृष्टिकोण से आयात पर चुंगियां बहुत अधिक बढ़ा दीं। लन्दन-सम्मेलन में इन चुंगियों को कम करने का प्रस्ताव रक्खा गया; परन्तु कोई भी देश इसके लिए तैयार नहीं हुआ।

प्रश्न

१ क्षति-पूर्ति की समस्या क्या थी? यह इतनी जटिल क्यों थी? यूरोप के राजनीतिज्ञों ने इसको हल करने के लिए क्या प्रयास किया?

२ सन् १९३०-३२ की विश्व-व्यापी आर्थिक मन्दी का वर्णन कीजिये। इसने विश्व कीं राजनीति को किस प्रकार प्रभावित किया?

३ निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए—
(अ) डावेज योजना,
(ब) यंग-योजना,
(स) स्पा-सम्मेलन,
(द) लोजान-सम्मेलन
(य) लन्दन का आर्थिक विश्व-सम्मेलन।

८

फ्रांस

(१९१९—१९३९)

प्रथम महायुद्ध तथा फ्राँस, गृह-नीति, पुनर्निर्माण की समस्या, क्लेमेन्शू का पतन, रूर पर आक्रमण, आर्थिक संकट और फ्रांस, जनवादी मोर्चा, ब्लूम के कार्य, विदेशी नीति, सुरक्षा की मांग, रक्षात्मक सन्धियाँ, इंगलैंड से मतभेद, लोकार्नो पैक्ट, केलाग ब्रिआँ पैक्ट, निःशस्त्रीकरण, अन्य देशों से सम्बन्ध।

प्रथम महायुद्ध तथा फ्रांस—प्रथम महायुद्ध में विजय प्राप्त करने पर भी फ्राँस को भारी हानि उठानी पड़ी। उसका दसवाँ भाग नष्ट हो गया। उसके उत्तरी-पूर्वी भाग को जर्मनी ने जानबूझकर बुरी तरह नष्ट कर दिया था। वहां की उपजाऊ भूमि तथा कल-कारखाने बेकार हो गये थे। यहाँ की जनसंख्या ४७ लाख ५० हजार से घटकर केवल २० लाख रह गई थी। वहाँ के तिहाई मकान, कारखाने तथा सरकारी इमारतें नष्ट हो गई थीं। कोयले तथा लोहे की खानें नष्ट हो गई थीं। उस क्षेत्र में दूर-दूर तक कोई पशु नहीं दिखाई देता था। कारखाने नष्ट होने से २५ लाख व्यक्ति बेकार तथा गृह-विहीन हो गये थे। बेकारों को रोजगार देने तथा नष्ट भाग के पुनर्निर्माण में उसको पर्याप्त धन व्यय करना था। उसका बहुत सा धन पेंशनों तथा राष्ट्रीय ऋण के ब्याज पर व्यय हो रहा था। फ्राँस ने रूस को पर्याप्त ऋण दिया था; परन्तु रूस में बोल्शेविक क्रान्ति हो जाने के कारण वहाँ की जार-सरकार का अन्त हो गया और रूस की नवीन सरकार ने गत ऋणों को चुकाना अस्वीकार कर दिया। रूमानिया भी फ्राँस का ऋण चुकाने में असमर्थ था।

गृह-नीति

पुनर्निर्माण की समस्या—युद्ध-काल में फ्राँस का दसवां भाग नष्ट हो गया था। उसके उत्तरी-पूर्वी भाग पर वर्षों तक जर्मनी का अधिकार रहा था। जर्मनी ने जानबूझकर उक्त प्रदेश को बुरी तरह नष्ट कर दिया था। अतः अब फ्राँस के सम्मुख सबसे बड़ी यह समस्या थी कि किस प्रकार नष्ट हुए भाग का पुनर्निर्माण किया जाय? इस कार्य के लिये फ्राँस ने भारी मात्रा में ऋण लिया। इसके द्वारा बहुत तेजी के साथ पुनर्निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया गया। प्रथम दो वर्षों में ही अनेक नए नगरों तथा कारखानों का निर्माण किया गया। ऐसा बताया जाता है कि इस

समय फ्राँस ५ हजार ७ सौ डालर प्रति मिनट के हिसाब से अपने पुर्ननिर्माण तथा पेंशनों पर व्यय कर रहा था। इस कार्य के करने के लिए बहुत अधिक संख्या में मजदूरों की आवश्यकता हुई। अतः फ्राँस में बेकारी की समस्या उत्पन्न नहीं हुई। पर्याप्त संख्या में नवीन कारखाने स्थापित होने से उत्पादन बहुत अधिक बढ़ गया। इससे देश पुनः समृद्ध हो गया।

क्लीमेन्शू का पतन—फ्रांस की राजनीतिक अवस्था बड़ी विचित्र है। वहाँ राजनीतिक दलों की संख्या बहुत अधिक है। इससे वहां किसी भी राजनीतिक दल को बहुमत प्राप्त नहीं होता था। फलतः कई दलों को मिलाकर मन्त्रि-मण्डल बनाया जाता था। इस प्रकार के मन्त्रि-मण्डल अस्थायी होते थे। वे किसी बात पर तनिक सा मतभेद होने पर टूट जाते थे। फ्राँस के मन्त्रि-मण्डलों की अस्थिरता के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि वहाँ १९२० से १९३० तक २० सरकारों का निर्माण तथा विघटन हुआ।[1] १९१४ से १९१८ तक वहां नेशनल ब्लॉक तथा अन्य दलों का मिला-जुला मन्त्रि-मण्डल कार्य कर रहा था। इस दल का नेता क्लीमेन्शो प्रधान मन्त्री था। वह बहुत कूटनीतिज्ञ तथा दृढ़ निश्चय वाला व्यक्ति था। उसने युद्ध-काल में दृढ़ता से कार्य किया। इसीसे उसको फ्राँस का शेर कहा जाता था। पेरिस के शान्ति-सम्मेलन का वही अध्यक्ष बनाया गया था। पेरिस के समझौते पर उसका अमिट प्रभाव पड़ा था। वह पूरी तरह जर्मनी का मान-मर्दन कर उससे प्रतिशोध लेना चाहता था। उसने शक्ति तथा दृढ़ता से देश का शासन-संचालन किया था। अतः बहुत से मनुष्य उसके विरोधी हो गए। अतः १९२० में जब प्वायन्केअर के पश्चात् उसने राष्ट्रपति का चुनाव लड़ा तो उसमें उसको सफलता न मिली। इसके पश्चात् उसने राजनीति से अवकाश ग्रहण कर लिया। तत्पश्चात् मिलराँ (Millerand) फ्राँस का प्रधान मन्त्री बना।

रूर पर आक्रमण—जर्मनी ने आर्थिक अवस्था ठीक न होने के कारण नवम्बर १९२२ में यह माँग की कि उसको दो वर्ष तक किश्तों की अदायगी में छूट दे दी जाय। इंगलैंड ने जर्मनी की इस मांग का समर्थन किया, क्योंकि वह जर्मनी के साथ अपना व्यापार बढ़ाना चाहता था। इसके लिये यह आवश्यक था कि जर्मनी पुनः अपनी पूर्व समृद्धि को प्राप्त कर ले। फ्राँस ने इसका घोर विरोध किया। उसके विरोध के निम्नलिखित कारण थे—

(१) फ्रांस ने अपने पुर्ननिर्माण पर ऋण लेकर बहुत अधिन धन व्यय किया था। उसको यह आशा थी कि जर्मनी क्षतिपूर्ति के रूप में उसको पर्याप्त धन देगा; परन्तु जर्मनी की किश्त स्थगित करने की माँग पर फ्राँस को बहुत निराशा हुई।

(२) फ्राँस को जर्मनी से बहुत भय था। उसने गत ५० वर्षों में दो बार फ्रांस को रौंद डाला था। अतः फ्राँस यह चाहता था कि जर्मनी को इतना निर्बल कर दिया जाय कि वह दीर्घकाल तक उठने का साहस न कर सके।

(३) युद्ध-काल में जर्मनी ने फ्रांस के उत्तरी-पूर्वी भाग को भयंकर हानि पहुंचाई थी। इस स्थान की अधिकांश खानें, कारखाने तथा मकान नष्ट कर दिए

---

१. फ्रांस में १८७५ से १९२० के मध्य ५९ मन्त्रि-मण्डलों का निर्माण हुआ। १९२० से १९३९ के मध्य वहां ४१ मन्त्रि-मण्डलों का निर्माण हुआ।

गए थे । इस क्षेत्र के अधिकाँश मनुष्य तथा पशु भी नष्ट हो गये थे । इससे फ्रांस के हृदय में जर्मनी के प्रति बहुत अधिक प्रतिशोध की भावना थी ।

(४) फ्रांस बहुत पहले से ही अपने साथियों से नाराज था । उन्होंने जर्मनी पर सम्पूर्ण क्षतिपूर्ति के स्थान पर केवल आंशिक क्षतिपूर्ति ही लादी थी और अब वे उसकी अदायगी के स्थगित करने का समर्थन कर रहे थे ।

फ्रांस का प्रधान मन्त्री प्वायन्केअर यह चाहता था कि जर्मनी वार्साय सन्धि का पालन करे और निर्धारित समय पर क्षतिपूर्ति की किश्त अदा करे । अतः उसने इंगलैंड के विरोध की चिन्ता न करते हुए बेल्जियम तथा इटली का सहयोग प्राप्त कर जर्मनी के सुप्रसिद्ध औद्योगिक क्षेत्र रूर पर आक्रमण कर अधिकार कर लिया । इससे जर्मनी में तीव्र असंतोष फैला । अतः इस प्रदेश के जर्मन निवासियों ने फ्राँस के विरुद्ध असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया । जर्मन कर्मचारियों ने कारखानों, खानों, रेलों तथा कार्यालयों आदि में हड़ताल कर दी । जर्मनी ने कागज के नोट छाप-छापकर हड़तालियों में बांटने प्रारम्भ कर दिये । जर्मन सरकार ने हर्जाने की किश्त अदा करनी बन्द कर दी । फ्राँस की सरकार ने जर्मनों के साथ बहुत कठोर व्यवहार किया । फ्राँस की सरकार ने खानों, कारखानों तथा रेलों आदि में कार्य करने के लिए फ्राँसीसी मजदूर भेजे; परन्तु वे भली प्रकार कार्य न कर सके । फ्रांस की सरकार ने वहाँ राइन का स्वतन्त्र राज्य स्थापित कराने के लिए आन्दोलन चलवाया । इंगलैंड के विरोध के कारण फ्रांस को अपने इस उद्देश्य में सफलता न मिली । इन कार्यों से फ्राँस की बहुत बदनामी हुई तथा जर्मनी के साथ अधिकाँश देशों की सहानुभूति हो गई । इस कार्य में फ्रांस का पर्याप्त धन भी व्यय हो गया था । इससे फ्राँस के सिक्के फ्रांक का मूल्य गिरना प्रारम्भ हो गया । प्वायनकेअर की बहुत बदनामी हुई और १९२४ के आम चुनाव में उसका पतन हो गया ।

स्थिति में परिवर्तन—१९२४ में प्वायन्केअर के पतन के पश्चात् हैरियो (Herriot) फ्रांस का प्रधान मन्त्री बना। वह एक उदार व्यक्ति था। १९२५ में ब्रिआँ फ्राँस का विदेश-मन्त्री बना । वह कई मन्त्रि-मण्डलों में सात वर्ष (१९२५–३२) तक रहा । उसने पुरानी नीति में परिवर्तन कर दिया । वह इङ्गलैंड के साथ घनिष्ठता स्थापित करना चाहता था । उसका अर्थ था कि जर्मनी के साथ उदारता का बर्ताव किया जाय । वास्तव में ब्रिआँ का यह विश्वास था कि जर्मनी से मित्रता स्थापित करके ही फ्रांस की सुरक्षा सम्भव है । उधर जर्मनी का नया विदेश-मन्त्री स्ट्रेसमन भी उदार था । उसका यह विचार था कि जर्मनी यथाशक्ति वार्साय सन्धि की शर्तों का पालन कर मित्रराष्ट्रों की सहानुभूति प्राप्त कर सकता है और इसके पश्चात् वह सन्धि की शर्तों में संशोधन कर सकता है । अतः उसने रूर के प्रदेश का असहयोग आन्दोलन वापस ले लिया । उसके कार्य-काल में क्षतिपूर्ति के प्रश्न का फैसला किया गया तथा फ्राँस ने रूर प्रदेश को खाली कर दिया ।

आर्थिक संकट और फ्रांस—महायुद्ध में फ्रांस का बहुत खर्च हुआ था। इसके पश्चात् उसको अपने पुनर्निर्माण पर बहुत धन व्यय करना पड़ा था। प्वायन्केअर के समय देश की आर्थिक अवस्था बहुत खराब हो गई थी। हैरियो ने देश की आर्थिक स्थिति सुधारने का प्रयास किया। परन्तु उसको कोई सफलता न मिली। फ्रांस के सिक्के फ्रांक का मूल्य बराबर गिरता चला गया। लोगों का सरकार में विश्वास नहीं रहा और उन्होंने अपना धन विदेशों में भेजना प्रारम्भ कर दिया। १६२८ में प्वायन्केअर ने सम्मिलित मन्त्रि-मण्डल का निर्माण किया। उसके मन्त्रि-मण्डल में गत छः प्रधान मन्त्री थे। प्वायन्केअर ने कुछ नए कर लगाए तथा प्रशासन के व्यय में कटौती कर सरकारी बजट को संतुलित किया। उसके इन कार्यों से फ्रांक का मूल्य स्थिर हो गया। १६२६ में समस्त विश्व में आर्थिक संकट आ गया और इसी समय प्वायन्केअर ने स्वास्थ्य खराब होने के कारण त्याग-पत्र दे दिया। आर्थिक संकट के समय इंगलैंड ने अपने सिक्के के मूल्य का स्वर्ण से सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया। इसका समस्त विश्व के सिक्कों पर प्रभाव पड़ा। फ्राँक का मूल्य फिर गिरना प्रारम्भ हो गया। फ्रांस की सरकार स्वर्णमान (Gold Standard) को बनाए रखना चाहती थी; परन्तु उसको इसमें सफलता न मिली। सरकार का बजट घाटे में चलने लगा। मन्त्रि-मण्डल शीघ्रतापूर्वक बनने-बिगड़ने लगे। इससे देश में बहुत असंतोष फैल गया। इसी मध्य यह पता चला कि स्टेविस्की नामक एक अर्थ-विशेषज्ञ ने जाली बाण्ड बेचकर पर्याप्त धन का गबन किया था। इस मामले में बहुत से मन्त्री तथा सरकारी पदाधिकारियों का भी हाथ पाया गया। इसके विरोध में १६३४ में पेरिस में विद्रोह हो गया। लोगों का जनतन्त्र में विश्वास नहीं रहा। देश में फासिस्ट तानाशाही की स्थापना की सम्भावना बढ़ गई। मजदूरों ने जनतन्त्रात्मक शासन का समर्थन किया। सरकार ने इस भयंकर परिस्थिति का सामना करने के लिए कुछ सुधार करने के प्रस्ताव रक्खे।

जनवादी मोर्चा (Popular Front)—कुछ लोगों में जनतन्त्र के प्रति अविश्वास हो गया था। देश में फासिस्टवाद की लहर आ गई थी। सरकार इस परिस्थिति का बड़े साहस के साथ सामना कर रही थी। फिर भी यह स्पष्ट था कि देश की जनतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली खतरे में थी। ऐसी ही परिस्थितियों में इटली तथा जर्मनी में तानाशाही स्थापित हो चुकी थी। अतः फ्रांसीसी राजनीतिज्ञ यह जानते थे कि यदि इस अवसर पर मिलकर कदम नहीं उठाया गया तो फ्रांस में भी इटली तथा जर्मनी की भाँति तानाशाही की स्थापना हो सकती है। अतः रैडीकल सोशलिस्ट तथा समाजवादी दल ने अपने पारस्परिक मतभेदों का अन्त कर १६३५ में जनवादी मोर्चे की स्थापना की। इसका उद्देश्य फ्रांस में फासिस्टवादी शासन की स्थापना को रोकना था। १६३६ के निर्वाचन में इस दल को ६० प्रतिशत स्थान मिले। अतः सोशलिस्ट पार्टी का नेता ब्लूम (Blum) प्रधान-मंत्री बना।

ब्लूम के कार्य—प्रधान मन्त्री होने पर ब्लूम ने निम्नलिखित महत्वपूर्ण कार्य किए—

(१) उसने फासिस्ट लोगों के दमन का प्रयास किया; परन्तु उसको इस कार्य में पूर्ण सफलता न मिली। फासिस्ट अपना नाम बदल कर अन्य ढंग से अपना प्रचार करने लगे।

(२) ब्लूम के समय फ्रांस के लगभग १० लाख मजदूरों ने हड़ताल कर दी। वे कारखानों में जाकर बैठ जाते थे और कार्य नहीं करते थे। ब्लूम के प्रयास से मिल-मालिकों ने मजदूरों के वेतन में वृद्धि कर दी। उनको एक वर्ष में दो सप्ताह के लिए सवेतन छुट्टी मिलने लगी। सप्ताह में कार्य करने का समय ४४ घण्टे निर्धारित कर दिया गया। कुछ कारखानों में मजदूरों को सामूहिक सौदा करने का भी अधिकार मिल गया।

(३) सन् १९३६ में फ्राँस ने भी स्वर्णमान (Gold Standard) का परित्याग कर अपने सिक्के फ्रांक का मूल्य गिरा दिया।

(४) फ्रांस के बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। इससे पूर्व बैंकों पर पूँजीपतियों का अधिकार था।

ब्लूम देश की आर्थिक दशा सुधारने के लिए अपने अधिकारों में कुछ वृद्धि चाहता था; परन्तु सीनेट ने उसकी इस बात को स्वीकार नहीं किया। फलतः १३ महीने कार्य करने के पश्चात् १९३७ में उसने त्याग-पत्र दे दिया। इसके पश्चात् कई अल्पकालीन मन्त्रि-मण्डलों का निर्माण हुआ। १९३८ में रैडीकल सोशलिस्ट दल का नेता दलादिए प्रधान-मन्त्री बना। इसके बाद जनवादी मोर्चे का अन्त हो गया। इस समय हिटलर के उत्तेजनात्मक कार्यों से यूरोप की राजनीतिक स्थिति बहुत गम्भीर हो गई थी। भावी महायुद्ध के लक्षण स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। अतः सीनेट ने दलादिए के अधिकारों में पर्याप्त वृद्धि कर दी।

विदेशी नीति

सुरक्षा की मांग—प्रशा के उदय के पूर्व मध्य यूरोप में फ्रांस बहुत शक्तिशाली था। वह यूरोप की राजनीति का केन्द्र-बिन्दु था। परन्तु प्रशा के उदय के पश्चात् उसका खोखलापन स्पष्ट हो गया। १८७० में प्रशा ने सेडन के युद्ध में फ्राँस को भारी पराजय दी तथा उसने अल्सेस ओर लोरेन के प्रदेश छीन लिए। इन प्रदेशों का राजनीतिक दृष्टि से फ्राँस के लिए बहुत महत्व था। ये प्रदेश लुई चौदहवें की विजय-श्री के प्रतीक थे। अतः फ्राँस बराबर इन प्रदेशों को वापस लेने का प्रयास करता रहा; परन्तु वार्साय सन्धि के समय ही उसको अपने इस कार्य में सफलता मिली।

प्रथम महायुद्ध में जर्मनी को पराजित करके भी फ्राँस को अपनी सुरक्षा का आश्वासन नहीं मिला। फ्रांस यह जानता था कि जर्मनी की शक्ति उससे कहीं अधिक है। एकमात्र अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के आधार पर ही फ्रांस ने जर्मनी को पराजित किया था। फ्रांस को यह भली प्रकार स्मरण था कि गत आधी शताब्दी में ही जर्मनी ने दो बार फ्रांस को पदाक्रान्त कर डाला था। उसे यह भी पता था कि वह वार्साय

की सन्धि से सहमत नहीं है। उसको तो उसने विवश होकर स्वीकार कर लिया। अतः यह निश्चित है कि अवसर पाकर जर्मनी फ्रांस के विरुद्ध प्रतिशोध का युद्ध करेगा। इस प्रकार महायुद्ध के भयंकर विनाश के पश्चात् भी फ्रांस अपनी अरक्षा का अनुभव कर रहा था। अतः उसकी नीति का मूलाधार सुरक्षा की चिन्ता थी। इस सम्बन्ध में कार (Carr) महोदय का यह कथन बहुत सारगर्भित है—'१९१९ के पश्चात् यूरोप की समस्याओं में सबसे महत्वपूर्ण समस्या फ्रांस की सुरक्षा की मांग थी।'

पेरिस के शान्ति-सम्मेलन में क्लीमेन्शो ने फ्रांस की सुरक्षा की व्यवस्था के लिए बहुत प्रयास किया था। वह यह चाहता था कि जर्मनी को कुचलकर इतना निर्बल कर दिया जाय कि वह फिर कभी फ्राँस के विरुद्ध उठने का साहस न कर सके। इसी से उसने यह मांग की थी कि जर्मनी के समस्त उपनिवेश छीन कर फ्रांस को दे दिए जांय। परन्तु इंगलैंड तथा अमेरिका ने उसकी इस मांग को स्वीकार नहीं किया और जर्मनी के उपनिवेश मैण्डेट प्रणाली (Mandate System) के आधार पर मित्रराष्ट्रों में विभाजित कर दिए गए। क्लीमेन्शो ने इस बात पर बहुत जोर दिया था कि फ्राँस तथा जर्मनी के मध्य राइन के तटस्थ राज्य की स्थापना कर दी जाय। परन्तु इसके लिए भी इंगलैंड तथा अमेरिका सहमत नहीं हुए। उन्होंने राइन का प्रदेश १५ वर्ष के लिए मित्रराष्ट्रों को दे दिया। यह व्यवस्था की गई कि १५ वर्ष बाद भी जर्मनी को वहाँ सेना रखने तथा दुर्गीकरण करने का अधिकार न होगा। फ्रांस को इस व्यवस्था से भी संतोष नहीं हुआ, क्योंकि १५ वर्ष पश्चात् जर्मनी इस क्षेत्र में सेना रख सकता था तथा इसका दुर्गीकरण कर सकता था।

राष्ट्र-संघ की योजना प्रस्तुत होने पर फ्रांस ने यह मांग की कि राष्ट्र-संघ के पास एक अन्तर्राष्ट्रीय सेना हो, जिसकी सहायता से वह सन्धियों का पालन करा सके तथा आक्रमणकारी राष्ट्र को दण्ड दे सके। इंगलैंड तथा अमेरिका ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया, क्योंकि उनकी सरकारें अपनी सेनाओं को राष्ट्र-संघ के अधीन करने को तैयार नहीं थीं। अतः यह व्यवस्था की गई कि राष्ट्र-संघ आवश्यकतानुसार अपने सदस्य राज्यों से सेना मंगा सकता है। परन्तु इससे भी फ्राँस को संतोष नहीं हुआ, क्योंकि राष्ट्र-संघ अपने सदस्य राज्यों से सेना भेजने के लिए प्रार्थना ही कर सकता था। सेना भेजने या न भेजने का अधिकार उक्त देशों की सरकारों को ही था। दूसरे सैनिक कार्यवाही कौन्सिल के सदस्यों की सर्व-सम्मति से ही की जा सकती थी।

फ्रांस की संतुष्टि के लिए अमेरिका तथा इंगलैंड ने मिल कर जून १९१९ में उसको यह आश्वासन दिया कि यदि अकारण ही जर्मनी ने फ्रांस पर आक्रमण किया तो वे दोनों फ्रांस की सहायता करेंगे। परन्तु नवम्बर १९१९ में अमेरिका की सीनेट ने वार्साय सन्धि को अस्वीकृत कर दिया और अमेरिका यूरोप की राजनीति से तटस्थ हो गया। फलतः उसका फ्रांस को दिया हुआ सहायता का आश्वासन समाप्त हो गया। इससे साथ-साथ इंगलैंड का आश्वासन भी समाप्त हो गया।

ऐसी जटिल परिस्थिति में फ्रांस के लिए सुरक्षा की कुछ आशा राष्ट्र संघ की १०वीं धारा से ही हो सकती थी। इसमें कहा गया था—'राष्ट्र-सघ के सदस्य संघ के सभी सदस्य राज्यों की क्षेत्रिक अखण्डता तथा वर्तमान राजनीतिक स्वतन्त्रता का सम्मान करते हैं। वे उनकी वाह्य आक्रमणकारी से रक्षा करने का भी वचन देते हैं।' राष्ट्र-संघ की १६वीं धारा के अनुसार किसी भी देश का आक्रमण राष्ट्र-संघ के सभी सदस्य राज्यों के विरोध में समझा जायगा और उसके विरोध में राष्ट्र-संघ के सदस्यों को आक्रमणकारी देश के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार होगा। परन्तु फ्रांस राष्ट्र-संघ की इन धाराओं पर विश्वास नहीं कर सकता था। अमेरिका के राष्ट्र-संघ के बाहर रहने से आर्थिक प्रतिबन्ध सफल नहीं हो सकते थे। इस प्रकार फ्रांस की सुरक्षा की माँग का समाधान नहीं हो रहा था।

फ्रांस की रक्षात्मक सन्धियों का जाल—फ्रांस के सम्मुख अपनी सुरक्षा की समस्या बहुत जटिल थी। अपने अन्य उपायों में असफल होकर उसने जर्मनी की सीमा पर स्थित छोटे-छोटे राज्यों से रक्षात्मक सन्धियाँ करना आरम्भ कर दिया। सितम्बर १९२० में उसने बेलजियम तथा फरवरी १९२१ में पोलैण्ड से सुरक्षात्मक सन्धियाँ कर लीं। उसने जेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया तथा रूमानिया से सुरक्षात्मक सन्धि कर लघु गुट (Little Entente) का निर्माण किया। लघु गुट के तीनों राज्यों का निर्माण आस्ट्रिया-हंगरी के विघटन से प्राप्त प्रदेशों से हुआ था। ये चाहते थे कि ये प्रदेश उनसे कभी भी वापस न लिए जाये। अतः अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे वार्साय सन्धि की प्रादेशिक व्यवस्था को बनाये रखने के समर्थक थे। दूसरे शब्दों में ये वार्साय सन्धि में किसी भी प्रकार के संशोधन के विरोधी थे। फ्रांस भी वार्साय सन्धि को बनाये रखना चाहता था और उसमें किसी भी प्रकार के संशोधन का विरोधी था। इस प्रकार लघु गुट के निर्माण से फ्रांस की शक्ति में बहुत वृद्धि हो गई। यद्यपि लघु गुट के तीनों राज्य छोटे-छोटे थे, परन्तु सम्मिलित रूप से इनकी जनसंख्या ५ करोड़ थी। जर्मनी इस गुट का विरोध करने का साहस न कर सकता था। हिटलर के उत्कर्ष तक (सन् १९३३) इस गुट की यूरोप में प्रधानता रही। इस गुट के निर्माण से फ्राँस को सुरक्षा तो मिल गई, परन्तु इससे उसके लिए कुछ कठिनाइयाँ भी उत्पन्न हो गईं। फ्रांस को समय-समय पर इन राज्यों को आर्थिक सहायता देनी पड़ती थी। इससे फ्रांस के लिए यह व्यवस्था बहुत खर्चीली थी। ये राज्य बहुत छोटे-छोटे थे तथा फ्रांस से दूर थे। लघु गुट के निर्माण से इनकी सुरक्षा का भार भी फ्रांस पर आ गया था। इससे फ्रांस को यूरोप की अन्य बहुत सी समस्याओं में हस्तक्षेप करना पड़ा।

इङ्गलैण्ड से मतभेद—जर्मनी के प्रति किस प्रकार का बर्ताव किया जाय? इस बात पर फ्रांस तथा इंगलैंड के सम्बन्धों में बहुत मतभेद उत्पन्न हो गया। इंगलैंड जर्मनी के साथ अपना व्यापार बढ़ाना चाहता था। अतः उसका यह उद्देश्य था कि वह पुनः अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कर यूरोप के अन्य राष्ट्रों की कोटि में

आ जाय। परन्तु फ्राँस इसका विरोधी था। वह चाहता था कि जर्मनी दीर्घ काल तक दबा रहे।

१९२१ में फ्राँस ने पुनः इंगलैंड से सुरक्षा का आश्वासन माँगा। इंगलैंड इसके लिए तैयार भी हो गया। परन्तु फ्रांस के उग्रवादी प्रधान मन्त्री प्वायन्केअर की हठधर्मी के कारण दोनों देशों में समझौता न हो सका।

जनवरी १९२३ में फ्राँस ने इंगलैंड के विरोध की कोई चिन्ता न करते हुए जर्मनी के रूर प्रदेश पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार जर्मनी के प्रति बर्ताव के प्रश्न पर फ्रांस तथा इंगलैंड में बहुत मतभेद हो गया।

लोकार्नो का समझौता—१९२५ में इंगलैंड, फ्राँस, बेलजियम, जर्मनी, इटली, पोलैण्ड तथा जेकोस्लावाकिया के प्रतिनिधियों ने स्विट्जरलैंड के लोकार्नो नामक स्थान पर राइन प्रदेश की सुरक्षा के सम्बन्ध में एक समझौता कर लिया। इस समझौते के अवसर पर महायुद्ध के पश्चात् प्रथम बार विजेता राष्ट्रों ने जर्मनी के साथ उदारता का बर्ताव किया। इसी से यह समझौता फ्राँस तथा जर्मनी के मध्य एक बार नये युग का प्रारम्भ समझा जाता है। इससे यह समस्त यूरोप के लिए शान्ति का प्रदाता था। यह समझौता जर्मनी की इच्छा से किया गया था। अतः उसको इससे संतोष था। इसके अनुसार जर्मनी को राष्ट्र-संघ में स्थान तथा कौंसिल की स्थायी सदस्यता प्रदान की गई। इससे जर्मनी की प्रतिष्ठा में बहुत वृद्धि हो गई। फ्रांस तथा जर्मनी के मध्य दीर्घकालीन शत्रुता का अन्त हो गया। फ्रांस के विदेश-मन्त्री ब्रिआँ के शब्दों में इसके द्वारा फ्राँस तथा जर्मनी दोनों के लिए शांति स्थापित हो गई। ब्रिटेन के विदेश-मन्त्री चेम्बरलेन ने इस समझौते को युद्ध तथा शान्ति के वर्षों की वास्तविक भेदक रेखा कहा है। इसके द्वारा फ्राँस की सुरक्षा की माँग तथा जर्मनी की वार्साय सन्धि में संशोधन की माँग में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया गया था। वास्तव से लोकार्नो पैक्ट फ्राँस तथा जर्मनी दोनों के मध्य एक न्यायपूर्ण समझौता था।

केलाग ब्रिआं पैक्ट—फ्राँस के विदेश-मन्त्री ब्रिआं ने अमेरिका के नागरिकों के नाम यह संदेश प्रसारित किया कि हम सदैव के लिए युद्ध का बहिष्कार करना चाहते हैं। अमेरिका ने भी इसका समर्थन किया। अमेरिका ने पेरिस-स्थित अपने दूत को इस सम्बन्ध में एक ड्राफ्ट (Draft) तैयार करने का आदेश दिया। इस ड्राफ्ट में दो बातों पर विशेष जोर दिया गया—(१) युद्ध का परित्याग कर दिया जाय तथा (२) पारस्परिक विवादों को शान्तिमय उपायों से तय किया जाय। अमेरिका के विदेश-मन्त्री केलाग ने सुझाव दिया कि समझौता फ्रांस तथा अमेरिका के ही मध्य नहीं, अपितु राष्ट्र-संघ के सभी सदस्यों के साथ किया जाय। २९ अगस्त १९२८ को इस सम्बन्ध में पेरिस में एक सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में १५ प्रमुख राष्ट्रों ने कुछ शर्तों के साथ इसको स्वीकार कर लिया। १९३० तक लगभग ६५ देशों ने इसको स्वीकार कर लिया। इसको स्वीकार करने वाले देशों की यह संख्या राष्ट्र-संघ की सदस्य-संख्या से भी अधिक थी। राष्ट्र-संघ में सम्मिलित न होने वाले दो बड़े देश—अमेरिका तथा रूस ने इसमें प्रमुख भाग लिया था। शान्ति-

स्थापना का यह बहुत बड़ा प्रयास था; परन्तु इससे अधिक हित न हो सका। यदि कोई देश इसको भंग करता तो उसके विरुद्ध कार्यवाही करने की कोई व्यवस्था न की गई थी। आत्म-रक्षा का बहाना कर आक्रमणात्मक युद्ध किया जा सकता था। अमेरिका तथा इंगलैंड आदि कुछ प्रमुख देशों ने इस पर कुछ शर्तों के साथ हस्ताक्षर किये थे। इससे इसका प्रभाव बहुत कम हो गया था। फलतः १९२९ में रूस, १९३१ में जापान तथा १९३५-३६ में इटली ने इसको भंग कर दिया।

निःशस्त्रीकरण—राष्ट्र-संघ की ओर से निःशस्त्रीकरण के प्रयास भी प्रारम्भ किये गये। फरवरी १९३२ में जेनीवा में निःशस्त्रीकरण सम्मेलन का आयोजन किया गया। इसमें ५७ राज्यों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुये। परन्तु इस सम्मेलन में फ्राँस तथा जर्मनी का विरोध बहुत बढ़ गया। जर्मनी ने यह माँग की कि वार्साय की सन्धि के अनुसार उसका निःशस्त्रीकरण कर दिया गया है; परन्तु अन्य राष्ट्रों ने इस ओर कोई कदम नहीं उठाया है। अब या तो अन्य राष्ट्र भी अपने अस्त्र-शस्त्र इस स्तर तक घटा दें या जर्मनी को भी उचित मात्रा में अस्त्र-शस्त्र धारण करने का अधिकार प्रदान करें। परन्तु फ्राँस ने जर्मनी की इस माँग का विरोध किया। लम्बे-चौड़े वाद-विवाद के पश्चात् भी इस प्रश्न पर कोई समझौता न हो सका। फलतः १९ अक्टूबर १९३३ को हिटलर ने निःशस्त्रीकरण सम्मेलन से पृथक् होने पर राष्ट्र-संघ का परित्याग करने की घोषणा कर दी। मार्च १९३५ में हिटलर ने वार्साय सन्धि को भंग कर जर्मनी में अनिवार्य सैनिक सेवा प्रारम्भ कर दी। मार्च १९३६ में उसने वार्साय सन्धि तथा लोकार्नो पैक्ट को भंग कर राइन के विसैन्यीकृत प्रदेश में सेनायें भेज दीं।

रूस से मित्रता—हिटलर से फ्राँस तथा रूस दोनों को भय था। वह वार्साय सन्धि तथा साम्यवाद के विरोध में कटु भाषण दिया करता था। फलतः इन दोनों में मित्रता की बहुत कुछ सम्भावना थी। हिटलर रूस का कट्टर शत्रु था। वह रूस में अपना साम्राज्य-विस्तार करना चाहता था।[1] इधर फ्रांस भी रूस से तेल आदि प्राप्त करना चाहता था। फलतः १९३२ में फ्रांस तथा रूस ने तटस्थता की सन्धि कर ली। १९३४ में फ्रांस ने रूस को राष्ट्र-संघ में स्थान दिलाने के लिए बहुत प्रयास किया। १९३५ में दोनों ने अनाक्रमण समझौता कर लिया। इसके अनुसार युद्ध अवसर पर दोनों ने एक दूसरे को सहायता देने की प्रतिज्ञा की।

इङ्गलैंड से सम्बन्ध—फ्रांस ने इङ्गलैंड से भी अच्छे सम्बन्ध स्थापित कर लिए। इङ्गलैंड को भी जर्मनी के उत्थान से भय हो गया था। हिटलर के द्वारा वायु-सेना का विस्तार तथा राइन प्रदेश में जर्मन सेनाओं का प्रवेश इङ्गलैंड के लिए भी

१. कालान्तर में (१९३६) उसने न्यूरेम्बर्ग में भाषण देते हुए कहा था—'यदि यूराल पर्वत जिसमें अपार मात्रा में कच्चा माल है, साइबेरिया जिसमें बहुमूल्य जंगल हैं तथा यूक्रेन जो अनन्त अन्न का भण्डार है—यदि ये सब जर्मनी में होते तो जर्मनी का राष्ट्रीय सोशिलिस्ट नेता अपार सम्पत्ति का स्वामी होता।' —लिप्सन

भी खतरनाक था। इसी से इङ्गलैंड के प्रधान मन्त्री बाल्डविन ने जर्मनी को सम्बोधित करते हुए घोषित किया था—'इङ्गलैंड की सीमा डोवर की चाक की चट्टानें नहीं, अपितु राइन न दी हैं।'

इटली से सम्बन्ध—इटली तथा फ्रांस के सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। दोनों में शत्रुता के निम्नलिखित कारण थे—

(१) इटली सोमालीलैण्ड पर अधिकार करना चाहता था।

(२) इटली यह मांग कर रहा था कि ट्यूनिशिया में रहने वाले इटली-निवासियों को इटली के साथ राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित करने का अधिकार मिलना चाहिए।

(३) इटली का फासिस्ट राज्य १७८९ की फ्रांसीसी राज-क्रान्ति के सिद्धान्तों का विरोधी था।

इस पारस्परिक विरोध के कारण इटली जर्मनी की ओर झुकने लगा। अतः फ्रांस ने इटली को अपना मित्र बनाने के लिए प्रयत्न प्रारम्भ किए और उसने १९३५ में इटली के साथ एक सन्धि कर ली। इस सन्धि के अनुसार निम्नलिखित निर्णय किए गए—

(१) अफ्रीका में फ्रांस तथा इटली दोनों के हित थे। अतः इन दोनों ने वहाँ अपनी सीमाएं निश्चित कर लीं।

(२) ट्यूनिशिया में रहने वाले इटली-निवासियों को भी कुछ सुविधाएं फ्रांस द्वारा दी गईं।

इटली के द्वारा एबीसीनिया पर आक्रमण करने पर फ्राँस ने पूरी तरह राष्ट्र-संघ का साथ नहीं दिया। इस अवसर पर उसने इङ्गलैंड तथा इटली दोनों को ही प्रसन्न करने का प्रयास किया। परन्तु इस नीति द्वारा वह इनमें से किसी को भी प्रसन्न न कर सका। इससे जर्मनी के साहस में वृद्धि हुई। राष्ट्र-संघ निर्बल हो गया। फ्रांस की शक्ति तथा सम्मान को भारी ठेस पहुंची। उसकी सामूहिक सुरक्षा की व्यवस्था नष्ट हो गई। उसके साथी छोटे-छोटे राष्ट्रों ने तटस्थता की नीति ग्रहण कर ली। फ्रांस की इस शोचनीय अवस्था का लाभ उठाकर हिटलर ने वार्साय सन्धि को भंग कर मार्च १९३६ में राइन के विसैन्यीकृत प्रदेश में अपनी सेनाएं भेज दीं।

हिटलर के इस कार्य से फ्रांस की सुरक्षा के लिए भारी खतरा उत्पन्न हो गया। अतः उसके लिए हिटलर की इस प्रगति को रोकना आवश्यक था। इस समय हिटलर की स्थिति दृढ़ नहीं थी। उसकी सैनिक तैयारियों पूर्ण नहीं थीं। अतः इस अवसर पर सरलतापूर्वक हिटलर को रोका जा सकता था। परन्तु इङ्गलैंड फ्रांस का साथ देने के लिए तैयार नहीं हुआ। फलतः फ्रांस ने राष्ट्र-संघ में हिटलर के प्रति शिकायत की।। राष्ट्र-संघ ने हिटलर के विरुद्ध निन्दा का प्रस्ताव पास किया। इससे हिटलर को कोई हानि नहीं हुई। इस प्रकार पारस्परिक मतभेदों के कारण इंगलैंड तथा फ्रांस ने हिटलर की प्रगति को रोकने का यह स्वर्ण अवसर खो दिया।

इसके बाद फ्रांस की स्वतन्त्र विदेश-नीति का अन्त हो गया तथा उसकी विदेश-नीति इंगलैंड के साथ मिल गई। इन दोनों ने मिलकर हिटलर के प्रति तुष्टीकरण की नीति का पालन किया। इससे हिटलर का हौसला बढ़ता चला गया। उसने इटली के साथ मिलकर स्पेन के गृह-युद्ध में जनरल फ्रैंको को सहायता दी। फ्रांस ने इस अवसर पर स्पेन की गणतन्त्रात्मक सरकार को सहायता देने का विचार प्रकट किया; परन्तु इंगलैंड ने इसका विरोध किया। फलतः स्पेन के गृह-युद्ध में हिटलर तथा मुसोलिनी की सहायता से जनरल फ्रैंकों ने सफलता प्राप्त की। १९२५ की सन्धि के अनुसार जेकोस्लावाकिया की रक्षा का भार फ्रांस के ऊपर था; परन्तु जब हिटलर ने उसका अपहरण किया तो फ्रांस उसकी कोई सहायता न कर सका। उसने इंगलैण्ड के साथ मिलकर हिटलर के प्रति तुष्टीकरण की नीति का ही पालन किया। इसके कुछ महीने पश्चात् ही हिटलर ने शेष जेकोस्लोवाकिया का भी अपहरण कर लिया। अब इंगलैण्ड की आंखें खुलीं और उसने हिटलर का विरोध करना प्रारम्भ किया। फ्रांस ने भी उसका साथ दिया। ३१ मार्च १९३९ को ब्रिटेन के प्रधान-मन्त्री चेम्बरलेन ने पोलैंड की सुरक्षा के लिए ऐंग्लो-फ्रेंच गारन्टी की घोषणा की; परन्तु अब समय निकल गया था। फ्राँस तथा इंगलैंड की तुष्टीकरण की नीति ने हिटलर के हौसलों को बहुत बढ़ा दिया था। अतः उसने १ सितम्बर १९३९ को पोलैंड पर आक्रमण कर दिया। इंगलैंड ने उसको पोलैन्ड से सेनाएं हटाने के लिए चेतावनी दी; परन्तु उसने उसका उत्तर देने की कोई आवश्यकता न समझी। फलतः ३ सितम्बर १९३९ को इंगलैण्ड तथा फ्रांस ने भी हिटलर के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस प्रकार यूरोप में द्वितीय महायुद्ध की अग्नि प्रज्वलित हो गई। केवल कुछ महीनों में ही जर्मनी ने एक बार फिर फ्रांस को पद-दलित कर दिया और उसके द्वारा निर्मित सुरक्षा-व्यवस्था उसकी कोई सहायता न कर सकी।

प्रश्न

१ 'सन् १९१९ के पश्चात् यूरोप के मामलों में सबसे महत्वपूर्ण समस्या फ्रांस द्वारा सुरक्षा की मांग थी।' इस कथन की विवेचना कीजिए।

२ लोकार्नो पैक्ट तथा केलाग-ब्रिआँ पेक्ट पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।

९

जर्मनी में नात्सीवाद की स्थापना

हिटलर, उसका कार्यक्रम, उद्देश्य, नात्सी पार्टी का संगठन, सत्ता-प्राप्ति, गृह-नीति, विदेशी नीति, आस्ट्रिया का नात्सी विद्रोह, राइन प्रदेश का सैनिकीकरण, फ्रैन्को की सहायता, रोम-बर्लिन-टोकियो गुट, आस्ट्रिया पर अधिकार, जेक्रोस्लोवाकिया का अपहरण, मैमेल, पोलैण्ड।

हिटलर का परिचय—वीमर गणतन्त्र की असफलता के पश्चात् जर्मनी में राजनीतिक सत्ता नात्सी पार्टी के हाथ में आ गई। इस पार्टी का नेता एडॉल्फ हिटलर था। हिटलर का जन्म जर्मनी में नहीं अपितु आस्ट्रिया के एक छोटे से ग्राम बौनो में २० अप्रैल १८८९ को हुआ था। उसका पिता चुंगी विभाग में एक साधारण नौकर था। निर्धनता के कारण वह उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर सका। वह व्याकरण की दृष्टि से जर्मन भाषा भी शुद्ध लिखना तथा बोलना नहीं जानता था। उसके पिता की यह इच्छा थी कि वह सरकारी नौकरी करले; परन्तु वह जन्म से ही कला-प्रेमी था। अतः वह वास्तु कला की शिक्षा प्राप्त करने के लिए विएना गया। प्रवेश-परीक्षा में असफल होने के कारण कला के स्कूल में उसका प्रवेश न हो सका। अपनी आजीविका चलाने के लिए वह घरों में रंग करने का काम करने लगा। विएना में रहकर उसने यहूदियों से घृणा करना सीखा। वह जनतन्त्र का विरोधी हो गया। वह जर्मन जाति को सबसे श्रेष्ठ समझने लगा। विएना के मजदूर उसको घृणा की दृष्टि से देखते थे। अतः वह १९१२ में म्यूनिख चला आया। यहाँ रहकर वह बृहत्तर जर्मनी के निर्माण के स्वप्न देखने लगा। इस मध्य वह नियमित रूप से समाचार-पत्र तथा राजनीति की पुस्तकों का अध्ययन करता रहा। १९१४ में प्रथम महायुद्ध आरम्भ होने पर वह बवेरिया की सेना में भरती हो गया तथा मित्रराष्ट्रों के विरोध में लड़ा। युद्ध में वह घायल हो गया तथा चिकित्सा के लिए उसको पामरेनिया के अस्पताल मे भरती कर दिया गया। युद्ध में पराक्रम प्रदर्शित करने के कारण जर्मन सरकार ने उसको आयरन क्रास (Iron Cross) प्रदान किया था। उसका यह विश्वास था कि इस युद्ध के पश्चात् बृहत्तर जर्मनी की स्थापना हो जायगी; परन्तु युद्ध में जर्मनी की पराजय होने पर उसे बहुत निराशा हुई। उसके विचार में जर्मनी की पराजय का कारण दुर्बलता नहीं, अपितु नेताओं का विश्वासघात था।

हिटलर का कार्यक्रम—हिटलर का यह विचार था कि जर्मन जैसी श्रेष्ठ जाति को कभी पराजित नहीं किया जा सकता। महायुद्ध में जर्मनी की पराजय का कारण यहूदियों तथा साम्यवादियों का देशद्रोह है। अतः अब उसने प्रतिशोध के युद्ध

के लिए कार्यक्रम बनाना प्रारम्भ कर दिया। ठीक होने पर वह म्यूनिख में जासूस का कार्य करने लगा। वहाँ उसने अपने जैसे विचार वाले व्यक्तियों का एक छोटा दल बनाया तथा अपनी बैठकें करने के लिए म्यूनिख शराब खाने (Bear Hall) का एक कमरा किराए पर लिया। उसके दल के प्रमुख व्यक्तियों के नाम इस प्रकार हैं—गोबल्स, गोरिंग, हेस तथा रोम आदि। हिटलर ने अपने दल का नाम राष्ट्रीय समाजवादी जर्मन श्रम दल (National Socialist German Labour Party) रक्खा।

सत्ता प्राप्त करने के लिए विद्रोह—हिटलर ने ८ नवम्बर १९२३ को जर्मनी की सत्ता प्राप्त करने के लिए ल्युडेनडॉर्फ के साथ मिलकर विद्रोह कर दिया। परन्तु विद्रोह का दमन कर दिया गया और हिटलर को ५ वर्ष के लिए कारावास का दण्ड दिया गया। आठ महीने पश्चात् हिटलर को कारावास से मुक्त कर दिया गया। कारावास में रहते हुए हिटलर ने 'मेरा संघर्ष' (Mein Kampf) नाम से अपनी आत्म-कथा लिखी। इस ग्रन्थ में उसने अपनी भावी योजनाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया था। १९२५ में यह पुस्तक प्रकाशित हुई। इसने जर्मन जनता को बहुत प्रभावित किया और यह पुस्तक नात्सियों की बाइबिल बन गई।

हिटलर के उद्देश्य—हिटलर ने अपने उद्देश्यों को तीन शब्दों में व्यक्त किया था–(१) Anti-Semitism (यहूदियों का विरोध), (२) Anti Bolshevism (बोल्शेविज्म का विरोध) तथा (३) Anti-Capitalism (पूंजीवाद का विरोध)।

हिटलर की पार्टी के निम्नलिखित उद्देश्य थे—

(१) हिटलर वीमर गणतन्त्र का विरोधी था। उसको वह यहूदी-गणतन्त्र कहता था। उसके अनुसार सर्वश्रेष्ठ गणतन्त्र वह होगा, जिसमें सब मनुष्य मिलकर अपना एक नेता चुन लेंगे। इस प्रकार वह एक व्यक्ति के शासन का समर्थक था।

(२) उसका उद्देश्य जर्मनी में तीसरी बार महान् जर्मन साम्राज्य (Third Reich) की स्थापना करना था। इस साम्राज्य के अन्तर्गत वह बृहत्तर जर्मनी का निर्माण करना चाहता था। इसका अर्थ था कि जिन प्रदेशों में जर्मन भाषा-भाषी लोग रहते हैं उनको जर्मनी में सम्मिलित कर लिया जाय। दूसरे शब्दों में आस्ट्रिया, पोलैण्ड, जेकोस्लोवाकिया तथा अल्सेस आदि को बृहत्तर जर्मनी में सम्मिलित किया जायगा।

(३) वह बृहत्तर जर्मनी का संगठन पवित्र रक्त के आधार पर करना चाहता था। उसके अनुसार आर्य संसार की सर्वश्रेष्ठ तथा शुद्ध रक्त वाली जाति थी। इसका अर्थ था कि अनार्य देश छोड़कर अन्यत्र चले जायें। यहूदियों का वह घोर विरोधी था।

(४) हिटलर का यह विचार था कि जर्मनी ने प्रथम महायुद्ध आत्म-रक्षा के लिए किया था। मित्रराष्ट्रों ने जर्मनी पर जो युद्ध-अपराध लगाया था, उसको वह कभी भी स्वीकार करने के लिए तैयार न था। उसके अनुसार महायुद्ध के लिये मित्रराष्ट्र ही अपराधी थे।

(५) वार्साय-सन्धि का वह घोर विरोधी था। उसके अनुसार वह आरोपित शान्ति (Dictated Peace) थी। जर्मन-राष्ट्र कभी भी वार्साय की अपमानजनक तथा कठोर सन्धि को स्वीकार करने के लिए तैयार न था। उस पर तो देशद्रोहियों ने हस्ताक्षर किए थे।

(६) हिटलर जर्मनी को युद्ध प्रारम्भ करने का अपराधी नहीं मानता था। वह वार्साय सन्धि का भी विरोधी था तथा उसको रद्द करना चाहता था। अतः वह क्षतिपूर्ति की राशि अदा करने का भी घोर विरोधी था।

(७) एकपक्षीय निःशस्त्रीकरण का सिद्धान्त नहीं माना जायगा। यह नहीं हो सकता कि मित्रराष्ट्र भारी मात्रा में अस्त्र-शस्त्र रक्खें तथा जर्मनी के पास किसी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र न हों।

(८) जर्मनी से जो उपनिवेश छीन लिए गये हैं वे उसको वापस मिलने चाहियें। जब मित्रराष्ट्र उपनिवेश रख रहे हैं तो जर्मनी को भी उपनिवेश रखने का अधिकार है।

(९) इंगलैंड तथा इटली से मित्रता करके फ्रांस तथा रूस से युद्ध किया जाय। हिटलर फ्रांस को जर्मनी का घोर शत्रु मानता था। अपनी आत्म-कथा में उसने फ्रांस के प्रति बहुत विद्वेष प्रकट किया था। वह रूस का भी विरोधी था। उसने अपने एक भाषण में कहा था कि यदि साइबेरिया जर्मनी में होता तो जर्मन राष्ट्र बहुत समृद्ध हो जाता।

(१०) पूंजीपतियों ने युद्ध-काल में जो भारी मुनाफे कमायें हैं, वे जब्त कर लेने चाहियें।

(११) बड़ी दूकानों तथा कारखानों का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाय।

(१२) सूद की ऊची-ऊँची दरों को रद्द कर दिया जाय।

(१३) जनता के रहन सहन के स्तर (Standard of living) को ऊंचा करने का प्रयास किया जाय।

(१४) सरकार का यह कर्तव्य है कि योग्यतानुसार प्रत्येक नागरिक को रोजगार प्रदान करे।

(१५) खेती की उन्नति के लिए प्रयास किया जाय।

(१६) वृद्धों को सरकार की ओर से आर्थिक सहायता दी जाय।

(१७) यदि धर्मराष्ट्र की प्रगति में बाधक होगा तो उसको समाप्त कर दिया जायगा। वैसे प्रत्येक धर्म राज्य की दृष्टि में समान होगा।

नात्सी पार्टी का संगठन—हिटलर राष्ट्रीय समाजवादी (National Socialist) था। इन दोनों शब्दों का सक्षेप जर्मन भाषा में नात्सी (Nazi) कहलाता है। अतः हिटलर का यह दल इतिहास में नात्सी पार्टी के नाम से प्रख्यात हुआ। उसने स्वस्तिक को अपनी पार्टी का चिन्ह बनाया। धीरे-धीरे जर्मनी के सब बाजारों तथा सार्वजनिक स्थानों में यह चिन्ह दिखाई देने लगा। १९२४ के अन्त में हिटलर को

कारावास से मुक्त कर दिया गया था । इसके पश्चात् १६२५ से १६२६ तक वह अपने दल का संगठन तथा प्रचार करता रहा। जर्मनी के इतिहास में यह काल शान्ति का था। इस समय उसके सम्बन्ध विदेशों से अच्छे थे । उसको विदेशों से पर्याप्त मात्रा में ऋण मिल रहा था । इससे उसकी उन्नति शीघ्रता-पूर्वक हो रही थी। १६२६ में आर्थिक संकट उत्पन्न होने पर हिटलर को अपनी शक्ति बढ़ाने का सुन्दर अवसर मिला। १६३२ तक इस दल के सदस्यों की संख्या ७० लाख तक पहुंच गई । इस पार्टी की शाखायें देश के समस्त भागों में स्थापित हो गई । हिटलर ने अपनी पार्टी का बहुत ही आकर्षक प्रोग्राम बनाया। इससे प्रत्येक वर्ग के लोग उससे प्रभावित हुये। उसने प्रत्येक जिले में अपने सिद्धांतों के प्रचार के लिए एक-एक प्रभावशाली वक्ता भेजा। नवयुवकों को अपना समर्थक बनाने के लिये उसने हिटलर नवयुवक समाज (Hitler Youth Society) की स्थापना की। इसके प्रचार से नवयुवक तथा विद्यार्थी वर्ग भी हिटलर का समर्थक हो गया।

हिटलर ने अपनी पार्टी के सुसंगठन के लिये दो प्रकार के दलों का निर्माण किया—

(१) Sturm Ahteilungen—S. A.—इस दल के सदस्य भूरे रंग की कमीज पहनते थे । ये लोग नात्सी-पार्टी की सभाओं की रक्षा करते थे तथा अन्य पार्टियों की सभाओं को शक्ति के बल पर भंग करने का प्रयास किया करते थे ।

(२) Schuiz Stufflen—S. S.—इस दल के सदस्य काले रंग की कमीज पहनते थे। इनका कार्य नात्सी-नेताओं की रक्षा करना था ।

हिटलर के इन कार्यों से उसका दल बहुत संगठित हो गया था। देश के समस्त भागों में उसकी पार्टी की शाखायें फैल गई थीं । उसके आकर्षक प्रोग्राम से प्रभावित होकर समाज का प्रत्येक वर्ग उसका समर्थन कर रहा था।

हिटलर का सत्ता प्राप्त करना—जर्मनलोक सभा में कुल ५७६ सदस्य थे। १६२६ के निर्वाचन में नाजियों को लोकसभ में १२ स्थान मिले । १६३० के निर्वाचन में उनको लोक सभा में १०७ स्थान प्राप्त हुए। सोशल डेमाक्रेट पार्टी को बहुमत प्राप्त हुआ। उसको लोकसभा में १४३ स्थान प्राप्त हुए । इसके विरोध में सबसे शक्तिशाली दलहिटलर की नात्सी पार्टी थी। एबर्ट की मृत्यु के पश्चात् ७७ वर्ष की अवस्था में हिण्डनबर्ग राष्ट्रपति हुआ था। १६३२ में उसकी अवधि समाप्त हो गई; परन्तु वह फिर निर्वाचन के लिये खड़ा हुआ। उसके विरोध में साम्यवादी दल का नेता थॉलमेन तथा हिटलर खड़े हुए । इस निवांचन में हिण्डनबर्ग को सफलता किली । हिटलर बहुत थोड़े मतों से पराजित हुआ। इससे उसकी लोकप्रियता सिद्ध हो गई । इसी समय लोक सभा का भी नया निर्वाचन हुआ। इसमें नात्सी पार्टी को २३० स्थान, सोशल डेमोक्रेट पार्टी को १३३ स्थान तथा कम्युनिस्ट पार्टी को ७६ स्थान मिले। इससे नात्सी पार्टी लोक-सभा का सबसे बड़ा दल हो गया। फलत: राष्ट्रपति ने उसको ही चांसलर बनने के लिए बुलाया। हिटलर ने यह मांग की कि उसको संसद के समर्थन के बिना ही शासन करने का

अधिकार प्रदान किया जाय। ८५ वर्ष का वृद्ध हिण्डनवर्ग यह समझ गया कि हिटलर की इस मांग का समर्थन करनादेश में एक पार्टी की तानाशाही स्थापित करना तथा जर्मनगणतन्त्र का विनाश करना है। अतः उसने उसकी इस मांग को अस्वीकार कर दिया। परन्तु हिटलर सत्ता प्राप्त करने के लिए बहुत लालायित था। अतः उसने जनवरी १६३३ में चाँसलर पद स्वीकार कर लिया और नेशनलिस्ट-दल के साथ मिलकर एक संयुक्त मन्त्रि-मण्डल का निर्माण किया।

लिप्सन का मत है कि राष्ट्रपति हिण्डनबर्ग हिटलर को ठीक-ठीक नहीं समझ सका। उसका यह विश्वास था कि पद का भार आने पर अनुभव-हीन नात्सी नेता अन्य योग्य मन्त्रियों के सम्मुख दब जायेंगे। इसीलिये उसने श्लीचर को पदच्युत कर नात्सी नेता हिटलर को चांसलर बनाया। हिण्डनबर्ग व्यक्तिगत कारणों से भी श्लीचर से नाराज था। श्लीचर देश की आर्थिक दशा को ठीक करने के लिए जमींदारी प्रथा को समाप्त करना चाहता था; परन्तु हिण्डनवर्ग स्वयं एक बहुत बड़ा जमींदार होने के कारण इसका विरोधी था। राष्ट्रपति तथा उसके सलाहकारों की इस नासमझी का हिटलर ने लाभ उठाया। उसने एक बार सत्ता प्राप्त कर उसको बनाए रखने के लिए सभी प्रकार के उचित-अनुचित साधनों का आश्रय लिया और शीघ्र ही शासन की समस्त सत्ता उसने अपने हाथ में केन्द्रित कर ली।

हिटलर ने ५ मार्च १६३३ का दिन नए चुनाव के लिए निश्चित किया। इस निर्वाचन में बहुमत प्राप्त करने के लिए उसने उचित-अनुचित सब प्रकार के साधनों का प्रयोग किया। २८ फरवरी को एक षडयन्त्र के फलस्वरूप रीखस्टाक के भवन में आग लगा दी गई। आग लगाने के लिए कम्युनिस्टों को दोषी ठहराया गया। यह घोषित किया गया कि कम्युनिस्ट पार्टी विद्रोह करना चाहती है और यह घटना उसके विद्रोह के प्रारम्भ की सूचक है। अतः कम्युनिस्ट पार्टी को अवैध घोषित कर दिया गया। उसके प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। वीमर संविधान की नागरिक-स्वतन्त्रता सम्बन्धी धारायें स्थापित कर दी गई। भाषण तथा पत्र-प्रकाशन पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। कम्युनिस्टों पर रीखस्टाक में आग लगाने का अभियोग चलाया गया; परन्तु उन पर यह अपराध सिद्ध नहीं हो सका। कम्युनिस्टों ने बतलाया कि यह कार्य स्वयं नात्सियों ने उनको बदनाम करने के लिए किया है। रीखस्टाक तक पहुंचने के समस्त मार्गों पर पहरा लगा हुआ था। रीखस्टाक के सभापति गोरिंग के घर से एक गुप्त मार्ग सुरंग के रूप में रीखस्टाक में पहुंचता था। इस पर कोई पहरा नहीं था। अतः यह कार्य इसी मार्ग से किया जा सकता था। स्वयं गोरिंग ने यह स्वीकार किया था कि कम्युनिस्टों के उग्र कार्यों को देखते हुए उनका विनाश करना आवश्यक था। सुप्रीम कोर्ट के निर्णय के अनुसार आग लगाने का अपराधी एक डच कम्युनिस्ट (Marinus Van Der Lubbe) था। वह अर्द्ध-पागल था। वह यही कहता रहता था कि आग लगाने का कार्य मैंने अकेले ही किया है। एक बार कुछ ठीक होने पर उसने यह कहा था कि आग लगाने के कार्य से उसका कोई सम्बन्ध न था। अन्त में जनवरी १६३४ में उसको मृत्यु-दण्ड दे दिया गया।

इस षड़यन्त्र का लाभ उठाकर हिटलर ने कम्युनिस्टों का पूर्ण विनाश करने का प्रयास किया। अन्य पार्टियों पर भी संदेह किया गया और उनका भी दमन किया गया। गोरिंग ने पहले ही उच्च स्थानों पर पुराने अधिकारियों को पदच्चुत कर उनके स्थान पर नात्सियों को नियुक्त कर दिया था। सेना तथा पुलिस के द्वारा विरोधियों का दमन करने का पूर्ण प्रयास किया गया।

इस प्रकार ५ मार्च १९३३ को बड़े ही गम्भीर वातावरण में निर्वाचन हुआ। ६४७ स्थानों में से नात्सियों को २८८, नेशनलिस्टों को ५२, सोशल डेमोक्रैट्स को १२०, कम्युनिस्टों को ८१ तथा सेण्टर पार्टियों को ९१ स्थान मिले। देशव्यापी भारी आतंक के पश्चात् भी नात्सियों को एक करोड़ सत्तर लाख मत मिले। दूसरे शब्दों में उनको मूल मतों का ४४% भाग ही मिला। अतः ८% मत प्राप्त करने वाले नेशनलिस्टों को मिलाकर एक संयुक्त मन्त्रि मण्डल का निर्माण किया गया। साम्यवादी पार्टी के निर्वाचित ८१ प्रतिनिधियों को गिरफ्तार कर लिया गया। सोशल डेमोक्रेट आदि पार्टियों का भी दमन किया गया।

लोक-सभा में अपना साधारण बहुमत प्राप्त कर हिटलर ने तृतीय जर्मन साम्राज्य (Third Reich) की स्थापना की घोषणा की। हिटलर का शक्ति में आना वीमर गणतन्त्र के लिए विनाश का कारण बना। उसने गणतन्त्र के झण्डे के स्थान पर प्राचीन झण्डे को स्वस्तिक के चिन्ह से मुक्त कर जर्मनी का राष्ट्रीय ध्वजघोषित किया। उसने २३ मार्च १९३३ को लोक-सभा की समस्त शक्तियाँ ४ वर्ष के लिए मांग लीं। लोक-सभा ने इसको स्वीकार कर लिया। इसके बाद लोक सभा का अनिश्चित काल के लिए विघटन कर दिया गया। इस प्रकार जर्मनी में गणतन्त्र के स्थान पर एक व्यक्ति का शासन स्थापित हो गया।

हिटलर ने २९ जून १९३३ को हिण्डन बर्ग को कैबिनेट से पृथक् कर दिया। उसको अपनी नेशनलिस्ट पार्टी को भंग करने का आदेश दिया गया। जुलाई १९३३ में कैथोलिक, सेन्ट्रीस्ट पार्टी तथा पीपल्स पार्टी आदि का दमन किया गया। यह घोषित किया गया कि अब देश में नात्सी पार्टी नामक ही एक राजनीतिक दल है। जो भी कोई उसका विरोध करेगा उसको दण्डित किया जायगा। १५ सितम्बर १९३३ को गोरिंग ने घोषित किया—'फ्यूरर को पूर्ण अधिकार प्राप्त हैं। उसकी इच्छा ही कानून है।'[1] २ अगस्त १९३४ को वृद्ध राष्ट्रपति हिण्डनबर्ग की मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् राष्ट्रपति तथा चाँसलर का पद एक जगह मिला दिया गया। जनमत संग्रह द्वारा भी उसने इसका अनुमोदन करा लिया। अब हिटलर जर्मनी का चाँसलर तथा राष्ट्रपति दोनों ही बन गया। दूसरे शब्दों में शासन की सम्पूर्ण सत्ता उसके हाथ में थी और वह जर्मनी का भाग्य-विधाता बन गया।

विरोधियों का दमन—३० जून १९३४ को उसने अपने समस्त विरोधियों की

1. 'Des (The) Fuhrer (Hitler or Leader) carries final responsibilities. His will is law.'

हत्यायें करा दीं । श्लीचर मार डाला गया । पेपन भाग गया; परन्तु उसके साथी मार डाले गये । इसी दिन अपने दल की शुद्धि करने के बहाने उसने अपने विरोधी सभी नात्सियों की हत्या करा दी । अपने साथी रोम को सोते ही गिरफ्तार करा दिया तथा उसके अन्य साथियों सहित उसकी हत्या करा दी । इस प्रकार तनिक भी सन्देह होने पर सैंकड़ों आदमियों को मौत के घाट उतार दिया गया । लिप्सन महोदय ने लिखा है कि 'उसने अपने विरोधियों का वध इतनी क्रूरता से किया जैसे कि कसाईखानों में पशुओं का बध किया जाता है ।' यह भयंकर हत्याकाण्ड शनिवार के दिन हुआ था । अतः यह इतिहास में खूनी शनिवार (Bloody Saterday) के नाम से प्रसिद्ध है । इसके द्वारा उसने अपनी पार्टी के अन्दर के तथा बाहर के अपने सब विरोधियों का अन्त करा दिया । इससे उसकी स्थिति बहुत दृढ़ हो गई । इस प्रकार समस्त जर्मनी में हिटलर के आतंक के राज्य की स्थापना हो गई । राष्ट्रपति होने पर वह सेना का भी वैधानिक अध्यक्ष हो गया । जनता का यह विश्वास था कि हिटलर जो कुछ कर रहा है, वह जर्मनी के हित के लिये कर रहा है । अतः उसको जनता का भी समर्थन प्राप्त था ।

दमन के साधन—विरोधियों के दमन के लिए हिटलर ने गेस्टापो (Gestapo) नामक एक गुप्तचर विभाग की स्थापना की । हिटलर को इसका अध्यक्ष बना दिया गया । गेस्टापो किसी भी व्यक्ति को नात्सी-विरोधी होने के सन्देह में न्यायालय में विचार किए बिना ही कसेण्ट्रेशन कैम्प (Concentration Camps) में भेज देती थी । यहूदियों के प्रति दया करने अथवा नात्सी अधिकारियों को अभिवादन न करने पर भी कभी-कभी इस प्रकार के कठोर दण्ड दिये जाते थे । कसेण्ट्रेशन कैम्पों में कैदियों को कठोर दण्ड दिये जाते थे । विद्वानों ने इन कैम्पों की तुलना नरक से की है । इन कैम्पों में कैदियों के रहने के लिए छोटी-छोटी अन्धेरी कोठरियां हुआ करती थीं । कैम्पों में कैदियों को कई घण्टे तक खड़े रक्खा जाता था । उनको पीने को पानी नहीं दिया जाता था । उनको कई-कई दिन तक भूखा रक्खा जाता था । उनको जाड़ों में पहनने के लिये बहुत थोड़ा कपड़ा दिया जाता था । कैदियों को दिन में १२ घण्टे तक कार्य करना पड़ता था । कभी-कभी कैदियों को रात को भी सोने नहीं दिया जाता था और उनको कोड़ों से पीटा जाता था । कभी-कभी उनको पेड़ों से लटका कर अथवा बिजली के तार से स्पर्श कराकर मार डाला जाता था । फिर भी डाक्टर यह लिख देता था कि बन्दी का देहान्त स्वाभाविक मृत्यु से हुआ है । दाखाव (Dachav) का कसेण्ट्रेशन कैम्प अपनी कठोरता के लिए सबसे अधिक प्रख्यात है । उसके चारों ओर बिजली के तार लगे हुए थे । वहाँ बन्दियों को कई-कई घण्टों तक किसी एक वस्तु को एक टक देखते रहने का आदेश दिया जाता था । यदि बन्दी तनिक भी हरकत करता था तो उसके निर्दयतापूर्वक कोड़े मारे जाते थे । इस प्रकार इन कैम्पों का जीवन बहुत कठोर था । वहाँ अधिकांश बन्दी अन्न तथा जल के अभाव में मर जाते थे । कुछ पागल हो जाते थे । कभी-कभी खतरनाक समझे जाने वाले बन्दियों को दौड़ाकर उनके गोली मार दी जाती थी ।

यहूदियों का दमन—हिटलर रक्त की शुद्धता पर बहुत जोर देता था। वह आर्यों को विश्व की सबसे शुद्ध, पवित्र तथा श्रेष्ठ जाति मानता था। अनार्यों को वह घृणा की दृष्टि से देखता था। उनको उसने जर्मन नागरिकता के अधिकार से वंचित कर दिया था। अनार्यों में सबसे अधिक घृणा उसको यहूदियों से थी। जर्मनी में यहूदियों की संख्या बहुत थोड़ी थी; परन्तु उनमें शिक्षा बहुत अधिक थी। अतः अधिकांश पदों पर वे ही नियुक्त किये जाते थे। उनके अधीन बहुत से व्यवसाय थे। अधिकांश वकील तथा डाक्टर आदि भी यहूदी ही थे। इससे नात्सियों को उनसे बहुत घृणा थी। इस सम्बन्ध में एक बार गोरिंग ने लिखा था—'यहूदियों ने अपनी संख्या के अनुपात से अधिक व्यवसाय तथा पदों पर अधिकार कर रक्खा है। वे भारी मात्रा में सूद लेकर जनता का शोषण करते हैं। साम्यवादियों तथा मार्क्सवादियों का नेतृत्व उन्हीं के हाथ में है। अधिकाँश समाचार-पत्रों पर उनका अधिकार है। अतः जिन वस्तुओं को जर्मन पवित्र मानते हैं, उनके सम्बन्ध में वे घृणात्मक लेख लिखते हैं।' हिटलर का यह मत था कि जर्मनी की पराजय तथा उसकी समस्त कठिनाइयों का उत्तरदायित्व यहूदियों पर है। युद्ध-काल में उन्होंने जो बलिदान किये थे नात्सी उनको कोई महत्व नहीं दे रहे थे। यहूदी वैज्ञानिकों, डाक्टरों तथा लेखकों ने युद्धकाल में देश की बहुत सेवायें की थीं। जर्मनी में गणतन्त्र स्थापित हो जाने पर उन्होंने देश को पराजय के प्रभावों से मुक्त करने के लिए प्रयास किया था।

हिटलर ने यहूदी की परिभाषा इस प्रकार की है—'जिसने गत तीन पीढ़ियों में किसी यहूदी से विवाह किया है अथवा जर्मनी के विरोध में कोई देश-द्रोहात्मक कार्य किया है, उसे यहूदी समझना चाहिये।' हिटलर ने यहूदियों के विरोध में कानून (Anti-Jew Laws) पास कराये। उनको मताधिकार से वंचित कर दिया गया। उनसे जर्मन नागरिकता भी छीन ली गई। यहूदी अध्यापक, डाक्टर अथवा वकील नहीं हो सकते थे। उच्च सरकारी नौकरियों से उनको अलग कर दिया गया। वे कोई बड़ा व्यापार नहीं कर सकते थे। उनकी बड़ी-बड़ी दुकानों को लूट लिया गया। यहूदियों को यह आदेश दिया गया कि वे अपनी सम्पत्ति का पूर्ण विवरण सरकारी कार्यालय में लिखायें, जिससे कि आवश्यकता पड़ने पर उनकी सम्पत्ति का अपहरण किया जा सके। नगर की प्रधान सड़कों पर यहूदी नहीं आ सकते थे। उनको नगर में एक ओर रहना पड़ता था। अपने बच्चों के नाम रखने का भी उनको अधिकार नहीं था। उनको अपने बच्चों के हिटलर द्वारा निर्धारित नाम ही रखने पड़ते थे। इस प्रकार यहूदियों का आर्थिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से पूर्ण बहिष्कार कर दिया गया।

इन अत्याचारों के कारण यहूदी देश छोड़कर भागने लगे। जो यहूदी जर्मनी छोड़कर बाहर चले गये थे उनकी सम्पत्ति का अपहरण कर लिया गया। जो यहूदी जर्मनी में रह गये थे, उनको भी देश छोड़कर भागने के लिए विवश किया गया। यहूदियों को पकड़-पकड़कर पोलैंड की सीमा पर छोड़ा जाने लगा। इससे बहुत से यहूदी पोलेंड में जाने लगे। पोलेंड की सरकार ने इसका विरोध किया। फलतः हिटलर को पोलेंड की सीमा पर यहूदियों का छोड़ना बन्द करना पड़ा। इसी दौरान

में किसी यहूदी ने इंगलैंड में किसी जर्मन की हत्या कर दी । इसके विरोध में जर्मनी में यहूदियों की सामूहिक हत्यायें की गईं ।

धर्म के प्रति नीति—पादरी नात्सी पार्टी के विरोधी थे । १६३१ में जर्मनी के पादरियों ने यह घोषित किया था कि 'नात्सी पार्टी के सिद्धान्त कैथोलिकों के विरोध में हैं । अतः किसी भी ईसाई को उसका सदस्य नहीं होना चाहिये ।' नात्सी ईसाई धर्म को विदेशी मानते थे, क्योंकि कैथोलिक रोम के पोप को अपना नेता मानते थे । अतः हिटलर उनका विरोधी था । उनको नागरिकता के अधिकार से वंचित कर दिया गया । उनको गिरफ्तार किया जाने लगा । कैथोलिकों के स्कूल बन्द कर दिये गये । उनको राजनीति में भाग लेने का अधिकार न रहा । प्रोटेस्टेन्ट राष्ट्रीय थे, क्योंकि उनके सम्प्रदाय का संस्थापक लूथर जर्मनी-निवासी था; फिर भी वे नात्सियों के अत्याचार से नहीं बचे । १६३५ में यह घोषित किया गया कि धर्म राज्य के अधीन रहेगा । इसके पश्चात् अनेक नियम पास कर धर्म को पूर्णतया राज्य के अधीन कर दिया गया । हिटलर ने जर्मनी के पुराने धर्म ट्यूटानिक के उद्धार के लिए बहुत प्रयास किया ।

आर्थिक नीति—नात्सी व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति के स्थान पर समाज का महत्व था । वे एक व्यक्ति की समृद्धि की अपेक्षा समस्त समाज को समृद्ध देखना चाहते थे ।[1] हिटलर की आर्थिक नीति का निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णन किया जा सकता है—

बेकारी दूर करने के उपाय—जिस समय हिटलर के हाथ में सत्ता आई तो उस समय जर्मनी में लगभग ६० लाख व्यक्ति बेकार थे । बेकारी को दूर करने के लिये निम्नलिखित उपाय किये गये—

(१) स्त्रियों को सार्वजनिक स्थानों से हटाकर घर की चहारदीवारी के अन्दर बन्द कर दिया गया । उनका प्रधान कार्य घर का कार्य करना तथा सन्तान उत्पन्न करना बतलाया गया । हिटलर का कहना था—'जर्मन स्त्री के काम की सीमा उसके घर की चहारदीवारी है ।'[2]

(२) सरकारी नौकरियों से यहूदियों को निकाल दिया गया । उनके स्थानों पर बेकारों को नियुक्त किया गया ।

(३) काम करने के घन्टे कम कर दिये गये । एक सप्ताह में एक मनुष्य से ४० घण्टे से अधिक काम नहीं लिया जा सकता था ।

(४) देश में लेबर कोर (Voluntary Labour Corps) की स्थापना की गई । इस व्यवस्था के अन्तर्गत कार्य करने वालों को साधारण वेतन मिलता था । उनको निवास-स्थान तथा भोजन निःशुल्क दिया जाता था ।

---

1. 'The individual is nothing, while the people is every thing.'
'Common welfare before individual welfare.'
2. 'The place of a German woman is her home.'

(५) उत्पादन के प्रधान केन्द्रों पर सरकार ने अपना अधिकार कर लिया। देश को आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनाने के लिए अनेक उद्योग-धन्धों की स्थापना की गई। स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग करने के लिए आन्दोलन चलाया गया। अधिक निर्यात को प्रोत्साहन दिया गया। आयात को कम करने के लिये भारी-भारी कर लगा दिये गये।

(६) देश में अनेक दुर्गों का निर्माण प्रारम्भ किया गया। युद्ध में काम आने वाले समुद्री तथा हवाई जहाजों का निर्माण प्रारम्भ किया गया।

(७) बहुत से मनुष्यों को कार्य देने के लिये सार्वजनिक निर्माण के कार्य प्रारम्भ किये गये।

हिटलर के इन कार्यों से देश की बेकारी की समस्या का समाधान हो गया तथा उसको जनता का भारी समर्थन प्राप्त हो गया।

कृषि—हिटलर ने कृषि के उत्पादन बढ़ाने पर बहुत जोर दिया, क्योंकि देश को आत्म-निर्भर बनाने के लिये अन्न की उत्पत्ति की पर्याप्त मात्रा बढ़ानी आवश्यक थी। दूसरे, हिटलर ने आस्ट्रिया तथा जेकोस्लोवाकिया पर अधिकार कर लिया था, परन्तु इन दोनों में अन्न बहुत कम पैदा होता था। अतः इन दोनों देशों को भी जर्मनी को ही अन्न देना था। किसान को पूर्णतया वंशानुगत बना दिया गया। उसको खेतों को बेचने, खरीदने अथवा गिरवी आदि रखने का अधिकार न रहा।

उद्योग-धंधे—ट्रेड यूनियन (Trade Unions) पर मार्क्सवादी प्रभाव था। अतः उनको १९३३ में भंग कर दिया गया। अगले वर्ष मालिकों के ट्रेड यूनियन भी भंग कर दिये गये। सबके लिये श्रम करना आवश्यक ठहराया गया। मजदूरों तथा मालिकों के झगड़ों को दूर करने के लिए जर्मन श्रम मोर्चा (German Labour Front) की स्थापना की गई। इसमें मजदूरों तथा मालिकों दोनों के सदस्य होते थे। देश में लगभग १३ लेबर ट्रस्टों की स्थापना की गई। इनका कार्य मजदूरों तथा मालिकों के झगड़ों का फैसला करना, मजदूरों की दशा सुधारने के लिये योजनायें बनाना तथा कार्य करने के घण्टे निर्धारित करना था।

शिक्षा—हिटलर ने अपने राजनीतिक सिद्धान्तों के प्रचार के लिए बहुत कार्य किया। उसने गोबिल्स (Goebbles) को अपना प्रचार मन्त्री (Propaganda Secretary) नियुक्त किया। उसने देश के समस्त प्रचार-साधनों को अपने अधीन कर लिया। स्वतन्त्र विचारधारा रखने वाले समाचार-पत्रों का प्रकाशन बन्द कर दिया गया। प्रत्येक नवयुवक के लिए हिटलर नवयुवक सभा (Hitler Youth Society) तथा दलीय सेना (S. A.) का सदस्य होना आवश्यक कर दिया गया। किसी भी नवयुवक को सरकारी पद पर नियुक्त करते समय यह देखा जाता था कि वह उक्त संस्थाओं का कितने समय तक सदस्य रहा है।

शिक्षा प्रचार का प्रधान साधन है। अतः शिक्षा पर भी नात्सी पार्टी का पूर्ण नियन्त्रण स्थापित कर दिया गया। अध्यापकों की नियुक्ति हिटलर द्वारा होने लगी।

स्कूल तथा कालिजों के पाठ्यक्रम में परिवर्तन कर दिया गया। पाठ्यक्रम में निम्न-लिखित बातों पर जोर दिया गया—

(१) देश में जागृति उत्पन्न करने के लिए यह प्रचार किया गया कि जर्मनी समस्त विश्व में विशुद्ध रक्त-प्रधान देश है। उसकी सभ्यता-संस्कृति विश्व भर में महान् है। यह जाति विश्व भर में राज्य करने के लिये उत्पन्न हुई। परन्तु इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि समस्त जर्मन नागरिक एक नेता के पद-चिन्हों पर चलें तथा देश के हित के लिए आत्म-बलिदान के लिये प्रस्तुत रहें।

(२) इतिहास को परिवर्तित कर दिया गया। इतिहास में जर्मनी की १९१८ की पराजय का वर्णन नहीं किया गया। उसमें यह लिखा गया—'पवित्र जर्मन जाति कभी पराजित नहीं की जा सकती। जर्मन देशभक्त कभी भी मित्रराष्ट्रों से सन्धि करने के लिए तैयार नहीं थे। वे जीवन-मरण का युद्ध करने के लिए तैयार थे; परन्तु गद्दार गणतन्त्रवादियों ने वार्साय की कठोर तथा अपमानजनक सन्धि को स्वीकार कर लिया।'

(३) देश में सैनिक भावना की वृद्धि का प्रचार किया गया। सबके लिए श्रम करना आवश्यक कर दिया गया। लोगों को कष्ट-सहिष्णु बनाने के लिये उनसे कठोर परिश्रम कराया जाने लगा। खेलों को प्रोत्साहन दिया गया।

(४) यहूदी आदि अनार्य जातियों के प्रति घृणा की भावना का प्रचार किया गया। विशुद्ध रक्त के आधार पर जातीयता का निर्णय किया गया तथा विशुद्ध रक्त वाले आर्यों को ही जर्मनी का नागरिक माना गया।

सैन्य-संगठन—हिटलर ने सेना का संगठन राष्ट्रीयता के आधार पर किया। वह नेपोलियन महान् की पराजय का एकमात्र कारण उसकी सेना में अनेक देशों के सैनिकों का होना मानता था। विभिन्न देशों के सैनिकों के लिये हार-जीत का होना महत्व नहीं होता। हार-जीत का महत्व तो एकमात्र राष्ट्रीय सैनिकों के हृदय में होता है। अतः एकमात्र जर्मनों को ही सेना में भरती किया गया। स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र एक-मात्र घर ही निश्चित किया गया। स्वस्थ पुत्र उत्पन्न करना ही उनका एकमात्र कर्तव्य बतलाया गया। रोगी तथा निर्बल व्यक्तियों को औषधियों द्वारा सन्तान उत्पन्न करने के अयोग्य कर दिया गया। जनसंख्या की वृद्धि के लिये बाल-विवाह को प्रोत्साहन दिया गया और यहूदी नाजायज बच्चों के पालन-पोषण का उत्तरदायित्व सरकार का ठहराया गया। इस प्रकार सेना के लिए सैनिक प्राप्त करने के लिये जनसंख्या की वृद्धि को प्रोत्साहन दिया गया।

सर्वस्वायत्तवादी (Totalitarian) राज्य की स्थापना—सर्वस्वायत्तवादी राज्य का अर्थ है कि जहाँ सत्ता एक दल तथा एक नेता के हाथ में पूर्णतया हो। हिटलर के हाथ में सत्ता आने पर जर्मनी में ऐसे ही राज्य की स्थापना हो गई। हिटलर का शासन जनता की इच्छा पर निर्भर नहीं था। वह तो एकमात्र हिटलर की इच्छापर ही निर्भर था। उसकी इच्छा ही कानून थी। उसके शासन के अन्तर्गत जनता की प्रत्येक प्रकार की स्वतन्त्रता का अपहरण कर लिया

गया था। प्रेस, रेडियो, सिनेमा, नाटक-गृह, स्कूलों, कालिजों तथा विश्व-विद्यालयों आदि सब पर सरकार का नियन्त्रण स्थापित हो गया। मजदूरों की ट्रेड यूनियनों को भी भंग कर दिया गया, क्योंकि उन पर मार्क्सवादी प्रभाव था। प्रत्येक प्रकार की नागरिक-स्वतन्त्रताओं का अन्त कर दिया गया। सन्देहमात्र पर ही विरोधियों को कन्सेण्ट्रेशन कैम्पों में अपार कष्ट सहन करने के लिए बन्द कर दिया जाता था। हिटलर ने अपने एक भाषण में स्पष्ट घोषित कर दिया था—'अब देश में एक ही राजनीतिक दल है और वह है नात्सी दल। मानव-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसका प्रभाव है। किसी भी मनुष्य को उसकी आलोचना करने का अधिकार नहीं है।'

समस्त विधान-सभाओं को भंग कर पुनः निर्वाचन कराये गए। इसके अनुसार विधान-सभाओं में एकमात्र नात्सी दल के सदस्यों को ही स्थान मिला। पार्लियामेंट तथा विधान सभा के नात्सी सदस्यों का एकमात्र कार्य हिटलर के भाषणों को सुनना तथा उनका अनुमोदन करना रह गया था। प्रान्तों में गवर्नरों की नियुक्ति भी हिटलर द्वारा होती थी। विभान सभा के कार्यों के निरीक्षण के लिए एक रीख एजेन्ट (Reich Agent) की नियुक्ति की जाती थी। कैबिनेट को विधान सभा की स्वीकृति के बिना ही कानून बनाने का अधिकार दिया गया। जो मनुष्य हिटलर की दृष्टि में योग्य थे उनको निर्वाचिन के बिना ही कैबिनेट का सदस्य बनाया जा सकता था। हेस (Hess) तथा रोम (Rohm) को हिटलर ने इसी प्रकार कैबिनेट का सदस्य बनाया था। इस प्रकार जर्मन जनतन्त्र का विनाश हो गया था और पूर्ण सत्ता हिटलर के हाथ में आ गई थी। उसने नात्सी पार्टी तथा सरकार को एक स्थान पर मिला दिया था। अन्य सब दल भंग कर दिए गए थे। जुलाई १६३३ में ही जर्मनी में एकमात्र नात्सी दल रह गया था। नात्सी दल के अन्तर्गत भी जो लोग उसके विचारों से सहमत्त नहीं थे, उनका उसने बध करा दिया था। नात्सी पार्टी की आलोचना करना देश-द्रोह समझा जाता था। इस प्रकार हिटलर के नेतृत्व में जर्मनी में पूर्णतया सर्व-स्वायत्तवादी शासन-व्यवस्था की स्थापना हो गई थी।

हिटलर के उदय के कारण—हिटलर के उदय के निम्नलिखित महत्वपूर्ण कारण थे—

(१) **वार्साय की सन्धि**—वार्साय की सन्धि पराजित जर्मनी के लिए बहुत कठोर तथा अपमानजनक थी। जर्मन देश-भक्त उस पर हस्ताक्षर नहीं करना चाहते थे; परन्तु मित्र-राष्ट्रों की युद्ध की धमकी से भयभीत होकर उनको उस पर हस्ताक्षर करने पड़े। अतः जर्मन वार्साय की सन्धि से बहुत असंतुष्ट थे। हिटलर इस सन्धि का घोर विरोधी था। अतः जनता ने उसका समर्थन किया। इस मत में आंशिक सत्य अवश्य है; परन्तु इसके विरोध में निम्नलिखित बातें कहीं जा सकती हैं—

हार्डी तथा लिप्सन आदि विद्वानों का मत है कि यदि हिटलर के उदय का कारण वार्साय की सन्धि है तो उसका उत्कर्ष इस सन्धि के ३–४ वर्ष पश्चात् होना चाहिए था, जबकि जर्मनी का अपमान अपनी पराकाष्ठा पर था; परन्तु हिटलर का

उदय वार्साय सन्धि के १४ वर्ष पश्चात् हुआ। उस समय तक वार्साय सन्धि की बहुत सी कठोर शर्तों में परिवर्तन हो गया था। अतः हिटलर को वार्साय-सन्धि की उपज नहीं माना जा सकता। हिटलर के उत्कर्ष के समय अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जर्मनी का मान बहुत कुछ बढ़ गया था। स्ट्रेस्मन के नेतृत्व के अन्तर्गत जर्मनी ने बहुत कुछ अंशों में अपने पूर्व गौरव को प्राप्त कर लिया था। लोकार्नो की सन्धि के पश्चात् १९२६ में उसको राष्ट्र-संघ का सदस्य बना लिया गया था और उसको कौंसिल की स्थायी सदस्यता भी प्रदान कर दी गई थी। इससे वह यूरोप के अन्य राष्ट्रों की समानता में आ गया था। १९३० में विदेशी सेनाओं ने जर्मनी को खाली कर दिया था। डावेज यंग-प्लान तथा लोजान-सम्मेलन के अनुसार क्रमशः क्षति-पूर्ति की राशि कम होती जा रही थी। १९३२ में जर्मन चांसलर ब्रूनिंग ने स्पष्ट घोषित कर दिया था कि अब हम भविष्य में क्षति-पूर्ति की कोई राशि अदा नहीं करेंगे। लगभग इसी समय सैनिक दृष्टि से भी जर्मनी को अन्य राज्यों के समान स्वीकार कर लिया था। इस प्रकार वार्साय-सन्धि को हिटलर के उत्कर्ष का प्रधान कारण नहीं माना जा सकता। परन्तु फिर भी विद्वानों ने इसको उसके उत्कर्ष का सहायक कारण मानने में संकोच नहीं किया है। वास्तव में इस समय तक भी जर्मन अपने राष्ट्रीय अपमान को नहीं भूले थे। वे भी अन्य राष्ट्रों के समान अस्त्र-शस्त्र तथा उपनिवेश रखने की बराबर मांग कर रहे थे थे। रूर प्रदेश पर फ्राँस तथा बेलजियम का अधिकार होने तथा राइन प्रदेश पर मित्र-राष्ट्रों के अधिकार होने की स्मृति उन्हें अब भी ताजा थी। अतः जर्मन जनता ने वार्साय-सन्धि के विरुद्ध विषवमन करने वाले हिटलर का पूर्ण समर्थन किया। इस प्रकार वार्साय-सन्धि को हिलटर की उपज का सहायक तथा गौण कारण माना जा सकता है।

(२) **आर्थिक संकट**—नात्सी पार्टी तथा हिटलर के उत्कर्ष का सबसे महत्व-पूर्ण कारण आर्थिक संकट (१९२९–३३) है। इस विश्व-व्यापी आर्थिक संकट के समय जर्मनी की आर्थिक अवस्था बहुत खराब हो गई। जर्मनी का प्रत्येक वर्ग आर्थिक संकट का शिकार हो गया। कृषक वर्ग ऋण-ग्रस्त हो गया। जून १९३१ में कृषकों पर लगभग तीन अरब डालर का ऋण था। हिटलर ने कृषकों को इस ऋण से मुक्ति देने का आश्वासन दिया। इससे कृषक वर्ग उसका समर्थक हो गया। छोटे-छोटे व्यापारी बड़े-बड़े स्टोर्स के कारण दुःखी थे। अतः उनको यह आश्वासन दिया गया कि बड़े-बड़े स्टोर्स का राष्ट्रीयकरण कर दिया जायगा। इससे वे भी उसके समर्थक हो गए। बड़े-बड़े पूंजीपति कम्युनिज़्म से भयभीत होकर हिटलर का समर्थन कर रहे थे। हिटलर ने कुछ उच्चकोटि के पूंजीपतियों को यह आश्वासन देकर अपनी ओर मिला लिया कि उनके उद्योग-धन्धों का राष्ट्रीयकरण नहीं किया जायगा। ६० लाख बेकारों को कार्य देने का प्रयास किया गया। मार्क का मूल्य गिर जाने से मध्यम वर्ग के जिन लोगों की आर्थिक अवस्था खराब हो गई थी उनकी दशा सुधारने का भी प्रयास किया गया। यहूदियों के पृथक् करने से इन लोगों को अनेक कार्य मिल गए। अतः ये भी हिटलर के समर्थक हो गए। नात्सियों ने घोषित

किया कि हम प्रत्येक आर्थिक समस्या का समाधान कर सकते हैं। उनके इस प्रकार के आश्वासनों से समाज के प्रत्येक वर्ग की सहानुभूति उनके साथ हो गई। यदि जर्मनी में इस प्रकार का भयंकर आर्थिक संकट नहीं आता तो हिटलर तथा उसकी पार्टी का कभी भी इतना उत्कर्ष नहीं होता। इस सम्बन्ध में यह बात उल्लेखनीय है कि हिटलर के हाथ में उस समय सत्ता आई जबकि आर्थिक संकट दूर होने लगा था। यदि उसको सत्ता प्राप्त करने में कुछ महीनों का ही विलम्ब हो जाता तो सम्भवतः स्थिति में परिवर्तन हो जाता और सत्ता प्राप्त करने में वह असमर्थ रहता। चुनाव-परिणामों से यह स्थिति भली प्रकार स्पष्ट की जा सकती है। १९२९ के निर्वाचन में नात्सी पार्टी को लोक-सभा में १२ स्थान मिले; १९३० में उसको १०७ स्थान प्राप्त हुए, जुलाई १९३२ में उसको २३० स्थान प्राप्त हुए; परन्तु चार महीने पश्चात् ही नवम्बर १९३२ में उसको केवल १९६ स्थान प्राप्त हुए।

(३) **साम्यवाद का उदय**—साम्यवाद का उदय भी हिटलर तथा नात्सी पार्टी के उत्कर्ष में सहायक हुआ। यद्यपि यह कोई महत्वपूर्ण कारण नहीं था। नात्सियों ने अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए इसका अतिशयोक्ति-पूर्ण प्रचार किया था। जर्मनी में साम्यवाद के प्रचार की कोई सम्भावना नहीं थी। १९१८ में जर्मनी के पराजित होने तथा उसके सम्राट् विलियम कैसर के गद्दी छोड़कर भाग जाने के पश्चात् वहाँ साम्यवादी व्यवस्था स्थापित हो सकती थी। उस समय साम्यवादियों ने इसके लिए प्रयास भी किया था। परन्तु उनको सफलता नहीं मिली। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि इस समय जर्मनी में साम्यवादियों का जोर बढ़ रहा था। १९३० के निर्वाचन में साम्यवादियों को लोक-सभा में ७७ स्थान मिले थे। १९३२ के प्रथम निर्वाचन में उनको ८९ स्थान मिले तथा इसी वर्ष के द्वितीय निर्वाचन में उनको १०० स्थान प्राप्त हुए। इसका लाभ उठाकर नात्सियों ने जर्मनी को साम्यवाद के भावी भय का हौआ दिखाना प्रारम्भ किया। उनके प्रचार की प्रमुख बातें इस प्रकार थीं—'यदि साम्यवादियों ने नात्सी पार्टी को पराजित कर दिया तो जर्मनी में करोड़ों साम्यवादी दिखाई देने लगेंगे।' 'जर्मनी में साम्यवादी सत्ता स्थापित होने का अर्थ है उसका रूस के अधीन होना, क्योंकि साम्यवादी रूसियों के संकेत पर चलते हैं।' साम्यवादी व्यक्तिगत पूंजी अपरिमिति मात्रा में रखने के विरोधी हैं। इससे जर्मन पूंजीपतियों को साम्यवाद से बहुत भय हो गया। उन्होंने नात्सीवाद के द्वारा साम्यवाद से अपनी रक्षा का उपाय ढूंढा और नात्सी-पार्टी को पर्याप्त मात्रा में धन दिया। इससे मुफ्त में ही पूंजीपतियों के साधनों से साम्यवाद के विरोध में नात्सियों का प्रचार होने लगा। वास्तव में इस समय जर्मनी को साम्यवाद का कोई भय न था। रूस के साम्यवाद का प्रभाव इस समय पहले की अपेक्षा बहुत कम हो गया था।

(४) **वीमर गणतन्त्र से असंतोष**—गणतन्त्रात्मक शासन के अन्तर्गत जर्मनी में अनेक पार्टियों का उदय हो गया था। १९३० के निर्वाचन में २४ पार्टियों ने भाग

लिया था। अनेक विरोधी पार्टी होने के कारण कोई भी कार्य शीघ्रतापूर्वक नहीं हो पाता था। बहुत सा समय व्यर्थ के वाद-विवाद में नष्ट हो जाता था। बहुत से मनुष्य उन दिनों को याद किया करते थे जबकि जर्मन पार्लियामेन्ट में बहुत अनुशासन-पूर्वक कार्य हुआ करता था। वे अब भी एक शक्तिशाली व्यक्ति की आवश्यकता अनुभव करते थे। हिटलर उनकी इस इच्छा की पूर्ति करने की योग्यता रखता था। दूसरे कुछ लोग वीमर गणतन्त्र से इसलिए भी नाराज थे कि उसने वार्साय की अपमानजनक तथा कठोर सन्धि को स्वीकार कर लिया था। यद्यपि अब तक सन्धि की अनेक अपमानजनक शर्तों में परिवर्तन हो गया था, परन्तु फिर भी जर्मनी पर कुछ कठोर प्रतिबन्ध लगे हुए थे। डेन्जिग, अपर साइलेशिया तथा आस्ट्रिया के जर्मन प्रदेश उससे अलग थे। उससे जो उपनिवेश छीन लिए गए थे वे उसको वापस नहीं किए गए थे। वीमर गणतन्त्र इन मांगों को पूरा नहीं करा सका था; परन्तु हिटलर इनको पूरा कराने का आश्वासन दे रहा था। अतः जनता का अधिकाँश भाग उसका समर्थन कर रहा था।

(५) **यहूदी-विरोधी नीति**—जर्मनी में यहूदियों की संख्या शतांश से भी कम थी; फिर भी ये लोग बहुत सम्पन्न तथा समृद्ध थे। इनमें शिक्षा का बहुत प्रचार था। बड़े बड़े ऊद्योग-धन्धों तथा समाचार-पत्रों के ये स्वामी थे। अनेक उच्च पदों पर ये नियुक्त थे। इसके जर्मन जनता इनको ईर्ष्या की दृष्टि से देखती थी। बहुतों का यह ख्याल था कि जब भी जर्मनी पर कोई संकट आया है, उसका कारण यहूदी ही रहे हैं। हिटलर ने इस भावना का लाभ उठाकर यह प्रचार करना प्रारम्भ किया कि यहूदी देशद्रोही हैं। इन्हीं के कारण १९१८ में जर्मनी पराजित हुआ है। इससे हिटलर को जनता का भारी समर्थन हो गया।

(६) **हिटलर का व्यक्तित्व तथा प्रचार-कार्य** —हिटलर का व्यक्तित्व बहुत आकर्षक था। वह एक कुशल तथा प्रभावशाली वक्ता था। उसके भाषणों का जनता पर जादू जैसा प्रभाव होता था। उसने अपने कुछ सिद्धान्त निश्चित कर रक्खे थे। वह अपने उन्हीं सिद्धान्तों को जोर दे देकर बार-बार दोहराता था इससे जनता पर उसके विचारों की अमिट छाप अंकित हो जाती थी। गोबिल्स उसका प्रचार-मन्त्री था। वह भी एक कुशल वक्ता था। उसने प्रचार के समस्त साधनों पर अधिकार कर लिया था और उनके द्वारा एकमात्र नात्सी पार्टी के सिद्धान्तों का ही प्रचार किया जाता था। हिटलर का व्यक्तित्व तथा उसके भाषण का जादू उसके उत्थान में बहुत अधिक सहायक सिद्ध हुआ।

(७) **आतंकपूर्ण कार्य**—नात्सियों ने अपना प्रचार करने तथा विरोधियों के दमन के लिए आतंकपूर्ण कार्य भी किए। सरकार उनके इन कार्यों को न रोक सकी। अतः उनका उत्साह बढ़ता गया। इस प्रकार शक्ति तथा आतंकपूर्ण कार्यों से भी उन्होंने अपना प्रचार किया।

(८) **जर्मन जनता की सैनिक मनोवृत्ति**—जर्मन जनता स्वभाव से ही सैनिक मनोवृत्ति रखने वाली है। वह अनुशासन-प्रिय तथा महान् फ्रेडरिक, बिस्मार्क तथा

विलियम कैसर जैसे वीर नायकों की पूजा करने वाली है। गणतन्त्रात्मक शासन प्रणाली उसे पसन्द नहीं थी। वह एकतन्त्र को पसन्द करती थी। हिटलर में ये सब विशेषतायें थीं। अतः जर्मन जनता ने उसका हार्दिक स्वागत किया। इसी आधार पर उसने एक दलीय सेना का निर्माण कर लिया। तत्कालीन सरकार इस प्रवृत्ति को रोकने में असमर्थ रही। अन्त में उसको नात्सियों के सम्मुख आत्म-समर्पण करना पड़ा।

(९) **नवयुवकों द्वारा समर्थन**—जर्मनी में बेकारी की समस्या बहुत अधिक थी। स्कूलों तथा कालिजों से निकलने वाले नवयुवकों को रोजगार नहीं मिल रहे थे। इससे देश के अधिकांश नवयुवकों का भविष्य अन्धकार में था। नात्सी पार्टी उनको रोजगार देने का आश्वासन दे रही थी। अतः उन्होंने हिटलर का समर्थन किया।

(१०) **विपक्षियों की निर्बलता**—नात्सियों के विरोधी अनेक वर्गों में बंटे हुए थे। उन्होंने मिलकर नात्सियों का विरोध नहीं किया। साम्यवादी यह सोचते रहे कि नात्सियों द्वारा वर्तमान सत्ता के अन्त करने पर वे शीघ्रता से देश का शासन अपने हाथ में ले लेंगे। सोशल डेमाक्रैट ने तनिक भी विरोध नहीं किया। इसी प्रकार अन्य पार्टियाँ भी तटस्थ रहीं। विपक्षियों की इस निर्बलता का लाभ उठाकर नात्सी पार्टी ने समस्त सत्ता अपने हाथों में केन्द्रित कर ली।

(११) **हिटलर के कार्यों का जर्मन परम्परा के अनुसार होना**—हिटलर के कार्य जर्मन परम्पराओं तथा आकांक्षाओं पर आधारित थे। जनता वार्साय सन्धि की विरोधी थी। अतः हिटलर ने भी उसका विरोध करना आरम्भ किया। जनता जन-तन्त्र को घृणा की दृष्टि से देखती थी तथा एकतन्त्र के प्रति श्रद्धा रखती थी। एक विद्वान् ने लिखा है कि 'महायुद्ध के पश्चात् जर्मनी में गणतन्त्र-शासन स्थापित होने का यह कारण नहीं था कि जनता गणतन्त्र से प्रेम करती थी। इसका कारण यह था कि जनतन्त्र की घोषणा से जर्मनी को राष्ट्रपति विल्सन की सहानुभूति प्राप्त हो जाती'। जर्मन जनता की इस आकांक्षा का लाभ उठाकर हिटलर ने जनतन्त्र-शासन की कटु आलोचना करनी आरम्भ कर दी। नात्सीवाद के मौलिक सिद्धान्त भी उसने जर्मन परम्परा से लिए थे। फिख्टे ने वीर-पूजा के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। हीगेल ने राज्य के हित के लिए व्यक्ति के बलिदान को उचित माना था। फ्रेडरिक द्वितीय सैनिकवाद का समर्थक था। नोवेलिस शक्ति को ही अधिकार (Might is right) मानता था। मार्वित्स यहूदी-विरोधी था। इस प्रकार हिटलर के विचार सैनिक मनोवृत्ति-प्रधान जर्मन जाति की परम्परा तथा आकांक्षा के अनुकूल थे। अतः उसके इस प्रकार के विचार उसके उत्कर्ष में सहायक सिद्ध हुए।

हिटलर की विदेशी नीति (१९३३–'३९)

हिटलर की विदेशी नीति के उद्देश्य—हिटलर की विदेशी नीति के निम्न-लिखित प्रमुख उद्देश्य थे—

(१) उसकी गृह-नीति की भाँति उसकी विदेशी नीति का आधार भी शक्ति ही था। उसकी दृष्टि में समझौते का कोई महत्व नहीं था। वह शक्ति को महत्व देता था। सौभाग्यवश घर तथा बाहर दोनों स्थानों पर ही उसकी इस नीति का विरोध नहीं हुआ। अतः उसको इसमें सफलता मिली। उसकी इस सफलता का कारण उसकी असाधारण शक्ति नहीं था। अपितु इसका कारण यह था कि उसके विरोधियों ने ठीक समय पर उसको आगे बढ़ने से नहीं रोका। यदि उसको रोका जाता तो उसको कभी भी आगे बढ़ने का साहस न होता। प्रारम्भ में उसको जो रियायतें दी गयीं उनका उसने भरपूर लाभ उठाया।

(२) वह वार्साय सन्धि का घोर विरोधी था तथा इसकी पूर्णरूपेण धज्जियाँ उड़ाना चाहता था।

(३) उसका उद्देश्य बृहत्तर जर्मनी का निर्माण करना था। वार्साय सन्धि के अनुसार उससे जर्मन भाषा-भाषी जो प्रदेश छीन लिए गए थे उनको वह बृहत्तर जर्मनी मे सम्मिलित करना चाहता था।

(४) उसका उद्देश्य जर्मनी को विश्व की एक महाशक्ति बनाना था। अतः वह अधिक से अधिक उपनिवेश प्राप्त करना चाहता था।

(५) वह यूरोप में दो महाशक्तियों का उदय होने देना न चाहता था।[1] वह अपने शत्रुओं में फूट डाल कर अपना कार्य निकालना चाहता था।

(६) एक स्थान पर अपनी नीति की उसने इस प्रकार व्याख्या की थी— 'गृह-नीति में तलवार का प्रयोग कर शक्ति का संचय किया जाय तथा बाह्य नीति में विदेशियों को अपना मित्र बनाया जाय।'[2]

७. वार्साय सन्धि की धाराओं की अवहेलना कर उसने जर्मनी का सैन्य-संगठन प्रारम्भ किया। यह कार्य उसने इस प्रकार किया जिससे कि इंगलैंड और फ्रांस उससे नाराज न हो जायें। वह इंगलैंड से अच्छे सम्बन्ध बनाये रखना चाहता था। इसी से उसने अपनी नौ-सेना का विस्तार नहीं किया। वह यह जानता था कि प्रथम महायुद्ध में जर्मनी तथा इंगलैंड की शत्रुता का प्रधान कारण विलियम कैसर का नौ-सेना का विस्तार करना था।

(८) उसने अपने बहुत से उद्देश्यों की पूर्ति धौंस तथा धमकी से की; परन्तु फिर भी वह अपने को शान्ति का दूत कहता रहा। वह अपनी नीति को शान्ति तथा समझौते की ही नीति घोषित करता रहा।[3]

---

1. 'Never allow the rise of two continental powers in Europe.'

2. 'To forge a mighty sword was the task of internal political leadership; to protect the forging and seek allies in arms was the task of foreign policy.'

3. 'The German Government and the German people are united in the will to persue of the policy of peace, reconciliation and understanding as the foundation of all decisions and all negotiations.'

निःशस्त्रीकरण सम्मेलन तथा राष्ट्र-संघ का परित्याग—राष्ट्र-संघ ने एक निःशस्त्रीकरण सम्मेलन का आयोजन किया था। इसमें हिटलर ने यह माँग रक्खी कि जर्मनी को भी अन्य देशों की भाँति अस्त्र-शस्त्र रखने की अनुमति प्रदान की जाय, अन्यथा अन्य देश भी उसी अनुपात में अपने अस्त्र-शस्त्र कम कर दें। फ्राँस ने उसकी इस माँग का विरोध किया। फ्राँस यह नहीं चाहता था कि जर्मनी को भी अन्य देशों के समान अस्त्र-शस्त्र रखने का अधिकार मिल जाय। अतः हिटलर ने १४ अक्टूबर १९३३ को निःशस्त्रीकरण सम्मेलन के छोड़ने तथा राष्ट्र-संघ के परित्याग करने का नोटिस दे दिया। राष्ट्र-संघ छोड़ने पर उसको अपनी इच्छानुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता मिल गई तथा राष्ट्र-संघ के द्वारा उस पर जो प्रतिबन्ध थे उनसे उसको मुक्ति मिल गई। इससे यूरोप के राष्ट्रों को बहुत चिन्ता हुई; परन्तु हिटलर ने घोषित किया कि 'मैं शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहता। मैं शान्ति की नीति का समर्थक हूं। मैं अब भी अन्य देशों से अनाक्रमण समझौते करने के लिए तैयार हूं।' नवम्बर में उसने राष्ट्र-संघ छोड़ने के सम्बन्ध में जनमत कराया। ९५ प्रतिशत जनता ने उसके इस कार्य का समर्थन किया।

पोलैण्ड से अनाक्रमण समझौता—२३ जनवरी १९३४ को हिटलर ने पोलैन्ड के साथ १० वर्ष के लिये एक अनाक्रमण समझौता (Non-aggression Pact) किया। इसके अनुसार दोनों देशों ने एक दूसरे की सीमा पर आक्रमण न करने का निश्चय किया। जर्मनी ने यह भी स्वीकार किया कि वह अगले १० वर्ष तक अपनी पूर्वी सीमाओं के संशोधन की माँग न करेगा। इसमें पोलिश गलियारा भी सम्मिलित था।

पोलैंड तथा जर्मनी एक दूसरे के कट्टर शत्रु थे। अतः इनकी पारस्परिक मित्रता से यूरोप के राष्ट्रों को बहुत आश्चर्य हुआ। वास्तव में दोनों देशों ने अपने कुछ हितों का ध्यान रखते हुए यह समझौता किया था। दोनों देशों के हितों का क्रमशः वर्णन इस प्रकार है—

पोलैण्ड के हित—पोलैंड अपने को अकेला समझ रहा था। उसका मित्र फ्रांस उससे दूर था और दूसरे वह अपनी सुरक्षा के सम्बन्ध में अधिक चिन्तित था। इससे पोलैंड अपनी सुरक्षा के लिए फ्राँस पर निर्भर रहना ठीक नहीं समझता था। पौलैंड परस्पर-विरोधी जर्मनी तथा रूस के मध्य स्थित था। इन दोनों देशों में संघर्ष अनिवार्य था। अतः पोलैंड ने जर्मनी को अधिक शक्तिशाली समझते हुए उससे मित्रता कर ली।

जर्मनी के हित—उधर जर्मनी भी अपने को अकेला समझ रहा था। बोल्शेविक रूस का वह कट्टर विरोधी था। अतः उसने पोलैंड से मित्रता करना उचित समझा। वह अपने शत्रु पोलैंड से मित्रता कर यूरोप को यह दिखाना चाहता था कि वह शान्ति का पुजारी है। पोलैण्ड से निश्चिन्त होकर वह दूसरी ओर अपना विस्तार करना चाहता था। अतः उसने क्रमशः अपने शत्रुओं से संघर्ष करने का निश्चय किया। शीघ्र ही सार घाटी में जनमत-संग्रह होना था। वह प्रत्येक देश को अपना शत्रु नहीं बनाना चाहता था। अतः उसकी इस उदार नीति से अन्य राष्ट्रों की सहानुभूति उसके प्रति होने की सम्भावना थी।

चार शक्तियों का शान्ति का समझौता—सत्ता प्राप्त करने पर हिटलर ने उग्र भाषा का परित्याग कर दिया। वह अपने को शान्ति का समर्थक प्रसिद्ध करने लगा। अतः १६३३ में उसने मुसोलिनी के प्रस्ताव पर इंगलैंड, फ्राँस तथा इटली के के साथ शान्ति का समझौता (Four Power Peace Pact) कर लिया। १६३४ में उसकी आज्ञा से हेस ने यह घोषित किया कि फ्राँस शान्ति के लिए जर्मनी को सहयोग प्रदान करे।

आस्ट्रिया को हड़पने का असफल प्रयास– आस्ट्रिया में बहुत से जर्मन रहते थे। हिटलर इनको अपने राज्य में मिलाना चाहता था; परन्तु वार्साय सन्धि के अनुसार आस्ट्रिया जर्मनी के साथ नहीं मिल सकता था। हिटलर जनता को सन्तुष्ट करने के लिए कोई प्रभावशाली कदम उठाना चाहता था। पोलैंड से अनाक्रमण समझौता कर वह उससे निश्चिन्त था। अतः उसने आस्ट्रिया को हड़पने का असफल प्रयास किया। हिटलर ने पहले से ही आस्ट्रिया में नात्सी दल का प्रचार प्रारम्भ करा दिया था। १६२६ के आर्थिक संकट के समय आस्ट्रिया में नात्सी पार्टी की स्थिति अच्छी हो गई थी। ये लोग आतंकवादी कार्य भी करने लगे।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् आस्ट्रिया के साम्राज्य का अन्त कर उसको ६० लाख की जनसंख्या वाला एक छोटा सा राष्ट्र बना दिया गया। अपने आर्थिक हितों की पूर्ति के लिए आस्ट्रिया जर्मनी के साथ मिलना चाहता था। १६१६ में उसने इस प्रकार का एक प्रस्ताव भी रक्खा था, परन्तु विजेता राष्ट्रों ने इसको स्वीकार नहीं किया। उसने इटली के साथ भी आर्थिक सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया; परन्तु विजेता राष्ट्रों ने इसका भी विरोध किया।

नात्सियों के आतंकपूर्ण प्रचार से भयभीत होकर आस्ट्रिया के चांसलर डोलफस (Dolfuss) ने विधान को स्थगित कर दिया और स्वयं निरंकुश चांसलर के रूप में शासन करने लगा। नात्सी पार्टी का दमन किया गया और उसको गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया। प्रेस तथा सभा पर कठोर नियन्त्रण लगा दिया गया। प्रो० लिप्सन का मत है कि डोलफस ने यह कार्य इटली के प्रभाव के अन्तर्गत किया था।

जर्मनी के प्रोत्साहन से आस्ट्रिया के नात्सियों ने २५ जुलाई, १६३४ को विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह में डोलफस मारा गया। परन्तु सरकारी सेनाओं ने विद्रोह का दमन कर दिया। इस प्रकार नात्सियों का यह प्रयास असफल रहा। आस्ट्रिया में नात्सियों की स्थिति निर्बल थी। अतः विद्रोह के समय हिटलर ने उनकी सहायता के लिए जर्मन सेना न भेजी। दूसरे इस सम्बन्ध में उसको मुसोलिनी का भी भय था। कारण यह था कि मुसोलिनी भी हिटलर की इस प्रगति को खतरनाक समझता था। यदि आस्ट्रिया जर्मनी के साथ मिल जाता तो जर्मनी की सीमा इटली से ब्रेनर दर्रे के पास मिल जाती; परन्तु मुसोलिनी जर्मनी को इटली तक बढ़ने देना नहीं चाहता था। अतः इटली ने अपनी सेनाओं को आस्ट्रिया की सीमा (ब्रेनर के दर्रे) पर भेज दिया और यह घोषित किया कि यदि जर्मनी ने आस्ट्रिया को अपने साथ मिलाने का प्रयास किया तो इसका अर्थ इटली के साथ युद्ध होगा। इससे हिटलर भयभीत हो गया और उसने घोषित किया कि इस घटना में मेरा कोई हाथ न था।

सार प्रदेश की जर्मनी को प्राप्ति—सार जर्मनी का एक महत्वपूर्ण प्रदेश था। इसमें कोयले आदि की अनेक खानें थीं। वार्साय सन्धि के अनुसार यह १५ वर्ष के लिये राष्ट्र-संघ के संरक्षण में रख दिया गया था। इसके पश्चात् १९३५ में जनमत-संग्रह द्वारा यह निर्णय किया जाना था कि अब वह फ्राँस के अधीन होना चाहता है अथवा जर्मनी के अधीन होना चाहता है अथवा राष्ट्र-संघ के ही अधीन रहना चाहता है। जनमत-संग्रह के अनुसार ९० प्रतिशत जनता ने जर्मनी के साथ मिलने के लिए मतदान किया। फलत: प्रथम मार्च १९३५ को सार का प्रदेश जर्मनी को प्रदान कर दिया गया।

अनिवार्य सैनिक सेवा की घोषणा—१६ मार्च १९३५ को हिटलर ने घोषित किया कि मित्र राष्ट्रों ने नि:शस्त्रीकरण की दिशा में कोई महत्वपूर्ण कदम नहीं उठाया है। अत: जर्मनी के लिये भी वार्साय सन्धि की नि:शस्त्रीकरण-सम्बन्धी धाराओं का नैतिक अथवा कानूनी दृष्टि से पालन करना उचित नहीं है। फलत: हिटलर ने जर्मनी में सैनिक सेवा अनिवार्य कर दी। उसने यह भी घोषणा की कि उसका उद्देश्य इंगलैंड तथा फ्रांस के बराबर वायु-सेना रखने का है। इसके साथ-साथ उसने यह भी घोषित किया कि उसके इन कार्यों का उद्देश्य किसी राष्ट्र पर आक्रमण करने का नहीं है। वह शान्ति का समर्थक है। वह यह कार्य आत्म-रक्षा तथा विश्व-शान्ति के लिये ही कर रहा है। हिटलर द्वारा वार्साय सन्धि की सैनिक धाराओं के उल्लंघन से फ्रांस बहुत भयभीत हुआ। अत: उसने स्विट्जरलैंड के स्ट्रेसा (Stressa) नामक स्थान पर मित्र राष्ट्रों का एक सम्मेलन बुलाया। इसमें इंगलैंड, फ्रांस तथा इटली आदि देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इन्होंने जर्मनी के इस कार्य की निन्दा की। राष्ट्र-संघ ने भी स्ट्रेसा सम्मेलन की रिपोर्ट का अनुमोदन किया। परन्तु इससे जर्मनी को कोई हानि नहीं हुई। वास्तव में स्ट्रेसा सम्मेलन के प्रतिनिधियों में एकता नहीं थी। इंगलैंड जर्मनी के साथ नौ-सेना-सम्बन्धी समझौता करने के लिये वार्ता कर रहा था।

इंगलैंड से नौ-सेना-सम्बन्धी समझौता—जर्मनी के प्रति बर्ताव के सम्बन्ध में इंगलैंड तथा फ्रांस की नीति में अन्तर था। इंगलैंड यह चाहता था कि जर्मनी पुन: अपनी पूर्व स्थिति को प्राप्त कर ले; परन्तु फ्राँस यह चाहता था कि जर्मनी अधिक से अधिक समय के लिए दबा रहे। इंगलैंड तथा फ्रांस का यह विरोध बराबर बढ़ता चलता गया। अत: ये दोनों देश मिलकर जर्मनी का विरोध न कर सके। अन्त में जून १९३५ में इङ्गलैंड तथा जर्मनी ने परस्पर एक नौ-सेना-सम्बन्धी समझौता कर लिया। इसके अनुसार जर्मनी को इंगलैंड की अपेक्षा ३५ प्रतिशत नौ-सेना रखने का अधिकार मिल गया। उसको अपने पड़ोसियों के बराबर वायु-सेना रखने का भी अधिकार मिल गया। हार्डी के मत में इंगलैंड ने इस समझौते के द्वारा हिटलर के वार्साय सन्धि भंग करने के कार्य का अनुमोदन किया। अब मित्र राष्ट्रों को जर्मनी पर वार्साय सन्धि को भंग करने का आरोप लगाने का अधिकार न रहा। हिटलर का यह विचार था कि इस सन्धि से अंग्रेजों को यह विश्वास हो जायगा कि जर्मनी उसके

विरोध में नौ-सेना का विस्तार न करेगा । अतः इससे वे उसको महाद्वीप में मनमानी करने का अवसर प्रदान कर देंगे । कार (Carr) महोदय ने इंगलैंड के इस कार्य को कूटनीतिपूर्ण कहा है । सेना-सम्बन्धी वार्ताओं में जर्मनी का बराबर विरोध करने के कारण उसने एक शक्तिशाली अपरिमित स्थल-सेना का निर्माण कर लिया था; परन्तु इस समझौते द्वारा उसकी नौ-सेना की संख्या निश्चित कर दी गई । परन्तु इंगलैंड का यह कार्य स्ट्रेसा सम्मेलन के विरोध में था । एक अन्य विद्वान् ने इस समझौते के महत्वपूर्ण परिणामों का इस प्रकार वर्णन किया है—'इससे वार्साय की सन्धि भंग हो गई । राष्ट्र-संघ के सम्मान को भारी ठेस पहुंची । इससे वाशिंगटन की सन्धि तथा स्ट्रेसा-सम्मेलन के निर्णय भग हो गये । इससे फ्राँस-रूस की सन्धि तथा फ्राँस-इटली की सन्धि को बल मिला ।'

राइन प्रदेश का दुर्गीकरण—राइन का प्रदेश विसैन्यीकृत घोषित कर दिया गया था तथा जर्मनी ने यह आश्वासन दिया था कि वह इस प्रदेश में सेनायें नहीं रक्खेगा । परन्तु हिटलर इस प्रदेश में अपनी सेनायें भेजना चाहता था । अतः वह इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अवसर ढूँढने लगा । सौभाग्यवश उसे शीघ्र ही ऐसा अवसर मिल गया । १९३५ में इटली ने एबीसीनिया पर आक्रमण किया । इंगलैंड तथा फ्राँस ने इटली के इस कार्य का विरोध किया । उन्होंने इटली के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिये । हिटलर ने इस अवसर पर इटली की सहायता कर उसकी सहानुभूति प्राप्त कर ली । ७ मार्च १९३६ को उसने वार्साय सन्धि की ४२–४३ वीं तथा लोकार्नो सन्धि की दूसरी धारा की अवहेलना कर राइन प्रदेश में जर्मन सेनायें भेज दीं । अपने इस कार्य के औचित्य क सम्बन्ध में हिटलर ने कहा कि फ्राँस ने पहले ही रूस के साथ पारस्परिक सहायता की सन्धि कर लोकार्नो सन्धि को तोड़ दिया है । इससे फ्राँस को बहुत भय हो गया । अब उसको इस सीमा पर सेना रखना आवश्यक हो गया । जिन देशों ने फ्राँस के साथ मैत्री-सम्बन्ध स्थापित कर रक्खे थे, वे समझ गये कि जब वह स्वयं की रक्षा न कर सका तो अपने मित्रों की किस प्रकार रक्षा कर सकता है । अतः बेलजियम ने फ्राँस के साथ की हुई १९२० की सन्धि को तोड़कर तटस्थता की नीति ग्रहण कर ली । हिटलर के इस कार्य से राष्ट्र-संघ की प्रतिष्ठा को गहरा आघात लगा ।

इस समय जर्मनी की स्थिति बहुत अधिक सुदृढ़ न थी । उसके सेना-नायकों ने भी उसके इस कार्य का विरोध किया था; परन्तु हिटलर के भाग्य ने साथ दिया और मित्र राष्ट्रों ने उसका कोई विरोध न किया । फ्राँस युद्ध के लिये तैयार था; परन्तु इंगलैंड ने उसको रोक लिया । इंगलैंड का यह विचार था कि इस प्रदेश मे जर्मनी एक न एक दिन अपनी सेनायें अवश्य भेजेगा । अतः उसके द्वारा ऐसा करने से एक अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि अवश्य भंग हो गई; परन्तु इसके विरोध में जर्मनी से युद्ध करना उचित नहीं था । यदि इस अवसर पर इंगलैंड तथा फ्राँस मिलकर जर्मनी के विरुद्ध सेनायें भेजते तो जर्मनी को अपनी सेनायें वापस बुलानी पड़तीं । कालान्तर में इस

बात को हिटलर ने आस्ट्रिया के चांसलर शुर्शनिग के सम्मुख स्वीकार किया था। इस प्रकार इंगलैंड के असहयोग के कारण हिटलर को रोकने का यह स्वर्ण अवसर मित्र राष्ट्रों के हाथ से निकल गया। राष्ट्र-संघ भी हिटलर के विरोध में निन्दा का प्रस्ताव पास करने से अधिक कुछ न कर सका। इससे राष्ट्र-संघ, इंगलैंड तथा फ्राँस की प्रतिष्ठा को भारी धक्का लगा। हिटलर की प्रतिष्ठा में बहुत वृद्धि हो गई। जर्मन जनता तथा सैनिक पदाधिकारी हिटलर की योग्यता तथा दूरदर्शिता से बहुत प्रभावित हुए।

स्पेन का गृह-युद्ध—एबीसीनिया के युद्ध के पश्चात् इटली इंगलैंड तथा फ्राँस से अलग हो गया और उसने जर्मनी से अपने निकट-सम्बन्ध स्थापित कर लिये। स्पेन के गृह-युद्ध के पश्चात् जर्मनी और इटली और भी अधिक एक-दूसरे के निकट आ गये। १९३१ में स्पेन में जनतन्त्र की स्थापना हुई थी, परन्तु १९३६ में वहाँ के सेनापति फ्रेन्को ने गणतन्त्र के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। तीन वर्ष तक वहाँ गृह-युद्ध चलता रहा। अन्त में १९३९ में फ्रेन्को ने स्पेन पर अधिकार कर लिया। इस गृह-युद्ध में हिटलर तथा मुसोलनी ने जनरल फ्रेन्को को सहायता दी थी और रूस ने जनतन्त्रवादियों को। यदि हिटलर तथा मुसोलनी फ्रेन्को की सहायता न करते तो उसको प्रारम्भ में ही सरलतापूर्वक पराजित कर दिया जाता। अन्त में इंगलैंड तथा फ्रांस ने भी जनरल फ्रेन्को को मान्यता दे दी।

रोम-बर्लिन-टोकियो धुरी (Rome-Berlin Tokyo Axis) की स्थापना—प्रारम्भ में इटली जर्मनी का विरोधी था और उसने १९३४ में उसने जर्मनी द्वारा आस्ट्रिया के मिलाने का विरोध किया था। परन्तु एबीसीनिया के युद्ध के समय दोनों देशों में मैत्री-सम्बन्ध स्थापित हो गये। स्पेन के गृह-युद्ध के समय दोनों के सम्बन्ध और भी अच्छे हो गये। इसके बाद २१ अक्टूबर, १९३६ को दोनों देशों के विदेश-मन्त्रियों ने एक समझौते द्वारा यह निर्णय कर लिया कि एबीसीनिया पर इटली का अधिकार उचित है और जर्मनी को आस्ट्रिया को अपने राज्य में सम्मिलित करने का अधिकार है।

हिटलर रूस का कट्टर विरोधी था। अतः उसने २५ नवम्बर १९३६ को रूस के विरुद्ध जापान से सन्धि कर ली। यह सन्धि एण्टी-कोमिन्टर्न पैक्ट (Anti Commintern Pact) कहलाती है। इस सन्धि का उद्देश्य साम्यवादी विचारधारा का विरोध करना था। ६ नवम्बर १९३७ को इटली ने भी इस सन्धि को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार रोम-बर्लिन टोकियो धुरी (Rome–Berlin–Tokyo Axis) की स्थापना हुई। कालान्तर में इस सन्धि में हंगरी, मानचुकाओ तथा स्पेन भी सम्मिलित हो गए। वास्तव में यह सन्धि इंगलैंड, फ्राँस तथा रूस के विरोध में थी।

आस्ट्रिया पर अधिकार—१९३४ में इटली के विरोध के कारण हिटलर आस्ट्रिया पर अधिकार नहीं कर सका। परन्तु अब इटली जर्मनी का मित्र हो गया था। इससे जर्मनी सरलता से आस्ट्रिया पर अधिकार कर सकता था। हिटलर ने

१२ फरवरी १९३८ को आस्ट्रिया के चाँसलर शुशनिग (Schuschnigg) को अपने निवास-स्थान बर्चटेस गाडेन में बुलाकर कहा—जाइसिग क्वार्ट नामक नात्सी नेता को आस्ट्रिया का गृह-मन्त्री बनाया जाय तथा समस्त नात्सी कैदियों को मुक्त कर दिया जाय। यदि ऐसा नहीं किया गया हो जर्मन सेनायें कुछ घण्टों में ही आस्ट्रिया को जीत सकती हैं, क्योंकि इटली मेरा मित्र है, इंगलैंड भी इसका कोई विरोध न करेगा तथा फ्राँस में मेरी सेनाओं के रोकने का सामर्थ्य नहीं है। उधर नात्सियों ने आस्ट्रिया में जर्मनी के साथ मिलने के लिए आन्दोलन करना प्रारम्भ कर दिया। स्थिति गम्भीर होने के कारण शुशनिग ने यह घोषणा की कि १३ मार्च को इस सम्बन्ध में जनमत-संग्रह किया जायगा। यह आशा थी कि जनमत संग्रह का परिणाम आस्ट्रिया के पक्ष में होगा। हिटलर ने इसका विरोध किया और निम्नलिखित माँगें प्रस्तुत कीं—

(१) जनमत-संग्रह की तिथि स्थगित कर दी जाय।

(२) शुशनिग पद-त्याग कर नात्सी नेता जाइसिगक्वार्ट को आस्ट्रिया का चांसलर बना दे।

(३) मन्त्रि-परिषद् में $\frac{1}{3}$ स्थान नात्सियों के लिए सुरक्षित कर दिये जाँय।

(४) नात्सी पार्टी को आस्ट्रिया में पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी जाय।

इन मांगों की घोषणा के साथ ही साथ जर्मन सेनाओं ने आस्ट्रिया की ओर प्रस्थान कर दिया। शुशनिग के जनमत संग्रह की तिथि स्थगित कर त्याग-पत्र दे दिया। १२ मार्च १९३८ को जर्मन सेनाओं ने आस्ट्रिया से प्रवेश किया और सरलता से उस पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार बिना युद्ध के ही हिटलर ने आस्ट्रिया को जर्मनी में सम्मिलित कर लिया। मित्र राष्ट्र आस्ट्रिया की रक्षा न कर सके। वे विधवा स्त्रियों की भाँति एकमात्र रोते-चिल्लाते रहे।[1] रूस ने जर्मनी के विरुद्ध सम्मिलित कार्य-वाही की मांग की, परन्तु मित्रराष्ट्रों ने उसके प्रस्ताव को स्वीकार न किया।

आस्ट्रिया के जर्मनी में मिलने से हिटलर की शक्ति में बहुत वृद्धि हो गई। इससे उसके सैनिकों तथा राष्ट्रीय कोष में वृद्धि हो गई। पर्याप्त मात्रा में लोहा तथा लकड़ी आदि उसको प्राप्त हो गई। बहुत सी सड़कों, रेलों तथा नदियों पर उसका अधिकार हो गया। इससे उसके व्यापार में भी वृद्धि हुई। आस्ट्रिया के राष्ट्रीय बैंक से जर्मनी को २ करोड़ पौन्ड सोना और विदेशी मुद्रा की प्राप्ति हुई। अब जर्मनी की सीमायें इटली, हंगेरी और यूगोस्लाविया से मिल गई।[2] जेकोस्लोवाकिया और पौलैण्ड के लिये एक नया खतरा उत्पन्न हो गया।

---

1. 'Like sincere widows, they moaned and shouted, but otherwise did nothing.'

2. 'Mastery of Vienna gives to Nazi Germany military and economic control of the whole of the communications of South-Eastern Europe by road, by river and by rail.' —Churchill

जेकोस्लोवाकिया और म्यूनिख पैक्ट

जेकोस्लोवाकिया—सेण्ट जर्मन की सन्धि (१६१६) के परिणामस्वरूप जेकोस्लोवाकिया का निर्माण हुआ था। आस्ट्रिया से बोहीमिया, मोराविया और साइलेशिया का कुछ भाग तथा हंगेरी से स्लोवाकिया का कुछ भाग छीन कर जेकोस्लोवाकिया का संगठन हुआ था। इस राज्य में लगभग ३० लाख जर्मन थे। ये सूडेटन कहलाते थे। नये राज्य में इन्हें धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी। इन्हें शिक्षा की समानता थी। देश की संसद में इन्हें प्रतिनिधित्व प्राप्त था। परन्तु फिर भी ये असन्तुष्ट थे। उनके असन्तोष के कुछ प्रमुख कारण थे—

(१) राज्य के अधिकांश उच्च पदों पर जेक नियुक्त थे। जर्मनों के हाथ में उच्च पद प्राय: नहीं के बराबर थे।

(२) जेकोस्लोवाकिया के निर्माण के समय जर्मन जमीदारों के हाथ से भू-प्रदेश छीने गये थे। परन्तु उनकी बहुत कम क्षति-पूर्ति की गई थी।

(३) जेकोस्लोवाकिया में जर्मन मजदूरों की दशा बड़ी खराब थी।

(४) जेकोस्लोवाकिया का जर्मन-प्रधान प्रदेश (Sudetanland) जर्मनी की सीमा पर था। वह राष्ट्रीयता के आधार पर जर्मनी राज्य में मिलना चाहता था।

हिटलर सूडेटन आन्दोलन को प्रोत्साहित कर रहा था। वह गुप्त रूप से उसे आर्थिक सहायता और आवश्यक परामर्श देता रहता था। वास्तव में वह जेकोस्लोवाकिया को जर्मनी में मिलाना चाहता था। जेकोस्लोवाकिया में हिटलर के अनेक उद्देश्य थे—

(१) जर्मनी की प्रबल राष्ट्रीयता सूडेटन जर्मन को अपने अन्तर्गत लेना चाहती थी। इसके लिए जेकोस्लोवाकिया का विघटन आवश्यक था।

(२) भौगोलिक और सैनिक दृष्टिकोणों से जेकोस्लोवाकिया की स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण थी।

(३) जेकोस्लोवाकिया के पास एक संगठित सेना थी। हिटलर उसकी सैनिक शक्ति से ईर्ष्या करता था।

(४) जेकोस्लोवाकिया हिटलर के शत्रु फ्राँस और रूस का मित्र था।

(५) हिटलर राष्ट्रसंघ का घोर विरोधी था, परन्तु जेकोस्लोवाकिया राष्ट्रसंघ का कट्टर समर्थक था।

(६) हिटलर जनतन्त्र से घृणा करता था, परन्तु जेकोस्लोवाकिया में जनतंत्रात्मक शासन-व्यवस्था थी।

अनुकूल परिस्थिति—जेकोस्लोवाकिया के ऊपर आक्रमण और अधिकार करने के लिए हिटलर को अनुकूल परिस्थिति मिल गई थी—

(१) आस्ट्रिया पर अधिकार कर लेने से जर्मनी जेकोस्लोवाकिया पर बड़ी सरलता से आक्रमण कर सकता था।

(२) हिटलर ने वार्साय सन्धि और लोकार्नो पैक्ट को भंग करके राइन-

प्रदेश का सैनिकीकरण किया था। पुनः उसने अपनी आक्रमण-नीति का प्रमाण देते हुए आस्ट्रिया पर अधिकार कर लिया था। परन्तु फिर भी मित्रराष्ट्रों और राष्ट्रसन्धि ने उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही न की। मंचूरिया, अबीसीनिया और स्पेन में भी वे कोई प्रभावशाली कदम न उठा सके थे। इससे हिटलर का उत्साह और बढ़ गया था। वह मित्रराष्ट्रों और राष्ट्रसंघ की अकर्मण्यता से लाभ उठाना चाहता था।

(३) १९३४ में पोलैंड के साथ अनाक्रमक सन्धि (Non-aggression Pact) करके हिटलर ने पोलैंड को फ्रांस से पृथक् कर दिया था।

(४) १९३६ में जर्मनी ने रूस के विरुद्ध जापान के साथ एक समझौता (Anti-Comintern Pact) कर लिया। १९३७ में उसने इसी प्रकार का एक समझौता इटली के साथ किया। इस भाँति रोम-बर्लिन-टोकियो-गुट की स्थापना हुई। इसने जर्मनी की स्थिति काफी दृढ़ कर दी।

(५) हिटलर भली-भाँति जानता था कि राइन-प्रदेश के सैनिकीकरण से फ्रांस की सुरक्षा को भारी धक्का लगा था। यदि जर्मनी ने जेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण किया तो जेकोस्लोवाकिया को सहायता देने के लिये सम्भवतः फ्रांस का साहस न हो।

(६) रूस पोलैंड और रूमानिया से होकर ही जेकोस्लोवाकिया की सहायता के लिये आ सकता था। परन्तु ये दोनों देश जर्मनी के मित्र और रूस के शत्रु थे।

आक्रमण की ओर—५ नवम्बर, १९३७ को हिटलर ने अपने सेनापतियों के साथ आस्ट्रिया और जेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण करने की योजना तैयार की थी।

हिटलर के प्रोत्साहन से सूडेटन नेता हेनलीन ने २४ अप्रैल, १९३८ को जेक सरकार के विरुद्ध आन्दोलन चलाने के लिये ८ बातों का एक कार्यक्रम (8-point programme) घोषित किया।

मई, १९३८ में हिटलर ने अपनी सेनाओं को जेक सीमा पर इकट्ठा करना प्रारम्भ कर दिया। खतरे का सामना करने के लिये जेक सरकार ने भी सैनिक तैयारी प्रारम्भ कर दी। इस परिस्थिति में इंगलैंड, फ्राँस और रूस ने जर्मनी को चेतावनी दी कि यदि उसने जेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण किया तो वे उसका विरोध करेंगे। इसके उत्तर में हिटलर ने २३ मई, १९३८ को घोषित किया कि जेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण करने का उसका तनिक भी इरादा नहीं है।

यह घोषणा झूठ थी। हिटलर जेकोस्लोवाकिया का अपहरण करने की निरन्तर तैयारी कर रहा था। वह परिस्थिति का अध्ययन करते हुये उचित अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था।

हिटलर के प्रोत्साहन पर सूडेटन बराबर अपनी मांगें बढ़ा रहे थे। पहले वे सूडेटन-प्रधान प्रदेश में स्वायत्त शासन चाहते थे और फिर उन्होंने खुल्लम-खुल्ला जर्मनी में मिलने की माँग करनी प्रारम्भ की।

१० सितम्बर, १९३८ को सूडेटन नेता हेनलीन ने जेक सरकार के विरुद्ध विद्रोह करा दिया। परन्तु जेक सरकार ने उसका दमन कर दिया। इस पर हिटलर ने जर्मन प्रेस के द्वारा जेकोस्लोवाकिया के विरुद्ध भयंकर प्रचार करना प्रारम्भ किया। इससे इंगलैंड को बड़ी चिन्ता हुई। १५ सितम्बर, १९३८ को चेम्बरलेन हिटलर से वार्ता करने के लिये जर्मनी पहुंचे। हिटलर ने चेम्बरलेन से स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि जर्मनी सूडेटनलैण्ड चाहता है। चेम्बरलेन ने उसकी मांग पर विचार करने का आश्वासन दिया।

१९ सितम्बर को इंगलैंड और फ्रांस ने जेक सरकार से पूछा कि क्या वह जर्मनी को सूडेटनलैण्ड देने के लिये तैयार है। युद्ध से बचने के लिये जेक सरकार ने हिटलर की इस मांग को स्वीकार कर लिया। २४ सितम्बर को चेम्बरलेन पुनः हिटलर से मिले और उन्होंने हिटलर को सूचना दी कि जेकोस्लोवाकिया जर्मनी को सूडेटनलैण्ड देने के लिये तैयार है। अतः इस झगड़े को अब शान्तिपूर्वक निबटा लिया जाय। परन्तु हिटलर तो किसी न किसी बहाने सम्पूर्ण जेकोस्लोवाकिया को हस्तगत करना चाहता था। अतः उसने अपनी मांगें बढ़ा दीं तथा कुछ अन्य जेक प्रदेश पर भी अधिकार करने का निश्चय प्रकट किया। साथ में उसने यह भी धमकी दी कि यदि उसके प्रस्ताव को २८ सितम्बर, १९३८ को तीसरे पहर २ बजे तक स्वीकार न किया गया तो वह जेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण कर देगा। युद्ध के लिये न जेकोस्लोवाकिया तैयार था और न मित्रराष्ट्र। अतः हिटलर के प्रति तुष्टीकरण की नीति पुनः अपनाई गई। २८ सितम्बर को इंगलैण्ड, फ्राँस, इटली और जर्मनी के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन म्यूनिख में हुआ। यह महत्व की बात है कि इस सम्मेलन में जेकोस्लोवाकिया का कोई प्रतिनिधि नहीं बुलाया गया। विचार-विमर्श के पश्चात् २९ सितम्बर को एक समझौता किया गया जो म्यूनिख पैक्ट (Munich Pact) के नाम से प्रख्यात है। इसकी प्रमुख धारायें इस प्रकार थीं—

(१) जेक सरकार १ अक्टूबर से १० अक्टूबर तक सूडेटनलैण्ड को खाली कर देगी।

(२) जेक सरकार खाली करते समय सूडेटनलैण्ड में किसी प्रकार की तोड़-फोड़ नहीं करेगी और न वहाँ से कोई कल-कारखाना हटायेगी।

(३) जर्मनी, इंगलैंड, फ्राँस, इटली और जेकोस्लोवाकिया के प्रतिनिधियों का एक आयोग (Commission) बनेगा जो सूडेटनलैंड के खाली कराने के सम्बन्ध में अन्य बातों का निर्णय करेगा।

(४) आयोग यह भी निर्णय करेगा कि किन प्रदेशों में जनमत-गणना (Plebiscite) कराई जाय। जब तक उन प्रदेशों में जनमत-गणना न हो जाय तब तक वे अन्तर्राष्ट्रीय समितियों के अधीन रहेंगे।

(५) जो भी सूडेटन जेक सेना अथवा पुलिस को छोड़कर जाना चाहे उसे अनुमति दे दी जायेगी।

(६) जेक सरकार सारे सूडेटन बन्दियों को मुक्त कर देगी।

(७) जेकोस्लोवाकिया में रहने वाले अल्पसंख्यक पोलों और हंगेरियनों की समस्या का भी हल किया जायेगा। यदि आवश्यकता हुई तो उपर्युक्त चारों देशों के प्रतिनिधि उसे हल करने के लिये सम्मेलन करेंगे।

(८) तत्पश्चात् इंगलैंड और फ्राँस अवशिष्ट जेकोस्लोवाकिया की रक्षा का आश्वासन देंगे।

जेकोस्लोवाकिया का विघटन—१ अक्टूबर को जर्मनी ने सूडेटनलैंड में अपनी सेनायें भेजकर उस पर अपना अधिकार कर लिया। जेकोस्लोवाकिया के हाथ से ११ हजार वर्ग मील का प्रदेश, महत्वपूर्ण दुर्ग, रेलवे और औद्योगिक साधन निकल गये। कहीं पर भी जनमत-गणना नहीं की गई।

जेकोस्लोवाकिया की विपत्ति से लाभ उठाकर पौलैंड ने तेशेन पर और हंगेरी ने स्लोवाकिया के कुछ प्रदेश पर अधिकार कर लिया।

इस प्रकार जेकोस्लोवाकिया के हाथ से बहुत बड़े प्रदेश निकल गये।

म्यूनिख पैक्ट के प्रभाव—म्यूनिख पैक्ट योरपीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। इसने अनेक उल्लेखनीय प्रभाव उत्पन्न किये—

(१) जेकोस्लोवाकिया की सीमायें अत्यन्त संकुचित हो गईं। अब उसकी रक्षा करना बड़ा कठिन हो गया।[1]

(२) इंगलैंड और फ्रांस ने उसे सुरक्षा का जो आश्वासन दिया था उसका खोखलापन सभी को विदित हो गया।

(३) पाँच राज्यों का आयोग व्यर्थ सिद्ध हुआ।

(४) राष्ट्र-संघ जेकोस्लोवाकिया की रक्षा न कर सका। अतः उसकी प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का लगा।

(५) मित्रराष्ट्र भी हिटलर के इस अन्यायपूर्ण कार्य को न रोक सके। अतः उनकी निर्बलता और अकर्मण्यता भी प्रकट हो गई।

(६) रूस और मित्रराष्ट्रों के बीच कटुता उत्पन्न हो गई। रूस मित्रराष्ट्रों के साथ मिलकर हिटलर के आक्रमण को रोकना चाहता था। परन्तु मित्रराष्ट्रों ने न रूस का विश्वास किया और न उसके परामर्श से कार्य किया। यही नहीं, म्यूनिख पैक्ट के समय रूस बुलाया तक नहीं गया। कालान्तर में रूस मित्रराष्ट्रों से विमुख होकर जर्मनी की ओर झुकने लगा और २३ अगस्त, १९३९ को उसने जर्मनी के साथ एक समझौता (Nazi-Soviet Non-aggression Pact) कर लिया।

(७) जेकोस्लोवाकिया के विघटन ने पोलैंड की सुरक्षा खतरे में डाल दी।

---

1. 'I think you will find that in a period of time...which may be measured only by months, Czechoslovakia will be engulfed in the Nazi regime.' —Churchill.

इसके लिये पोलैंड भी उत्तरदायी था। उसने तेशेन लेकर जेकोस्लोवाकिया के विघटन में और भी अधिक योग दिया था।[1]

(८) म्यूनिख पैक्ट मित्रराष्ट्रों की तुष्टीकरण की नीति का परिणाम था। इसने हिटलर की आक्रमक मनोवृत्ति को और भी अधिक प्रोत्साहित किया। इसने देशों का सम्मिलित सुरक्षा में विश्वास समाप्त कर दिया।[2]

(९) हिटलर के कार्यों से मुसोलिनी को भी प्रोत्साहन मिला। उसने ट्यूनिस, कार्सिका और नाइस की मांग करनी प्रारम्भ कर दी। इस प्रकार विश्व-शान्ति को और अधिक खतरा उत्पन्न हो गया।

म्यूनिख पैक्ट हिटलर की दुर्दम्य आक्रमक नीति और मित्रराष्ट्रों की भीरुता और निष्क्रियता का प्रतीक था। यह आक्रमक सैनिकवाद की सबसे बड़ी और सबसे सस्ती विजय थी।[3]

ब्रिटेन और फ्रांस ने युद्ध से बचने के लिए यह अपमान-जनक पैक्ट स्वीकार किया था। परन्तु इसका अन्तिम परिणाम युद्ध ही हुआ।[4]

हिटलर ने चेम्बरलेन को आश्वासन दिया था कि सूडेटनलैण्ड पर अधिकार करने के पश्चात् वह शेष जेकोस्लोवाकिया को किसी प्रकार की हानि न पहुंचायेगा।[5] परन्तु हिटलर के कथन पर विश्वास करके चेम्बरलेन ने गलती की थी। कुछ ही दिनों बाद हिटलर ने अपने वचन का उल्लंघन करके शेष जेकोस्लोवाकिया पर भी अधिकार कर लिया।

डा० बेनेस ने म्यूनिख पैक्ट के लिये इंगलैंड और फ्राँस को उत्तरदायी बताया

---

1. 'To grab the Teschen coal-field...the Poles let the key-stone be pulled out of the Arch of Versailles structure and signed their own death-warrant.'
—L. S. Amery

2. 'The Munich Pact was the culmination of appeasement and warrant of death for the western democracies. It was the symbol of the collapse of collective security.'
—Schuman.

3. 'The greatest and cheapest victory ever won by aggressive militarism.'
—Amery

4. 'Britain and France had to choose between war and dishonour. They chose dishonour, they will have war.'
—Churchill.

5. 'I have assured Mr. Chamberlain, and I emphasize it now, that when this problem is solved Germany has no more territorial problems in Europe. I shall not be interested in the Czechoslovakian state any more, and I can guarantee it. We don't want any Czches any more.'
—Hitler.

था ।[1] यदि ये दोनों देश हिटलर की आक्रमणकारी नीति का विरोध करने का निश्चय करते तो इनके साथ रूस और जेकोस्लोवाकिया भी हो जाते और हो सकता था कि इन चारों की सम्मिलित शक्ति के सामने हिटलर को झुकना पड़ता ।

म्यूनिख पैक्ट करने के पश्चात् चेम्बरलेन ने घोषित किया था कि इंगलैंड ने दूसरी बार 'प्रतिष्ठापूर्ण शान्ति' की स्थापना की है ।[2] परन्तु इतिहास ने सिद्ध कर दिया कि इंगलैंड को न प्रतिष्ठा मिली और न शान्ति ही ।

म्यूनिख पैक्ट का विरोध करते हुए डफ कूपर ने मन्त्रिपद से त्यागपत्र दे दिया । उस समय उसने चेम्बरलेन की आलोचना करते हुए जो कुछ कहा था वह अधिकांशतः सत्य था—

'हमारे प्रधान-मन्त्री को हिटलर की सदाशता और वचन पर विश्वास है यद्यपि हिटलर ने वासिय की सन्धि को तोड़ते समय लोकार्नो सन्धि की रक्षा का आश्वासन दिया था, लोकर्नो सन्धि को तोड़ते समय यह कहा था कि अब योरप में मेरी कोई प्रादेशिक माँग नहीं है, आस्ट्रिया में बलात् प्रविष्ट होते समय अपने पिट्ठुओं को यह आश्वासन देने का अधिकार दिया था कि मैं जेकोस्लोवाकिया के विषय में हस्तक्षेप न करूँगा । यह ६ मास पूर्व की बात है । फिर भी हमारे प्रधान-मन्त्री को विश्वास है कि वे हिटलर पर विश्वास और भरोसा रख सकते हैं ।'

जेकोस्लोवाकिया का विलोप—हिटलर ने म्यूनिख पैक्ट के समय यह विश्वास दिलाया था कि मैं शेष जेकोस्लोवाकिया के विरुद्ध कोई कार्यवाही न करूँगा । परन्तु शीघ्र ही उसने अपना वचन भंग कर दिया ।

उसके प्रोत्साहन से १४ मार्च, १९३९ को शेष जेकोस्लोवाकिया के २ भागों—स्लोवाकिया और रूथेनिया—ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी ।

हिटलर ने जेकोस्लोवाकिया के नये राष्ट्रपति डा० हाचा को वार्ता के लिये बर्लिन बुलाया । वहां उसे भांति-भाँति की धमकियां दी गईं । उससे एक प्रयत्न पर हस्ताक्षर करने को कहा गया और यह धमकी दी गई कि यदि वह हस्ताक्षर नहीं करेगा तो उसका देश बर्बाद कर दिया जायेगा । इस संकटपूर्ण स्थिति में डा० हाचा बेहोश हो गया । उसे इंजेक्शन देकर होश में लाया गया और पुनः उससे हस्ताक्षर करने को कहा गया । विवश होकर डा० हाचा ने १४ मार्च १९३९ को ४॥ बजे शाम को उस प्रपत्र पर हस्ताक्षर कर दिए । १५ मार्च को नात्सी सेनाओं ने जेकोस्लो-

---

1. I had been forced to yield to pressure of which there is no precedent in history and all that was due to the presence of Chamberlain and Daladier Dr. Benes.

2. 'This is the second time in our history that there has come back from Germany to Dowing Street peace with honour. I believe it is peace for our time.' —Chamberlain.

वाकिया पर अधिकार कर लिया। हिटलर ने बड़ी प्रसन्नता के साथ घोषित किया कि जेकोस्लोवाकिया का अस्तित्व समाप्त हो गया है।[1] जेकोस्लोवाकिया को जर्मनी ने अपने संरक्षण में ले लिया। १६ मार्च को हिटलर स्लोवाकिया का भी संरक्षक बन गया।

प्रभाव—जेकोस्लोवाकिया के पूर्ण विलोप ने योरप पर महत्वपूर्ण प्रभाव उत्पन्न किये—

(१) अन्त में चेम्बरलेन ने अपनी गलती का अनुभव किया। उसने घोषित किया कि हिटलर ने अपने दिए हुए वचन को भंग करके नितांत अनुचित कार्य किया है।[2] २० मार्च १९३९ को चेम्बरलेन ने हिटलर के आक्रमण के विरुद्ध सम्मिलित घोषणा करने के लिए फ्रांस, रूस और पोलैंड को आमन्त्रित किया।

(२) ३१ मार्च को ब्रिटेन और फ्रांस ने घोषित किया कि यदि जर्मनी की ओर से पोलैंड के लिए कोई खतरा उत्पन्न हुआ तो वे तत्काल पोलैंड की सहायता करेंगे।[3]

(३) इंगलैंड में चेम्बरलेन की सरकार बदनाम हो गई और उसके विरुद्ध चर्चिल के अनुसार दल का विरोध संगठित होने लगा।

(४) जेकोस्लोवाकिया की समाप्ति से पोलैंड को भारी खतरा उत्पन्न हो गया।

(५) राष्ट्र-संघ की निरर्थकता सिद्ध हो गई।

(६) मित्र-राष्ट्रों की सम्मिलित सुरक्षा की योजना से अन्य देशों का विश्वास जाता रहा।

(७) यूगोस्लाविया और रूमानिआ आदि देशों ने भलीभांति समझ लिया कि वे अपनी सुरक्षा के लिए एकमात्र फाँस के साथ की गई सन्धि पर निर्भर नहीं रह सकते।

(८) रूस हिटलर के आक्रमण का सामना करना चाहता था। परन्तु मित्र-राष्ट्रों ने उसकी राय से कार्य न किया। अतः रूस का यह विश्वास हो गया कि मित्र-

---

1. 'Czechoslovakia has ceased to exist.'

2. 'Public opinion in the world has received a sharper shock than has ever yet been administered to it, even by the present regine in Germany...Hitler has violated his own declared principles by including in the Reich a people of non-German race He had manifestly departed both from his assurances at Munich...and from his understanding to deal with any further questions in consultation with Great Britain.'

—Chamberlain.

3. 'In the event of any action which clearly threatened Polish independence...they would at once lend Poland all support in their power.'

राष्ट्र जान-बूझ कर जर्मनी को प्रोत्साहित कर रहे हैं कि वह एक दिन रूस पर आक्रमण कर दे।

(९) हिटलर राष्ट्र-संघ और मित्र-राष्ट्रों की भीरूता से भली-भाँति परिचित हो गया। वह अपने आगामी आक्रमणों की योजना बनाने लगा।

(१०) हिटलर के कार्य ने मुसोलिनी को भी प्रोत्साहन दिया। वह अलबानिया पर अधिकार करने का स्वप्न देखने लगा।

हिटलर की कूटनीति—इंगलैण्ड तथा फ्रांस की सुरक्षा की गारंटियों से यह स्पष्ट हो गया था कि पोलैण्ड पर उसके आक्रमण का वे विरोध जरूर करेंगे। अतः उसने निम्नलिखित कूटनीतिक कार्यों से अपनी स्थिति सुदृढ़ करनी प्रारम्भ की—

(१) **पोलैण्ड के विरुद्ध आरोप**—चेकोस्लोवाकिया को हड़पने के लिए हिटलर ने यह आरोप लगाए थे कि वहाँ जर्मन अल्प-संख्यकों के साथ कठोरता का बर्ताव हो रहा है। इसी प्रकार के आरोप उसने पोलैण्ड के विरुद्ध भी लगाए। नाजी-पत्र यह छापने लगे कि पोलैण्ड में आतंक का राज्य स्थापित हो गया है और वहाँ जर्मनों पर बहुत अधिक अत्याचार हो रहे हैं। पोलैण्डवासी जर्मनों को जर्मनी के साथ मिलने के लिए प्रोत्साहित किया गया।

(२) **इटली से रक्षात्मक समझौता**—हिटलर युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व ही मुसोलिनी से दृढ़ मित्रता करना चाहता था। अतः २२ मई को रिबनट्राप और काउंट चियानो ने परस्पर मिलकर यह समझौता किया कि युद्ध प्रारम्भ होने पर दोनों देश एक दूसरे पर आक्रमण न करेंगे और आवश्यकता पड़ने पर एक दूसरे की सहायता करेंगे।

(३) **रूस से अनाक्रमण-सन्धि**—रूस से सन्धि करने के लिए मित्रराष्ट्र तथा धुरी राष्ट्र दोनों ही वार्ता कर रहे थे। इंगलैण्ड तथा फ्राँस रूस की सहायता के बिना पोलैण्ड की रक्षा नहीं कर सकते थे; परन्तु फिर भी उन्होंने रूस की मित्रता को खो दिया। इंगलैंड यह चाहता था कि रूस पोलैण्ड तथा रूमानिया को सुरक्षा की गारंटी दे; परन्तु इन देशों से उसके सम्बन्ध बहुत खराब थे। अतः इसके बदले में रूस ने इंगलैण्ड तथा फ्राँस से यह मांग की कि वे रूस के साथ मिलकर बाल्टिक सागर से काले सागर तक के सभी देशों को सुरक्षा की गारंटी दें। परन्तु इंगलैंड इसके लिए तैयार नहीं हुआ।

मेमल पर अधिकार—मेमल लिथुआनिया के अधीन था। इसमें पर्याप्त मात्रा में जर्मन निवासी रहते थे। मेमल की डायट में जर्मनी का बहुमत था। जर्मनों ने जर्मनी के साथ मिलने की मांग की। सरकार ने इनका दमन करना प्रारम्भ कर दिया। फलतः २२ मार्च १९३९ को हिटलर ने लिथुआनिया को धमकी देकर मेमल उससे छीन लिया।

पोलैण्ड पर आक्रमण—चेकोस्लोवाकिया पर हिटलर का अधिकार होने से पोलैण्ड तीन ओर से जर्मनी से घिर गया था। अतः अब उसकी स्थिति बहुत गम्भीर हो गई थी और उस पर कभी भी जर्मन आक्रमण हो सकता था। हिटलर ने पोलैण्ड से यह मांग की कि वह डेंजिग जर्मनी को दे दे तथा पोलिश गलियारे

(Polish Corridor) में होकर जर्मनी को पूर्वी प्रशा तक एक सड़क तथा रेलवे लाइन बनाने का अधिकार दे दिया जाय। इसके बदले में उसने पोलैण्ड को निम्न-लिखित आश्वासन दिये—

(१) डेन्जिग में पोलैण्ड के आर्थिक हितों की रक्षा की जायगी।

(२) पोलैण्ड तथा जर्मनी के मध्य की सीमा को वह स्थायी स्वीकार करने को तैयार है।

(३) वह पोलैण्ड के साथ हुए गत अनाक्रमण समझौते की अवधि बढ़ाने के लिए तैयार है।

परन्तु पोलैण्ड ने हिटलर के इन वायदों को अस्वीकार कर दिया। इस पर हिटलर ने २६ अप्रैल १९३४ के पोल-जर्मन अनाक्रमण समझौते के भंग किए जाने की घोषणा कर दी तथा जर्मनी ने पोलैण्ड पर आक्रमण करने की तैयारियां प्रारम्भ कर दीं। इससे इंगलैण्ड भी भयभीत हुआ और उसने अपनी तुष्टीकरण की नीति के परित्याग करने का निश्चय किया। ३१ मार्च १९३९ को इंगलैण्ड के प्रधान मन्त्री चेम्बरलेन ने पार्लियामेन्ट में भाषण देते हुए किसी भी खतरे के समय पोलैण्ड को सुरक्षा की गारन्टी दी। यूनान, रूमानिया तथा टर्की तैयार नहीं हुआ। अन्त में २३ अगस्त १९३९ को परस्पर-विरोधी जर्मनी तथा रूस ने अनाक्रमण सन्धि कर ली। इस सन्धि के अनुसार दोनों देशों ने एक दूसरे को यह आश्वासन दिया कि वे आपस में युद्ध नहीं करेंगे। पोलैण्ड के बंटवारे के सम्बन्ध में भी गुप्त रूप से निर्णय किया गया। हिटलर ने रूस को बाल्टिक प्रदेश में मनमानी करने का अधिकार दे दिया। रूस ने हिटलर को अन्न तथा सामग्री आदि पदार्थ देने का आश्वासन दिया। इस प्रकार इंगलैण्ड तथा फ्रांस की लापरवाही के कारण रूस जर्मनी का मित्र हो गया तथा जर्मनी का पोलैण्ड पर आक्रमण अनिवार्य हो गया।

रूस तथा जर्मनी की यह अनाक्रमण सन्धि समस्त संसार के लिए एक आश्चर्य की बात थी। जर्मनी रूस का घोर शत्रु था। हिटलर बराबर रूस की निन्दा करता रहता था। लेकिन इस समय रूस ने अपनी सुरक्षा के लिए अपने शत्रु जर्मनी से सन्धि करने में संकोच नहीं किया। मित्रराष्ट्रों से भी रूस के सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। वे बोलशेविक रूस को घृणा की दृष्टि से देखते थे। म्यूनिख के सम्मेलन में मित्रराष्ट्रों ने रूस को नियन्त्रित नहीं किया था। रूस भी पूंजीवादी इंगलैण्ड तथा फ्रांस से घृणा करता था। महायुद्ध के समय बाल्टिक प्रदेश के अनेक छोटे-छोटे राज्य रूस के हाथ से निकल गये थे। वह अब इनको पुनः प्राप्त करना चाहता था। इंगलैंड तथा फ्रांस उसको इन प्रदेशों को देने के लिए तैयार नहीं थे; परन्तु जर्मनी ने उसकी इस मांग को स्वीकार कर लिया। पोलैण्ड रूस का पुराना शत्रु था। अतः उसकी सुरक्षा के लिए रूस में कोई उत्साह न था। इस कारण मित्रराष्ट्रों से रूस की सन्धि न हो सकी और उसने अपनी सुरक्षा के लिए अपने विरोधी हिटलर से सन्धि कर ली।

हिटलर को भी इस सन्धि से लाभ हुआ। इससे रूस उसके विरोधी इंगलैंड तथा फ्रांस का मित्र न बन सका। रूस को अपना मित्र बनाने से जर्मनी की पूर्वी सीमा सुरक्षित हो गई। उसे रूस से अन्न तथा युद्ध-सामग्री प्राप्त करने का साधन मिल गया। अब जर्मनी को दो मोर्चों पर लड़ने की आवश्यकता नहीं रह गई। अब वह डट कर पोलैंड का सामना कर सकता था। इससे उसको पोलैंड जीतना आसान हो गया।

रूस से अनाक्रमण सन्धि करने के पश्चात् हिटलर ने घोषित किया कि 'उसका उद्देश्य इंगलैंड के हितों को हानि पहुंचाने का नहीं है। वह हर समय इंगलैंड की मित्रता प्राप्त करने का आकांक्षी है। परन्तु डेन्जिग तथा पोलिश गलियारे में उसके जो हित हैं, उनका वह परित्याग नहीं कर सकता।' हिटलर पहले ही पोलैंड के विरुद्ध युद्ध करने की सैनिक तैयारियाँ कर चुका था। अतः उसने १ सितम्बर १९३९ को प्रातःकाल अपनी सेनाओं को पोलैंड पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया। अब तक तो हिटलर बिना लड़े ही अपनी शक्ति का विस्तार कर रहा था; परन्तु पोलैंड ने डटकर उसका सामना किया। ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि यदि पोलैंड से जर्मन सेनायें वापस न बुलायी गयीं तो ब्रिटेन भी पोलैंड को दिए हुए अपने सुरक्षा के आश्वासन के अनुसार उसकी सहायता करेगा; परन्तु हिटलर ने इस घोषणा का कोई उत्तर देने की आवश्यकता न समझी। फलतः ३ सितम्बर १९३९ को ११½ बजे ब्रिटेन ने भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस प्रकार यूरोप में द्वितीय महायुद्ध की अग्नि प्रज्वलित हो गई।

प्रश्न

१ हिटलर की नीति क्या थी? संक्षेप में लिखिए कि उसने किस प्रकार शक्ति प्राप्त की?

२ जर्मनी की नाजी सरकार की आन्तरिक तथा बाह्य नीति का संक्षेप में वर्णन कीजिये। द्वितीय महायुद्ध के लिए वह कहाँ तक उत्तरदायी थी?

३ म्यूनिख समझौते पर हस्ताक्षर होने की परिस्थितियों का वर्णन कीजिये। क्या आप चेम्बरलेन के इस विचार से सहमत हैं कि इस समझौते की शर्तें जेकोस्लोवाकिया के लिए हिटलर के गोडेसबर्ग स्मृति-पत्र से अधिक लाभ-दायक थीं।

४ जर्मनी में नाजीवाद (Nazi Movement) के उदय का सविस्तार वर्णन कीजिए।

५ हिटलर ने वार्साय सन्धि का किस प्रकार निराकरण किया?

६ हिटलर के प्रारम्भिक जीवन, उसकी नीतियों तथा कार्यों पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

———

१०

इटली में फासिस्टवाद् की स्थापना

इटली और प्रथम महायुद्ध, फासिस्टवाद के उदय के कारण, मुसोलिनी, रोम पर चढ़ाई, मुसोलिनी द्वारा सत्ता-प्राप्ति, फासिस्टवाद के सिद्धान्त, मुसोलिनी की गृह-नीति एवं विदेशी नीति।

प्रथम महायुद्ध में सम्मिलित होते समय अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन ने घोषित किया था कि हम विश्व को लोकतन्त्र के लिए सुरक्षित बनाने के लिए इसमें सम्मिलित हो रहे हैं। इस युद्ध में सफलता भी लोकतन्त्रवादी राज्यों को मिली। परन्तु इसका परिणाम उलटा हुआ। इटली तथा जर्मनी आदि कुछ देशों में लोकतन्त्र के स्थान पर अधिनायकतन्त्र की स्थापना हो गई। इटली में १८६० में ही जन-तन्त्र की स्थापना हो गई थी; परन्तु वहां जनतन्त्र की जड़ें कभी दृढ़ नहीं हो पाई थीं। अतः महायुद्ध के दौरान में जनतन्त्र परिस्थिति का सामना करने में असमर्थ रहा और उसका अन्त हो गया।

इटली तथा प्रथम महायुद्ध—प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ होने पर इटली की सरकार ने इस युद्ध में तटस्थ रहने का निर्णय किया था तथा संसद के सभी सदस्यों ने इसका समर्थन किया था। परन्तु एक वर्ष के उपरान्त ही इटली के राष्ट्र-भक्त तथा सैनिकवादियों ने सरकार पर युद्ध में सम्मिलित होने के लिए जोर डाला, क्योंकि इसी से इटली के साम्राज्य में वृद्धि सम्भव थी। अब इटली के लिए बात विचारणीय थी कि वह किस पक्ष की ओर से युद्ध में सम्मिलित हो। शूमाँ ने इटली की नीति को गीदड़-नीति कहा है। युद्ध प्रारम्भ हो जाने पर वह यह देखता रहता है कि किस पक्ष की विजय होने की सम्भावना है। इस बात का पूर्ण विश्वास होने पर ही वह किसी पक्ष की सहायता के लिए तैयार होता है।

१८८२ में इटली आस्ट्रिया तथा जर्मनी के साथ त्रिराष्ट्र-सन्धि में आबद्ध हो गया था। परन्तु आस्ट्रिया तथा जर्मनी दोनों ही उसके विरोधी थे। वे यह नहीं चाहते थे कि इटली भी साम्राज्य-विस्तार करे। इटली को अपने इटालियन भाषा-भाषी प्रदेश (Italia Irredenta) को आस्ट्रिया से मुक्त करना चाहता था और वह अफ्रीका में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना करना चाहता था। इससे इटली का आस्ट्रिया से प्रायः संघर्ष रहता था। जर्मनी ऐसे अवसरों पर आस्ट्रिया की ही सहायता करता था। इससे इटली यह समझ गया कि उसको त्रिराष्ट्र-सन्धि में रहने

से कोई लाभ नहीं है। अतः वह त्रिराष्ट्र-सन्धि का परित्याग करने का अवसर ढूंढने लगा। मित्रराष्ट्रों ने इटली के इस असन्तोष से लाभ उठाकर उससे १६१५ में लन्दन की गुप्त सन्धि कर ली। इसके अनुसार उन्होंने उसको ट्रीस्ट, टाइरोल, इस्ट्रिया, डाल्मेशिया तट का कुछ भाग तथा अल्बेनिया का कुछ भाग देने का आश्वासन दिया। इसके साथ-साथ उसको जर्मनी तथा टर्की के साम्राज्यों में से भी कुछ भाग देने का वादा किया। इस पर इटली ने धुरी राष्ट्रों का साथ छोड़कर मित्रराष्ट्रों की ओर से युद्ध में प्रवेश किया। उसका युद्ध में प्रवेश का उद्देश्य इङ्गलैंड, फ्रांस तथा रूस से भिन्न था। उसको जर्मनी से सुरक्षा पाने की चिन्ता नहीं थी। वास्तव में उसका उद्देश्य तो अपना साम्राज्य-विस्तार करना था।

इस युद्ध में इटली को दक्षिणी मोर्चे पर आस्ट्रिया का डटकर सामना करने का कार्य दिया गया था। इस मोर्चे पर इटली की सेना आस्ट्रिया की अपेक्षा बहुत अधिक थी। परन्तु फिर भी अपनी अयोग्यता के कारण इटली की सेना को कोई विशेष सफलता नहीं मिली। अक्टूबर १६१७ में आस्ट्रिया की सेना ने कैपोरेटो (Caporetto) के युद्ध में इटली को परास्त कर दिया। इटली के सैनिकों को इस प्रकार भागते देखकर विदेशी सेनानायकों ने इस घटना को सैनिक हड़ताल के नाम से सम्बोधित किया है। इसके बाद इटली ने पियावे नदी पर मोर्चाबन्दी की। इङ्गलैंड तथा फ्रांस के सेनाएं भी उसकी सहायता के लिए आ गई। फलतः जून १६१८ में आस्ट्रिया की सेना पराजित हो गई। इससे इटली के उत्साह में वृद्धि हो गई। तत्पश्चात् अमेरिका तथा इंगलैंड की सेना की सहायता से इटली ने विटोरियो-वेनेटो (Vittorio-Veneto) के युद्ध में आस्ट्रिया को भीषण पराजय दी। परन्तु इटली की इस विजय को अधिक महत्व नहीं दिया जा सकता। इस समय आस्ट्रिया दम तोड़ चुका था। उसके पास पर्याप्त मात्रा में भोजन, वस्त्र तथा युद्ध-सामग्री भी नहीं थी। वास्तव में कैपोरेटो का युद्ध-निर्णायक था। इस प्रकार युद्ध में इटली को बहुत अपमान उठाना पड़ा। सारा विश्व उसकी निर्बलता से परिचित हो गया।

महायुद्ध में इटली ने बहुत हानि उठाई थी। इस युद्ध में उसके सात लाख सैनिक काम आए थे तथा दस लाख घायल हुए थे। इस युद्ध में उसने बारह अरब डालर व्यय किए थे तथा उसकी तीन अरब डालर की सम्पत्ति नष्ट हो गई थी। इटली-निवासियों को यह आशा थी कि सन्धि के समय उनको पर्याप्त लाभ होगा; परन्तु उनका यह अनुमान गलत निकला। उनकी अपनी माँग की अपेक्षा बहुत कम लाभ प्राप्त हुए। इसी से इटली-निवासियों की यह धारणा बन गई थी कि 'युद्ध में तो उसने विजय प्राप्त की, परन्तु शान्ति को खो दिया।'[1] पेरिस के शान्ति-सम्मेलन में इटली के प्रतिनिधि ऑर्लैंडो ने अपनी मांगों को प्रस्तुत किया; परन्तु राष्ट्रपति विल्सन ने लन्दन की सन्धि को अस्वीकार कर दिया। इटली को एकमात्र

1. 'The war has been won and peace lost.'

टाइरोल, ट्रेन्टिनो, ट्रीस्ट, इस्ट्रिया, जारा, लगोस्टा टापू तथा डाल्मेशिया तट का कुछ भाग प्रदान किया गया। इटली एड्रियाटिक सागर पर स्थित फ्यूम (Fiume) के बन्दरगाह को प्राप्त करना चाहता था; परन्तु विल्सन ने राष्ट्रीयता के सिद्धान्त के आधार पर यह बन्दरगाह यूगोस्लाविया को दे दिया। इस पर अप्रसन्न होकर इटली-निवासियों ने शान्ति-सम्मेलन को छोड़ दिया। टर्की के जिन प्रदेशों को इटली चाहता था, वे टर्की तथा यूनान को प्रदान कर दिए गए। अफ्रीका में उसको लिबिया के पास का ही कुछ प्रदेश दिया गया; परन्तु इससे उसको संतोष नहीं हुआ। युद्ध-काल में इटली ने अल्बानिया पर अधिकार कर लिया था। अब वह यह चाहता था कि यह प्रदेश उसको मैण्डेट प्रणाली के आधार पर दे दिया जाय। परन्तु उसकी यह माँग स्वीकार नहीं की गई और उसको अल्बानिया खाली कर देना पड़ा। इससे इटली में बहुत असंतोष फैला। इस अवसर पर मुसोलिनी ने कहा था—'उपनिवेशों की शानदार दावत में इटली को कुछ भी नहीं मिला।' फलतः पेरिस के शान्ति-सम्मेलन से इटली के प्रतिनिधि निराश होकर लौटे।

जनता में असंतोष—इससे जनता में बहुत असंतोष हुआ। इसके लिए उन्होंने अपनी गृह-सरकार को दोषी ठहराया। उनका कहना था कि यदि सरकार अपनी सैनिक शक्ति में वृद्धि करती और जोरदार शब्दों में अपनी माँग को शान्ति-सम्मेलन में रखती तो मित्र-राष्ट्र उनको इस प्रकार कभी भी धोखा नहीं दे सकते थे। गृह-सरकार ने गत युद्ध के गद्दार सैनिकों के विरुद्ध मुकदमें चला कर असंतोष में और भी अधिक वृद्धि कर दी थी। फलतः जनतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली बहुत बदनाम हो गई और जनता किसी दूसरी शासन-प्रणाली की खोज करने लगी।

युद्धोत्तर इटली की अवस्था—इटली की युद्धोत्तर अवस्था के सम्बन्ध में बहुत मतभेद है। फासिस्टवादियों का कहना था कि इटली की युद्धोत्तर अवस्था बहुत खराब थी और उन्हीं के कार्यों से इटली का उद्धार हुआ था। उनका कहना था कि इटली वार्साय की सन्धि से असंतुष्ट था। उस समय इटली में कई राजनीतिक दल थे। दलों में परस्पर बहुत संघर्ष था। आन्तरिक झगड़ों के कारण देश की अवस्था बहुत खराब हो गई थी। सारे देश में अराजकता फैल गई थी। उसकी आर्थिक अवस्था बहुत खराब थी। सिक्के का मूल्य गिरता जा रहा था। नित्य प्रयोग में आने वाली वस्तुओं के दाम बहुत बढ़ गये थे। सरकारी बजट में प्रतिवर्ष घाटा रहता था। निर्धनता तथा समाजवादियों के प्रचार के कारण सरकारी पदाधिकारी जनता से कर वसूल नहीं कर पाते थे। हड़तालों की अधिकता के कारण देश का उत्पादन बहुत कम हो गया था। इस प्रकार फासिस्टवादियों ने अराजकता से इटली का उद्धार किया।

कुछ विद्वानों के मत उपर्युक्त मत के विरोध में हैं। एक सुप्रसिद्ध इटालियन इतिहासकार का मत है कि—'युद्ध के पश्चात् अन्य देशों की भाँति इटली में भी अव्यवस्था फैली। वहाँ पर भी हड़ताल तथा दंगे हुए; परन्तु देश की आर्थिक अवस्था अस्तव्यस्त नहीं हुई। सन् १९१९-२२ में वहां सम्मिलित-पूंजी वाली कम्पनियों की

संख्या तथा पूंजी में वृद्धि हुई। बैंकों में पहले की अपेक्षा अधिक धन जमा हुआ तथा सरकार की आमदनी में वृद्धि हुई।' १९२१ के अन्त में इटली के एक सुप्रसिद्ध अर्थ-शास्त्री ने लिखा था—'इटली की अवस्था में बहुत अधिक सुधार हो गया है। कृषि तथा उद्योग-धन्धे सामान्य अवस्था में आ गए हैं। आन्तरिक तथा बाह्य व्यापार उन्नति पर है।' १९२२ में फासिस्ट कैबिनेट के अर्थ-मन्त्री ने लिखा है 'कोई भी हमारी आर्थिक अवस्था से निराश नहीं है। अमेरिका तथा इंगलैंड के बड़े-बड़े बैंक हमको ऋण देने के लिए तैयार है।' दिसम्बर १९२० में मुसोलिनी ने अपने एक पत्र में लिखा था—'मजदूरों के मनों में भारी अंतर आ गया है तथा उन्होंने अपने झगड़े शान्ति-पूर्वक तय कर लिए हैं।' जुलाई १९२१ में मुसोलिनी ने कहा था—बोल्शे-विज्म का खतरा समाप्त हो गया है। अब अपनी चर्चा करना व्यर्थ है।' उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि युद्धोत्तर इटली की आर्थिक अवस्था ठीक थी। अन्य देशों में उसकी साख थी तथा बड़े-बड़े बैंक उसको ऋण देने के लिए तैयार थे।

फासिस्टवाद के उदय के कारण— इटली में फासिस्टवाद के उदय के निम्न-लिखित कारण थे—

(१) **जनता का असंतोष** –पेरिस के शान्ति-सम्मेलन में इटली को अपनी आकाँक्षाओं के अनुसार लाभ नहीं हुआ। बहुत से प्रदेश जिन पर वह अधिकार करना चाहता था, वे उसको प्राप्त नहीं हुए। फ्यूम के न मिलने से जनता में बहुत अधिक असंतोष था। फलतः सितम्बर १९१९ में डेन्जियो (D' Aunnnzio) नामक एक इटैलियन कवि ने बलपूर्वक नगर पर अधिकार कर लिया तथा वह नगर स्वतन्त्र शासक हो गया। इटली की सरकार में डेन्जियो को दबाने तक का भी साहस नहीं था। डेन्जियों की वीरता से इटलोनि-वासी बहुत प्रभावित हुए। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर फासिस्ट दल ने यह घोषित किया कि गृह सरकार की अयोग्यता के कारण ही हमको उक्त नगर को छोड़ना पड़ा है। इससे युद्ध में भाग लेने वाले सैनिक भी फासिस्ट पार्टी में सम्मिलित हो गये। इससे फासिस्ट पार्टी की शक्ति में बहुत वृद्धि हो गई तथा जनतन्त्र सरकार बदनाम हो गई। जनता तथा देश-भक्त नेता जनतन्त्रवादी नेताओं को घृणा से परोप-जीवी (Parasite) कहने लगे।[1]

(२) **आर्थिक असंतोष**—युद्ध-काल में इटली ने अपनी सेना तथा युद्ध-सामग्री पर बहुत धन व्यय किया था। इससे उसका राष्ट्रीय ऋण बहुत बढ़ गया था। सिक्के का मूल्य गिरने लगा था। कृषि तथा उद्योग-धंधों को भी इससे हानि हुई थी। जनता में बेकारी बहुत बढ़ गई थी। बाजारों की कमी के कारण उसका विदेशी व्यापार बहुत कम हो गया था। छटनी के कारण बहुत से सैनिक बेकार हो गए थे। इटली की जन-संख्या में वृद्धि हो रही थी; परन्तु धनाभाव तथा विदेशी राज्यों के प्रतिबन्धों के कारण वे दूसरे राज्यों में जाकर बस नहीं सकते थे। इटली-निवासी अपनी इन कठिनाइयों का कारण जनतन्त्रवादी सरकार को मानते थे।

---

1. 'Filthy parasides on the bitter blood of the nation.'

(३) **राष्ट्रीयता पर आघात**—१९वीं शताब्दी में यूरोप का प्रायः प्रत्येक देश अपने आर्थिक हितों की पूर्ति तथा गौरव की वृद्धि के लिए साम्राज्य-विस्तार का प्रयास कर रहा था। अतः इटली ने ट्यूनिस पर अधिकार करना चाहा। परन्तु १८८१ में जर्मनी की प्रेरणा से फ्राँस ने उस पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् इटली ने एबीसीनिया पर अधिकार करने के लिए उस पर आक्रमण किया; परन्तु एबीसीनिया ने १८९६ में अडोवा के युद्ध में इटली को पराजित कर दिया। अपने इस राष्ट्रीय अपमान के लिए इटली-निवासी जनतन्त्रवादी सरकार को दोषी ठहराते थे।

(४) **भविष्यवादी आन्दोलन** (Futurist Movement)—इस आन्दोलन का नेता मैरिनेटी था। वह भूतकाल की समस्त मान्यताओं का विरोधी था। इसी आधार पर उसने जनतन्त्र, उदारता तथा शान्तिवाद का विरोध किया। वह युद्ध को एक आवश्यक कार्य मानता था तथा विश्व की सफाई के लिए इसको आवश्यक समझता था। इस विचार-धारा से भी फासिस्टवाद का बहुत प्रोत्साहन किया।

(५) **हीगेल के सिद्धांतों का प्रचार**—हीगेल का जन्म जर्मनी में हुआ था। वह बहुत उग्र विचारक था। वह राज्य को विश्वात्मा अर्थात् ईश्वर का पार्थिव रूप मानता था।[1] ऐसा ईश्वरीय राज्य कभी भी गलती नहीं कर सकता था। उसके अनुसार नागरिक तथा राज्य के अधिकारों के मध्य कभी संघर्ष नहीं हो सकता, क्योंकि व्यक्ति के वही अधिकार हो सकते हैं, जो कि राज्य उसको प्रदान करता है। मनुष्य राज्य के आदेशों का पालन करके ही उन्नति कर सकता है। हीगेल के इस दर्शन का जेण्टिल (Gentile) तथा प्रोजोलीन (Prezzoline) नामक दो विद्वान् इटली में खूब प्रचार कर रहे थे। इस सिद्धाँत के प्रचार पर ही इस मत की प्रतिष्ठा हुई कि व्यक्ति का कोई महत्व नहीं है, सब कुछ इटली के लिए है।[2] हीगेल का सिद्धांत व्यक्ति को राज्य के एकदम अधीन कर देता है। अतः इससे फासिस्टवाद को बहुत प्रोत्साहन मिला।

(६) **मार्क्सवाद तथा संघवाद का उदय**—मार्क्सवाद तथा संघवाद दोनों ही राष्ट्रीयता को महत्व देते थे। अन्तर्राष्ट्रीयता का इनके लिए कोई महत्व न था। इन दोनों वादों से कृषकों तथा मजदूरों में उग्र राष्ट्रीयता की भावना का प्रादुर्भाव हुआ। इससे फासिस्टवाद के विकास को बहुत प्रोत्साहन मिला।

(७) **वाममार्गी दलों का उदय**—देश में अनेक राजनीतिक दल थे। आनुपातिक-निर्वाचन प्रणाली के कारण प्रायः प्रत्येक दल के प्रतिनिधि लोक-सभा में पहुंच जाते थे। परन्तु किसी भी दल को इतना बहुमत नहीं मिलता कि वह स्वतन्त्र रूप से अपना मन्त्रि-मण्डल बना सके। इससे संयुक्त मन्त्रि-मण्डलों का निर्माण किया जाता था। फलतः सदस्य देश की समस्याओं के सम्बन्ध में विचार न कर मन्त्रि-मण्डल को जोड़ कर सत्ता अपने हाथ में ग्रहण करने का प्रयास किया करते थे। १९१९

---

1. 'State is the supreme manifestation of God on earth'.
2. 'Nothing for the individual, all for Italy.'

के निर्वाचन में बहुमत उदारवादियों का था। इनका नेता जियालिटी था। दूसरा दल कैथोलिक-पॉपुलर था। उसका नेता स्टर्जो नामक एक पादरी था। तीसरा दल सोशल डेमोक्रेट था। उसका नेता बोनोमी था। ये तीनों ही दल शान्ति-प्रिय तथा गणतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली में विश्वास रखते थे; परन्तु ये पारस्परिक विरोध के कारण आपस में मिलकर उग्रवादियों का विरोध न कर सके। इनकी आपसी फूट का फासिस्टवादियों ने लाभ उठाया।

(८) **सरकार की अकर्मण्यता**—इटली की जनता वार्साय-सन्धि की घोर विरोधी थी। इसके साथ-साथ जनता में बेकारी भी बढ़ रही थी। फलत: जनता में बहुत असन्तोष था; परन्तु तत्कालीन सरकार ने इस असन्तोष को दूर करने के लिए कोई प्रयास नहीं किया। जनता की सामूहिक निर्धनता के कारण देश में समाजवादी दल की बहुत उन्नति हुई। १९१९ के निर्वाचन में इसको चेम्बर ऑफ डिप्टीज (Chamber of Deputies) में $\frac{1}{3}$ स्थान प्राप्त हुए। इन्होंने ग्राम-ग्राम में अपनी सभाओं (Red Leagues) की स्थापना की। ये किसान तथा मजदूरों को जमींदारों से जमीन छीनकर उसको परस्पर छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँटने के लिए प्रोत्साहित किया करते थे। १९२० तक इन्होंने १०० कारखानों पर अधिकार कर लिया और वे स्वयं उनको चलाने लगे। इस प्रकार समाजवादियों का प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया था। फलत: जून १९२१ में जियालिटी ने प्रधान मन्त्रि-पद से त्याग-पत्र दे दिया। इसके पश्चात् बनने वाले मन्त्रि-मण्डलों में समाजवादियों तथा फासिस्टवादियों का संघर्ष बहुत अधिक बढ़ गया। सरकार ने बढ़ते हुए इस संघर्ष को रोकने का कोई प्रयास नहीं किया तथा इससे सम्बन्धित अपराधियों को कभी दण्ड नहीं दिया। इससे फासिस्टवादियों को अपना विकास करने का पूरा अवसर मिला। मुसोलिनी के कुशल नेतृत्व में उन्होंने समाजवादियों पर विजय प्राप्त कर ली। जियालिटी का यह विचार था कि समाजवादी तथा फासिस्टवादी आपस में संघर्ष कर नष्ट हो जायेंगे और इसके पश्चात् उसको शक्ति प्राप्त करने का अवसर मिल जायगा। परन्तु उसका यह सोचना गलत सिद्ध हुआ और अन्त में मुसोलिनी ने शासन की समस्त सत्ता अपने हाथ में ले ली। यदि इस समय शासन सत्ता किसी योग्य तथा साहसी नेता के हाथ में होती तो परिस्थिति को काबू में किया जा सकता था, क्योंकि अभी तक सेना पूर्णतया राज-भक्त थी। इस प्रकार योग्य तथा साहसी नेता के अभाव में इटली के जनतन्त्र का अन्त हो गया।

बेनिटो मुसोलिनी—मुसोलिनी का जन्म १८८३ में रोमानिया नामक ग्राम के एक समाजवादी लोहार के घर में हुआ था। वह बचपन से ही अपने पिता के उग्र विचारों से बहुत अधिक प्रभावित हुआ। उसकी माता अध्यापिका थी। उसी के प्रोत्साहन से वह एक छोटी सी पाठशाला में अध्यापक हो गया। उसने अपने जीवन-निर्वाह के लिए कई कार्य किये थे। उसने सीमेन्ट के बोरों को ढोने, लोहे की छड़ों को मोड़ने तथा खेतों में फावड़े से ढेले हटाने का कार्य किया था। इसके पश्चात् उच्च

शिक्षा प्राप्त करने के लिए वह स्विट्जरलैंड चला गया। वहाँ उसने मजदूर संघों की स्थापना के लिये बहुत कार्य किया। वहाँ के समाजवादी पत्रों में उसने क्रान्तिकारी लेख लिखने प्रारम्भ किये। इसके उग्र विचारों से स्विट्जरलैंड की सरकार घबरा गई और उसने इसको अपने देश से बाहर निकाल दिया। इसके पश्चात् वह इटली में वापस आ गया और वहाँ भी क्रान्तिकारी प्रचार करता रहा। अपने उग्र विचारों के कारण ही उसको १९०८ में कारावास का दण्ड दिया गया। कुछ दिन पश्चात् वह जेल से मुक्त कर दिया गया। १९१२ में वह 'अवन्ति' नामक एक समाजवादी पत्रिका का सम्पादक हो गया। इस समय उसके विचारों में मार्क्सवाद तथा संघवाद का सम्मिश्रण था। वह चर्च तथा साम्राज्यवाद का भी विरोधी था। वह इटली के राष्ट्रीय झण्डे का भी विरोधी था। उसको वह ऐसा कपड़े का टुकड़ा कहता था जिसको कि गोबर की पहाड़ी पर लगा दिया गया था।[1]

१९१४ में यूरोप में प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ हो गया। अधिकांश समाजवादी इटली के युद्ध में सम्मिलित होने के विरोधी थे। मुसोलिनी भी इसी विचारधारा का समर्थक था। परन्तु शीघ्र ही उसने अपनी इस विचारधारा का परित्याग कर दिया। वह यह प्रचार करने लगा कि इटली को मित्र राष्ट्रों का पक्ष लेकर युद्ध में सम्मिलित हो जाना चाहिये तथा आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर परतन्त्र इटली को अपने अधीन कर ले। इन विचारों के कारण उसको समाजवादी पत्रिका अवन्ति के सम्पादक-पद से पृथक् कर दिया गया। अपने विचारों के प्रचार के लिए मुसोलिनी ने पोपोलो डी इटेलिया (Popolo d' Italia) नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। कुछ विद्वानों का यह मत है कि इस प्रचार के कारण ही इटली ने जर्मनी तथा आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। मुसोलिनी ने एक स्थान पर लिखा था—'आज जो युद्ध हो रहा है, वह जनता का युद्ध है, आज का यह युद्ध कालान्तर में क्रान्ति का स्वरूप ग्रहण कर लेगा।' मुसोलिनी ने भी युद्ध में एक सैनिक के रूप में प्रवेश किया; परन्तु वह वहाँ युद्ध करता हुआ घायल हो गया। अतः वह वापस आ गया। ठीक होने पर वह पुनः अपनी पत्रिका का सम्पादन करने लगा। इटली के साम्यवादी रूस की बोल्शेविक क्रान्ति से बहुत प्रभावित हुए। वे अपने देश में भी इसी प्रकार की क्रान्ति करना चाहते थे; परन्तु मुसोलिनी ने उनके विरोध में प्रचार करना प्रारम्भ किया।

फासिस्ट पार्टी—फासिस्ट (Fascist) शब्द इटली के फैसिओ (Fascio) शब्द से बना है, जिसका अर्थ वर्ग (Group) होता है। सर्वप्रथम फासिस्ट दल की स्थापना मार्च १९१९ में बोल्शेविज्म के विरोध में हुई थी। मुसोलिनी का कहना था—'फासिस्ट लोग न पार्टी हैं, न पार्टी बनना चाहते हैं और न पार्टी बन सकते हैं। ......वास्तव में फासिस्ट पार्टी विरोधी आन्दोलन है।' इससे फासिस्ट पार्टी का खूब प्रचार होता था। उसकी पार्टी में अवकाश-प्राप्त सैनिक, मजदूर, समाजवादी,

1. 'A rag to be planted on a dung hill.'

विद्यार्थी, जमींदार, पूँजीपति तथा मध्यम वर्ग के लोग सम्मिलित हो गये। मुसोलिनी ने अपनी योग्यता से इन सबको एक सूत्र में आबद्ध कर लिया। इस दल के स्वयं-सेवक काली कमीज पहनते थे। उनका अपना अलग भण्डा था। वे अस्त्र-शस्त्र धारण करते थे। अनुशासन उनको बहुत प्रिय था। मुसोलिनी उनका प्रधान कमाण्डर (Duce) था। उसके ओजस्वी भाषणों का जनता पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता था। १६१६ में उसने मिलान में अपने दल का संगठन किया और अपने घोषणा-पत्र में उसने निम्नलिखित बातों को स्थान दिया—

(१) हथियार बनाने वाले कारखानों का राष्ट्रीयकरण किया जाय।

(२) युद्ध-काल में पूँजीपतियों ने जो मुनाफे उठाये हैं उनका ८५% जब्त कर लिया जाय।

(३) कुछ उद्योग-धन्धों पर मजदूरों का नियन्त्रण स्थापित कर दिया जाय।

(४) चर्च की सम्पत्ति को जब्त कर लिया जाय।

(५) मजदूरों से दिन में ८ घण्टे से अधिक कार्य न लिया जाय।

(६) सार्वजनिक बयस्क मताधिकार को स्वीकार कर लिया जाय।

(७) साम्राज्यवाद का विरोध किया जाय।

(८) इटली राष्ट्र-संघ की सदस्यता ग्रहण कर ले।

(६) देश के लिये एक नया संविधान बनाने के लिये एक विधान सभा की स्थापना की जाय।

(१०) फ्यूम तथा डालमेशिया पर इटली का अधिकार स्वीकार कर लिया जाय।

इस घोषणा-पत्र का जनता में बहुत प्रचार हुआ। इससे फासिस्ट दल की शक्ति में बहुत वृद्धि हुई। इसका अनुमान इन आँकड़ों से लगाया जा सकता है—१६१६ में इटली में फासिस्ट सभाओं की संख्या २२ तथा उनके सदस्यों की संख्या १७ हजार थी। १६२० में फासिस्ट सभाओं की संख्या ११८ तथा उनके सदस्यों की संख्या ३० हजार हो गई। १६२१ में फासिस्ट सभाओं की संख्या २२०० तथा उनके सदस्यों की संख्या तीन लाख हो गई। इसके पश्चात् मुसोलिनी ने देश में एक आन्दोलन (Squandrist Movement) चलवाया। उसका उद्देश्य आतंकपूर्ण साधनों से विरोधी दलों का विनाश करना था। उन्होंने बलपूर्वक समाजवादी तथा साम्यवादी पार्टी की सभाओं पर आक्रमण किये तथा उनके कार्यालयों पर अधिकार कर लिया। एक फासिस्ट इतिहासकार ने बड़े घमण्ड के साथ लिखा है कि उनको बल-प्रयोग से कई स्थानों पर महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। सरकार फासिस्टवादियों के इन अनुचित कार्यों को रोकने में असमर्थ रही।

फासिस्टवादियों की रोम पर चढ़ाई—१६२०-२१ में फासिस्टवादियों तथा साम्यवादियों में निरन्तर संघर्ष होता रहा। समाजवादी अराजकता का प्रचार कर रहे थे। इटली की अवस्था बराबर खराब होती जा रही थी। सरकार [illegible] में

को दबाने में असमर्थ थी। फलतः मुसोलिनी ने आगे बढ़ने का निर्णय किया। अक्टूबर १९२२ में नेपिल्स में फासिस्ट दल का सम्मेलन हुआ। इसमें ४० हजार फासिस्ट स्वयं सेवकों ने अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर तथा काली कमीज धारण कर भाग लिया। इस सम्मेलन में मुसोलिनी ने घोषणा की—'यदि उसकी निम्नलिखित मांगें स्वीकार न की गईं तो वह अपने स्वयं-सेवकों की सहायता से रोम पर चढ़ाई कर देगा। इस चढ़ाई के लिये विटोरियो वेनेटो के युद्ध की तिथि (२७ अक्तूबर) निश्चित की गई। मुसोलिनी ने निम्नलिखित मांगें प्रस्तुत कीं—

(१) कैबिनेट में फासिस्ट दल के पाँच सदस्यों को सम्मिलित किया जाय।
(२) नवीन चुनाव करने की घोषणा की जाय।
(३) सरकार विदेशी नीति में दृढ़ता का पालन करे।

इटली की सरकार ने इन माँगों को अस्वीकार कर दिया। फलतः निर्धारित तिथि को ५० हजार फासिस्ट स्वयं-सेवकों ने रोम की ओर प्रस्थान किया। उन्होंने रेलवे स्टेशनों, डाकघरों तथा अन्य सरकारी कार्यालयों पर अधिकार कर लिया। सरकार ने राजा से यह माँग की कि वह मार्शलला की घोषणा कर दे। परन्तु राजा इसके लिए तैयार नहीं हुआ। उसका यह विचार था कि मुसोलिनी शासन में सम्मिलित होकर कानून तथा व्यवस्था का प्रधान अनुयायी हो जायगा। ३० अक्टूबर को बिना किसी विरोध के वह अपने ५० हजार स्वयंसेवकों के साथ रोम में प्रविष्ट हो गया। ऐसा कहा जाता है कि मुसोलिनी सोता हुआ रोम में पहुंचा था। इस प्रकार रक्त की एक बूंद गिराए बिना ही उसने अपने ५० हजार स्वयंसेवकों की सहायता से रोम पर अधिकार कर लिया।

मुसोलिनी का प्रधान मन्त्री बनना—मुसोलिनी ने सम्राट् विक्टर इमानुएल तृतीय से यह मांग की कि वह सत्ता उसको सौंप दे। राजा के आदेश पर पुराने मन्त्रि-मण्डल ने त्याग पत्र दे दिया तथा गृह-युद्ध के निवारण के लिए मुसोलिनी को अपना मन्त्रि-मण्डल बनाने का अधिकार दे दिया गया। फलतः ३१ अक्टूबर १९२२ को मुलोलिनी ने अपने मन्त्रिमण्डल का निर्माण किया। अभी तक मुसोलिनी को स्वयं भी अपनी सफलता पर संदेह था, परन्तु भाग्य ने उसका साथ दिया। उसने विटोरियो–वेनेटो के युद्ध के विजेता डियाज को सेना का प्रधान अधिकारी बनाकर सेना की स्वामि-भक्ति प्राप्त कर ली। अधिकांश जनता वर्तमान शासन प्रणाली से असंतुष्ट थी। अतः उसने इस क्रांतिकारी परिवर्तन का स्वागत किया। इस प्रकार मुसोलिनी को इटली का भाग्य-विधाता तथा सर्वे-सर्वा बनने का पूरा अवसर मिल गया।

सत्ता का सुसंगठन—मुसोलिनी ने सत्ता प्राप्त कर उसको सुसंगठित करने के लिए निम्नलिखित महत्वपूर्ण कार्य किये—

(१) दलदली क्षेत्रों को सुखाकर वहाँ सुन्दर नगरों की स्थापना की गई।
(२) नेपिल्स तथा सिसली के डाकुओं का दमन किया गया।

(३) मजदूरों की दशा सुधारने के लिए प्रयास किया गया, परन्तु उनको हड़ताल करने का अधिकार न रहा।

(४) उसने संसद को भयभीत कर शासन की समस्त सत्ता अपने हाथ में ले ली। उसने सभी महत्वपूर्ण पदों पर अपने विरोधियों को पदच्युत कर उनके स्थान पर अपने विश्वासपात्र व्यक्तियों को नियुक्त किया।

(५) सन् १९२३ में उसने एक नवीन कानून पास कराया जिसके अनुसार यह तय किया गया कि जिस दल को निर्वाचन में बहुमत प्राप्त हो, उसे लोक सभा में $\frac{2}{3}$ स्थान प्रदान कर दिये जायें जिससे कि बहुमत दल भली प्रकार शासन का संचालन कर सके तथा शेष $\frac{1}{3}$ स्थान अन्य दलों में बाँट दिये जायें।

(६) उपर्युक्त नियम के आधार पर अप्रैल १९२४ में नया निर्वाचन हुआ। इसमें फासिस्ट दल को बहुमत प्राप्त हुआ। समाजवादी दल के नेता मेटीओटी (Matteotti) ने सरकार पर निर्वाचन कानून को भंग करने का आरोप लगाया और यह मांग की कि इस निर्वाचन को भंग कर नया निर्वाचन कराया जाय। परन्तु इस घटना के तीन दिन पश्चात् ही मेटीओटी का बध कर दिया गया।

(७) सन् १९२५ के प्रारम्भ में ही मुसोलिनी के हाथ में पूर्ण सत्ता आ गई थी और उसने अपने विरोधी दलों को कुचलने के लिए पूरा प्रयास किया। स्थानीय शासन का अन्त कर दिया गया तथा गैर फासिस्ट वकीलों से वकालत करने का अधिकार छीन लिया गया।

(८) सन् १९२६ में इटली के समस्त विरोधी दलों को अवैध घोषित कर दिया गया। इसी वर्ष कैबिनेट प्रणाली का अन्त कर दिया गया। प्रधान-मन्त्री संसद के प्रति उत्तरदायी न होकर राजा के प्रति उत्तरदायी होगा। इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि अब राजा के हाथ में कोई वास्तविक सत्ता न रह गई थी।

(९) समाचार-पत्रों पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिये गये। इससे अनेक समाचार-पत्रों का प्रकाशन बन्द हो गया।

(१०) राजद्रोहियों को गिरफ्तार करने के लिए पुलिस को व्यापक अधिकार दिये गये। गिरफ्तार किये हुये व्यक्तियों को अनिश्चित काल तक जेल में बन्द रक्खा जा सकता था। इस आधार पर विरोधी नेताओं को गिरफ्तार कर जेलों में डाल दिया गया। बहुत से नेता प्राण-रक्षा के लिये विदेशों में भाग गये।

(११) राजनीतिक अपराधियों पर मुकदमा चलाने के लिए एक विशेष प्रकार के न्यायालयों की स्थापना की गई। न्यायालयों में जूरी की प्रथा को तोड़ दिया गया।

(१२) विद्यालयों में फासिस्ट सिद्धान्तों की शिक्षा देना अनिवार्य कर दिया गया।

(१६) प्रशासन से भ्रष्टाचार को दूर करने का पूरा प्रयास किया गया।

(१४) सेना का सुसंगठन किया गया। इससे विदेशों में इटली की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई।

मुसोलिनी की तानाशाही की स्थापना—मुसोलिनी जनतन्त्र का विरोधी था। वह बहुमत को घृणा की दृष्टि से देखता था। उसके अनुसार राज्य सर्वोपरि है। समस्त वस्तुयें राज्य में हैं। राज्य से बाहर कुछ भी नहीं है। वह राज्य को साध्य तथा व्यक्ति को साधन मानता है। इस प्रकार मुसोलिनी राज्य के सम्मुख व्यक्ति की सत्ता को स्वीकार नहीं करता था। मुसोलिनी ने शासन संचालन के लिए निम्न-लिखित अंगों की व्यवस्था की—

(१) **मिनिस्ट्री** (Ministry)—इसका संगठन कैबिनेट की भांति किया गया था। मुसोलिनी के समर्थकों को ही इसमें स्थान दिया गया था।

(२) **ग्राण्ड कौंसिल ऑफ फासिस्ट पार्टी** (Grand Council of Fascist Party)—यह फासिस्ट दल की समिति थी और मुसोलिनी इसका नेता था। दल के प्रमुख २५ व्यक्ति इसके सदस्य थे।

(३) **पार्लियामेन्ट** (Parliament)—पार्लियामेंट में दो भवनों की व्यवस्था की गई थी—

(१) **सीनेट** (Senate)—सीनेट के सदस्यों की नियुक्ति मुसोलिनी करता था। इसके सदस्य जन्म भर के लिये बनाये जाते थे।

(२) **चैम्बर ऑफ डिपुटिज** (Chamber of Deputies)—इसके सदस्यों की नियुक्ति मन्त्रि-मण्डल तथा ग्राण्ड कौंसिल आफ फासिस्ट पार्टी द्वारा होती थी।

इस प्रकार शासन की सम्पूर्ण सत्ता मुसोलिनी के हाथ में आ गई थी। इटली की जनतन्त्रात्मक सरकार जिन कार्यों को करने में असफल रही थी; मुसोलिनी उनको पूर्ण करने का आश्वासन दे रहा था। अत: उसको समस्त इटली की जनता का समर्थन प्राप्त था।

फासिस्टवाद के सिद्धान्त—प्रथम महायुद्ध के पश्चात् इटली में फासिस्टवाद की स्थापना हुई। इसका संस्थापक मुसोलिनी था। मार्क्स तथा लेनिन की भांति मुसोलिनी ने फासिस्टवाद के आधारभूत सिद्धान्त निर्धारित नहीं किए थे। उसने राजनीतिक तथा नागरिक जीवन से सम्बन्धित कोई घोषणा-पत्र प्रकाशित नहीं किया था। इसलिए सेबाइन नामक एक विद्वान् ने कहा है कि 'फासिज्म अस्पष्ट है, क्योंकि यह विभिन्न स्रोतों से प्राप्त विभिन्न विचारों का संकलन मात्र है। इन सिद्धान्तों को को परिस्थिति की आवश्यकतानुसार संग्रहीत किया गया है।' फिर भी फासिस्टवाद के कुछ प्रमुख सिद्धांतों का इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है—

/ **सर्व-सत्तात्मक राज्य का समर्थन**—मुसोलिनी सामूहिक कल्याण के लिए एक दल तथा एक नेता की सत्ता में विश्वास रखता था। अत: वह समस्त राष्ट्र का प्रधान कमाण्डर (Duce) बन गया। शासन की समस्त सत्ता उसके हाथ में आ गई। राज्य की राजनीतिक, सैनिक तथा आर्थिक आदि समस्त संस्थाओं पर उसका नियंत्रण स्थापित हो गया। राष्ट्र की नीति के संचालन करने का कार्य उसी के हाथ में था। ग्राण्ड कौंसिल ऑफ फासिस्ट पार्टी तथा उसके नेता का शासन पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित हो गया था।

१ **व्यक्तिवाद का विरोधी**—फासिस्टवाद व्यक्तिवाद का विरोधी है। मुसोलिनी का कहना था कि 'राज्य का उद्देश्य राष्ट्र को शक्तिशाली बनाना है न कि व्यक्ति के कल्याण के लिए प्रयास करना। राज्य के बाहर अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता। वह राज्य में ही रह कर तथा उसके प्रति अपने कर्तव्यों की पूर्ति कर ही उन्नति कर सकता है।' एक दूसरे स्थान पर उसने कहा था—'समस्त वस्तुयें राज्य में हैं। राज्य के बाहर कोई वस्तु नहीं है।' इस प्रकार मुसोलिनी राज्य को साध्य तथा व्यक्ति को साधन मानता था। वह व्यक्ति को उतनी ही स्वतन्त्रता देना चाहता था, जितनी कि राज्य की सुविधा में बाधा न डाले। व्यक्ति को कितनी स्वतन्त्रता दी जाय, इसका निर्णय राज्य ही करेगा। सारांश में यही कहा जा सकता है कि फासिस्ट शासन के अन्तर्गत राष्ट्र के हित के लिए व्यक्ति का बलिदान किया जा सकता है।

जनतन्त्र का विरोध—फासिस्टवाद जनतन्त्र का भी विरोधी है। जनतन्त्र को वह पश्चिमी यूरोप के धनी देशों के आमोद-प्रमोद का एक साधन मानता था। बहुमत को वह घृणा की दृष्टि से देखता था। संख्या की अपेक्षा वह गुण को अधिक महत्व देता था। वह हजार मूर्खों की बात की अपेक्षा एक बुद्धिमान् की बात को महत्व देता था। जनमत का उसकी दृष्टि में कोई स्थान न था। नेता की आज्ञा ही सर्वोपरि मानी जाती थी। फासिस्ट शासन में मनुष्यों के कोई मौलिक अधिकार न थे। अधिकार तो एकमात्र नेता के थे। जनता से तो एकमात्र कर्तव्य पालन की ही आशा की जाती थी। स्थानीय शासन का अन्त कर दिया गया था। लोक सभा के जनतन्त्रात्मक निर्वाचनों का अन्त कर दिया गया था। न्यायालयों से जूरी की प्रथा की समाप्ति कर दी गई थी। जनता के सम्भाषण तथा प्रकाशन के अधिकार पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिये गये थे। इससे अनेक समाचार-पत्रों का प्रकाशन बन्द हो गया। समस्त देश में गुप्तचरों का जाल सा बिछा दिया गया। इससे जनता के स्वतन्त्र विचार-प्रकाशन का अन्त हो गया।

२ **साम्यवाद का विरोध**—फासिस्टवाद साम्यवाद का भी विरोधी है। यह ऐतिहासिक भौतिकवाद को नहीं मानता। इस सिद्धान्त के आधार पर मनुष्य जाति के समस्त इतिहास का निर्माण आर्थिक आधार पर हुआ है। इसके विरोध में फासिस्टवाद का मत है कि इतिहास के निर्माण में राजनीतिक घटनाओं का भी बहुत महत्व है। इसके साथ-साथ यह वर्ग संघर्ष को भी स्वीकार नहीं करता। यह वर्ग संघर्ष के स्थान पर सब वर्गों के सहयोग पर जोर देता है। इसके अनुसार साम्यवाद द्वारा सबको सुख प्राप्त नहीं हो सकता। इसके अनुसार राज्य के हित के लिए किसान, मजदूर तथा पूँजीपति आदि सब पर आर्थिक नियन्त्रण होना चाहिए। इसी के आधार पर सबको सुख प्राप्त हो सकता है।

स्वतन्त्र व्यापार का विरोध—फासिस्टवादी स्वतन्त्र व्यापार के विरोधी हैं। उनका कहना है कि आज के युग में अनेक आर्थिक समस्यायें उत्पन्न हो गई हैं। अतः आर्थिक व्यवस्था में सरकार का हस्तक्षेप होना स्वाभाविक हो गया है।

शान्ति का विरोध—फासिस्टवाद शान्ति का विरोधी तथा युद्ध का समर्थक है। राष्ट्र-संघ ने विश्व के सम्मुख शान्ति का आदर्श रक्खा था, परन्तु इसके विरोध में मुसोलिनी ने युद्ध के सिद्धान्त को महत्ता देते हुए कहा—'युद्ध ही समस्त मानवीय शक्ति को उच्चतम शिखर तक पहुंचाता है तथा जो युद्ध का सामना करने का साहस रखते हैं, उन व्यक्तियों पर श्रेष्ठता की मुहर लगा देता है।' शान्ति के सम्बन्ध में मुसोलिनी के विचार इस प्रकार हैं—'शान्ति उस सरोवर के समान है जहाँ जल स्थिर रहता है। उन्नति का अर्थ है—आगे बढ़ना तथा आगे बढ़ने का अर्थ है, दूसरों को पद-दलित करना।' इस प्रकार शान्ति के विरोध का अर्थ है—शक्ति प्राप्त करना तथा शक्ति प्राप्त करने का अर्थ है—साम्राज्य विस्तार।' मुसोलिनी नागरिकों को आगे बढ़ने तथा प्रत्येक संकट का सामना करने की शिक्षा देता था। एक बार उसने भाषण देते हुए कहा था—'तुम खतरनाक बन कर जीवन व्यतीत करो। यदि मैं आगे बढ़ता हूं तो मेरा नेतृत्व स्वीकार करो अन्यथा मुझको गोली मार दो। मैं शान्ति का विरोधी हूं। जिस प्रकार स्त्रियों को गर्भ धारण करने का कष्ट सहन करना पड़ता है, उसी प्रकार पुरुषों को युद्ध में जाकर कष्ट सहन करना चाहिए।' फासिस्ट शासन के अन्तर्गत बच्चों को प्रारम्भ से ही खतरनाक बनने की शिक्षा दी जाती थी। वास्तव में मुसोलिनी समस्त इटली को सैनिक राष्ट्र बनाना चाहता था। कार्ली महोदय ने ठीक कहा था—'युद्ध में ही फासिस्टवाद का जन्म हुआ है तथा युद्ध में ही इसका विकास होगा।'

बुद्धिवाद से विरोध—फासिस्टवाद बुद्धिवाद का भी विरोधी है। तर्क द्वारा खोज करने के सिद्धान्त में उसका विश्वास नहीं है। उसके अनुसार राज्य जो कहे वही ठीक है। राजनीतिक क्षेत्र में फासिस्टवाद अज्ञान का समर्थक है। फासिस्टवादी शासन के अन्तर्गत जनता को अपने नेता की आज्ञाओं का आँख मींच कर पालन करना चाहिए। नेता तर्क के आधार पर ही नहीं अपितु भावना के आधार पर जनता का सहयोग प्राप्त करे। जनता तर्क के आधार पर नहीं अपितु जोश के आधार पर कार्य करे।

फासिस्ट युवक संगठन—फासिस्टवादियों ने युवकों को अपना समर्थक बनाने के लिए फासिस्ट युवक संगठन का निर्माण किया तथा प्राइमरी और माध्यमिक पाठशालाओं में फासिस्टवादी सिद्धान्तों की शिक्षा देना अनिवार्य कर दिया। इस शिक्षा का उद्देश्य युवकों को कट्टर फासिस्टवादी बनाना था। आठ वर्ष से कम आयु के लड़कों के लिए प्रि-बालिला (Pre-Ballila) तथा आठ से १४ वर्ष की आयु के बच्चों के लिए बालिला (Ballila) नामक संस्थाओं का संगठन किया गया। इन संस्थाओं में बच्चों को बालचरों की भाँति शिक्षा दी जाती थी। १४ वर्ष से १८ वर्ष के बच्चों के लिए अवानगार्डिया (Avanguardia) नामक संस्था की स्थापना की गई थी। इसके पश्चात् युवकों को युवक-फासिस्ट (Giovani Fascist) नामक संस्था के अन्तर्गत तीन वर्ष तक परीक्षण लेना होता था। इसके पश्चात् उनको फासिस्ट

नागरिक सेना (Fascist militia) में भरती कर लिया जाता था। प्रारम्भ में तो कोई भी व्यक्ति जो फासिस्टवादी सिद्धान्तों में विश्वास रखता था, इस दल का सदस्य हो सकता था, परन्तु कालान्तर में यह नियम बना दिया गया कि कोई भी व्यक्ति उक्त प्रशिक्षण पाये बिना इस दल का सदस्य नहीं हो सकता। लड़कियों के प्रशिक्षण के लिए भी व्यवस्था की गई। १२ वर्ष से कम आयु वाली लड़कियों के लिये पिकोले-इटैलियाने (Piccole Italiane) तथा इससे अधिक आयु वाली लड़कियों के लिये युवती इटैलियाने (Giovani Italiane) नामक संस्थाओं की स्थापना की गई। इनके अन्तर्गत लडकियों को फासिस्ट पार्टी के सिद्धान्त तथा राष्ट्र-प्रेम की शिक्षायें दी जाती थीं। इसके साथ-साथ उनको व्यायाम द्वारा शरीर के विकास करने का प्रशिक्षण भी दिया जाता था।

पोप पायस ग्यारहवें (Pius XI) ने फासिस्टवादी सरकार के इस कार्य की आलोचना की है। उसने कहा है कि सरकार उक्त व्यवस्था के अन्तर्गत बाल्यकाल से ही बच्चों को अपने निरीक्षण में रखती है तथा उनको दल तथा शासन के हित में शिक्षा प्रदान करती है। इस शिक्षा के अनुसार बच्चों को राष्ट्र को देवता मान कर उसकी शिक्षा दी जाती है। उनका यह कार्य ईसाई धर्म के विरोध में है।

९ **फासिस्ट आर्थिक सिद्धान्त**—मुसोलिनी ने जिस प्रकार राजनीतिक उदारवाद का अन्त कर दिया था, उसी प्रकार उसने आर्थिक-उदारवाद का भी अन्त कर दिया। वह अनियन्त्रित स्वतन्त्रता (Laissez Faire) तथा राज्य स्वामित्व (State-ownership) को नहीं मानता था। वह समाजवाद के इस सिद्धान्त में विश्वास नहीं रखता कि पूँजीवादी वर्ग का विनाश कर दिया जाय। वह देश के हित के लिए पूँजीवादी वर्ग तथा मजदूर-वर्ग दोनों को आवश्यक मानता था। अतः वह दोनों वर्गों के हितों की रक्षा करना आवश्यक समझता था। वह यह नहीं चाहता था कि पूँजीपति मजदूरों का शोषण करें तथा मजदूर भूखों मरें। वह उद्योग-धन्धों पर पूँजीपतियों अथवा मजदूरों का एकाधिकार स्थापित होने देना नहीं चाहता था। वह मजदूरों तथा मालिकों को ही सरकार के नियन्त्रण में रखना चाहता था। फासिस्ट आर्थिक व्यवस्था के अन्तर्गत मजदूरों के हड़ताल करने के अधिकार तथा मालिकों के मिल बन्द करने के अधिकार को मान्यता नहीं दी गई।

१९२७ के लेबर चार्टर में कहा गया है कि प्राइवेट उद्योग-धन्धे देश के हित के लिए आवश्यक हैं। सरकार उन्हीं व्यवसायों में हस्तक्षेप करती है, जिनमें प्राइवेट व्यवस्था अपर्याप्त होती है। दूसरे शब्दों में राष्ट्र के हित को दृष्टि में रखते हुए ही सरकार को आर्थिक मामले में हस्तक्षेप करना पड़ता है। इस चार्टर में मजदूरों की साप्ताहिक छुट्टी, सवेतन वार्षिक छुट्टी, बीमा तथा मनोरंजन आदि के अधिकार को भी मान्यता प्रदान की गई है।

१९२६ के एक कानून के द्वारा इटली में श्रमजीवी संघ व्यवस्था की स्थापना की गई। इसके अनुसार सिण्डिकेटों की स्थापना की गई। इसमें ६ पूँजीपतियों के प्रतिनिधि, ६ मजदूरों के तथा एक स्वतन्त्र होता था। ये सिण्डिकेट राष्ट्रव्यापी थे।

इनकी प्रान्त तथा स्थानीय क्षेत्रों में शाखायें फैली हुई थीं। सिण्डिकेटों की संख्या १३ थी। इन पर निगम मन्त्री (Minister of Corporations) का नियन्त्रण था। इस पद पर मुसोलिनी का आधिपत्य था। इस व्यवस्था का उद्देश्य मजदूरों तथा मालिकों के संघर्ष का अन्त करना था। इस व्यवस्था के अनुसार मजदूरों तथा मालिकों का दर्जा समान माना गया था। मजदूरों को हड़ताल करने तथा मालिकों को मिल बन्द करने का अधिकार न रहा। मजदूरों तथा मालिकों के झगड़ों के समाधान के लिए एक विशेष प्रकार की अदालतों की व्यवस्था की गई। इस अदालत का निर्णय मजदूरों तथा मालिकों दोनों को ही मानना पड़ता था। मजदूरों के लिए संघों का सदस्य बनना अनिवार्य नहीं था; फिर भी अपने हितों की पूर्ति के लिए वे इनके सदस्य बनते थे। इस प्रकार फासिस्ट आर्थिक व्यवस्था बहुत कुछ अंशों में सिण्डिकलिज्म (Syndicalism) तथा गिल्ड समाजवाद (Guild Socialism) के बहुत कुछ निकट है। फिर भी मुसोलिनी वर्ग-संघर्ष में विश्वास नहीं रखता था तथा राज्य का विरोध नहीं करता था।

फासिस्टवाद का मूल्यांकन—फासिस्टवाद ने इटली के लिए बहुत कुछ किया। उसने मजदूरों तथा मालिकों के मध्य अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने, प्रशासन से भ्रष्टाचार का अन्त करने, आन्तरिक सुप्रबन्ध करने तथा दृढ़ विदेशी नीति का पालन करने का बहुत कुछ प्रयास किया। उसने लोगों में एक नवीन उत्साह का संचार किया। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि अपने कार्यों की पूर्ति के लिए फासिस्टवाद ने शक्ति को बहुत अधिक महत्व दिया। किसी विद्वान् ने ठीक ही कहा है कि 'शक्ति ने ही उसका निर्माण हुआ था तथा शक्ति से ही उसका विनाश हो गया।' फासिस्टवाद के पतन से यह सिद्ध होता है कि यह व्यवस्था मानव के विकास के लिए ठीक नहीं थी।

मुसोलिनी की गृह-नीति—मुसोलिनी की गृह-नीति का संक्षेप में इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है—

आर्थिक अवस्था में सुधार—(१) जिस समय शासन की बागडोर मुसोलिनी के हाथ में आई थी उस समय देश की आर्थिक अवस्था बहुत शोचनीय थी। बजट करोड़ों रुपये के घाटे में चल रहा था। मुद्रा का मूल्य गिरता जा रहा था। अतः उसने व्यय में कमी कर तथा कुछ नवीन कर लगा कर बजट को संतुलित किया।

(२) देश में फैली हुई बेकारी को दूर करने के लिए उसने सार्वजनिक निर्माण-कार्यों को प्रोत्साहन दिया। अनेक स्कूलों, कालिजों, सड़कों तथा पुलों आदि का निर्माण किया गया। प्राचीन इमारतों का जीर्णोद्धार किया गया। इससे अनेक बेकारों को रोजगार मिल गया।

(३) रेलवे व्यवस्था में अनेक सुधार किए गए। इससे रेलवे में आने वाले प्रतिवर्ष के घाटे का अन्त हो गया।

(४) मुसोलिनी की गृह-नीति का मुख्य उद्देश्य उत्पादन में वृद्धि करना था। अतः उसने कृषि की उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया। अच्छी खाद तथा औजारों

का आविष्कार किया गया। किसानों को वैज्ञानिक ढंग से कृषि करने के ढंग सिखाये गये। दलदल सुखा कर तथा बंजर भूमि को तोड़ कर कृषि योग्य बनाया गया। इससे कृषि के उत्पादन में बहुत वृद्धि हो गई।

(५) मुसोलिनी ने देश का औद्योगिक विकास करने का भी प्रयास किया। बिजली का उत्पादन कर कोयले की कमी की पूर्ति की गई। देश में रेल, मोटर, जहाज तथा इंजन आदि बनाने के अनेक कारखाने खोले गये। कृत्रिम रेशम के उत्पादन को बहुत प्रोत्साहन दिया गया। इस प्रकार देश को स्वावलम्बी बनाने के लिए बहुत प्रयास किया गया।

जनता की स्वतन्त्रता का अपहरण—फासिस्ट विरोधियों को गिरफ्तार कर अनिश्चित समय तक कारागार में रक्खा जा सकता था। समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता का अन्त कर दिया गया। फलतः बहुत से समाचार पत्रों का प्रकाशन बन्द हो गया। राजनीतिक अपराधियों पर अभियोग चलाने के लिए एक विशेष प्रकार के न्यायालयों की व्यवस्था की गई। स्थानीय शासन तथा प्रजातन्त्रात्मक निर्वाचनों का अन्त कर दिया गया। विरोधी दलों को अवैध घोषित कर दिया गया तथा उनके दमन का पूरा प्रयास किया गया।

निर्वाचन-प्रणाली में परिवर्तन—१९२३ के नवीन निर्वाचन कानून द्वारा यह निर्णय किया गया कि जिस दल को निर्वाचन में बहुमत प्राप्त हो उसे लोक सभा में $\frac{2}{3}$ स्थान प्रदान कर दिए जायें, जिससे कि बहुमत दल भली प्रकार शासन का संचालन कर सके। १९२८ के नवीन निर्वाचन कानून द्वारा एकमात्र फासिस्ट दल की सूची पर ही मत लिया जाने लगा। इससे लोक सभा में फासिस्ट दल का एकाधिकार स्थापित हो गया। इस सभा का कार्य एकमात्र मुसोलिनी के प्रस्तावों का समर्थन करना रह गया।

शिक्षा—मुसोलिनी ने शिक्षा के विकास का भी प्रयास किया। फासिस्टवादी सिद्धान्तों की शिक्षा देना अनिवार्य कर दिया गया। गैर-फासिस्टों को शिक्षक नहीं बनाया जाता था। बच्चों में राष्ट्रीयता की भावनाओं को जागृत करने पर जोर दिया जाता था। सैनिक शिक्षा को बहुत महत्व दिया गया था। वास्तव में शिक्षा का उद्देश्य नवयुवकों को सैनिक बनाना था।

पोप के साथ लेटरन का समझौता—पोप से संघर्ष की समस्या बहुत पुरानी थी। १८७० में इटली के एकीकरण के समय पोप के समस्त प्रदेश छीन लिये गये थे। इससे पोप इटली राज्य का घोर विरोधी हो गया। उसने इटली की सरकार से अपने सम्बन्ध-विच्छेद कर लिए तथा उसने इटली की कैथोलिक जनता को भी इटली की सरकार से सम्बन्ध-विच्छेद करने की प्रार्थना की। इस समय पोप अपने को 'वेटिकन का बन्दी' कहता था। इस प्रकार पोप तथा राज्य के मध्य झगड़ा उत्पन्न हो गया। सरकार कैथोलिकों की सेवाओं से वंचित हो गई। इसके साथ-साथ यह भी भय उत्पन्न हो गया कि कहीं यूरोप के अन्य कैथोलिक

राष्ट्र मिल कर इटली की सरकार के विरुद्ध हस्तक्षेप न करें। मुसोलिनी इस व्यर्थ के झगड़े में शक्ति का क्षय करना नहीं चाहता था। वह इसको देश के लिए अहित कर समझता था।[1] अतः धर्म में श्रद्धा न होने पर भी वह पोप से समझौता करना चाहता था। उधर पोप भी इस दीर्घकालीन संघर्ष का अन्त करने के लिए समझौते के लिए तैयार था। फलतः ११ फरवरी १९२९ को दोनों में एक समझौता हो गया। इस पर पोप के लेटरन नामक महल में हस्ताक्षर हुए थे। अतः यह लेटरन की सन्धि (Lateran Accord) भी कहलाता है। इसके अनुसार निम्नलिखित निर्णय किये गये —

(१) पोप रोम नगर से अपने अधिकार का परित्याग कर दिया तथा उसको इटली राज्य की राजधानी मान लिया।

(२) मुसोलिनी ने पोप को वेटिकन नगर का सार्वभौम राजा स्वीकार कर लिया। यद्यपि वेटिकन नगर का क्षेत्रफल कुछ एकड़ भूमि तथा उसकी जनसंख्या कुछ हजार तक सीमित थी तथापि उसको एक सार्वभौमिक राज्य स्वीकार कर लिया गया। पोप को विदेशों से सम्बन्ध स्थापित करने अर्थात् विदेशों में अपने राजदूत रखने तथा विदेशों के राजदूतों का अपने यहां स्वागत करने का अधिकार मिल गया। उसको अपना रेडियो स्टेशन चलाने, सिक्का बनाने तथा डाक टिकट प्रसारित करने का अधिकार मिल गया।

(३) पोप ने रोम नगर से अपने अधिकार का परित्याग कर दिया था। अतः उसको १० करोड़ डालर वार्षिक इटली की सरकार ने देना स्वीकार किया।

(४) पोप ने सेवाय वंश को मान्यता प्रदान कर दी।

(५) रोमन कैथोलिक धर्म को इटली का राज-धर्म स्वीकार कर लिया गया।

(६) आर्कविशप तथा समस्त विशपों की नियुक्ति का अधिकार पोप को दे दिया गया। परन्तु वह किसी भी ऐसे व्यक्ति को इस पद पर नियुक्त कर सकता था जो कि फासिस्टवादी विचारधारा का विरोधी हो। अतः पोप के लिए यह आवश्यक था कि वह नियुक्ति से पूर्व इटली की अनुमति प्राप्त कर ले।

(७) विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई।

(८) चर्च के पदाधिकारियों का वेतन देने का कार्य सरकार का ठहराया गया।

(९) धार्मिक विवाहों को भी कानूनी विवाहों के समान पवित्र मान लिया गया।

विदेशी नीति— मुसोलिनी की विदेशी नीति के निम्नलिखित उद्देश्य थे :—

(१) सैनिक दृष्टि से इटली बहुत निर्बल था। महायुद्ध में उसका खोखलापन

1. 'A thorn in the flesh of the nation.'

स्पष्ट हो गया था। सम्भवत: इसी कारण मित्रराष्ट्रों ने सन्धि के समय उसकी उपेक्षा की थी और उसको युद्ध की लूट में से पर्याप्त भाग नहीं दिया था। इससे इटली में बहुत असंतोष था। अत: मुसोलिनी का उद्देश्य इटली को शक्तिशाली बनाकर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उसको महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कराना था।

(२) शान्ति-सम्मेलन में मित्रराष्ट्रों ने उसकी उपेक्षा की थी और उसको लूट में से बहुत कम भाग दिया था। इससे वह बहुत असंतुष्ट था और विजेता राष्ट्र होने पर भी वह वार्साय की सन्धि में संशोधन चाहता था।

(३) वह भूमध्य सागर में अपनी स्थिति दृढ़ कर उसको रोमन झील बनाना चाहता था।

(४) मुसोलिनी इटली के लिए एक विशाल साम्राज्य की स्थापना करना चाहता था। साम्राज्य-विस्तार के लिए वह युद्ध को आवश्यक समझता था। एक बार उसने कहा था—'केवल युद्ध ही समस्त मानवीय शक्ति को उच्चतम शिखर तक पहुंचाता है और जो युद्ध का सामना करने का साहस रखते हैं, उन व्यक्तियों पर श्रेष्ठता की मुहर लगा देता है।[1] उपनिवेश-स्थापना के सम्बन्ध में एक बार मुसोलिनी ने कहा था—'......इटली की जनसंख्या ४ करोड़ ३० लाख है। अपनी तंग दीवारों के अन्दर उसका दम घुट रहा है। अत: इटली को उपनिवेशों की परमावश्यकता है। इटली में लाखों नवयुवक बेकार हैं और अन्य देशों के अनेक प्रतिबन्धों के कारण वे बाहर जा भी नहीं सकते।' यह ठीक है कि अमेरिका के विदेशियों को अपने यहाँ बसने के सम्बन्ध में अनेक प्रतिबन्ध लगा दिये थे। फिर यह नहीं माना जा सकता कि इटली में आवश्यकता से अधिक जनसंख्या थी। इस मत की पुष्टि में निम्नलिखित प्रमाण दिये जा सकते हैं—

१. मुसोलिनी इटली की जनसंख्या बढ़ाने के लिए बहुत चिन्तित था। उसका विचार था कि जनसंख्या की वृद्धि होने पर ही इटली विश्व-इतिहास को प्रभावित कर सकती है। इस सम्बन्ध में उसने निम्नलिखित महत्वपूर्ण कार्य किये—

(१) बाल-विवाह को प्रोत्साहन दिया।

(२) अविवाहितों के ऊपर कर लगा दिया।

(३) अवैध संतानों के संरक्षण पर जोर दिया गया।

(४) प्रवास पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

(५) जो लोग बाहर जाकर बस गये थे, उनको वापस बुलाने के लिए जोर दिया गया।

२. इटली में बहुत सी भूमि बेकार पड़ी थी। दलदलों को सुखाकर भी कुछ भूमि कृषि-योग्य बनाई गई थी। पहाड़ों तथा समुद्रों के समीप भी कुछ भूमि कृषि-योग्य बनाई गई थी। १९२५ में भाषण देते हुए मुसोलिनी ने यह स्वीकार

1. Only war carries human energies to the highest level and puts the seal of nobility upon peoples who have the courage to undertake it.'

किया था—'हम लाखों तथा करोड़ों इटली-निवासियों को भोजन तथा भूमि दे सकते हैं।'

अतः मुसोलिनी के इस तर्क को नहीं माना जा सकता कि उसे बढ़ती हुई आबादी के लिए उपनिवेशों की आवश्यकता थी। कुछ दिन पश्चात् उसने यह तर्क रक्खा कि उसको कच्चे माल की प्राप्ति के लिए उपनिवेशों की आवश्यकता है। उपनिवेशों के अभाव में ही उसका अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बहुत पिछड़ा हुआ है।

भूमध्य सागर में स्थिति सुदृढ़ करने का प्रयास—मुसोलिनी भूमध्य सागर को रोमन झील बनाना चाहता था। अतः उसने वहाँ अपनी स्थिति को सुदृढ़ करना प्रारम्भ कर दिया। १९२३ की लोजान-सन्धि के अनुसार उसने भूमध्य सागर में डोडोकेनीज तथा राडज द्वीप पर अधिकार कर लिया। वहाँ उसने एक सुदृढ़ किलेबन्दी की तथा एक अच्छा नौ-सैनिक अड्डा तैयार कर लिया। १९२८ में टैंजियर के बन्दरगाह के सम्बन्ध में एक समझौता होने का निर्णय किया गया। मुसोलिनी ने घोषित किया कि इसमें हमारी भी दिलचस्पी है। अतः ब्रिआँ ने मुसोलिनी को भी इस सम्मेलन के अवसर पर बुलाया। इस सम्मेलन में टैंजियर के प्रशासन के सम्बन्ध में उसने भी अनेक अधिकार प्राप्त कर लिए। १९३० में लंदन के नौ-सैनिक सम्मेलन में यह माँग की कि भूमध्य सागर में उसको फ्राँस के समान नौ-सेना रखने का अधिकार मिलना चाहिए। इससे मुसोलिनी की ख्याति में बहुत वृद्धि हुई। उसने वार्साय-सन्धि में संशोधन चाहने वाले देशों से भी घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करने प्रारम्भ किए। उसने हंगरी, यूनान तथा आस्ट्रिया के साथ मैत्री-सम्बन्ध स्थापित किए। हिटलर के उदय होने पर उसने इंगलैण्ड, फ्राँस, जर्मनी तथा इटली के साथ मिलकर चार राष्ट्रों का एक समझौता किया। उसने यूगोस्लाविया से सन्धि कर फ्यूम का नगर प्राप्त कर लिया। अल्बानिया पर भी उसने अपना नियन्त्रण स्थापित कर लिया। इस प्रकार भूमध्य सागर को उसने झील बना लिया। इन कार्यों से अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इटली की प्रतिष्ठा में बहुत वृद्धि हुई।

टाइरोल—पेरिस के शान्ति-सम्मेलन में टाइरोल का ट्रेन्टिनो नामक भाग इटली को दे दिया गया था, क्योंकि वहां की अधिकांश जनसंख्या इटैलियन थी। परतु टाइरोल के जिस भाग की अधिकांश जनसंख्या जर्मन थी, वह भी इटली को ही दे दिया। इस प्रदेश को प्राप्त करने के अवसर पर इटली के प्रतिनिधि ने यह प्रतिज्ञा की थी—'उनकी भाषा, सभ्यता तथा संस्थाओं का सम्मान किया जायगा।'[1] परन्तु सत्ता प्राप्त करने पर मुसोलिनी ने इस प्रदेश का पूर्णतया इटलीकरण करना प्रारम्भ कर दिया। वहाँ के समस्त पद इटली-निवासियों को प्रदान कर दिये गये। उनकी भाषा, संस्कृति, धर्म, शिक्षा तथा संस्थाओं आदि पर पूर्णतया इटैलियन प्रभाव लाद दिया गया। मुसोलिनी ने स्पष्ट घोषित कर दिया था कि 'उनको हमें इटैलियन बनाना

1. 'Their language and cultural institutions would be respected.'

है।'[1] आस्ट्रिया तथा जर्मनी ने मुसोलिनी के इस कार्य की आलोचना की; परन्तु उसको इसकी कोई चिन्ता न थी। उसने घोषित किया कि अपने मामलों में वह विदेशी हस्तक्षेप पसन्द नहीं करता।

करफू पर बम-वर्षा—अगस्त १६२३ में यूनान में कुछ इटैलियन अधिकारियों की हत्या कर दी गई। इस पर मुसोलिनी ने यह मांग की कि पांच दिन के अन्दर-अन्दर इटली-प्रतिनिधि की सहायता से मामले की जांच की जाय तथा अपराधी को दण्ड दिया जाय। यूनान इटली को ५ करोड़ लीरा का जुर्माना दे। यूनान ने इन मांगों को अस्वीकार कर दिया तथा मामले को राष्ट्र-संघ में पेश किया। परन्तु मुसोलिनी ने यूनान के करफू द्वीप पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया। परन्तु इंगलैंड के विरोध पर उसको करफू द्वीप खाली करना पड़ा। फिर भी उसने यूनान से भारी मात्रा में हर्जाना प्राप्त किया। राष्ट्र-संघ की उपेक्षा करने से मुसोलिनी के हौसले बहुत बढ़ गये।

यूगोस्लाविया से सम्बन्ध—इटली तथा यूगोस्लाविया के आपस में अच्छे सम्बन्ध नहीं थे। दोनों के पारस्परिक झगड़े के निम्नलिखित महत्वपूर्ण कारण थे—

(१) दोनों ही देश एड्रियाटिक सागर पर अपना प्रभाव स्थापित करना चाहते थे।

(२) यूगोस्लाविया वार्साय सन्धि को बनाये रखना चाहता था; परन्तु इटली उसमें संशोधन का पक्षपाती था।

(३) इटली को कुछ ऐसे प्रदेश प्राप्त हो गए थे, जिनको कि यूगोस्लाविया प्राप्त करना चाहता था।

उपर्युक्त कारणों से दोनों देशों में बहुत मतभेद था। कार महोदय के शब्दों में दोनों महायुद्धों के मध्य इन दोनों देशों में बहुत संघर्ष होता रहा।[2]

२७ जनवरी १६२४ को दोनों देशों ने एक सन्धि के अनुसार अपने पारस्परिक झगड़ों को तय कर लिया। इस सन्धि के अनुसार निम्नलिखित निर्णय किये गये—

(१) इटली ने जारा (Zara) के बन्दरगाह के अतिरिक्त डालमेशिया का सम्पूर्ण तट यूगोस्लाविया को दे दिया।

(२) फ्यूम का नगर इटली ने प्राप्त कर लिया। परन्तु फ्यूम का बन्दरगाह यूगोस्लाविया के ही पास रहा।

इस सन्धि के पश्चात् भी दोनों देश एक-दूसरे से सशंकित रहे और दोनों देश एक दूसरे को अपना शत्रु मानते रहे। इटली से सुरक्षा पाने के लिये ही यूगोस्लाविया लघु गुट (Little Entente) में सम्मिलित हुआ। यूगोस्लाविया यह नहीं चाहता था कि इटली अल्बानिया पर अधिकार कर ले। अतः जब इटली ने इस प्रदेश पर

1. 'We shall make them Italians.'

2. 'The enemity of Yugoslavia and Italy was one of the most persistant of all European feuds in the period between the wars.' —Carr.

अधिकार करने का प्रयास किया तो उस उसका घोर विरोध किया। उधर इटली भी यूगोस्लाविया के विरोध में अपनी शक्ति की वृद्धि कर रहा था।

रूस से सम्बन्ध-स्थापना—इटली के आस्ट्रिया, हंगरी तथा बलगेरिया आदि से अच्छे सम्बन्ध थे; परन्तु ये सभी देश छोटे थे। अतः मुसोलिनी किसी बड़े देश से सम्बन्ध स्थापित कर अपनी स्थिति को सुदृढ़ करना चाहता था। अतः उसने १९२४ में रूस की सोवियत सरकार को मान्यता प्रदान कर उससे व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित कर लिया। उसने रूस को राष्ट्र संघ में स्थान दिलाने की भी चेष्टा की। इससे दोनों देशों में मैत्री-सम्बन्ध स्थापित हो गये।

फ्राँस और इटली—प्रारम्भ में फ्राँस और इटली में अच्छे सम्बन्ध नहीं थे। दोनों देशों की शत्रुता के निम्नलिखित कारण थे—

(१) मुसोलिनी भूमध्य सागर को रोमन झील बनाना चाहता था। फासिस्ट प्रचारक भूमध्य सागर को अपना समुद्र कहते थे। उधर फ्राँस भी भूमध्य सागर में अपना प्रभाव स्थापित करना चाहता था। इससे दोनों में बहुत मतभेद था।

(२) ट्यूनिस, कार्सिका, सेवाय तथा नाइस आदि प्रदेशों पर फ्राँस का अधिकार था; परन्तु मुसोलिनी इन पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहता था।

(३) फ्राँस में लगभग १० लाख इटली-निवासी मजदूरी करते थे। अतः फ्राँस को यह भय था कि इटली इनमें फासिस्टवाद क प्रचार का प्रयास कर सकता है।

(४) ट्यूनिस में इटैलियन की संख्या बहुत अधिक थी; परन्तु फ्रांसीसी सरकार ने उनको नागरिकता के पूर्ण अधिकार प्रदान नहीं किये थे। अतः मुसोलिनी उनको उक्त अधिकार दिलाने के लिये माँग कर रहा था।

(५) पेरिस के समझौते के समय इटली को कोई भी मैण्डेट (Mandate) प्राप्त नहीं हुई थी। इटली इसके लिए फ्राँस को दोषी मानता था।

(६) फ्राँस तथा इटली दोनों में ही नौ-सेना के विस्तार तथा जहाजी बेड़े के निर्माण की प्रतियोगिता चल रही थी।

(७) फ्राँस का लघु गुट के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। अतः मुसोलिनी उससे नाराज था।

(८) मुसोलिनी लिबिया तथा उत्तरी अफ्रीका में अनेक प्रदेशों की माँग कर रहा था और फ्राँस उसका विरोध कर रहा था।

उपर्युक्त कारणों से १९३३ तक दोनों देशों में संघर्ष चलता रहा; परन्तु इसके पश्चात् परिस्थिति में परिवर्तन हो गया और दोनों देशों में घनिष्ठता स्थापित होने लगी। १९३३ में हिटलर का उदय होने पर मुसोलिनी ने फ्रांस तथा इंगलैंड से अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने प्रारम्भ कर दिये। उसने इंगलैंड तथा फ्रांस के साथ मिलकर आस्ट्रिया की रक्षा की घोषणा की। १९३४ में हिटलर ने जब आस्ट्रिया पर अधिकार करने की चेष्टा की तो मुसोलिनी ने ब्रेनर के दर्रे में अपनी सेनायें भेजकर

हिटलर को आस्ट्रिया पर अधिकार करने से रोक दिया। १९३५ में जब हिटलर ने वार्साय सन्धि की सैनिक धाराओं को तोड़ा तो मुसोलिनी ने उसके विरुद्ध स्ट्रेसा सम्मेलन में इंगलैंड तथा फ्राँस आदि देशों का साथ दिया। फ्राँस को भी हिटलर से भय था। अत: उसने भी मुसोलिनी से अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने प्रारम्भ किये। जनवरी १९३५ में फ्राँस का विदेश-मन्त्री लावाल (Laval) इटली गया और दोनों ने मिलकर एक समझौता कर लिया। उस समझौते के अनुसार निम्नलिखित निर्णय किये गये—

(१) फ्रांस ने अफ्रीका में सुमालीलैण्ड तथा लीबिया के पास के कुछ हजार वर्ग मील क्षेत्र को इटली को दे दिया।

(२) यदि जर्मनी अपना शस्त्रीकरण करेगा तो दोनों देश मिलकर उस सम्बन्ध में विचार करेंगे।

(३) फ्रांस तथा इटली दोनों मिलकर मध्य यूरोप के राज्यों से यह प्रार्थना करेंगे कि वे अपने पड़ोसी राज्यों की घरेलू समस्याओं में हस्तक्षेप न करेंगे।

(४) फ्रांस ने इटली को यह आश्वासन दिया कि वह ट्यूनिस में बसे इटली-निवासियों के साथ अच्छा बर्ताव करेगा और उनको नागरिकता के अधिकार प्रदान कर देगा।

(५) फ्राँस ने इटली को यह आश्वासन दिया कि एबीसीनिया में उसका कोई हित नहीं है। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह था कि यदि कभी इटली एबीसीनिया के ऊपर अधिकार करने की चेष्टा करेगा तो फ्रांस उसका विरोध नहीं करेगा। इस प्रकार फ्रांस ने इटली को एबीसीनिया में आगे बढ़ने की पूर्ण छूट दे दी।

अल्बानिया से सम्बन्ध—द्वितीय बाल्कन युद्ध के पश्चात् अल्बानिया का निर्माण हुआ था। प्रथम विश्व-युद्ध में यह तटस्थ रहा; परन्तु इटली तथा आस्ट्रिया ने उसको अपने युद्ध का केन्द्र बना लिया। अल्बानिया का इटली के लिए बहुत अधिक महत्व था, क्योंकि वह भूमध्य सागर पर नियन्त्रण स्थापित करना चाहता था। इसके लिए उसको ओट्रैण्टो के जलडमरू मध्य पर प्रभाव स्थापित करना आवश्यक था। इस जलडमरू मध्य के एक ओर इटली तथा दूसरी ओर अल्बानिया स्थित थे। अतः पेरिस के शान्ति-सम्मेलन में इटली ने यह माँग की थी कि अल्बानिया उसको मैण्डेट (Mandate) के रूप में प्रदान कर दी जाय। परन्तु अमेरिका का राष्ट्रपति विल्सन इससे सहमत नहीं हुआ और उसने अल्बानिया को एक स्वतन्त्र राष्ट्र घोषित कर दिया। १९२० में उसको राष्ट्र संघ की सदस्यता प्रदान कर दी गई। १९२५ में जूगो (Zugo) नामक एक व्यक्ति ने वहाँ गणतन्त्र की स्थापना कर दी और स्वयं वहाँ का राष्ट्रपति बन गया। अल्बानिया की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी। अतः उसने २७ नवम्बर १९२६ में इटली से टिराना (Tirana) की सन्धि कर ली। इस सन्धि के अनुसार निम्नलिखित निर्णय किये गये—

(१) अल्बानिया ने इटली को यह आश्वासन दिया कि वह अन्य किसी भी

देश से ऐसा कोई समझौता नहीं करेगा, जिससे कि इटली को हानि होने की सम्भावना हो।

(२) अल्बानिया की सेना का प्रशिक्षण इटली के सैनिक पदाधिकारियों द्वारा होगा।

(३) इटली अल्बानिया के विकास के लिए उसकी आर्थिक सहायता करेगा।

(४) इटली ने अल्बानिया से २० वर्ष के लिए एक रक्षात्मक समझौता भी कर लिया। दोनों देशों ने यह वादा किया कि वे बाह्य आक्रमणकारी के विरोध में एक दूसरे की सहायता करेंगे।

(५) इटली ने अल्बानिया से यह भी अधिकार प्राप्त कर लिया कि उसकी प्रार्थना पर इटली को अल्बानिया की गृह तथा विदेशी नीति में हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त है।

इस सन्धि से अल्बानिया इटली का एक संरक्षित राज्य बन गया। फिर भी इटली अल्बानिया में अपने प्रभाव में और अधिक वृद्धि करता रहा। इसी मध्य अल्बानिया का यूगोस्लाविया से झगड़ा हो गया। झगड़े का कारण अल्बानिया द्वारा यूगोस्लाविया के एक सरकारी कर्मचारी को गिरफ्तार करना था। इससे दोनों देशों में कटुता इस सीमा तक बढ़ी कि दोनों में युद्ध की सम्भावना स्पष्ट दिखाई देने लगी। इटली ने इस संकट के समय अल्बानिया का पूर्ण साथ दिया। परन्तु मित्र-राष्ट्रों की मध्यस्थता से दोनों में फैसला हो गया और युद्ध का संकट टल गया। इस समय तक इटली का अल्बानिया पर भारी प्रभाव स्थापित हो गया था। परन्तु मुसोलिनी को इतने से भी संतोष नहीं था। अतः उसने १९३९ में अल्बानिया पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया।

एबीसीनिया पर आक्रमण—एबीसीनिया से इटली के संघर्ष के निम्नलिखित महत्वपूर्ण कारण थे—

(१) इस समय तक अफ्रीका के प्रायः सभी महत्वपूर्ण प्रदेशों पर यूरोप के विभिन्न देशों ने अधिकार कर लिया था। वहाँ एकमात्र एबीसीनिया ही ऐसा प्रदेश था जिस पर किसी विदेशी सत्ता का अधिकार न था। अतः इटली इस महत्वपूर्ण प्रदेश पर अधिकार करना चाहता था।

(२) एबीसीनिया में कुछ महत्वपूर्ण खानें थीं। इसके अतिरिक्त इटली को वहां से भारी मात्रा में रूई, ऊन तथा इमारती सामान आदि कच्चा माल मिल सकता था।

(३) एबीसीनिया इटली के सोमालीलैंड तथा इरिट्रिया नामक दो उपनिवेशों के मध्य में था। अतः वह मध्य के इस प्रदेश एबीसीनिया) पर अधिकार कर एक विशाल साम्राज्य की स्थापना चाहता था।

(४) इटली १८९६ की अडोवा की पराजय का प्रतिशोध लेना चाहता था।

(५) बढ़ती हुई जनसंख्या को बसाने के लिये मुसोलिनी इस प्रदेश पर अधिकार करना चाहता था।

(६) मुसोलिनी अपने गौरव की वृद्धि के लिए कोई महत्वपूर्ण कार्य करना चाहता था तथा देश के २½ लाख बेकारों का ध्यान वह दूसरी ओर आकर्षित करना चाहता था।

इन कारणों से बहुत पहले से ही इटली एबीसीनिया पर आक्रमण की तैयारियां कर रहा था। फ्राँस द्वारा इस सम्बन्ध में आश्वासन प्राप्त कर लेने तथा लीग की निर्बलता से मुसोलिनी के हौसलों में बहुत वृद्धि हो गई। १९२५ में उसने इंगलैंड से एबीसीनिया में अनेक सुविधायें प्राप्त कर लीं थीं। एबीसीनिया इससे बहुत सशंकित हुआ। उसने राष्ट्र-संघ से शिकायत की। इस पर मुसोलिनी ने १९२८ में एबीसीनिया के सम्राट् हेलसिलासी से मित्रता की सन्धि कर ली; परन्तु इससे भी हेलसिलासी की शंका का समाधान नहीं हुआ और वह बराबर मुसोलिनी का विरोध करता रहा। उधर मुसोलिनी बराबर अपनी सैनिक तैयारियां करता रहा।

५ दिसम्बर १९३४ को इटैलियन सुमाली-लैंड के पास लगे वाल-वाल (Walwa) के नगर में इटली तथा एबीसीनिया की सेनाओं में संघर्ष हो गया। इस संघर्ष में तीस इटली-निवासी मारे गये। इटली ने इस विवाद का तलवार द्वारा निर्णय कराने का निश्चय किया; परन्तु एबीसीनिया इसको पंचफैसले द्वारा निर्णय कराना चाहता था। अतः उसने इस वादविवाद के निर्णय के लिए राष्ट्र-संघ से प्रार्थना की। इंगलैंड को मिस्र के सम्बन्ध में इटली से भय था। अतः उसने एबीसीनिया की प्रार्थना का समर्थन किया तथा राष्ट्र-संघ से इटली के विरुद्ध कठोर कार्यवाही करने की प्रार्थना की। मुसोलिनी ने लीग के हस्तक्षेप का विरोध किया और यह कहा कि दोनों देश मिलकर अपनी १९२८ की गत संधि के अनुसार पंचफैसले द्वारा इसका निर्णय कर लेंगे। पर्याप्त समय पश्चात इस सम्बन्ध में पंचों का एक कमीशन नियुक्त किया गया। इस कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में दोनों पक्षों में से किसी को भी दोषी नहीं ठहराया।

मुसोलिनी एबीसीनिया पर अधिकार करने का निश्चय कर चुका था। इस सम्बन्ध में उसको राष्ट्र-संघ के विरोध की कोई चिन्ता न थी। अतः उसने ३ अक्टूबर १९३५ को एबीसीनिया पर आक्रमण कर दिया। इटली की सेनाओं ने एबीसीनिया के अन्दर तेजी से बढ़ना प्रारम्भ किया। ७ अक्टूबर को राष्ट्र-संघ की कौंसिल ने सर्व-सम्मति से इटली को आक्रांति घोषित किया तथा उसके विरुद्ध राष्ट्र-संघ की १६वीं धारा के अनुसार आर्थिक प्रतिबन्ध लगाने का निश्चय किया गया। इन आर्थिक प्रतिबन्धों का इटली अधिक समय तक सामना नहीं कर सकता था; परन्तु ये प्रतिबन्ध ऐसी वस्तुओं पर लगाये गये जिनकी इटली को बहुत कम आवश्यकता थी अथवा बिल्कुल आवश्यकता नहीं थी। राष्ट्र-संघ के विधान में इन प्रतिबन्धों को तुरन्त कार्यान्वित करने की बात कही गई थी; परन्तु इटली के विरुद्ध ये प्रतिबन्ध १८ नवम्बर को लगाये गये थे। परन्तु इटली में आने वाले तेल पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया था, क्योंकि मुसोलिनी ने स्पष्ट घोषित कर दिया कि यह कार्य शत्रुता

पूर्ण समझा जायगा। इटली के लिये स्वेज नहर भी बन्द नहीं की गई थी। वास्तव में फ्राँस की सहानुभूति इटली के साथ थी। अतः इटली के विरोध में आर्थिक प्रतिबन्ध (Economic Sanctions) पूर्ण शक्ति के साथ नहीं लगाये जा सके।

७ दिसम्बर १९३५ को फ्राँस के विदेश-मन्त्री लावेल तथा इंगलैंड के विदेश-मन्त्री सेम्युएल होर ने इटली को संतुष्ट करने के लिये पेरिस में एक समझौता किया। यह समझौता इतिहास में होर-लावाल समझौते के नाम से प्रख्यात है। इसके अनुसार निम्नलिखित निर्णय किये गये—

(१) एबीसीनिया में इटली के आर्थिक हितों को मान्यता प्रदान कर दी जाय।

(२) इटली को एबीसीनिया से उसका पूर्वी प्रदेश, इरिट्रिया तथा सुमालीलैंड के पास के कुछ प्रदेश दे दिये जायें। यह प्रदेश लगभग ६० हजार वर्ग मील विस्तृत था।

(३) इसके बदले में इटली से एबीसीनिया को असाब का बन्दरगाह दिला दिया जाय। एबीसीनिया को समुद्र-तट से जोड़ने के लिये भी एक-एक छोटा सा प्रदेश देने की बात कही गई।

(४) इटली के आर्थिक तथा औद्योगिक विकास के लिये उसको दक्षिणी एबीसीनिया में एक विस्तृत प्रदेश दिलाने की व्यवस्था की गई।

इस प्रकार इस समझौते द्वारा एबीसीनिया के अधिकांश प्रदेश पर इटली के आर्थिक हितों को मान लिया गया तथा उसको बिना युद्ध किये ही एबीसीनिया का $\frac{2}{3}$ भाग देने की व्यवस्था की गई। इंगलैंड की जनता ने इस समझौते का घोर विरोध किया। फलतः होर को त्याग-पत्र देना पड़ा तथा बाल्डविन की सरकार ने जनता को यह आश्वासन दिया कि यह प्रस्ताव सदैव के लिये रद्द कर दिया गया है।

अब राष्ट्र-संघ ने एबीसीनिया के प्रश्न पर पुनः विचार करने के लिये एक और समिति (Neutral Committee of Conciliation) की स्थापना की; परन्तु इटली ने इस समिति को अपना कोई सहयोग प्रदान नहीं किया और उसकी सेनायें एबीसीनिया में बराबर आगे बढ़ती रहीं। ५ मई १९३६ को इटली ने एबीसीनिया की राजधानी आदिस अबाबा (Addis Ababa) पर अधिकार कर लिया। ९ मई को सम्पूर्ण एबीसीनिया इटली का साम्राज्य घोषित कर दिया गया। एबीसीनिया के सम्राट् हेलसिलासी ने भाग कर इंगलैंड में शरण ली। जुलाई में इटली के विरुद्ध लगाये गये आर्थिक प्रतिबन्ध वापस ले लिये गये। नवम्बर १९३८ तक इंगलैंड तथा फ्राँस आदि देशों ने इटली की एबीसीनिया-विजय को स्वीकार कर लिया तथा एबीसीनिया (ईथियोपिया) के सम्राट् हेलसिलासी की चीत्कारों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

राष्ट्र-संघ के इतिहास में यह पहला अवसर था जबकि आक्रान्ता राष्ट्र के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध लगाये गये थे। परन्तु इन प्रतिबन्धों का कठोरता से पालन

नहीं किया गया। फ्राँस ने इंगलैण्ड को पूरा सहयोग नहीं दिया, क्योंकि वह इटली से सन्धि कर चुका था तथा उसके साथ अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास कर रहा था। उधर इंगलैंड की नीति भी बड़ी अनिश्चित थी। कुछ विद्वानों के अनुसार उसने तानाशाहों को संतुष्ट करने की नीति का पालन करना प्रारम्भ कर दिया था। इसी से उसने एबीसीनिया की रक्षा का कोई प्रयास नहीं किया। उसने भी इटली के विरुद्ध लगाए गए आर्थिक प्रतिबन्धों का कठोरता से पालन नहीं किया। इंगलैण्ड तथा फ्राँस की इस नीति का मध्य यूरोप के अन्य राज्यों ने भी अनुसरण किया। तेल के आयात पर प्रतिबन्ध लगाने के प्रश्न पर मुसोलिनी ने इंगलैंड तथा फ्रांस से युद्ध करने की घोषणा की थी। वास्तव में उसकी यह धौंस थी। वह कभी भी अकेले इंगलैंड, फ्राँस तथा उसके अन्य साथियों के साथ युद्ध नहीं कर सकता था। यदि तेल के आयात पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता और उसका कठोरता से पालन किया जाता तो इटली बहुत जल्दी घुटने टेक देता। इस प्रकार अपनी तुष्टीकरण की नीति से फ्राँस तथा इंगलैण्ड ने मुसोलिनी की सहानुभूति प्राप्त करने का असफल प्रयास किया।

एबीसीनिया विजय के परिणाम—एबीसीनिया-विजय के निम्नलिखित महत्वपूर्ण परिणाम निकले—

(१) इससे राष्ट्र-संघ की प्रतिष्ठा समाप्त हो गई। अब कोई भी छोटा राष्ट्र सुरक्षा के लिए उस पर विश्वास नहीं कर सकता था। राष्ट्र-संघ की स्थापना का उद्देश्य न्यायपूर्ण ढंग से शान्ति स्थापना का था; परन्तु एबीसीनिया के सम्बन्ध में राष्ट्र-संघ ने न्याय की अवहेलना कर शान्ति स्थापित करने की चेष्टा की। अतः यह एबीसीनिया का नहीं अपितु राष्ट्र-संघ का ही पतन था। इस सम्बन्ध में सम्राट् हेलसिलासी के शब्द बहुत महत्वपूर्ण हैं। उसने राष्ट्र-संघ की परिषद् में भाषण देते हुए कहा था—'......क्या शक्ति के विरुद्ध कानून की विजय होगी? अथवा कानून के विरुद्ध शक्ति की विजय होगी?......अनेक राष्ट्रों ने आक्रमण की धमकी से भयभीत होकर तथा अपनी निर्बलता का अनुभव करते हुए ईथियोपिया को अकेला छोड़ दिया है। उन्होंने भय तथा पलायन की नीति का परिचय दिया है। प्रत्येक राष्ट्र अपने स्वार्थों का ध्यान रखता है। अतः यह निश्चित है कि उनको भी उसी प्रकार अकेला छोड़ दिया जायगा जिस प्रकार कि ईथियोपिया को छोड़ दिया गया है।......शान्ति की रक्षा के विभिन्न मार्ग हैं। एक मार्ग तो न्यायपूर्वक शान्ति की रक्षा का है तथा दूसरा मार्ग किसी भी मूल्य पर शान्ति बनाये रखने का है। राष्ट्र-संघ अपनी आत्म-हत्या कर लेगा यदि वह न्याय के मार्ग के द्वारा शान्ति बनाये रखने के ढंग का परित्याग कर किसी भी मूल्य पर शान्ति बनाये रखने का प्रयास करेगा। यदि वह अपने सदस्य राज्य को आक्रमणकारी की इच्छाओं पर बलि चढ़ाकर शान्ति स्थापित करने का प्रयास करेगा तो उसका पतन निश्चित है।' वास्तव में हेलसिलासी के इन शब्दों में बहुत कुछ सत्यता थी और आगे चलकर ये सत्य सिद्ध हुए।

(२) राष्ट्र-संघ की इस निर्बलता से जर्मनी को प्रोत्साहन मिला। हिटलर ने वार्साय की सन्धि तथा लोकार्नो सन्धि को भंग कर राइन प्रदेश की किलेबन्दी प्रारम्भ कर दी। इससे उसको यूरोप के दो भागों में विभाजित करने में सफलता मिल गई। स्पेन के गृह-युद्ध में उसने भाग लिया। आस्ट्रिया का अपहरण कर लिया। जेकोस्लोवाकिया का अंग-भंग कर दिया और अन्त में पोलैण्ड पर आक्रमण कर द्वितीय महायुद्ध का प्रारम्भ कर दिया।

(३) इससे इटली तथा जर्मनी के सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ हो गए। जिस समय राष्ट्र-संघ ने इटली के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध लगाए तो हिटलर ने हथियार तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं से मुसोलिनी की पूर्ण सहायता की। इससे इटली तथा जर्मनी में अच्छे सम्बन्ध स्थापित हो गए। इंगलैंड, फ्रांस, रूस तथा इटली के सम्बन्ध बिगड़ गए। हिटलर के विरोध में बने हुए स्ट्रेसा-सम्मेलन की एकता समाप्त हो गई।

(४) इस युद्ध के परिणामस्वरूप इटली तथा जर्मनी एक दूसरे के बहुत समीप आ गए थे। अब तक इटली अपने को आस्ट्रिया की स्वतन्त्रता का संरक्षक समझता था; परन्तु अब उसने इसका परित्याग कर दिया तथा दोनों ने २६ अक्टूबर १९३६ को आपस में एक समझौता कर लिया जो रोम-बर्लिन-धुरी (Rome-Berlin Axis) कहलाता है। इस प्रकार इस युद्ध के परिणामस्वरूप रोम-बर्लिन धुरी का निर्माण हुआ।

(५) हार्डी के शब्दों में एबीसीनिया के पतन ने समस्त विश्व को प्रभावित किया। इससे इंगलैंड की आधारभूत संस्था राष्ट्र संघ का भारी अपमान हुआ तथा उसकी निर्बलता स्पष्ट हो गई। फ्रांस के कट्टर शत्रु जर्मनी को प्रोत्साहन मिला और इटली से भी उसकी मित्रता हो गई। डेन्यूब से इटली का प्रभाव समाप्त हो गया तथा ब्रेनर दर्रे तक जर्मनी की सेनाएं पहुंच गईं।

इटली का राष्ट्र-संघ से सम्बन्ध-विच्छेद—हम पीछे उल्लेख कर चुके हैं कि इटली द्वारा एबीसीनिया पर आक्रमण करने पर राष्ट्र-संघ ने इटली के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध लगाए थे; परन्तु इंगलैंड तथा फ्रांस के मतभेद तथा अनिश्चित नीति के कारण उनका कठोरतापूर्वक पालन नहीं किया गया। तेल के आयात पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया। दूसरे वह जर्मनी से हथियार तथा अन्य सामग्री प्राप्त कर एबीसीनिया में बराबर आगे बढ़ता रहा और अन्त में उसने एबीसीनिया को अपने साम्राज्य का अंग घोषित कर दिया और वहाँ का सम्राट् हेलसिलासी राजधानी छोड़कर भाग गया। इटली के विरुद्ध निन्दा का प्रस्ताव पास करने के अतिरिक्त राष्ट्र-संघ कुछ न कर सका। इटली ने राष्ट्र-संघ से अपने सम्बन्ध-विच्छेद कर लिए। अन्त में अपनी निर्बलता का अनुभव कर राष्ट्र-संघ ने इटली के विरुद्ध लगाए हुए आर्थिक प्रतिबन्धों को जुलाई १९३६ में वापस ले लिया।

रोम-बर्लिन धुरी का निर्माण—एबीसीनिया के युद्ध के अवसर पर इटली

इंगलैंड, फ्राँस तथा रूस से नाराज हो गया। इस संकट के समय हिटलर ने उसकी बहुत सहायता की थी। अतः जर्मनी की ओर उसका झुकना स्वाभाविक था। फलतः २६ अक्टूबर १६३६ को इटली तथा जर्मनी ने एक समझौता कर लिया जो इतिहास में रोम-बर्लिन-धुरी (Rome-Berlin Axis) के नाम से प्रख्यात है। इसके अनुसार निम्नलिखित निर्णय किए गए—

(१) दोनों देश समान हितों की पूर्ति के लिए समय-समय पर परस्पर वार्ता करते रहेंगे।

(२) दोनों देश साम्यवाद का विरोध करेंगे।

(३) दोनों देश स्पेन की रक्षा करेंगे।

इस सन्धि के परिणामस्वरूप मुसोलिनी ने आस्ट्रिया तथा जेकोस्लोवाकिया पर हिटलर के आक्रमण का कोई विरोध नहीं किया।

स्पेन का गृह-युद्ध—एबीसीनिया युद्ध के परिणामस्वरूप इटली तथा जर्मनी की शत्रुता का अन्त हो गया था; परन्तु स्पेन के गृह-युद्ध से दोनों में प्रगाढ़ मैत्री-सम्बन्ध स्थापित हो गए। स्पेन में १९३१ में गणतन्त्र की स्थापना हुई थी। परन्तु वहाँ सत्ता प्राप्त करने के लिए विभिन्न दलों में संघर्ष होने लगा। १९३६ के आम चुनाव में उदार तथा अनुदार दोनों दलों ने ही प्रायः बराबर स्थान प्राप्त किए। जब उदार दल ने सत्ता अपने हाथ में लेनी चाही तो जनरल फ्रैंको के नेतृत्व में १८ जुलाई १९३६ को अनुदार दल ने गृह-युद्ध प्रारम्भ कर दिया। जनरल फ्रैंको ने इटली से सहायता मांगी। मुसोलिनी इसके लिए तैयार हो गया, क्योंकि वह भूमध्य सागर में अपनी स्थिति दृढ़ करना चाहता था। इटली के साथ-साथ जर्मनी ने भी फ्रैंको को सहायता दी। रूस ने उदार दल को सहायता दी; परन्तु दूर होने के कारण वह अधिक सहायता न दे सका। इस अवसर पर इंगलैंड तथा फ्राँस को उदारवादियों की सहायता करनी चाहिए थी; परन्तु तटस्थता का ढोल पीटकर वे खामोश रहे। वे जर्मनी तथा इटली को भी तटस्थ रहने की सलाह देते रहे। उधर इटली तथा जर्मनी भी झूठे आश्वासन देते रहे कि वे स्पेन के गृह-युद्ध में कोई भाग नहीं ले रहे हैं। फलतः अन्त में इटली तथा जर्मनी की सहायता से जनरल फ्रैंको को सफलता मिली। २८ मार्च १९३९ को मैड्रिड का पतन होने पर स्पेन का गृह-युद्ध समाप्त हो गया और वहाँ जनरल फ्रैंको की तानाशाही स्थापित हो गई। यदि इटली तथा जर्मनी स्पेन के गृह-युद्ध में भाग नहीं लेते तो यह संघर्ष इतना लम्बा नहीं चलता और शीघ्र ही जनरल फ्रैंको को कुचल दिया जाता। इस प्रकार इंगलैंड तथा फ्राँस की तटस्थता के कारण स्पेन के गणतन्त्र का अन्त हो गया। इंगलैंड तथा फ्रांस को भारी अपमान सहन करना पड़ा। जर्मनी तथा इटली एक दूसरे के बहुत समीप आ गए। नवम्बर १९३७ को जर्मनी तथा जापान के साथ इटली एण्टी कोमिण्टर्न पैक्ट में सम्मिलित हो गया। मार्च १९३९ में स्पेन ने भी इस पैक्ट को स्वीकार कर लिया। यह तानाशाहों की शक्ति की वृद्धि तथा इंगलैंड और फ्राँस की निर्बलता का परिचायक था।

आस्ट्रिया से सम्बन्ध—१९१९ के समझौते के अनुसार आस्ट्रिया का जर्मनी के साथ मिलने का निषेध कर दिया गया था। वैसे इस समय आस्ट्रिया जर्मनी के साथ मिलने को बहुत उत्सुक था, परन्तु हिटलर के उदय के फलस्वरूप स्थिति में परिवर्तन हो गया और आस्ट्रिया-निवासी जर्मनी ने साथ मिलने के विरोधी हो गए। मार्च १९३९ में आस्ट्रिया के चांसलर डोलफस के संविधान को भंग कर एक सैनिक संस्था (Heimwehr) की सहायता से शासन करना प्रारम्भ कर दिया। हिटलर आस्ट्रिया पर अधिकार करना चाहता था। अतः उसने आस्ट्रिया की नात्सी पार्टी को हर प्रकार से सहायता देना प्रारम्भ कर दिया। फलतः डोल्फस को नात्सी पार्टी के दमन करने के लिए विवश होना पड़ा। इस सम्बन्ध में इटली ने डोल्फस की बहुत सहायता की। मुसोलिनी के आग्रह पर डोलफस ने आस्ट्रिया में भी इटली की तरह की फासिस्टवादी सरकार स्थापित करने का आश्वासन दिया। हिटलर से प्रेरणा प्राप्त कर जुलाई १९३४ में आस्ट्रिया की नात्सी पार्टी ने विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह में डोलफस मारा गया; परन्तु शीघ्र ही सरकार ने इस विद्रोह का दमन कर दिया और हिटलर का विरोध करने के लिए इटली ने अपनी सेनाएं ब्रेनर दर्रे में भेज दीं। इससे हिटलर को आस्ट्रिया के हड़पने में सफलता नहीं मिली। परन्तु रोम-बर्लिन सन्धि से इटली तथा जर्मनी में मित्रता हो गई। स्पेन के गृह-युद्ध से मित्रराष्ट्रों की निर्बलता स्पष्ट हो गई। अतः उसने आस्ट्रिया को जर्मनी में मिलाने का निश्चय किया। उसने १९३८ में आस्ट्रिया की नात्सी पार्टी को पुनः उपद्रव करने का प्रोत्साहन दिया। उसने आस्ट्रिया के प्रधान मन्त्री शुशनिग को अपने निवास स्थान पर बुलाया और उससे यह मांग की कि वह शासन-सूत्र नात्सियों को सौंप दे। शुशनिग ने जनमत संग्रह की बात कहीं; परन्तु हिटलर इससे सहमत नहीं हुआ। उधर आस्ट्रिया की नात्सी-पार्टी ने देश में उपद्रव मचाना प्रारम्भ कर दिया। १२ मार्च १९३८ को हिटलर ने आस्ट्रिया पर आक्रमण कर विएना पर अधिकार कर लिया। १९३४ की भाँति इस बार इटली ने हिटलर का कोई विरोध नहीं किया। हिटलर ने शुशनिग तथा अपने विरोधी समस्त व्यक्तियों को गिरफ्तार करा दिया। इस प्रकार बिना एक गोली चलाए ही आस्ट्रिया को जर्मनी में सम्मिलित कर लिया गया।

फौलादी समझौता (Steel Pact)—एबीसीनिया तथा स्पेन की घटना से इंगलैंड तथा फ्राँस की निर्बलता स्पष्ट हो गई थी। अतः इटली ने फ्रांस से ट्यूनिशिया, कार्सिका, नाइस तथा सेवाय वापस लेने की मांग की। इससे इटली तथा फ्रांस के मध्य कटुता बहुत अधिक बढ़ गई। अतः इटली ने २२ मई १९३९ को जर्मनी से एक फौलादी समझौता कर लिया। इसके अनुसार दोनों ने एक दूसरे को पूरी तरह सैनिक सहायता देने का आश्वासन दिया।

द्वितीय महायुद्ध का प्रारम्भ और इटली—प्रथम सितम्बर १९३९ को हिटलर ने पौलैण्ड पर आक्रमण द्वितीय महायुद्ध का प्रारम्भ कर दिया। फौलादी समझौते के अनुसार इटली को भी इस समय जर्मनी के साथ मिलकर युद्ध करना चाहिए था। परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। वह तटस्थ रहकर ही जर्मनी को सहायता देने का

प्रयास करता रहा। वह युद्ध में इसलिए सम्मिलित नहीं हुआ कि जर्मनी की अपेक्षा वह निर्बल था। दूसरे इंगलैंड तथा फ्रांस जर्मनी की अपेक्षा उस पर सरलता से आक्रमण कर सकते थे। तीसरे इटली अपनी पुरानी शृंगाल-नीति के कारण युद्ध का परिणाम देखकर उसमें सम्मिलित होना चाहता था। अतः हिटलर की सफलता का पूर्ण विश्वास हो जाने पर ११ जून १९४० को मुसोलिनी ने भी मित्रराष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। उसको इस युद्ध में सफलता प्राप्त करने की पूर्ण आशा थी; परन्तु अन्त में तानाशाहों को इस युद्ध में पराजय उठानी पड़ी। २८ अप्रैल १९४५ को इटली की क्रुद्ध जनता ने मुसोलिनी तथा उसकी पत्नी के गोली मार दी।

प्रश्न

१ इटली में फासिस्टवाद का इतिहास लिखिए।

२ फासिस्ट इटली की गृह तथा वैदेशिक नीति का वर्णन कीजिये।

३ इटली में फासिस्टवाद (Fascist Dictatorship) के उत्थान के कारण बतलाइए।

४ इटली में फासिज्म (Fascism) की उन्नति का क्रमपूर्वक वर्णन कीजिए।

५ उन परिस्थितियों की व्याख्या कीजिए जिनके अन्तर्गत इटली में मुसोलिनी का उत्थान हुआ।

———

११

रूसी क्रान्ति

कारण, क्रान्ति का प्रारम्भ, अस्थायी सरकार, केरेन्सकी, जर्मनी से सन्धि।

१९१७ की रूसी क्रान्ति—१७८९ की फ्रांसीसी क्रान्ति के पश्चात् १९१७ की रूसी क्रान्ति विश्व-इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण घटना है। १७८९ की फ्रांसीसी क्रान्ति ने विश्व की स्वतन्त्रता, समानता तथा भ्रातृत्व-भाव का संदेश दिया था। रूस की इस क्रान्ति ने विश्व को सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में भी समानता का संदेश दिया। यद्यपि ये विचार अभी तक विवाद-ग्रस्त हैं तथापि इनकी महत्ता से इंकार नहीं किया जा सकता। फ्रांसीसी क्रान्ति को उस समय विश्व के लिए एक भयंकर खतरा बतलाया गया था; परन्तु कालान्तर में बहुत से राष्ट्रों ने उसके सिद्धान्तों को स्वीकार कर लिया। इसी प्रकार आज रूसी क्रान्ति के विचारों को विश्व के लिए खतरा बतलाया जा रहा है; परन्तु इसके भविष्य के सम्बन्ध में अभी निश्चित रूप से कुछ भी नहीं बतलाया जा सकता।

१९१७ की रूसी क्रान्ति के कारण—१९१७ की रूसी क्रान्ति के निम्नलिखित कारण बतलाये जा सकते हैं—

(१) **एकतन्त्रात्मक शासन**—रूस में एकतन्त्रात्मक शासन था। वहाँ के जार सम्राट् निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी थे। शासन की सम्पूर्ण शक्ति उनके हाथ में थी। वह संसद के बिना ही अपने कृपा-पात्र दरबारियों की सहायता से शासन करता था। ड्यूमा (संसद) के हाथ में कोई विशेष शक्ति न थी। वह राजा के प्रति उत्तरदायी थी। उसका कार्य एकमात्र राजा को सलाह देना था। राजा को अधिकार था कि वह उनकी सलाह को माने अथवा न माने। सम्राट् ही कर्मचारियों की नियुक्ति करता था। उसको हटाने का भी उसी को अधिकार था। राजा ही जल तथा स्थल सेना का प्रधान सेनापति था। जार निकोलस ने 'सम्पूर्ण रूस के एकराट्' (Autocrat of all the Russians) की उपाधि धारण की थी। सम्पूर्ण जनता उसको 'पिता' के नाम से सम्बोधित करती थी। सम्पूर्ण पृथ्वी का छठा भाग उसके अधीन था। रूसी चर्च का भी वही प्रधान था। रूसी शासन-व्यवस्था में अनेक दोष थे। क्रीमिया युद्ध तथा रूसी-जापानी युद्ध की पराजय से रूस की प्रतिष्ठा को भारी आघात लगा था। प्रथम महायुद्ध में भी रूसी सेना को भारी हानि उठाकर पराजित होना पड़ रहा था। इससे जनता स्वेच्छाचारी एकतन्त्रवादी शासन की विरोधी हो गई। जनता का यह असंतोष अन्त में क्रान्ति का कारण बना।

(२) सामाजिक विषमता—इस समय रूस की सामाजिक अवस्था वैसी ही थी, जैसी कि १७८९ से पूर्व फ्रांस की थी। समस्त रूसी समाज दो भागों में विभक्त किया जा सकता था—(१) अधिकारयुक्त वर्ग—इसमें राजा के कृपा-पात्र कुलीन लोग थे। ये लोग राजा की निरंकुशता तथा स्वेच्छाचारिता को आवश्यक समझते थे। यह वर्ग बहुत धनी था। राज्य के अधिकाँश महत्वपूर्ण पदों तथा अधिकांश भूमि पर इन्होंने अधिकार कर रक्खा था। (२) अधिकारहीन वर्ग—इसके अन्तर्गत किसान तथा मजदूर थे। इनकी आर्थिक अवस्था बहुत खराब थी। इनको कुलीन वर्ग के अनेक अत्याचारों को सहन करना पड़ता था। दास प्रथा की समाप्ति पर भी इस वर्ग की दशा में कोई सुधार नहीं हो पाया था। इस प्रकार रूसी समाज में भारी आर्थिक विषमता थी। फलतः यह वर्ग संघर्ष रूसी क्रान्ति का एक महत्वपूर्ण कारण बना।

(३) जार निकोलस की अयोग्यता—इस समय रूस में जार निकोलस द्वितीय का शासन था। वह एक सुचरित्र तथा धार्मिक व्यक्ति था। वह अपने नौकरों तथा जनता के प्रति बहुत उदार था। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि वह स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश सम्राट् था। उसकी रानी सम्राज्ञी एलिक्स (Empress Alix) भी उसी की भाँति निरंकुश तथा रूढ़िवादी थी। कालान्तर में इन दोनों के ऊपर रासपुटिन (Rasputin) नामक एक कुविख्यात साधु का प्रभाव हो गया। इससे शासन में अव्यवस्था तथा भ्रष्टाचार में वृद्धि हुई। फलतः जनता राज-परिवार की विरोधी हो गई। यदि सम्राट् निकोलस द्वितीय सोच समझकर कार्य करता तो १९१७ की रूसी क्रान्ति या तो होती नहीं अथवा टल जाती; जार निकोलस द्वितीय ने अपनी मूर्खता से इस क्रान्ति को अनिवार्य बना दिया।

(४) जार की रूसीकरण की नीति—रूस में अनेक अल्पसंख्यक जातियां रहती थीं। जार सम्राट् उनका रूसीकरण करना चाहता था। अतः ये जार की विरोधी हो गयीं और इन्होंने भी जार के विरुद्ध आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया।

(५) बौद्धिक क्रान्ति—जिस प्रकार फ्रांस में १७८९ की क्रान्ति से पूर्व एक बौद्धिक क्रान्ति हुई थी उसी प्रकार रूस में भी १९१७ की क्रान्ति से पूर्व एक बौद्धिक क्रान्ति हुई थी। रूस में पश्चिमी यूरोप के विचारों का आना प्रारम्भ हो गया था। जार सम्राटों ने इन विचारों के आगमन पर रोक लगाने का बहुत प्रयास किया; परन्तु उनको इस कार्य में सफलता न मिली। रूस के मध्यम वर्ग के लोग पाश्चात्य विचारों से बहुत प्रभावित हुए। टालसटाय, टर्गनेव तथा डोस्टोविस्की (Dostoievsky) के उपन्यासों ने रूस की शिक्षित जनता को बहुत प्रभावित किया। इसी प्रकार मार्क्स, मैक्सिम गोर्गी तथा बाकुनिन के समाजवादी तथा अराजकतावादी विचारों ने रूसी समाज में भारी क्रान्ति पैदा कर दी। शून्यवादी (Nihilist) तो रूस की वर्तमान व्यवस्था का पूर्ण विनाश करना चाहते थे।

(६) अनेक नए वादों का उदय—इस समय रूस में समाजवाद, अराजकता-

वाद तथा शून्यवाद आदि अनेक नए वादों का उदय हुआ। इन वादों ने समाज में क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार किया। इन वादों ने प्राचीन मान्यताओं का खण्डन कर उनके स्थान दर नवीन मान्यताओं का प्रतिपादन किया।

(७) **व्यावसायिक उन्नति**—इस समय रूस में भी व्यावसायिक क्रान्ति होने के कारण अनेक कल-कारखानों की स्थापना हो गई थी। इन कारखानों में कार्य करने के लिए लाखों मजदूर गाँव छोड़कर शहरों मे आ बसे थे। ये लोग साम्यवादी विचारधारा से बहुत प्रभावित हुए थे। ये पूंजीवादी व्यवस्था का अन्त कर कारखानों पर अपना अधिकार करना चाहते थे। इस प्रकार रूस में भी मजदूरों तथा मालिकों का संघर्ष प्रारम्भ हो गया। मशीनों के प्रयोग के कारण देश में बेकारों की संख्या में वृद्धि हुई। फलतः देश में भारी असंतोष उत्पन्न हो गया।

(८) **राजनीतिक सुविधाओं की माँग**—इस समय निम्नलिखित कारणों से रूसी समाज में राजनीतिक जागृति उत्पन्न हो गई थी—

(१) १९०५ की क्रान्ति से रूसी भी राजनीतिक अधिकारों से परिचित हो गए थे। वे प्रजातन्त्र तथा मताधिकार की महत्ता को समझने लगे थे। अतः वे अपने देश में भी सच्चे अर्थों में जनतन्त्र की स्थापना करना चाहते थे।

(२) यूरोप के अनेक देशों में जनतन्त्रात्मक शासन था। अब ये जनतन्त्रात्मक विचार रूस में भी आने लगे थे। रूस की मध्यम वर्ग की शिक्षित जनता ने इन विचारों को बहुत पसंद किय। था। अतः वे भी अपने देश में जनतन्त्रात्मक शासन स्थापित करना चाहते थे।

(३) प्रथम महायुद्ध में भाग लेते समय पश्चिमी देशों ने यह घोषित किया था कि वे जनतन्त्र की रक्षा के लिए युद्ध में भाग ले रहे हैं। इससे रूसी समाज भी जनतन्त्र से प्रभावित हुए।

(४) इस समय रूस में समाजवादी तथा अराजकतावादी अनेक विचार-धारायें चल रही थीं। इन्होंने एकतन्त्रवादी शासन का विरोध किया। अतः जनता जनतन्त्रवादी शासन से प्रभावित हुई।

इस प्रकार समाज में जागृति आने पर जनता ने निम्नलिखित मांगों की पूर्ति के लिए आन्दोलन करना प्ररम्भ कर दिया—

(१) संसद जनता द्वारा निर्धारित हो।
(२) मन्त्रि-मण्डल लोकसभा के प्रति उत्तरदायी हो।
(३) विचार-प्रकाशन की स्वतन्त्रता हो।
(४) धर्म तथा भाषा की स्वतन्त्रता हो।

(९) **रूसी नौकरशाही की अयोग्यता**—पीटर महान् (१६८३–१७२१) ने शासन के संचालन के लिए एक विशाल नौकरशाही का आयोजन किया था। नौकर-शाही के उच्च पदाधिकारी कुलीन वर्ग के व्यक्ति थे। जनता से इनकी कोई सहानुभूति नहीं थी। अतः ये मनमाने ढंग से शासन करते थे तथा जनता का शोषण करते थे।

नौकरशाही के कुछ उच्च पदों पर जर्मन पदाधिकारी भी नियुक्त थे। इनको भी रूस की जनता से कोई सहानुभूति नहीं थी। इस प्रकार रूस की नौकरशाही बहुत भ्रष्ट तथा अयोग्य थी।

(१०) **सेना की अयोग्यता**—रूसी नौकरशाही की भाँति रूसी सेना भी भी अयोग्य थी। क्रीमिया युद्ध तथा रूसी—जपानी युद्ध में वह बुरी तरह पराजित हुई थी। प्रथम महायुद्ध में भी रूसी सेना को भारी हानि उठानी पड़ रही थी। सरकार को सेना को सुविधायें प्रदान करने की कोई चिन्ता नहीं थी। रसद तथा युद्ध-सामग्री के अभाव में रूसी सैनिक बेमौत मर रहे थे। युद्ध के लिए एकत्र की जाने वाली धन-राशि का उच्च पदाधिकारी दुरुपयोग कर रहे थे। सेना के उच्च पदाधिकारी जार सम्राट् को प्रसन्न रखना ही अपना कर्त्तव्य समझते थे। राष्ट्र-सेवा तथा कर्त्तव्यपालन की भावना का उनमें सर्वथा अभाव था। दो वर्ष तक भी युद्ध का कोई निर्णय न होने पर रूसी सेना तथा नौकरशाही दोनों घबरा गये। इससे जनता के असंतोष में बहुत वृद्धि हुई तथा सर्वत्र क्रांति के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे।

(फरवरी) **मार्च की क्रांति का प्रारम्भ**—प्रथम महायुद्ध में रूसी सेनाओं को भारी हानि उठानी पड़ रही थी। देश में हाथियार बनाने के कारखानों का अभाव था। अतः हथियारों के लिए विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता था। विदेशों से आए हुए हथियार भी बन्दरगाहों पर पड़े रहते थे। उनको ठीक प्रकार से मोर्चे पर नहीं भेजा जा रहा था। सैनिकों के पास रसद भी ठीक प्रकार नहीं पहुंच रही थी। फलतः रूसी सेना को भारी हानि उठानी पड़ रही थी। इससे जनता में बहुत असन्तोष था। रूसी सेना में उच्च पदों पर कुछ जर्मन पदाधिकारी थे। उनको रूस की पराजय की कोई चिन्ता न थी। जार पर अपनी पत्नी का बहुत प्रभाव था। वह जर्मन थी। अतः रूस के साथ उसकी कोई सहानुभूति न थी। फलतः यह अफवाह फैली कि जार जर्मनी के साथ सन्धि करना चाहता है। इससे जनता में बहुत असंतोष फैला। शासन में अनुचित हस्तक्षेप करने वाले कुविख्यात साधु रासपुटिन की हत्या कर दी गई। बहुत से ग्रामों में कृषकों ने विद्रोही कर दिया। कुछ स्थानों पर सेना ने भी विद्रोह कर दिये।

क्रांति के प्रारम्भ का तात्कालिक कारण दैनिक व्यवहार की वस्तुओं-अन्न, कपड़े तथा ईंधन आदि का अभाव था। अभाव के कारण इन वस्तुओं के कारण इन वस्तुओं का भाव बहुत तेज हो गया था। इससे निर्धनों को जीवनयापन करना कठिन हो रहा था। जनता का यह विश्वास था कि इन वस्तुओं का देश में अभाव नहीं है, अपितु पूंजीपतियों ने इनका भारी स्टाक इकट्ठा कर रक्खा है। इससे इनके दाम चढ़ गये हैं। इस अव्यवस्था को दूर न करने के लिए उन्होंने राजा को दोषी ठहराया। (२३ फरवरी) ७ मार्च १९१७ को निर्धन मजदूरों ने भूख से व्याकुल होकर पेट्रोग्रेड की सड़कों पर घूमना और दूकानों से रोटियाँ लूटना प्राम्भ कर दिया। सरकार ने इन पर गोलियाँ चलाने का आदेश दिया; परन्तु सैनिकों ने गोलियाँ चलाने से इन्कार कर दिया। ८ मार्च १९१७ को पैट्रोग्रेड के कपड़ों के कारखानों में काम करने वाली

२४ फरवरी

मज़दूर औरतों ने हड़ताल कर दी तथा उन्होंने सड़कों पर रोटी की माँग के नारे लगाये। दूसरे दिन अन्य बहुत से मजदूर भी उनमें सम्मिलित हो गए। उन्होंने नगर की सड़कों पर 'रोटी दो', युद्ध बन्द करो' तथा 'निरंकुश शासन का अन्त हो' आदि नारे लगाने प्रारम्भ कर दिये। १० मार्च को देशव्यापी हड़ताल हो गई। सर्वत्र क्रान्ति के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे। सैनिकों ने विद्रोहियों के ऊपर गोली चलाने से इन्कार कर दिया। ११ मार्च को क्रोध में आकर जार ने ड्यूमा को बर्खास्त कर दिया। फलतः ड्यूमा ने भी विद्रोह कर दिया। क्रान्तिकारियों ने क्रान्ति के प्रचार तथा शासन के संचालन के लिए एक सोवियट (परिषद) का निर्माण कर लिया। तीन दिन तक सम्राट् के समर्थक सैनिक पदाधिकारी जनता पर गोली चलाते रहे। १४ मार्च को क्रान्तिकारियों ने एक अस्थायी सरकार का निर्माण कर लिया। अपने को विवश पाकर १५ मार्च को जार निकोलस द्वितीय ने सिंहासन का परित्याग कर दिया। इस प्रकार मार्च १९१७ की क्रान्ति के फलस्वरूप रूस से निरंकुश जार सम्राटों के शासन का अन्त हो गया। पेट्रोग्रेड के विद्रोह की इन घटनाओं को समस्त देश ने स्वीकार कर लिया।

अस्थायी सरकार—रूस में क्रान्ति भूख से व्याकुल मजदूरों ने की थी; परन्तु इसके बाद सत्ता मध्यम वर्ग के हाथ में गई। अस्थायी सरकार का निर्माण उदारवादी नेता ल्वॉव ने किया था। अस्थायी सरकार में मन्त्री बहुत योग्य थे। मिल्यूकॉव विदेश-मन्त्री था, केरेन्स्की न्याय-मन्त्री था तथा युद्ध-मन्त्री गुचकॉव था। यह मन्त्रि-मण्डल संवैधानिक तरीकों में विश्वास करता था। अतः इसने निम्नलिखित महत्वपूर्ण सुधार किए—

(१) विचार-प्रकाशन की स्वतन्त्रता दे दी। जनता अपनी इच्छानुसार विभिन्न संघों का निर्माण कर सकती थी, भाषण दे सकती थी तथा समाचार पत्रों का प्रकाशन कर सकती थी।

(२) देश का नवीन संविधान बनाने के लिए एक नवीन संविधान सभा की स्थापना की घोषणा की गई।

(३) यहूदियों के विरोध में जितने कानून बने थे, उनको रद्द कर दिया गया।

(४) राजनीतिक बन्दियों को मुक्त कर दिया गया। जिन राजनीतिक बन्दियों को निर्वासित कर दिया गया था, उनको पुनः देश में आने की आज्ञा प्रदान कर दी गई।

(५) पुलिस को मनमाने ढंग से नागरिकों के गिरफ्तार करने का अधिकार न रहा।

(६) मृत्यु-दण्ड बन्द कर दिया गया।

(७) पोलैण्ड तथा फिनलैंड को स्वायत्त शासन देने का वचन दिया गया।

इस प्रकार का निर्माण लोकतन्त्रवादी सिद्धान्तों के आधार पर हुआ था। अतः मित्रराष्ट्रों ने शीघ्र ही इस सरकार की स्थिति डांवाडोल रही और उसको निम्नलिखित कठिनाइयों का सामना करना पड़ा—

(१) यह मन्त्रिमण्डल युद्ध जारी रखने के पक्ष में था; परन्तु इस समय युद्ध में रूस की पराजय हो रही थी। सैनिक युद्ध करने से इन्कार कर रहे थे। रूसी सैनिकों की हार पर हार हो रही थी। सैनिकों के झुण्ड के झुण्ड सेना छोड़कर भाग रहे थे। उस समय एक सैनिक पदाधिकारी ने ठीक ही लिखा था कि 'अब कोई लड़ना नहीं चाहता सब शाँति चाहते हैं।' वास्तव में इस समय देश का युद्ध करने का जोश ठण्डा हो गया था।

(२) मजदूर तथा उनके नेता अस्थायी सरकार में विश्वास नहीं रखते थे। अतः उन्होंने ग्राम-ग्राम में स्वतन्त्रता-सोवियटों का निर्माण कर लिया था। सरकार तथा सोवियटों में परस्पर मत-भेद था। अतः सरकार की स्थिति प्रारम्भ से ही निर्बल रही।

(३) किसान तथा मजदूर यह चाहते थे कि जमींदारों की भूमि कृषकों में बाँट दी जाय तथा उनको कोई मुआवजा नहीं दिया जाय। समस्त महत्वपूर्ण उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाय।

(४) मजदूर विभिन्न कारखानों में हड़ताल करने लगे। उन्होंने स्थान-स्थान पर आतंकवादी कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। इससे सरकार की स्थिति बहुत जटिल हो गई।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि किसान मजदूर तथा सैनिक आदि सभी सरकार से मत-भेद रखते थे। उनको राजनीतिक सुधारों से कोई संतोष नहीं हुआ। यह सरकार जनता की रोटी की समस्या का हल न कर सकी। युद्ध बन्द कर स्थायी शान्ति स्थापित करने में भी इसको सफलता न मिली। फलतः इस सरकार का पतन हो गया।

केरेन्सकी का सत्ता प्राप्त करना—कैडेट (Cadet) दल के पतन के पश्चात् सत्ता मेन्शेविक दल के हाथ में आई। इस दल का नेता केरेन्सकी था। वह क्रान्ति तथा रक्तपात का विरोधी था। वह वैधानिक ढंग से क्रमिक सुधार कर समाजवाद की स्थापना करना चाहता था। वह युद्ध को जारी रखना चाहता था; परन्तु यथा-शीघ्र सम्मानपूर्वक उसका अन्त करना चाहता था। उसने सेना में नया उत्साह उत्पन्न करने का प्रयास किया; परन्तु उसको इस कार्य में सफलता न मिली। बोल्शेविक दल के प्रचार के कारण सैनिकों ने युद्ध करने से इंकार कर दिया। उधर जर्मनी बराबर आगे बढ़ता रहा और उसने रीगा पर अधिकार कर लिया। ऐसी परिस्थिति में पेट्रोग्रेड भी खतरे में पड़ गया। सरकार की स्थिति बहुत निर्बल हो गई। फलतः केरेन्सकी की सरकार का पतन हो गया।

नवम्बर १९१७ की क्रान्ति—बोल्शेविकों के प्रचार के फलस्वरूप सेना ने युद्ध करने से इन्कार कर दिया तथा कृषकों ने जमींदारों की भूमि को छीनना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने जमींदारों की कोठियों को भी फूंकना प्रारम्भ कर दिया। मजदूर हड़ताल कर काम के घण्टे कम करने तथा वेतन बढ़ाने के लिए आन्दोलन करने लगे। इससे देश में अराजकता छा गई। लोगों का सरकार में विश्वास नहीं रहा तथा

सरकार की स्थिति बहुत निर्बल हो गई। ऐसी स्थिति में केरेन्सकी परिस्थिति को न संभाल सका और उसकी सरकार का पतन हो गया। ७ नवम्बर १९१७ को बोल्शेविक स्वयंसेवकों ने पेट्रोग्रेड के समस्त सरकारी भवनों तथा रेलवे स्टेशन पर अधिकार कर लिया। केरेन्सकी देश छोड़कर भाग गया। उसके समस्त साथी गिरफ्तार कर लिये गये। इस प्रकार बिना रक्त की एक बूंद गिराए बोल्शेविकों ने पेट्रोग्रेड पर अधिकार कर लिया। मार्च १९१७ की क्रान्ति ने निरंकुश शासन का अन्त कर मध्यम वर्ग के शासन की स्थापना की थी; परन्तु नवम्बर १९१७ की क्रान्ति ने सच्चे अर्थों में रूस में मजदूर सरकार की स्थापना की। इस प्रकार केरेन्सकी के पतन के पश्चात् शासन-सत्ता बोल्शेविक नेता लेनिन तथा ट्रॉटस्की के हाथ में आ गई। इन्होंने एक अस्थायी सरकार की स्थापना की। लेनिन इसका चैयरमैन तथा ट्राटस्की इसका विदेश-मन्त्री बना। २५ नवम्बर को देश की संविधान सभा का निर्वाचन हुआ। इस निर्वाचन में बोल्शेविकों को बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। अतः लेनिन ने इसको जनता की प्रतिनिधि न मानकर इसको भंग कर दिया। लेनिन ने देश में पूर्णतया सर्वहारा वर्ग का अधिनायकतन्त्र स्थापित कर दिया।

जर्मनी से सन्धि—नवम्बर १९१७ की क्रान्ति के अनुसार बोल्शेविक नेता लेनिन तथा ट्राटस्की के हाथ में सत्ता आ गई। ये देश में आन्तरिक व्यवस्था करने तथा अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए शान्ति चाहते थे। अतः उन्होंने जर्मनी के साथ सन्धि करने के लिए वार्ता प्रारम्भ कर दी। अन्त में ३ मार्च १९१८ को विदेश मन्त्री ट्रॉट्स्की ने जर्मनी के साथ ब्रेस्ट-लिटोवस्क (Brest-Litovsk) की सन्धि कर ली। इस सन्धि के अनुसार निम्नलिखित निर्णय किये गये—

(१) रूस ने जर्मनी को तीन करोड़ पौण्ड युद्ध का हर्जाना देने का वायदा किया।

(२) रूस ने यह वायदा किया कि वह मध्य यूरोप में साम्यवाद का प्रचार नहीं करेगा।

(३) एस्टोनिया (Estonia) तथा लिबोनिया (Libonia) के प्रदेश जर्मनी को दे दिये गये।

(४) अर्दहान, कार्स तथा बातूम के प्रदेश टर्की को दे दिये गये।

(५) लिथुनिया, फिनलैंड, पोलैंड तथा यूक्रेन की स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली गई।

(६) बेसराविया का प्रदेश रूमानिया को दे दिया गया।

यह सन्धि रूस के लिए बहुत अपमानजनक थी। इसके अनुसार रूस को वे सब प्रदेश छोड़ देने पड़े जो कि पीटर महान् के शासनकाल से रूस के अधीन चले आ रहे थे। इस सन्धि के फलस्वरूप रूस को ७३ प्रतिशत लोहे, ८९ प्रतिशत कोयले, २७ प्रतिशत कृषि योग्य भूमि तथा ४४ प्रतिशत जनसंख्या से हाथ धोना पड़ा। इस सन्धि के सम्पन्न होने पर रूस जर्मनी का मित्र हो गया तथा युद्ध से अलग हो गया।

लेनिन को आन्तरिक सुधार करने तथा क्रान्ति को आगे बढ़ाने के लिए समय गया।

प्रश्न (बी० ए०)

१९१७ की बोल्शेविक क्रान्ति के कारणों का संक्षिप्त वर्णन कीजिये और उसके परिणाम बतलाइए।

रूस में बोल्शेविक क्रान्ति के विकास का संक्षिप्त में वर्णन कीजिए।

रूस की १९१७ की क्रान्ति के पूर्व उसकी राजनीतिक तथा सामाजिक दशा पर प्रकाश डालिए।

१९१७ की रूसी क्रान्ति के क्या परिणाम हुए ?

'रूस की क्रान्ति (१९१७) एक आर्थिक विस्फोट था, जिसको निरंकुश सरकार की मूर्खताओं ने और भी तेजी से करने का अवसर दे दिया।' इस कथन का विवेचन कीजिये।

'१९१७ की रूस की क्रान्ति की जड़ें रूस के इतिहास में गहराई तक पहुंच गई हैं।' इस कथन की समीक्षा कीजिये।

Questions (M. A.)

'The Russian revolution of 1917 was inevitable and would have come about even without the Great War.' Examine the view.

Describe the causes and the results of the Russian Revolution of 1917.

Examine the factors that made the success of Bolshevism possible in Russia.

१२ युद्धोत्तर टर्की (१६१६–३६)

मुस्तफा कमाल पाशा, क्रान्ति, विदेशी-नीति, मुस्तफा कमाल पाशा का मूल्यांकन।

मुस्तफा कमाल पाशा—टर्की का साम्राज्य गत एक शताब्दी से लड़खड़ा रहा था और वह बीमार आदमी कहलाता था। परन्तु प्रथम महायुद्ध के पश्चात् टर्की का पुनर्जन्म हुआ। इसका श्रेय टर्की के राष्ट्रवादी नेता मुस्तफा कमाल पाशा को है। मुस्तफा कमाल पाशा का जन्म एक साधरण परिवार में हुआ था। उसका पिता उसके बचपन में ही मर गया था। इससे उसको अपने बाल्यकाल में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उसको अपनी आजीविका के लिए मजदूरी करनी पड़ती थी। जब वह २४ वर्ष का हुआ तो उसको अपनी चाची की सहायता मिल गई तथा उसने सैनिक शिक्षा प्राप्त की। वह फ्रांसीसी विचारक वाल्टेयर से बहुत प्रभावित हुआ। जब उसके इन क्रान्तिकारी विचारों का टर्की की सी० आई० डी० को पता चला तो उसको गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया; परन्तु कुछ दिन पश्चात् उसको जेल से मुक्त कर दिया गया। बाल्कन युद्ध प्रारम्भ होने पर वह सेना में भर्ती हो गया। युद्ध में उसने अपनी योग्यता का अच्छा परिचय दिया। गैलीपोली के युद्ध के संचालन का कार्य उसी को सौंपा गया। इस युद्ध में उसने इंगलैंड तथा आस्ट्रिया की सेना को पराजित कर दिया। इससे उसकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गई।

क्रान्ति—प्रथम महायुद्ध में टर्की जर्मनी की ओर से लड़ा था। महायुद्ध के पश्चात् मित्र राष्ट्रों ने उससे सेवर्स (Sevres) की सन्धि की। इस सन्धि के द्वारा टर्की के साम्राज्य का विघटन कर दिया गया। टर्की का सुल्तान इस सन्धि को स्वीकार करने के पक्ष में था। परन्तु कमाल पाशा इसके विरुद्ध था। उसने अपने भाषणों द्वारा जनता को अपने पक्ष में कर लिया। अन्त में कमाल पाशा के नेतृत्व में राष्ट्रवादियों ने इस सन्धि को मानने से इन्कार कर दिया। फलत: १९२३ में मित्र-राष्ट्रों ने टर्की के साथ लाओसेन की सन्धि की। इस सन्धि की शर्तें टर्की के अनुकूल थीं। इस सन्धि के अनुसार टर्की के छीने हुए अधिकांश भाग उसको वापस कर दिये गये। कुस्तुन्तुनिया तथा थ्रेस पर टर्की का अधिकार बना रहा। एशिया माइनर में स्थित अनाटोलिया भी उसके ही पास रहा। वास्फोरस तथा डार्डेनेलीज के जल अन्तरीप भी उसी के अधीन रहे; परन्तु वह उनकी किलेबन्दी नहीं कर सकता था। मैण्डेट-प्रणाली (Mandate System) के अन्तर्गत अग्रलिखित प्रदेश टर्की से छीन लिए गए—

(१) सीरिया तथा लेबनान फ्रांस को दे दिये गये।

(२) ईराक, पैलेस्टाइन तथा ट्राँस जोर्डन इंगलैंड को दे दिया गया। पैलेस्टाइन में अंग्रेजों ने यहूदियों के स्वतन्त्र राज्य निर्माण का वचन दिया।

(३) जेरुसलम के समीप की पट्टी में एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की गई।

इन प्रदेशों के टर्की से अलग होने अर्थात् आटोमन साम्राज्य के नष्ट होने की मुस्तफा कमाल पाशा को कोई चिन्ता नहीं थी। वास्तव में उसका ध्येय एक राष्ट्रीय राज्य की स्थापना करना था। कमाल पाशा ने अनातोलिया में एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। अंकोरा को इसकी राजधानी बनाया गया। एक राष्ट्रीय सभा का संगठन किया। इसमें जनता के प्रतिनिधियों ने भारी संख्या में भाग लिया। टर्की का सुल्तान इससे भयभीत हो गया। उसने कमाल पाशा को बन्दी बनाने की आज्ञा प्रसारित की; परन्तु कोई भी पदाधिकारी उसको बन्दी बनाने का साहस न कर सका। फलतः सुल्तान १९२२ में सिंहासन छोड़कर भाग गया। इसके पश्चात् टर्की में जनतन्त्रात्मक शासन की स्थापना कर दी गई। मुस्तफा कमाल पाशा इस जनतन्त्र का प्रथम राष्ट्रपति बना।

कमाल पाशा के सिद्धान्त—कमाल पाशा के निम्नलिखित छः आधारभूत सिद्धान्त थे। इनको उसने राष्ट्र के लाल झण्डे पर छः सफेद तीरों द्वारा अंकित कराया था—

(१) राजतन्त्र का अन्त कर टर्की में गणतन्त्र की स्थापना की जाय।

(२) प्रत्येक तुर्क जो कि राष्ट्रीय सीमा के अन्दर निवास करता हो, तुर्की भाषा बोलता हो तथा तुर्की आदर्श को अपना आदर्श समझता हो, राष्ट्र का नागरिक समझा जायगा।

(३) यह स्वीकार किया गया कि सत्ता जनता से आती है।

(४) राष्ट्र के हित के लिए बड़े-बड़े व्यवसायों का राष्ट्रीयकरण किया जायगा।

(५) टर्की-गणतन्त्र धर्म-निरपेक्ष राज्य घोषित कर दिया गया। टर्की का सुल्तान धर्माचार्य माना जाता था; परन्तु अब उसका यह पद समाप्त कर दिया गया। खलीफा का पद भी समाप्त कर दिया गया। मुल्ला-मौलवियों के विशेषाधिकार रद्द कर दिये गए। अब मुल्ला-मौलवी न्यायाधीश का कार्य नहीं कर सकते थे। इस प्रकार राज्य तथा धर्म का सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया गया।

(६) देश का विकास धीरे-धीरे किया जायगा।

विदेशी नीति—(१) सेवर्स की सन्धि के समय मित्र-राष्ट्रों ने टर्की के साथ बड़ी कठोरता का व्यवहार किया था। इसके अनुसार उसके साम्राज्य का अन्त कर दिया गया था तथा उस पर भारी हर्जाना लाद दिया गया था। इससे टर्की मित्र-राष्ट्रों से नाराज होकर रूस की ओर झुकने लगा था। रूस ने टर्की की निर्बलता से लाभ

उठाकर वहां साम्यवाद का प्रचार प्रारम्भ कर दिया। मुस्तफा कमाल पाशा ने रूस के इस कार्य का विरोध किया तथा १६२६ में उसने बहुत से साम्यवादियों को गिरफ्तार कराकर जेलों में डलवा दिया। इससे रूस से उसके सम्बन्ध बिगड़ गए और उसने पुनः मित्र-राष्ट्रों की ओर झुकना प्रारम्भ कर दिया।

(२) सन् १६२६ में टर्की ने फ्रांस से भी एक समझौता कर लिया। इसके अनुसार उसने सीरिया की सीमाओं का पुनः निर्धारण कर उससे कुछ भू-प्रदेश प्राप्त कर लिया।

(३) टर्की पर राष्ट्रों का युद्ध से भी पूर्व का कुछ ऋण था; टर्की ने उसको देना स्वीकार कर लिया।

(४) युद्ध-काल में टर्की के अमेरिका से कूटनीतिक तथा व्यापारिक सम्बन्ध-विच्छेद हो गये थे। अतः १६२३ में दोनों देशों ने परस्पर एक सन्धि (Treaty of Amity and Commerce) करनी चाही; परन्तु अमेरिकन सीनेट के विरोध के कारण वह सफल न हो सकी। अन्त में १६२७ में दोनों देशों ने परस्पर कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित कर लिए। कालान्तर में दोनों में व्यापारिक सम्बन्ध भी स्थापित हो गये।

(५) सन् १६३२ में टर्की राष्ट्र-संघ का सदस्य भी हो गया।

(६) सन् १६३८ में टर्की ने इटली के साथ मैत्री-सम्बन्ध स्थापित कर लिये।

(७) टर्की ने लाओसेन की सन्धि के अनुसार विवशतावश यह स्वीकार कर लिया था कि वास्फोरस तथा डार्डेनेलिज का वह दुर्गीकरण नहीं करेगा। वह शान्ति-पूर्ण ढंग से उक्त धारा में संशोधन कराना चाहता था। मित्र-राष्ट्र भी इसके लिए तैयार हो गये, क्योंकि वे पूर्वी भूमध्य सागर में फासिस्ट इटली का प्रभाव रोकने के लिये टर्की को शक्तिशाली बनाना चाहते थे। फलतः १६३६ में एक सन्धि (Monteux Straits Convention) हुई। उसमें लाओसेन की सन्धि को भंग कर दिया गया और निम्नलिखित निर्णय किये गये—

(१) टर्की को वास्फोरस तथा डार्डेनेलीज जल अन्तरीपों के दुर्गीकरण का अधिकार मिल गया।

(२) शान्ति-काल में उक्त जल अन्तरीप सब देशों के लिये खुले रहेंगे।

(३) युद्ध-काल में इनके बन्द करने का अधिकार टर्की को प्रदान कर दिया गया।

(८) सन् १६३७ में टर्की ने अफगानिस्तान, ईराक तथा ईरान के साथ एक समझौता (Eastern Pact) कर लिया। उसके अनुसार निम्नलिखित निर्णय किये गये—

(१) उक्त चारों देश समान हितों से सम्बन्ध रखने वाले अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर मिलकर विचार-विमर्श करते रहेंगे।

(२) कोई भी देश अन्य सदस्य देश के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा ।

(३) सदस्य देशों में से कोई भी देश अपने क्षेत्र में ऐसे संगठन का निर्माण न होने देगा, जोकि शान्ति के लिये खतरा सिद्ध हो ।

(६) टर्की इङ्गलैंड की सहानुभूति प्राप्त करना चाहता था । अतः उसने इस्लामी आन्दोलन को प्रोत्साहन नहीं दिया । उसने अरब तथा भारत की राजनीतिक घटनाओं से लाभ उठाना छोड़ दिया । अन्त में १६३६ में उसने इङ्गलैंड तथा फ्रांस से सन्धि करली । इसके अनुसार एक देश ने दूसरे देश की बाहरी आक्रमण के समय सैनिक सहायता देने का वचन दिया ।

(१०) १६२१ में टर्की तथा यूनान के मध्य भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया था । उस अवसर पर कमाल पाशा ने घोषित किया था कि—'यदि यूनानी मुझको पराजित कर देंगे तो भी मैं उनके घेरे में नहीं आऊंगा । मैं ऐसे प्रदेशों में चला जाऊंगा जहाँ कि यूनानी मुझको नहीं ढूंढ पायेंगे । मैं उस समय तक युद्ध करूँगा जब तक कि यूनानी पराजित नहीं हो जायेंगे ।' अगस्त १६२२ में कमाल पाशा ने यूनानियों को बुरी तरह पराजित कर दिया । परन्तु कालान्तर में उसने यूनान से मित्रता कर ली ।

मुस्तफा कमाल पाशा का मूल्यांकन—मुस्तफा कमाल पाशा का जन्म एक निर्धन परिवार में हुआ था । अपने प्रयत्नों से उसने टर्की जैसे पिछड़े राष्ट्र को यूरोप के राष्ट्रों की भाँति एक उन्नत राष्ट्र बना दिया । इसी से वह अतातुर्क (Ataturk) अर्थात् 'तुर्कों के पिता' के नाम से प्रख्यात हुआ । उसने अपना जीवन एक निष्ठुर तथा निर्भय सैनिक के रूप में प्रारम्भ किया था । अपने शासन के प्रारम्भ में वह बहुत कठोर था । उसके कार्य तानाशाही की भाँति थे । परन्तु टर्की जैसे पिछड़े देश को उन्नत करने के लिये ऐसे ही व्यक्ति की आवश्यकता थी । १६३२ में मुस्तफा कमाल पाशा ने घोषित किया था—'अभी कुछ और समय तक जनता राजनीति से दूर रहे । उसको कृषि तथा वाणिज्य में दिलचस्पी लेनी चाहिये । अभी मुझे १५ वर्ष तक इसी प्रकार शासन करना चाहिये । इसके पश्चात् उसको भाषण की स्वतन्त्रता देने का विचार किया जायगा ।' कमाल पाशा सच्चे अर्थों में टर्की का भाग्य-विधाता था । उसने कट्टर मुल्ला-मौलवियों के बावजूद भी देश में अनेक महत्वपूर्ण सुधार किये । तुर्कों को फेज (धार्मिक पगड़ी) के स्थान पर हेट लगाने का आदेश दिया गया । स्त्रियों को पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी गई । बहु-विवाह तथा पर्दा प्रथा समाप्त कर दी गई । १६३५ के निर्वाचन में १७ स्त्रियाँ असेम्बली की सदस्या निर्वाचित की गईं । जुम्मा की छुट्टी के स्थान पर रविवार की छुट्टी की व्यवस्था की गई । टर्की भाषा को अरबी अक्षरों के स्थान पर रोमन अक्षरों में लिखने का आदेश दिया गया । कृषि, उद्योग-धन्धे, यातायात तथा संचार के साधनों में अनेक सुधार कर देश की आर्थिक अवस्था को सुधारने का प्रयास किया गया । देश के लिये नवीन कानूनों का निर्माण

किया गया। देश की राजधानी कुस्तुन्तुनिया के स्थान पर अंकारा को बनाया गया। इस प्रकार कमाल पाशा ने अनेक क्रान्तिकारी सुधारों द्वारा देश की काया-पलट कर दी। वास्तव में उसने अपने प्रयासों से टर्की को एक बहुत उन्नत, स्वतन्त्र तथा शक्तिशाली राज्य बना दिया। नवम्बर १९३८ में मुस्तफा कमाल पाशा का देहान्त हो गया।

प्रश्न

(१) मुस्तफा कमाल पाशा के जीवन तथा कार्यों का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

(२) मुस्तफा कमाल पाशा ने टर्की की क्या सेवायें कीं ?

(३) कमाल पाशा के सामाजिक तथा राजनीतिक सुधारों का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

(४) युद्धोत्तर (१९१९-३९) टर्की की विदेश-नीति का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

———

१३

मध्य पूर्व तथा सुदूर पूर्व

अरब; सीरिया; फ्रांस के विरुद्ध विद्रोह; स्वतन्त्रता, फिलिस्तीन; बाल्फोर-घोषणा; नवीन संविधान; अरबों की शिकायतें; अरब-यहूदी-संघर्ष; इजराइल का निर्माण; ईराक, अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलन; नई सन्धि; मैण्डेट की समाप्ति; ईरान; आन्तरिक अशान्ति; रक्तहीन क्रान्ति; चीन और जापान; मंचूरिया का युद्ध, चीन-जापान युद्ध; रूस।

मध्य पूर्व के अन्तर्गत अरब, सीरिया, पैलेस्टाइन, ईराक तथा ईरान आदि देशों की गणना होती है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह प्रदेश बहुत महत्वपूर्ण है। यह संसार का केन्द्र-बिन्दु है। यहाँ पर एशिया, यूरोप तथा अफ्रीका महाद्वीपों की सीमायें एक दूसरे से मिलती हैं। प्राचीन काल से ही यह एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने का मार्ग रहा है। आज भी इसका महत्व बहुत अधिक है। इसके एक ओर स्थल पर अपार शक्ति रखने वाला रूस तथा उसके साथी देश स्थित हैं तथा दूसरी ओर जल पर अपार शक्ति रखने वाले अमेरिका तथा पश्चिमी यूरोप के कुछ राष्ट्र स्थित हैं। नीचे संक्षेप में मध्य पूर्व के प्रमुख देशों का सामान्य परिचय दिया जायगा —

अरब—अरबों की सभ्यता और संस्कृति बहुत प्राचीन है। अरब लोग बहादुर हैं, परन्तु बिखरे हुए होने के कारण वे संगठित नहीं हो पाये। वे प्रायः परस्पर ही लड़ते झगड़ते रहा करते थे। फलतः ४०० वर्षों तक वे टर्की के अधीन रहे। उस समय एकमात्र मक्का के गवर्नर का पद ही पैतृक रहा। यह नगर मुसलमानों के धर्म-गुरू मुहम्मद साहब का जन्म-स्थान है। यह गर्वनर उन्हीं के खानदान में से होता था। इस प्रकार मक्का के गवर्नर का पद बहुत पवित्र माना जाता था। १८०३ के लगभग वाहाबी आन्दोलन के नेता सऊद महान् ने अरब को एक स्वतन्त्र अरब राज्य बनाने की योजना बनाई और उसने मक्का तथा मदीना को जीत लिया, परन्तु टर्की के सुलतान ने मिस्र के वाइसराय मुहम्मदअली की सहायता से सऊद को पराजित कर दिया। इस प्रकार अरबों का स्वतन्त्रता का प्रथम प्रयास असफल हो गया। १९१४ में इब्न सऊद के नेतृत्व में पुनः बहाबी आन्दोलन ने जोर पकड़ा। १९१४ में मक्का का गवर्नर हुसैन था। उसका वंश टर्की के सुलतान से भी अधिक पुराना था। प्रथम महायुद्ध में अंग्रेजी सेनाओं ने टर्की की सेनाओं को पीछे हटा कर बसरा पर अधिकार कर लिया। अरब लोग तुर्कों को घृणा की दृष्टि से देखते थे। अंग्रेज भी उनकी इस भावना से परिचित थे। ऐसे अवसर पर अरबों को अपने उद्धार की बहुत कुछ आशा

हुई। अतः हुसैन ने भी टर्कों का विरोध करने का निश्चय किया। उसके पुत्र अब्दुल्ला तथा फैजल ने भी उसका पूरा-पूरा साथ दिया। हुसैन ने अंग्रेजों से प्रार्थना की कि वे उसका अरबों के स्वतन्त्र कराने के कार्य में सहयोग प्रदान करें। अंग्रेजों ने उसको विद्रोह करने के लिये प्रोत्साहन दिया तथा आवश्यकतानुसार उसको धन, हथियार तथा सेना देने का आश्वासन दिया। अन्त में अवसर पाकर हुसैन ने विद्रोह कर दिया तथा अरब जाति को स्वतन्त्र करा कर अपने को उसका खलीफा घोषित कर दिया।

सीरिया—मित्र राष्ट्रों ने सीरिया को मैण्डेट के रूप में फ्रांस को प्रदान कर दिया था। फ्रांस का उद्देश्य सीरिया में फूट डाल कर वहाँ अपनी प्रभुसत्ता बनाये रखना था। अतः उसने सीरिया को शासन की दृष्टि से पाँच भागों में बाँट दिया।

सीरिया का शोषण—फ्रांस ने सीरिया का पूरी तरह शोषण करने का प्रयास किया। सीरिया से प्रकाशित होने वाले समाचार-पत्रों पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। वहाँ फौजी शासन लागू कर दिया गया। फ्रांस की व्यापारिक नीति के कारण सीरिया का सोना फ्रांस जाने लगा तथा देश निर्धन होने लगा। फ्रांस वालों का बर्ताव मुसलमानों के साथ बहुत कठोर था। उन्होंने सीरिया का पूरी तरह फ्रांसीकरण करने का निश्चय कर लिया था। देश में फ्रेंच भाषा को ही प्रधानता दी गई थी।

फ्रांस के विरुद्ध विद्रोह—फ्रांस वालों का सीरिया-निवासियों के प्रति व्यवहार बहुत कठोर था। अतः १९२६ में दमिश्क में जनता ने फ्रांस के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। फ्रांस वालों ने निर्दयतापूर्वक इस विद्रोह का दमन कर दिया। परन्तु इससे जनता के साहस का अन्त नहीं हुआ। जनता बराबर राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की माँग करती रही। परन्तु फ्रांसीसी हाई कमिश्नर पानसो (Panso) ने इस माँग को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। अन्त में १९३० में फ्रांसीसी सरकार ने सीरिया को एक संविधान दिया। इस संविधान की निम्नलिखित प्रमुख विशेषतायें थीं :—

(१) एक संसद की स्थापना की जायगी और उसकी कार्यावधि पाँच वर्ष होगी।

(२) एक राष्ट्रपति की नियुक्ति की जायगी और राष्ट्रपति पद सदैव किसी न किसी मुसलमान को ही दिया जायगा।

(३) संसद को सीरिया की विदेश नीति निर्धारित करने का अधिकार न होगा। सीरिया की विदेश नीति फ्रांस के ही अधीन रहेगी।

सीरिया का स्वतन्त्र होना—१९३३ में सीरिया में मार्टेल (Martel) नया हाई कमिश्नर नियुक्त हुआ। उसने सीरिया के सम्मुख निम्नलिखित शर्तों वाला एक ड्राफ्ट (Draft) पेश किया —

(१) सीरिया को एक स्वतन्त्र राष्ट्र मान लिया जाय।

(२) उसको राष्ट्र-संघ की सदस्यता प्रदान कर दी जाय।

(३) पच्चीस वर्ष तक सीरिया की आर्थिक नीति, विदेश-नीति तथा सैनिक व्यवस्था फ्रांस के अधीन रहे।

यह ड्राफ्ट सीरिया की संसद ने स्वीकार नहीं किया। अन्त में दीर्घकालीन वार्ता के पश्चात् सितम्बर १९३६ में सीरिया को स्वतन्त्र मान लिया गया।

फिलिस्तीन—यहूदी योग्यता तथा धन से सम्पन्न जाति थी, परन्तु वे संसार के विभिन्न भागों में बिखरे हुए थे और उनके पास अपना कोई पृथक् राज्य न था। १८८१ में रूस तथा रूमानिया की सरकारों ने अपने देश में यहूदियों का घोर दमन किया था। अतः वे भाग कर फिलिस्तीन (पैलेस्टाइन) में आ बसे थे। इस प्रकार फिलिस्तीन यहूदियों का केन्द्र बन गया था। १८९७ में यहूदी समस्या के समाधान के लिए बेसिल में एक विशाल कांग्रेस का आयोजन किया गया। इस कांग्रेस के आदेशानुसार यहूदियों ने विभिन्न देशों में अपने संगठनों का निर्माण किया। इनका उद्देश्य फिलिस्तीन में यहूदी राज्य की स्थापना करना था। डा० विजयमन तथा सोकोलोव नामक दो नेताओं ने इस कार्य में विशेष भाग लिया था।

अतः प्रथम महायुद्ध के दौरान में इंगलैण्ड के विदेश-मन्त्री (Foreign Secretary) बाल्फर ने २ नवम्बर १९१७ को घोषित किया था—'हिज मैजिस्टी की सरकार पैलेस्टाइन में यहूदियों के लिए एक राष्ट्रीय-गृह की स्थापना की दृष्टि से देखती है तथा वह इस उद्देश्य की पूर्ति को सहज बनाने के लिए पूर्ण प्रयत्न करेगी यह बात स्पष्ट रहे कि कोई ऐसी बात न की जायगी, जिससे पैलेस्टाइन की वर्तमान गैर-यहूदी जातियों के नागरिक और धार्मिक अधिकारों को हानि पहुंचे।'[1] इस घोषणा-पत्र से यहूदियों को बहुत सतोष हुआ और उन्होंने इसको अपनी स्वतन्त्रता का घोषणा-पत्र (Charter of Independence) समझा।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् फिलिस्तीन को इंगलैंड को मैण्डेट के रूप में दे दिया गया। लीग ने बाल्फर घोषणा को स्वीकार कर लिया तथा इंगलैंड को वहाँ यहूदी राज्य स्थापित करने की परिस्थितियाँ उत्पन्न करने का आदेश दिया। फिलिस्तीन के मुसलमानों ने इसका विरोध किया। उनका यह कहना था कि यहूदी राज्य की स्थापना होने पर उनके हित संकट में पड़ जायेंगे।

फिलिस्तीन में स्थित अंग्रेजी हाई कमिश्नर सर हर्बर्ट सैमुएल ने १९२२ में फिलिस्तीन को एक नवीन संविधान दिया। इस नवीन संविधान में शासन के निम्नलिखित अंगों की व्यवस्था की गई थी —

(१) हाई कमिश्नर।

(२) **कार्यकारिणी समिति**—इसकी नियुक्ति हाई कमिश्नर द्वारा होनी थी।

---

1. 'His Majesty's Government views with favour the establishment in Palestine of a national home for the Zewish people. Nothing shall be done which may prejudice the civil and religious rights of existing non-Zewish communities.'

– Balfour Declaration.

(३) **व्यवस्थापिका समिति**—इसके सदस्यों की संख्या २२ निर्धारित की गई। इनमें १० की नियुक्ति का अधिकार हाई कमिश्नर को दिया गया तथा शेष १२ सदस्यों के निर्वाचन की व्यवस्था की गई। इन १२ सदस्यों में ८ मुसलमान, २ यहूदी तथा २ ईसाई होने थे।

मुसलमानों के इस संविधान को स्वीकार नहीं किया और निर्वाचन में कोई भाग नहीं लिया। अतः हाई कमिश्नर अपनी सलाहकार समिति द्वारा शासन करने लगा। परन्तु मुसलमानों तथा यहूदियों में परस्पर कटुता बढ़ती गई। अन्त में १६२६ में अरबों ने यहूदियों का कत्लेआम प्रारम्भ कर दिया। परन्तु ब्रिटिश सरकार ने कठोरतापूर्वक झगड़े को शान्त कर दिया। लीग ने इस झगड़े के लिए ब्रिटिश सरकार की व्यवस्था को दोषी ठहराया गया।

इस समय फिलिस्तीन में रहने वाले अरबों ने निम्नलिखित शिकायतें पेश कीं—

(१) यूरोप के विभिन्न देशों से भारी संख्या में यहूदी फिलिस्तीन में आ रहे हैं। १६३३ में जर्मनी में हिटलर का उदय होने पर वहाँ यहूदियों का घोर दमन प्रारम्भ हो गया था। अतः वहां से भारी संख्या में यहूदी आकर फिलिस्तीन में बस रहे थे। इनके आगमन पर कोई प्रतिबन्ध न था।

(२) रूस, पोलैण्ड तथा रूमानिया से आने वाले यहूदी रेडीकल थे। उससे अरबों में और भी अधिक आतंक फ़ैल गया था।

(३) यहूदियों के पास अपार धन था। अतः वे इससे पर्याप्त मात्रा में भूमि खरीद रहे थे।

(४) वे निर्धन अरबों को ऋण देकर उनका शोषण कर रहे थे। ऋण अदा न होने पर वे उनकी भूमि पर अधिकार कर रहे थे।

(५) जेरूसलम में यहूदियों के एक पुराने मन्दिर के पास एक मस्जिद थी। इससे दोनों जातियों में घोर संघर्ष रहता था।

अंग्रेजों ने परिस्थिति की जांच करने के लिये एक कमीशन की नियुक्ति की तथा बाहर से आने वाले यहूदियों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। यहूदियों ने इसका घोर विरोध किया। जर्मनी से भारी संख्या में यहूदी आने के कारण फिलिस्तीन में यहूदियों की संख्या में बहुत अधिक वृद्धि हो गई थी। इससे यहूदियों तथा मुसलमानों में पुनः संघर्ष हो गया। १६३५ में अरबों ने निम्नलिखित मांगें रक्खीं—

(१) फिलिस्तीन में गणतन्त्रात्मक सरकार की स्थापना की जाय।

(२) जो अरब ऋण अदा न कर सकें उनकी जमीन पर यहूदियों को अधिकार करने की अनुमति नहीं मिलनी चाहिये।

(३) यहूदियों के भूमि खरीदने के अधिकार पर कानून द्वारा प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए।

ब्रिटिश सरकार ने उपर्युक्त माँगों को स्वीकार नहीं किया। फलतः अरबों ने निर्दयतापूर्वक यहूदियों का कत्ले-आम करना प्रारम्भ कर दिया। अतः अंग्रेजों ने

परिस्थिति की जाँच करने के लिये पील कमीशन (Peal Commission) की नियुक्ति की। इस कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में कहा—'कोई भी जाति समस्त फिलिस्तीन पर शासन नहीं कर सकती, केवल उसके एक भाग पर ही शासन कर सकती है। वहाँ पर शान्ति स्थापित करने के लिए बंटवारे के अतिरिक्त और कोई योजना फल नहीं हो सकती।'[1]

इंगलैंड इससे सहमत हो गया और वह बंटवारे के लिए तैयार हो गया। उसने कहा कि जेरुसलम के पवित्र स्थानों पर अंग्रेजों का अधिकार रहेगा। एक चौथाई भाग में यहूदियों का राज्य स्थापित कर दिया जायगा तथा शेष भाग अरबों को दे दिया जायगा। बंटवारा हो जाने पर दोनों राज्यों को राष्ट्र संघ की सदस्यता प्रदान कर दी जायगी। बाल्फर परिपत्र के विरोध में होने के कारण यहूदियों ने इसको स्वीकार नहीं किया। अरबों को भी इससे संतोष नहीं हुआ। अतः उन्होंने भी इसका विरोध किया।[1] असन्तुष्ट अरबों ने पुनः यहूदियों का कत्ले-आम प्रारम्भ कर दिया। फलतः एक अन्य कमीशन की नियुक्ति की गई। उसने बंटवारे की योजना का विरोध किया। अन्त में इस समस्या के समाधान के लिए लन्दन में एक सम्मेलन बुलाया गया। अरब प्रतिनिधि हुसैन ने यहूदियों के प्रतिनिधि के साथ बैठकर वार्ता करना स्वीकार नहीं किया। फलतः अंग्रेजों ने दोनों प्रतिनिधियों से अलग-अलग बातें कीं। अरबों ने निम्नलिखित माँगें प्रस्तुत कीं—

(१) बाल्फर घोषणा पत्र को रद्द कर दिया जाय।

(२) फिलिस्तीन में अरब-राज्य की स्थापना की जाय।

(३) फिलिस्तीन के शासन-संचालन के लिए जिस संसद का निर्माण हो उसमें जनसंख्या के आधार पर अरबों तथा यहूदियों को प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाय।

(४) फिलिस्तीन में यहूदियों को भूमि खरीदने का अधिकार न रहे।

(५) फिलिस्तीन में बाहर से आने वाले यहूदियों का प्रवेश वर्जित कर दिया जाय।

यहूदियों ने इन मांगों का घोर विरोध किया। इसी मध्य द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो जाने पर इन मांगों को क्रियान्वित न किया जा सका और यह सम्मेलन भी इस समस्या का समाधान करने में सफल न हो सका। १९४६ में फिलिस्तीन में संघ सरकार के निर्माण की योजना बनाई गई। इसके अन्तर्गत एक प्रान्त यहूदियों का बनता तथा दूसरा अरबों का। परन्तु यह योजना भी असफल रही।

---

1. 'Neither race can fairly rule all Palestine, each race might justly rule part of it...............Partition offers a chance of ultimate peace. No other plan does.'

2. 'The richest zone is to be given to the Zews, the holiest to the British, and the most barren to the Arabs.'

मई १९४७ में संयुक्त राष्ट्र ने एक समिति का निर्माण किया और उस समिति ने घोषित किया कि फिलिस्तीन से ब्रिटिश मैण्डेट समाप्त कर दी जाय और वहाँ अरब तथा यहूदी राज्यों की अलग अलग स्थापना कर दी जाय। अंग्रेजों ने १ अगस्त १९४८ तक फिलिस्तीन छोड़ने की घोषणा की। अरबों ने यहूदी राज्य की स्थापना का घोर विरोध किया। यहूदी अपने ही प्रयत्नों से अपने लिए एक अलग राज्य की स्थापना के लिए अड़ गए। फलतः दोनों जातियों में युद्ध प्रारम्भ हो गया। अरब युद्ध में बराबर पराजित होते चले गए। यहूदियों ने बंटवारे में प्राप्त प्रदेश पर अधिकार कर लिया। १४ मई १९४८ को ब्रिटिश हाई कमिश्नर ने फिलिस्तीन को छोड़ दिया। १५ मई १९४८ को अमेरिका तथा १७ मई १९४८ को रूस ने यहूदी राज्य को मान्यता प्रदान कर दी। परन्तु इसी मध्य मिस्र, ईराक, सीरिया तथा ट्रांसजार्डन ने मिलकर यहूदियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। दोनों पक्षों में लड़ाई हुई। इस युद्ध में यहूदी बुरी तरह पराजित हो गए। अक्टूबर १९४८ में पुनः युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस बार यहूदियों को सफलता प्राप्त हुई। अप्रैल १९४९ तक सब मोर्चों पर युद्ध बन्द हो गया। अप्रैल १९५० में इंगलैंड ने यहूदियों के नए राज्य इजराइल को मान्यता प्रदान कर दी। इस प्रकार यहूदियों को अपने उद्देश्य में सफलता मिल गई। मई १९५० में अमेरिका, इंगलैंड तथा फ्रांस ने सम्मिलित रूप से यह घोषित किया कि वे भविष्य में इस प्रदेश में बल-प्रयोग का विरोध करेंगे। यह घोषणा इसलिये की गई थी कि जिससे भविष्य में पुनः अरबों तथा यहूदियों में युद्ध प्रारम्भ न हो जाय।

ईराक—प्रथम महायुद्ध में ईराक ने मित्र-राष्ट्रों की सहायता की थी। अतः उसको यह आशा थी कि युद्धोपरान्त उसको स्वतन्त्रता प्रदान कर दी जायेगी। परन्तु युद्धोपरान्त उसको इंगलैंड को मैण्डेट के रूप में दे दिया गया। इससे ईराक में बहुत असन्तोष उत्पन्न हुआ। उसने अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। अतः अंग्रेजों ने अगस्त १९२१ में हेजाज के राजा अमीर हुसैन के पुत्र फैजल को ईराक का राजा बना दिया। परन्तु इससे जनता को संतोष नहीं हुआ। अगस्त १९२२ में फैजल के राज्याभिषेक की प्रथम वर्षगाँठ के अवसर पर जनता ने अंग्रेजों के विरोध में प्रदर्शन किया। परन्तु हाई कमिश्नर ने उनका दमन कर दिया। १८२६ में अंग्रेजों ने घोषित किया कि १८२६ में ईराक को स्वतन्त्र कर राष्ट्रसंघ का सदस्य बना दिया जायगा, परन्तु कालान्तर में इस कार्य के लिए १९३२ निश्चित कर दिया गया।

१९३१ में अंग्रेजों ने ईराक से एक नई सन्धि की। उसके अनुसार यह निश्चित किया गया—

(१) किसी बाह्य आक्रमण के समय एक देश दूसरे की सहायता करेगा।

(२) स्वतन्त्र होने पर ईराक कुछ स्थानों पर अंग्रेजी हवाई अड्डे स्थापित करने तथा कुछ स्थानों पर अंग्रेजी सेनाएं रखने की अनुमति प्रदान करेगा।

ईराक के राष्ट्रवादी नेताओं ने इस सन्धि की कटु आलोचना की। उनका कहना था कि ईराक में अंग्रेजी हवाई अड्डों तथा अंग्रेजी सेनाओं के रहते हुए उनकी स्वतन्त्रता अधूरी है। ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने भी इसकी आलोचना की। उनका कहना था कि ईराक के स्वतन्त्र होने पर अंग्रेजों का सुप्रसिद्ध बन्दरगाह अदन तथा फारस की खाड़ी का क्षेत्र खतरे में पड़ जायगा। फ्रांसीसी राजनीतिज्ञों को भी इससे भय उत्पन्न हुआ, क्योंकि ईराक के स्वतन्त्र हो जाने पर सीरिया पर फ्रांसीसियों का अधिकार अधिक दिन तक रहना असम्भव था। परन्तु फिर भी १६३२ में ईराक से ब्रिटिश मैण्डेट समाप्त कर दी गई।

१६३३ में फैजल का देहान्त हो गया। उसके पश्चात् उसका पुत्र गाजी सिंहासन पर बैठा। यह एक गर्म मिजाज का नवयुवक था। १६३६ में बाकिर सिदकी नामक एक व्यक्ति ने ईराक को जीतकर वहां अपनी तानाशाही स्थापित कर ली। परन्तु एक वर्ष पश्चात् ही बाकिर सिदकी की हत्या कर दी गई और वहां पुनः वैधानिक सरकार की स्थापना हो गई।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि ईराक में सरकार लोकप्रिय नहीं हुई, परन्तु फिर भी वहां विद्रोह तथा नेताओं के बध नहीं हुए। अक्तूबर १६५२ में विरोधी दलों ने सम्मिलित रूप से यह माँग की है कि देश के राजनीतिक जीवन को शुद्ध किया जायगा। प्रत्यक्ष चुनावों की व्यवस्था की जाय। सीनेट के मेम्बरों का नामजद करने के स्थान पर चुनाव हुआ करे। मन्त्रि-मण्डल भंग करने तथा बनाने का कार्य राजा के स्थान पर संसद को दिया जाय। भूमि-व्यवस्था में सुधार किया जाय। मन्त्रियों की व्यक्तिगत सम्पत्ति की जांच की जाय।

ईरान—ईरान की सभ्यता तथा संस्कृति मध्य पूर्व से भिन्न है। वह जाति तथा भाषा की दृष्टि से अरब नहीं है। उसकी सभ्यता तथा संस्कृति वैदिक आर्यों से मिलती-जुलती है। ईरान का भारत से हजारों वर्ष पुराना राजनीतिक तथा साँस्कृतिक सम्बन्ध रहा है।

ईरान में निरंकुश राजतन्त्र था। १६०५ की प्रथम रूसी क्रान्ति से प्रभावित होकर ईरानियों ने भी निरंकुश-शासन के विरोध में विद्रोह कर दिया। वे ईरान में इङ्गलैंड के सिद्धान्तों के आधार पर गणतन्त्रात्मक सरकार की स्थापना कराना चाहते थे। अन्त में अक्तूबर १६०६ में शाह ने ईरान में पार्लियामेन्ट की स्थापना की। १६०७ में देश के लिए एक नवीन संविधान का निर्माण किया गया। इसके अनुसार ईरान में एक वैधानिक राज्य की स्थापना हो गई। इसी समय मुहम्मद अली ईरान का नया शाह बना। वह रूसी प्रभाव में था। अतः उसने सुधारों का विरोध किया। परन्तु अब तक जनता में पर्याप्त जागृति आ गई थी और वह समाचार-पत्रों के अध्ययन में रुचि लेने लगी थी।

१६०७ में इङ्गलैंड तथा रूस ने एक समझौते के द्वारा ईरान को अपने-अपने प्रभाव क्षेत्रों में बांट लिया। इससे इस क्षेत्र में इङ्गलैंड तथा रूस की १०० वर्ष

पुरानी शत्रुता का अन्त हो गया। इस बंटवारे से ईरान में बहुत असन्तोष हुआ, क्योंकि रूस तथा ब्रिटेन ने यह समझौता उससे बिना पूछे किया था।

१९०८ में शाह ने रूस के अन्तर्गत संसद को बर्खास्त कर दिया। इससे बहुत से प्रान्तों में विद्रोह हो गया। नागरिकों ने एक वर्ष तक राजा के सैनिकों तथा रूसी सैनिकों का सफलतापूर्वक सामना किया। १९०९ में क्रान्तिकारियों को सफलता मिली। संसद (मजलिस) ने मुहम्मद अली शाह को पदच्युत कर उसके स्थान पर उसके अल्प-वयस्क पुत्र अहमदशाह को सुलतान घोषित किया। परन्तु रूस तथा इंगलैंड बराबर ईरान के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करते रहे। १९११ में ईरान के पदच्युत शाह ने रूस की सहायता से ईरान पर आक्रमण कर दिया; परन्तु वह पराजित हो गया। रूस तथा इंगलैंड के हस्तक्षेप के फलस्वरूप उसको पेंशन बराबर मिलती रही। १९१७ में रूस में बोल्शेविक क्रान्ति हो गई और रूस महायुद्ध से पृथक् हो गया। ३४ नवम्बर १९१७ को रूसी संसद ने घोषित किया कि जिन देशों पर विदेशियों ने अधिकार कर रक्खा है, उनको स्वतन्त्र होने का जन्म-सिद्ध अधिकार है।

१९२१ में ईरान में एक रक्त-हीन क्रान्ति हुई और उसके परिणाम-स्वरूप जियाउद्दीन प्रधान मन्त्री बना तथा रजाखाँ सेना का प्रधान अधिकारी बना। २६ फरवरी १९२१ को ईरान तथा रूस के मध्य एक सन्धि हो गई। इसके अनुसार निम्नलिखित निर्णय किए गए—

(१) ईरान को रूस के जो ऋण देने थे उनको रूस ने रद्द कर दिया।

(२) रूस ने ईरान में जो सड़कें, पुल तथा बन्दरगाह आदि बनाए थे वे बिना क्षति-पूर्ति प्राप्त किए ईरान को दे दिए।

(३) कैस्पियन सागर के दक्षिणी तट के समीप के द्वीप ईरान को प्रदान कर दिए गए और उसको उनमें जहाजी बेड़ा रखने का अधिकार प्रदान कर दिया गया।

(४) यदि कोई विदेशी ईरान पर आक्रमण करेगा तो रूस को अपनी सेनाएं भेजकर वहाँ हस्तक्षेप करने का अधिकार होगा।

प्रधान मन्त्री जियाउद्दीन ने कुछ क्रान्तिकारी सुधार करने चाहे। इससे जनता तथा रजाखां से उसका मतभेद हो गया। अतः उसने पद-त्याग कर दिया और शासन की समस्त सत्ता रजाखाँ के हाथ में आ गई। १९२५ में संसद ने उसको ईरान का सुलतान बना दिया। उसने रजाशाह पहलवी के नाम से सिंहासन ग्रहण किया। उसने ईरान में अनेक महत्वपूर्ण सुधार कर उसको आधुनिक राज्य बनाने का प्रयास किया। इसी से इतिहासकारों ने उसकी तुलना टर्की के मुस्तफा कमाल पाशा से की है। रजाशाह पहलवी इंगलैंड तथा रूस दोनों से ही सावधान रहा। इन दोनों देशों से तेल के सम्बन्ध में प्रायः उसका संघर्ष रहता था; परन्तु वह बराबर अपने देश के हितों की रक्षा करता रहा। द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ होने पर रूस तथा ब्रिटेन

ने मिलकर ईरान पर अधिकार कर लिया। रजाशाह को उसकी जनता में बदनाम करने का पूरा प्रयास किया गया। अन्त में उसने अपने पुत्र के पक्ष में सिंहासन का परित्याग कर दिया। प्रतिक्रियावादी लोग रजाशाह के पतन पर बहुत प्रसन्न हुए। रजाशाह अपने १६ वर्ष के शासनकाल में बराबर ईरान की एकता के लिये प्रयास करता रहा था; परन्तु उसके परित्याग के पश्चात् ईरान की एकता समाप्त हो गई।

सुदूर पूर्व

चीन और जापान

१६४४ से चीन में मान्चु राजवंश का शासन चला आ रहा था। परन्तु १९वीं शताब्दी के अन्तिम चरण तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में चीन में जागृति प्रारम्भ हो गई। इस जागृति के निम्नलिखित महत्वपूर्ण कारण बतलाए जा सकते हैं—

(१) सन् १८९४–९५ में जापान ने चीन को पराजित कर दिया था। इससे चीन में राष्ट्रीयता की भावनाएं जागृत हुईं।

(२) इस समय बहुत से चीनी नवयुवक विदेशों से उच्च शिक्षा प्राप्त कर देश में आए थे और वे अपने साथ नए विचार लाए थे। उनके विचारों से जनता में बहुत अधिक जागृति आई।

(३) इसी समय जापान में जागृति के फलस्वरूप बहुत अधिक उन्नति हुई थी। इससे वह पूरी तरह एक पाश्चात्य देश हो गया था। इससे भी चीन ने प्रेरणा प्राप्त की। फलतः वहां १९१२ में एक क्रान्ति हो गई तथा उसके परिणामस्वरूप मान्चु वंश का पतन हो गया।

१९०२ में जापान ने इंगलैंड से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। अतः उसने बलपूर्वक चीन से अनेक सुविधाएं प्राप्त कर ली। १९१५ में जापान ने चीन के सम्मुख २१ मांगें पेश कीं। यदि चीन उनको स्वीकार कर लेता तो वह पूरी तरह जापान के अधीन हो जाता। उस स्थिति में अन्य किसी भी देश के हित चीन में नहीं रहते। इससे अमेरिका तथा ब्रिटेन आदि देशों ने जापान का विरोध किया। अतः उसको अपनी माँगों में कुछ संशोधन करना पड़ा। परन्तु फिर भी जापान ने बलपूर्वक चीन से अनेक माँगें स्वीकार करा लीं और चीन में जापान के निम्नलिखित आर्थिक हित स्वीकार कर लिए गए—

(१) जापान ने दक्षिणी मंचूरिया तथा पूर्वी मंगोलिया में रेलवे लाइन बनाने का अधिकार प्राप्त कर लिया।

(२) चीन में स्थित लोहे तथा कोयले की विकास-योजनाओं पर जापान ने अधिकार प्राप्त कर लिया।

(३) जापान ने दक्षिणी मंचूरिया का ९९ वर्ष का पट्टा प्राप्त कर लिया।

(४) चीन यथासम्भव जापान से ही ऋण लेगा।

प्रथम महायुद्ध में चीन तथा जापान दोनों ने ही मित्र राष्ट्रों का साथ दिया था। अत: इन दोनों को ही पेरिस के शान्ति-सम्मेलन में बुलाया गया था। इस सम्मेलन में दोनों ने ही शान्टुंग प्रदेश को प्राप्त करने की चेष्टा की। आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के आधार पर अमेरिका के प्रेसीडेण्ट विलसन ने इसको चीन को दिलाना चाहा; परन्तु इंगलैंड तथा फ्रांस ने कहा कि वे एक गुप्त समझौते के अनुसार उसको जापान को देने का वायदा कर चुके हैं। विलसन को मित्र राष्ट्रों से अपनी राष्ट्र संघ की योजना को स्वीकार कराना था। अत: वह मौन हो गया और शान्टुंग का प्रदेश जापान को दिला दिया गया। चीन ने इसका बहुत विरोध किया और उसने वार्साय-सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं किये। इसी मध्य वाशिंगटन सम्मेलन हुआ। इसमें अमेरिका के प्रभाव के अन्तर्गत शान्टुंग जापान ने चीन को दे दिया और वहाँ पर की गई विकास-योजनाओं के बदले में चीन ने जापान को कुछ धन दे दिया।

१९१९ से १९२७ तक चीन में अराजकता छाई रही। गणतन्त्रवादियों तथा कम्युनिस्टों में भारी पारस्परिक संघर्ष चलता रहा। चीनी जनता विदेशियों की हत्या कर रही थी। दुर्भिक्ष तथा बाढ़ों से भी जनता परेशान थी। इसी समय कोमिनटांग दल के नेता डा० सन्यात सेन ने दक्षिणी चीन में कैन्टन (Canton) नामक स्थान पर अपनी सरकार की स्थापना की। उसने रूस से अच्छे सम्बन्ध रक्खे। कुछ रूसी पदाधिकारियों ने चीनी नवयुवकों को सैनिक प्रशिक्षण दिया। इस समय उत्तरी चीन में गणतन्त्रवादी सरकार थी। रूस ने उससे भी समझौता कर मंचूरिया की रेलवे के सम्बन्ध में कुछ अधिकार प्राप्त कर लिए। १९२५ में सन्यात सेन का देहान्त हो गया। तत्पश्चात् चांककाई शेक नामक एक योग्य सैनिक के हाथ में सत्ता आई। उसने चीन में एकता स्थापित करने के लिए बहुत कार्य किया। परन्तु साम्य-वादियों से उसका संघर्ष हो गया। उसने कठोरतापूर्वक साम्यवादियों का दमन प्रारम्भ कर दिया। इस समय रूस भी उत्तरी चीन में साम्ययाद का प्रचार कर रहा था। अत: रूस से भी उसका सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। चाँककाई शेक के कठोर दमन के बावजूद भी साम्यवादियों की शक्ति में वृद्धि होती चली गई। १९४९ में साम्यवादियों ने समस्त चीन पर अधिकार कर लिया। अन्त में चांककाई शेक को भागकर फारमूसा द्वीप में शरण लेनी पड़ी और अब तक वे वहीं डटे हुए हैं।

मंचूरिया का युद्ध (१९३१–३२)—आर्थिक दृष्टि से मचूरिया की स्थिति बहुत महत्वपूर्ण थी। उपजाऊ प्रदेश होने के कारण वहाँ फसल बहुत अच्छी होती थी। इसके अतिरिक्त वहाँ लोहा, कोयला, तांबा, शीशा, सोना तथा चाँदी आदि की बहुत सी खानें थीं। इससे रूस तथा जापान दोनों ही मंचूरिया को लालच की दृष्टि से देखते रहते थे तथा दोनों ने वहाँ कुछ विशेषाधिकार प्राप्त कर लिए थे।

१९०५ की रूसी-जापानी सन्धि के अनुसार जापान ने अपनी दक्षिणी मंचूरियन रेलवे (South Manchurian Railway) की रक्षा के लिए मंचूरिया में कुछ सैनिक रखने का अधिकार प्राप्त कर लिया था। सितम्बर १९३१ में एक

जापानी सैनिक पदाधिकारी की हत्या कर दी गई तथा दक्षिणी मंचूरियन रेलवे को हानि पहुंचाने की चेष्टा की गई। इसका लाभ उठाकर जापानियों ने मुकडन पर अधिकार कर लिया। फलतः चीन ने जापानी आक्रमण से रक्षा के लिए राष्ट्र-संघ से प्रार्थना की। राष्ट्र-संघ ने जापान को मंचूरिया से सेनायें हटाने का आदेश दिया। परन्तु जापान राष्ट्र-संघ के आदेश की उपेक्षा करता हुआ बराबर मंचूरिया को जीतता रहा। इस मध्य उसने पर्याप्त क्षेत्र पर अधिकार कर लिया था। १८ फरवरी १९३२ को उसने मानचाउको नामक एक कठपुतली सरकार की स्थापना कर दी।

अतः चीन ने पुनः जापान से अपनी सुरक्षा के लिए राष्ट्र-संघ में अपील की। जापान ने कहा कि उसका उद्देश्य चीन के भू-खण्ड पर अधिकार करना नहीं है। उसका उद्देश्य तो चीनी डाकुओं का दमन करना है। अतः राष्ट्र-संघ की कौंसिल ने कहा कि सुरक्षा स्थापित होते ही जापान को वहाँ से अपनी सेनायें हटा लेनी चाहियें। इस समस्या पर विचार-विमर्श करने के लिए अमेरिका के प्रतिनिधि को भी बुलाया गया था। जापान ने इसका घोर विरोध किया, क्योंकि अमेरिका राष्ट्र-संघ का सदस्य न था। परन्तु कौंसिल के बहुमत ने अमेरिका के प्रतिनिधि का समर्थन किया। अतः उसको सम्मेलन में स्थान मिल गया। इससे जापान तथा राष्ट्र-संघ के मध्य बहुत अधिक कटुता बढ़ गई। अन्त में नवम्बर में मौके पर जाकर स्थिति की जांच करने के लिये एक कमीशन की नियुक्ति का प्रस्ताव पास किया गया। इस कमीशन में इंगलैंड, अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी तथा इटली के प्रतिनिधियों को स्थान दिया गया। इसका अध्यक्ष इंगलैंड का प्रतिनिधि लिटन था। उसी के नाम पर यह कमीशन लिटन कमीशन के नाम से प्रख्यात हुआ। उधर आपत्ति-काल में उत्तरी चीन की तथा दक्षिणी चीन की सरकारों ने समझौता कर लिया और जनवरी १९३२ में शंघाई में स्थित कुछ जापानी भिक्षुओं पर आक्रमण कर दिया अतः जापान ने शंघाई में भी सेनायें भेज दीं। परन्तु लिटन कमीशन के प्रभाव से जापान ने शंघाई से अपनी सेनायें हटा लीं।

नवम्बर १९३२ में लिटन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट प्रकाशित कर दी। उसने इस बात को स्वीकार नहीं किया कि जापान अपनी सुरक्षा के लिए यह कार्य कर रहा है। उसने जापान की नीति की निन्दा की और उसके द्वारा स्थापित मानचाउको सरकार को कठपुतली सरकार बतलाया। परन्तु इस रिपोर्ट में सबसे बड़ा दोष यह था कि उसमें स्पष्ट शब्दों में जापान को आक्रमणकारी नहीं कहा गया था। लीग ने जापान को चीन से अपनी सेनायें हटाने को कहा। परन्तु जापान ने लीग की इस बात की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। वह मंचूरिया में बराबर युद्ध करता रहा। अन्त में विवश होकर चीन ने जापान से सन्धि कर ली और उसको अनेक सुविधायें प्रदान कर दीं। नवम्बर १९३३ में जापान ने राष्ट्र-संघ के परित्याग करने का नोटिस दे दिया और उसके दो वर्ष पश्चात् १९३५ में राष्ट्र-संघ को छोड़ दिया।

चीन-जापान युद्ध—जुलाई १९३७ में लुकुच्याऊ (Lukouchiao) रेलवे स्टेशन के समीप चीनी तथा जापानी सैनिकों में कुछ झगड़ा हो गया। इस पर

जापान ने चीन के विरुद्ध अघोषित युद्ध प्रारम्भ कर दिया। चीन ने जापान से अपनी सुरक्षा के लिए पुनः राष्ट्र-संघ से प्रार्थना की। सभी देशों ने जापान के इस कार्य की निन्दा की। परन्तु जापान राष्ट्र-संघ की उपेक्षा करते हुए बराबर चीन में अपना विस्तार करता रहा। चीन के प्रतिनिधि ने जापान के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध (Economic Sanctions) लगाने की मांग की; परन्तु राष्ट्र-संघ की कौंसिल इसके लिये सहमत नहीं हुई। मानचाउको सरकार को यद्यपि विभिन्न देशों ने मान्यता प्रदान नहीं की तथापि उससे यातायात तथा डाक आदि के सम्बन्ध स्थापित कर लिए। इस प्रकार राष्ट्र-संघ जापान के आक्रमण से चीन की रक्षा करने में समर्थ न हो सका।

जापान तथा रूस—जापान तथा रूस में भी झगड़े की बहुत कुछ सम्भावनायें थीं। अतः रूस ने अपनी चीनी पूर्वी रेलवे (Chinese Eastern Railway) का अपना भाग चीन की सरकार को बेच दिया। मानचाउको का तेल का व्यापार भी एक जापानी कम्पनी को दे दिया गया। परन्तु बाह्य मंगोलिया (Outer Mangolia) के सम्बन्ध में दोनों का मतभेद हो गया। बात यह थी कि प्रथम महायुद्ध के उपरान्त बाह्य मंगोलिया (Outer Mangolia) स्वतन्त्र हो गया था और वहाँ गणतन्त्रात्मक सरकार की स्थापना हो गई थी। इस देश के व्यापार पर रूस ने अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया था। १९३६ में दोनों देशों ने विदेशी आक्रमण के समय एक-दूसरे की सहायता करने की सन्धि भी कर ली थी। उधर मानचाउको राज्य का समस्त व्यापार जापान के हाथ में था। मानचाउको तथा बाह्य मंगोलिया के गणतन्त्र की सीमायें एक दूसरे से मिलती थीं। अतः सीमा के सम्बन्ध में रूस तथा जापान में प्रायः संघर्ष रहता था। अन्त में १९३९ में रूस ने जापान के विरुद्ध जर्मनी से अनाक्रमण-समझौता कर लिया।

प्रश्न

१ पैलेस्टाइन में यहूदियों के लिए राष्ट्रीय गृह से क्या तात्पर्य है? इसकी क्या आवश्यकताएं थीं और यह किस प्रकार स्थापित हुआ?

२ फिलिस्तीन की समस्या के १९१४ तथा १९३९ के मध्य के स्वरूप का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

३ रजाशाह पहलवी के उत्थान पतन का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

४ मंचूरिया युद्ध (१९३१–३२) का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

५ १९३७ के चीनी जापानी युद्ध पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

———

१४

स्पेन का गृह-युद्ध

(Spanish Civil War)

पृष्ठ-भूमि, आन्तरिक कलह, जनरल फ्रैन्को का विद्रोह और गृह-युद्ध, विभिन्न राज्यों के हित और दृष्टिकोण, स्पेन के गृह-युद्ध के प्रभाव।

पृष्ठ-भूमि—स्पेन की राजनीतिक अवस्था बहुत दिनों से अस्थिर थी। वहाँ गणतन्त्रवादियों और एकतन्त्रवादियों का निरन्तर संघर्ष चल रहा था। इनके साथ-साथ सैनिक पदाधिकारी भी राजनीति में पर्याप्त प्रभाव रखते थे। देश में मध्यम वर्ग संगठित न था। निम्न वर्ग में न शक्ति थी और न जागृति। प्रशासन उच्च वर्ग की दलबन्दी से ही चलता था। पुनः स्पेन में कई प्रान्त ऐसे थे जो केन्द्र से पृथक् होकर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित करना चाहते थे। इन प्रान्तों में कैटालोनिआ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। स्पेनी उपनिवेश मोरक्को में भी बड़ी अशान्ति थी। वहां की मूल जातियाँ समय-समय पर विद्रोह किया करती थीं। उन्हें दबाना बड़ा दुष्कर था।

आन्तरिक कलह—इस पृष्ठ-भूमि पर १९३१ में स्पेन में म्यूनिसिपल चुनाव हुये। उनमें राजतन्त्रवादियों की पराजय हुई और गणतन्त्रवादी और समाजवादी बहुमत में निर्वाचित हुये।

परिणामतः स्पेन के राजा ऐल्फान्सो १३वें ने सिंहासन छोड़ दिया। उसके स्थान पर एक अस्थायी सरकार बनाई गई। इसके राष्ट्रपति सेनोव अल्काला जमोरा थे।

जून १९३१ में आम चुनाव हुये। इनमें पुनः राजतन्त्रवादियों की पराजय हुई और गणतन्त्रवादियों की विजय। परिणामस्वरूप स्पेन में सर्ववर्गीय श्रमिकों के जनतन्त्रवादी गणतन्त्र (Democratic Republic of Workers of All Classes) की स्थापना हुई।

परन्तु नवीन सरकार को अनेकानेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अनेक प्रान्तों में विद्रोह हो रहे थे। राजतन्त्रवादी पुनः सत्ता प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे थे। समाजवादी देश में नई व्यवस्था लाना चाहते थे। चारों ओर किसानों और जमींदारों के झगड़े चल रहे थे। कैथोलिक गणतन्त्रवादी सरकार के कट्टर शत्रु थे। देश की आर्थिक अवस्था बड़ी खराब थी। सरकार का बजट बराबर घाटे में रहता था।

फ्रैन्को का विद्रोह और गृह-युद्ध—इस असन्तोषजनक परिस्थिति से लाभ उठाकर जुलाई, १९३६ को जनरल फ्रैन्को ने स्पेनी उपनिवेश मोरक्को में विद्रोह कर दिया और स्पेन में गणतन्त्रवादी सरकार का तख्ता उलटने के लिये उस पर आक्रमण कर दिया। स्पेन की सेना ने भी जनरल फ्रैन्को का पक्ष लिया। इस प्रकार स्पेन में गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस युद्ध में संसार के अनेक प्रमुख देशों के हित थे। इस युद्ध के प्रभाव भी बड़े व्यापक हुये। अतः इसे 'छोटा विश्व-युद्ध' (Little World War) कहा जाता है।

योरप के प्रमुख तानाशाहों—हिटलर और मुसोलिनी ने जनरल फ्रैन्को का साथ दिया। उसकी सहायता के लिये उन्होंने बहुत बड़ी संख्या में सैनिक, हवाई जहाज, हथियार आदि भेजे।

उधर रूस ने गणतन्त्रवादी सरकार का पक्ष लिया और उसे सहायता देने के लिये पश्चिमी देशों के सम्मुख अनेकशः प्रस्ताव रक्खे। परन्तु इंगलैंड, फ्राँस और अमेरिका कोई भी स्पेन की इस घरेलू समस्या में हस्तक्षेप न करना चाहते थे। अतः स्पेन का गणतन्त्रवादी दल असहाय हो गया। पश्चिमी देश तथा राष्ट्र-संघ जर्मनी और इटली को जनरल फ्रैन्को को सैनिक सहायता देने से न रोक सके। परिणाम यह हुआ कि जनरल फ्रैन्को बराबर विजयी होता रहा। बार्सीलोना का पतन हो गया और २८ जनवरी १९३९ को उस पर जनरल फ्रैन्को का अधिकार हो गया। विवश होकर २७ फरवरी, १९३९ को इंगलैंड और फ्रांस दोनों ने जनरल फ्रैन्को की सरकार को मान्यता दे दी। १ अप्रैल, १९३९ को अमेरिका ने भी उसे स्वीकार कर लिया।

विभिन्न राज्यों के हित और दृष्टिकोण

रूस—(१) साम्यवादी देश होने के कारण रूस की सहानुभूति राजतन्त्र की अपेक्षा स्पेनी गणतन्त्र के साथ अधिक थी।

(२) यदि जर्मनी और इटली की सहायता से स्पेन में भी तानाशाही की स्थापना हो गई तो संसार में तानाशाहों की शक्ति बढ़ जायेगी और वे विश्व-शान्ति के लिये खतरा बन जायेंगे।

(३) स्पेनी गृह-युद्ध में भी यदि संसार के अन्य देश और राष्ट्र-संघ तानाशाहों के हस्तक्षेप को न रोक सका तो उनकी निष्क्रियता और निर्बलता सिद्ध हो जायेगी और कालान्तर में अन्य देशों की उग्र एवं आक्रमक नीति को प्रोत्साहन मिलेगी।

(४) जर्मनी विशेष रूप से रूस का विरोधी था। अतः रूस उसके शक्ति-विस्तार को रोकना चाहता था।

(५) जर्मनी फ्रांस का भी शत्रु था। रूस फ्रांस के साथ १९३५ में पारस्परिक सहायता समझौता कर चुका था। अतः अपने मित्र फ्रांस की सुरक्षा की दृष्टि से भी रूस जर्मनी को नियन्त्रित रखना चाहता था।

इन कारणों से रूस ने स्पेन के गणतन्त्रवादी दल का पक्ष लिया और जर्मनी

तथा इटली द्वारा जनरल फ्रैन्को को दी जाने वाली सहायता को रोकने की यथाशक्ति चेष्टा की। परन्तु पश्चिमी देशों ने उसके साथ सहयोग न किया।

इङ्गलैंड—(१) इंगलैंड दूसरे देशों की आन्तरिक राजनीति में हस्तक्षेप न करना चाहता था। उसकी दृष्टि में स्पेन का गृह-युद्ध एक घरेलू मामला था।

(२) वह रूस के साम्यवाद से भयभीत था और उसके साथ सहयोग कर उसे प्रोत्साहन न देना चाहता था।[1]

(३) उसका यह भी विचार था कि रूस को नियन्त्रित रखने के लिये योरप के तानाशाही देश अच्छा काम करेंगे। अतः वह हिटलर, मुसोलिनी और जनरल फ्रैन्को से यथा-सम्भव रूप में शत्रुता न करना चाहता था।

(४) उसे जिब्राल्टर की भी चिन्ता थी। अतः वह जनरल फ्रैन्को को असंतुष्ट न करना चाहता था।

इन कारणों से इंगलैंड ने जनरल फ्रैन्को के विरुद्ध विशेष कार्यवाही न की।

फ्रांस—(१) फ्रांस इंगलैण्ड को अपना मित्र बनाये रखना चाहता था। अतः उसने इंगलैण्ड का अनुकरण करते हुए हस्तक्षेप न करने की नीति का अवलम्ब लिया।

(२) फ्रांस जर्मनी के विरुद्ध इटली को भी अपना मित्र बनाना चाहता था। इटली जनरल फ्रैन्को को सहायता दे रहा था। अतः फ्रांस गणतन्त्र का पक्ष न ले सका।

(३) फ्रांस का विचार था कि तानाशाहों का लक्ष्य रूस है, पश्चिमी देश नहीं। अतः वह तानाशाहों से तत्काल शत्रुता न कर सका।

फलतः इंगलैण्ड की भांति फ्रांस भी स्पेनी-युद्ध के प्रति अपेक्षाकृत निष्क्रिय रहा।

अमेरिका—(१) अमेरिका योरपीय राजनीति से पृथक् रहने की नीति (Isolationist Policy) का पालन करना चाहता था।

(२) वह रूस को अपना सबसे ज्यादा शत्रु समझता था। अतः वह उसके साथ सहयोग करने को तैयार न था।

(३) उसकी दृष्टि में रूसी साम्यवाद को रोकने के लिए योरप में कुछ तानाशाहों का रहना आवश्यक था।

अतः उसने स्पेन के गृह-युद्ध में हस्तक्षेप करके वहाँ की गणतन्त्रवादी सरकार को बचाने का प्रयत्न न किया।

जर्मनी—अनेक उद्देश्यो से जर्मनी ने स्पेन के गृह-युद्ध में भाग लेने और जनरल फ्रैन्को की सहायता करने का निश्चय किया—

(१) हिटलर गणतन्त्र का विरोधी था।

---

1. 'The delirium tremens which saw everywhere the red rat of Bolshevism gnawing its way into their bank cellars.'

(२) यदि स्पेन में भी तानाशाही सरकार की स्थापना हो जाय तो संसार में तानाशाही विचारधारा को लोकप्रिय बनाने में अधिक सुविधा हो जायगी।

(३) स्पेन में तानाशाही की स्थापना के पश्चात् फ्रांस तीन ओर से घिर जायगा—पूर्व में जर्मनी से, दक्षिण में इटली से और पश्चिम में स्पेन से। इस स्थिति में वह अपनी सारी सैनिक शक्ति राइन तट पर न जमा सकेगा।

(४) स्पेन में मित्र सरकार की स्थापना होने से जर्मनी अंग्रेजी जहाजी बेड़े के लिए अटलाण्टिक महासागर में खतरा पैदा कर सकेगा।

(५) स्पेन के गृह-युद्ध में भाग लेकर हिटलर अपनी नई युद्ध-नीति, हवाई-जहाजों और यू-बोटों का परीक्षण करना चाहता था।

(६) वह यह भी देखना चाहता था कि आक्रमण को रोकने में पश्चिमी देश और राष्ट्र-संघ कहाँ तक सम्मिलित कार्यवाही कर सकते हैं।

इन उद्देश्यों से प्रेरित होकर हिटलर ने जनरल फ्रैन्को को भारी सैनिक सहायता दी।

इटली—(१) इटली भी गणतन्त्र का विरोधी था।

(२) उसका मत था कि संसार में दो विचार-धाराओं—लोकतन्त्रवादी और एकतन्त्रवादी का संघर्ष चल रहा है। उसकी सहानुभूति जनरल फ्रैन्को के साथ थी।

(३) स्पेन में यदि मित्र-सरकार स्थापित हो गई जो इटली भूमध्य सागर में इंगलैण्ड और फ्रांस के प्रभाव को कम करके अपना प्रभाव बढ़ा सकेगा।

(४) मित्र स्पेन की सहायता से अंग्रेज़ी जिब्राल्टर के लिए भी खतरा उत्पन्न किया जा सकेगा।

(५) स्पेनी उपनिवेशों में अड्डे बनाकर अंग्रेजी और फ्रांसीसी उपनिवेशों को हानि पहुंचाई जा सकेगी।

इन दृष्टिकोणों से प्रेरित होकर इटली ने जर्मनी की भांति जनरल फ्रैन्को को सैनिक सहायता दी।

राष्ट्र-संघ—स्पेन की गणतन्त्रवादी सरकार ने राष्ट्र-संघ से चार बार अपील की, परन्तु राष्ट्र-संघ के सदस्यों की अकर्मण्यता से उन अपीलों पर कोई महत्वपूर्ण कदम न उठाया गया। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इंगलैण्ड और फ्रांस स्पेन के गृह-युद्ध को घरेलू मामला समझते थे और उसमें किसी प्रकार का विदेशी हस्तक्षेप न चाहते थे। उनके प्रोत्साहन से ९ सितम्बर, १९३६ को अनेक देशों ने लन्दन में एक अन्तर्राष्ट्रीय समिति (International Committee) की स्थापना की। इसका उद्देश्य यह था कि कोई अन्य देश स्पेनी गृह-युद्ध में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करे और दोनों पक्षों में से किसी को भी युद्ध-सामग्री न दें। परन्तु जनरल फ्रैन्को जर्मनी और इटली से बराबर सैनिक सामग्री प्राप्त करता रहा। हाँ, स्पेन की गणतन्त्रवादी सरकार को रूस के अतिरिक्त और किसी देश से सैनिक सहायता न मिली। कुछ समय पश्चात् रूस ने भी अकेले सहायता देना बन्द कर दिया। उधर अमेरिका ने भी घोषित किया कि स्पेन का गृह-युद्ध हमारा युद्ध नहीं है।[1] ऐसी परिस्थिति में

1. 'This is not our war. We must be cautious. We must be quiet.
—American Secretary of State

गणतन्त्रवादी सरकार की पराजय अवश्यम्भावी थी।

स्पेनी गृह-युद्ध के प्रभाव

स्पेन के गृह-युद्ध ने अनेक प्रभाव उत्पन्न किए—

(१) इस युद्ध में भारी जन-धन की हानि हुई। अनुमानतः इसमें १० लाख आदमी मारे गये और १५ लाख आदमी घायल अथवा निर्वासित हुए।

(२) स्पेन के नगर, बन्दरगाह, रेलवे, पुल आदि नष्ट-भ्रष्ट हो गये।

(३) तानाशाहों का गुट शक्तिशाली हो गया जिससे विश्व-शान्ति के लिए भयंकर खतरा पैदा हो गया।

(४) रूस पश्चिमी देशों से नाराज हो गया।

(५) इंगलैण्ड और फ्रांस के लिए भूमध्य सागर और अटलाण्टिक महासागर में नया संकट उत्पन्न हो गया। इंगलैंड और विशेष रूप से जिब्राल्टर के लिए चिन्ता हो गई। फ्रांस और उत्तरी अफ्रीका के बीच के यातायात के साधन खतरे में पड़ गये।

(६) तानाशाहों को यह विदित हो गया कि पश्चिमी राष्ट्र और राष्ट्र-संघ में उनके विरुद्ध सम्मिलित कार्यवाही करने का साहस नहीं है। अतः वे नवीन आक्रमणों की योजनायें बनाने लगे।

(७) स्पेन में सम्मिलित कार्यवाही करने से जर्मनी और इटली के सम्बन्ध और अच्छे हो गये।

Question

1 Critically analyse the attitudes of the Great Powers towards the Spanish Civil War. How did this war affect European politics?

———

१५ विदेशी नीतियाँ

(१) ग्रेट ब्रिटेन की विदेशी नीति।
(२) फ्रांस की विदेशी नीति।
(३) इटली की विदेशी नीति।
(४) रूस की विदेशी नीति।

ग्रेट ब्रिटेन की विदेशी नीति

फ्रांस और गणतन्त्रवादी जर्मनी से सम्बन्ध—प्रथम महायुद्ध में जर्मनी पराजित हो गया था और उसे वार्साय की अपमानजनक सन्धि स्वीकार करने के लिये विवश किया गया था। परन्तु मित्रराष्ट्रों को यह भय था कि भविष्य में जर्मनी शक्तिशाली होकर कहीं अपने अपमान का बदला लेने की चेष्टा न करे। यह भय सबसे अधिक फ्राँस को था, क्योंकि उसकी सीमा जर्मनी से मिली हुई थी। यही कारण है कि उसने ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिका से अपनी सुरक्षा की गारन्टी माँगी थी। दोनों देशों के प्रतिनिधियों ने उसे मार्च, १९१९ में यह गारण्टी दे दी थी। परन्तु कालान्तर में अमेरिका की सीनेट ने पेरिस समझौते को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। अतः अमेरिका ने फ्राँस को दी गई अपनीसुरक्षा की गारन्टी भी वापस ले ली। अब ब्रिटेन अकेले फ्रांस को गारण्टो देने के लिए तैयार न था। अतः उसने भी अपनी गारण्टी वापस ले ली। फ्राँस ने अनुभव किया कि उसे धोखा दिया गया है। अतः वह ब्रिटेन से नाराज हो गया।

आगामी वर्षों में ग्रेट ब्रिटेन और फ्राँस की पारस्परिक कटुता बराबर बढ़ती गई। ब्रिटेन यह नहीं चाहता था कि फ्राँस योरप का सबसे अधिक शक्तिशाली देश हो जाय। उसे साम्यवादी रूस से भी डर था। रूस को रोकने के लिए वह जर्मनी को शक्तिशाली बनाना चाहता था। युद्ध के पूर्व जर्मनी अंग्रेजी माल का प्रमुख खरीददार था। इंगलैंड जर्मनी की आर्थिक अवस्था को सुधार कर उसके साथ पुनः व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था। इंगलैंड के प्रधान-मन्त्री लायड जार्ज का मत था कि 'स्वतन्त्र, संतुष्ट और समृद्ध जर्मनी सभ्यता के लिए आवश्यक है।'[1] फलतः ब्रिटेन वार्साय की सन्धि की शर्तों को जर्मनी के ऊपर अधिक कठोरतापूर्वक नहीं लादना चाहता था। वह उनमें परिवर्तन कर उन्हें जर्मनी के लिये कुछ नरम बनाना चाहता था। इसी से वह जर्मनी का क्रमिक शस्त्रीकरण भी करना चाहता था। वह राष्ट्रसंघ के संविधान में परिवर्तन कर उसे जर्मनी के लिये अधिक कठोर न बनाना चाहता था। वह जर्मनी के हर्जाने की धन-राशि को भी कम करना चाहता

1. A free, a contented and a prosperous Germany is essential to civilisation.'

था तथा उसे नरमी के साथ वसूल करना चाहता था।

परन्तु फ्रांस का दृष्टिकोण इससे नितान्त भिन्न था। उसे भविष्य में जर्मनी से खतरा था। इस खतरे के विरुद्ध अमेरिका और ब्रिटेन ने उसे गारन्टी भी न दी थी। अतः वह प्रत्येक प्रकार से जर्मनी से नितांत निर्बल रखना चाहता था। उसी के आग्रह से जर्मनी के ऊपर क्षति-पूर्ति की इतना बड़ी धन-राशि लादी गई थी कि उसे अदा करना उसके लिए बड़ा ही कठिन था। मई, १९२२ तक मित्रराष्ट्रों ने यह बात भली-भाँति अनुभव कर ली थी। अतः उन्होंने फ्राँस के विरोध के बावजूद भी क्षति-पूर्ति की रकम लगभग आधी कर दी। इस विशेष कारण से भी अंग्रेजी-फ्राँसीसी सम्बन्धों में कटुता बढ़ी।

१९२२ में जर्मनी ने घोषित किया कि आर्थिक दशा खराब होने के कारण वह क्षति-पूर्ति नहीं कर सकता। फ्रांस ने यह आरोप लगाया कि जर्मनी ने जानबूझ कर क्षति-पूर्ति नहीं की है। अतः जनवरी, १९२४ में फ्राँस ने जर्मनी के रूर प्रदेश पर अधिकार कर लिया। इंगलैंड ने फ्रांस के इस कार्य का घोर विरोध किया।

फ्राँस राष्ट्रसंघ के संविधान में इस प्रकार के परिवर्तन करना चाहता था जिनसे वह भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर जर्मनी के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही कर सके। वह जर्मनी के शस्त्रीकरण का घोर विरोधी था और उसके कठोर दृष्टिकोण के कारण निःशस्त्रीकरण वार्ताओं में भारी अड़चनें पड़ती थीं।

१९२५ में लोकार्नो पैक्ट के अनुसार इंगलैंड ने जर्मनी की पश्चिमी सीमा को स्वीकार कर लिया, परन्तु उसकी पूर्वी सीमा के विषय में कोई आश्वासन नहीं दिया। फ्रांस जर्मनी की पूर्वी सीमा के विषय में भी आश्वासन चाहता था, क्योंकि उस सीमा पर 'लिटिल आँताँ' (Little Entente) के उसके मित्र-देश थे।

जर्मनी के प्रधान-मन्त्री स्ट्रेसमन की उदार नीति के कारण जर्मनी और मित्र-राष्ट्रों के सम्बन्ध सुधर गये। फ्राँस के प्रधान मन्त्री ब्रिआँ के नेतृत्व में फ्राँसीसी नीति भी पहले जैसी कठोर न रही। अतः १९२४ और १९२९ के बीच इंगलैंड, फ्रांस तथा जर्मनी के सम्बन्ध अपेक्षाकृत सन्तोषजनक रहे।

१९२९ से १९३३ तक फ्रांस और इंगलैंड के सम्बन्ध फिर बिगड़े रहे। इसका विशेष कारण यह था कि इंगलैंड की जनता योरप में बढ़ते हुए फ्राँसीसी प्रभाव से ईर्ष्या करने लगी थी। वह नहीं चाहती थी कि इंगलैंड प्रत्येक बात में फ्राँस के पीछे-पीछे चले।

तानाशाही जर्मनी से सम्बन्ध—जब जर्मनी में हिटलर का उदय हुआ तो इंगलैंड ने उसके प्रति तुष्टीकरण की नीति अपनाई। अंग्रेजी तुष्टीकरण की नीति के कुछ विशेष कारण थे—

(१) इंगलैंड साम्यवादी रूस से भयभीत था। वह तानाशाही जर्मनी, इटली और जापान को प्रोत्साहित कर रूस के प्रभाव और विस्तार को रोकना चाहता था।

(२) वह रूस, जर्मनी और जापान को आपस में लड़ाकर निर्बल बनाना चाहता था जिससे योरप में शक्ति-संतुलन बना रहे।

(३) इंगलैंड की आर्थिक अवस्था ठीक न थी। वह युद्ध से प्रत्येक प्रकार से बचना चाहता था।

(४) इंगलैंड ने नये तानाशाही राज्यों के वास्तविक रूप को समझने में मौलिक भूल की थी। उसका विचार था कि कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति के पश्चात् वे शान्त हो जायेंगे। उसने यह कभी न सोचा था कि उनकी साम्राज्य-लिप्सा अनन्त है। अन्त में युद्ध की घोषणा करते हुए इंगलैंड के प्रधान मन्त्री चेम्बरलेन ने ३ सितम्बर, १९३९ को अपनी भूल को स्वीकार किया था।[1]

अपनी इस तुष्टीकरण की नीति के कारण ही इंगलैंड ने तानाशाही जर्मनी के निम्नलिखित कार्यों का कोई विरोध न किया—

(१) हिटलर ने जर्मनी का शस्त्रीकरण करना प्रारम्भ किया।

(२) उसने वार्साय की सन्धि को अस्वीकार कर दिया।

(३) उसने लोकार्नो समझौते को भी तोड़ दिया और १९३६ में राइन प्रदेश में अपनी सेनायें भेज दीं।

(४) १९३६ में स्पेन में गृह-युद्ध प्रारम्भ हुआ और हिटलर ने जनरल फ्रैन्को को महत्वपूर्ण सैनिक सहायता दी।

(५) १९३८ में उसने आस्ट्रिया पर अधिकार कर लिया।

(६) १९३९ में उसने जेकोस्लोवाकिया को हड़प लिया।

(७) उसी वर्ष उसने लिथ्यूनिआ को डरा धमकाकर उससे मेमेल प्राप्त कर लिया।

इंगलैंड की तुष्टीकरण की नीति ने हिटलर को और भी अधिक प्रोत्साहित किया, सामूहिक सुरक्षा को निर्बल कर दिया और फ्रांस तथा विश्व के लिये भयंकर संकट उत्पन्न कर दिया।

यह महत्व की बात है कि हिटलर ने अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अंग्रेजी-फ्रांसीसी और अंग्रेजी–रूसी मतभेदों का पूरा लाभ उठाया। यदि अपने पारस्परिक मत-भेदों को भुलाकर इंगलैंड, फ्रांस और रूस जर्मनी के विरुद्ध तात्कालिक सामूहिक कार्यवाही करते तो सम्भवतः हिटलर की आक्रमणात्मक नीति पर नियन्त्रण लगाया जा सकता था।

इटली से सम्बन्ध—प्रारम्भ में इंगलैंड और इटली के सम्बन्ध अच्छे रहे। १९२५ में इन दोनों देशों ने लोकार्नो समझौते की रक्षा का आश्वासन दिया था। १९३५ में स्ट्रेसा सम्मेलन में इंगलैंड और इटली दोनों ने जर्मनी के शस्त्रीकरण के प्रति घोर विरोध प्रकट किया था।

परन्तु १९३५ में जब इटली ने अबीसीनिया पर आक्रमण करके उस पर अधिकार करना प्रारभ किया तो इंगलैंड ने उसके इस कार्य का विरोध किया और

---

1. 'Everything that I have worked for, everything that I have hoped for, everything that I have believed in during my public life, has crashed into ruins.'

उसके विरुद्ध कार्य-वाही करने की माँग की। उसके इस कार्य से इटली असन्तुष्ट हो गया और वह जर्मनी की ओर झुकने लगा।[1]

इंगलैंड ने अबीसिनिया-काण्ड में इटली के प्रति अनिश्चित और अस्पष्ट नीति का अनुसरण किया। प्रारम्भ में उसने इटली के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्धों (Economic Sanctions) का समर्थन किया। परन्तु बाद को इस भय से कि कहीं इटली जर्मनी के गुट में न मिल जाय, उसने तुष्टीकरण की नीति का अवलम्ब लिया और होर-लावाल योजना द्वारा मुसोलिनी को अबीसीनिया का अधिकांश प्रदेश देने की बात की। कार्यान्वित होने के पूर्व ही यह योजना प्रकट हो गई। इंगलैंड की जनता ने इसका घोर विरोध किया और इंगलैंड के विदेश-मन्त्री सर सैमुअल होर को इस्तीफा देना पड़ा। अबीसीनिया के विषय में इंगलैंड की नीति नितान्त असफल रही।[2]

इसके पश्चात् इंगलैंड ने इटली के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने की बड़ी चेष्टा की। जनवरी, १९३७ में इंगलैंड और इटली दोनों ने मिल कर यह घोषणा की कि वे भूमध्य सागर में यथास्थिति (Staus Quo) बनाये रक्खेंगे।

१९३८ में इंगलैंड ने इटली के साथ पुनः समझौता किया। इसके अनुसार उसने इटली के अबीसीनिया-अधिकार को स्वीकार कर लिया। इटली ने यह वचन दिया कि वह स्पेन से अपने 'स्वयं सेवक' वापस कर लेगा।

पारस्परिक सम्बन्ध दृढ़ करने के लिये जनवरी, १९३९ में चेम्बरलेन और हैलीफाक्स रोम गये। परन्तु उन्हें विशेष सफलता न मिली। इटली तानाशाही गुट में मिल चुका था।

रूस से सम्बन्ध—प्रथम महायुद्ध में रूस इंगलैंड के साथ था। परन्तु १९१७ की क्रान्ति के पश्चात् रूस युद्ध से पृथक् हो गया और उसने जर्मनी के साथ सन्धि कर ली। इंगलैंड ने उसके इस कार्य को विश्वासघात समझा। १९१९–२० में इंगलैंड ने रूसी आक्रमण के विरुद्ध एस्टोनिआ में अपनी सेनायें भेजीं। इन सेनाओं ने रूसी सेनाओं से युद्ध भी किया।

१९२१ में इंगलैंड और रूस के सम्बन्धों में कुछ सुधार हुआ। इंगलैंड ने रूस के साथ एक व्यापारिक समझौता कर लिया और रूस ने यह आश्वासन दिया

---

1. 'Mussolini, bitter at. Britain's treacheny, fearful of the consequences of his actions, triumphant in his victory, and contemptuous of the fifty nations led by one whom he had successfully defied—Mussolini could never again be content in friendship with the West, and his eyes had now been turned towards the road that was to end in a public square in Milan.'

2. 'To England it meant the virtual destruction of the institution which successive governments of different parties, had proclaimed to be the keystone of their foreign policy'.

—Gathone-Ha...

कि वह इंगलैंड के विरुद्ध प्रचार न करेगा। १९२४ में इंगलैंड ने रूस को मान्यता प्रदान कर दी।

परन्तु १९२६ में दोनों देशों में फिर तनाव हो गया। इसका विशेष कारण यह था कि उसी वर्ष इंगलैंड में एक बड़ी हड़ताल हो गई। रूस ने इस हड़ताल को प्रोत्साहन दिया था।

परन्तु १९२९ में इंगलैंड में मजदूर सरकार की स्थापना के साथ-साथ अंग्रेजी-रूसी सम्बन्धों में पुनः सुधार हुआ। इंगलैंड ने रूस के साथ एक व्यापारिक समझौता कर लिया।

तानाशाही जापान और जर्मनी के उदय के परिणामस्वरूप रूस पश्चिमी देशों और राष्ट्र-संघ की ओर झुका। जापान के उदय से मंचूरिया, ब्लाडीवोस्टक और पूर्वी साइबेरिया को खतरा उत्पन्न हो गया था। उधर हिटलर साम्यवाद का घोर विरोधी था। रूस राष्ट्र-संघ का सदस्य बन गया और उसने राष्ट्र-संघ के नेतृत्व में तथा पश्चिमी देशों के साथ मिल कर तानाशाही सरकारों के विरुद्ध कठोर कार्यवाही करने के प्रस्ताव रक्खे। परन्तु पश्चिमी देशों और विशेषतया इंगलैंड ने उसके सहयोग से कार्य न किया। इंगलैंड साम्यवादी रूस को अपने लिये खतरा समझता था। उसे नियन्त्रित रखने के लिये वह जर्मनी और तानाशाही देशों के उदय से प्रसन्न था। अतः उसने तानाशाही सरकारों की उग्र नीति के प्रति तुष्टीकरण की नीति अपनाई। हिटलर ने वार्साय सन्धि को अस्वीकार किया, लोकार्नो समझौते का उल्लंघन करते हुये राइन-प्रदेश का शस्त्रीकरण किया और आस्ट्रिया पर अधिकार कर लिया। उधर स्पेन के गृह-युद्ध में जर्मनी और इटली ने जनरल फ्रैंको को भारी सैनिक सहायता दी। जापान ने मंचूरिया पर और इटली ने अबीसीनिया पर अधिकार कर लिया। प्रत्येक अवसर पर रूस ने पश्चिमी राष्ट्रों और राष्ट्र-संघ के सम्मुख सम्मिलित कार्यवाही का प्रस्ताव रक्खा। परन्तु उसके प्रस्ताव स्वीकार न किये गये।

१९३९ में हिटलर ने जेकोस्लोवाकिया का अपहरण किया। मित्र राष्ट्रों ने म्यूनिख का समझौता करते समय रूस को आमन्त्रित तक न किया।

इस समय तक रूस भली-भाँति समझ गया था कि पश्चिमी राष्ट्र, विशेषतया इंगलैंड, उसके साथ मिल कर कार्य करने के लिये तैयार नहीं हैं। अतः वह जर्मनी की ओर झुकने लगा।

जर्मनी के खतरे को बढ़ते हुये देख कर अन्त में इंगलैंड ने रूस के साथ वार्ता चलाई। परन्तु इस समय भी वार्ता चलाने के लिये उसने जो शिष्ट-मण्डल रूस भेजा उसमें कोई उच्च अंग्रेजी पदाधिकारी न था। लायड जार्ज ने अंग्रेजी सरकार के इस रवैये की बड़ी आलोचना की थी।[1]

---

1. 'Negotiations have been going on for four months with Russia and no one knows how things stand today...Mr. Chamberlain negotiated directly with Hitler; he went to Berlin to see him; he and Lord Halifax made visits to Rome. But whom have they sent

इंगलैंड रूस को जर्मनी के विरुद्ध खड़ा करना चाहता था, परन्तु स्वयं उत्तरदायित्वों से बचना चाहता था। अतः स्वाभाविक था कि अंग्रेजी-रूसी वार्ता असफल हो जाती।

इंगलैंड के इस दृष्टिकोण को समझकर रूस ने २३ अगस्त, १९३९ को जर्मनी में साथ एक अनाक्रमक समझौता कर लिया।

इंगलैंड और निःशस्त्रीकरण—इंगलैंड वास्तव में निःशस्त्रीकरण के पक्ष में था। उसने पेरिस समझौते के पश्चात् अपना शस्त्रीकरण सीमित कर दिया था। उसने १९३० में लन्दन में निःशस्त्रीकरण सम्मेलन भी बुलाया, परन्तु फ्रांस और जर्मनी के पारस्परिक विरोध के कारण वह असफल रहा। परन्तु इंगलैंड ने अमेरिका और जापान के साथ मिल कर कुछ निर्णय किये। इनके अनुसार इंगलैंड ने ५, अमेरिका ने ३ और जापान ने १ युद्ध-पोत नष्ट कर दिया तथा सबने अपनी-अपनी पनडुब्बियों और युद्ध-पोतों को नियन्त्रित करने का आश्वासन दिया।

१९२५ में उसने लोकार्नो समझौता स्वीकार किया और जर्मनी से पश्चिमी सीमा का उल्लंघन न करने का वचन लिया। उसके आग्रह पर जर्मनी ने यह भी आश्वासन दिया कि वह पूर्वी सीमा को युद्ध द्वारा परिवर्तित न करेगा।

१९२७ में इंगलैंड ने केलाग-ब्रिआँ समझौता स्वीकार किया। मिस्र तथा कुछ अन्य प्रदेशों को छोड़ कर उसने अन्यत्र युद्ध न करने का वचन दिया।

१९३३ में इंगलैंड ने फ्रांस, जर्मनी और इटली के साथ मिल कर एक समझौता (Four Power Pact) किया। इसका उद्देश्य शान्ति बनाये रखना और निःशस्त्रीकरण के लिये प्रयत्न करना था।

फ्रांस की विदेशी नीति

पूर्व में फ्रांस की कोई प्राकृतिक सीमा न थी। उसकी सीमा जर्मनी की सीमा से मिली हुई थी। अतः उसे सदैव जर्मनी से भय रहता था। प्रथम महायुद्ध में जर्मनी की पराजय के पश्चात् फ्रांस ने उससे अल्सेस और लोरेन के प्रदेश छीन लिये थे। उसे यह भी भय था कि जर्मनी इन्हें प्राप्त करने के लिये पुनः युद्ध कर सकता है। अतः उसकी विदेशी नीति का प्रमुख उद्देश्य अपनी सैनिक शक्ति को बढ़ाना तथा जर्मनी को प्रत्येक प्रकार से निर्बल रखना था।

पेरिस के समझौते के समय जर्मनी के प्रति फ्रांस का दृष्टिकोण बड़ा कठोर था। उसी के आग्रह पर जर्मनी के ऊपर हर्जाने की इतनी बड़ी धनराशि लादी गई थी कि उसके लिये उसे अदा करना प्रायः असम्भव था।

फ्रांस ने पेरिस सम्मेलन में यह मांग भी की कि जर्मनी का राइन प्रदेश हमें

---

to Russia? They have not sent even the lowest in rank of a Cabinet Minister. They have sent a clerk in the Foreign Office. It is an insult. Yet the government want the help of their gigantic army and air force.'

दे दिया जाय। परन्तु अमेरिका और इंगलैंड ने उसकी इस अनुचित माँग को स्वीकार न किया। हां, उन्होंने भविष्य में जर्मन आक्रमण के विरुद्ध फ्रांस को सुरक्षा का आश्वासन अवश्य दिया। परन्तु अमेरिका की सीनेट ने वार्साय की सन्धि को अस्वीकार कर दिया। अतः फ्रांस को दी गई सुरक्षा की अमेरिका की गारण्टी भी समाप्त हो गई। अमेरिका के बिना इंगलैण्ड भी अकेले फ्रांस को गारण्टी देने के लिये तैयार न हुआ।

अतः फ्रांस के सम्मुख जर्मनी का खतरा बना रहा। अब उसने राष्ट्र-संघ के बाहर कुछ अन्य देशों के साथ सन्धियाँ करके अपनी सुरक्षा को निश्चित करना चाहा। १९२० से लेकर १९२७ तक उसने बेल्जियम, पोलैंड, जेकोस्लोवाकिया, रूमानिया और यूगोस्लाविया के साथ अलग-अलग सन्धियाँ कीं।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् इंगलैंड और फ्राँस के सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण न रहे।

(१) इंगलैंड योरपीय राजनीति से अधिक पृथक् रहना चाहता था और किसी भी देश के साथ सैनिक सन्धि करके योरप में नये उत्तरदायित्व न लेना चाहता था। फ्राँस योरप के मध्य में था। उसकी सीमायें जर्मनी की सीमाओं में मिली हुई थीं। अतः वह अपनी रक्षा के लिये इंगलैंड से सैनिक सन्धि करना चाहता था।

(२) इंगलैंड राष्ट्र-संघ के मूल संविधान को पूर्ववत् रखना चाहता था।

फ्रांस उसमें इस प्रकार के परिवर्तन करना चाहता था कि जिससे राष्ट्र-संघ के सदस्य देश आवश्यकता पड़ने पर आक्रमणकारी देश के विरुद्ध सम्मिलित सैनिक कार्यवाही कर सकें।

(३) प्रथम महायुद्ध में इंगलैंड की भारी आर्थिक क्षति हुई थी। उसे सुधारने के लिये वह जर्मनी से पुनः व्यापार बढ़ाना चाहता था, क्योंकि युद्ध के पूर्व जर्मनी अंग्रेजी माल का प्रमुख ग्राहक था। इंगलैंड भली-भाँति जानता था कि जब तक जर्मनी की आर्थिक स्थिति फिर से नहीं सुधरती तब तक वह व्यापार के योग्य न हो सकेगा। अतः इंगलैंड जर्मनी के प्रति उदारता का व्यवहार करना चाहता था।

इसके विरुद्ध फ्राँस जर्मनी को नितान्त निर्बल रखना चाहता था। जब फ्राँस ने हर्जाना न अदा करने के कारण जर्मनी के रूर प्रदेश पर अधिकार कर लिया तो इंगलैंड ने उसके इस कार्य की कटु आलोचना की।

१९२० से लेकर १९२४ तक जर्मनी के प्रति फ्राँसीसी नीति अनुदार और प्रतिशोधपूर्ण रही। परन्तु १९२८ के पश्चात् उसने जर्मनी के प्रति उदारता का व्यवहार करना प्रारम्भ किया। इसके लिये जर्मनी का प्रधान मन्त्री स्ट्रेसमन और फ्राँस का प्रधान-मन्त्री ब्रिआँ विशेष रूप से उत्तरदायी थे। १९२५ में लोकार्नो समझौते के अन्तर्गत इंगलैंड ने जर्मनी, फ्राँस और बेल्जियम के बीच की सीमा-रक्षा का आश्वासन दिया। परन्तु उसने जर्मनी की पूर्वी सीमा के विषय में आश्वासन न दिया। उस दिशा में फ्राँस के मित्र-देश थे। अतः फ्राँस को इंगलैण्ड का यह कार्य अच्छा न लगा।

यूरोप
1918 - 1923
उत्तरी सागर
डेन्मार्क
डैंजिग
एस्टोनिया
लाटविया
लिथ्युनिआ
पूर्वी प्रशा
नीदरलैंड
बेल्जियम
जर्मनी
फ्रान्स
जेकोस्लोवाकिया
आस्ट्रिया
हंगरी
रूमानिआ
स्विट्ज़रलैंड
यूगोस्लाविआ
सर्बिया
बलगेरिया
अल्बानिया
कार्सिका
इटली
सार्डीनिआ
सिसली
भूमध्य सागर
यूनान
टर्की
क्रीट
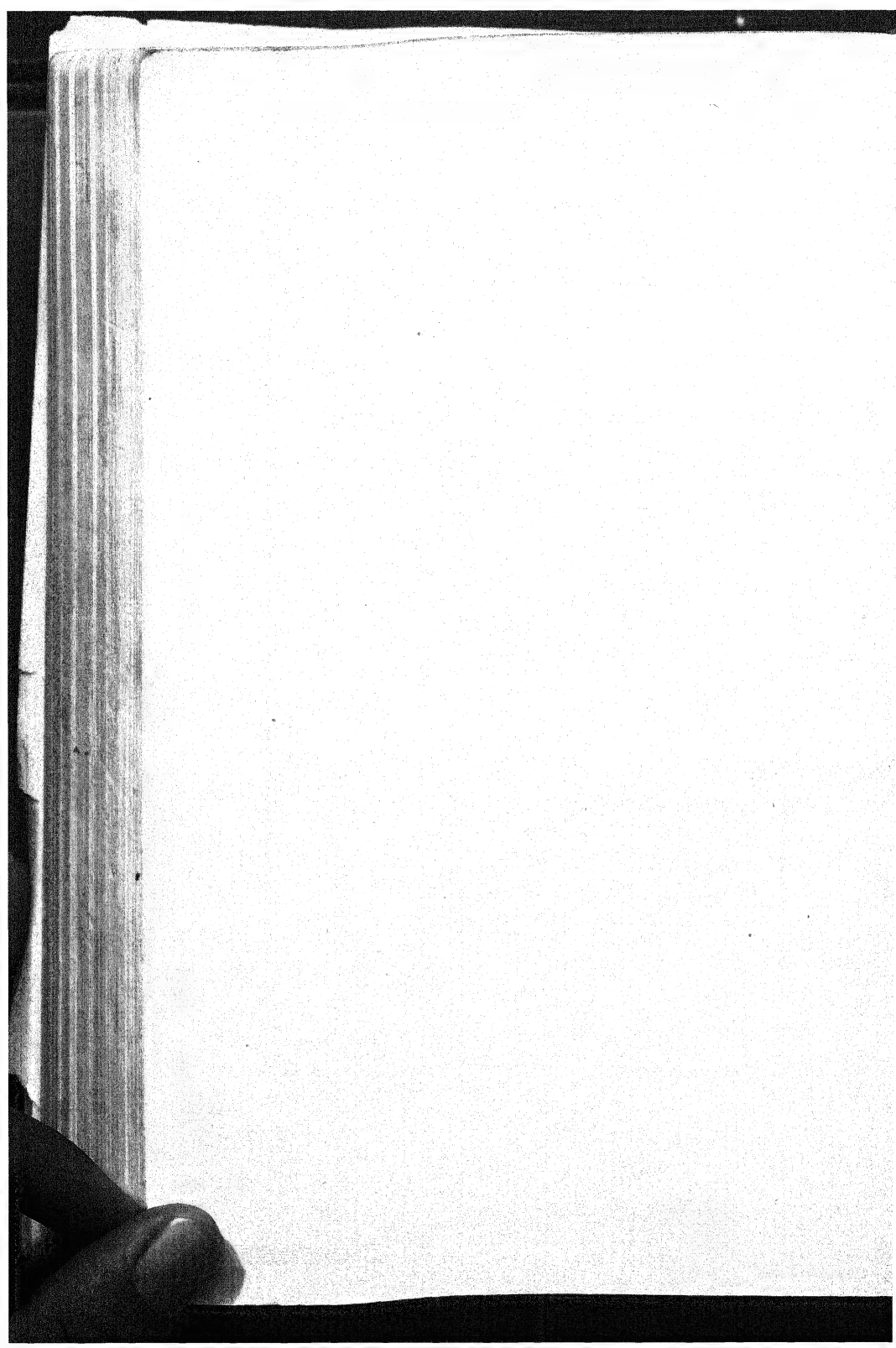
योरप में तानाशाही सरकारों के उदय ने नई परिस्थिति उत्पन्न कर दी।

फ्रांस ने जर्मनी और इटली के प्रति तुष्टीकरण की नीति अपनाई। इसका विशेष कारण यह था कि उसे साम्यवादी रूस से भय था। रूस के विरुद्ध वह हिटलरशाही और मुसोलिनीशाही से भी समझौता करने को तैयार था।[1]

परन्तु फ्राँस की इन नीति ने विनाशकारी परिणाम उत्पन्न किये।

फ्राँस ने १९३५ में रूस के साथ एक समझौता (Franco-Soviet Pact) किया था। इसके अनुसार यदि कोई योरपीय देश एक पर आक्रमण करता तो दूसरा अपने मित्र की सहायता करता। परन्तु रूस के प्रति फ्राँसीसी अविश्वास ने इस समझौते को नष्ट कर दिया।

फ्रांसीसी नीति की अदूरदर्शिता

(१) फ्राँस का लक्ष्य इटली को मित्र बनाना था। अतः मुसोलिनी के प्रति तुष्टीकरण की नीति का अनुसरण करते हुये फ्राँस ने उसके साथ १९३५ में एक समझौता कर लिया। इससे एक ओर लिटिल आँताँ (Little Entente) के सदस्य असन्तुष्ट हो गये और दूसरी ओर मुसोलिनी को एबीसीनिया में कार्यवाही करने का प्रोत्साहन मिला।

(२) इटली ने एबीसीनिया पर आक्रमण किया। फ्राँस को समझना चाहिये था कि यदि एबीसीनिया पर इटली का अधिकार हो जायेगा तो भूमध्य सागर के लिये खतरा उत्पन्न हो जायेगा। अतः उसे रूस तथा अन्य देशों के साथ मिलकर इटली के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही करना चाहिये थी। परन्तु उसने इटली के प्रति तुष्टीकरण को नीति अपनाई। उसके इस रवैये से इंग्लैण्ड तथा रूस भी कुछ न कर सके।

(३) राइन-प्रदेश में जर्मनी ने सैनिकीकरण प्रारम्भ किया। इससे फ्राँस के लिये भविष्य में आस्ट्रिया और जेकोस्लोवाकिया की रक्षा करना कठिन हो गया। परन्तु उसने जर्मनी के राइन-प्रदेश में सैनिकीकरण का विरोध न किया।

(४) स्पेन के गृह-युद्ध में जर्मनी और इटली ने जेनरल फ्रैन्को को सैनिक सहायता दी। स्पेन में तानाशाही सरकार की स्थापना से फ्राँस के अल्जीरिया-राज्य के लिये खतरा हो सकता था। अतः फ्रांस को स्पेन गणतन्त्र की सहायता करनी चाहिये थी। परन्तु उसने ऐसा न किया।

(५) जब जर्मनी ने क्रमशः आस्ट्रिया और जेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण किया तब भी फ्राँस निष्क्रिय रहा। उसे समझना चाहिए था कि इन दोनों देशों के विलय से पोलैंड को खतरा उत्पन्न हो जायेगा। जर्मनी की आक्रमणकारी नीति के विरुद्ध उसे रूसी सहयोग स्वीकार करना चाहिये था। परन्तु उसने तो म्यूनिख समझौते के समय रूस को आमन्त्रित तक न किया।

---

1. 'It is the struggle against Bolshevism which is essentially at the basis of the common German and Italian political conception.' —Bonnet.

इस नीति का परिणाम यह हुआ कि 'लिटिल ऑंताँ' (Little Entente) समाप्त हो गई, रूस असन्तुष्ट हो गया और जर्मनी तथा इटली की विस्तारवादी नीति ने फ्राँस की सुरक्षा को भी खतरे में डाल दिया।

फ्राँस की अस्पष्ट नीति से उसके मित्र भी उसके प्रति उदासीन हो गये थे। १९३४ में पोलैण्ड ने जर्मनी के साथ अनाक्रमक समझौता कर लिया था। १९३६ में बेल्जियम ने फ्राँस के साथ की गई, सैनिक सन्धि भंग कर दी। जर्मनी ने यूगोस्लाविया के साथ सन्धि करके फ्रांसीसी-यूगोस्लाव सन्धि को भी व्यर्थ कर दिया।

फ्रांसीसी सुरक्षा के लिए केवल एक ही उपाय रह गया था—इंगलैंड के साथ सैनिक सन्धि। अतः २९ अप्रैल, १९३८ को फ्राँस से इंगलैंड के साथ एक सन्धि (Franco-British Alliance) की। इसके अनुसार दोनों देशों ने संयुक्त सैनिक कमाण्ड की स्थापना की।

परन्तु इंगलैंड और फ्रांस की विदेशी नीति इतनी निर्बल थी कि इस सन्धि के पश्चात् भी वे जेकोस्लोवाकिया की रक्षा न कर सके।

इटली की विदेशी नीति

पहले बतलाया जा चुका है कि किस परिस्थिति में इटली त्रिराष्ट्र सन्धि को छोड़कर मित्र राष्ट्रों की ओर आ मिला और प्रथम महायुद्ध में उनका पक्ष लेकर अपने पुराने मित्र आस्ट्रिया और जर्मनी के विरुद्ध लड़ा।

परन्तु पेरिस के समझौते से उसे बड़ी निराशा हुई। १९१५ की लन्दन की सन्धि में मित्र राष्ट्रों ने उसे जिन प्रदेशों को देने का वचन दिया था वे सम्पूर्णतया उसे न दिए जा सके। इटली ने इसे विश्वासघात समझा और वह मित्र राष्ट्रों की ओर से खिंचने लगा।

आन्तरिक दृष्टिकोण से भी इटली की अवस्था खराब थी। युद्ध के पश्चात् उसकी आर्थिक अवस्था खराब हो गई थी। देश का उत्पादन और व्यापार गिर गया था। बहुधा हड़तालें होती रहती थीं। किसानों में भारी असन्तोष था। साम्यवादियों का जोर बढ़ रहा था।

इस पृष्ठ-भूमि पर इटली में फासिस्ट दल का उदय हुआ और १९२२ में मुसोलिनी ने राजसत्ता अपने हाथ में छीन ली।

पोप से समझौता—१८७० से अभी तक इटली राज्य और पोप का झगड़ा चल रहा था। मुसोलिनी ने १९२९ में इसे समाप्त किया। उसने पोप के साथ एक समझौता कर लिया। इसके अनुसार पोप को छीने गये राज्य के बदले में हर्जाना दिया गया और उसकी प्रभुसत्ता स्वीकार की गई। पोप ने भी इटली राज्य को मान्यता दे दी। इस प्रकार पोप और इटली-राज्य का दीर्घकालीन विवाद समाप्त हुआ।[1]

साम्राज्यवाद—मुसोलिनी घोर साम्राज्यवादी था। इसके लिए साम्राज्य स्थापना राष्ट्रीय गौरव की प्रतीक थी। अपने देश की बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए

---

1. 'definitely and irrevocably settled.' —Pope.

भी उसे नये प्रदेशों की आवश्यकता थी ।[1] औद्योगिक विकास के लिए भी उसे कच्चे माल और नये बाजारों की आवश्यकता थी ।

कैथरीन डफ ने इटली की विदेशी नीति का इस प्रकार उल्लेख किया है—

'As things were, the Mediterranean, far from being her empire, was her prison; Corsica, Malta, Tunis and Cyprus formed that prison's bars, while Gibralter and Suez guarded its gates, and Greece, Turkey and Egypt were ready to complete the chain encircling her. Determined first to break her prison bars, and then to march to the ocean without access to which she must be considered only half independent, Italy might push towards the Indian Ocean by linking Libya with Ethiopia through the Sudan towards the Atlantic through French North Africa.'

परन्तु सैनिक-शक्ति के बिना साम्राज्य-स्थापना सम्भव न थी । अतः मुसोलिनी ने अपने राज्य के समस्त साधन सैनिक संगठन में लगाये । उसने अपने राष्ट्र को 'सैनिक राष्ट्र' (Military Nation) घोषित किया और युद्ध को मानवी प्रगति के लिये आवश्यक और उपयोगी बताया ।[2]

दक्षिणी-पूर्वी योरप—पश्चिमी योरप में सभी राज्यों की सीमायें निश्चित हो चुकी थीं । परन्तु दक्षिणी-पश्चिमी योरप में इस समय भी अनिश्चितता थी । अतः मुसोलिनी ने इसी ओर अधिकाधिक रुचि देनी प्रारम्भ की ।[3]

(१) १६२३ में लाउसेन की सन्धि में उसे डोडाकेनीज द्वीप प्राप्त हुए ।

(२) १६२३ में ही यूनानियों ने कुछ इटैलियनों की हत्या कर दी । इस पर इटली ने कार्फू पर गोलाबारी की । अन्त में यह झगड़ा राष्ट्र संघ द्वारा सुलझाया गया ।

(३) १६२४ में मुसोलिनी ने यूगोस्लाविया से एक समझौता किया और फ्यूम प्राप्त किया । उसके समीप का पोर्टो बोरस का प्रदेश यूगोस्लाविया को मिला ।

---

1. 'We are hungry for land, because we are prolific and intend to remain so.' —Mussolini.

2. 'A militarist nation, I will add, since we are not afraid of words—the whole life of the nation, political, economic and spiritual, must be systematically directed towards our military requirements. War has been described as the court of appeal between nations.' —Mussolini.

3. 'Now Italy can only move in an easterly direction, the fact being that on the west, there are national states which have taken definite form, and to which we can send nothing except our labour, though even our export of that may be prohibited or restricted any day. Therefore the lines for pacific expansion of Italy lie towards the east.' —Mussolini.

(४) १९२५ में इटली ने इंगलैंड और फ्रांस के साथ मिलकर लोकार्नो पैक्ट के अन्तर्गत जर्मनी, फ्रांस और बेलजियम के बीच की सीमा को गारण्टी दी।

(५) १९२६ में मुसोलिनी ने अल्बानिया से टिराना की सन्धि की और उसे पूर्णरूप से अपने प्रभाव में कर लिया।

(६) १९२८ में टैन्जिअर के स्वतन्त्र नगर के शासन चलाने के लिये इंगलैंड, फ्रांस और स्पेन के साथ-साथ इटली को भी सम्मिलित किया गया।

(७) १९३० के लन्दन के नौ-सैनिक सम्मेलन में इटली ने भी भाग लिया। वहाँ उसने यह मांग की कि इटली की नौ-सेना फ्रांस की नौ-सेना के बराबर रक्खी जाय।

(८) १९३४ में ही इटली ने आस्ट्रिया और हंगरी के साथ मिलकर रोम प्रोटोकल पास किये। इसका उद्देश्य भिन्न-भिन्न योरपीय देशों के बीच सहयोग स्थापित करना था।[1]

(९) १९३५ में इटली ने एबीसीनिया पर आक्रमण किया और १९३६ तक उस पर अधिकार कर लिया। इस अवसर से हिटलर ने पूरा लाभ उठाया। उसने तत्काल एबीसीनिया पर इटली के अधिकार को मान्यता दे दी। इस तिथि के पश्चात् इटली और जर्मनी के सम्बन्ध अधिकाधिक मैत्रीपूर्ण होते गये।

(१०) १९३६ में ही स्पेन में गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया। इसमें मुसोलिनी और हिटलर दोनों ने मिलकर जनरल फ्रैन्को की सहायता की। इस प्रकार तीनों तानाशाहों के बीच निकटता बढ़ी।

इटली और जर्मनी—प्रारम्भ में इटली और जर्मनी के सम्बन्ध अच्छे न थे। १९३१ में इटली ने फ्रांस के साथ मिलकर आस्ट्रिया और जर्मनी के चुंगी संघ (Customs Union) का विरोध किया। इन सम्बन्धों के खराब होने का एक कारण यह भी था कि जर्मनी आस्ट्रिया पर अधिकार करना चाहता था। मुसोलिनी को यह भय था कि यदि आस्ट्रिया पर जर्मनी का अधिकार हो गया तो फिर इटली को आस-पास के प्रदेशों में अपने प्रभाव को बढ़ाने में बाधा पड़ेगी। १९३४ में हिटलर ने आस्ट्रिया की नात्सी पार्टी के द्वारा वहाँ आन्तरिक विद्रोह कराया। इस विद्रोह के परिणामस्वरूप आस्ट्रिया के चांसलर डोलफस पर घातक प्रहार हुआ। उसी से वह मर गया। इस अवसर पर मुसोलिनी ने हिटलर के कार्य की निन्दा की और आस्ट्रिया की रक्षा के लिए अपनी सेनायें सीमा पर लगा दीं। उसके इस कार्य से हिटलर भयभीत हो गया और उसने कुछ समय के लिए उसने आस्ट्रिया पर अधिकार करने की बात टाल दी।

१६ मार्च, १९३५ को हिटलर ने घोषणा की कि जर्मनी वार्साय-सन्धि की सैनिक-धाराओं को नहीं मानेगा और वह अनिवार्य सैनिक भर्ती के द्वारा अपनी सेना की वृद्धि करेगा।

---

1. a corresponding policy directed to promote effective collaboration among the European States.'

इस घोषणा का विरोध करते हुए मुसोलिनी ने स्विट्जरलैंड में स्ट्रेसा में इंगलैंड तथा फ्रांस के प्रतिनिधियों के साथ एक सम्मेलन किया और उसमें हिटलर के कार्य की कटु आलोचना की।

परन्तु एबीसीनिया-युद्ध ने परिस्थिति बदल दी। एबीसीनिया पर आक्रमण के लिए राष्ट्र-संघ और पश्चिमी देशों ने इटली का विरोध किया तथा उसके विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध (Economic Sanctions) लगाये। परन्तु इस प्रश्न पर जर्मनी ने इटली का विरोध न किया। अतः मुसोलिनी हिटलर की ओर झुकने लगा।

जुलाई, १९३६ में जब स्पेन का गृह-युद्ध प्रारम्भ हुआ तो मुसोलिनी और हिटलर दोनों ने जनरल फ्रेन्को को सहायता दी। १८ नवम्बर, १९३६ को दोनों ने जनरल फ्रेन्को की सरकार को मान्यता प्रदान की।

अक्टूबर, १९३६ में मुसोलिनी और हिटलर ने आपस में एक समझौता कर लिया। इसके अनुसार उन्होंने डेन्यूब प्रदेश और स्पेन में पारस्परिक सहयोग के साथ काम करने का निर्णय किया। इटली ने एबीसीनिया में जर्मनी को आर्थिक सुविधायें भी दीं।

नवम्बर, १९३६ में जर्मनी और जापान ने रूस के विरुद्ध एक समझौता (Anti-Commintern Pact) किया था। ६ नवम्बर, १९३७ को इटली भी इस समझौते में सम्मिलित हो गया। इस प्रकार रोम-बर्लिन गुट (Rome-Berlin Axis) का निर्माण हुआ।

जर्मनी की भांति इटली ने भी दिसम्बर, १९३६ में राष्ट्र-संघ छोड़ दिया।

मार्च, १९३८ में जब जर्मनी ने आस्ट्रिया पर अधिकार कर लिया तो इटली ने उसका विरोध न किया।

इस समय तक इटली पूर्णतया जर्मनी के साथ हो चुका था। उसने बराबर जर्मनी का समर्थन किया। द्वितीय महायुद्ध में भी वह जर्मनी के पक्ष से लड़ा।

रूस की विदेशी नीति

हम निम्नलिखित कालों के अन्तर्गत रूस की विदेशी नीति का अध्ययन कर सकते हैं—

१९१७—१९२१

इस काल में रूस और पश्चिमी देशों के सम्बन्ध कटुतापूर्ण रहे। इस कटुता के अनेक कारण थे—

(१) रूसी क्रान्ति ने पश्चिमी देशों के लिए एक खतरा उत्पन्न कर दिया था।

(२) रूस प्रथम महायुद्ध में मित्र राष्ट्रों की ओर से लड़ रहा था। परन्तु अपनी क्रान्ति को संगठित करने के लिए उसने युद्ध से हाथ खींच लिए थे और जर्मनी के साथ ब्रेस्टलिटोवस्क की सन्धि कर ली। मित्रराष्ट्र रूस के इस कार्य से बड़े असंतुष्ट हुये।

(३) मित्रराष्ट्रों ने रूस की क्रान्ति-विरोधी शक्तियों की सहायता की थी। उन्होंने सेनायें भेजकर रूसी क्रान्ति को नष्ट करने का प्रयास किया था।

(४) जारों के शासन के समय रूस ने विदेशी ऋण लिए थे। परन्तु साम्यवादी रूस ने उन ऋणों को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। इसके साथ-साथ उसने रूस में विदेशी उद्योग-धन्धों का राष्ट्रीयकरण कर दिया।

इन कारणों से पश्चिमी देशों ने रूस के साथ कूटनीतिक अथवा व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित न किए थे।

१९२१—१९३३

इस काल में रूस ने अनेकानेक देशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा की—

(१) १९२१ में रूस और इंगलैण्ड का एक व्यापारिक समझौता हो गया। इसके अनुसार इंगलैंड ने रूस की नई सरकार को स्वीकार कर लिया।

(२) इसी वर्ष रूस ने प्रशा के साथ एक मैत्री सन्धि की। दोनों देशों ने वचन दिया कि वे एक दूसरे के विरुद्ध समझौता न करेंगे।

(३) १९२२ में रूस ने जर्मनी के साथ रैपेलो की सन्धि की। इसके अनुसार दोनों ने पृथक् युद्ध के हर्जानों आदि को अस्वीकार कर दिया। दोनों ने यह आश्वासन दिया कि वे अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक दूसरे को सबसे अधिक महत्व देंगे। इस धारा को Most Favoured Nation Clause' कहते हैं। दोनों देशों ने आपस में कूटनीतिक सम्बन्ध भी स्थापित किये।

(४) उसी वर्ष रूस को जिनेवा में विश्व आर्थिक सम्मेलन में आमन्त्रित किया गया। वहां उसने समस्त देशों के निःशस्त्रीकरण के प्रस्ताव रक्खे। परन्तु वे स्वीकार नहीं किए गए।

(५) १९२४ में रूस ने चीन के साथ चीनी पूर्वी रेलवे (Chinese Eastern Railway) के विषय में समझौता कर लिया।

(६) उसी वर्ष इंगलैंड ने रूस को कानूनी ढंग से मान्यता प्रदान की। इंगलैंड का अनुकरण करते हुए इटली और फ्रांस ने भी रूस को मान्यता दे दी।

(७) १९२५ में रूस ने टर्की के साथ अनाक्रमक समझौता किया।

(८) उसने इसी प्रकार के समझौते १९२६ में जर्मनी और लिथूनिया के साथ तथा १९२७ में ईरान के साथ किये।

(९) १९२५ में लोकार्नो समझौता हुआ था। रूस ने जर्मनी के सामने यह प्रस्ताव रक्खा कि पूर्वी देशों के लिए भी एक पृथक लोकार्नो समझौता किया जाय। परन्तु जर्मनी ने उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

(१०) रूस ने जर्मनी के सम्मुख बाल्टिक समझौता (Baltic Pact) करने का भी प्रस्ताव रक्खा। इसका उद्देश्य यह था कि यदि किसी बाल्टिक देश पर आक्रमण हो तो सब उसकी सहायता करें। परन्तु यह प्रस्ताव भी अस्वीकृत कर [illegible]या गया।

(११) उसने १९३१ में अफगानिस्तान के साथ एक अनाक्रमक सन्धि की।

(१२) उसने १९३२ में इसी प्रकार की सन्धियाँ पोलैण्ड, फिनलैण्ड, लाटविया और इस्टोनिआ के साथ कीं।

परन्तु इन सब बातों के होते हुए भी रूस और पश्चिमी देशों के बीच सन्देह और अविश्वास बना हुआ था। फलतः इस काल में भी अनेक अवसरों पर दोनों पक्षों में तनाव उपस्थित होता रहा।

(१) इंगलैंड ने १९२४ में रूस को मान्यता प्रदान की थी। परन्तु आगामी वर्ष उसने इस मान्यता को वापस कर लिया।

(२) १९२५–२७ में चीन में रूसी प्रभाव काफी बढ़ गया था। पश्चिमी देश इससे सशंकित हो गये।

(३) १९२६ में इंगलैंड में भारी हड़ताल हो गई। अंग्रेजी सरकार का विचार था कि इसके पीछे रूसी साम्यवादियों का हाथ है।

(४) १९२७ में रूस ने कुछ अंग्रेजी इंजीनियरों पर मुकदमा चलाया। इससे इंगलैंड के साथ उसके सम्बन्ध कटु हो गये।

(५) रूस राष्ट्र संघ का विरोधी था और उसे पूंजीपतियों की संस्था बताता था।[1] १९२८ में कोमिण्टर्न की छठी कांग्रेस के घोषणा-पत्र में कहा था कि राष्ट्रसंघ निर्लज्ज वार्साय सन्धि की उपज है। यह अपने सदस्यों के युद्धोत्पादक कार्यों को छिपाने का प्रयास किया करती है।[2] पश्चिमी देश राष्ट्र-संघ के प्रति रूस के विरोध से असन्तुष्ट थे।

१९३३–१९३८

इस काल में रूस और पश्चिमी देशों के बीच अधिक निकट सम्बन्धों की स्थापना हुई। इस परिवर्तन का प्रमुख कारण जापान, जर्मनी और इटली की तानाशाही सरकारों की उग्र एवं आक्रमक नीति थी। रूस ने भली-भाँति समझ लिया कि एकमात्र अनाक्रमक सन्धियों और पृथक् रहने की नीति से उसकी सुरक्षा सम्भव नहीं है।[3] उसे तानाशाही सरकारों के विरुद्ध राष्ट्र-संघ और पश्चिमी देशों के साथ सक्रिय सहयोग करना है।

---

1. 'A Holy Alliance of the bourgeoisie for the suppression of the proletarian revolution.'

2. 'The League of Nations, the product of Versailles, the most shameless robber treaty of the last decade, cloaks the war-like work of its members by working out projects for disarmament.'

3. 'The futility of mere non-aggression pact and the dangers of a semi-isolated position were brought home to Russia in September 1931, when Japan invaded Manchuria and within a year had established a military colony on Russia's flank and was pressing forward into Inner Mongolia towards the frontiers of Russia's Outer Mongolian puppet State.'

(१) प्रारम्भ में रूस और अमेरिका के सम्बन्ध अच्छे न थे। रूस की साम्यवादी सरकार ने जार के शासन-काल में दिये गये ८० करोड़ डालर के अमेरिकी ऋण को अदा करने से इन्कार कर दिया था। रूस में अमरीकनों को धार्मिक स्वतन्त्रता नहीं दी गई थी। पुनः रूस दूसरे देशों में साम्यवादी क्रान्ति कराने के जो प्रयत्न करता रहता था उससे भी अमेरिका नाराज था। यही कारण है कि यद्यपि अन्य योरपीय देशों ने रूस को मान्यता दे दी थी, परन्तु अमेरिका १९३३ तक उसे मान्यता देने से इन्कार करता रहा।

परन्तु सुदूर पूर्व में जापान के उदय ने परिस्थिति बदल दी। जापान से रूस और अमेरिका दोनों को समान रूप से खतरा था। अतः उभयनिष्ठ शत्रु के विरुद्ध दोनों देशों का एक दूसरे के निकट आना स्वाभाविक था। १९३३ में अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने रूसी प्रतिनिधि लिटविनोव को वाशिंगटन में आमन्त्रित किया। दोनों की वार्ता के परिणामस्वरुप दोनों देशों में समझौता हो गया। दोनों देशों ने एक दूसरे के विरुद्ध प्रचार न करने का आश्वासन दिया और एक दूसरे की प्रादेशिक अखण्डता को स्वीकार किया। रूस ने अपने यहाँ रहने वाले अमरीकनों को धार्मिक स्वतन्त्रता दे दी। अमेरिका ने रूस की साम्यवादी सरकार को मान्यता प्रदान की।

(२) फ्रांस के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप १९३४ में रूस राष्ट्र-संघ का सदस्य बना लिया गया। १९१४ से लेकर १९३८ तक रूस निरन्तर राष्ट्र-संघ के अन्तर्गत तानाशाही सरकारों के आक्रमणों के विरुद्ध प्रभावकारी कार्यवाही करने के लिए पश्चिमी देशों से आग्रह करता रहा।[1] परन्तु अभाग्यवश पश्चिमी देशों ने रूस के सुझावों पर कार्य नहीं किया।

(३) अभी तक रूस संशोधनवादी (Revisionist) देश था। वह वार्साय की सन्धि में संशोधन करके संसार में नई व्यवस्था कायम करना चाहता था। परन्तु जब तानाशाही सरकारों ने भी संशोधन की माँग करते हुये नवीन प्रदेशों को हस्तगत करने की चेष्टा प्रारम्भ की तो रूस संशोधन-विरोधी (Anti-revisionist) हो गया। अब उसका मत था कि यदि वार्साय की सन्धि में परिवर्तन करने की चेष्टा की गई तो संसार में युद्ध की सम्भावना उत्पन्न हो जायगी।[2] यही मत पश्चिमी देशों का था।

---

1. 'As for myself, I would rather have a League of Nations that tries to render at least some asssistance even if it proves ineffective, to a victim of aggression, than a League of Nations that closes its eyes to aggression and lets it pass unperturbed...'

—Litvinov

2. 'The way to revision of the predatory Versailles Peace leads through a new world war. Discussion on revision is the smoke-screen behind which Imperialism prepares the most terrible and ruthless war that the human brain can conceive.'

— Izvestia

(४) अभी तक रूस और फ्रांस में शत्रुता चल रही थी। रूस राष्ट्र-संघ का विरोधी था और फ्रांस पक्षपाती। बहुसंख्यक क्रान्ति-विरोधी रूसियों ने फ्रांस में शरण ली थी। फ्रांस जर्मनी का शत्रु था। रूस ने जर्मनी के साथ रैंपेलो की संधि करके फ्रांस को रुष्ट कर दिया था। इसी प्रकार रूस के शत्रु पोलैंड और रूमानिया के साथ भी फ्रांस ने सन्धियां की थीं। फ्रांस एवं मित्र-राष्ट्रों ने लोकार्नो में जर्मनी के साथ सन्धियां की थीं। परन्तु इनमें जर्मनी ने अपनी पूर्वी सीमा को स्वीकार न किया था। अतः रूस को जर्मनी से खतरा बना रहा। रूस का यह आरोप था कि फ्रांस एवं उसके साथियों ने रूस के हित का ध्यान नहीं रक्खा। यही नहीं निःशस्त्रीकरण के सम्बन्ध में भी रूस और फ्रांस का झगड़ा था। रूस सबका निःशस्त्रीकरण कराना चाहता था। परन्तु फ्रांस जर्मनी के भय से अपना निःशस्त्रीकरण करने के लिये तैयार न था।

परन्तु जर्मनी में हिटलर के उदय ने परिस्थिति बदल दी। जिस प्रकार जापान रूस और अमेरिका दोनों का शत्रु था उसी प्रकार जर्मनी रूस और फ्रांस का समान रूप से शत्रु था। फलतः जर्मनी के खतरे के विरुद्ध रूस और फ्रांस का मिल जाना स्वाभाविक था। उन दोनों ने मई, १९३५ में पारस्परिक सहायता की सन्धि (Treaty of Mutual Assistance) कर ली। इसके अनुसार यह तय हुआ कि यदि कोई देश दोनों में से किसी एक पर आक्रमण करे तो दूसरा अपने मित्र की सहायता करेगा। इस संधि को पूर्वी लोकार्नो समझौता कहा जाता है।

(५) रूस ने अबीसीनिया पर आक्रमण करने के कारण इटली के विरुद्ध कठोर कार्यवाही करने की मांग की थी। उसने राष्ट्र-संघ द्वारा लगाये गये प्रतिबन्धों (Sanctions) का भी समर्थन किया था। परन्तु मित्र-राष्ट्रों की निष्क्रियता के कारण इटली को न रोका जा सका।

(६) स्पेन के गृह-युद्ध में रूस की सहानुभूति गणतन्त्रवादी दल के साथ थी। परन्तु मित्र-राष्ट्रों ने रूस के साथ मिलकर गणतन्त्रवादी दल को सक्रिय सहायता न दी। परिणाम-स्वरूप स्पेन जनरल फ्रैन्को की तानाशाही स्थापित हो गई।

(७) जिस समय हिटलर ने जेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण किया उस समय भी रूस जर्मनी के विरुद्ध जेकोस्लोवाकिया को सहायता देना चाहता था। परन्तु पश्चिमी देशों ने उसके प्रस्ताव पर ध्यान नहीं दिया। यहीं नहीं, उन्होंने म्यूनिख समझौता करते समय रूस को आमन्त्रित भी न किया। परिणाम-स्वरूप रूस पश्चिमी देशों की नीति से असन्तुष्ट हो गया। उसे यह सन्देह होने लगा कि पश्चिमी देश जर्मनी को इसलिए प्रोत्साहन देते जा रहे हैं कि वह रूस पर भी आक्रमण कर दे।

(८) ३१ मार्च, १९३८ को ब्रिटेन ने जर्मन आक्रमण से पोलैंड की रक्षा का आश्वासन दिया। परन्तु इस सम्बन्ध में रूस से कोई परामर्श न किया।

(९) १३ अप्रैल, १९३९ को ब्रिटेन ने फ्रांस और रूमानिया को सुरक्षा

का आश्वासन दिया, परन्तु इस अवसर पर भी रूस से कोई विचार-विमर्श न किया गया ।

(१०) १७ अप्रैल १९३९ को रूस ने फ्रांस और इंगलैंड के सामने यह प्रस्ताव रक्खा कि तीनों देश प्रत्येक आक्रमण का सामना करने के लिए आपस में त्रिराज्य सन्धि करलें । परन्तु इंगलैंड और फ्रांस ने उसके प्रस्ताव को स्वीकार न किया ।

१९३९

१९३९ तक आते-आते रूस भली-भांति समझ गया कि पश्चिमी देश उसका विश्वास नहीं करते हैं और वे उसके साथ मिल कर तानाशाही सरकारों के आक्रमणों को रोकने के लिये तैयार नहीं हैं । रूस अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एकाकी (Isolate) रहकर खतरा मोल लेना नहीं चाहता था । अतः वह सन्धि के लिए जर्मनी की ओर झुकने लगा ।

(अनाक्रमक समझौता)
(Non-Aggression Pact)

परन्तु जर्मनी और रूस के बीच सन्देह इतने गहरे थे कि दोनों देशों के बीच समझौता होने में बड़ी बाधायें पड़ीं । एक बात यह भी थी कि इंगलैंड और फांस भी रूस को अपने गुट से निकलने न देना चाहते थे । अतः रूस के साथ वे भी वार्ता चला रहे थे ।

परन्तु अन्त में रूस पश्चिमी देशों की सदाशयता में अविश्वास करने लगा । उधर, जर्मनी के प्रतिनिधि के रूप में रिबनट्राप २२ अगस्त, १९३९ को स्वयं रूस गया । इस बार उसे सफलता मिली और २३ अगस्त को जर्मनी और रूस के बीच एक अनाक्रमक समझौता (Non-Aggression Pact) हो गया । इसकी प्रमुख शर्तें निम्नलिखित थीं—

(१) दोनों देश एक-दूसरे पर स्वतः अथवा अन्य किसी देश की सहायता से आक्रमण नहीं करेंगे ।

(२) यदि कोई अन्य देश दोनों में से किसी एक पर आक्रमण करे तो दूसरा मित्र आक्रमणकारी को किसी प्रकार की भी सहायता नहीं देगा ।

(३) समान हितों के विषय में दोनों देश समय-समय पर आपस में विचार-विमर्श करेंगे ।

(४) एक के विरुद्ध होने वाली गुटबन्दी में दूसरा सम्मिलित नहीं होगा ।

(५) यदि दोनों के बीच कोई विवाद उठ खड़ा हो तो वे उसे आपसी विचार-विमर्श अथवा पंचायत के द्वारा दूर करेंगे ।

(६) यह समझौता १० वर्ष के लिये होगा । यदि इस काल में यह भंग न किया जाय, तो यह स्वतः ५-५ वर्ष के लिये बढ़ जायेगा ।

इस समझौते में कुछ गुप्त धारायें भी जोड़ दी गईं । इनके अनुसार दोनों

देशों ने फिनलैंड, लाटविग्रा, एस्टोनिग्रा ग्रौर लिथ्यूनिग्रा में ग्रपने-ग्रपने प्रभाव-क्षेत्र निश्चित कर लिये।

इस समझौते ने महत्वपूर्ण प्रभाव उत्पन्न किये—

(१) इंगलैंड, फ्रांस ग्रौर रूस के जर्मनी-विरोधी मोर्चों की सम्भावना समाप्त हो गई।

(२) जर्मनी ग्रोर पश्चिमी देशों के बीच युद्ध के समय रूस तटस्थ रह सकता था।

(३) जर्मनी, इटली, जापान ग्रौर स्पेन की पारस्परिक मित्रता को धक्का लगा।

(४) जर्मनी ग्रौर पश्चिमी देशों के बीच युद्ध हो जाने पर स्पेन निरन्तर ग्रौर जापान ग्रधिकांश काल में ग्रलग रहा।

———

१६

द्वितीय महायुद्ध के कारण

द्वितीय महायुद्ध के कारण—वार्साय की सन्धि, तानाशाहों का उदय; जनतन्त्रवादी और एकतन्त्रवादी विचार-धाराओं का संघर्ष; अधिनायकवाद; गुटबन्दी; सैनिकवाद; साम्राज्यवाद; राष्ट्र-संघ की निर्बलता; मित्र-राष्ट्रों के पारस्परिक झगड़े।

वार्साय की सन्धि पर विचार करते हुए मार्शल फोश ने कहा था—'यह शान्ति सन्धि नहीं है, यह तो बीस वर्ष के लिए युद्ध-विराम सन्धि है।' यह भविष्य-वाणी सत्य सिद्ध हुई। ठीक २० वर्ष पश्चात् जर्मनी द्वारा पोलैण्ड पर आक्रमण होने पर द्वितीय महायुद्ध का प्रारम्भ हो गया। यह युद्ध बराबर ५½ वर्ष तक चलता रहा। संक्षेप में द्वितीय महायुद्ध के निम्नलिखित कारण बताये जा सकते हैं—

(१) वार्साय की सन्धि—प्रथम महायुद्ध में जर्मनी की पराजय हुई और उसे वार्साय की अपमानजनक सन्धि पर हस्ताक्षर करने पड़े। इस सन्धि के अनुसार जर्मनी पर भारी हर्जाना लाद दिया गया। इतना हर्जाना अदा करना जर्मनी की सामर्थ्य से सर्वथा बाहर था। उसके उपनिवेश छीन लिए गए। उसकी सेना निश्चित कर दी गई। जर्मनी का पूर्णतया निःशस्त्रीकरण कर दिया गया, परन्तु मित्र राष्ट्रों ने अपना निःशस्त्रीकरण नहीं किया। उसके धातु एवं कोयला-प्रधान क्षेत्र उससे छीन लिये गये। पोलिश गलियारे के द्वारा जर्मनी को दो भागों में बाँट दिया गया। जर्मनी वार्साय सन्धि में संशोधन कराना चाहता था, परन्तु मित्र राष्ट्रों ने आक्रमण का भय दिखा कर जर्मनी से इस कठोर एवं अपमानजनक सन्धि पर हस्ताक्षर करा लिये। फलतः अवसर मिलने पर जर्मन इस सन्धि को तोड़ने के लिए कटिबद्ध थे।

वार्साय सन्धि के समय विजेताओं ने दूरदर्शिता से कार्य नहीं किया। उन्होंने प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर जर्मनी का दमन एवं अपमान किया। फलतः अवसर मिलने पर अपने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए जर्मनी ने पुनः मित्र राष्ट्रों के विरोध में हथियार उठा लिए। इसीलिए फाल्स महोदय ने द्वितीय महायुद्ध को प्रतिशोधात्मक युद्ध (War of Revenge) कहा है।

(२) तानाशाहों का उदय—इस समय कई देशों में तानाशाहों का जन्म हुआ। इनके कार्यों ने द्वितीय महायुद्ध को अनिवार्य बना दिया। निम्न देशों में तानाशाहों का उदय हुआ—

(अ) जर्मनी—प्रथम महायुद्ध में जर्मनी परास्त हुआ। तत्पश्चात् वहाँ वीमर गणतन्त्र की स्थापना हुई। यह गणतन्त्रात्मक शासन असफल रहा। मित्र राष्ट्रों ने

इसे सफल बनाने के लिये कोई प्रयास नहीं किया। फलतः जर्मनी में अनेक विरोधी दलों का उदय होने लगा। इन विरोधी दलों में नात्सी (Nazi) दल प्रमुख था। इस दल का उद्देश्य वार्साय सन्धि को भंग कर जर्मनी के पूर्ण गौरव की स्थापना करना था। धीरे-धीरे इस दल का प्रभाव बहुत बढ़ गया। १६३३ में इस दल का नेता हिटलर जर्मनी का चांसलर बन गया। यह जन्मजात तानाशाही था। प्रारम्भ में इसने अपने को शान्ति का पुजारी प्रदर्शित किया, परन्तु शीघ्र ही इसका उग्र रूप प्रकट हो गया। इसने राष्ट्र-संघ एवं निःशस्त्रीकरण सम्मेलन का त्याग कर दिया। इसने आस्ट्रिया एवं जेकोस्लोवाकिया पर भी अधिकार कर लिया। अन्त में १ सितम्बर १६३६ को इसने पोलैण्ड पर आक्रमण कर द्वितीय महायुद्ध का प्रारम्भ कर दिया।

(ब) **इटली**—प्रथम महायुद्ध के बाद इटली में तानाशाही का उदय हुआ। इटली-निवासियों का विश्वास था कि मित्र राष्ट्रों ने उसके साथ विश्वासघात किया है। उसे युद्ध की लूट में से उचित भाग नहीं दिया गया है। इसीलिये एक विद्वान् ने कहा है कि इटली युद्ध में तो जीत गया, परन्तु शान्ति-सम्मेलन में पराजित हो गया।[1] इसलिए इटली भी वार्साय सन्धि का विरोधी हो गया। वह उसे तोड़ने के लिए प्रयास करने लगा। इसी भावना को लेकर वहाँ फासिस्टवाद का उदय हुआ। १६२२ में इस दल के नेता मुसोलिनी के हाथ में सत्ता आ गई। उसने एबीसीनिया पर आक्रमण कर अपने उग्र रूप का प्रदर्शन किया।

(स) **स्पेन**—जर्मनी एवं इटली की भांति स्पेन में भी तानाशाही की भावनायें बल पकड़ने लगीं। वहाँ पर जनरल फ्रैंको नामक एक कट्टर एकतन्त्रवादी व्यक्ति ने तत्कालीन गणतन्त्र के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इस अवसर पर हिटलर एवं मुसोलिनी ने जनरल फ्रैंको का साथ दिया। इस गृह-युद्ध में जनरल फ्रैंको की विजय हुई। इस प्रकार स्पेन में भी तानाशाही की स्थापना हो गई।

(द) **जापान**—इसी प्रकार की साम्राज्यवादी भावनायें जापान में भी पनप रही थीं। मंचूरिया पर उसने अधिकार कर लिया। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व से ही चीन तथा जापान का युद्ध चल रहा था। बर्लिन-रोम-टोकियो-धुरी (Burlin-Rome-Tokyo-Axis) ने यूरोप की राजनीतिक स्थिति को और भी अधिक खराब कर दिया। वास्तव में यह सन्धि तानाशाहों का समझौता था।

४) **जनतन्त्रवादी एवं एकतन्त्रवादी विचारधाराओं का संघर्ष**—इस समय यूरोप में दो परस्पर-विरोधी विचारधारायें चल रही थीं—(१) जनतन्त्रवादी तथा (२) एकतन्त्रवादी। प्रथम विचारधारा के समर्थक इंगलैंड, फ्रांस और अमेरिका थे तथा दूसरी विचारधारा के समर्थक जर्मनी, इटली और जापान थे। एक बार मुसोलिनी ने कहा था—'दोनों विचारधाराओं के संघर्ष में समझौता होना असम्भव है। इस संघर्ष के कारण या तो हम ही रहेंगे या वे ही रहेंगे।'[2]

---

1. 'The war has been won and peace lost.'
2. 'The struggle between the two worlds permits no compromise; either we or they.' —Mussolini.

(५) **अधिनायकवाद**—प्रथम महायुद्ध के बाद अधिनायकवाद की लहर आई। जर्मनी में नात्सीवाद तथा इटली में फासिस्टवाद का उदय हुआ। जापान में भी सैनिकवाद का बहुत प्रभाव बढ़ गया था। ये तीनों वाद अधिनायकवाद के ही पर्याय-वाची थे। इस विचारधारा के अनुसार व्यक्ति राज्य के अधीन होता है। राज्य की भलाई के लिए व्यक्ति को आत्म-बलिदान करने के लिये सदैव कटिबद्ध रहना चाहिए। दूसरी ओर जनतन्त्रवाद इन विचारधाराओं का खण्डन कर अपना अस्तित्व स्थापित करना चाहता था।

(६) **गुटबन्दी**—प्रथम महायुद्ध की भाँति द्वितीय महायुद्ध के पूर्व भी यूरोप दो गुटों में बंट गया था। एक गुट में जर्मनी, इटली और जापान थे। ये राज्य वार्साय सन्धि के विरोधी तथा अधिनायकवाद के समर्थक थे। दूसरे गुट में फ्रांस, पोलैंड, रूमानिया, जैकोस्लोवाकिया तथा यूगोस्लाविया थे। युद्ध प्रारम्भ होने पर रूस प्रथम गुट में तथा इंगलैंड द्वितीय गुट में सम्मिलित हो गया। परन्तु युद्ध के दौरान में ही जर्मनी ने विश्वासघात करके रूस पर आक्रमण कर दिया। फलत: रूस भी द्वितीय गुट में ही आ मिला। जापान के पर्ल हार्बर पर आक्रमण करने पर अमेरिका भी दूसरे गुट में ही शामिल हो गया।

(७) **सैनिकवाद**—वार्साय सन्धि के अनुसार जर्मनी का पूरी तरह निःशस्त्री-करण कर दिया गया। इससे उसके सम्मान को बहुत ठेस पहुंची। इसके बाद निरन्तर वह सैनिक वृद्धि का प्रयास करता रहा। १९३३ में जब हिटलर के हाथ में सत्ता आई तो उसने सैनिक सेवा अनिवार्य कर दी तथा अस्त्र-शस्त्र की वृद्धि पर बहुत जोर दिया। प्रथम महायुद्ध में विजय प्राप्त करने पर भी फ्रांस को जर्मनी से बहुत खतरा रहता था। अत: वह भी अपनी सैनिक शक्ति निरन्तर बढ़ा रहा था। हिटलर की आक्रमक नीति के कारण इंगलैंड को भी अपनी सैनिक शक्ति की वृद्धि करनी पड़ी। १९३३ के बाद तो यूरोप के प्राय: सभी देशों ने अपनी सैनिक शक्ति बढ़ानी आरम्भ कर दी। एशिया में जापान ने अपनी सैनिक शक्ति बहुत बढ़ा ली थी। १९३८ में यूरोप की वही स्थिति थी जो १९१४ में थी। इस प्रकार के सैनिकीकरण एवं शस्त्री-करण के होते हुए दूसरे महायुद्ध का होना स्वाभाविक था।

(८) **साम्राज्यवाद**—प्रथय महायुद्ध के बाद भी साम्राज्यवाद की भावना बराबर बनी रही। इटली एवं जर्मनी वार्साय सन्धि के घोर विरोधी थे। कच्चे माल की प्राप्ति एवं अपनी बढ़ती हुई जनसंख्या को बसाने के लिए ये दोनों देश उपनिवेशों की माँग कर रहे थे। जापान भी साम्राज्यवादी नीति की ओर अग्रसर हो रहा था। अत: प्रदेशों की दौड़ में अन्य राष्ट्रों से इनका संघर्ष होना आवश्यक था।

(९) **राष्ट्र-संघ की निर्बलता**—प्रथम महायुद्ध के पश्चात् आपसी झगड़ों को सुलझाने तथा विश्व-शान्ति बनाए रखने के लिए राष्ट्र-संघ (League of Nations) का निर्माण किया गया था। परन्तु राष्ट्र-संघ विश्व-शान्ति बनाए रखने में समर्थ न हो सका। अनेक राज्यों ने राष्ट्र-संघ के प्रस्तावों का पालन नहीं किया। जापान,

जर्मनी एवं इटली लीग से पृथक् हो गए। जापान-मंचूरिया युद्ध, इटली-एबीसीनिया युद्ध एवं चीन-जापान युद्ध के समय राष्ट्र-सघ कोई कदम न उठा सका और उसकी निर्बलता स्पष्ट हो गई। अब छोटे राष्ट्रों का राष्ट्र-संघ से सुरक्षा पाने का विश्वास जाता रहा। लोकार्नो एवं केलाग-समझौते के बावजूद भी शान्तिमय उपायों के द्वारा आपसी झगड़ों का फैसला नहीं किया जा सका। राष्ट्र-संघ के असफल हो जाने पर द्वितीय युद्ध हो जाना अनिवार्य हो गया।[1]

(१०) **मित्र-राष्ट्रों के पारस्परिक झगड़े**—मित्र-राष्ट्रों के पारस्परिक झगड़ों ने भी जर्मनी एवं इटली की शक्ति के विकास में बहुत योग दिया। मित्र-राष्ट्र इन तानाशाहों के विरुद्ध कोई सामूहिक कार्यवाही न कर सके। आपसी झगड़ों के कारण वे तानाशाहों के प्रति तुष्टीकरण की नीति (Policy of Appeasement) का व्यवहार करते रहे। वार्साय सन्धि के पश्चात् फ्रांस तथा इंगलैंड एवं अमेरिका में बहुत अधिक पारस्परिक मतभेद उत्पन्न हो गया। इनका विश्वास था कि यदि जर्मनी के साथ उदारता का वर्ताव किया जाय तो जर्मनी भविष्य में कभी प्रतिशोधात्मक युद्ध नहीं करेगा। इसलिए ये दोनों देश वार्साय सन्धि को कुछ नम्र करना चाहते थे। इसीलिये इन्होंने जर्मनी के साथ अपना भी निःशस्त्रीकरण किया। परन्तु फ्रांस ने इस सब बातों का विरोध किया। वह जर्मनी को सदैव निर्बल देखना चाहता था। इसीलिए जर्मनी के साथ वह अपना निःशस्त्रीकरण करने के लिए तैयार नहीं हुआ। इंगलैंड का जर्मनी की ओर झुकाव का दूसरा कारण यह भी था—कि दोनों में मेल होने पर इंगलैंड की बनी वस्तुओं की जर्मनी में बहुत मांग हो जाती। तीसरे इंगलैंड को रूस के साम्यवाद से बहुत भय था और जर्मनी इस साम्यवाद के खतरे को रोकने में सहायक हो सकता था। इंगलैंड एवं अमेरिका की इच्छा के विरुद्ध फ्राँस ने जर्मनी के रूर प्रदेश पर अधिकार कर लिया। वार्साय सन्धि के समय यह निर्णय हुआ था कि इंगलैंड एवं अमेरिका दोनों फ्राँस की सुरक्षा का भार वहन करेंगे। परन्तु अमेरिका की सीनेट ने इस सन्धि को अस्वीकृत कर दिया और अमेरिका यूरोप की राजनीति से विरक्त हो गया। अमेरिका के अलग होने पर इंगलैंड ने भी फ्राँस को सुरक्षा का आश्वासन देने से इन्कार कर दिया। इंगलैंड एवं अमेरिका से निराश होने पर फ्राँस ने पोलैण्ड, बेलजियम और जेकोस्लोवाकिया के साथ अलग-अलग सन्धियां कीं।

मित्रराष्ट्रों एवं रूस में भी झगड़ा चल रहा था। हिटलर रूसी साम्यवाद के विरुद्ध समय-समय पर विष-वमन करता रहता था। यदि इस समय मित्रराष्ट्र रूस के प्रति सहानुभूति प्रकट करते तो रूस मित्र राष्ट्रों के साथ हो जाता। परन्तु मित्र-राष्ट्रों को रूस पर विश्वास न था। म्यूनिख सम्मेलन में तो मित्र-राष्ट्रों ने रूस को सम्मिलित भी नहीं किया। इसलिए रूस मित्र-राष्ट्रों से बहुत नाराज था। अन्त में

1. 'The failure of the League of Nations and that of the appeasement policy of England set at last the Second World War ablaze in 1939.'

उसने मित्र-राष्ट्रों के प्रबल शत्रु जर्मनी से अनाक्रमक सन्धि (Soviet German Non Aggression Pact) कर लिया। इस प्रकार पारस्परिक अविश्वास के कारण मित्र-राष्ट्रों का मोर्चा बहुत निर्बल रह गया तथा वह तानाशाहों की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने में कठिनाई अनुभव करने लगे।

युद्ध का प्रारम्भ—पारस्परिक झगड़ों एवं रूस के साम्यवाद के आतंक के कारण इंगलैंड एवं फ्रांस बराबर तानाशाहों के प्रति तुष्टीकरण की नीति का पालन करते रहे। इससे उनकी शक्ति बहुत बढ़ गई। १ सितम्बर को जर्मनी ने पोलैंड पर आक्रमण कर दिया। रूस ने जर्मनी की सहायता की। पोलैंड की सहायता ब्रिटेन एवं फ्रांस ने की। इस प्रकार द्वितीय महायुद्ध का श्रीगणेश हो गया। यह युद्ध १९४५ तक चलता रहा।

प्रश्न

१ द्वितीय महायुद्ध के कारणों का वर्णन कीजिए।

२ क्या द्वितीय महायुद्ध वास्तव में अनिवार्य था ? स्पष्ट रूप से समझाइए।

३ द्वितीय महायुद्ध के प्रभावों पर प्रकाश डालिए।

४ द्वितीय महायुद्ध की घटनाओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

परिशिष्ट १

पूर्वी समस्या

(१८५६-१८७८)

बर्लिन की सन्धि

१८५६ की पेरिस की सन्धि ने पूर्वी समस्या को स्थायी रूप से हल नहीं किया था। परिणाम यह हुआ कि वह किसी न किसी रूप में निरन्तर हमारे सम्मुख आती रही—

(१) पेरिस सन्धि ने बलाशिआ और मोल्डाविया को स्वायत्त शासन दे दिया था, परन्तु उन्हें एक राज्य में संगठित न किया था। इन दोनों प्रदेशों की जनता एक जाति रूमानिअन की थी। उसकी भाषा, संस्कृति, धर्म और परम्परा सभी कुछ एक थी। अतः वह दोनों राज्यों को मिलाकर अपना एक राज्य करना चाहती थी। इसी भावना से प्रेरित होकर १८५९ में दोनों ही राज्यों ने एक ही व्यक्ति एलेग्जेण्डर काउजा को अपना शासक चुना। यद्यपि उनका यह कार्य राष्ट्रीयता और आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के अनुकूल था, परन्तु वह पेरिस सन्धि में की गई व्यवस्था को भंग करता था। अतः पेरिस सन्धि के तीन प्रमुख हस्ताक्षरकर्त्ताओं इंगलैंड, आस्ट्रिया और टर्की ने उनके इस कार्य का विरोध किया। इस समय फ्राँस में नेपोलियन तृतीय का राज्य था। वह बहुधा राष्ट्रीय आन्दोलनों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करता था। अतः उसने रूमानिअनों के कार्य का समर्थन किया। १८६१ में बड़े राज्यों को वलाशिआ और मोल्डाविआ के कार्य को स्वीकार करना पड़ा। इस प्रकार योरप में रूमानिआ नामक एक नवीन राज्य का उदय हुआ। परन्तु अब भी रूमानिआ को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त न हुई थी। वह टर्की साम्राज्य के अन्तर्गत था। रूमानिअनों को अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने लिए १८७८ तक प्रतीक्षा करनी पड़ी।

(२) क्रीट टापू में यूनानी रहते थे और वे यूनान के साथ मिलना चाहते थे। परन्तु पेरिस की सन्धि ने उनकी समस्या पर विचार न किया था। अतः क्रीट में टर्की साम्राज्य के विरुद्ध भारी असन्तोष था। समान धर्म के आधार पर रूस भी क्रीट-निवासियों के प्रति सहानुभूति रखता था। उसके प्रोत्साहन से क्रीट ने १८६५ में टर्की के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। परन्तु उसे सफलता न मिली। यूनान के साथ क्रीट का एकीकरण बाल्कन युद्ध के पश्चात् १९१३ में सम्भव हो सका था।

(३) पेरिस की सन्धि ने सर्वों की समस्या को भी हल न किया था। इस समय टर्की साम्राज्य में सर्वों का राष्ट्रीय आन्दोलन (Pan Serv Movement) चल रहा था। इसके अनुसार सर्व जाति अपनी एकता और स्वतन्त्रता प्राप्त क[illegible]

चाहती थी। इस आन्दोलन का केन्द्र सर्विया था जो अभी तक टर्की साम्राज्य के अधीन था।

१८६७ में सर्विया ने टर्की के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और तुर्कों को विवश होकर सर्विया के दुर्गों को छोड़ना पड़ा। इस कार्य में सर्विया को इंगलैंड और आस्ट्रिया से भी सहायता मिली। इस प्रकार १८६७ तक सर्विया को आँशिक स्वाधीनता प्राप्त हो गई। अपनी पूर्ण स्वाधीनता के लिये उसे भी १८७८ तक प्रतीक्षा करनी पड़ी।

(४) इसी प्रकार बल्गर जाति भी टर्की के अधीन न रहना चाहती थी। वह अपने स्वतन्त्र राज्य की स्थापना के लिए आन्दोलन चला रही थी। रूस को उसके साथ भी पूरी सहानुभूति थी। १८७० में रूस के प्रोत्साहन से बल्गरों ने अपने स्वतन्त्र चर्च की स्थापना की। इस प्रकार बल्गरों को धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई।

(५) पेरिस की सन्धि रूस के लिये बड़ी अपमानजनक थी। उससे बसरेबिया का प्रदेश ले लिया गया था। काला सागर पर दुर्गीकरण करने तथा जहाजी बेड़ा रखने का अधिकार भी उसके हाथ से चला गया था। अतः रूस अवसर पाते ही इन शर्तों को तोड़ने का प्रयत्न कर रहा था। बिस्मार्क ने रूस की मित्रता प्राप्त करने के लिए उसे इन शर्तों के तोड़ने के लिए प्रोत्साहन दिया। फलतः १८७१ में रूस ने काले सागर पर स्थित सेबास्टोपल नगर का दुर्गीकरण करना प्रारम्भ कर दिया। उसने काले सागर पर अपना जहाजी बेड़ा पुनः स्थापित कर दिया। तत्पश्चात् वह बसरेबिया को पुनः हस्तगत करने तथा टर्की में अपने खाये हुए प्रभाव को स्थापित करने का अवसर ढूंढने लगा।

(६) इस समय टर्की साम्राज्य की निरन्तर हलचल का एक प्रमुख कारण स्लाव जाति का राष्ट्रीय आन्दोलन था। विभिन्न राज्यों की स्लाव जाति सर्विया के नेतृत्व में अपने एक राष्ट्रीय राज्य का निर्माण करना चाहती थी। यह जाति सर्विया के अतिरिक्त बोस्निआ, हर्जेगोविना और माण्टेनीग्रो में विशेष रूप से आन्दोलन कर रही थी। रूस में भी स्लाव जाति रहती थी। अतः उस देश की सहानुभूति भी स्लाव-आन्दोलन के साथ थी।

(७) टर्की साम्राज्य में व्याप्त असन्तोष का सर्वप्रधान कारण तुर्की शासन की निरंकुशता, निर्दयता और भ्रष्टाचारिता थी। बार-बार वचन देने के पश्चात् भी टर्की के सुल्तान ने अपने अधीनस्थ राज्यों में सुधार न किया था। उसके पदाधिकारी गैर-तुर्कों का अनेक प्रकार से शोषण करते थे। कर भारी और बहुसंख्यक थे तथा वे बड़ी कठोरता के साथ वसूल किये जाते थे। गैर-तुर्कों को तुर्क अवहेलना की दृष्टि से देखते थे। उनके धर्म, संस्कृति, भाषा आदि सभी को गौण स्थान दिया जाता था। अतः गैर-तुर्क तुर्की साम्राज्य से पृथक् होने की चेष्टा कर रहे थे।

बाल्कन प्रदेश के विद्रोह

१८७५ में बोस्निआ और हर्जेगोविना की जनता ने अत्यधिक करों के विरोध

में विद्रोह कर दिया। उनके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करते हुए अन्य दो सर्व-प्रधान राज्यों—माण्टेनीग्रो और सर्विया—ने भी विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया।

इस विद्रोह के समय ही एक अन्य घटना भी हुई। टर्की की आर्थिक अवस्था दीर्घकाल से ही खराब चल रही थी। वह विदेशों से ऋण लेकर अपना काम चला रहा था। इस समय वह अवस्था इतनी खराब हो गई कि वह विदेशी ऋण पर ब्याज देने में भी असमर्थ हो गया।

ऐण्ड्रेसी नोट—इस परिस्थिति में आस्ट्रिया, प्रशा और रूस के सम्राटों ने आपस में विचार-विमर्श करके ३६ दिसम्बर, १८७५ को टर्की के पास एक नोट भेजा। यह आस्ट्रिया के प्रधान-मन्त्री ऐण्ड्रेसी के नाम से ऐण्ड्रेसी नोट कहलाता है। इसने टर्की के सुल्तान से निम्नलिखित बातों की सिफारिश की—

(१) टर्की के साम्राज्य में सुधार किये जायें।

(२) अधीन प्रदेशों, विशेषतया बोस्निआ और हर्जेगोविना, में कर कम, नरम और प्रत्यक्ष हों।

(३) सबको धार्मिक स्वतन्त्रता दी जाय।

(४) कृषकों की दशा सुधारी जाय।

(५) एक आयोग की नियुक्ति हो जो सुधारों को अपने निरीक्षण में लागू कराये।

टर्की के सुल्तान ने प्राय: सभी सिफारिशों को स्वीकार कर लिया। परन्तु विद्रोहियों ने सुल्तान के वचन का विश्वास न किया और यह माँग की कि वह पहले सुधार करे तभी हम हथियार रक्खेंगे। सुल्तान ने इस शर्त को स्वीकार न किया। अत: दोनों पक्षों में गत्यवरोध उत्पन्न हो गया।

इसी बीच परिस्थिति और अधिक बिगड़ गई। अप्रैल, १८७ में बल्गेरिया ने भी टर्की के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। प्रशा, आस्ट्रिया, रूस, फ्रांस और इटली ने सुल्तान के पास एक दूसरा नोट भेजा। इसे बर्लिन नोट कहते हैं। इसमें टर्की से माँग की गई थी कि वह विद्रोही प्रदेशों में सुधार लागू करके तुरन्त शान्ति स्थापित करे अन्यथा मित्रराष्ट्र टर्की के विरुद्ध सैनिक हस्तक्षेप करेंगे। परन्तु इंगलैंड टर्की के विरुद्ध सशस्त्र कार्यवाही न करना चाहता था। अत: उसने बर्लिन नोट का विरोध किया। इंगलैंड के विरोध के कारण मित्र-राष्ट्र कोई कदम न उठा सके।

इंगलैंड के रुख से टर्की को भी प्रोत्साहन मिला। उसने मित्रराष्ट्रों की उपेक्षा करते हुए बलगरों का भयंकर दमन किया। टर्की के सैनिकों ने बल्गेरिया में सामूहिक हत्याकाण्ड किये। उन्होंने गाँव के गांव तबाह कर दिये। हजारों निरीह मनुष्यों का बध कर दिया गया। एकमात्र बटक नगर में ही ५००० व्यक्ति मारे गये। इतिहास में यह काण्ड 'बल्गेरिया का हत्याकाण्ड' कहलाता है।

योरपीय देशों में टर्की के इन निर्मम कार्यों की बड़ी आलोचना की गई।

इंगलैंड में विरोधी नेता ग्लैडस्टन ने मांग की कि जिन प्रदेशों को तुर्कों ने तबाह किया है वहाँ से उन्हें पूर्णतया निकाल देना चाहिए।[1]

इंगलैण्ड ने शान्ति स्थापित करने के लिये २१ सितम्बर १८७६ को टर्की के सुल्तान के पास निम्नलिखित प्रस्ताव भेजे—

(१) बोस्निआ और हर्जेगोविना को स्वायत्त शासन दे दिया जाय।

(२) सर्विया और माण्टेनीग्रो में पूर्वस्थिति (Status Quo) कायम किया जाय।

(३) बल्गेरिया में सुधार किये जाँय।

इसी समय रूस ने प्रस्ताव रक्खा कि यदि टर्की इन माँगों को स्वीकार न करे तो मित्रराष्ट्र उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दें, अस्थायी रूप से आस्ट्रिया बोस्निया पर अधिकार कर ले और रूस बल्गेरिया पर।

इंगलैंड पूर्वी समस्या में रूस का विरोधी था। वह भूमध्य सागर की ओर रूस के विस्तार को न होने देना चाहता था। वह यह भी नहीं चाहता था कि रूस आये दिन स्लाव जाति अथवा ग्रीक आर्थोडाक्स चर्च के नाम पर टर्की की समस्याओं में हस्तक्षेप करे। अतः इंगलैंड ने टर्की के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करने से पुनः इन्कार कर दिया।

रूसी–तुर्की युद्ध

१८७७

रूस टर्की की समस्याओं में भारी रुचि रखता था। वह स्लाव जाति के राष्ट्रीय आन्दोलन का समर्थक था। सर्विया की सेना में बहुसंख्यक रूसी सैनिक और पदाधिकारी थे। पुनः रूस ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में था कि जब वह १८५६ की पेरिस की सन्धि को समाप्त करके अपनी प्रतिष्ठा फिर से स्थापित कर सके।

अतः मित्र-राष्ट्रों को कोई कार्यवाही करते न देखकर रूस ने अकेले ही टर्की के विरुद्ध हस्तक्षेप करने का निश्चय किया। उसने अपने सेनापति इग्नैटीफ को १५ अक्टूबर, १८७६ को कुस्तुन्तुनिया भेजा। रूसी सेनापति ने ३० अक्तूबर को सुल्तान को यह अल्टीमेटम दिया कि यदि वह ४८ घन्टों के भीतर सर्विया से युद्ध-विराम सन्धि नहीं करता तो रूस टर्की से कूटनीतिक सम्बन्ध तोड़ देगा। इस धमकी से टर्की घबड़ा गया और उसने सर्विया से वार्ता चलाना स्वीकार कर लिया।

इस परिस्थिति में दिसम्बर, १८७६ में मित्रराष्ट्रों ने कुस्तुन्तुनिया में अपना सम्मेलन किया। उन्होंने इंगलैंड के पूर्वोल्लिखित प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया और सुल्तान से सिफारिश की कि वह उन्हें कार्यान्वित करे।

सुल्तान सुधार करने के लिए तो तैयार हो गया, परन्तु वह किसी आयोग के निरीक्षण में उन्हें न करना चाहता था। इसी बात पर पुनः गत्यवरोध उत्पन्न हो

1. The Turk should be driven out 'bag and baggage from the province they have desolated and profaned.'

गया। इस बार रूस ने अकेले ही टर्की को दण्डित करने का निश्चय किया। उसने १४ अप्रैल, १८७७ को टर्की के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

रूसी सेना ने डेन्यूब नदी को पार करके टर्की के साम्राज्य में घुसना प्रारम्भ किया। प्लेव्ना में उसे तुर्की सेना के दृढ़ विरोध का सामना करना पड़ा। यहाँ तुर्की सेनापति उस्मान पाशा ने रूसी सेना को पराजित कर दिया। तत्पश्चात् रूसियों ने प्लेव्ना का घेरा डाला। उस्मान पाशा ने लगभग पाँच महीने तक बड़ी वीरता से रूसियों को रोके रक्खा। परन्तु अन्त में १० दिसम्बर, १८७७ को उसे आत्म-समर्पण करना पड़ा। ५ जनवरी, १८७८ को रूसियों ने सोफिआ पर अधिकार कर लिया। २० जनवरी को एड्रिआनोपल भी उनके हाथ में आ गया। निरन्तर पराजयों के पश्चात् टर्की ने रूस के सम्मुख हथियार डाल दिये। ३ मार्च, १८७८ को दोनों पक्षों में सैन स्टेफेनो की सन्धि हो गई।

सैन स्टेफेनो की सन्धि

इन सन्धि की प्रमुख शर्तें निम्नलिखित थीं—

(१) सर्विया को निश और मिट्रोविजा के जिले मिले और टर्की के सुल्तान ने उसकी स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली।

(२) माण्टेनीग्रो को बोस्निआ का कुछ भाग तथा ऐटिण्वादी का बन्दरगाह मिला। वह भी तुर्की साम्राज्य से स्वतन्त्र हो गया।

(३) टर्की ने रूमानिया की स्वतन्त्रता भी स्वीकार कर ली।

(४) सुल्तान ने वचन दिया कि वह कुस्तुन्तुनिया सम्मेलन की सिफारिशों के अनुसार बोस्निआ और हर्जेगोविना में सुधार करेगा। ये सुधार रूस और आस्ट्रिया के निरीक्षण में होंगे।

(५) सुल्तान आर्मिनिया में भी सुधार करेगा।

(६) डेन्यूब-तट पर स्थित किले नष्ट कर दिये जायेंगे।

(७) रूस को एशिया में बतूम, कार और कुछ अन्य प्रदेश मिले।

(८) रूस ने रूमानिया को डोबूजा का भाग दे दिया और उसके बदले में उससे बसरेबिया ले लिया।

(९) बृहत्तर बल्गेरिया का निर्माण किया गया। इसका विस्तार डेन्यूब नदी से ईजियन सागर तक तथा काले सागर से अलबानिया तक था।

सैन स्टेफेनो की सन्धि रूस की भारी विजय थी। टर्की का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। रूस की प्रतिष्ठा पुनः स्थापित हो गई। उसने पेरिस की अपमान-जनक सन्धि का बदला ले लिया। उसे बसरेबिया पुनः प्राप्त हो गया। एशिया में भी उसका साम्राज्य-विस्तार हो गया। बृहत्तर बल्गेरिया जैसे विशाल राज्य अपने निर्माता रूसियों के प्रभाव में जा सकता था।

रूस को छोड़कर कोई भी अन्य देश इस सन्धि से संतुष्ट न था। इंगलैंड प्रारम्भ से ही रूस से सशंकित था। रूसी-तुर्की युद्ध के दौरान में ही इंगलैंड ने यह

घोषित कर दिया था कि इंगलैंड ऐसे किसी भी रूसी-तुर्की समझौते को स्वीकार न करेगा जिससे पूर्व संधियों का उल्लंघन होता हो। सैन स्टेफेनों की सन्धि पेरिस की सन्धि का उल्लंघन थी। अतः इंगलैंड ने माँग की कि यह सन्धि पुनर्विचार के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में रक्खी जाय।

आस्ट्रिया ने इंगलैंड की माँग का समर्थन किया। पूर्वी समस्या में आस्ट्रिया भी रूस का विरोधी था। वह टर्की साम्राज्य में रूसी विस्तार को शंका की दृष्टि से देखता था।

जर्मनी आस्ट्रिया का मित्र था। अतः जब रूस ने जर्मनी से यह प्रार्थना की कि वह आस्ट्रिया पर रोक-थाम लगाये तो जर्मनीने यह कह कर मना कर दिया कि हमारी सेनायें फ्रांस के विरुद्ध राइन-प्रदेश की रक्षा कर रही हैं। वे आस्ट्रिया के विरुद्ध नहीं लगाई जा सकतीं।

उधर सर्विया, यूनान और रूमानिया भी सैन स्टेफेनो की सन्धि से असन्तुष्ट थे। वे उसमें परिवर्तनों की मांग कर रहे थे।

रूस ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का विरोध किया। इस पर इंगलैंड ने युद्ध की धमकी दी। लार्ड बेकनफील्ड (डसरैली) ने ७ हजार भारतीय सैनिकों को माल्टा में पहुंचने का आदेश दिया। आस्ट्रिया ने भी रूसी सीमा पर अपना सैनिक जमाव प्रारम्भ कर दिया। आस्ट्रिया के प्रति जर्मनी की सहानुभूति सर्वविदित थी। इस परिस्थिति में रूस को झुकना पड़ा। उसने सैन स्टेफेनो की सन्धि पर पुनर्विचार के लिये अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन की मांग स्वीकार करली।

बर्लिन सन्धि
(१८७८)

यह अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बर्लिन में हुआ। इसका सभापति बिस्मार्क था। विचार-विमर्श के पश्चात् उपस्थित प्रतिनिधियों ने १३ जुलाई, १८७८ को एक नवीन सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिये। यह सन्धि इतिहास में बर्लिन-सन्धि के नाम से प्रख्यात है। इसने सैन स्टेफेनो की सन्धि को रद्द कर दिया।

बर्लिन-सन्धि की प्रमुख धारायें इस प्रकार थीं—

(१) सर्विया, माण्टेनीग्रो और रूमानिया की स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली गई। सैन स्टेफनो की सन्धि ने इन राज्यों को जो प्रदेश दिये थे वे भी प्रायः इन्हीं के पास रहे।

(२) रूसी प्रभाव को कम करने के लिए बृहत्तर बल्गेरिया का विघटन कर दिया गया। उसे तोड़ कर दो राज्यों का निर्माण किया गया—बल्गेरिया और पूर्वी रूमेलिया। बल्गेरिया नाममात्र के लिए टर्की के अधीन रहा। उसे पूर्ण स्वायत्त शासन दे दिया गया। पूर्वी रूमेलिया एक ईसाई गवर्नर के अधीन एक पृथक् शासित राज्य बना दिया गया। परन्तु नाममात्र के लिए यह भी टर्की के अधीन रक्खा

गया। बृहत्तर बल्गेरिया का ३० हजार वर्ग मील का भाग पुनः टर्की को दे दिया गया।

(३) बोस्निश्रा और हर्जेगोविना भी नाममात्र के लिए टर्की के अधीन रहे। परन्तु इनके प्रशासन का उत्तरदायित्व आस्ट्रिया को दे दिया गया।

आस्ट्रिया को सैनिक उपयोग के लिये नोवी-बाजार का संजक प्रदेश भी दे दिया गया।

(४) रूस को योरप में बसरेबिया मिला। एशिया में उसे बतूम, अर्दहन और कार्स के प्रदेश मिले।

(५) इंगलैण्ड ने टर्की के साथ एक पृथक् समझौता करके उससे साइप्रस का टापू ले लिया। यह तय हुआ कि इंगलैण्ड इस टापू को अपने अधिकार में उस समय तक रक्खेगा जब तक रूस बतूम और कार्स को अपने अधिकार में रक्खेगा।

(६) साइप्रस की अतिरिक्त आय टर्की को मिलेगी। इस धन से वह अपने एशियाई साम्राज्य में सुधार-योजनायें लागू करेगा। इंगलैण्ड ने टर्की साम्राज्य की सुरक्षा का आश्वासन दिया।

(७) फ्रांस ट्यूनिस पर अधिकार करना चाहता था। बर्लिन के राजनीतिज्ञों ने उसके विरुद्ध कार्यवाही न करने का आश्वासन दिया।

आलोचना

बर्लिन सन्धि योरपीय इतिहास की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सन्धि है। इसने अनेक महत्वपूर्ण प्रभाव उत्पन्न किये—

(१) इसने टर्की साम्राज्य का विघटन कर दिये। उससे सर्विया, माण्टेनीग्रो और रूमानिया के राज्य निकल गये। बल्गेरिया का राज्य भी नाममात्र के लिए ही टर्की के अधीन रहा।

(२) इस सन्धि में राजनीतिज्ञों ने प्रमुखतया अपने स्वार्थ से प्रेरित होकर कार्य किया। उन्होंने वस्तुतः तुर्की प्रदेशों का आपस में बंटवारा कर लिया। रूस को बसरेबिया, आस्ट्रिया को बोस्निश्रा और हर्जेगोविना तथा इंगलैण्ड को साइप्रस देते समय इस सम्मेलन ने लूट-मार के सिद्धान्त को ही सामने रक्खा।

(३) इस सन्धि ने राष्ट्रीयता के सिद्धान्त की उपेक्षा की। इसी से बृहत्तर बल्गेरिया का अंग-भंग किया गया, बोस्निश्रा और हर्जेगोविना को सजातीय राज्य सर्विया से न मिलने दिया गया, यूनान को क्रीट, थेसले, एपिरस और मेसीडोनिया के भाग नहीं दिये गये तथा बसरेबिया ट्रान्सिल्वेनिया और बुकोविना के प्रदेशों को सजातीय रूमानिया से पृथक् रक्खा गया।

इस प्रकार इस सन्धि ने बल्गेरिया, सर्विया, यूनान, मेसीडोनिया और रूमानिया सभी को असंतुष्ट रक्खा।

(४) मेसीडोनिया को तुर्की साम्राज्य में छोड़कर बर्लिन सम्मेलन ने बड़ी गलती की थी। मेसीडोनिया-निवासी अत्याचारी तुर्की शासन के अन्तर्गत कभी भी न

रहना चाहते थे । बल्गेरिया में तुर्कों के भीषण हत्याकाण्ड ने उनके निश्चय को और भी दृढ़ कर दिया था । मेसीडोनिया का प्रश्न कालान्तर में १९१३ के बाल्कन युद्ध का एक प्रमुख कारण बना ।

(५) आस्ट्रिया को बोस्निआ और हर्जेगोविना तथा संजक के प्रदेश देकर सन्धि-विधेयकों ने भविष्य के लिए बड़ी कठिन समस्यायें उत्पन्न कर दीं । इन प्रदेशों की प्राप्ति से आस्ट्रिया बाल्कन प्रदेश में अधिकाधिक रुचि लेने लगा । उसने १९०८ में बोस्निआ-संकट खड़ा कर दिया जिससे युद्ध होते होते बचा ।

बर्लिन सन्धि ने सर्विया और आस्ट्रिया के बीच कटुता उत्पन्न कर दी । सर्विया, बोस्निआ और हर्जेगोविना में समान जाति-स्लाव रहती थी । अतः सहजातीयता के आधार पर बोस्निआ और हर्जेगोविना के प्रदेशों को सर्विया अपने राज्य में मिलाना चाहता था । परन्तु ऐसा न हो सका । इन प्रदेशों पर शासन करने का अधिकार आस्ट्रिया को दिया गया ।

आस्ट्रिया के संजक-प्रदेश के अधिकार ने सर्विया और सजातीय माण्टेनीग्रो को भी एक दूसरे से दूर कर दिया । परिणामतः सर्विया और आस्ट्रिया के बीच भारी वैमनस्य उत्पन्न कर दिया जो निरन्तर बढ़ता गया । यही वैमनस्य प्रथम महा-युद्ध का तात्कालिक कारण बना ।

(६) रूमानिया से बसरेविया का राज्य छीन कर रूस ने उसे अपना शत्रु बना लिया ।

(७) बल्गेरिया का विभाजन नितान्त अस्वाभाविक था । वह अधिक समय तक न चल सका ; १८८५ में दोनों भागों ने मिलकर अपने संयुक्त राज्य की पुनः घोषणा कर दी ।

(८) रूसी-तुर्की युद्ध में जर्मनी ने रूस का साथ न दिया था । यद्यपि बिस्मार्क ने यह कहा था कि मैंने बर्लिन सम्मेलन में एक ईमानदार दलालिये (Honest Broker) के रूप में कार्य किया था, परन्तु वस्तुतः उसने रूस के शत्रु आस्ट्रिया का पक्ष लिया था और उसे बोस्निआ तथा हर्जेगोविना के प्रदेश दिलाने में सहायता दी थी । जर्मनी के इन कार्यों से रूस बहुत अधिक नाराज हो गया । रूस-जर्मनी की पुरातन मित्रता टूट गई ।[1] दोनों के बीच युद्ध की सम्भावना उत्पन्न हो गई । अतः बिस्मार्क ने अपनी सुरक्षा के लिए १८८९ में रूस के विरुद्ध आस्ट्रिया के साथ द्विराज्य सन्धि (Dual Alliance) की । इस प्रकार योरप में गुप्त सन्धियों का क्रम प्रारम्भ हुआ जिसने प्रथम महायुद्ध को जन्म दिया ।

(९) सैन स्टेफेनो में रूस और आस्ट्रिया की शत्रुता हो गई और बर्लिन में रूस और जर्मनी की । अब रूस को अपनी सुरक्षा की चिन्ता हुई और इसी से उसने १८९३ में फ्राँस के साथ सन्धि कर ली । इस प्रकार रूस और फ्रांस दोनों का अकेला-पन समाप्त हो गया ।

1. 'The outstanding result of the Congress of Berlin was the estrangement of Russia from Germany.'

(१०) बर्लिन-सम्मेलन प्रमुखतया रूसी शक्ति को सीमित करने के लिए किया गया था, परन्तु उस उद्देश्य की पूर्ति नहीं हुई। रूस ने पेरिस की अपमानजनक सन्धि का निराकरण करते हुए बसरेविया प्राप्त कर लिया। वह काले सागर पर पुन: अपना जहाजी बेड़ा रखने लगा था। यही नहीं, उसने मध्य एशिया की ओर अपना विस्तार करना भी प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार वह अंग्रेजों के एशियाई साम्राज्य के लिए खतरा बन गया था।

(११) इस अवसर पर अंग्रेजों की नीति बड़ी अस्पष्ट और अनिश्चित रही। पहले उन्होंने टर्की की प्रादेशिक अखण्डता की रक्षा की घोषणा की। फिर जब रूस ने टर्की के विरुद्ध स्वेच्छापूर्वक सैनिक कार्यवाही की तो वे चुप बैठे रहे। तत्पश्चात् सैन स्टेफेनो की सन्धि हो जाने पर उनकी आँखें खुलीं और उन्होंने रूस के बढ़ते हुये प्रभाव को रोकने के लिये तथा सैन स्टेफेनो की सन्धि पर पुनर्विचार करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन की मांग की। अन्त में जब बर्लिन सम्मेलन हुआ तो वे टर्की की प्रादेशिक अखण्डता की रक्षा की बात भूल गये और उन्होंने भी टर्की के साम्राज्य का विघटन करने में योग दिया। वे रूस की शक्ति को भी सीमित न कर सके। यही नहीं, साइप्रस टापू को टर्की से लेकर उन्होंने बड़ा ही अनैतिक कार्य किया।

इस पर भी डिसरैली ने बर्लिन-सम्मेलन से स्वदेश लौटकर यह घोषणा की कि वे 'प्रतिष्ठापूर्ण शान्ति' (peace with honour) की स्थापना करके आये हैं। परन्तु इंगलैंड का व्यवहार नितान्त अप्रतिष्ठापूर्ण रहा था। यही नहीं, बर्लिन की सन्धि टर्की साम्राज्य को स्थायी शान्ति भी न दे सकी।[1] उसके पश्चात् भी पूर्वी समस्या किसी न किसी रूप में उठती रही। बर्लिन सन्धि में बोस्निआ के संकट, बाल्कन-युद्ध एवं प्रथम महायुद्ध के बीज अन्तर्निहित थे।

(१२) बर्लिन के सम्मेलन में अपने 'मित्रों' को ही अपने प्रदेश हड़पते देखकर टर्की को बड़ी निराशा हुई।[2] अत: सुल्तान ने अपने मित्रों पर विश्वास करना छोड़ दिया और शीघ्र ही वह अपनी सेना का अधिकाधिक संगठन करने लगा। इस कार्य में उसने अपने नये मित्र जर्मनी से विशेष सहायता ली।

(१३) परन्तु १८७८ के पश्चात् भी सुल्तान ने गैर-तुर्क राज्यों में सुधार न किये। अत: उसके विरुद्ध असन्तोष बढ़ता रहा। फलत: टर्की का परम्परागत मित्र इंगलैंड भी उससे असन्तुष्ट हो गया। वह समझने लगा कि अभी तक उसने एक गलत देश की सहायता की है। भविष्य में वह टर्की के प्रति उदासीन हो गया।

राजनीति में शून्यता नहीं होती। इंगलैंड की उदासीनता से लाभ उठाकर

---

1. 'The Treaty of Berlin was not a final solution of the Eastern Question.' —Hazen.

2. "That Turkey's 'friends' should thus despoil her of territory so much more than her 'enemies' was a warning she was to

जर्मनी ने टर्की में अधिकाधिक रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया। टर्की के सुल्तान ने जर्मनी का स्वागत किया, क्योंकि बर्लिन-सम्मेलन में जर्मनी ही एक ऐसा प्रमुख देश था जिसने तुर्की साम्राज्य में छीना-झपटी नहीं की थी।

टर्की के साम्राज्य में जर्मनी के अधिक रुचि लेने का यह अन्य कारण भी था। बर्लिन की सन्धि ने आस्ट्रिया का बोस्निआ और हर्जेगोविना देकर पूर्वी समस्या में आस्ट्रिया को और अधिक संलग्न कर दिया था। भविष्य में आस्ट्रिया निरन्तर पूर्वी समस्याओं में उलझता चला गया और प्रत्येक बार जर्मनी को आस्ट्रिया को योग देना पड़ा, क्योंकि आस्ट्रिया के अतिरिक्त जर्मनी का कोई अन्य मित्र न रहा था।[1]

टाम्सन महोदय ने बर्लिन सन्धि का उल्लेख करते हुये निम्नलिखित शब्द कहे हैं—

'The settlement reached at the Congress of Berlin had the remarkable outcome that it left each power dissatisfied and more anxious than before.........International tension was increased, not eased, by the events of these years. The new balance of power, now clearly centered on Germany, was destined to preserve the peace for another whole generation. But it was doomed to be a most uneasy and unstable peace, subject to recurrent crises and threats of war. The next general European Congress met forty years later, not in Berlin but in Paris—and at it were to be no representatives of the Dreikaiserbund.'

Questions

1. 'The Treaty of Berlin of 1878 was a compromise and like all compromises, was pregnant with future troubles.'
—Discuss.
2. 'Out of Disraeli's policy at the Congress of Berlin arose most of the causes of the Balkan wars of 1912 and 1913 and of the Great war of 1914.'
3. What were the provisions of the Treaty of Berlin? Discuss their importance.
4. Examine the statement that istead of solving the original problems, the Treaty of Berlin raised fresh and more difficult problems.

———

1. 'To keep Austria–Hungary as his fore-most ally, Bismarck henceforth had to concern himself more continuously with the [Ea]stern Question.'

न रहा था। रूस उसका मित्र था। इंग्लैण्ड एकमात्र इंग्लिश चैनेल के कारण बचा हुआ था। यदि फ्रांस पर अधिकार करने के तत्काल पश्चात् जर्मनी इंग्लैण्ड पर आक्रमण कर देता तो इंग्लैंड बड़े संकट में पड़ जाता। परन्तु हिटलर ने वह अवसर हाथ से निकल जाने दिया।

इंग्लैंड धीरे-धीरे संभलता गया। हिटलर के प्रति निरन्तर तुष्टीकरण की नीति का अनुसरण करने वाले इंग्लैंड के प्रधान मन्त्री चेम्बरलेन ने इस्तीफा दे दिया और उनके पश्चात् विंस्टन चर्चिल इंग्लैण्ड के नये प्रधान-मन्त्री हुये। उन्होंने इंग्लैंड तथा अंग्रेजी साम्राज्य के समस्त साधनों का संगठन करना प्रारम्भ किया और विजय-पर्यन्त लड़ते रहने के लिये इंग्लैंड को कटिबद्ध किया। उन्होंने ओजस्वी भाषण देते हुये घोषणा की कि 'हम महासागरों और समुद्रों में लड़ेंगे, हम बढ़ती हुई शक्ति के साथ वायु में लड़ेंगे, हम अपने देश की रक्षा करेंगे, चाहे इसके लिये कुछ भी मूल्य देना पड़े। हम समुद्र-तटों और हवाई अड्डों पर लड़ेंगे। हम खेतों और गलियों में लड़ेंगे। हम पहाड़ों पर लड़ेंगे, किन्तु हम कभी भी आत्म-समर्पण नहीं करेंगे।

इंग्लैंड में जेकोस्लोवाकिया, पोलैण्ड, नार्वे नीदरलैंड, बेल्जियम आदि की सरकारें भाग कर आ गई थीं। उन्होंने अपने उपनिवेशों के समस्त साधन, धन एवं जहाजी बेड़े आदि भी इंग्लैंड के सिपुर्द कर दिये। इंग्लैंड के समुद्री बेड़े ने ओरान (Oran) में फ्राँसीसी समुद्री बेड़े को नष्ट कर दिया जिससे वह जर्मनी के अधिकार में न हो जाय। इंग्लैंड को आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, दक्षिणी अफ्रीका, कनाड़ा और भारत से बड़ी सहायता मिली। अमेरिका की सहानुभूति प्रारम्भ से ही इंग्लैण्ड के साथ थी। अगस्त, १९४० में अमेरिका ने इंगलैण्ड को ५० युद्ध-पोत दिये। मार्च, १९४१ में अमेरिका ने उधार-पट्टा कानून (Lease-Land Act) पास किया। इसके अनुसार उसने धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध मित्रराष्ट्रों को सहायता देने की घोषणा की।

फिर भी जून १९४० से लेकर जून १९४१ तक इंगलैंड की स्थिति बड़ी गम्भीर रही। इस बीच जर्मनी के वायुयानों ने इंग्लैंड के नगरों पर भयंकर हवाई आक्रमण किये और अपनी गोलाबारी से इंग्लैंड को धन-जन की भारी हानि पहुंचाई। परन्तु इंगलैंड विचलित न हुआ। उसने अपनी वायुसेना को दृढ़ किया और जर्मनी के वायुयानों को मार-मार कर गिराना प्रारम्भ किया। यही नहीं, अंग्रेजी वायुसेना ने बेल्जियम [illegible]ड, फ्रांस, नार्वे आदि पर आक्रमण करके जर्मनी की युद्ध-सामग्री को भी भारी [illegible]हुंचाना आरम्भ किया। इंग्लैंड के इस साहसपूर्ण कार्य ने सम्भवतः सम्पूर्ण [illegible]को बचा लिया।[1]

उधर अफ्रीका में इंग्लैंड ने मिस्र से इटैलियनों को मार भगाया और उनसे [illegible]बिया भी छीन लिया। अंग्रेजी सेना ने इटली को सोमालीलैंड, इरीट्रिया [illegible]पिशा में भी पराजित किया और इन प्रदेशों पर अधिकार कर लिया।

1. 'Never in the history of mankind did so many owe sc[illegible]h to so few' —Churchill

रूसी जर्मन-युद्ध—जून, १९४१ में एक ऐसी घटना हुई जिसने परिस्थिति में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया। यह घटना थी जर्मनी का रूस पर आक्रमण। हिटलर और स्टालिन दोनों महत्वाकांक्षी थे। वे अधिकाधिक योरप को अपने-अपने प्रभाव-क्षेत्र में लाना चाहते थे। कुछ दिन तक दोनों ने मिल कर कार्य किया। परन्तु शीघ्र ही दोनों में मतभेद उत्पन्न हो गया और हिटलर ने रूस पर आक्रमण कर दिया। उसका विचार था कि वह कुछ ही दिनों में रूस को पद-दलित कर देगा और तत्पश्चात् अपनी सारी शक्ति इंग्लैंड के विरुद्ध लगायेगा। परन्तु उसका यह विचार बड़ा गलत सिद्ध हुआ। जिस प्रकार रूस १८१२ में नेपोलियन महान् के पतन का कारण बना था उसी प्रकार १९४१ में हिटलर के पतन का।

प्रारम्भ में तो जर्मनी को भारी सफलता मिली और वह लगभग मास्को तक पहुंच गया। परन्तु धीरे-धीरे रूसियों ने महान् धैर्य, सहास और शौर्य का परिचय देते हुये जर्मन सेनाओं के दांत खट्टे करने प्रारम्भ किये। अमेरिका के राष्ट्रपति रूजबेल्ट ने रूस को एक अरब डालर सहायता देने की घोषणा की। अमेरिका और इंग्लैण्ड ने रूस को प्रचुर-मात्रा में युद्ध-सामग्री पहुंचाई। स्वयं रूसी मिलों-कारखानों ने दिन-रात काम कर अपना उत्पादन बढ़ाया। उधर जर्मनी की शक्ति को निर्बल करने के लिये अंग्रेजी वायुयानों ने जर्मनी, फ्राँस, नीदरलैंड आदि में स्थित जर्मन बन्दरगाहों, हवाई अड्डों सैनिक केन्द्रों, मिलों और कारखानों पर हवाई हमले प्रारम्भ किये। इनसे जर्मनी की बड़ी हानि हुई।

इंग्लैण्ड ने ईराक और सीरिया पर अधिकार कर लिया जिससे जर्मनी युद्ध-संचालन में इनके साधनों का प्रयोग न कर सकें और अंग्रेजों के पूर्वी प्रदेशों के लिये कोई नया संकट प्रस्तुत न कर सके।

उधर रूसी-जर्मन युद्ध में **स्टालिनग्रेड का युद्ध** बड़ा महत्वपूर्ण है। इस में रूसियों ने जिस त्याग और शौर्य का परिचय देते हुये स्टालिनग्रेड की रक्षा की थी वह इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। धीरे-धीरे रूसियों ने जर्मन [illegible] अपने देश से बाहर खदेड़ दिया। चर्चिल महोदय ने रूसियों के कार्य की प्र[illegible] हुये कहा था कि 'यह रूस की सेना ही है जिसने जर्मनी की सेना की आँते [illegible] का मुख्य कार्य किया है।

अमेरिका की युद्ध-घोषणा—यद्यपि अमेरिका की सहानुभूति मित्र रा[illegible] प्रति थी, परन्तु अभी तक वह खु[illegible] रूप में युद्ध में सम्मिलित न हुआ था। प्रशा[illegible] महासागर में जापान के साथ उसके झगड़े चल रहे थे। इन्हें हल करने के लिये जापान ने अपना एक शिष्टमण्डल वाशिंगटन भेजा था। अभी उसके साथ वार्ता चल ही रही थी कि ७ दिसम्बर, १९४१ को जापान ने चेतावनी के बिना ही **पर्लहार्बर** पर आक्रमण कर दिया। इसमें अमरीकी जहाजी बेड़े, सम्पत्ति और नागरिकों को भारी क्षति पहुंची। परिणामस्वरूप ८ दिसम्बर को अमेरिका ने जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

The

७. फ्रां... युद्ध के लिये पूरी तरह से तैयार न था। अतः प्रारम्भिक सफलता उसने विग... मिली। उसने फिलीपाइन्स द्वीपसमूह, पूर्वी द्वीपसमूह, बर्मा और ... पर अधिकार कर लिया। उसके अभियान ने भारत, लंका और आस्ट्रेलिया ...लिये भी संकट उत्पन्न कर दिया।

मित्र-राष्ट्रों की स्थिति में सुधार—अब इंग्लैंड और रूस की भांति अमेरिका ने भी अपनी विशाल धन-जन की शक्ति युद्ध-संचालन में लगा दी। अमेरिका के कल-कारखाने दिन-रात युद्ध-सामग्री उत्पन्न करने लगे। शीघ्र ही अमेरीका का सैनिकीकरण हो गया। यही नहीं, उसकी युद्ध-सामग्री प्रचुर मात्रा में प्रत्येक मित्र-राष्ट्र के पास पहुंचने लगी।

नवम्बर, १९४२ में अमरीकी सेनायें अंग्रेजो सेनाओं की सहायता के लिये **उत्तरी अफ्रीका** में पहुंच गईं। दोनों ने मिलकर मई, १९४३ तक जर्मन और इटैलियन सेनाओं को अफ्रीका से निकाल दिया। तत्पश्चात् उन्होंने **सिसली** पर भी अधिकार कर लिया।

इसके पश्चात् इटली पर आक्रमण किया गया। वहां मुसोलिनी के विरुद्ध विद्रोह हो गया और मार्शल बडोग्लिओ के नेतृत्व में वहां नवीन सरकार का निर्माण हुआ। मुसोलिनी जर्मनी की शरण में भाग गया। इटली की नवीन सरकार ने सितम्बर, १९४३ में मित्रराष्ट्रों के सम्मुख बिना शर्त आत्म-समर्पण कर दिया और जर्मनी के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी। परन्तु इसके पश्चात् भी जर्मन सेनायें इटली में युद्ध करती रहीं। १९४५ में मुसोलिनी बन्दी बना लिया गया और उसके देश-वासियों ने उसे गोली मार दी।

स... **सैनिक संगठन**—मित्रराष्ट्रों ने धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध सुचारु रूप से युद्ध १... करने के लिये दिसम्बर, १९४३ में सम्पूर्ण पश्चिमी यूरोप के लिये जनरल अ...ावर को सर्वोच्च सेनापति नियुक्त किया। इसी प्रकार इटली में मित्रराष्ट्रों ...नायें सर हेराल्ट एलेग्जेण्डर के सेनापतित्व में रख दी गई। रही। इ... ष्ट्रों के **आक्रमण**—जून, १९४४ में अमरीकी, अंग्रेजी और किये और ...यें नार्मण्डी में उतरी और उन्होंने पूर्व की ओर बढ़ना प्रारम्भ किया। इंगलै... त्रराष्ट्रों की सेनायें दक्षिणी फ्रांस में उतरी और उन्होंने उत्तर की ओर को ...म्भ किया। भयंकर लड़ाई के पश्चात् फ्रांस से धीरे धीरे जर्मन खदेड़े जाने ह... ...ा ही पेरिस पर मित्रराष्ट्रों का अधिकार हो गया।

... मार्च १९४५ में अमेरीकी, अंग्रेजी और कनैडियन सेनाओं ने राइन नदी पार ...र्मनी पर धावा बोल दिया। उधर पूर्व दिशा से रूस ने भी जर्मनी पर आक्रमण सामया। बर्लिन के समीप दोनों आक्रमणकारी सेनायें मिल गईं। हिटलर समझ आक्र अब आत्म-रक्षा का कोई उपाय नहीं है। अतः अप्रैल १९४५ को उसने ...हत्या कर ली। ७ मई को जर्मनी ने बिना शर्त आत्म-समर्षण कर दिया। अप...ा जर्मनी को अमेरीका, ब्रिटेन, रूस और फ्रांस के अधीन चार भागों में विभक्त कर... ...दया गया।

मित्रराष्ट्रों को अब भी जापान से निपटन
१९४५ को अमेरिका ने जापान के हिरोशिमा एवं
अणु-बम डाला। इसका प्रभाव बड़ा विनाशकारी हुआ
एक लाख व्यक्तियों को मार डाला। जापान ने अब
व्यर्थ है। अतः उसने १४ अगस्त, १९४५ को बिना शर्त
जेनरल मैकआर्थर के निरीक्षण में जापान में एक नई सरकार बनाई गई।

राष्ट्रपति रूजवेल्ट की मृत्यु—युद्ध-समाप्ति के ४ मास पूर्व अमेरिका के
पति रूजवेल्ट की मृत्यु हो गई। उनके पश्चात् उप-राष्ट्रपति हैरी ट्रूमन अ
के नये राष्ट्रपति बने।

द्वितीय महायुद्ध के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रभाव

१. इस महायुद्ध के परिणामस्वरूप अभूतपूर्व विनाश हुआ। यूरोप में
ही कोई ऐसा देश बचा हो जिसे गोलाबारी का सामना न करना पड़ा हो। सै
के अतिरिक्त निरीह नागरिक भी बहुत बड़ी संख्या में हताहत हुये। प्रत्येक दे
प्रचुर साम्पत्तिक हानि हुई।

२. प्रथम महायुद्ध में खाइयों की लड़ाई (Trench Warfare) का वि
महत्व था। परन्तु द्वितीय महायुद्ध में बम-वर्षा और टैंक-प्रयोग ने अधिक प्र
उत्पन्न किये।

३. यह युद्ध बौद्धिक-स्तर पर भी लड़ा गया। यह दो परस्पर-विरोध
धाराओं अथवा जीवन-प्रणालियों का युद्ध था—तानाशाही और जनतन्त्रवाद
बीच का।

४. इस युद्ध के पूर्व योरूप में ५ बड़े राज्य थे—ब्रिटेन, फ्राँस, जर्मनी, इटली औ
रूस। इनके अतिरिक्त एशिया में जापान और नये संसार में अमेरीका थे। परन्तु
युद्ध ने जर्मनी, इटली और जापान को पराभूत कर दिया। ब्रिटेन तथा फ्राँस की श
भी निर्बल हो गई। अतः अब शक्तिशाली देशों में रूस और अमरीका रह
अमेरीका जनतन्त्रवाद और रूस साम्यवाद का प्रतिनिधित्व करने लगे। इस
ने शीघ्र ही एक नवीन संघर्ष को जन्म दिया।

५. युद्ध के पश्चात् निःशस्त्रीकरण की समस्या पर पुनः गम्भीरता
विचार किया जाने लगा। स्थायी विश्व-शान्ति तथा पुनर्वास के लिये अमेरिका,
तथा फ्राँस आदि देशों ने अपना निःशस्त्रीकरण करना प्रारम्भ कर दिया।
रूस ने इस ओर कोई ध्यान न दिया। उसने अपना शस्त्रीकरण जारी रक्खा।

६. महायुद्ध के पश्चात् ब्रिटेन का साम्राज्य छोटा हो गया। उसने भ
र्मा और लंका को स्वतन्त्र कर दिया। आयरलैंड भी ब्रिटिश साम्राज्य से नि
या। फारस ने अंग्रेजों के विशेषाधिकारों का अन्त करके तेल-कूपों का राष्ट्रीयकरण
या। अंग्रेजों ने फिलिस्तीन में अपने संरक्षण (Mandate) की समाप्ति कर
स्र स्वेज नहर और सूडान से ब्रिटिश अधिकार समाप्त करने के लिये आन्दो
रने लगा। अफ्रीका के अन्य प्रदेश भी स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिये चेष्टा करने लगे

The

७. फ्रांस ने सीरिया और लेबनान ने अपना [illegible]
उसने वियटनाम को स्वायत्त शासन देने का वचन दिया।

८. इण्डोनेशिया में डचों की सत्ता प्रायः समाप्त हो गई।

९. इथियोपिया ने इटली से अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी। [illegible]
कालान्तर में पूर्ण स्वतंत्र हो गया।

१०. कुछ समय पश्चात् इण्डोनेशिया डच साम्राज्य से [illegible]
एक स्वतंत्र राज्य हो गया।

११. अमेरिका ने फिलीपाइन्स की स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली।

इस प्रकार द्वितीय महायुद्ध ने पश्चिमी देशों के साम्राज्य को भारी धक्का
पहुंचाया।

संयुक्त राष्ट्र संघ—अप्रैल, १९४५ में सैन फ्रांसिस्को में ५० राष्ट्रों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन हुआ था। इसी सम्मेलन में विश्व में स्थायी शांति और सहयोग की स्थापना के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र-संघ के चार्टर का निर्माण हुआ था। इस चार्टर ने संयुक्त राष्ट्र-संघ के ६ प्रमुख अंगों का उल्लेख किया था—

(१) महासमिति (General Assembly)
(२) सुरक्षा समिति (Security Council)
(३) आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक समिति (Economic, Social and [illegible]ural Council)
(४) संरक्षण समिति (Trusteeship Council)
(५) अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (Interational Court of Justice)
(६) सचिवालय (Secretariat)

कुछ महत्वपूर्ण समझौते

अटलांटिक चार्टर—अगस्त १९४१ में अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट और ब्रिटेन [के] प्रधान मन्त्री चर्चिल एटलाण्टिक महासागर में युद्ध-पोत में मिले और उन्होंने विश्व- [...] के लिये कुछ सिद्धाँतों की घोषणा की। यह घोषणा-पत्र, एटलाण्टिक चार्टर के [नाम से वि]ख्यात हुआ। इसके मुख्य सिद्धाँत निम्न प्रकार थे—

(१) दोनों देश किसी प्रकार की भी आक्रमक कार्यवाही न करेंगे।
(२) मनुष्यों को अपनी शासन-प्रणाली निश्चित करने का अधिकार है।
(३) विजयी तथा पराजित सभी देशों को संसार के व्यापार एवं कच्चे माल [प्राप्त] करने का समान अधिकार है
(४) श्रमजीवियों के स्तर को ऊंचा करने, आर्थिक विकास करने तथा [...] सुरक्षा की स्थापना करने के लिये सभी देशों के पारस्परिक सहयोग की [आवश्यक]ता है।
(५) संसार में इस प्रकार की शांति स्थापित की जाय जिससे मनुष्य अपने [...] देशों में सुरक्षा एवं स्वतन्त्रता के साथ निर्भय तथा अभावपूर्ण जीवन व्यती[त कर सकें]।

(६) सभी को समुद्री मार्गों पर आने-जाने का अधिकार है।

(७) आक्रमणकारी देशों का निःशस्त्रीकरण होना चाहिये।

कैरो सम्मेलन—नवम्बर, १९४३ में रूजवेल्ट, चर्चिल और चांग काईशेक कैरों में मिले। इन्होंने निम्नलिखित घोषणा की—

(१) कोरिया के अतिरिक्त चीन से जीते हुये सारे प्रदेशों को जापान पुनः चीन को वापस करेगा।

(२) कोरिया को स्वतंत्र राज्य बनाया जायगा।

(३) १९१४ के पश्चात् जापान ने प्रशान्त महासागर अथवा अन्यत्र जो प्रदेश जीते थे उन्हें वापस कराया जायेगा।

(४) अमेरिका, ब्रिटेन तथा चीन को किसी भी अन्य प्रदेश पर अधिकार नहीं करना चाहिये।

तेहरान घोषणा—दिसम्बर, १९४३ में रूजवेल्ट, चर्चिल और स्टालिन ईरान की राजधानी तेहरान में मिले। उन्होंने प्रमुखतया निम्नलिखित निर्णय किये—

(१) उनके राष्ट्र युद्ध और शान्ति में पारस्परिक सहयोग के साथ कार्य करेंगे।

(२) सबको ऐसी शान्ति स्थापना के लिये प्रयत्न करना चाहिये जो लोकप्रिय हो और जो अनेक पीढ़ियों के लिये युद्ध के भय को दूर कर सके।

(३) विश्व में सभी मनुष्यों को उत्पीडन से मुक्ति मिले और अपनी इच्छानुसार जीवन-यापन की स्वतन्त्रता मिले।

याल्टा समझौता—फरवरी, १९४५ में क्रीमिया प्रायद्वीप में याल्टा नामक स्थान पर रूजवेल्ट, चर्चिल और स्टालिन की भेंट हुई। उन्होंने कुछ महत्वपूर्ण निर्णय किये—

(१) जो देश नात्सी जर्मनी से मुक्त कराये जायेंगे उनमें स्वतन्त्र निर्वाचन होंगे तथा उन्हें अपनी सरकारें बनाने का अधिकार दिया जायेगा।

(२) परन्तु रूस बाल्टिक देशों, पूर्वी पोलैंड तथा क्यूराइल और सखालीन द्वीपों पर अपना अधिकार बनाये रक्खेगा।

(३) मंगोलिया तथाँ मंचूरिया में रूस के विशेषाधिकार भी बने रहेंगे।

(४) क्षति-पूर्ति के लिये पौलैण्ड को पूर्वी जर्मनी दे दिया जायेगा।

(५) रूस चाँग काई शेक की चीनी सरकार के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रक्खेगा।

पोट्सडम समझौता—जुलाई, १९४५ में पोट्सडम में ट्रूमन, चर्चिल तथा स्टालिन की भेंट हुई। उन्होंने निर्णय किया कि—

(१) आस्ट्रिया और जेकोस्लोवाकिया का पुनः निर्माण हो।

(२) जर्मनी के कुछ प्रदेश पौलैण्ड तथा रूस को मिलें।

(३) शेष जर्मनी चार सैनिक खण्डों में विभक्त हो। एक-एक खण्ड अमेरिका, ब्रिटेन, रूस तथा फ्राँस के सुपुर्द कर दिया जाय।

(४) अमेरीका, ब्रिटेन तथा रूस अन्य देशों के सहयोग से सन्धियों की धारायें निश्चित करें।